जागरण

THE JAGARAN — सम्पादक—प्रेमचन्द — Illustrated Weekly

वर्ष २ | काशी, मि० माघ कृष्ण ७ सोमवार, सं० १९९० वि० : ता० ८ जनवरी सन् १९३४ ई० | अंक २१

श्रीयुत सेठ गोविन्ददासजी



१ साल की कड़ी क़ैद की सज़ा काटने के बाद गत १ ली जनवरी को ही आप रिहा किये गये हैं। जबलपुर पहुँचने पर आपका ज़ोरदार स्वागत किया गया। इन दिनों आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, पर पत्र प्रतिनिधि से भेंट करने पर, आपने साम्यवाद और साम्प्रदायिकता की बुराइयों के प्रति श्री प० जवाहरलालजी के विचारों का समर्थन किया।

आवर्तन

लो, देखो, काँपीं वृन्तों पर
शतदल की कोमल कलियाँ!
विहँस उठीं दलदल पर मलमल
कर अनन्त मुक्तावलियाँ!

छाया चहुँ ओर हिमानी का
शीतल करुणामय अञ्चल,
लाई भर किसने कुञ्जों से
सौरभ की मञ्जुल डलियाँ!

यह विहार का नव परिखीदा
ऊषा का घन अवगुण्ठन;
धूमिल जिसके तम-जाल में
ऊँघ रहीं गाँवें—गलियाँ!

जग के पलकों में झलको
निशि-अलकों की दीपित वेणी;
बिखरा दीं सरिता ने तट पर
लहरों की गीताञ्जलियाँ!

जागो रे जागो, त्रिभुवन में
जीवन की पावन कलियाँ!
तरु-तरु पर, डाली-डाली पर
राग-रङ्ग की रँगरलियाँ!!

—श्री आरसीप्रसादसिंह

इस अंक की सामग्री

जागरण

मि० माघ कृष्ण ७ सोमवार, सं० १९९० वि०

क्या हम वास्तव में राष्ट्र-वादी हैं ?

टके पंथी पुजारी, पुरोहित और पंडे हिन्दू-जाति के कलंक हैं।

यह तो हम पहले भी जानते थे और अब भी जानते हैं कि साधारण भारतवासी राष्ट्रीयता का अर्थ नहीं समझता, और यह भावना जिस जाग्रति और मानसिक उदारता से उत्पन्न होती है, वह अभी हम में से बहुत थोड़े आदमियों में आई है। लेकिन इतना ज़रूर समझते थे कि जो पत्रों के सम्पादक हैं, राष्ट्रीयता पर लम्बे-लम्बे लेख लिखते हैं और राष्ट्रीयता के वेदी पर बलिदान होने वालों की तारीफों के पुल बाँधते हैं, उनमें ज़रूर यह जागृति आ गई है और वह जात पाँत की बेड़ियों से मुक्त हो चुके हैं लेकिन अभी हाल में 'भारत' में एक लेख देखकर हमारी आँखें खुल गईं और यह अप्रिय अनुभव हुआ कि हम अभी तक केवल मुँह से राष्ट्र राष्ट्र का गुल मचाते हैं, हमारे दिलों में अभी वही जाति भेद का अन्धकार छाया हुआ है। और यह कौन नहीं जानता कि जाति भेद और राष्ट्रीयता दोनों में अमृत और विष का अन्तर है। यह लेख किन्हीं 'निर्मल' महाशय का है, और यदि यह वही 'निर्मल' हैं, जिन्हें श्रीयुत ज्योतिप्रसाद जी निर्मल के नाम से हम जानते हैं, तो शायद वह ब्राह्मण हैं। हम अबतक उन्हें राष्ट्रवादी समझते थे पर 'भारत' में उनका यह लेख देखकर हमारा विचार बदल गया, जिसका हमें दुःख है। हमें ज्ञात हुआ कि वह अब भी उन पुजारियों का, पुरोहितों का और जनऊधारी लुटेरों का हिन्दू-समाज पर प्रभुत्व बनाए रखना चाहते हैं, जिन्हें वह ब्राह्मण कहते हैं, पर हम उन्हें ब्राह्मण क्या, ब्राह्मण के पाँव की धूल भी नहीं समझते। 'निर्मल' की शिकायत है कि हमने अपनी तीन चौथाई कहानियों में ब्राह्मणों का काले रंगों में चित्रित करके अपनी संकीर्णता का परिचय दिया है, जो हमारी रचनाओं पर अमिट कलंक है। हम कहते हैं कि अगर हममें इतनी शक्ति होती, तो हम अपना सारा जीवन हिन्दू जाति को पुरोहितों, पुजारियों, पंडों और धर्मोपजीवी कीटाणुओं से मुक्त कराने में अर्पण कर देते। हिन्दू जाति का सबसे घृणित कोढ़, सबसे लज्जा जनक कलंक यही टके-पंथी दल है, जो एक विशाल जोंक की भाँति उसका खून चूस रहा है, और हमारी राष्ट्रीयता के मार्ग में यही सबसे बड़ी बाधा है। राष्ट्रीयता की पहली शर्त है समाज में साम्य भाव का दृढ़ होना। इसके बिना राष्ट्रीयता की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जब तक यहाँ एक दल, समाज की भक्ति, श्रद्धा, अज्ञान और अन्धविश्वास से अपना उल्लू सीधा करने के लिये बना रहेगा, तब तक हिन्दू समाज कभी सचेत न होगा। और यह दल दस पाँच लाख व्यक्तियों का नहीं है, असंख्य है। उसका उद्यम यही है कि वह हिन्दू जाति को अज्ञान की बेड़ियों में जकड़ रखे, जिसमें वह जरा भी चूँ न कर सके। मानों आसुरी शक्तियों ने अन्धकार और अज्ञान का प्रचार करने के लिये स्वयंसेवकों की यह अनगिनत सेना नियत कर रखी है। अगर हिन्दू समाज को पृथ्वी से मिट नहीं जाना है, तो उसे इस अन्धकार शासन को मिटाना होगा। हम नहीं समझते, आज कोई भी विचारवान् हिन्दू ऐसा है, जो इस टके पंथी दल को चिरायु देखना चाहता हो, सिवाय उन लोगों के जो स्वयं उस दल में हैं और चक्रौतियाँ कर रहे हैं। निर्मल, खुद शायद उसी टके पंथी समाज के चौधरी हैं वरना उन्हें टके पंथियों के प्रति वकालत करने की जरूरत क्यों होती? वह और उनके समान विचार वाले उनके अन्य भाई शायद आज भी हिन्दू समाज को अन्धविश्वास से निकलने नहीं देना चाहते, वह राष्ट्रीयता का हाँक लगाकर भी भोले हिन्दू समाज को पुरोहितों और पुजारियों ही का शिकार बनाए रखना चाहते हैं। मगर हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि हिन्दू समाज उनके प्रयत्नों और सिर तोड़ कोशिशों के बावजूद अब आँखें खोलने लगा है और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है, कि जिन कहानियों को 'निर्मल' जी ब्राह्मण द्रोही बताते हैं, वह सब उन्हीं पत्रिकाओं में छपी थीं, जिनके सम्पादक स्वयं ब्राह्मण थे। मालूम नहीं 'निर्मल' जी 'वर्तमान' के सम्पादक श्री रमाशंकर अवस्थी, 'सरस्वती' के सम्पादक श्री देवीदत्त शुक्ल, 'माधुरी' के सम्पादक पं० रूपनारायण पाण्डेय, 'विशाल भारत' के सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी आदि सज्जनों को ब्राह्मण समझते हैं या नहीं पर इन सज्जनों ने उन कहानियों को छापते समय जरा भी आपत्ति न की थी। वे उन कहानियों को आपत्ति जनक समझते, तो कदापि न छापते। हम उनका गला तो न दबा सकते थे। युनिवर्सिटी में पढ़ कर भी आदमी अपने धार्मिक विश्वास को तो नहीं त्याग सकता। ये कहानियाँ उन महानुभावों ने इसलिये छापी, कि वे भी हिन्दू समाज को टके पंथियों के जाल से निकालना चाहते हैं, वे ब्राह्मण होते हुए भी इन ब्राह्मण जाति को बदनाम करने वाले जीवों का समाज पर प्रभुत्व नहीं रखना चाहते हमारा खयाल है कि टके-पंथियों से जितनी लज्जा उन्हें आती होगी, उतनी दूसरे समुदायों को नहीं आ सकती क्योंकि यह धर्मोपजीवी दल अपने को ब्राह्मण कहता है। हम कायस्थ कुल में उत्पन्न हुए हैं, और अभी तक उस संस्कार को न मिटा सकने के कारण किसी कायस्थ को चोरी करते या रिशवत लेते देखकर लज्जित होते हैं। ब्राह्मण क्या इसे पसन्द कर सकता है, कि उसी के समुदाय के असंख्य प्राणी भीख माँग कर, भोले भाले हिन्दुओं को ठगकर, बात बात में पैसे वसूल करके, निर्लज्जता के साथ अपने धर्मात्मापन का ढोंग करते फिरें। यह जीवन व्यवसाय उन्हीं को पसन्द आ सकता है, जो खुद उसमें लिप्त हैं और वह भी उसी वक्त तक जब तक कि उनकी अन्ध स्वार्थ भावना प्रचण्ड है और भीतर की आँखें बन्द हैं। आँखें खुलते ही वह उस व्यवसाय और उस जीवन से घृणा करने लगेंगे। हम ऐसे सज्जनों को जानते हैं, जो पुरोहित कुल में पैदा हुए पर शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद उन्हें वह टके पंथीपन इतना अधम जान पड़ा, कि उन्होंने लाखों रुपये साल की आमदनी पर लात मार कर स्कूल में अध्यापकी स्वीकार कर लिया। आज भी कुलीन ब्राह्मण, पुरोहितपन और पुजारीपन को त्याज्य समझता है और किसी दशा में भी यह निकृष्ट जीवन अंगीकार न करेगा। ब्राह्मण वह है, जो निस्पृह हो, त्यागी हो और सत्यवादी हो। सच्चे ब्राह्मण महात्मा गांधी हैं, म० मालवीय जी हैं, नेहरू हैं, स्व० पटेल हैं, स्वामी श्रद्धानन्द हैं। वह नहीं जो प्रात काल आपके द्वार आकर करताल बजाते हुए—'निर्मलपुत्र देहि भगवान्' की हाँक लगाने लगते हैं, या गनेश पूजा और गौरी पूजा और अल्लम-गल्लम पूजा पर जजमानों से पैसे रखाते हैं, या गंगा में स्नान करने वालों से दक्षिणा वसूल करते हैं, या विद्वान् होकर ठाकुरजी और ठकुराइनजी के श्रृंगार में अपना कौशल दिखाते हैं, या मन्दिरों में मखमली गाव तकिए लगाए वेश्याओं का नृत्य देखकर भगवान् से लौ लगाते हैं हिन्दू बालक जब से धर्ती पर आता है और जबतक वह धर्ती से प्रस्थान नहीं कर जाता, इसी अन्ध-विश्वास और अज्ञान के चक्कर में सम्मोहित पड़ा रहता है। और नाना प्रकार के दृष्टान्तों से, मनगढ़न्त किस्से कहानियों से, पुण्य और धर्म के गोरख धन्धों से, स्वर्ग और नरक की मिथ्या कल्पनाओं से, यह उपजीवी दल उनकी सम्मोहनावस्था को बनाए रखता है। और उनकी वकालत करते हैं हमारे कुशल पत्रकार 'निर्मल' जी, जो राष्ट्रवादी हैं। राष्ट्रवाद एसे उपजीवी समाज को घातक समझता है, और समाजवाद में तो इसके लिये स्थान ही नहीं। और हम जिस राष्ट्रीयता का स्वप्न देख रहे हैं उसमें तो जन्मगत वर्णों की गंध तक न होगी, वह हमारे श्रमिकों और किसानों का साम्राज्य होगा, जिसमें न कोई ब्राह्मण होगा, न हरिजन, न कायस्थ, न क्षत्रिय। उसमें सभी भारतवासी होंगे, सभी ब्राह्मण होंगे, या सभी हरिजन होंगे।

कुछ मित्रों की यह राय हो सकती है कि माना टकेपंथा समाज निकृष्ट है, त्याज्य है, पाखंडी है लेकिन, तुम उसकी निन्दा क्यों करते हो, उसके प्रति घृणा क्यों फैलाते हो, उसके प्रति प्रेम और सहानुभूति क्यों नहीं दिखाते, घृणा तो उसे और भी दुराग्रही बना देता है और फिर उसके सुधार की सम्भावना भी नहीं रहती। इसके उत्तर में हमारा यही नम्र निवेदन है कि हमें किसी व्यक्ति या समाज से कोई द्वेष नहीं, हम अगर टके पंथीपन का उपहास करते हैं, तो जहाँ हमारा एक उद्देश्य यह होता है कि समाज में से ऊँच नीच, पवित्र अपवित्र का ढोंग मिटावें, वहाँ दूसरा उद्देश्य यह भी होता है कि टकेपंथियों के सामने उनका वास्तविक और कुछ अतिरंजित चित्र रक्खें, जिसमें उन्हें अपने व्यवसाय, अपनी धूर्तता, अपने पाखंड से घृणा और लज्जा उत्पन्न हो, और वे उनका परित्याग कर ईमानदारी और सफाई की जिन्दगी बसर करें और अन्धकार की जगह प्रकाश के स्वयंसेवक बन जायँ। 'ब्रह्मभोज' और 'सत्याग्रह' नामक कहानियों ही को देखिये, जिन पर 'निर्मल' जी को आपत्ति है। उन्हें पढ़ कर क्या यह इच्छा होती है कि चौबे

की या पण्डितजी का अहित किया जाय ? हमने चेष्टा की है कि पाठक के मन में उनके प्रति द्वेष न उत्पन्न हो, हाँ, परिहास द्वारा उनकी मनोवृत्ति दिखाई है। ऐसे चौबों को देखना हो, तो काशी या वृन्दावन मे देखिये और ऐसे पंडितों को देखना हो, तो वर्णाश्रम स्वराज्य संघ में चले जाइये, और यदि निर्मलजी पहले ही उस धर्मात्मा, दल में नहीं जा मिले हैं, तो अब उन्हें चटपट उस दल में जा मिलना चाहिए क्योंकि वहाँ उन्हीं की मनोवृत्ति के महानुभाव मिलेंग। और वहाँ उन्हें मातरामजी के बहुत से भाई-बंध मिल जायँग, जो उनसे कहीं बड़ सत्याग्रही होंग। हमने कभी इस समुदाय की पोल खोलने की चेष्टा नही की, केवल माठी चुटकियों से और फुसफुसे परिहास से काम लिया, हालाँकि जरूरत थी बर्नार्डशा जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति की, जो घन के से चोट लगाता है।

निर्मलजी को इस बात की बड़ी फिक्र है कि आज के ५० साल बाद के लोग जो हमारी रचनाएँ पढ़ेंगे, उनके सामने ब्राह्मण समाज का कैसा चित्र होगा और वे हिन्दू समाज से कितने विरक्त हो जायँगे। हम पूछते हैं, महात्मा गांधी के हरिजन आन्दोलन को लोग आज के एक हजार साल के बाद क्या समझेंगे ? यही कि हरिजनों को ऊँची जात के हिन्दुओं ने कुचल रखा था। हमारे लेखों से भी आज के ५० साल बाद लोग यही समझेंग कि उस समय हिन्दू समाज में इसी तरह के पुजारियों, पुरोहितों, पंडों, पाखंडियों और टके पंथियों का राज था और कुछ लोग उनके इस राज को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न कर रहे थे। निर्मलजी, इस समुदाय को ब्राह्मण कहें, हम नहीं कह सकते। हम तो उसे पाखंडी समाज कहते हैं, जो अब निर्लज्जता की पराकाष्ठा तक पहुँच चुका है। ऐतिहासिक सत्य चुप-चुप करने से नहीं दब सकता। साहित्य अपने समय का इतिहास होता है, इतिहास से कहीं अधिक सत्य। इसमें शमाने की बात अवश्य है कि हमारा हिन्दू समाज क्यों ऐसा गिरा हुआ है और क्यों आँखें बन्द करके धूर्तों को अपना पेशवा मान रहा है और क्यों हमारी जाति का एक अङ्ग पाखंड को अपनी जीविका का साधन बनाए हुए है, लेकिन केवल शमाने से तो काम नहा चलता। इस अधागति की दशा का सुधार करना है। इसके प्रति घृणा फैलाइए प्रेम फैलाइए, उपहास कीजिए या निन्दा कीजिए सब जायज हे और केवल हिन्दू समाज के दृष्टि कोण से ही नहीं जायज हैं उस समुदाय के दृष्टि कोण से भा जायज है, जो मुफ्तखोरी, पाखंड और अन्धविश्वास म अपनी आत्मा का पतन कर रहा हे और अपने साथ हिन्दू जाति को डुबाए डालता है। हमने अपनी गल्पों में इस पाखंडी समुदाय का यथार्थ रूप नहीं दिखाया है, वह उससे कहीं पतित है। उसका सच्ची दशा हम लिखें, तो शायद निर्मलजी को तो न आश्चर्य होगा क्योंकि वह उसी समुदाय के एक व्यक्ति हैं, लेकिन हिन्दू समाज की जरूर आँखें खुल जायँगी, मगर यह हमारी कमजोरी हे कि हम बहुत सी बातें जानते हुए भी उनके लिखने का साहस नहीं रखते और अपने प्राणों का भय भी हे, क्योंकि यह समुदाय कुछ भी कर सकता हे। शायद इस साम्प्रदायिक प्रसंग को इसीलिये उठाया भी जा रहा है कि पंडों और पुरोहितों को हमारे विरुद्ध उत्तेजित किया जाय।

निर्मलजी ने हमे 'आदर्श वाद' और कला के विषय में भी कुछ उपदेश देने की कृपा की है, पर हम यह उपदेश ऐसों से ले चुके हैं, जो उनसे कहीं ऊँचे हैं। आदर्शवाद इसे नहीं कहते कि अपने समाज में जो बुराइयाँ हों, उनके सुधार के बदले उन पर परदा डालने की चेष्टा की जाय, या समाज को एक लुटेरे समुदाय के हाथों लुटते देखकर जबान बन्द कर ली जाय। आदर्शवाद का जीता जागता उदाहरण हरिजन आन्दोलन हमारी आँखों के सामने है। निर्मलजी जबान से तो इस आन्दोलन के विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं रखते, लेकिन उनके दिल में घुसकर देखा जाय, तो मन्दिरों का खुलना और मन्दिरों के ठेकेदारों के प्रभुत्व का मिटना, उन्हें जहर ही लग रहा होगा, मगर बेचारे मजबूर हैं, क्या करें ?

निर्मलजी हमे ब्राह्मण द्वेषी बता कर सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने हमें हिन्दू द्रोही भी सिद्ध किया है, क्योंकि हमने अपनी रचनाओं मे मुसलमानों को अच्छे रूप मे दिखाया है। तो क्या आप चाहते हैं, हम मुसलमानों को भी उसी तरह चित्रित करें जिस तरह पुरोहितों और पाखण्डियों को करते हैं ? हमारी समझ मे मुसलमानों से हिन्दू जाति को उसकी शताश हानि भी नहीं पहुँची है, जितनी इन पाखंडियों के हाथों पहुँची और पहुँच रही है। मुसलमान हिन्दू को अपना शिकार नहीं समझता, उसकी जब से धोखा देकर और अन्धश्रद्धा का जादू फैला कर कुछ ऐंठने की फिक्र नहीं करता। फिर भी मुसलमानों को मुझसे शिकायत है कि मैंने उनका विकृत रूप खींचा है। हम ऐसे मुसलमान मित्रों के खत दिखा सकते हैं, जिन्होंने हमारी कहानियों में मुसलमानों के प्रति अन्याय दिखाया है। हमारा आदर्श सदैव से यह रहा है कि जहाँ धूर्तता और पाखण्ड और सबलों द्वारा निर्बलों पर अत्याचार देखो, उसको समाज के सामने रखो, चाहे हिन्दू हो, पंडित हो, बाबू हो, मुसलमान हो, या कोई हो। इसलिये हमारी कहानियों में आप को पदाधिकारी, महाजन, वकील और पुजारी प्रजा का खून चूसते हुए मिलेंगे, और गरीब किसान, मजदूर, अछूत और दरिद्र उनके आघात सह कर भी अपने धर्म और मनुष्यता को हाथ से न जाने देंगे क्योंकि हमने उन्हीं मे सबसे ज्यादा सचाई और सेवा भाव पाया है। और यह हमारा दृढ़ विश्वास है कि जब तक यह साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिकता और यह अन्ध विश्वास हम में से दूर न होगा, जब तक हम समाज को पाखण्ड से मुक्त न करलेंगे, तब तक हमारा उद्धार न होगा। हमारा स्वराज्य केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करना नहीं है; बल्कि हम सामाजिक जुए से भी, इस पाखण्डी जुए से भी, जो विदेशी शासन से कहीं अधिक घातक है; और हमें आश्चर्य होता है कि निर्मलजी और उनकी मनोवृत्ति के अन्य सज्जन कैसे इस पुरोहिती शासन का समर्थन कर सकते हैं। उन्हे खुद इस पुरोहितपन को मिटाना चाहिए, क्योंकि वह राष्ट्रवादी हैं। अगर कोई ब्राह्मण, कायस्थों के करारदाद की, उनके मदिरा-सेवन की, या उनकी अन्य बुराइयों की निन्दा करे, तो मुझे जरा भी बुरा न लगेगा। मैंने खुद इन बुराइयों की ओर समाज को मुखातिब किया है। कोई हमारी बुराई दिखाए और हमदर्दी से दिखाए, तो हमें बुरा लगने या दाँत किटकिटाने का कोई कारण नहीं हो सकता। मिस मेयो ने जो बुराइयाँ दिखाई थीं उनमें उसका दूषित मनोभाव था। वह भारतीयों को स्वराज्य के अयोग्य सिद्ध करने के लिये प्रमाण खोज रही थी। क्या निर्मलजी मुझे भी ब्राह्मण द्रोही, हिन्दू द्रोही की तरह स्वराज्य द्रोही भी समझते हैं ?

अन्त में मैं अपने मित्र निर्मलजी से बड़ी नम्रता के साथ निवेदन करूँगा, कि पुरोहितों के प्रभुत्व के दिन अब बहुत थोड़े रह गए हैं, और समाज और राष्ट्र की भलाई इसी में है कि जाति से यह भेद भाव, यह एकांगी प्रभुत्व, यह खून चूसने की प्रवृत्ति, मिटाई जाय, क्योंकि जैसा हम पहले कह चुके हैं, राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्णव्यवस्था, ऊँच नीच के भेद और धार्मिक पाखंड की जड़ खोदना है। इस तरह के लेखों से आप को आप के पुरोहित भाई चाहे अपना हीरो समझें और मंदिरों के महन्तों और पुजारियों की आप पर कृपा हो जाय लेकिन राष्ट्रीयता को हानि पहुँचती है और आप राष्ट्र प्रेमियों की दृष्टि में गिर जाते हैं। आप यह ब्राह्मण समुदाय की सेवा नहीं, उसका अपमान कर रहे हैं।

क्या भारत-सरकार प्रवासियों के लिये जिम्मेदार नहीं है ?

लेखक—श्रीयुत प्रेमनारायण अग्रवाल,

विगत ६ फरवरी १९३३ ई० को देहली की बड़ी व्यवस्थापिका सभा में श्रीयुत गयाप्रसादसिंह, एम० एल० ए० ने फिजी प्रवासी भारतीयों के पासपोर्ट के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न पूछे थे। उन अनेक प्रश्नों में एक प्रश्न था स्वामी भवानीदयालजी सन्यासी को फिजी न आने देने के लिये फिजी सरकारकी इन्कारी। प्रवासी भारतीय विभाग के इस सभा के जिम्मेदार सरकारी सदस्य मि० जी० एस० वाजपेयी ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बतलाया कि भारत सरकार को इस मामले में कुछ नहीं मालूम है। कुछ और प्रश्न पूछने पर उन्होंने बताया कि स्वामीजी दक्षिण अफ्रीका के नागरिक हैं अत भारत सरकार इस मामले में कुछ भी करने को तैयार नहीं है (The Government of India had no informa-tion on the subject nor do they propose to make any inquiries as Swami Bhawani Dayal is a South African National) इस उत्तर से भारतीयों में तथा प्रवासी भारतीयों में दो पहलुओं के आधार पर बड़ी उत्तेजना उत्पन्न हो गई है।

फिजी से आने वाले समाचार पत्रों तथा भारत में इस उपनिवेश विषयक प्रकाशित सामग्री के आधार पर हमारा विश्वास था कि फिजी प्रवासी भाई सब प्रकार कुशल क्षेम में हैं और आनन्द से अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, केवल राजनैतिक अधिकार ही उनकी वर्तमान समस्याएँ हैं, जो प्रत्येक उपनिवेश के भारतीय के समक्ष किसी न किसी रूप में है। इसका इलाज भारत का स्वतन्त्र होना ही है। भारत के राजनैतिक जीवन—स्वाधीनता पराधीनता—से उन के भी राजनैतिक अधिकारों का सूत्र बँधा हुआ है। उनकी अन्य प्रकार की अवस्थाओं की ओर से हम निश्चिन्त-से थे - पर इस उत्तर से हमारा शरीर काँप गया और रोंगटे खड़े हो गये, मालूम हुआ कि यह सब दिखावटी बातें इसलिये हैं कि भारतीय किसी प्रकार का आदोलन न मचा बैठें। पूज्य स्वामीजी को फिजी प्रवासियों ने कई बार निमन्त्रण दिया था, पर आप प्रवासी प्रश्नों के कारण इतने व्यस्त थे कि अब तक वहाँ पहुँच न सके थे। थोड़े दिन पहले आप भारत से दक्षिण अफ्रिका वापिस लौट गये। वहाँ कुछ फुर्सत पाने पर ज्यों ही आप फिजी जाने को प्रस्तुत हुए आपके पासपोर्ट पर फिजी के गवर्नर ने केवल उनके गवर्नर जनरल को तार द्वारा (५ मई १९३२) यह शब्द लिखने का आदेश किया कि यह पासपोर्ट फिजी जाने के लिये नहीं है (This passport is not valid for travel to Fiji islands) और स्वामीजी वहां के वहीं रह गये।

स्वामीजी प्रवास में उत्पन्न हुए हैं, प्रवासी समस्याओं के आप विशेषज्ञ हैं। अभी तक का सारा समय, आपने प्रवासी भारतवासियों की सेवा में बराबर निःसंकोच भाव से लगाया है। अब आप ने सन्यास लेकर भी उन्हीं की सेवा में शेष जीवन बिताने का निश्चय किया है। आप वहाँ जाकर फिजी प्रवासियों की स्थिति की जाँच करते और उन्हें राय देते कि वे अपनी उन्नति किस प्रकार करें। आपके वहाँ न जाने से फिजी प्रवासी भारतीय आपकी परिपक्व राय से वंचित रह गये। और प्रवासी हितैषियों को सन्देह हो गया है कि उन्हें सरकार ने क्यों रोका। अवश्य फिजी-सरकार को डर है कि कहीं उनकी पोल न खुल जाय, जो अभी तक ढकी हुई है। इसके सिवाय और कोई कारण स्वामीजी के रोके जाने का नहीं हो सकता। इसकी जिम्मेदार हुई फिजी सरकार। तो भारत सरकार का कर्त्तव्य था कि वह इस मामले में पड़कर स्वामीजी को पासपोर्ट दिलाती, ताकि हमारे सन्देह की निवृत्ति होती। हमारे कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत-सरकार भी प्रवासियों की ओर से बहुत उदासीन है और विशेषकर फिजी प्रवासियों की ओर से। वर्षों से फिजी प्रवासी भारतीय आन्दोलन कर रहे हैं, कि फिजी में भी भारत सरकार अपना एजेन्ट रखे, जो वहाँ के भारतीयों के हितों की देख भाल रखे, पर भारत सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। इसके अलावा भारत सरकार ने सन् २६ में लगभग सात वर्ष पूर्व फिजी सरकार की मंजूरी प्राप्त कर ली थी, कि भारत सरकार की ओर से जिम्मेदार व्यक्ति कभी कभी फिजी की स्थिति की जाँच पड़ताल करने आया करेंगे, पर यह वादा अभी तक पूरा नहीं किया गया है।

'चूँकि स्वामीजी दक्षिण अफ्रीका के नागरिक हैं, अत: भारत सरकार कुछ करने को तैयार नहीं हैं।' भारत सरकार का यह उत्तर, जो वाजपेयी द्वारा दिया गया, प्रवासी भारतीयों में बड़ी भारी हलचल का उत्तरदायी है। भारतीय प्रवास के इतिहास से परिचित पाठक भली भाँति जानते होंगे, कि अनैतिक कुली प्रथा में प्रतिज्ञाबद्ध भारतीय किस प्रकार भारत सरकार की सहायता से उपनिवेशों में आने को खदेड़ गये थे। भारतीयों के विरोध की सरकार ने उस समय तनिक भी परवाह न की। चीन तथा जापान ने राष्ट्रीय स्वाभिमान के विरुद्ध इस बात को समझकर उपनिवेशों में कुलियों के लिये माँगों को बुरी तरह ठुकरा दिया और जो वहाँ पहुँच चुके थे उनके अधिकारों के बारे में उन्हें अनेक सुविधायें दिलवाईं जो परतन्त्र भारतीयों को अभी तक नहीं मिली हैं, उस समय महारानी विक्टोरिया की सरकार ने अनेक वायदों द्वारा स्पष्ट कर दिया कि भारतीयों को साम्राज्य की अन्य प्रजा के समान ही अधिकार होंगे। भारत सरकार ने बार-बार दुहराया था कि वे उनकी देख भाल में सदा तत्पर होंगे। उसने अपने इन वादों को किसी न किसी रूप में किन्हीं अन्शों तक पूरा किया पर वह अब अपनी इस जिम्मेदारी से बरी होना चाहती है। भारत सरकार ने कमीशन भेजकर और सन् २२ में राइट आनरेबिल श्री श्रीनिवास शास्त्री P. C.—को सारे उपनिवेशों के भारतीयों की दशा का अध्ययन करने के लिये भेजकर तथा अन्य कार्यों से अपनी उनके प्रति जिम्मेदारी को बराबर दुहराया है। दक्षिण अफ्रीका में अपने एजेंट को रखना भी भारत सरकार की इसी नीति का परिचायक है। इस उत्तर से अब यह स्पष्ट होगया, कि वह प्रवासी भारतवासियों के बारे में अपने सारे दायित्व को सिर से उतार फेंकने को तत्पर है। क्या भारत-सरकार का यह कर्तव्य नहीं था, कि वह फिजी प्रवासी की भारतीयों के लाभार्थ फिजी सरकार को स्वामीजी के पासपोर्ट से उपर्युक्त शब्द वापिस लेने को मजबूर करती और उनके जरिये फिजी प्रवासियों की वास्तविक हालत को जानकर उनकी ओर से फिजी सरकार को उनका अधिक ध्यान रखने को कहती? यदि उसे यह न करना था, तो भी कोई हर्ज न था, बल्कि उनके इस मामलों में फिजी सरकार से उनके आने की आपत्ति के कारण पूछ कर तो उन्हें बताती। फिजी कौंसिल में श्री के० बी० सिंह ने यह प्रश्न जब उठाया, तो फिजी सरकार ने उत्तर देने से इन्कार कर दिया। भारत सरकार को इस पर इस मामले को अपने हाथ में लेकर इसका कारण स्वामीजी तथा जनता को बताना था, और उचित कारण न होने पर उनको पासपोर्ट दिलवाना था। पर, इसके ऊपर उसने उत्तर दिया कि वह उनके मामलों में कोई जाँच नहीं करेगी। उसे चाहिये था कि वह ऐसा कहने से पहिले कुँवर सर महाराजसिंह को, जो भारत सरकार के दक्षिण अफ्रीका में एजेन्ट हैं, जिनका कर्तव्य भारतीयों के हितों की देख भाल करना है, वापिस बुला भेजती। हाल ही में जो केपटाउन कान्फ्रेंस हुई, उसे करने की कोई आवश्यकता न थी, जब यही होने को था, तो भारतीयों पर इतना खर्चा व्यर्थ में लाद देना कहाँ बुद्धिमानी था। यदि वह ऐसा न करके केवल इसका उत्तर देने में ही यह कहने को तैयार थी, तो उसे अपने वह शब्द वापिस लेने चाहिए और इस परिस्थिति को शीघ्र ही स्पष्ट कर देना चाहिये। हमारा खयाल है कि श्री० वाजपेयी ने यह शब्द बिना सोचे विचारे कह दिये हैं और न उन्हें उस उत्तर से इस कोलाहल मचने की शंका ही होगी। भारत सरकार का अब यह कर्तव्य है कि वह अपने इन शब्दों से उत्पन्न परिस्थिति को साफ करके स्वामीजी के पासपोर्ट के बारे में उसी प्रकार दिलचस्पी ले, जिस प्रकार इंग्लेण्ड ने हाल ही में मास्को में रूस के बोल्शेविकों द्वारा अदालत में कुछ अंग्रेजों पर मामला चलाये जाने के समय ली थी। जब कि इंगलैण्ड व्यापारिक सम्बन्ध तोड़ने को और अपने राजदूत को वापिस बुलाने को तैयार था! इंगलैण्ड अपने राष्ट्र के आदमियों के लिए इतना फिक्र करता है, पर भारत सरकार को इसकी परवाह नहीं। यदि चीन में क्रान्ति होती है और अंग्रेजों की जान खतरे में दिखलाई पड़ती है, तो तुरन्त ही अंग्रेजी सेनाएँ चीन की ओर चलती नजर आने लगती हैं। किसे नहीं पता कि जबकिन के कान कटने की झूठी बात को सुन कर इंगलैण्ड के लोगों का खून खौलने लगा। और स्पेन से भीषण संग्राम हुआ, जिसमें एक व्यक्ति के पीछे सैकड़ों की जानों पर आ बनी। बात अपने स्वदेश के निवासी की बाहरी सरकारों

कुछ अनुभव की बातें

लेखक—श्रीयुत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

मानवी अनुभव का नाम ही ज्ञान है। यह ज्ञान मनुष्य को ठोकर खाने से मिलता है। लाखों वर्षों से मनुष्य ठोकरें खाता हुआ चला आता है और उन्हीं ठोकरों का परिणाम स्वरूप ज्ञान तत्त्व, उपदेश के रूप में हमें मिलता है। जिन्होंने पूर्ण ज्ञान का दावा किया, जो ईश्वर के वकील बन कर खड़े हुए और जिन्होंने निरान्त सत्य को जानने की धृष्टता की, वे मनुष्य समाज में बहुत गड़बड़ फैला गये। यदि वे ऐसा न करते तो संसार कितना सुखी होता और हम कितने बढ़ गये होते।

हम सब यात्री हैं। संसार के इस प्रशस्त मार्ग में हमें दूसरे यात्रियों से विचार विनिमय करना चाहिये। सदा अपना भूल स्वीकार करने पर उद्यत रहना उचित है। ज्ञान जहाँ भी मिले, जिससे भी मिले, उसे मस्तक पर चढ़ाना चाहिये। महापुरुषों के विषय में संसार में कितना भ्रम फैला हुआ है। हमारा अनुभव यह कहता है कि महापुरुषों के अति निकट जाना उचित नहीं, नहीं तो बड़ी निराशा होगा। जिन लोगों को हमने महापुरुषों के इर्द गिर्द रहते देखा है, उनमें अधिक दम्भ और बनावटी पन की मात्रा को विशेष रूप से पाया है। उदाहरण के तौर पर जब-जब भी हम महात्मा गांधी के अत्यन्त निकट गये हैं और उनके आस-पास के भक्तों को देखा है, तो बड़े बेजार होकर लौटे हैं। एक बार ऐसा ही अनुभव हमारा बम्बई में हुआ। हम महात्माजी से मिलने के लिये गये। एक लेडी चौकीदार से हमने अपना अभिप्राय कहा और निवेदन किया कि महात्माजी से जाकर हमारा नाम लेकर पूछिये कि वे कब मिल सकते हैं। वह लेडी अन्दर गई और आकर बोली कि उन्हें मिलने की बिल्कुल फुर्सत नहीं है। हमने फिर प्रार्थना की कि कृपा कर दूसरे दिन के लिये कोई समय पूछ लीजिये। वह लेडी फिर अन्दर गई और लौट कर बोली कि कल भी कोई समय नहीं मिल सकता। हम चुप हो गये और अपने दूसरे प्रेमियों के साथ बातें करने लगे। पन्द्रह मिनट के बाद महात्माजी बाहर निकले और हमें देख कर बोले—आप तो अच्छे आये, मैं आप से अवश्य मिलूँगा। मैं अभी महाराजा बीकानेर से मिलने के लिये जा रहा हूँ। घंटे भर में लौट कर आऊँगा। आप मेरा इन्तजार कीजियेगा। महात्माजी रात के बारह बजे मिले और वार्तालाप हुआ।

इसलिये हमारा कहना यह है कि यदि किसी महापुरुष का पूरा लाभ आप उठाना चाहते हैं, तो उसका दूर से अध्ययन कीजिये। श्रद्धा से उसके गुणों को पकड़िये और आगे बढ़ जाइये। उससे चिपटिये नहीं। चिपटने का परिणाम यह होगा कि या तो आप अन्ध भक्त होकर अपनी बुद्धि खो बैठेंगे और पागलों सा बातें करने लगेंगे, या दम्भी बन कर महात्मा-पन का भूत आप पर सवार हो जायगा, अथवा आप उस महापुरुष से घृणा करने लगेंगे। इस कारण लाभ उठाने का सुरक्षित मार्ग यही है, कि आप अपने व्यक्तित्व की रक्षा कर महापुरुष को दूर से देखिये, उसके विचारों को सुनिये उसके ग्रन्थों को पढ़िये और अपने जीवन को शुद्ध बनाने की कोशिश कीजिये। भगवान बुद्ध के शिष्य आनन्दजी कैसे व्यक्ति थे? हमें इसके विषय में कुछ मालूम नहीं लेकिन यह हम जानते हैं, कि सेन्टपाल ने अपनी विद्वत्ता से ईसाई सम्प्रदाय का नवीन संगठन कर दिया। ईसाई धर्म सेन्ट पाल की चाज बन गई उसी के मस्तिष्क का ताना बना, उसमें बुन दिया गया। शुद्ध घी में मिलावट पड़ गई।

हमारा अनुभव यह कहता है, कि संसार में कितना भ्रम, कितनी मिथ्या बातें और कैसे कैसे अन्ध विश्वास महापुरुषों के कारण इसलिये फैले कि उनके जीवन चरित्र का अध्ययन उनके भक्तों ने वैज्ञानिक रूप से नहीं किया। परिणाम यह हुआ है, कि महापुरुषों की बातें तो हवा हो गई हैं और चेलों की बातों का गट्ठर बढ़ता चला जा रहा है।

अच्छा और सुनिये। यदि आप का कोई धनी मित्र है, तो उसके भी अति निकट न जाइये। धनी सदा यह समझता है, कि लोग उसके पास स्वार्थ के लिये आते हैं। इस कारण वह भले आदमियों का मूल्य नहीं समझ सकता। यदि वह धनी, बुद्धिमान हुआ और आप उसके बुलाने पर उसके पास रहने लगे, तो हम-आप को चेतावनी देंगे, कि उसके नौकर व और कारिन्दे षड्यन्त्र कर आपको वहाँ से निकलवा देंगे। धनी का प्राइवेट सेक्रेटरी हरगिज हरगिज भी आपके प्रभाव को सहन नहीं कर सकेगा इस लिये वह झूठी-झूठी बातें फैलाकर जरूर आप को भगा देगा। धनी के आस पास के लोग यह नहीं चाहते कि कोई दूसरा उनके मालिक पर ज्यादा प्रभाव डाले। उनके स्वार्थ को इसमें खतरा पहुँच जाता है अतएव जहां तक हो सके धनी मित्रों से थोड़ा काम लायक ही सम्पर्क रखिये। इसी में आप का कल्याण है।

एक बात और। पुष्प उद्यान में लगा हुआ ही शोभा देता है। उसे तोड़िये मत और न निकट जाकर उसे सूँघिये ही। फूल टूटते ही निकम्मा हो जाता है, और यदि आप उसे नाक के निकट लाकर सूँघेंगे, तो कोई न-कोई कीड़ा आपकी नाक में चला जायगा। इसी कारण हमारा निवेदन है कि उद्यान में जाकर प्रकृति की महिमा देखिये, पुष्पों का सौन्दर्य निहारिये और उनके बनाने वाले का चिन्तन कीजिये। पुष्प भोगने की चीज नहीं, देखने की चीज है। जो संसार के पुष्पों को तोड़ कर उनका रस चूसना चाहते हैं, वे मनुष्य का कितनी हानि करते हैं, इसका अन्दाजा नहीं किया जा सकता। हम यदि निर्लेप होकर वस्तुओं का उपयोग करना सीख जायँ तो हमारे सारे क्लेश दूर हो सकते हैं।

(५ वें पृष्ठ का शेषांश)

से रक्षा करनी थी। यदि ऐसा न किया जाता, तो अन्य सरकारों का ऐसा करने का हिम्मत बढ़ जाती और सम्भवतः इंगलैण्ड के निवासियों को और भी भीषण राष्ट्रीय अपमान सहने पड़ते। उन्होंने इसका इलाज करके भविष्य के अनेक मामलों को ते कर दिया। पर, भारत सरकार इस बात को न कर के यही आशंका को जगह दे रही है। इसके कहने का यह तात्पर्य भी नहीं लिया जा सकता कि व अन्य देशों में रहने के कारण वहाँ के हो गये। यदि ऐसा भी होता है, तो उसका सरकार उसकी, संसार के किसी भी भाग में रक्षा करती है। यदि ऐसा न हो, तो अनेक विदेशीय मनुष्यों का अहित हुआ करे और उनका जानो माल खतरे से खाली न रहे क्योंकि प्रत्येक देश में कुछ न-कुछ किसी-न किसी रूप में लड़ाई-झगड़े होते ही रहते हैं। भारतीय राजनीति से परिचित पाठक जानते हैं कि भारत में बसे हुए अंग्रेजों को बड़ा डर है कि कहीं स्वतन्त्र भारत में उनके अधिकार वगैरह छिन न जायँ और इसी कारण वे अपनी रक्षा के लिये संरक्षण माँगते हैं। जर्मनी में क्रान्ति हुई, तो अंग्रेज साफ बच आये, वरन् जर्मन-सरकार का कर्तव्य था कि वह उनके हितों की तथा उनकी रक्षा करती। जब विदेशी सरकार भी इतना खयाल करती है, तो स्वदेशीय सरकार की उदासीनता बड़ी लज्जाजनक है और यह निश्चित है कि विदेशी सरकार को स्वदेशी सरकार की इस नीति की खबर होते ही वह भी बेफिक्र हो जायगी। इस प्रकार के ढंग से दक्षिण अफ्रीका में बसे हुए लाखों भारतीयों को सरकार ने खतरे में ढकेल दिया है। भारत-सरकार का डर यूनियन सरकार के दिमाग से निकला और भारतीयों पर आपत्ति का पहाड़ टूटा। तिस पर यूनियन सरकार तो भारतीयों को निकालने पर तुली हुई है। भारत सरकार के डर से अभी तक वह अपने मन की सारी बातें पूर्ण नहीं कर पाई है; पर उसने थोड़ी-सी तो कर ही ली है और उसका कारण भारत-सरकार की उदासीनता ही है। भारत सरकार ने स्वामीजी को दक्षिण अफ्रीका की सरकार के ऊपर छोड़ दिया और दक्षिण अफ्रीका की सरकार के आन्तरिक विभाग के मंत्री डा० मेलन ने कुछ समय पहले यूनियन पार्लमेन्ट में भारतीयों को 'विदेशी' बतलाया था, इस परिस्थिति में भारतीय कहीं के नहीं रहते, उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है। अतएव, भारतीयों का और उनके लाखों प्रवासी भाइयों का इस वक्तव्य से घबराना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। हमारे खयाल से बाजपेयीजी का यह मतलब नहीं होगा वरन् वे जल्दी में ही ऐसा कह गये होंगे। स्वामीजी तो बिहार प्रान्त में रजिस्टर्ड वोटर भी हैं और उनकी सम्पत्ति भी यहीं है। स्वामीजी ने हमारे पास अपने उन पत्रों की नकल भेजी है, जो उन्होंने सर फजलहुसेन, बाजपेयी, कुँवर सर महाराजसिंह आदि महानुभावों को इसी बात को समझाते हुए भेजे हैं। हम उन पत्रों की नकल कर लेख का कलेवर बढ़ाना नहीं चाहते, पर हम महानुभावों का ध्यान इस बहुत आवश्यक प्रश्न की ओर खिंचाते हैं कि वे शीघ्र ही इन तीस लाख भारतीयों से सम्बन्धित मामले को स्पष्ट कर दें, ताकि स्थिति वहीं पर थम जाय। अन्यथा इसकी हमें भारी आशंका है।

हृदय की लहर

लेखक—श्रीयुत विश्वमोहनकुमारसिंह, एम. ए., बी-एल.

(गतांक से आगे)

रामकृष्ण—मालूम तो ऐसा ही होता है।

स्नेहलता—लेकिन बात झूठी भी हो सकती है।

रामकृष्ण—हो सकती है, लेकिन वह स्त्री इसके यहाँ क्यों आई ?

स्नेहलता—हो सकता है वह स्त्री भी खूनी न हो। पहले ही आप विचार कर देने लगे। क्या मालूम उस स्त्री के साथ उसका सम्बन्ध था, न था, फिर सम्बन्ध हो से कोई किसी के पाप-पुण्य का भागी नहीं हो सकता।

बैरिस्टर साहब ने मुस्करा दिया और वे बोले—तुम तो स्वयं ही बहस करने लगीं। तुम ही पोर्शिया (Porhia) क्यों नहीं बन जातीं।

स्नेहलता के होठों पर भी एक मधुर हास्य की रेखा खिंच आई। वह बोली—यदि मुझे पोर्शिया ही बनना होता, तो आप से कहनेही क्यों आती। हमें भी बी० एल० या एम० एल० की डिग्री होती, तो आप ही की तरह खुशामद नहीं कराती।

रामकृष्ण—तुम लोग तो बिना डिग्री ही के खुशामद कराती हो ।

स्नेहलता—छोड़िये, हँसी दिल्लगी। आप को जाना होगा।

उसी समय उनका छोटा लड़का वहाँ कूदता हुआ आया और माँ के कन्धे पर हाथ रख बोला—अनोखे दा के लिए न माँ ? बाबूजी को जाना होगा। अभी अखिलेश दा कहते थे कि अनोखे दा कष्ट में हैं।

रामकृष्ण बाबू का हृदय गद्‌गद् हो गया, पर वह फिर मुस्करा कर बोले—देखो, स्नेह, मैं तो बिना रुपये के कहीं नहीं जाता।

स्नेहलता—मैं रूपये दूँगी, नहीं तो गहने उतार कर दूँगी।

उसी समय उनकी बच्ची भी परदा हटा कर झाँकती हुई भीतर आई और बोली—मैं भी अपना नेकलेस उतार कर दे दूँगी।

स्नेहलता उसकी पीठ ठोकती हुई बोली—वाह बेटी वाह, ऐसा ही चाहिए।

रामकृष्ण बाबू ने दोनो बच्चों को उठाकर चूम लिया।

इन्साफ

लगभग तीन-चार महीने के बाद की बात है। आज सेसन्स जज के कोर्ट में बड़ी भीड़ लगी है। लोग अपने-अपने सुभीते का स्थान खोज रहे हैं, ताकि मुकदमे को अच्छी तरह सुन सकें। आज मालती का मुकदमा होने वाला है। सभी लोग उत्सुकता से जज के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मालती भी बाहर सिपाहियों के बीच बैठी है, हाथों में हथकड़ी पड़ी है। वह विषाद की मूर्ति हो रही है। लोग उसे चारों ओर से घेरे हुए हैं। कोई सहानुभूति तो कोई घृणा की दृष्टि से उसे देख रहा है, पर वह किसी को नहीं देख रही है। वह सिर नीचा किये भविष्य को देख रही होगी। वह वास्तव में क्या सोच रही थी, इसका अनुमान करना तनिक कठिन है। अनोखे भी कुछ दूर पर दिवाल से लगा बाहर की ओर मैदान को निहार रहा था। उसने मालती को देखा था; पर आँखें चार न हुई थीं, हो भी नहीं सकती थीं। यदि इस समय कोई अनोखे को देखता, तो मालूम होता कि वह लज्जा की सजीव पुतली हो रहा है; पर मालती पत्थर हो रही थी। लोग एक-दूसरे से काना-फूसी कर रहे थे—

एक कहता—देखो न, देखने में तो इतनी कोमल, लेकिन खूनी। ओह, इससे खून कैसे किया गया।

दूसरा—अरे भाई, दिल वैसी चीज ही है। यह आदमी को किस वक्त क्या बना दे, कौन कह सकता है ?

तीसरा—क्या दिल की बात कहते हो, भाई। पानी से भी आज तक किसी का हाथ जला है? यह खून की प्यासी ही होगी। इसका मुख देखने से डर मालूम होता है।

चौथा—वाह, तुम लोग तो इस तरह बातें करते हो जैसे इसी ने खून किया हो।

तीसरा—तो क्या इसमें भी सन्देह है ? चेहरे से तो यह साफ खूनी मालूम होती है। फिर देखो अब तो सब मालूम ही हो जायगा।

चौथा—कोर्ट में प्रमाणित बातें सदा सची ही नहीं होतीं।

तीसरा—(मुस्करा कर)—तो, इसके बड़े हिमायती मालूम होते हो। क्या बात है भाई ? क्या कुछ .. ।

चौथा—तुम्हें दिल्लगी करने की भी तमीज नहीं; नहीं जानते किस वक्त क्या करना चाहिए।

दूसरा—रहने भी दो ? आपस में क्यों लड़ने लगे, जो इसके भाग में होगा, होगा।

इसी समय जज ने इजलास में प्रवेश किया। सब लोग उठ खड़े हुए और उनके बैठने के बाद वकील लोग भी अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये। दर्शकगण पीछे खड़े रहे। कुछ इधर-उधर थोड़ा काम करने के बाद, जज ने पेशकार से मालती के मुकदमे की मिसिल माँगा, और मुद्दालहों को हाजिर करने की आज्ञा दी। सब लोग दम बाँध कर कार्रवाई देखने लगे।

इसमें सरकार ही मुद्दई थी, अतएव सरकार की ओर से गवाह पेश किये जाने लगे। पहला गवाह पहरे वाला सिपाही था। उसने अपने बयान में कहा—मैं गस्त करने के बाद भोर में थाने लौटा आ रहा था। रामपाल दास के मकान के थोड़े ही पश्चिम मैंने एक आदमी को सड़क पर पड़ा देखा। गौर से देखने पर मालूम हुआ, उसके कपड़े खून से लथ-पथ हो रहे हैं। उसके बदन को हिलाया, झुक कर यह जानने की कोशिश की कि साँस चल रहा है या नहीं, पर वह बिल्कुल मरा मालूम हुआ। मैंने जल्दी से जाकर रामलाल और गजानन को उठाया और लाश को उनकी निगरानी में छोड़ थाने मे रपट की। जिरह में उसने कहा—भोर हो रहा था, ठीक कै बजा था कह नहीं सकता; पर कुछ कुछ धुँधला था जरूर। मैं पहले लाश को नही पहचान सका। साफ होने पर जब मैंने देखा, पहचान लिया। मैं हीराचन्द को बहुत दिन से जानता हूँ। उनके चाल चलन के बारे में मैंने कोई शिकायत नहीं सुनी। जब मैं दारोगा के साथ वकूआ के जगह पर पहुँचा, तो लाश ज्यों-की त्यों, जहाँ की तहाँ पड़ी थी। रामनाथ और गजानन वहीं निगरानी कर रहे थे। उस वक्त भीड़ इकट्ठी हो गई थी। रामपाल को मैं जानता हूँ, मालती को भी जानता हूँ। उन लोगों से मुझे कोई लगाव नहीं, वे माली हैं, हम ग्वाला। मैं नहीं जानता, मालती की शादी कब और कहाँ हुई।

रामलाल और गजानन ने भी उस सिपाही की बातों का समर्थन किया।

दारोगाजी ने अपने बयान में कहा—फर्स्ट इनफॉरमेशन मिलते ही मैं चार सिपाहियों के साथ तहकीकात के लिये पहुँचा। सबसे पहले मैंने लाश की जाँच शुरू की। सिवा छाती से छूरा पार होने के कहीं चोट न थी, उसकी गञ्जी और कुरता खून से तर थे। प्रायः खून सब सूख चला था। उसके पास पैने लोहे की या मारने की चीज नहीं पाई। उसकी गञ्जी के पाकेट से दस-दस रुपये के दस नोट निकले, जिनके नम्बर इस प्रकार हैं। सिर पर खादी टोपी पड़ी थी उसके कुरते के पाकेट से एक चिट्ठी निकली, जो कि कोर्ट में एक्जीबिट है। पेश-कार ने पत्र पढ़कर जूरर लोगो को सुना दिया।

पत्र इस प्रकार था—

हीराचन्द बाबू।

मैं आपसे कई बार कह चुकी हूँ और फिर भी कहती हूँ, आप मुझे व्यर्थ तंग न करें, मेरा दिल बिक चुका है, इसे आप करोड़ो रुपये से भी नहीं खरीद सकते। यदि आप मुझे रुपये पर फिसलने वाली समझें, तो यह आप की भारी भूल है। हाँ, इसे आप ढोंग कहेंगे, क्योंकि मैं पहले फिसल चुकी हूँ, अगर कभी गिरूँगी तो मृत्यु के मुँह में, किसी पुरुष की गोद में नहीं।

आप पूछते हैं, मैंने उस रात्रि को आप से प्रेम-व्यवहार क्यों किया ? मुझे स्वयं शोक है; पर आपको याद होगा कि मैं आपसे शीघ्रही विमुख हो गई। किसी घटना विशेष के कारण मैं एक क्षण के लिये उत्तेजित हो गई थी, पर अन्तःकरण ने मुझे धक्के मारकर कहा—'नहीं।' आप को बलात् विदा दे मैं फूट-फूटकर रोई थी। यदि मैंने आप को अनजान ही उत्साहित कर दिया था, तो उसके लिये मैं क्षमा माँगती हूँ।

आप मुझसे दिल की बातों को कहने के लिये कुछ समय माँगते हैं; पर मैं लाचार हूँ। दिल की बातों को सुनते-सुनते मैं अन्य पुरुषों से बात भी करना नहीं चाहती। कृपाकर अब भी तो मुझे चैन से रहने दीजिए। दिल की बातों में भुलाकर, ईश्वर के वास्ते, मुझे न मारिये।

इसलिये मैं अन्तिम बार आप से कहती हूँ, आप मुझे तंग न करें।

यदि आप न मानेंगे तो मैं नहीं जानती, मैं क्या कर डालूँगी, या मेरा प्यारा क्या कर डालेगा। आप मुझे धमकाते हैं और कहते हैं कि आपने अनोखे के पास मेरे बारे में लिख दिया है, वे मुझे पूछेंगे भी नहीं, पर यह आपकी नीचता है, इससे अपना खैर न जानिये। आशा है मुझे और लिखकर आप अपना समय व्यर्थ न गवायेंगे। कम-से-कम मेरा यह अन्तिम पत्र समझिए।

१० ५-२३ ई०

आपकी—

मालती।

जज—चिट्ठी में तारीख कब को है ?

पेशकार—१०-५-२३ ई०

सरकारी वकील—घटना के ठीक एक रोज पहले।

यह पत्र सुनकर सभी उपस्थित सज्जन दंग हो गये। दारोगा साहब कहने लगे—इस पत्र के पढ़ने पर मेरा ध्यान मालती की ओर गया। उसके माँ-बाप से मालूम हुआ, मालती उसी रात से गायब है। मालती के दरवाजे के बाहर कुछ खून के छींटें मिले, जो जाँच के लिये भेज दिये गये। एक रोज के बाद मालती के कमरे की तलाशी हुई। उसके कमरे में एक छूरा निकला। यह बिल्कुल साफ सुथरा एक बक्स के कोने में पड़ा था। एक पत्र और बरामद किया, जो अनोखे बाबू के नाम लिखा गया था।

फिर पेशकार ने पत्र पढ़ सुनाया।

११-५-२३

८ बजे भोर।

मेरे हृदयेश्वर,

तबीयत नहीं चाहती कि इस नाम से आपको पुकारूँ, पर हृदय कर ही बैठता है, क्या करूँ। मुझे क्या मालूम आप इतने बड़े चोर निकलोगे। हा, इतने बेदर्द भी। क्या आप मेरे पास पत्रोत्तर देने मे भी नीचता समझते हैं ? मैं दो-तीन पत्र लिख चुकी, पर आपने मुझे याद तक नहीं की। मैं जरूर नीच हूँ। ऊँचा देख रही हूँ। मेरे प्यारे, मुझे जो इस समय व्यथा है, वह कह भी नही सकती। जाने दीजिए। केवल एक बार दर्शन की लालसा थी। मैं स्वय आऊँगी, आज, कल्ह, परसों.। कुछ ठीक नही। शायद लोगो ने मेरे विरुद्ध आपके पास चिट्ठी लिख दी है। इसलिये एक बार दर्शन करूँगी अवश्य, उसके बाद आप मेरे विषय में कभी न सुनेगे। लिख नहीं सकती, हृदय बैठता जा रहा है ....।

पत्र अपूर्ण था; नीचे पत्र लेखक का नाम भी न था।

दारोगा फिर बोले—उसके बाद मालती के नाम वारन्ट निकला १७—५—२३ को वह इसी शहर में गिरफ़ार हुई।' पूछने पर उसने कहा, 'वह अनोखे बाबू के यहाँ से आ रही है। वहीं उसने अनोखे बाबू से अखबार द्वारा अपने घर के पास हीराचन्द के खून के बारे मे सुना था। अनोखे बाबू से मिल कर वह वापस आ रही थी।

आधे घण्टे तक उनका जिरह होता रहा। उन्होंने कहा—खञ्जर बिल्कुल साफ था, उसमें खून का कहीं निशान भी न था। उसके कमरे में खून का चिन्ह न था। अनोखे के नाम का पत्र बिना टिकट के लिफाफे में पड़ा था। लिफाफा खुला था ?

डॉक्टर ने अपने इजहार में कहा—घाव किसी तेज नुकीले चीज का था। किसी मजबूत हाथ से घाव किया गया था, क्योंकि अस्त्र काटता हुआ साफ रीढ़ की हड्डी से दो इंच पर रह गया था। अस्त्र निकालने के समय अगल-बगल मे कुछ कट-सा गया है। हो सकता है, जो खञ्जर अदालत में है उससे हो घाव किया गया हो, क्योंकि घाव का नाप और खञ्जर की चौड़ाई का नाप बहुत-कुछ मिलता जुलता है। जिरह में उसने कहा कि औरतें स्वभावत मर्दों से कमजोर होती हैं। मृत्यु, खून अधिक निकलने से हुई। समय पर सहायता मिलने से शायद वह बच जाता।

पटने की पुलीस ने कहा—अनोखे के घर की तलाशी ली गई। मालती के दो पत्र मिले, जिस में मालती ने अपना प्रेम और दुख दिखलाया था। तीसरा एक बेनाम का पत्र मिला, जो कि अदालत में है। पेशकार ने पत्र पढ़ सुनाया—

अनोखे बाबू—

आप सम्भवतः मालती नाम की बनारस की रहने वाली को जानते हैं। यह आप से बहुत प्रेम दिखाती है और आप भी इस को प्रोत्साहित करते हैं, लेकिन आप को मालूम नहीं, यह प्रेम केवल आप को फँसाने का उपाय है। इसका आचरण बिल्कुल भ्रष्ट है और इसे यहाँ के कई लोग रखे हुए हैं। यदि आपने इससे कोई सम्बन्ध रखा, तो अपने जीवन को भय में ही समझें। आगे आप जैसा उचित समझें करें। चेतावनी दे देना उचित समझा।

आपका

'कोई शुभ चिन्तक।'

उसके अनन्तर सरकार की ओर से मालती के आचरण पर प्रकाश डालने के लिये कई गवाह पेश किये गए। हीराचन्द की पहचान के लिये और घटनास्थल के कई पुरुषो की गवाही हुई। अर्थात् मुद्दई ने मालती पर मुकदमा साबित करने के लिये कोई कोर-कसर न रखी।

इसके बाद उस दिन के लिये मुकदमा स्थगित रहा। दूसरे दिन निश्चित समय से पूर्वही लोगों की भीड़ इकट्ठी होने लगी। जूरर लोगों ने भी अपना-अपना स्थान ग्रहण किया और ठीक ग्यारह बजे जज ने कार्रवाई प्रारम्भ कर दी।

मालती कटघरे में लाई गई। सभी लोग सन्न होकर देख रहे थे, सुन रहे थे। मालती की आँखों में आँसू न थे वह दृढ़ता की सजीव प्रतिमा हो रही थी। उसका गोर मुखड़ा प्रभाहीन हो रहा था। उसने अपने लिखे हुए बयान में कहा—मैं विवाहित हूँ; पर इस विवाह में हृदय का लेशमात्र भी योग न था। मैं जो कुछ कहूँगी, सच कहूँगी, क्योंकि सासारिक वस्तुओ का मेरे लिये मोह न रहा। कुछ दिनों के बाद मैं पतिता हो गई, पर जिस दिन से मैंने अनोखे बाबू का देखा, मेरे हृदय में प्यार की सच्ची धार निकल आई। वे मुझे प्यार नही करते थे, बल्कि वे जितना ही मुझसे विमुख होते गए, मैं उतना ही अधिक प्यार करती गई। ऐसी अवस्था में मैं दूसरों के प्यार को सह नहीं सकती थी। हीराचन्द को मैं जानती हूँ, पर उनके अनुनयों को मैंने साफ इन्कार कर दिया। मैं उनका खूनी नहीं हूँ। मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ, और यह भी नहीं बता सकती कि किसने खून किया और खून का मुख्य कारण क्या है। भाग्यवश या अभाग्यवश, घटना के पहले सध्या हा को मैं विह्वल हो अनोखे बाबू का अन्तिम दर्शन करने चली गई, क्योकि अब उनका स्नेह पाने की आशा न रही। वहाँ ही समाचार-पत्र द्वारा मालूम हुआ, हीराचन्द का खून हो गया है। मेरा हृदय अब शात था। इसलिये मैं—अपने माँ-बाप को शांति देने, जो मेरे भाग जाने के कारण व्याकुल थे—लौट आई। रास्ते में मै गिरफ्तार कर ली गई और और खून का दोष मेरे सिर लगा। हीराचन्द से बेनामी पत्र के कारण मेरा मनमुटाव अवश्य था, पर खून का मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकती थी। जो खञ्जर मेरे कमरे में मिला है, वह हीराचन्द हो का है। एक दिन वह मेरे कमरे में आया था और मुझसे रूखा-सूखा जवाब पाने पर आत्महत्या करने पर उतारू हुआ था, पर मैंने उसे ऐसा नहीं करने दिया। पीछे भूल से वह छूरा मेरे कमरे ही में छोड़ कर चला गया। अनोखे के नाम जो अपूर्ण चिट्ठी मिली है, वह मेरी ही लिखी हुई है। और लिखते-लिखते ही मैंने वहाँ आने का सकल्प कर लिया, अतएव चिट्ठी अधूरी ही रह गई। जो हो, दुनिया की मुझे अब कोई परवाह नहीं, जीवन से ऊब ही नहीं गई हूँ, उस से घृणा भी हो गई है। अतएव यदि आप मेरे साथ न्याय करना चाहते हैं, तो मुझे मौत की सजा दें। खून के कारण नहीं, क्योंकि मैं फिर भी कहूँगी, मैं निर्दोष हूँ, बल्कि एक दुखनी के उद्धार के लिये आप इसे अवश्य दें, इस से बड़ा न्याय मेरे लिये संसार में कुछ हो ही नहीं सकता।

मालती ने मुख फेर कर चुपके से आँसू पोंछ लिया। जिरह में उसने कहा कि हीराचन्द उसके यहाँ आता जाता था। वहाँ से वह सबेरे की ट्रेन पकड़ कर भी शाम को पटने मे अनोखे से मिल सकती थी। हीरा की बेनामी चिट्ठी लिखने के वजह से मेरा दिल उससे अवश्य चिढ़ गया था, लेकिन उस समय मैंने कुछ भी नहीं सोचा था कि किस प्रकार का बदला लूँगी। बदला लेने का भी ख्याल कुछ निश्चित नहीं था, हो भी सकता था, नहीं भी हो सकता था।

(क्रमशः)

डायरी

लेखक—श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंहजी

'डायरी' अङ्गरेज़ी भाषा का शब्द है। यह लैटिन 'डायरियम' शब्द से निकला है। लैटिन में डाइस शब्द के अर्थ दिवस के हैं। डायरी शब्द अङ्गरेजी भाषा में संज्ञा है, डायरियल शब्द विशेषण है। डायरी लिखने वाले को अङ्गरेजी में डायरिस्ट कहते हैं। अङ्गरेजी भाषा में डायरी शब्द के अर्थ स्मरण-लेख के हैं, जिसमें प्रति दिवस की महत्वपूर्ण घटनाओं या कार्यों का उल्लेख कि।। जाय, जो लेखक के अनुभव में आई हों, या जो लेखक से कही गई हों।

'डायरी' उन भाग्यशाली शब्दों में है, जो विदेशी होने पर भी स्वदेशी की तरह व्यवहार किये जाते हैं। प्रतिशत् शायद दो ही चार आदमो हों, जो इसके अर्थ न जानते हों, हाँ, 'स्मरण-लेख' शब्द के अर्थ जानने वालों की सख्या अधिक नहीं निकलेगी। जहाँ साहित्य में किसी शब्द ने स्थान प्राप्त किया, वहाँ प्राय' इस पर ध्यान नहीं दिया जाता कि अमुक शब्द का जन्म स्थान कहाँ था, किन-किन देशो में उसने भ्रमण किया है, क्या-क्या उसके रूप और रग में परिवर्तन हुआ है और अब कौनसा उसका अपनाया हुआ देश है। इस ओर खोज करने वालों को लोग प्राय पुस्तक के कीड़ों की उपाधि उदारता से दे देते हैं। यह अनुमान करना कठिन नहीं है कि जब से लेखन कला का आविष्कार हुआ होगा, तब से स्मरण रखने योग्य बातों का उल्लेख लोग करते रहे होंगे—चाहे वे उसे डायरियम कहते हों चाहे डायरी, चाहे स्मरण-लेख चाहे रोजनामचा।

यदि उल्लेखनीय घटना का उल्लेख उसी दिन नहीं कर लिया गया है, तो भाषा हृदय के पुराने भावों को पूर्ण रूप स प्रकट नहीं कर पायेगा। ओज का अभाव होगा और शब्द हल्के और फीके होंगे। पहले प्राय डायरी मे उन्हीं घटनाओं का उल्लेख होता था, जिनका सम्बन्ध दूसरों से हो। डायरी की उपयोगिता व्यक्तिगत भावों पर बहुत कुछ निर्भर है। यदि डायरी में इन भावोंका अभाव है, तो उसका कोई महत्त्व नहीं है।

१७ वीं शताब्दी से इङ्गलैण्ड में डायरी लिखने की प्रथा प्रचलित हुई थी, परन्तु लिखने वालों का उद्देश्य उन्हे प्रकाशित करने का नहीं होता था। सर विलियम डगडेल (१६०५-१६८६) प्रति दिवस डायरी लिखते थे, पर इस अभिप्राय से नहीं कि कभी वह प्रकाशित होगी। क्लेरैन्डन, रिचर्ड बक्सटर, आ० लुसी हचिसन अपने समय के प्रसिद्ध आत्म-चरित-लेखक थे। इनकी पुस्तकों को देख कर यह अनुमान करना कठिन नहीं है कि इन्हाने अवश्य डायरी रखी होगी, यद्यपि उसका पता कही भी नही लगता है। डाइट लीक (१६०५-१६७५) डायरी लिखने में प्रसिद्ध थे। उनकी प्रथम पुस्तक १६८२ में प्रकाशित हुई थी, जो बहुत अशुद्ध थी। वह फिर १७३२ मे प्रकाशित हुई। जार्ज फाक्सर (१६२४-१६९०) भी डायरी के प्रसिद्ध लेखक थे। १६९४ में उनकी पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। जौन इवीलियन (१६२०-१७०६) की बहुत मशहूर डायरी १८१८ में प्रकाशित हुई थी। इसमें ७० वर्षों का वृत्तान्त है। इसके देखने से मालूम होता है कि बहुत-सी घटनाओ का उल्लेख बहुत दिनों के बाद किया गया होगा, बहुत कुछ उल्लेख निरुत्साहित-से हैं, तथापि मनोरजक हैं। ससार की डायरियो मे इस डायरी का सबसे ऊँचा स्थान होता, यदि सैमुअल पेप्स (१६३३-१७०३) की डायरी ने इसके भविष्य का मलिन न कर दिया होता। पेप्स की डायरी १६६० से प्रारम्भ हुई और १६६९ में समाप्त हुई। इसकी सबसे बड़ी प्रशंसा यह की जाती है कि इसके पढ़ने से लेखक के चरित्र का चित्र आँखों के सामने खिच आता है। इस डायरी में एक भी लेख कृत्रिम नहीं है, कोई भी बात छिपाई नहीं गई है और किसी भी बात में कोई कपट नहीं है। पेप्स ने कभी अनुमान भी न किया होगा कि यह कभी प्रकाशित होगी और इसी की बदौलत उसे ससार में ख्याति प्राप्त होगी। इस डायरी के महत्व का पता १८१९ तक न लगा, जब तक जॉन स्मिथ ने इसका स्पष्टीकरण नहीं आरम्भ किया। वह संक्षिप्त लेखन-कला की नमूना थी—इसको विस्तृत करने में बड़ा परिश्रम करना पड़ा था। इसमें मामूली घटनाओं का उल्लेख है, जैसे 'मेरी स्त्री ने टर्की (एक तरह की चिड़िया) के कल के शेष भाग को आज पकाया और पकाने में उसकी अँगुलियाँ जल गई।' यह डायरी पहली दफे १८२५ में प्रकाशित हुई, फिर १८९३-१८९६ मे। साहित्यिक रुचि में भी ससार की और वस्तुओ को तरह परिवर्त्तन हुआ करता है। सेमुअल पेप्स का स्थान अब अङ्गरेजा भाषा के साहित्य मर्मज्ञों में है।

१८ वीं शताब्दी मे स्विफ्ट की डायरी की धूम हुई, जिस का समय १७१० से १७५३ तक था। इसको स्विफ्ट ने आयर्लैण्ड भेजवा दिया था और इसका नाम रखा 'जर्नल टू स्टोला।' स्टोला एक परम सुन्दरी महिला थी। इससे स्विफ्ट बहुत स्नेह करता था। इसी के लिये स्विफ्ट ने एक दफा कहा था कि उससे प्रेम करना मेरे लिये एक उदार शिक्षा थी। और बहुत से डायरी लिखने वाले हुए हैं, जिनकी डायरियाँ उनके मरने के बाद प्रकाशित हुई थीं, जो डायरी इस अभिप्राय से लिखी गई हो कि कभी प्रकाशित होगी उसका बहुत कुछ महत्त्व घट जाता है। लेखक निस्सकोच भाव से घटनाओ पर अपना मत नहीं प्रकट करता और न अपना चित्र ही ठीक चित्रित करता है। यह दोनों बातें तभी सभव हैं, जब उसका उद्देश्य प्रकाशन का न हो। ऐसीही डायरियों का प्रभाव पढ़ने वालों पर पड़ता है। यह भी सत्य है कि किसी का डायरी उसकी मृत्यु के पश्चात् तब तक न प्रकाशित करना चाहिये, जब तक उसके सबन्ध का वाद-विवाद न ठंडा पड़ जाय।

अङ्गरेजी साहित्य को परिपूर्ण करने में डायरियों ने बड़ी सहायता दी है। वह अब इतिहास का एक मुख्य अग है। किसी बड़े आदमी के जीवन और मृत्यु की तिथि ही जान लेने से क्या काम चलता है, जब तक यह न मालूम हो कि उसने अपने जीवन की कठिनाइयों पर कैसे विजय प्राप्त की थी, उसके समय का ससार कैसा था, कैसा जीवन था, क्या क्या प्रश्न थे, क्या-क्या समस्याएँ थीं, और उन पर उसकी क्या राय थी? हम अपने बड़े आदमियों के संबध में कुछ भी नहीं जानते हैं। क्या केवल इतना जानने से किसी देश के साहित्य की सेवा हो सकती है कि प्रात स्मरणीय महात्मा तुलसीदास राम-भक्त थे और उन्होंने रामायण लिखी थी? अन्य देशों में सभी लोग डायरी लिखते हैं। चाहे वह सम्राट् हो, चाहे निर्धन, चाहे वह प्रशंसित हो चाहे निन्द्य। थियेटर और सिनेमा की नटी और नर्तकी तक डायरी लिखतीहै। जब तक दूसरा की कठिनाइयों का ज्ञान किसी को नहीं होगा, तब तक उसे अपना कठिनाई से छुटकारा पाने का रास्ता देर मे मिलेगा। डायरी इतिहास लिखने मे, अपना चरित्र चित्रित करन म, दूसरों का जीवन-चरित्र लिखने मे बड़ी सहायता देती है।

डायरी लिखना भी एक कला है। बाज आदमी मामूली घटनाओ को विस्तार से लिखते हैं और बाज महत्त्वपूर्ण घटनाओं का इतना संक्षिप्त रूप से वर्णन करते हैं कि दोनों उल्लेख बेकार हो जाते हैं। डायरी लिखने में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। विचार स्वच्छन्द हो, भाषा सरल हो, भाव गम्भीर हो, कोई लिखने के योग्य बात छूट न जाय, किसी व्यर्थ बात का उल्लेख न हो जाय। मामूली बातों मे भी प्रायः महत्त्व होता है, उनपर भी दृष्टि रहे।

दिसम्बर का महीना आते ही लोगों को डायरी खरीदने की इच्छा जग उठती है और उसका खरीदना उन्हे एक अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। खरीदने के बाद इच्छा सन्तुष्ट हो जाती है और साल भर वह इधर-उधर पड़ी सड़ा करती है। सैकड़ो तरह की बाजार में डायरियाँ दिखलाई देती हैं। यह अब विज्ञापन का खूब काम देती हैं। हमारे देश में डायरियाँ बहुत हैं, लिखने वाले कम हैं।

('भारत' से)

संयुक्त हिन्दी-भाषी परिषद्, बम्बई के सभापति

श्री सम्पूर्णानन्दजी का अभिभाषण

(गतांक से आगे)

यह सब बातें संगठन से दूर हो सकती हैं। यदि प्रयत्न न किया गया, तो आपके बच्चे शुद्ध हिन्दी लिखना, पढ़ना और बोलना भी भूल जायँगे। दो-एक प्राइवेट स्कूलों से क्या होता है। आपके समाचार पत्र कितने निकलते हैं?

ऊपर मैंने संगठन का बार-बार ज़िक्र किया है। कुछ बातों के लिये पृथक् संगठन की आवश्यकता है; पर यह स्मरण रहे, कि आप का उद्देश्य यह नहीं है, कि संगठित होकर औरों से अपने को पृथक कर लें। भारतीय भारतीय में भेद की दीवार तोड़नी है, खड़ी नहीं करनी है। हिन्दी भाषी मजदूरों के हित दूसरे मजदूरों के हितों से भिन्न नहीं हैं। अतः इनको किसी पृथक् संगठन की आवश्यकता नहीं है। जो मजदूर संस्थाएँ हैं, उन्हीं में सम्मिलित होना है। इससे उनका बल बढ़ेगा और सबका कल्याण होगा। मुझे विश्वास है, कि यह श्रमिक संघ, कामगार यूनियन, आपके इस सहयोग का स्वागत करेंगे।

संगठन के लक्ष्य

संगठन कैसे होना चाहिये, इसका स्वरूप क्या होना चाहिये; इस सम्बन्ध में तो मुझे विशेष कहने की आवश्यकता न होनी चाहिये। ऐसे संगठन के दो प्रकार के लक्ष्य होते हैं; अव्यवहित उद्देश्य वह होता है, जिसे तत्काल, फौरन सबसे पहले सिद्ध करने की आवश्यकता होती है। सभी श्रमिक-संघों, लेबर यूनियन्स के यही उद्देश्य हैं। जो बेकार हैं उनको काम दिलाना, जो काम कर रहे हैं, उनकी मजदूरी बढ़ाना और काम के घंटे घटाना, रहने के साफ़, बड़े और काफी क्वार्टर का बनवाना, गर्भिणी और बच्चेवाली स्त्रियों के लिये प्रबन्ध करना, अस्पताल खुलवाना, रोग और बुढ़ौती के लिये बीमा, यही सामान्य रूप से पृथ्वी-भर के मजूर संघ चाहते हैं। स्थानीय संघों में मिलकर इन्हीं बातों के लिये जोर लगाइये, जैसे और देशों में न्यूनाधिक सफलता प्राप्त हुई है, वैसे आपको भी होगी। बड़ी मिहनत करनी होती है। पेट काटकर पैसा लगाना होता है, मुकदमें लड़ने होते हैं, अपने विश्वासी आदमियों को कौंसिलों में भेजना पड़ता है। कभी राजनीतिक संस्थाओं के पाँव चूमने होते हैं, कभी सर्कारी अहलकारों के द्वार खट खटकाने होते हैं, कल-कारखानों के अफसरों से तो रोज ही काम पड़ता है, पुलिस की लाठियों और गोलियों के लिये भी तैयार रहना पड़ता है, तब जाकर सफलता होती है, पर होती अवश्य है। आज इङ्गलिस्तान को ही लीजिये, मजदूरों की दशा पहले से लाख गुनी अच्छी है। उनमें जो बेकार हैं, वह भी आपके काम करने वालों से अच्छे हैं। संगठन से सब घबराते हैं। संगठित समुदाय की बात सब सुनते हैं।

साम्यवाद

यह तो अव्यवहित लक्ष्य हुआ, पर एक और लक्ष्य भी है। वह व्यवहित है, आँखों से ओझल है, आपमें से स्यात् बहुतों के ध्यान में भी नहीं आता; पर उसे भूलिये मत। आज आप उसे चाहे देख रहे या न देख रहे हों; पर वह इस देश में है। मैंने नगरों को देखा है और देहातों को देखा है और सर्वत्र इसे वायुमण्डल में मँडराते पाया है। वह है साम्यवाद। आप को संसार की विचार धारा से मिलकर राष्ट्र की आर्थिक और राजनीतिक गतियों को ऐसा मोड़ना होगा कि यहाँ साम्यवाद की योजना, ऐसी साम्यवाद की योजना जो हमारी संस्कृति और परिस्थिति के अनुकूल हो, स्थापित हो। सुधार करना ही है तो जड़ से सुधार कीजिये, जिसमें रोज रोज थिग्गड़ लगाना न पड़े। क्यों कोई गरीब हो, क्यों कोई अमीर? क्यों कोई काम के लिये मारा-मारा फिरे, कोई गद्दी पर बैठा बैठा खाय? क्यों किसी के बच्चे दवा दूध के बिना तड़प तड़पकर मर जायँ और किसी के कुत्ते मोटरों पर घूमें? अगर एक आदमी रुपया लगाता है, तो दूसरा आदमी अपना प्राणधन लगा देता है, फिर भी दोनों में इतना भेद क्यों? इन प्रश्नों का एक मात्र सच्चा उत्तर साम्यवाद देता है। जिस दिन सब कल कारखाने व्यक्तियों के हाथ से निकलकर राष्ट्र की सम्पत्ति बन जायँगे, जिस दिन सम्पत्ति बटोरने और बटोर कर अपने अयोग्य सन्तान को दे जाने का अधिकार दुनिया से उठ जायगा, उसी दिन सच्चा सुख, शान्ति होगी। ईश्वर ने मनुष्य को मनुष्य का गुलाम नहीं पैदा किया है। साम्यवाद फिर उसी ईश्वरीय विधान को स्थापित करना चाहता है। मैंने संक्षेप में जिक्र किया है, आप इस पर विस्तार से मनन कीजिये और उसे काम में लाने के उचित उपायों से कोशिश कीजिये। देश में, पृथ्वी में, इस समय उसकी एक लहर है। आप का उससे कल्याण होगा।

धनिकों से दो शब्द

अब मैं मिल-मालिकों तथा दूसरे सम्पत्तिवानों से दो शब्द कहना चाहता हूँ, यद्यपि मुझे यह पता नहीं है कि ऐसे कितने सज्जन यहाँ उपस्थित हैं। आप पर लक्ष्मी की कृपा है, मुझे और मेरे-जैसे विचारवालों को इसकी खुशी है। आप गृह अन्न-वस्त्र, सवारी, सैर, विदेशाटन आदि के सुख भोगते हैं, भोगिये, हम नहीं चाहते कि आप इन सुखों से वञ्चित किये जायँ, आप को या आपके बच्चों को किसी प्रकार का कष्ट हो। आप विश्वास मानें, वह कोई पागल साम्यवादी होगा, जो ऐसी बातें चाहता होगा। साम्यवाद गिरे हुओं को उठाना चाहता है, उठे हुओं को गिराना नहीं चाहता। परिस्थिति चाहे जो कुछ करा दे, पर साम्यवादियों का विश्वास है कि यदि थोड़ा सा परिग्रह त्याग किया जाय, आप लोग थोड़ा सा बुद्धि से काम लें और अपना वास्तविक स्वार्थ समझें, तो बिना दुःखद क्रान्ति के साम्यवाद का प्रचार हो सकता है और भोग की इतनी प्रचुर सामग्री उत्पन्न की जा सकती है और ठीक तरह बाँटी जा सकती है, कि सभी उसका उपभोग कर सकें। इसमें आपको क्या मजा आता होगा, कि अकेले आप सुखी और स्वस्थ हों और चारों ओर लोग दुःखी, दरिद्र और रोगी हों। सम्भव है पहले कुछ कम ही मिले; पर आपका स्वार्थ भी इसी में है कि साम्यवाद की स्थापना में सहायक बनें। समय से आप लड़ नहीं सकते। कल्याण इसी में है कि प्रवाह का साथ देकर उलट फेर के काल को जहाँ तक हो सके सुन्दर बनावें।

पर, यह तो दूर की बात हुई। अपने मजदूरों की प्रत्यक्ष दुर्दशा सुधारना आपका कर्तव्य है, जिसे आप टाल नहीं सकते। आप पढ़े-लिखे व्यक्ति हैं, दुनिया में क्या हो रहा है उसे जानते हैं। मैं जानता हूँ सरकार यथा सम्भव आपकी मित्र है और विदेशी पूँजीपति भी कुछ हदतक आपके साथी हैं; पर जेनीवा की बदौलत कुछ-न कुछ सुधार तो यहाँ भी करना ही पड़ेगा। यहाँ की असेम्बली और कौंसिलों में आपका लाख ज़ोर हो, ह्वाइट पेपर कितना ही निकम्मा हो, मजदूर आन्दोलन कितना ही दुर्बल हो; पर आपको दबना ही पड़ेगा। फिर समझदारी तो इसी में है कि अभी से इस रोग की औषधि करके इनको अपना कृतज्ञ मित्र बनाइये। साम्यवादी सिद्धान्त को न मानिये, उसका विरोध ही कीजिये; पर यदि आप अपने सच्चे स्वार्थ और हित को समझते हैं, तो आपका यह कर्तव्य हो जाता है, कि इस बात का पूरा प्रयत्न करें।। सर्कार पर दबाव डालें, कार्पोरेशन पर दबाव डालें, स्वयं अथक प्रयत्न करें, कि यह बेकारी दूर हो, इन लोगों को आपकी तरह नहीं; पर साधारण मनुष्य की तरह खाना, पहनना, नहाना, दिल बहलाव करना मयस्सर हो, इनके बच्चों को शिक्षा मिले, रोग में दवा मिले; इन्हें यह विश्वास हो, कि बुढ़ौती में भीख न माँगनी पड़ेगी। याद रखिये कि इन्हीं की बदौलत आप समृद्धि भोग रहे हैं। इनकी अंधेरी बस्तियों से ही बम्बई की नगरी खिल खिला रही है। यदि आप अपने कर्तव्य को भूल जायँगे, तो जबर्दस्ती उस दिन को बुलावेंगे, जो आपके लिये कदापि हितकर नहीं हो सकता। भारतीय सीधे, धार्मिक, कृतज्ञ और सन्तोषी होते हैं। इनको आप सुगमता से अपना ऋणी बना सकते हैं।

युवकों से अपील

अब मैं फिर सबको सम्बोधन कर रहा हूँ। आप लोगों में जो नवयुवक हैं, उन पर विशेष रूप से दायित्व है। जवानों में शारीरिक बल होता है, उत्साह होता है, काम करने की शक्ति होती है, दुनिया की ठोकरों से उनके दिल टूटे नहीं होते; इसीलिये उन पर खास जिम्मेदारी होती है। आप अपने ज्ञान को बढ़ाइये। अखबारों को पढ़ा कीजिये, किताबें देखा कीजिए, अच्छी सभाओं में जाया की-

लिये ; पर अपने ज्ञान को अपने ही पास मत छिपा रखिये ; पुस्तकालय खोलिये, वाचनालय खोलिये, लोगों को अखबार सुनाने में सहायता दीजिये, संगठन कीजिये, कराइये, कोऑपरेटिव सोसाइटियाँ खोलिये, जहाँ चीजें सस्ती मिल सकें। काम करने वाले के लिये हजार काम है और यह सदैव याद रखने की बात है कि लोकसेवा से सुन्दर, फलदायक, सुन्दर, धर्म आप में से अधिकांश को प्राप्त नहीं हो सकता। मैं जानता हूँ कि इस मार्ग में भी कठिनाइयाँ हैं, लोग आपको बुरा कहेंगे, स्वार्थी कहेंगे, बात न मानेंगे ; पर मैंने यह सब सहा है, इसलिये आपको बतला रहा हूँ कि इन दिक्कतों के होते हुए भी जनता की सेवा में बड़ा आनन्द है, सब नहीं करेंगे, पर जो इसमें लग जायँगे, जिनको इसका रस मिल जायगा, उनको इसका सुख भी मिलेगा।

प्रसिद्ध ग्रन्थकार बर्नर्ड शा ने अपने देश आयरलैण्ड के सम्बन्ध में एक बार कहा था कि परतंत्र देश में प्रत्येक प्रश्न राजनीतिक प्रश्न बन जाता है। यह बात भारत के लिये भी अक्षरशः लागू है। धर्म, सम्प्रदाय, अर्थ, शिक्षा, संस्कृति, भाषा, चाहे जो प्रश्न हो राजनीति के रंग में रँग जाती है, क्योंकि भारत पराधीन है, उसकी बागडोर विदेशियों के हाथ में है। और देशों में भी गरीब हैं, पर वहाँ राष्ट्रीय सरकारें हैं, हिम्मत नहीं है कि ऐसे प्रश्नों की उपेक्षा करें, इसीलिए, जैसा कि मैंने आपसे निवेदन किया था, इंग्लिस्तान के बेकार भी आपके बाकारों और दफ्तर के किरानी बाबुओं से अच्छे हैं। रूस का तो कहना ही क्या है, वहाँ तो श्रम करनेवालों का राज ही है। यदि आज इस देश में राष्ट्रीय सर्कार होती, तो आप सब लक्षाधीश न हो जाते, तो सड़कों पर सूखे भी न पड़े रहते, इन गन्दी महँगी बस्तियों में एक एक कमरे में बासों की संख्या में न ठुँसे पड़े रहते, और कहाँ तक गिनाऊँ, पशुओं की सी दशा में न देख पड़ते। अपने देश में आप आदमी होते। सर्कार या तो आपकी अवस्था सुधारने का प्रयत्न करती या उलट जाती। घबराइये मत वह दिन भी आवेगा। पूर्व दिशा में उषा की झलक देख पड़ने लगी है। देश ने जो त्याग, जो आत्मविश्वास, दिखलाया है और जो आगे दिख लावेगा, वह व्यर्थ नहीं हो सकता। हम आप दुनिया में एक अहिंसात्मक क्रान्ति का उदाहरण उपस्थित करके छोड़ेंगे। आप भी इस शुभ कार्य में यथाशक्ति योग देंगे, ऐसा मेरा विश्वास है और जब स्वराज्य होगा, तब आपके दुःखों का अन्त भी होगा। स्वराज्य-सर्कार आपकी होगी और आपके आदेशों के अनुसार चल-कर आपके सच्चे हितों का साधन करेगी।

अब मैं अपना भाषण समाप्त करता हूँ। जिन आवश्यक बातों का जिक्र करना चाहता था, कर चुका। सम्भव है—सम्भव क्या, निश्चित है, कि कई आवश्यक बातें छूट गयी होंगी ; क्योंकि मैं यहाँ से बहुत दूर रहता हूँ और आपके जीवन की सब कठिनाइयों से परिचित नहीं हूँ। फिर भी यह तो आप समझ ही गये होंगे, कि मैं आपको किस प्रकार के काम में लगाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ, कि आप आलस्य छोड़ें और अपने को मनुष्य समझें। दरिद्र, दुर्बल, अशिक्षित, होते हुए भी साहस से काम लें। संगठन करें। संगठन साहस की कुंजी है ; पर संगठन वैसा, जिससे आपका हित हो और देश का अहित न हो, जिससे आप राष्ट्रीय जीवन की स्वच्छन्द धारा से पृथक् न पड़ जायँ, अन्य भारतीयों से अलग न हो जायँ। मैं चाहता हूँ, कि आप ऐसा प्रयत्न करें कि देश में साम्यवाद की जड़ पर स्थिर उत्तम आर्थिक आयोजन स्थापित हो और देश स्वतन्त्र हो।

वन्देमातरम्

जीवन्मुक्त महात्मा श्री तैलंग स्वामी का तत्वोपदेश

लेखक—श्रीयुत अजितनाथ भट्टाचार्य, बी० ए०, एल-एल० बी०

(गतांक से आगे)

दम अर्थात् श्रवणादि के सिवाय विषयों से बाह्येन्द्रियों का दमन। तितिक्षा अर्थात् शीत, उष्ण का सहन। समाधान अर्थात् ईश्वर के विषय में श्रवणादि से मन की एकाग्रता। श्रद्धा अर्थात् गुरु-वाक्य और वेदान्त के वचन में विश्वास। उपरति अर्थात् मोक्ष की इच्छा।

मनुष्यत्व लाभ होने पर भी मुक्ति की इच्छा सहज में नहीं होती है। विषय-भोग में जब तक क्लेश नहीं होता है, तब तक जीव महा जितेन्द्रिय और जोगीन्द्र होने पर भी मुक्ति-लाभ नहीं कर सकता। वासनाओं का त्याग ही मुक्ति का प्रधान उपाय है। मुक्ति की इच्छा होते ही मुक्ति नहीं मिल जाती है। महापुरुषों के साथ सदा संग न करने से मुक्ति का पथ कौन दिखलायेगा। सतसंग-लाभ जीव का सौभाग्य है। इच्छा करने ही से साधु का दर्शन होता है। साधु प्राय. निर्जन स्थान में रहते हैं, कभी दिखाई नहीं पड़ते और दिखाई पड़ने पर भी सहज ही में पहचान नहीं पड़ते और पहचान लेने पर भी वे अपने पास नहीं रखते हैं और यदि पास रहने का अधिकार मिले, तो भी उनके निर्मल हृदय का भाव हम लोग नहीं समझ सकते। नदी पार, करने के लिये जिस प्रकार मल्लाह के पास से नाव लेने की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार संसार-सागर पार करने के लिये महापुरुष के सतसङ्ग से सब सुलभ हो जाता है। धार्मिक की आत्मा धर्म-बल से क्रमश उन्नत होकर शेष में मोक्ष प्राप्त होती है। यह उन्नति एक महीने अथवा एक साल में नहीं होती है। बहुत दिनों तक चेष्टा करने पर तब मोक्ष-प्राप्ति होती है। उसी प्रकार पापी की आत्मा भी क्रमश अधोगति को प्राप्त होती है। स्वर्ग और नरक-वास कुछ नहीं है, केवल आत्मा की उन्नति और अवनति-मात्र है। आत्मा की उन्नति और अवनति के साथ उसकी एक अवस्था से दूसरी अवस्था प्राप्त करने के लिये उसका नाना स्थान में, नाना प्रकार का जन्म होता है।

इस विशाल विस्तृत जगत् में कौन किस तरह से पुनर्जन्म-प्राप्त हुआ, इसका पता नहीं लगता है इसी कारण साधारण लोग पुनर्जन्म मे विश्वास नहीं करते। पुनर्जन्म और भविष्य काल को हम देख नहीं सकते। पुनर्जन्म प्राप्त हुए किसी मनुष्य ने सामने आकर यह नहीं कहा, कि केवल अनुमान और युक्ति के द्वारा साबित करके उसमें विश्वास करना होता है, नहीं तो धर्म-अधर्म, पाप पुण्य किसी मे भेद नहीं रह जाता है। लोग पाप करने से क्यों डरते हैं? केवल इसीलिये कि उनका भविष्य-काल में विश्वास है और भविष्यकाल में नरक भोगना पड़ेगा इसी डर से। इस जन्म में कोई विद्वान्, कोई मूर्ख, कोई गायक इत्यादि क्यों हैं, इसका कारण केवल यही है कि पूर्वजन्म में वे वैसे ही थे, इस जन्म में आत्मा वही है केवल देह-मात्र में भेद है, इसलिये उन सब विषयों में उनका सहज ही में अभ्यास हो जाता है, उन विषयों के सीखने में उतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता। यदि कर्मफल न होता, तो इतने प्रकार के अवस्था में भेद-भाव न होता। अच्छे बुरे कार्य ही के लिए जीव को नाना प्रकार की अवस्था मे पड़ना पड़ता है। अच्छे कार्य करने में आत्मा की उन्नति और बुरे कार्य करने में उसकी अवनति होती है।

आत्म बोध

आत्म बोध का अर्थ है—अपने को जान लेना। यदि हम अपने को जान सकें, तो ईश्वर को भी जान सकते हैं। जब तक हम अपने को नहीं जानेंगे, तब तक चेष्टा करने पर भी ईश्वर को नहीं जान सकते। हम क्या हैं, इसको जानने के लिये आत्मा, मन और बुद्धि, इन तीन पदार्थों के तत्व के जानने की आवश्यकता है। आत्मा शरीर का मालिक या कर्ता है, यह निश्चित है। जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी का कर्ता है और उसके प्रकाश से जीव-मात्र अपना कार्य करते हैं, पर सूर्य स्वयं कुछ नहीं करता है, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में आत्मा भी सूर्य की नाईं कर्ता और प्रकाश देने वाला है और उस प्रकाश से इन्द्रिय गण अपना कार्य करते हैं, पर आत्मा स्वयं कुछ नहीं करता है। अब देखना चाहिये कि आत्मा साकार है अथवा निराकार और इस देह के किस स्थान पर किस भाव से विराजमान है। जिसको आत्मा कहते हैं, वह अवश्य ही देश-व्यापी है, पर उसका कोई विशेष आकार नहीं है कि जिसके साथ उसकी तुलना की जा सके। तुम्हारी और हमारी आत्मा एक ही पदार्थ है। जिस प्रकार किसी कागज पर यदि नाना प्रकार के चित्र अंकित किये जायँ, पर उसका आधार केवल वह कागज ही होता है। उसी प्रकार संसार में सबकी आत्मा एक ही है। कुछ काल तक यदि एकाग्रचित्त से आत्मा को जानने की चेष्टा करो, तो यह अवश्य प्रतीत होगा कि आत्मा अग्नि-कण के सदृश हृदय में विराजमान है। यदि आत्मा है, तो परमात्मा अवश्य ही है और जो परमात्मा है, वही ईश्वर है। यह निश्चय जानों कि आत्मा रूप विशेष है, इसलिये चेष्टा करने से अवश्य ही दिखाई पड़ती है। बहुत से महापुरुषों ने उसे देखा है और देखते हैं, इसलिये आत्मा साकार है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आत्मा को जानने से मनुष्य अपने को जान सकता है और परमात्मा को जानने से भगवान या ईश्वर को जाना जाता है। आत्मा परमात्मा का अंश है, आत्मा को जानने से परमात्मा जाना जाता है।

मन और बुद्धि, ये साकार हैं अथवा निराकार यह बात जानने की बहुतों की इच्छा रहती है। मन विश्वव्यापी नहीं है, वह अवश्य ही किसी सीमाबद्ध स्थान में व्याप्त है, इसलिये मन अवश्य ही वस्तु विशेष है। सब लोग यह कहते हैं कि मेरा मन तुम्हारा मन और हरएक मनुष्य का कार्य भी पृथक है और मन का कार्य भी बिल्कुल पृथक् है, इस बात पर विचार करने ही से मालूम होता है, इसलिये मन साकार है।

यदि मन का स्थान व्यापकता, धर्म अस्वीकार किया जाय, तो मन को फिर कोई वस्तु नहीं कह सकते, तब मन को स्थान व्यापकता, धर्म से संयुक्त वस्तु का गुण मात्र कह सकते हैं। साधारणतः स्थूल इन्द्रियों की सहायता के सिवाय द्रव्य के आकार की उपलब्धि नहीं हो सकती और स्थूल इन्द्रियों के द्वारा जब उपलब्धि नहीं होती है, तब मन का आकार किस प्रकार का है सहज ही में नहीं समझ पड़ता। आकार का क्या अर्थ है? एक बार विचार कर देखो, कि तुम्हारा मन तुम्हारे देह से बिल्कुल भिन्न है, तिस पर भी यह धारणा तुम कभी नहीं कर सकते कि यह मन किसी स्थान में व्याप्त नहीं है, इसलिये मन अवश्य ही साकार है। मन का कार्य भी पृथक है, यह बात चेष्टा करने ही से सहज ही में मालूम हो जायगी।

बुद्धि जगत् व्यापी नहीं है, अवश्य ही सीमा बद्ध स्थान में व्याप्त है, इसलिये बुद्धि वस्तु विशेष है। सब की बुद्धि भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है, इसलिये यह कहा जाता है कि सब की बुद्धि बराबर नहीं होती है, और जिसकी बुद्धि कम है उसी को लोग मूर्ख कहते हैं। इसलिये बुद्धि की स्थान-व्यापकता शक्ति है; इसलिये बुद्धि साकार है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। भला-बुरा विचार करना बुद्धि का काम है, यह सहज ही में समझ पड़ता है। मन और बुद्धि के रहने का स्थान मस्तक है, इस को थोड़ी ही चेष्टा से मनुष्य जान सकता है। बुद्धि जीव-शरीर में दर्पण की नाईं है।

एक प्रणव मन्त्र से ही इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय-कार्य चल रहा है, इस प्रणव मन्त्र का देवता अग्नि है। हिन्दुओं ने समझा था कि इस अग्निगत शक्ति ही से यह जगत-चक्र घूम रहा है, पर यह अग्नि-गत शक्ति चैतन्य के सम्बन्ध से रहित है इस बात को वे कभी नहीं सोचते थे। हिन्दुओं के पास प्रणव मन्त्र का लक्ष्य है अग्निगत शक्ति चेतना युक्त ब्रह्म चैतन्य।

(क्रमशः)

खंडहर

लेखक—श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा

बहुत-से कमरे कोठरियों से भरे हुये मकान का वह खंडहर था।

छतें गिर पड़ी थीं। बुढ़ापे के शरीर की झुर्रियों से भी यौवन के सौन्दर्य का कुछ आभास मिल जाता है। दीवालें खड़ी थीं। अनेकों वर्षा के जल से उनके रोगन धुल गये थे, पर अब भी लोग यही कहते थे कि कभी वह बड़ा सुन्दर मकान नहीं, महल रहा होगा।

आस पास के बड़े-बड़े मकान की छतों से लोग उसमें कूड़ा फेंका करते थे। अमीरों का कूड़ा गरीबों का खजाना होता है। भिखारी इस खंडहर में, इन्हीं कूड़ों में से अपने काम लायक चीजें खोजने के लिये, चील की तरह मँडराया करते थे!

उस दिन भिखारी ने एक गठरी पड़ी देखी। उसने उसे तुरत ही उठा लिया। गठरी बँधी न थी। एक कपड़ा लपेटा सा था। किसी जीवित वस्तु के स्पर्श से गठरी के भीतर की जीवित-आत्मा सचेत हो गयी। गठरी बोल उठी—'केहाँव केहाँव!

भिखारी चौंक उठा। वह डर कर गठरी दूर फेंक देता कि भिखारिन आ गयी। भिखारी ने गठरी उसके हाथ में दे दिया और उस अबोध शिशु के वहाँ फेकने वाले की क्रूरता पर आँख मूँद कर विचार करने लगा' भिखारिन कुछ न बोली। उसने शिशु के सुनहरे गाल चूम लिये और उस निधि को अञ्चल में छिपाये अपने झोपड़े की ओर भाग गई।

• • •

खंडहर की दीवालें जर्जर हो गई थीं, पर किसी जमाने में वे नयी थीं और उनके गर्भ मे नयेपन का सौदा होता था। जवानी का मोल भाव होता था। रूप सोने चाँदी के तराजू पर तौला जाता था। प्रेम पैसे की टकसाल में ढलता था और रुपये की छाया में दुराचार सुख से सोया करता था। वहाँ सराय थी, जिसकी मालकिन एक बुढ़ापे की मारी बगालिन थी। जब वह सुन्दर थी, उसने अपना रूप बेचा था, अब वह दूसरों की ओर से व्यापार करती थी।

लोग कहते हैं, इन दीवालों के भीतर कितने ही खून हो गये। जो इस पिंजड़े में फँसा, वह या तो सड़क का भिखारी हो जाता या अपनी जान से ही हाथ धोता' ठाकुर रामसिंह तो बड़े नामी रईस थे। जमीन जायदाद बेचकर भी वे अपनी हवस को न सींच पाये। वह घास मुरझाने लगी। एक दिन रामसिंह इसी खंडहर के महल में भीतर घुसे और फिर कभी बाहर न निकले।

बहुत दिनों की बात हो गयी। बगालिन के मरते ही अड्डा उजड़ गया। मकान की इतनी ज्यादा बदनामी थी कि कोई उसे खरीदने को भी तैयार न था। अन्त में, वर्षा और वायु से हार कर दीवालें गिरने लगीं। महल से खंडहर हो गया।

अन्त में, सरकार ने उस स्थान को फिर से नीलाम कराने की घोषणा निकाली।

• • •

खंडहर नीलाम होने लगा, बहुत से लोग बोलियाँ बोलने लगे। समय बीत जाने के कारण स्थान की मनहूसियत कम हो गयी थी। लोग उसे महल के रूप में नहीं, मकान के रूप में नहीं, खंडहर के रूप में खरीदने को तैयार थे।

बोली बोलने वालों में से दो उस खंडहर को खरीदने को अत्यन्त उत्सुक थे। एक था लगभग ५५ वर्ष का एक महाजन और दूसरा था २० वर्ष का एक नवयुवक।

अन्त में युवक की बोली ही बीस रही। खंडहर उसके हाथ बिक गया। महाजन ने युवक का हाथ पकड़ लिया—

'जवान, तुम इस खंडहर को खरीदने के लिये इतने उतावले क्यों थे?'

'और, यही सवाल यदि मैं आप से करूँ तो—'

'नहीं बेटा, तुम्हीं बतलाओ!'

'तो सुनिये, आज के २० वर्ष पहले मैं यहीं पैदा हुआ!'

'यहीं—'

'हाँ, यहीं, एक भिखारी भगवान ने कपड़े की गठरी की तरह लपेटा हुआ मुझे पाया था। पाँच वर्ष तक मुझे अपनी गरीबी की हाय से पाल पोष कर, भिखारी और भिखारिन भगवान के पास चले गये। महामारी की एक आँधी उन्हें उड़ा ले गयी।

यहाँ के एक जौहरी को कोई सन्तान न थी। उस महापुरुष ने मुझे गोद ले लिया और अब मैं इस लायक हूँ कि उस स्थान को खरीद लूँ, जहाँ मेरे जीवन का सबेरा हुआ।'

अधेड़ के पैर शिथिल-से होते आ रहे थे। वह खंडहर की एक टूटी दीवाल को टेक कर सम्हल गया, उसने पूछा—

'सच कहते हो?'

युवक ने सरलता पूर्वक कहा—इसमें झूठ बोलने की क्या बात है!

महाजन ने कहा—जरा मेरे साथ चलोगे!

• • •

रँडापे और बुढ़ापे में भगवान बहुत याद आते हैं। वह स्त्री भी ठाकुर की सेवा कर रही थी। छोटा सा, मामूली मकान था। दोपहर का समय, धूप घर मे फैल रही थी। ठाकुरजी को भोग लगाने के लिये थाल परसी जा चुकी थी।

महाजन और युवक दोनों साथ ही ऊपर चल गये। स्त्री उठ कर खड़ी हो गई। चेहरा उतर सा रहा था पर घुँघराले बालों ने लहराना न छोड़ा था। महाजन ने ही पहले कह दिया—इस युवक को पहचानती हो'

स्त्री ने गौर से देखकर जवाब दिया—नहीं तो, कौन हैं'

'खंडहर में, जिन्हें हम-तुमने रात को फेंक दिया था।'

भोग की थाल हाथ से छूट गई। सभी ने युवक को छाती से चिपका लिया।

• • •

जहाँ खंडहर था, वहाँ अब गरीबों के लिये छोटा सा अस्पताल है। सामने एक छोटी-सी फुलवारी, जहाँ पहले दिल रोगी और मुर्दा होता था, वहीं अब शरीर के रोगों का इलाज होता है। पुरुषों और स्त्रियों के लिये अलग-अलग प्रबन्ध है। महाजन ने भी अपनी आधी सम्पत्ति इस अस्पताल में ही लगा दी। एक दिन, एक विधवा के साथ दुराचार के फल स्वरूप उन्हें पुत्र पैदा हुआ था। जिस दिन से उन्होंने उसे खंडहरमें फेंका था, नर हत्या के विचार ने उनके जीवन का सारा सुख मिट्टी में मिला दिया। विधवा के लिये अलग मकान ले लिया गया था, पर घर वाली से भी कोई सन्तान न हुई। महाजन ने कलप कलपकर जीवन के २० वर्ष काटे थे। घरवाली तो कुढ़ पच कर कभी इस दुनिया से चल बसी थी।

आज उनकी आत्मा को विकास प्राप्त करने के लिये थोड़ा अवसर मिला था।

और वह विधवा—युवक की माँ, युवक को खंडहर मिला और माता' माता को पुत्र मिला और अपना पाप धोने का साधन। वह अस्पताल की सचालिका बन गई।

• • •

जौहरी जब व्यापारिक यात्रा से लौटे, तो उन्होंने अपने दत्तक पुत्र की उदारता की कहानी सुनी। पुत्र ने एक अस्पताल खोला है, जिसमें गरीबों की सेवा सुश्रूषा की जाती है। पुत्र की समाज सेवा से जौहरी ने अपनी कोई हानि न देखी।

वह भी एक दिन अस्पताल देखने गये। सारा अस्पताल घूम लेने के बाद वे दफ्तर में बैठ गये।

'इसका प्रबन्ध कौन करता है?'

'मैं'—कहती एक स्त्री निकली और जौहरी के पैरों पर गिर पड़ी। जौहरी चौंक उठे।

'आपकी विधवा बहन अभी जीती है!'—स्त्री ने कातर भाव से कहा।

जौहरी के नेत्रों में आँसू छलक पड़े। युवक ने उनका हाथ पकड़ कर धीरे से कहा—मेरी माता जीवित हैं!

काशी के दलाल

लेखक—श्रीयुत अवधबिहारी शरण 'बिहारी'

दलाली पेशा एक बहुत अच्छे पेशों में से है। एक जीविका है। पहले के दलाल बहुत शरीफ, अति धनी, वृहद् कार बार वाले एव बड़े नामी होते थे। सौजन्य तथा औदार्य को ही अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। अजनबी ग्राहकों को साथ लेकर दूकान पर ईमानदारी का सौदा करा देना ही उनका ध्येय था। वे सदा वही करते थे, जिस से न तो विक्रेताओं को घाटा हो और न वे ग्राहकों को ठग अनुचित लाभ ही उठा सकें; परन्तु आधुनिक दलाल लोभ के कारण इतना पतित हो गए हैं कि प्रतिष्ठा करने को कौन कहे, उन का नाम सुनतेही हृदय में एक धक्का सा लग जाता है। उन की बातों का विश्वास करने में, जनता के दिल में खटकन-ऐसी लग जाती है, पर समय गत्यनुसारेण जैसे अन्य व्यवसाय गिरी दशा को प्राप्त हैं, दलाली भी क्षति से वञ्चित नहीं। बहुत से दलाल, जो पुराने हैं, अपना कर्त्तव्य समझते हैं, अब भी अच्छे हैं। अब भी उन का कार-बार वैसेही चल रहा है, पर शोक! वे अधिक नहीं, केवल इनी-गिनी सख्या में हैं। वर्तमान समय के दलाल, जो बाजारों में अधिक नम्बर में पाए जाते हैं, सच पूछो तो, दलाल नाम की आड़ से अनौचित्य, तथा प्रवञ्चना को अपना चिर सहचर बना, भोले सरल स्वभाव वाले ग्राहकों को अपना लक्ष्य बनाते हैं। उन्हें ठग लेने में अपना सारा पाण्डित्य खर्च कर देते हैं, प्रत्युत वे जन साधारण की निगाह से गिर गए हैं और लोग उनका नाम सुनते ही काँप उठते हैं। मैं इनकी विषम करतूतों का एक जीता जागता उदाहरण उद्धृत करता हूँ।

हमारे छोटे-से गाँव में ग्राम-वासियों ने श्री भगवान कृत-कार्यों का आनन्द मनाने के लिये आपस में कुछ चन्दा इत्यादि करके वार्षिकोत्सव का प्रबन्ध किया है। गाँव के नव-युवक-समाज के उद्योग से प्रति वर्ष कोई-न-कोई नाटक अवश्य खेला जाता है। इन सब कार्यों के लिये हर साल काशी की बाजार से अधिक सामान क्रय करना पड़ता है। सोमवार का दिन था। सूर्य ढल चुका था। मैं कमरे में लेटे लेटे पुस्तकावलोकन कर रहा था, कि घड़ी ने दो बार 'टन्न टन्न' कह किसी के आने की सूचना दी। आँख उठाकर देखा, सचमुच मेरे गाँव के एक मास्टर साहब, जो बचपन में हमारे गुरु रह चुके हैं, पदार्पण करते पाया। उनके इस आगमन से मुझे अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। इस आनन्दोल्लास को शुभ्र तथा विमल हृदय वाले एव शालीन ग्रामीण ही समझ सकते हैं, जिन्हें कि आदि गुरु की सद्भाव से पूजा करने को सुअवसर प्राप्त हुआ है। फिर भी सभी जानते हैं कि दूर देश में यदि कोई अपनी जन्म भूमि का निवासी मिल जाता है, तो ऐसा कौन पाषाण हृदय है, जिसके अभ्यन्तर में उल्लास प्रवाह अनर्गल गति से नहीं प्रवाहित होने लगता है?

कुशल प्रश्न एव सामयिक सत्कारोपरान्त मास्टर साहब ने कहा कि तुम्हें साथ चलकर सारा सामान खरीदना पड़ेगा। गाँव पर रामलीला का उद्घाटन हो गया है। आज सन्ध्यातक आवश्यक सामान खरीद, कल प्रात· काल की ट्रेन से हमारा प्रत्यागमन अनिवार्य है; क्योंकि कल ही राम विवाह होगा। अत, सब सामान समय पर पहुँच जाना चाहिये। गुरु जी के आगमन ने तो पहले ही से मुझे सन्नद्ध हो जाने की सूचना दे रखी थी, फिर क्या था सहर्ष उनका साथ देने के लिये रवाना हुआ।

चौक पहुँचते ही मैंने गुरुजी से कहा कि आप वह लिस्ट दिखलाइए, जिस पर सब सामान लिखा है। समझा जाय कि किस तरह क्रय करने में सुविधा होगी। मास्टर साहब ने कहा कि तुम यहाँ की रीति रस्म से अनभिज्ञ जान पड़ते हो। चाहे किसी दूकान पर सामान खरीदने चलो कोई न कोई दलाल, 'मान न मान मैं तेरा मिहमान' दूकान तक अवश्य साथ देने का कष्ट उठाएँगे! बेहतर होगा कि एक दलाल मेरा परिचित है उसी की पनाह लें; क्योंकि दलाल महाशय दूकान को दर्शन दिए नहीं कि उन्हें कमीशन का अक्षत चढ़ाना ही पड़ेगा। यद्यपि मैं इस बात से असम्मत था, स्वय चार पैसा ठगा जाने को, दलालों का आश्रय लेने की अपेक्षा उत्तम तथा तोष-प्रद समझता था, क्योंकि 'एक बार गँवावे सो बाभन बीर कहावे,' और रह-रह कर यह भाव उठता था कि दलाल के साथ रहने पर अवश्य मूल्य से अधिक देना पड़ेगा, तथापि पूज्य गुरुजी के वचनों का उल्लघन करना हमारी शक्ति से बाहर प्रतीत हुआ, पर किसी न किसी तरह मुझे गुरुजी से पूछना ही पड़ा कि क्या राम विवाह की दक्षिणा दलालों ही का भाग होती है?

मास्टर साहब ने श्यामलाल से, जो उनका चिर-परिचित दलाल था, कहा कि भाई, मुझे राम लीला का सामान खरीदवा दो। इस साल आर्थिक सकट के कारण चन्दा कम हुआ है। ऐसा करो कि 'कम कीमत बाला नशीं' थोड़े ही में काम चल जाय।

श्यामलाल—अरे गुरू! चबरात का हवा? इतने में सब समानिब मिलि जइहै और दाम भी बँच जइहै।

गुरुजी—किस दूकान पर चलोगे श्यामलाल?

श्या० ला०—अरे रजा चलो आव, मैं त चलतै हौं।

अब क्या था 'बेटी बेटा आन के मलाँक गुरेहये' श्यामलाल मालिक बन अग्रसर हुए और हम दोनों पछुआ हुए। चट एक दूकान पर पहुँच उसने कहा, 'देखो भाई, बाबू-साहब जो-जो सामान कहें शीघ्र बाँध दो, दाम काम मुनासिब लेना। समझा! मोल चाल नहीं करना। ये अपने आदमी हैं। पर, इधर मेरे पेट में चूहा कूदने लगा कि या ईश्वर दाम काम मुनासिब ही में अपना कमीशन भी तै कर रहा है कि अलग से वरसना होगा; क्योंकि यह मेरे लिये पहला शुभवसर था, दलालजी तो इतना कह चम्पत हुए और साहुजी सामान दिखलाने लगे। जो सामान निकालें झट एक दाम कह चुप हो जायँ और कितनाहूँ कहने पर भी एक पाई घटाने बढ़ाने का साहस नहीं करते थे। मानों उनके गुरु ने ऐसा सिखाया ही न था, या उन्होंने स्वय शपथ खा ली थी। वास्तव में साहु-जी क्या करते, अरे उन्हें तो उसी में अपने सारे घर खर्चा, मुनाफा तथा दलाल के कमीशन का दाम निकालना था। अन्त में परीशान हो, हम लोगों ने एक दूसरी दूकान का रास्ता लिया। मैंने सोचा भला इस दलाल महाशय से तो मुक्त हुए; पर इन चन्दों के चचा दलालों से कहाँ छुटी! ज्योंही एक दूकान पर पहुँच कर कहा कि नाटक का परदा दिखाओ, एक दलाल साहब, जो पहले ही से वहाँ अपना अड्डा जमाये हुए थे, बोल उठे कि बाबू-साहब को ठीक से देना मोल-चाल मत करना। यह मुझे अत्यन्त बुरा मालूम हुआ। 'बोलावे न चलावे, चौती किये आवे' न जाने ये क्यों कूद पड़ते हैं। जरा सा बोल दिया बस इनका पारिश्रमिक ही होगा। चन्दा करके तो सामान खरीदने आए। देखता हूँ, तो लेनेके देने पड़ जायँगे। इन दलालों के मारे तो नाक में दम है!

हम लोगों ने कितनाही हाथ-पगहा तोड़ाया, पर इन दलाल महानुभावों से छुटकारा नहीं हुआ और उनके ऋण से उऋण होना पड़ा। इस प्रकार हम लोग समान खरीदकर वापस आये।

आधुनिक दलाल तथा दलाली पेशा पर नीचे दो पद्य सेवा में अर्पित किये जाते हैं।

(१)

काशी की गलियों में दर-दर
घूमते - फिरते दलाल
को लूट करके
बनते हैं वे माला - माल।
लेना है सामान गर कुछ
भी पता उनको चला,
व्यापारियों के पहले ही
बोलेंगे जल्दी से भला।
'आवो बाबू चीज अच्छी है
यहाँ से माल लो,
खूब सस्ते में मिलेगी
दिल को अपने तोल लो।'
व्यापारियों के साथ होकर
ग्राहकों को ठग रहे,
अजनबी पाया जिन्हे
मालिक वो खुद ही बन गए।

(२)

द-से दलाल शब्द कैसाही सुन्दर है
जीविका के हेतु यह कैसा सुखदाई है
ला-से है लाल-लाल मुखड़ों में पान
भरा ओठों तक छाई यह ललाई है।
ल-से हैं लेन-देन छाया ससार माफ
बीच में दलाल ने ही काम निपटाई है
कैसी लाभदायक है जीविका दलाली
लोलालचके वश होकर पतित बनाई है

बर्लिन में बौद्ध-सम्मेलन

स्वर्गीय डॉक्टर दॉल्के बौद्ध साहित्य के विशेषज्ञ ही न थे, बल्कि बौद्ध धर्म के सच्चे अनुयायी भी थे। उन्होंने बर्लिन के पास फ्रोनाउ नामक स्थान में वह 'बौद्ध गृह' बनवाया था, जहाँ प्रति वर्ष संसार भर के बौद्ध धर्म के बड़े-बड़े विद्वान् बराबर आया करते हैं। उक्त डाक्टर साहब की दो बहन इस 'गृह' के सुप्रबन्ध के लिए विशेष परिश्रम कर रही हैं, अत उन्हें जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। खास बर्लिन शहर में डॉक्टर शूमेखर साहब भी बौद्ध धर्म में ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं। वे पाली भाषा सिखाने और बौद्ध सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए बहुत यत्न कर रहे हैं। बौद्ध धर्म से उन्हें इतना अधिक प्रेम है कि कभी-कभी वे अन्य धर्मों की खूबियों को मानने से भी इनकार कर देते हैं।

डॉक्टर शूमेखर ने ही फ्रोनाउ के बौद्ध-गृह के सञ्चालकों से सलाह कर बर्लिन में बौद्ध-सम्मेलन कराने का निश्चय किया था। सम्मेलन में लन्दन के बौद्ध मिशन की ओर से आये हुए भिक्षु कौसल्यायन ने 'बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्त' समझाये। जेकोस्लेवेकिया के डॉक्टर प्रोचज्का ने अपने भाषण में बतलाया कि किस तरह उनके देश में बौद्ध-धर्म विषयक बातें जानने के लिए उत्सुकता बढ़ रही है और वे पुस्तकें लिखकर तथा भाषणों द्वारा किस तरह अपने देशवासियों को बौद्ध सिद्धान्तों से अवगत कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। पेरिस की कुमारी लाउन्सबेरी स्वय उपस्थित नहीं हो सकी थीं, अत उनका भाषण अन्य सज्जन द्वारा पढ़ सुनाया गया। उन्होंने उसमें बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों पर अटल विश्वास और पश्चिमीय देशों में उसकी भावी उन्नति के सम्बन्ध में दृढ़ आशा प्रकट की थी। श्रोताओं को वह भाषण विशेष रुचिकर प्रतीत हुआ।

सिलोन (लका) के प्रतिनिधि श्री बटुकोरल ने उन अत्याचारों का हृदय द्रावक वर्णन किया, जो अंग्रेजों के पहुँचने के कुछ शताब्दियों पूर्व रोमन कैथोलिक धर्म के अनुयायी पोर्तगाल निवासियों ने बौद्ध धर्मवालों पर किये थे। जापान से आये हुए सकाकोबारा नामक बौद्ध भिक्षु ने यह दिखलाने की चेष्टा की कि जापान में बौद्ध धर्म में क्या-क्या परिवर्तन हुए। उन्होंने इस धर्म के उन भिन्न भिन्न स्वरूपों का अभिप्राय और उनका महत्त्व समझाने का भी प्रयत्न किया, जो इस समय वहाँ प्रचलित हैं। उनका भाषण ज्ञातव्य बातों से भरा हुआ था।

हमारी जर्मनी की चिट्ठी

प्रेषक—पंडित ताराचन्द राय, बर्लिन (जर्मनी)

अन्त के दोनों व्याख्यान जर्मनों के हुए। डॉक्टर शूमेखर ने समाज व्यवस्था, प्राणियों की रक्षा, राज्य शासन कार्य एव धर्म की ओर राज्य तथा धर्म-सस्था के पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा की। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि बौद्ध धम में इन सब समस्याओं का सबसे अच्छा समाधान किया गया है। डॉक्टर ब्रूनों का विषय इससे बिलकुल भिन्न था। उन्होंने हमें बौद्ध धर्म के दार्शनिक जगत् की सैर करायी और पश्चिमीय दर्शन के विविध प्रश्नों पर बौद्ध सिद्धान्तों की दृष्टि से विचार किया। उन्होंने यह दिखलाया कि प्रमुख समस्याओं का समाधान करने मे पश्चिम के दार्शनिक वहाँ तक नहीं पहुँच सके हैं, जहाँ तक बुद्ध भगवान पहुँचे थे।

बृटिश साम्राज्य और जाति-गत भेद-भाव

मैं यहाँ पर श्री आर्म्सबाई-गोर के उस वक्तव्य की ओर अपने देश वासियों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, जो उन्होंने हाल में ही जेनीवा में दिया था और जिसमें यह बतलाया गया था कि जाति-गत भेद भाव के सम्बन्ध में बृटिश सरकार का क्या रुख है। उन्होंन कहा कि 'आर्यों का सिद्धान्त और एक ही जाति से समस्त नागरिकों की उत्पत्ति का सिद्धान्त * बृटिश साम्राज्य में लागू नहीं हो सकता। बृटिश साम्राज्य में हमेशा से यह प्रमुख नियम वर्ता जाता रहा है कि कोई भी मनुष्य अपनी जाति, रग, या धार्मिक विश्वास के कारण सरकारी पदों पर नियुक्त होने से रोका न जायगा। स्वतन्त्रता और समानता के आधार पर ही यह साम्राज्य टिका हुआ है। बृटिश साम्राज्य में जातीय समानता पर नहीं, वरन् इस बात पर जोर दिया जाता है कि उसके नागरिक बिलकुल स्वतन्त्र हैं, जो स्वेच्छा से ही एक दूसरे के साथ सम्बद्ध बनाये हुए हैं, जिन्हें एकता के अधिक व्यापक क्षेत्र में अपनी अपनी राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए अवसर दिया जाता है और जो स्वतन्त्र एव स्वशासित देशों के नागरिकों की हैसियत से ही परस्पर सम्बद्ध हैं। हमने हमेशा यही कहा है कि 'सुराज से भी स्वराज अधिक वाञ्छनीय है।'

* इसका इशारा हिटलर की उस घोषणा की तरफ है, जिसमें कहा गया था कि भविष्य में जर्मन आर्यों का रक्त शुद्ध बनाये रखने की चेष्टा की जायगी और ऐसा प्रयत्न किया जायगा, जिसमें यहूदियों के साथ विवाहादि सम्बन्ध द्वारा वह कलुषित न होने पावे।

सचमुच? क्या आपने ऐसा ही कहा है? तो क्या आप भारत को भूल गये? अथवा नहीं। भारतीयों के साथ काले गोरे-का जो भेद भाव किया जाता है और उनके प्रति पराधीन जातियों जैसा व्यवहार किया जाता है वह केवल एक अपवाद है। आखिर नियम की सार्थकता सिद्ध करने के लिए अपवाद भी तो होना ही चाहिये?

जर्मनी का अन्नोत्सव

जर्मन सरकार केवल प्रचार करना ही नहीं जानती। वह देश की दशा सुधारने के लिए जी जान से प्रयत्न भी करती है। उसे संस्कृत की इस कहावत में पूरा विश्वास है 'नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगा।' वह केवल मजदूरों, कर्मचारियों और स्कूलों तथा कॉलेजों में पढ़नेवाले छात्रों का ही नहीं, वरन् किसानों का भी ध्यान रखती है, क्योंकि उनके सुखी रहने से ही जर्मन-नागरिकों का हित सुरक्षित रह सकता है।

अभी हाल में बकेबर्ग नामक छोटी सी पहाड़ी पर, जो अन्नोत्सव हुआ था, वैसा शायद ही कभी हुआ हो। इसमें देश के भिन्न भिन्न भागों से कोई पचास लाख जर्मन सम्मिलित हुए थे। उत्सव के समय भाषण करते हुए जर्मन मन्त्री दारे ने कहा कि हमारे किसान साढ़े छ करोड़ जनता के लिये खाद्य सामग्री प्रस्तुत करने वाले ही नहीं हैं, बल्कि अपनी संस्कृति और नैतिक आचार के वाहक तथा प्रसारक भी हैं। नये कानूनों के बन जाने पर, जो इस समय विचाराधीन हैं, किसानों को उन ऋणों से तो छुटकारा मिल ही जायगा, जो उन्हे पूर्ववर्ती सरकारों के समय लेने पड़े थे, साथ ही उनके कारण भूम्यधिकारियों का ऐसा वर्ग तैयार हो जायगा, जो राष्ट्र का सच्चा कुलीन वर्ग बन सकेगा।

इसके बाद हर हिटलर का भाषण हुआ। मच पर खड़े होते ही जनता ने जोरों से उनका स्वागत किया। उन्होंने स्वस्थ, बलवान् और परिश्रमी कृषक-वर्ग का महत्त्व दिखलाते हुए यह मत प्रकट किया कि शारीरिक और मानसिक श्रम का मूल्य बराबर है। उन्होंने बराबर इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्रीय निर्माण का मुख्य आधार जनता ही है। 'राष्ट्रीय साम्यवादियों का उद्देश्य अन्य देशों को जीतने का नहीं, किन्तु अपने देश-वासियों का अस्तित्व सुरक्षित बनाने का है' पर, उन्होंने गरज कर कहा—'हम एक राष्ट्र हैं, हम एक 'राइख' बनना चाहते हैं।'

हाइनरिख फान क्लाइस्ट का नाटक

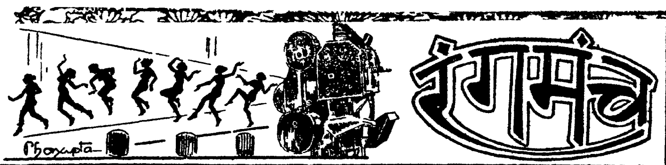
हाइनरिख फान क्लाइस्ट जर्मनी के सबसे मौलिक नाटककार समझे जाते हैं। ये उच्च कोटि के कलाकार थे; किन्तु साथ ही बड़े भाग्यहीन थे। अपने जीवन काल में वे अपने एक भी बढ़िया नाटक का अभिनय न देख सके। गेटे ने इनके एक नाटक—फूटा घड़ा—का अभिनय करने की कोशिश की थी, पर उसमें सफलता नहीं मिली। इसके बाद उसने कभी दुबारा प्रयत्न नहीं किया। बात यह है कि गेटे ने कभी क्लाइस्ट का आशय ही ठीक से नहीं समझा।

इस समय यहाँ पर (बर्लिन में) क्लाइस्ट का सुप्रसिद्ध नाटक 'हर्मैन का युद्ध' खेला जा रहा है। ससार के इतिहास में यह एक अत्यन्त देश भक्ति पूर्ण नाटक है। मैं लाहौर के डॉक्टर लक्ष्मणस्वरूप और दिल्ली के डॉक्टर आबिदहुसेन का ध्यान, इसका अनुवाद क्रमशः हिन्दी तथा उर्दू में कराने के लिये आकर्षित करता हूँ। इस समय भारत के लिये गेटे और शीलर की अपेक्षा क्लाइस्ट का महत्त्व अधिक है।

यहूदियों का संस्कृति मण्डल

उन यहूदियों को, जो बहुत दिनों से जर्मनी में रहते आरहे हैं, और जो नात्सी सरकार के विरुद्ध प्रचार करने के लिये विदेशों को नहीं चले गये, अपना एक निजी 'संस्कृति मण्डल' संघटित करने की अनुमति देदी गयी है। इसकी कुल कार्रवाई यहूदियों द्वारा की जायगी और उन्हीं के साथ इसका सम्बन्ध रहेगा। मण्डल के अहाते के भीतर केवल सदस्यों को ही प्रवेश करने का अधिकार रहेगा। गैर यहूदियों के द्वारा यहूदियों की कृतियों तथा अभिनयों की आलोचना न करने दी जायगी।

अर्थ विभाग के मन्त्री ने हाल में ही यह कहा है कि अनार्यों की कोठियों के बहिष्कार से आर्थिक पुनर्निर्माण के कार्य में बाधा पड़ती है। किसी भी दूकान या कम्पनी के विरुद्ध कार्रवाई करने की जरूरत नहीं है, बशर्ते कि उसका मालिक कानूनों का उल्लघन नहीं करता अथवा व्यापारिक सम्मान के नियमों की अवहेलना नहीं करता।



सौभाग्य-सुन्दरी

(लेखक—श्रीयुत साहित्य विसारद प० यशोदानन्दन शर्मा 'सेवक')

कितनेही दिनों से मैं दैनिक व साप्ताहिक समाचार-पत्रों में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा हुआ देखा करता था कि 'आ गया है, आगया है, इम्पीरियल फिल्म कम्पनी का नवीन तथा अद्वितीय खेल 'सौभाग्य सुन्दरी' आ गया है। इसी के नीचे कुछ प्रशंसा के शब्द भी छपे हुए थे। प्रसिद्ध अभिनेत्री मिस सुलोचना का चित्र भी साथ में दिया हुआ था। जब मैंने इसे पढ़ा था, तब उसी समय से हृदय में बलवती लालसा हो रही थी कि इसे अवश्य देखना चाहिये। वह दिन भी आ पहुँचा। जब मैंने इसे प्रथम बार देखा, तो कुछ हृदय-ग्राही प्रतीत हुआ, अतः दूसरी बार आलोचक की दृष्टि से वहाँ पहुँचा। पहले ही दृश्य में मि० बिलीमोरिया बिहारी के रूप में गाते हुए दृष्टिगोचर हुए। गाना तो कम से कम मार मार कर हकीम बनाया जा रहा था! खैर, बिहारी और उसकी भावज बिजया का अभिनय बहुत ही स्वाभाविक रहा। बिजया का अभिनय करने वाली मिस जिल्लू को आद्योपान्त सफल अभिनय करने के कारण मैं बधाई दिये बिना नहीं रह सकता। हृदय भाव-द्योतक आनन की आकृति जिस समय जैसी होनी चाहिये, वैसी ही थी। देवरानी से ईर्ष्या रखने वाली जननी का पुत्र की लालसा में साधुओं के पास जाने का कैसा अभिनय होना चाहिये, वैसा ही था। 'आचरण-भ्रष्टमनुष्य क्या क्या कर सकता है' इन सब बातों में मिस जिल्लू का भाव प्रदर्शन सराहनीय है।

आरम्भ के थोड़ी ही देर बाद बसन्त के रूप में मा० खलील हमारे सम्मुख आये। क्या कहना है आपके अभिनय के साफल्य का। जैसा एक भोले-भाले सज्जन पुरुष को अपने भाई के साथ, भातृ वधु, अपनी स्त्री, अपने समधी के साथ व्यवहार करना चाहिये और उसमें उसे अभिनय प्रदर्शित करना चाहिये वैसा ही किया और अन्त तक उसको खूब निभाया। अपनी स्त्री के कुकर्मों को देख कर आपने सहनशीलता की पराकाष्ठा भी खूब ही दिखलाई। साधु के वेष में जो उपदेश दिया था उसका ढंग भी अच्छा था।

परन्तु, ज्योंही दर्शकों के सम्मुख अनुपम सुन्दरी मिस सुलोचना आई कि एक बार तो करतल ध्वनि सुनाई दी। मैं मिससुलोचना के सौंदर्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता हूँ। इनका अभिनय भी निराले ही ढंग का है। दर्शकों के हृदयों को आकर्षित करने के लिये पर्याप्त है; परन्तु आलोचक, जो कुछ कठोर हृदय होकर बैठता है, वह वस्तु के दोनों ही पक्षों को समान समझता है; जहाँ वह गुण-ग्राही है वहाँ ही विपक्ष का भी समर्थन करता है और यही उसका धर्म भी है। गाम्भीर्य, हास्य, सौम्य, प्रेम, क्रोध, घृणा आदि कितने ही प्रकार के अभिनय हैं। इन सब अभिनय प्रकारों में सौम्य और प्रेमाभिनय को प्रदर्शित करने में सम्भवतः सुन्दरी सुलोचना के समान कोई शायद ही हो सके। विशेषतया 'सौभाग्य सुन्दरी' में वे अभिनय सुचारु रूप से बतलाये गये हैं। ये हास्य में भी प्रयास करने पर पैर रख सकती हैं, परन्तु गाम्भीर्य, क्रोध और घृणा में तो अधूरी हैं। जहाँ प्रयास भी किया है, वहाँ सफलता न मिल सकी। इसका कारण मेरी समझ में तो यह है कि भारतीय भाव प्रदर्शन ही कुछ गूढ़ तथा गहन है; क्योंकि इसमें धर्म तथा मर्य्यादा की कार हमेशा खिंची रहती है। इसी कारण इस चित्रपट में इस सुन्दरी के अभिनय में

कुछ अस्वाभाविकता सी आ गई है। जब गुणसुन्दरी अपने पति बिहारी से कहती है—'स्वामी मैं निर्दोष हूँ'—उस समय हृदय के भावों को बतलाने के लिये जो मुखाकृति परिवर्तित होनी चाहिये थी न हो सकी। इसका दोष डाइरेक्टर को दिया जा सकता है, क्योंकि वहाँ अभिनयाधिक्य न होकर अभिनय की न्यूनता ही थी। साथ ही में जिस समय रायमल के कहने से बिहारी गुणसुन्दरी को पकड़ने के लिये दौड़ता है और थोड़ी देर पश्चात पकड़ भी लेता है। और फिर जब दोनों एक दूसरे को पहचान लेते हैं, उस समय का मिस सुलोचना का अभिनय अत्यन्त सराहनीय है। वहाँ विदेशीय चित्रपटों की समानता हो सकती है। इस प्रकार सारे चित्रपट को दृष्टि में रखते हुए कह सकते हैं कि 'सौभाग्य सुन्दरी' में सुलोचना एक सफल अभिनेत्री हैं, परन्तु उनको गाम्भीर्य, क्रोध, घृणा आदि भावप्र दर्शनों में अभी बहुत-कुछ सीखना है। इसमें 'मिस डोरोथी' का अनुकरण करें।

मि० डी० बिलीमोरिया बिहारी का पार्ट करते हैं तथा कहानी के नायक भी हैं। आपका अभिनय कूदने, फाँदने, मोटर बाइसिकिल चलाने, पुलिस के सामने से निकल भागने इत्यादि में अच्छा है। साथ ही प्रेमाभिनय दिखाने में भी आप अपना सानी नहीं रखते, परन्तु गम्भीर अभिनय में आप फिसल पड़ते हैं। दर्शकों को रुलाना, क्रोध के भावों को सफलता से प्रदर्शित करना, आपको सम्भवत अच्छा नहीं लगता। जिस समय बिहारी गुणसुन्दरी को अपने भवन से बाहर निकालता है, तो जो शब्द वह कहता है, उनके कहने का ढग सर्वथा बनावटी मालूम होता है। उस समय का क्रोध भी कृत्रिम सा ही मालूम होता है। आपका व्यक्तित्व अवश्य आकर्षक है। आपको गाने का अभ्यास थोड़ा और करना चाहिये। अस्तु।

मि० जमशेदजी, अमृतकेशव पात्र के रूप में दर्शकों के सामने उपस्थित होते हैं। अपना पार्ट आपने अतीव उत्तमता व सफलता से किया है। मैं खूब अच्छी तरह देख रहा था कि दर्शक आपके अभिनय की मुक्तकण्ठ से बड़ाई कर रहे थे। अन्त का सीन तो सबको तिलमिला देने वाला है। आदि से अन्त तक आपका अभिनय सफल रहा है। आपको बधाई है।

मि० हादी का जिक्र भी करना आवश्यक है। आप रायमल का पार्ट कर हैं। यदि कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है, तो मैं कह सकता हूँ कि यदि आपको किसी कथक का पार्ट दिया जाता तो अच्छा होता। गानों के साथ भाव भगा बतलाना, उन्हीं लोगों का काम है। वैसे थोड़ा-बहुत दिखलाना तो अवश्य चाहिये पर इतना नहीं। क्योंकि, रायमल मन्त्री का अभिनय कर रहे थे। उपरोक्त बातें दिखलाने से मन्त्री के चरित्र में अस्वाभाविकता सी आ गई है और ऐसा होने में कोई आश्चर्य भी नहीं है। सबसे ज्यादा खटकने वाली बात तो उस समय है, जिस समय रायमल आदि बिहारी, अमृत केशव आदि से पिटकर आते हैं और रायमल जागीरदार से भाग चलने के लिये कहता है। अस्वाभाविकता की पराकाष्ठा है कि 'भग चलना' भी गाने में ही कहा जाता है। यदि पद्य की अपेक्षा गद्य में कहलाया जाता, तो मालूम हो जाता कि मि० हादी का अभिनय कितने पानी में है। सम्भवत इस दोष के कारण या तो लेखक (कवि) स्वय हो सकता है, या डाइरेक्टर और या मि० हादी स्वय हो सकते हैं। हादी साहब के अभिनय को लोग हास्यमय कहते हैं। कला की दृष्टि में तो हास्य नाम को भी नहीं है। हाँ, चार आने वालों को अवश्य प्रसन्न किया जा सकता है। 'सौभाग्य सुन्दरी' में कम-से-कम मि० हादी सफल न हो सके।

इस सवाक चित्रपट में सगीत का बहुत अभाव है। अभाव से तात्पर्य गज़्ज़लों से नहीं है वरन् आकर्षण की कमी से है। आवाज, दृश्य इत्यादि का सगठन उच्च कोटि का है। इम्पीरियल कम्पनी का जैसा नाम है, वैसा ही इस चित्रपट में कर दिखाया है। कम्पनी के अध्यक्षों से प्रार्थना है कि अब विदेशी कम्पनियों की समानता करना ही अपना लक्ष्य समझें। प्रयास करेंगे तो अवश्य सफल होंगे।

कहानी लेखक एक सिद्धहस्त लेखक हैं। कथा में प्रधान सवेदना है तथा अन्य सवेदनायें उसका पुष्टिकरण भी करती हैं। पर, गानों में कविता नाम को भी नहीं हैं। कहीं कहीं एक दो पक्तियाँ अवश्य अच्छी हैं।

'सौभाग्य सुन्दरी' जन साधारण के लिये अतीव आनन्द का कारण है। कलाविज्ञ भी इस पर मुग्ध अवश्य होंगे, यद्यपि इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। आशा है भविष्य में इससे उत्तम चित्रपट तैयार होंगे और विदेशियों को भारतीय वातावरण के चित्रपट तैयार करने का अवसर न मिलेगा। 'कर्म' आदि चित्रपट पाश्चात्य देश वालों ने तैयार किया है और उनको उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

वसन्त पञ्चमी को विराट् समारोह

श्री गोस्वामी तुलसीदासजी की जन्मभूमि में

हिन्दी भाषा-भाषियों तथा जानकारों को भी गोस्वामी तुलसीदासजी के व्यक्तित्व, कवित्व, महत्व, आदि का परिचय देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उनके जन्म स्थान, राजापुर (बाँदा) में सन् १९०६ में श्री तुलसी-स्मारक सभा की स्थापना हुई थी। उसके उत्साही कार्य कर्ताओं के सदुद्योग से सन् १० में गोस्वामीजी के पुरातन वास-स्थल पर जो कच्ची कुटी बनी चली आती थी, उसके स्थान पर एक पक्का स्मारक भवन बन गया था। जिस करारे पर यह स्मारक स्थित है, उसे भी जमुनाजी बहुत दिनों से काट रही हैं। सभा ने उसकी रक्षा के लिये तीन पक्के बाँध भी बनवाये थे, परन्तु अब वे भी प्राय आधे के लगभग कट गये हैं। सन् १९१६ में रीवाँ नरेश स्वर्गीय वेंकट रमणसिंहजू देव राजापुर पधारे थे और उन्होंने मन्दिर की रक्षा की सुव्यवस्था कर देने का वचन दिया था, लेकिन थोड़े दिन बाद ही उनकी मृत्यु हो गई और यह काम ज्यों का त्यों रह गया। अब यदि शीघ्र ही इस स्मारक की रक्षा का प्रयत्न नहीं आरम्भ हो जाता, तो फिर इसका बचना प्राय असम्भव अथवा अधिक व्यय साध्य हो जायगा। सभा का उद्देश्य इस स्मारक का रक्षा के साथही श्री गोस्वामीजी के विषय मे उच्च कोटि के आलोचनात्मक ग्रंथों के प्रणयन के लिये एक अनुसन्धान मन्दिर स्थापित करना और मानसकार के समस्त काव्यों का सुलभ मूल्य पर शुद्ध तथा सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित करना भी है। इन सब समस्याओं को सुलझाने और इनकी पूर्ति के लिये उपाय निश्चित कर उनके अनुसार अब नियमित रूप से काम आरम्भ करने के लिये आगामी वसन्तपंचमी (तदनुसार २० जनवरी, शनीवार) को राजापुर मे उक्त श्रीतुलसी स्मारक सभा का एक विराट् अधिवेशन किया जायगा। उसमें सम्मिलित होने के लिये प्रान्त के बहुत से प्रतिष्ठित विद्वान् भक्त तथा वक्ता प्रतिश्रुत हो चुके हैं। आशा है, प्रत्येक तुलसी-प्रेमी महानुभाव इस अवसर पर राजापुर पहुँचकर अपनी शक्ति के अनुसार अधिवेशन की तात्कालिक तथा भावी सफलता के विषय में योग देंगे, राजापुर जाने के लिये इलाहाबाद के समीपवर्ती भरवारी (ई० आई० आर०) या चित्रकूट के समीपस्थ करवी (जी० आई० पी०) स्टेशन पर उतरा जा सकता है। वहाँ से किराये की मोटर लारियों द्वारा राजापुर पहुँचने में सुविधा होगी।

श्रीरामबहोरी शुक्ल, एम० ए०, साहित्यरत्न,
अध्यापक क्वीन्सकॉलेज, काशी

श्री बन्धु-हितैषी पुस्तकालय में कवि-सम्मेलन

स्थानीय बन्धु हितैषी पुस्तकालय के सरस्वती पूजनोत्सव तथा वार्षिकोत्सव के अवसर पर आगामी १९ जनवरी सन् १९३४ को श्री प० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय के सभापतित्व में एक कवि सम्मेलन होना निश्चित है। सर्व प्रथम और द्वितीय उत्तम कविता पढने वाले को क्रमश स्वर्ण और रजत पदक दिये जायँगे। दिये हुए विषय तथा समस्याओं के अतिरिक्त स्वतन्त्र कवितायें भी पढ़ी जायँगी। कवियों तथा साहित्य प्रेमी जनों का सहयोग प्रार्थनीय है। किसी व्यक्ति, जाति, धर्म पर आक्षेप करने वाली तथा राजनीतिक कवितायें न पढी जा सकेंगी।

विषय—१—वीणा पाणि, २—कुसुमाकर, ३—अन्तर्जगत, ४—हृतन्त्री।

समस्यायें—१—कोकिल की काकरी ? २—मधुरता, ३—लसे हैं, ४—लोचन की लालिमा, ५—आयेंगे।

श्री नाथ पाण्डेय
जेनरल सेक्रेटरी

२३ वॉं अ० भा० द० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, स्वागत-समिति

दिल्ली की विज्ञप्ति नं० ४

१—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का २३ वाँ अधिवेशन दिल्ली में ता० २४ से २७ मार्च सन् १९३४ तक करने का स्वागतकारिणी का प्रस्ताव सम्मेलन की स्थायी समिति ने स्वीकार कर लिया है, अत: अब यह निश्चित हो गया है कि २३ वाँ सम्मेलन उक्त तारीखों में ही होगा।

२—साहित्य सम्मेलन के साथ स्वागतकारिणी ने निम्न परिषदें तथा सम्मेलन करने का विचार किया है।

(१) साहित्य-परिषद् (२) इतिहास परिषद् (३) दर्शन-परिषद् (४) विज्ञान परिषद् (५) गल्प-सम्मेलन (६) सम्पादक सम्मेलन (७) कवि दर्बार और (८) साहित्यिक प्रदर्शिनी।

इन परिषदों तथा सम्मेलनों के संयोजक इनकी सफलता के लिए प्रयत्नशील हैं।

३—आगत दर्शकों तथा प्रतिनिधियों के मनोरंजन की भी पूरी पूरी व्यवस्था की जायगी।

४—हिन्दी प्रेमियों तथा साहित्य सेवियों से निवेदन है कि वे सम्मेलन को सफल तथा मनोरंजक बनाने के लिए जो सलाह देना चाहें, वह समय रहते शीघ्र देने की कृपा करें।

विज्ञप्ति नं० ५

सम्पादक और गल्प-सम्मेलन

साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के दिनों में सम्पादक और गल्प-सम्मेलन भी होना निश्चित हुआ है। उनके अध्यक्षों के निर्वाचन के लिये सम्मेलन के विधान में कोई निर्णय नहीं। इसलिये निवेदन है कि उनके सम्बन्ध में परामर्श प्राप्त हों और पत्रों में नाम सुझाये जायँ। सुझाये गये नामों में से पाँच नाम चुनकर फिर भिन्न भिन्न स्थानों के मान्य व्यक्तियों को भेजे जायँगे और मताधिक्य के अनुसार अध्यक्षों के नाम की सूचना स्वागत कारिणी की ओर से प्रकाशित कर दी जायगी।

भवदीय—

जैनेन्द्र कुमार,
संयोजक-गल्प-सम्मेलन

रामगोपाल,
प्रकाशन-मन्त्री

आल इण्डिया अग्रवाल शाखा-सभाओं से निवेदन

अपने पिछले पत्र में हम आपसे निवेदन कर चुके हैं कि वार्षिक रिपोर्ट तैयार करने के लिये हमें यह जानने की आवश्यकता है कि महासभा ने गत वर्ष कौन कौन से कार्य किये हैं ? महासभा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। सारे देश में अग्रवाल-समाज फैला हुआ है, अत सब स्थानों के कार्यों का पूरा-पूरा विवरण प्राप्त करने के लिये इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि महासभा की समस्त शाखा सभाएँ अपने अपने यहाँ के तथा अपनी जानकारी के अन्य स्थानों के कार्यों का पूरा पूरा विवरण भेजें। कहाँ पर कितने बाल-विवाह रोके गये, कहाँ कहाँ मृतक बिरादिरी भोज रोके गये, कहाँ कितने अनमेल विवाह रुके, कहाँ कितने विधवा विवाह हुए, कहाँ कहाँ परदा निवारक दिवस मनाया गया, कहाँ अग्रसेन जयन्ती मनायी गई, आदि बातों का पूरा विवरण होना चाहिये।

साथ ही अपने यहाँ की शाखा सभा की वार्षिक मीटिङ्ग करके नवीन पदाधिकारियों का संगठन कर डालिये और प्रयाग में होने वाले अ० भा० अग्रवाल महासभा के लिये अपने यहाँ के प्रतिनिधियों का निर्वाचन भी कर लीजिये। ऐसा प्रयत्न कीजिये कि आपके यहाँ से अधिक से अधिक संख्या में प्रतिनिधिगण प्रयाग-सम्मेलन में पहुँचें। समय निकट है। अत किसी उपदेशक के आने की प्रतीक्षा न करके आप कार्य आरम्भ कर दीजिये कि आपके यहाँ स्वयमेव काफी उत्साह है और आप अपने पैरों पर खड़े होना चाहते हैं। आशा है, इन बातों पर अवश्य ध्यान देने की आप कृपा करेंगे। अधिवेशन के सम्बन्ध में सब सूचनाएँ आपके पास पहुँचती रहेंगी और सम्भव होगा तो उपदेशक भी आवेंगे।

रतनचन्द अग्रवाल,
स० मन्त्री—आल इण्डिया अग्रवाल महासभा

विचित्र-जगत्

रेल्वे की पहली सीटी

आज-कल सभी रेलों के एजिनों में सीटी होती है। इस सीटी का यन्त्र कब और कैसे आविष्कृत हुआ, यह जानने योग्य है। सन् १८३३ई० में अर्थात् आज से सौ वर्ष पूर्व छ. मई के दिन विलायत की लिसेस्टर स्वानिंग्टन रेल्वे का सेमसन एंजिन मक्खन और अंडों से भरी हुई ट्रेन के साथ जोड़ा गया। एंजिन वाली उस ट्रेन में उस समय सिटी नहीं थी और लोगों को किसी भी प्रकार की सूचना दिये बिना ही वह ट्रेन लाइन पर से गुज़र रही थी। उस समय सब से पहले सिटी की आवश्यकता प्रतीत हुई। उस रेल्वे लाइन के मैनेजर ने राबर्ट स्टीफन्सन को ऐसे एंजिन बनाने के लिये कहा जिनके अन्दर सीटी बजाने के यन्त्र की योजना की गई हो। जिससे रेल्वे लाइन पर घूमने वाले लोगों को सूचना दी जा सके। तुरन्त ही एंजिन में आवाज़ करने वाले यन्त्र की योजना की गई। इसके बाद सभी रेल्वे वालों ने सीटी के यन्त्र वाले एंजिन बनाए। इस समय ऐसा कोई ट्रेन नहीं है, जिसमें सीटी के यन्त्र वाला एंजिन न हो। परन्तु एक बात नोट करने योग्य है कि सभी रेल्वे लाइनों वाले एंजिनों में एक-सी आवाज़ करने वाली सीटी नहीं होती। सीटी का यन्त्र एंजिन की गति भी रोक सकता है, यह बात जानकर अनेक लोगों को आश्चर्य होगा। सीटी का एक मनोरंजक किस्सा भी नोट करने योग्य है। थोड़े समय पहले जब एक मलक्युनियम एक्सप्रेस ट्रेन नगरी के पास आ पहुँची, तब ड्राइवर ने सीटी देने के यन्त्र में चाबी देकर जो सीटी बजाना शुरु किया, वह किसी प्रकार बन्द न हो सकी खूब कोशिश करने पर भी उसका बन्द होना असम्भव जान पड़ा। गाड़ी स्टेशन पर आकर रुक गई; परन्तु सीटी की आवाज़ बन्द न हुई। अन्त में थककर प्लेटफार्म पर की ट्रेन से एंजिन को अलग किया गया और एंजिन को उसके ठहरने की जगह पर ले जाया गया। वहाँ भी सीटी की आवाज़ जारी रही। अन्त में जब बॉयलर की तमाम गर्मी एक दम शान्त हो गई तभी सीटी की आवाज़ बन्द हुई। इस प्रकार एक बार सीटी ने अपनी आवाज से लोगों को खूब ही परीशान किया था।

बहरे सुन सकते हैं

गोस्वामी तुलसीदास ने ईश्वर-प्रार्थना करते हुए कहा है, कि तुम्हारी कृपा से मूक वाचाल बनते हैं और पंगु पर्वत पर चढ़ते हैं, परन्तु इस समय तो मनुष्य विज्ञान द्वारा इतनी प्रगति कर रहा है, कि इसके द्वारा असाध्य कार्य भी साध्य हो सकते हैं। जब बहरे भी अच्छी तरह से सुनने लगे, तब दुनिया को कोई अमूल्य वस्तु मिल गई, ऐसा मालूम हुआ। विज्ञान की सहायता से बहरों के लिये सुनना भी सरल हो गया है। अमेरिका और यूरोप में जब पहले-पहल रेडियो का प्रचार होने लगा, तब दूर के लोगों की आवाज़ भी सुनाई देने लगी, जो पहले एक दम असम्भव बात थी। अब तो रेडियो का बहुत प्रचार हो गया है और साथ ही इसने इतनी प्रगति कर ली है, कि रेडियो द्वारा बहरे मनुष्य भी भली-भाँति सुन सकते हैं। यह बात पाठकों को आश्चर्य-जनक मालूम होगी, परन्तु आश्चर्य-जनक बातें जब व्यवहार में आती हैं, तब आश्चर्य नहीं होता। रेडियो के हैंण्डल में एक ऐसे प्रकार का यन्त्र लगा दिया जाता है, कि जिसे सुनने के लिए कान में लगाने की ज़रूरत नहीं होती, परन्तु वह यन्त्र गाल, गला अथवा शरीर के किसी भी भाग पर रखा जा सकता है और परिणाम स्वरूप भली-भाँति आवाज़ सुनी जा सकती है। इस आविष्कार से सुननेवाले और बहरे दोनों तरह के लोग लाभ उठा सकेंगे। यदि आवाज़ धीरे या ज़ोर से सुनना हो, तो यन्त्र में ऐसे प्रकार का रेग्युलेटर रखा होता है कि जिसका उपयोग करने से आवाज़ तेज़ या धीमी की जा सकती है। और भी अधिक आश्चर्य पैदा करने वाली बात तो यह है, कि इस यन्त्र द्वारा केवल रेडियो की ही बातें सुनी जा सकती हों सो बात नहीं, परन्तु रेडियो वाले कमरे में होने वाली किसी भी प्रकार की आवाज़ भी इससे सुनी जा सकती है। 'मान्चेस्टर गार्जियन' का एक संवाददाता कहता है, कि कई वैज्ञानिकों ने भी इस यन्त्र का प्रयोग किया है। उन्होंने अपने कानों को रूई के फाहों से बन्द करके अपने गालों पर यन्त्र रखकर बात-चीत सुनी है। इस यन्त्र के आविष्कारक हैं, मि० जे० पोलियाकोफ़।

आवाज विरोधी संघ

लन्दन में लार्ड हेल्डर ने एक नवीन संस्था स्थापित की है, जिसका नाम है 'आवाज़-विरोधी संघ' किसी कारण या उद्देश्य के बिना जो फिज़ूल की आवाज़ या चिल्लाहट होती रहती है, उससे लोगों को कर्णेन्द्रिय और बुद्धि को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। इस विषय का उचित विचार करके फिजूल की आवाज़ और चिल्लाहट को बन्द करना इस संघ ने अपना उद्देश्य बनाया है। अनेकों लार्ड इस संस्था के सदस्य बने हैं।

भारत का स्वास्थ्य

कलकत्ते के एक डॉक्टर मोसरन ने भारत के स्त्री-पुरुषों के स्वास्थ्य के विषय में भाषण करते हुए कहा है, कि इस समय हिन्दुस्थान के पैंतीस करोड़ स्त्री-पुरुषों के लिये केवल २५ हज़ार डिग्री-प्राप्त डॉक्टर हैं, इस हिसाब से १४००० व्यक्तियों के लिये एक डॉक्टर की नियुक्ति हुई। ग्रेट ब्रिटेन में ९२० और संयुक्त देश (अमेरिका) में ७८० व्यक्तियों के लिये एक डाक्टर की ज़रूरत पड़ती है। भाषण के अन्त में उन्होंने कहा था, कि भारतवर्ष के अस्वास्थ्य का कारण यह है, कि इसकी प्रजा ग़रीब है।

१३०० वर्ष पूर्व की फर्श-बन्दी

१३०० वर्ष से भी अधिक समय पहले, मनुष्य-दृष्टि से विलुप्त हो जाने वाले पौर्वात्य रोमन राज्य के समय का सुन्दर रत्नों से जटित फर्श-बन्दी का काम टॉमस ह्विटमोर नामक एक अमेरिकन प्रोफेसर ने इस्तम्बूल के नार्थेक्स सेन्ट सोफिया के चर्च से खोज निकाला है। इस चर्च के विशाल द्वार में लगभग नवीं शताब्दी के आठ झरोखे हैं और छठी शताब्दी के बारह क्रास भी मिले हैं। इन झरोखों पर किया हुआ फूल-पत्तियों का काम, भिन्न-भिन्न प्रकार के नीलम और पन्नों द्वारा किया गया है और वह बहुत ही कलापूर्ण और मनोहर है। इन सब वस्तुओं में सब से सुन्दर एक रूप है, जिसमें कुमारी मेरी क्राइस्ट के साथ हैं और उनके पास ही फिरस्तो गेब्रियल हैं। तुर्क सरकार की प्रार्थना पर प्रो० ह्विटमोर ने बोस्टन के बाइज़ेन्टाइन इन्स्टीट्यूट की ओर से इस फर्श के काम की सफ़ाई का भार दो वर्ष के लिये अपने ऊपर लिया था।

मनोरञ्जन

बूढ़ा आदमी—(खानसामा से) मेरे लिए एक उबला हुआ अंडा लाओ, पर बहुत सख्त न हो और न बहुत नर्म हो

खानसामा—बहुत अच्छा हुजूर ! कुछ और लाऊँ ?

बूढ़ा आदमी—हाँ, टोस्ट लाओ। पतला, बहुत कड़ा न हो, पर खूब सेंका हो।

खानसामा—बहुत अच्छा हुजूर। अंडे का प्याला भी किसी नये ढंग का हो ?

❀ ❀ ❀

मजूर ने किसान से कहा—तुम बहुत खुश दिखाई देते हो।

किसान जो एक पेड़ के तने पर बैठा था—हाँ जो। मैं इस पेड़ को काटने आया था। बस, इस पर बिजली गिर पड़ी, मेरी मेहनत बच गई।

'तो अब बैठे क्यों हो ?'

'इस इंतजार में हूँ कि एक भूकम्प आजाय और मेरे आलू खोदकर बाहर निकाल दे।'

❀ ❀ ❀

वकील—(गवाह से) मैं समझता हूँ, तुम्हारा बाप भी तुम्हारे ही जैसा काहिल, मटियाफूस आदमी है, क्यों ?

गवाह—आप उन्हीं से जाकर पूछ लें। वह जूरी में बैठे हुए हैं।

❀ ❀ ❀

मुन्नू दौड़ा हुआ माँ के पास आकर बोला—क्यों अम्मा, तुम्हारी नजरों में मेरा कितना मूल्य है ?

माँ—(पुत्र को छाती से लगाकर) लाखों तुम्हारे ऊपर न्यौछावर करदूँ बेटा, करोड़ों !

मुन्नू—तो उसमें से मुझे एक पैसा पेशगी दे दो।

❀ ❀ ❀

बीबी—(पति से) मेरे किसी काम की अब तुम्हें परवाह नहीं रहती।

मियाँ—यह क्या कहती हो मेरी जान ! मैं सारी रात जागता रहा और यही सोचता रहा कि तुमने मेरी जेब से शाम को क्या निकाल लिया।

❀ ❀ ❀

'मैंने साफ देखा कि डाकिए ने तुम्हारा बोसा लिया, तुम इससे इंकार नहीं कर सकतीं। यह तो बुरी बात है।'

'मैं क्या करती। किसी ने डाक से मेरे पास एक बोसा भेजा था'

❀ ❀ ❀

छोटी बच्ची—क्यों अम्मा, जलसों में लोग लड़कों को क्यों नहीं जाने देते ? बच्चों को कभी कोई नहीं ले जाता ?

माँ—इसका जवाब पीछे दूँगी, अभी जाकर देख बच्चा क्यों रो-रोकर प्राण दिए देता है, भोंदू को मना कर दे कि सड़क के आदमियों पर मटर न फेंके। चुन्नू और विद्या से कह आपस में लड़ें नहीं, और कल्लू से कह अगर वह बिगुल बजाना न बन्द करेगा, तो मैं आकर छीन लूंगी।

❀ ❀ ❀

छोटा बच्चा—सिपाही, सिपाही, जल्दी चलो ! एक आदमी घंटे भर से अब्बाजान से लड़ रहा है।

कांसटेबल—तुमने और पहले क्यों नहीं कहा।

बच्चा—पहले तो अब्बाजान उसको पटके हुए थे।

❀ ❀ ❀

एक बूढ़ा आदमी जो सूरत से देहाती मालूम होता है, पीठ पर एक मैली-सी गठरी लिए दिल्ली की गुदड़ी बाजार में गया। वहाँ बिसातियों और शीशे वालों की दूकानें देखकर उसे संदेह हुआ। एक आदमी से पूछा—क्यों भाई, यही तो गुदड़ी बाजार है ?

'हाँ,'

'लेकिन यहाँ तो कहीं गुदड़ी नहीं दीखती। कहीं और तो दूकानें नहीं हैं ?'

'नहीं, तुम्हारा मतलब क्या है ?'

'थोड़े-से मैले गूदड़ बेचने थे।'

❀ ❀ ❀

युवती—अगर दादा का दिवाला निकल जाय, तब भी तुम मुझसे इतना ही प्यार करोगे ?

युवक—(घबड़ा कर) क्या उनका दिवाला हो गया ?

युवती—नहीं, नहीं।

युवक—तो धन से प्रेम का क्या सम्बन्ध है प्रिये?

❀ ❀ ❀

प्रोफेसर—तुम मेरे क्लास में नहीं सो सकते।

शिष्य—अगर आप जरा धीमें बोलें तो मैं सो सकता हूँ।

❀ ❀ ❀

साहुजी सारे दिन बोहनी न होने के कारण बहुत व्याकुल होकर दूकान से नीचे उतर कर टहलने लगे। इतने में एक लड़की एक रुपया मुट्ठी में लिये आई और साहु से बोली—अम्मा पर तुम्हारा एक रुपया आता है न?

साहु—हाँ, आता है। तुम किसकी लड़की हो?

❀ ❀ ❀

'तो आप का लड़का चित्रकार बन रहा है? आप उसके लिये क्या-क्या सामान कर रहे हैं?'

'मैं उसके बाल बढ़वा रहा हूँ। बाकी उसका काम है।'

जज—तुम किसी ऐसे आदमी को जानते हो, जो तुम्हारे चाल-चलन की जमानत करे?

मुलजिम—हाँ, हुजूर, पुलीस के इंसपेक्टर साहब।

(पुलीस इन्सपेक्टर तलब होता है)

जज—लेकिन इन्सपेक्टर साहब तो कहते हैं, मैं इसे नहीं जानता।

मुलजिम—तो अब आप और क्या चाहते हैं? मैं उनके हलके में बीस साल से हूँ फिर भी मेरा उनसे परिचय नहीं हुआ।

❀ ❀ ❀

'बड़ा ही सुन्दर दृश्य है।'

'होगा। यहाँ के पहाड़ों और झीलों को अलग कर दो। फिर जैसे यह वैसे कोई दूसरी जगह।'

❀ ❀ ❀

स्त्री—तुमने अखबार में यह खबर पढ़ी, कि एक स्त्री अपने मालिक के पाँच हजार रुपया लेकर भाग गई।

पुरुष—ताज्जुब है, कि वह अपने मालिक को लेकर नहीं भागी।

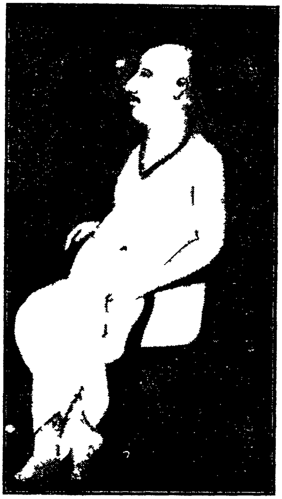
सहकारी सम्पादक—श्री प्रवासीलालवर्मा, मालवीय-द्वारा सरस्वती-प्रेस, काशी से मुद्रित और प्रकाशित।

जागरण

THE JAGARAN — सम्पादक—प्रेमचन्द — Illustrated Weekly

वर्ष २ ‖ काशी, मि० माघ कृष्ण ३० सोमवार, सं० १९९० वि० ता० १५ जनवरी सन् १९३४ ई० ‖ अंक २२

महाराज श्री जयनारायण घोषाल



सन् १८८० मे दिल्लीश्वर मुहम्मद जहांगीर शाह से आपको 'महाराजा बहादुर' का पदवी मिला था। आप बड़े ही विद्या व्यासंगी और विद्वान् पुरुष थे। आपके लिखे अनेक ग्रन्थ हैं। कहते हैं हिन्दी भी आप जानते थे। यू० पी० मे सब प्रथम आप ही ने काशी मे एक विद्यालय की स्थापना की थी जिसमे अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी। वह जमाना था कि आपके इस प्रयत्न से समाज के लोग आपसे चिढ़ गये थे और कोई कार्य संचालक तक न मिलता था। आखिर मे आपने अपना वह विद्यालय ईसाई मिशनरी को सिपुर्द कर दिया और आज भी वह जयनारायण हाई स्कूल के नाम से चल रहा है।

अलका

तुम्हारे बालों का मृदु जाल
घने बालों का लहरा जाल।
खो गया उसमे शुक अनजान
सुकेशिनि मेरा शुक नादान।
बिछा कर चल चितवन कण स्वादु
रखा था फैला अपना जाल।
न जाने उतर कहाँ से मौन
खो गया मेरा प्रिय शुक बाल?
दीन मानो सा होकर म्लान
हाय कैसे क्षण में अनजान।
तुम्हारे बालों का शैवाल
शयन श्लथ बालों का शैवाल।
फंस गया उसमें कम्बु-कुमार
सुकेशिनि मेरा कम्बु कुमार।
लहरियां से कर लाल किलोल
खेलते शैवालों से बाल—
तुम्हारे आनन सर मे सुमुखि
विचुम्बित कर कल अधर प्रवाल।
न जाने आ कैसे इस पार
फँस गया मेरा कम्बु कुमार?

श्री आरसीप्रसादसिंह

जागरण

मि० माघ कृष्ण ३० सोमवार, सं० १९९० वि०

साम्प्रदायिकता और संस्कृति

साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिये वह गधे की भाँति जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल के जानवरों पर रोब जमाता फिरता था, संस्कृति का खोल ओढ़कर आती है। हिन्दू अपनी संस्कृति को कयामत तक सुरक्षित रखना चाहता है, मुसलमान अपनी संस्कृति को। दोनों ही अभी तक अपनी अपनी संस्कृति को अछूती समझ रहे हैं, यह भूल गए हैं, कि अब न कहीं मुसलिम संस्कृति है, न कहीं हिन्दू संस्कृति, न कोई अन्य संस्कृति, अब संसार में केवल एक संस्कृति है, और वह है आर्थिक संस्कृति, मगर हम आज भी हिन्दू और मुसलिम संस्कृति का रोना रोए चले जाते हैं। हालाँकि संस्कृति का धर्म से कोई संबंध नहीं। आर्य संस्कृति है, ईरानी संस्कृति है, अरब संस्कृति है, लेकिन ईसाई संस्कृति और मुसलिम या हिन्दू संस्कृति नाम की कोई चीज नहीं है। हिन्दू मूर्ति पूजक है, तो क्या मुसलमान कब्र पूजक और स्थान पूजक नहीं है, ताजिए को शर्बत और शीरीनी कौन चढ़ाता है, मसजिद को खुदा का घर कौन समझता है। अगर मुसलमानों में एक सम्प्रदाय ऐसा है, जो बड़े से बड़े पैगम्बरों के सामने सिर झुकाना भी कुफ्र समझता है, तो हिन्दुओं में भी एक सम्प्रदाय ऐसा है, जो देवताओं को पत्थर के टुकड़े और नदियों को पानी की धारा और धर्म ग्रन्थों को गपोड़ समझता है। यहाँ तो हमें दोनों संस्कृतियों में कोई अन्तर नहीं दीखता।

तो क्या भाषा का अन्तर है? बिलकुल नहीं। मुसलमान उर्दू को अपनी मिल्की भाषा कह लें, मगर मदरासी मुसलमान के लिये उर्दू वैसी ही अपरिचित वस्तु है, जैसी मदरासी हिन्दू के लिये संस्कृत। हिन्दू या मुसलमान जिस प्रान्त में रहते हैं, सर्व साधारण की भाषा बोलते हैं, चाहे वह उर्दू हो या हिन्दी, बँगला हो या मराठी। बँगाली मुसलमान उसी तरह उर्दू नहीं बोल सकता और न समझ सकता है, जिस तरह बंगाली हिन्दू। दोनों एक ही भाषा बोलते हैं। सीमाप्रान्त का हिन्दू उसी तरह पश्तो बोलता है, जैसे वहाँ का मुसलमान।

फिर क्या पहनावे में अन्तर है? सीमाप्रान्त के हिन्दू और मुसलमान आप के सामने खड़े कर दिए जायँ, कोई तमीज नहीं। हिन्दू स्त्री पुरुष भी मुसलमानों के से शलवार पहनते हैं, हिन्दू स्त्रियाँ मुसलमान स्त्रियों की ही तरह कुरता और ओढ़नी पहनती ओढ़ती हैं। हिन्दू पुरुष भी मुसलमानों की तरह कुलाह और पगड़ी बाँधता है। अक्सर दोनों ही दाढ़ी भी रखते हैं। बंगाल में जाइए, वहाँ हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ दोनों ही साड़ी पहनती हैं, हिन्दू और मुसलमान पुरुष दोनों ही कुरता और धोती पहनते हैं। तहमद की प्रथा बहुत हाल में चली है, जब से साम्प्रदायिकता ने जोर पकड़ा है।

खान पान को लीजिए। अगर मुसलमान मांस खाते हैं, तो हिन्दू भी ८० फी सदी मांस खाते हैं। ऊँचे दरजे के हिन्दू भी शराब पीते हैं, ऊँचे दरजे के मुसलमान भी। नीचे दरजे के हिन्दू भी शराब पीते हैं, नीचे दरजे का मुसलमान भी। मध्यवर्ग के हिन्दू या तो बहुत कम शराब पीते हैं, या भंग के गोले चढ़ाते हैं, जिसका नेता हमारा पंडा पुजारी क्लास है। मध्य वर्ग के मुसलमान भी बहुत कम शराब पीते हैं, हाँ कुछ लोग अफीम की पीनक अवश्य लेते हैं, मगर इस पीनक बाजी में हिन्दू भाई मुसलमानों से पीछे नहीं हैं। हाँ, मुसलमान गाय की कुर्बानी करते हैं और उनका मांस खाते हैं लेकिन हिन्दुओं में भी ऐसी जातियाँ मौजूद हैं, जो गाय का मांस खाती हैं, यहाँ तक कि मृतक मांस भी नहीं छोड़तीं, हालाँकि वधिक और मृतक मांस में विशेष अन्तर नहीं है। संसार में हिन्दू ही एक ऐसी जाति है, जो गो मांस को अखाद्य या अपवित्र समझती है। तो क्या इसलिये हिन्दुओं को समस्त संसार से धर्म संग्राम छेड़ देना चाहिये?

संगीत और चित्र कला भी संस्कृति का एक अंग है लेकिन यहाँ भी हम कोई सांस्कृतिक भेद नहीं पाते। वही राग रागिनियाँ दोनों गाते हैं और मुगल काल के चित्र कला से भी हम परिचित हैं। नाट्य कला पहले मुसलमानों में न रही हो, लेकिन आज इस सीगे में भी हम मुसलमानों को उसी तरह पाते हैं जैसे हिन्दुओं को।

फिर हमारी समझ में नहीं आता, वह कौन-सी संस्कृति है, जिसकी रक्षा के लिये साम्प्रदायिकता इतना जोर बाँध रही है। वास्तव में संस्कृति की पुकार केवल ढोंग है, निरा पाखंड। और इसके जन्मदाता भी वही लोग हैं, जो साम्प्रदायिकता की शीतल छाया में बैठे विहार करते हैं। यह सीधे सादे आदमियों को साम्प्रदायिकता की ओर घसीट लाने का केवल एक मंत्र है, और कुछ नहीं। हिन्दू और मुसलिम संस्कृति के रक्षक वही महानुभाव और वही समुदाय हैं, जिनको अपने ऊपर, अपने देशवासियों के ऊपर और सत्य के ऊपर कोई भरोसा नहीं, इस लिये अनंत तक एक ऐसी शक्ति की जरूरत समझते हैं, जो उनके झगड़ों में सरपंच का काम करती रहे। इन संस्थाओं को जनता के सुख दुःख से कोई मतलब नहीं, उनके पास ऐसा कोई सामाजिक या राजनैतिक कार्य क्रम नहीं है, जिसे राष्ट्र के सामने रख सकें। उनका काम केवल एक दूसरे का विरोध करके सरकार के सामने फरियाद करना और इस तरह विदेशी शासन को स्थायी बनाना है। उन्हें किसी हिन्दू या किसी मुसलिम शासन की अपेक्षा विदेशी शासन कहीं सह्य है। वे ओहदों और रिआयतों के लिये एक दूसरे से चढ़ा ऊपरी करके जनता पर शासन करने में शासकों के सहायक बनने के सिवा और कुछ नहीं करते। मुसलमान अगर शासकों का दामन पकड़ कर कुछ रिआयतें पा गया है, तो हिन्दू क्यों न सरकार का दामन पकड़े, और क्यों न मुसलमानों ही की भाँति सुर्खरू बन जाय। यही उनकी मनोवृत्ति है। कोई ऐसा काम सोच निकालना, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों एक होकर राष्ट्र का उद्धार कर सकें, उनकी विचार शक्ति से बाहर है। दोनों ही साम्प्रदायिक संस्थायें मध्य वर्ग के धनिकों, जमींदारों, ओहदेदारों और पद लोलुपों की हैं। उनका कार्य क्षेत्र अपने समुदाय के लिये ऐसे अवसर प्राप्त करना है, जिससे वह जनता पर शासन कर सकें, जनता पर आर्थिक और व्यवसायिक प्रभुत्व जमा सकें। साधारण जनता के सुख दुःख से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। अगर सरकार की किसी नीति से जनता को कुछ लाभ होने की आशा है, और इन समुदायों को कुछ क्षति पहुँचने का भय है, तो वे तुरन्त उसका विरोध करने को तैयार हो जायगी। अगर और ज्यादा गहराई तक जायँ, तो हमें इन संस्थाओं में अधिकांश ऐसे सज्जन मिलेंगे जिनका कोई न कोई निजी हित लगा हुआ है। और कुछ न सही तो हुक्काम के बँगलों पर उनकी रसाई ही सरल हो जाती है। एक विचित्र बात है कि इन सज्जनों की अफसरों की निगाह में बड़ी इज्जत है, इनकी वे बड़ी खातिर करते हैं। इसका कारण इसके सिवा और क्या है कि वे समझते हैं, ऐसों ही पर उनका प्रभुत्व टिका हुआ है। आपस में खूब लड़े जाव, खूब एक दूसरे को नुकसान पहुँचाओ। उनके पास फरियाद ले जाव, फिर उन्हें किस बात का गम है, वे अमर हैं। मजा यह है कि बाजों ने यह पाखण्ड फैलाना भी शुरू कर दिया है कि हिन्दू अपने बूते पर स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। इतिहास से उसके उदाहरण भी दिए जाते हैं। इस तरह की गलत फहमियाँ फैलाकर इसके सिवा कि मुसलमानों में और ज्यादा बदगुमानी फैले और कोई नतीजा नहीं निकल सकता। अगर कोई जमाना था, जब मुसलमानों के राजकाल में हिन्दुओं ने स्वाधीनता पाई थी, तो कोई ऐसा काल भी था, जब हिन्दुओं के जमाने में मुसलमानों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया था। उन जमानों को भूल जाइये। वह मुबारक दिन होगा, जब हमारी शालाओं से इतिहास उठा दिया जायगा, यह जमाना साम्प्रदायिक अभ्युदय का नहीं है। यह आर्थिक युग है, और आज वही नीति सफल होगी, जिससे जनता अपनी आर्थिक समस्याओं को हल कर सके, जिससे यह अंध विश्वास, यह धर्म के नाम पर किया गया पाखण्ड, यह नीति के नाम पर गरीबों को दुहने की कृपा, मिटाई जा सके। जनता को आज संस्कृतियों की रक्षा करने का न अवकाश है न जरूरत। ‘संस्कृति’ अमीरों का, पेटभरों का, बेफिक्रों का व्यसन है। दरिद्रों के लिये प्राण-रक्षा ही सबसे बड़ी समस्या है। उस संस्कृति में था ही क्या, जिसकी वे रक्षा करें। जब जनता वह मूर्छित थी, उस पर धर्म और संस्कृति का मोह छाया हुआ था। ज्यों ज्यों उसकी चेतना जागृति होती जाती है, वह देखने लगी है कि यह संस्कृति केवल लुटेरों की संस्कृति थी, जो राजा बनकर, विद्वान् बनकर, जगत सेठ बनकर जनता को लूटती थी। उसे आज अपने जीवन की रक्षा की ज्यादा चिन्ता है, जो संस्कृति की रक्षा से कहीं आवश्यक है। उस पुरानी संस्कृति में उसके लिए मोह का कोई कारण नहीं है। और साम्प्रदायिकता उसकी आर्थिक समस्याओं की तरफ से आँखें बंद किए हुए ऐसे कार्य क्रम पर चल रही है, जिससे उसकी पराधीनता चिरस्थाई बनी रहेगी।

युवकों में राष्ट्र-प्रेम

साम्प्रदायिकता की इस मटमाकार घनघटा में कभी कभी रजत रेखा भी दिखाई दे जाती है, जिससे राष्ट्रवादियों की मुरझाई आशाएँ फिर हरी होजाती

हैं। शायद दो साल हुए अलीगढ़ में विश्वविद्यालय के एक छात्र सम्मेलन में साम्प्रदायिकता के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास हुआ था। गत सप्ताह में लखनऊ में युक्तप्रान्त के छात्र सम्मेलन में फिर यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है कि 'प्रान्तीय युनिवर्सिटी फेडरेशन से अनुरोध किया जाय कि वह साम्प्रदायिकता को कुचलने का आयोजन करे।' इस प्रस्ताव की उपयोगिता और कुछ हो या न हो इससे इतना तो अनुमान किया ही जा सकता है कि हवा का रुख किधर है। इस सम्मेलन के सभापति सर मुहम्मद याकूब थे, जो कई बार अपनी अराष्ट्रीयता का परिचय दे चुके हैं। उनके सभापतित्व में ऐसे प्रस्ताव का पास हो जाना इसी बात का प्रमाण नहीं है कि हमारे युवकों का रुख किधर है बल्कि वह बाधाओं को तोड़ने का साहस भी रखता है। हमारी देवियों ने अनेक अवसरों पर सिद्ध कर दिया है कि उन्हें साम्प्रदायिकता से कोई सरोकार नहीं है नहीं उन्होंने इसकी खुले शब्दों में निन्दा की है। और उन देवियों में हिन्दू देवियाँ भी हैं, मुसलिम देवियाँ भी। युवकों ने भी अपने राष्ट्र प्रेम का परिचय एक से अधिक अवसरों पर दे दिया। अब केवल पुराने दकियानूस रह गये। मगर वह प्रभात के दीपक हैं। भारत का भविष्य उज्ज्वल मालूम हो रहा है।

समाजवाद का आतंक

यह डिक्टेटर शिप का युग है। जन मतवाद के दिन लद गए। रूस, जर्मनी, इटाली, आस्ट्रिया, स्पेन गरज जहाँ देखो डिक्टेटर शिप का राज है। जहाँ प्रत्यक्ष रूप से डिक्टेटर शिप नहीं है वहाँ भी व्यावहारिक रूप से उसने दखल कर लिया है, जैसे अमेरिका। अब इंग्लैण्ड को भी खटका होने लगा है कि कहीं इस खिचड़ी शासन के बाद समाजवादी डिक्टेटरशिप न खड़ी हो जाय। मगर इंग्लैण्ड-जैसे पूँजी प्रधान देश में शायद ही ऐसी स्थिति पैदा हो सके। हाँ, यह हो सकता है कि फसिस्ट डिक्टेटर शिप खड़ी हो जाय। कुछ भी हो, वहाँ अभी से उस सम्भावी स्थिति का सामना करने की तैयारियाँ होने लगी हैं। इंग्लैण्ड में फैसिज्म के आने की देर है। फिर यूरोप का सारा निरशस्त्रीकरण गायब हो जायगा। हमें खुश होना चाहिए कि सुफेद कागज का वाइसराय पक्का डिक्टेटर होगा, बिलकुल अप टु डेट।

विदेश यात्रा और प्रायश्चित्त

एक जमाना था कि भारत के भिक्षुओं ने विदेश यात्रा करके अपने देश और धर्म का गौरव बढ़ाया था। फिर पाखण्ड का यह चक्र चला कि विदेश जाना पाप हो गया। और आज भी ऐसे उदाहरण आये दिन मिलते रहते हैं, कि लोग विदेश से लौट कर प्रायश्चित्त करने के लिये काशी दौड़ते हैं। इस बीसवीं सदी में ऐसा ढकोसला भारत जैसे पाखण्ड प्रधान देश के सिवा और कहाँ हो सकता है, और भारत आध्यात्मवाद का केन्द्र है। आज भी यहाँ के आध्यात्मवादी लोग विदेश जाना पाप समझते हैं, और उसके प्रायश्चित स्वरूप गोबर खाते हैं, सिर मुँडाते हैं और भोज देते हैं। इस धर्मांधता और पाखण्ड लिप्सा पर आँसू बहाने की इच्छा होती है। इसी विषय पर द्विज जी ने सहयोगी 'आज' में एक बड़े मजे का नोट लिखा है। आप प्रायश्चित्त की व्याख्या करने के बाद कहते हैं—

'आप अगर समझते हैं कि विदेश यात्रा कोई पाप नहीं, तो आप का यह कर्तव्य हो जाता है, कि इसके लिये प्रायश्चित्त का दबाव डालने वालों को आप निर्भीकता के साथ दिखा दें कि आप में पाखण्ड के विरुद्ध युद्ध करने की शक्ति का अभाव नहीं है। और अगर आप ऐसा नहीं कर सकते, या स्वयं भी इस प्रकार के पाखण्ड में विश्वास रखते हैं, तो फिर आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि आप विदेश जाने के पाप से ही अपने को बचाये रहें।'

इसी पाखण्ड ने और इन्हीं पक्षियों ने भारत का चौपट किया और आज भी उनका वैसा ही अखण्ड राज है।

एम० सी० सी० की जय

कहते हैं फ्रेंच क्रान्ति के पहले जनता तो भूखों मरती थी और उसके शासक और जमींदार और महाजन नाटक और नृत्य में रत रहते थे, वही दृश्य आज हम भारत में देख रहे हैं। देहातों में हाहाकार मचा हुआ है। शहरों में गुलछर्रे उड़ रहे हैं। कहीं एम० सी० सी० की धूम है, कहीं हवाई जहाजों के मेले की। बड़ी बेदर्दी से रुपये उड़ रहे हैं। काशी के इस क्रिकेट मैचमें कम से कम ५ हजार आदमी तमाशा देख रहे थे। कम से कम २५ हजार रुपये केवल टिकटों से वसूल हुए और दिया किसने? उन्हीं बाबुओं और अमीरों ने जिनसे शायद किसी राष्ट्रीय काम के लिये कौड़ी न निकल सके। खूब तमाशे देखे जाव, खूब मजे उड़ाये जाव। यह दुनिया है कौन किसी के दुख से दुखी होता है। यह सिरफिरों का काम है। संसार उनका है, जो मौज करते हैं। शहर के अदेसों से मरने वाले अभागे काजी को मरना ही चाहिये। दया अमीरों का चोंचला है, उसकी हमें जरूरत नहीं। न्याय के आने में देर है, तब तक चैन किये जाव। सुना इस मैच में विजयानगरम् टीम जीत गई। बस अब स्वराज्य मिलने में देरी नहीं है।

'घृणा प्रचारक' भगवान बुद्ध

हिन्दू धर्म—शुद्ध सनातन हिन्दू धर्म—के अनुसार भगवान के नवें अवतार भगवान बुद्ध थे। उनकी गणना साधारण चौबीस अवतारों में नहीं वरन् दस प्रधान अवतारों में है। अबसे २४०० वर्ष पूर्व उन्होंने जो कुछ कहा था, उससे हमारे कुछ प्रयागी साहित्यिकों के अनुसार उन्हें 'घृणा के प्रचारक' ही नहीं परन्तु घृणा के घोर प्रचारक' की उपाधि अवश्य दी जानी चाहिये। जिस किसी को आशंका हो वह महापंडित त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन कृत 'बुद्ध चर्या' [प्रकाशक श्री शिवप्रसाद गुप्त, सेवा उपवन काशी] के ३८५वें पृष्ठ वाला नीचे दिया गया 'सुनक सुत्त' उद्धरण पढ़लें। जब स्वयं भगवान् के अवतार ने यह सिलसिला आरम्भ किया था, तब उसे जारी रखने में बेचारे मनुष्य क्यों दोषी कहे? जब भगवान बुद्ध के समय से ब्राह्मणों के चरित्र में कितनी उन्नति हुई है, इसका इस्टिमेट प्रयाग के उन्हीं साहित्यिकों से मिलेगा। उद्धरण यह है—

सुनक सुत्त

'ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथ पिंडक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

भिक्षुओ! यह पाँच पुराने ब्राह्मण धर्म इस समय कुत्तों में दिखाई देते हैं। कौन से पाँच? भिक्षुओ! पहले ब्राह्मण ब्राह्मणी के पास जाते थे, अब्राह्मणी के पास नहीं। भिक्षुओ! इस समय ब्राह्मण ब्राह्मणी के पास भी जाते हैं अब्राह्मणी के पास भी। (किन्तु) भिक्षुओ कुत्ते कुत्तियों के ही पास जाते हैं, अकुत्तियों के पास नहीं। यह भिक्षुओ! प्रथम पुराना ब्राह्मण धर्म है, जो इस समय कुत्तों में दिखाई देता है।'

पहले भिक्षुओ! ब्राह्मण ऋतुमती ब्राह्मणी के पास ही जाते थे, अऋतु-मती के पास नहीं। आजकल अऋतु मती के पास भी।'

'पहले भिक्षुओ! ब्राह्मण ब्राह्मणी को न खरीदते थे, न बेचते थे परस्पर प्रेम के साथ ही सहवास करते थे। आजकल ब्राह्मण ब्राह्मणी को खरीदते भी हैं, बेचते भी हैं, परस्पर प्रेम के साथ भी अप्रेम के साथ भी।'

'पहले ब्राह्मण, सन्निधि धन का, धान्य का, चाँदी सोने (रजत-जातरूप) का संग्रह नहीं करते थे। इस समय संग्रह करते हैं।'

'पहले भिक्षुओ! ब्राह्मण सायं काल के भोजन के लिये सायं, प्रातः काल के भोजन के लिये प्रातः खोज करते थे। इस समय भिक्षुओ! ब्राह्मण इच्छा भर, पेट भर खा, बाकी (घर) ले जाते हैं। इस समय भिक्षुओ कुत्ते सन्ध्या के भोजन के लिये। यह भिक्षुओ पाँचवाँ पुराना ब्राह्मण धर्म इस समय कुत्तों में दिखाई देता है ब्राह्मणों में नहीं। भिक्षुओ! यह पाँच पुराने ब्राह्मण धर्म इस समय कुत्तों में दिखाई देते हैं।'

महाराजा बड़ौदा का अनुरोध

अब की विज्ञान-सम्मेलन में विज्ञानाचार्यों को सम्बोधित करके महाराजा साहब ने उनसे अनुरोध किया कि आप जो कुछ खोज करते हैं, उसके फल को जनता तक पहुँचाने का भी उद्योग कीजिए, वरना जनता को आपके खोज से क्या लाभ। लेकिन हमारे विज्ञानाचार्य खोज करते हैं खोज के लिये, उसी तरह जैसे कलाकार लिखता है कला के लिये और खानेवाला खाता है खाने के लिये, और रोनेवाला रोता है रोने के लिये। जब कोई उस्तादजी संगीताचार्यों के सामने गाते हैं, तो कला की ऐसी ऐसी कलाबाजियाँ दिखाते हैं कि मानो कला उन्हीं पर खतम हो गई। उन्हें हजारों दर्शकों से मतलब नहीं। वे तो उन्हीं उस्तादों से दाद लेना चाहते हैं, उन्हीं पर अपनी कला का सिक्का बिठाना चाहते हैं। वही हाल हमारे विज्ञानाचार्यों का है। वह खोज करते हैं विज्ञानाचार्यों के लिये, सत्य के लिये। उन्हें उपयोगिता से मतलब? सर रमन ने अभी कह भी तो दिया कि ज्ञान ज्ञान के लिये है, उपयोगिता से उसे कोई मतलब नहीं। एक विज्ञानी दूसरे विज्ञानी की तारीफ करता है, इतना उसके सन्तोष के लिये काफी है।

गुरुकुल विश्व-विद्यालय वृन्दावन मथुरा के २९ वें वार्षिकोत्सव पर

माननीय सर सीताराम, एम. ए., एल-एल. बी., का दीक्षान्त-भाषण

प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति का वैभव तथा उन्नति शिक्षा पर निर्भर है। निरक्षर महाचार्यजी न अपना उपकार कर सकते हैं, न देश का कल्याण। इसी लिए दूरदर्शी जापान-सम्राट ने, जापान के उन्नति शिखर पर पहुँचने से पहले, यह घोषणा की थी कि उनके समस्त राज्य के किसी ग्राम में कोई अशिक्षित कुटुम्ब न हो और किसी कुटुम्ब का कोई भी व्यक्ति—स्त्री अथवा पुरुष—अशिक्षित न हो। हमारे भारत के लिए यदि कोई दिव्यौषधि बताई जाती है, तो वह विद्या का प्रसार परन्तु विद्या तथा शिक्षा का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। इस विषय में, कि शिक्षा कैसी हो और किस प्रकार से हो बड़ा मत भेद है। यह मत भेद प्राय सारे ही देशों में रहा है और अर्वाचीन तथा प्राचीन के झगड़े शिक्षितप्राय देशों में भी खूब चलते हैं। इगलैंड में (।।-डा - अथवा लैटिन और ग्रीक के पढ़ाने के विषय में वाद विवाद रहता है, इटली में इस बात पर विवाद है कि पोप महोदय का विद्यालयों मे कहाँ तक हस्ताक्षेप हो, जर्मनी में नाजी समुदाय प्राचीन संस्कृति को पुनर्जीवित करना चाहता है, विद्यालय कहाँ तक राज्यतन्त्र, स्वतन्त्र अथात् प्रजातन्त्र रहे, इस पर भी परस्पर विरोध रहता है, उच्च शिक्षा अर्थकरी हो या नहा और कहाँ तक, इस पर घोर मतभेद है, भारत में भी लार्ड मेकाले के समय में अर्वाचीन तथा प्राचीन, पाश्चात्य तथा पूर्वीय साहित्य के प्रभाव और महत्त्व पर बड़ा संघर्ष रहा, अन्त मे पाश्चात्य की विजय हुई और अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में प्राय: पाश्चात्य अंश को ही प्रधानता दी गई। अब फिर माध्यम के ऊपर भिन्न भिन्न सम्मतियाँ हैं।

आर्य-समाज शिक्षा प्रचार में अग्रसर रहा है। उसके अन्दर इस सम्बन्ध में दो मुख्य दलों का हो जाना स्वाभाविक था। कालेज पार्टी ने महात्मा हंसराज आदि के नेतृत्व में अपने शिक्षालय स्थापित किये और गुरुकुल पार्टी ने महात्मा मुंशीराम के नेतृत्व में पतित पावनी जाह्नवी के तीर काँगड़ी में गुरुकुल स्थापित किया। तदुपरान्त इस नमूने के अनेक गुरुकुल और ऋषिकुल भी कई स्थानों मे खुल गये हैं। मुझे १९०७ में काँगड़ी गुरुकुल के महोत्सव पर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और इसी वर्ष अगस्त में वृन्दावन-गुरुकुल के कर्मचारियों की कृपा से आपके आश्रम से भी चलता फिरता परिचय हुआ।

गुरुकुल का आदर्श है—ब्रह्मचर्य पालन करते हुए बच्चों को पर्याप्त संस्कृत का ज्ञान करा देना, जिससे उनको संस्कृत व्याकरण तथा कोष के पूर्ण बोध के साथ वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, दर्शन, आयुर्वेदादि का भी ज्ञान हो जाय, जिससे कि आर्य-सन्तान अपने पूर्वजों का क्रिया, भाषा, साहित्य, इतिहास आदि से भली भाँति परिचित हो, नवीन प्रणाली से पराजित न हो और पाश्चात्य प्रवाह में बह न जाय।

पूर्वजों की महिमा तथा गौरव पर अभिमान, उनकी विशेष बातों का संरक्षण और पूर्वजों का आदर सत्कार, प्राय सभी सभ्य जातियों में अब भी किया जाता है। जापानी अपने पूर्वजों की पूजा करते हैं। यूरोप में रूस का तो मुझे ज्ञान नहीं, सुनता हूँ कि हत्थे से कटे हुए कनकौवे की नाईं रूस इतस्तत दौड़ धूप कर रहा है किन्तु इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी और इटली में मैंने स्वयं दो वर्ष हुए भ्रमण कर देखा है कि वहाँ पूर्वजों के अनेक चिन्ह और तत्सम्बन्धी घटनाओं की देख-रेख किस प्रेम से होता है।

लन्दन में राज्याभिषेक की पुरानी कुर्सी अब भी पुराने पत्थर सहित रखी जाती है। शेक्सपियर, मिल्टन, स्काट आदि साहित्य-सेवियों के जन्म स्थान, हस्त लिखित पत्र, हस्ताक्षर, ऑक्सफोर्ड, लन्दन और एडिनबरा में किस भाव से दिखलाए जाते हैं। जिस हाँडी में शेक्सपियर का खाना बनता था, वह St at ford on Avon में उनके सुरक्षित वास स्थान में रखी है, जहाँ मिल्टन ने पुस्तक लिखवाई, वह झोपड़ा Chalfont St. Peter में मुझे दिखाई गई। अनेक स्थानों पर नेल्सन वैलिंगटन के स्मारक तथा उनके चिन्हस्वरूप वस्तुएँ मिलती हैं, कार्डिनल वूल्जे की टोपी उनके स्थापित किए हुए एक कालेज में रखी है। फ्रांस में राज्य क्रान्ति तथा नैपोलियन सम्बन्धी अनेक वस्तुएँ सादर रखी हैं। पैरिस के पैंथियन को मैं नहीं भूल सकता। इटली का तो कुछ कहना ही नहीं, प्राचीन काल-सम्बन्धी फोरम, स्नानागार, मन्दिर, वीथी, व्यायामशाला, भवन, सब ही पुनर्जीवित किए जा रहे हैं, सेंट पीटर की गिर्जा में द्वार के समीप ही वह स्थान बड़े गर्व से दिखलाया जाता है, जहाँ सम्राट योधा शार्लिमैन ने श्रीपोप के समक्ष वन्दना कर ईसाई-मत ग्रहण किया, ईसा मसीह के क्रास का काँटा और लकड़ी का भाग इटली तथा लन्दन में दिखलाया गया, फ्लारेन्स में वह स्थान अङ्कित है, जहाँ सैवेनरोला को अन्य मतावलम्बियों ने जीवित जलाया था। लार्ड कर्जन के उस कथन से आप परिचित होंगे ही कि यदि बृटिश साम्राज्य और शेक्सपियर में से एक मुझे लेना पड़ता तो मैं निःसंकोच साम्राज्य को तिलांजलि देने के लिए प्रस्तुत हूँगा। सारांश यह कि निज भाषा, निज साहित्य, निज सभ्यता तथा निज धन की वृद्धि एवं उन्नति पर निरन्तर विचार उस यूरोप में भी खूब चल रहा है, जहाँ जातीयता का प्रचुर प्रचार है और जिसके हममे से अनेक पृष्ठ पोषक हैं।

यही नहीं कि इस अर्वाचीन यूरोप में अपने पूर्वजों की स्मृति को न भुलाया जाता हो किन्तु डबलिन, पैरिस, लन्दन, बर्लिन, रोम, प्राग आदि स्थानों पर संस्कृत पुस्तकों का बड़ा भंडार है। इन नगरों में संस्कृत के प्रति कितनी श्रद्धा है और संस्कृतज्ञों में कितना उत्साह है यह वहाँ जाकर निश्चित होता है। इसी कारण तो हमारी संस्कृत पुस्तकों की आलोचना तथा परिभाषा पहले परदेशी करते हैं तत्पश्चात स्वदेशी। मोक्षमूलर (Max Muller) ने हमको हमारा कुछ परिचय कराया, शूपेनहावर (Schopenhauer) ने उपनिषदों का गुण गान कर हमारे शिक्षित समुदाय को रिझाया। अभी २० दिसम्बर को मुझसे एक फ्रांस की महिला ने, जो पहली बार भारत आई हैं, कहा कि उनकी श्रद्धा भारतीय सभ्यता के लिए कठोपनिषद् के एक अनुवाद से उत्पन्न हुई। गिवटी (Goethe) ने शकुन्तला से मोहित हो हमारी काव्यों की ओर आँखें खोली, (Sacred Books of the East Series) ने हमारे शास्त्रों को दूर दूर पहुँचाया। और भी अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने साहित्य प्रेम के वशीभूत हो हमारा बड़ा उपकार किया। यह सज्जन तथा कतिपय भारतीय सहृदय यदि ऐसा न करते, तो अर्वाचीन पाश्चात्य ज्योति से चकित हम न केवल अपना देश भूल रहते वरन् संसार की दृष्टि में असभ्य कहाते और हमारी भी गणना अफ्रिका के जूलू, बाँटू, हाटेन्टाट में, अथवा आस्ट्रेलिया के मेयोरी मे, अथवा अमेरिका के लाहकशा जातियों मे होती। यह बात दूसरी है कि अनेक कारणों के वश हम अकिंचन पौरुषहीन हो रहे हैं किन्तु अपने भूतकाल का तो हमको गौरव है और उससे उत्साह तो ग्रहण कर सकते हैं।

यह सब मैंने इसलिए कहा कि जब समस्त संसार में पूर्वजों की ख्याति का अभिमान है, तो हम भारतीयों को अपने पूर्वजों के कीर्ति बखान में तथा उनकी मर्यादा के पुनरुत्थान मे लज्जा नहीं वरन् गर्व होना चाहिये। इस भाव से मुझे गुरुकुल संचालकों का आदर्श ठीक प्रतीत होता है, गुरुकुल ने कुछ तो संजीवन बूटी का काम किया है और संस्कृत प्रचार में सहायता दी है। नहीं तो शनैः शनैः सर्वनाश हो रहा था, जिसका परिणाम स्यात् यह होता कि जहाँ वेद ध्वनि से वायु मण्डल पवित्र होता था, जहाँ कपिल, गौतम, कणाद, व्यास, वशिष्ठ, वाल्मीकि आदि महापुरुष हुए जहाँ राम, कृष्ण और बुद्ध अवतार हुए जहाँ हनुमान, भीम, अर्जुन जैसे वीर पराक्रमी हुए, जहाँ हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, भीष्म, ध्रुव जैसे सत्य संकल्पवान् हुए जहाँ शिवि, बलि और दधीचि जैसे सर्वस्त्यागी हुए जहाँ भरत और लक्ष्मण जैसे भाई, जहाँ सीता, सावित्री, गार्गी, मैत्रेयी आदि जैसी नारी हुईं, वहाँ अर्धकोट सुसज्जित, शिखा सूत्र विहीन, सभ्य असभ्य मिश्रित, श्वेताश्वेत वर्णधारी, चाकचूर, शिवहट अग्निहोत्री ही दिखाई देने लगते, जिनको न पश्चिम वाले पहचानते और न पूर्वीय जो 'त्रिशंकुरिव अन्तराले तिष्ठ' वाली गति को पहुँचकर ىصلم صلمى ، صلم ىهو ىىه न इधर के रहते न उधर के। इसलिए भगवान् कृष्ण ने कहा—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।'

स्वावलम्बन-सेवा गुरुकुल के स्नातक सर्कारी पदों के अधिकारी नहीं हो सकते, यह अच्छा ही है। गुरुकुल सर्कारी सहायता पर निर्भर नहीं और उसके संचालक प्राय अपने विचारों में स्वाधीन हैं यह भी ठीक है, सरकार की नियंत्रित शिक्षा पद्धति से भिन्न गुरुकुल की शैली है यह भी उचित है, भारत में जितनी देश हितकारिणी शिक्षा पद्धति निर्धारित की जा सकें, करनी चाहियें। जैसे मोक्षप्राप्ति के अनेक साधन हैं—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य प्रवृत्ति मार्ग, अथवा निवृत्ति-मार्ग इसी तरह विद्या प्रसार के भी अनेक उपाय हैं।

किन्तु, मेरे मन में कुछ आशा और कुछ आशंका भी है, जिनकी ओर आपका ध्यान नम्रता पूर्वक आकर्षित करना चाहता हूँ।

'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' ।'
'तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः,
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति ।'

इस चेतावनी के अनुसार मुझे पूर्ण आशा है कि गुरुकुल के आचार्य तथा अध्यापक-वर्ग परस्पर परामर्श और निज अनुभव से नई नई आयोजनाओं के खोज में रहते होंगे और पुरानी शिक्षाओं को नई नई आकृति में, नई अवस्था तथा नवीन आवश्यकताओं के अनुकूल बदलते रहते होंगे । मुझे आशा है, कि आप ने यह भी सिद्ध किया होगा, कि आधुनिक सामाजिक दशा को देखते हुए छोटे बच्चों का बड़े बच्चों के साथ एक छात्रालय में सहपाठ और सहवास किन नियन्त्रणों के आधीन होने चाहियें अथवा किस अवस्था तक के बालकों को एक आश्रम में पढ़ाने में सुगमता होती है, इसका भी आपने अनुभव किया होगा। यूरोप में नित्य नये आविष्कार होते रहते हैं, जैसे माटसोरी Montessori, किंडर गार्टन Kindergarten और डाल्टन Dalton नामों से उपाय छोटे बच्चों के लिये प्रसिद्ध हैं । स्यात् आपने भी सत्कृत ज्ञान वृद्धि के लिये कुछ इस ओर अवश्य अन्वेषण किया होगा । आपने भली भाँति जाँचा होगा कि गुरुकुल-जीवन में वास्तविक चरित्र गठन किस प्रकार, कैसे सद्गुरु और कैसे नियमों के अधिकृत हो सकता है । वेद, वेदाङ्ग, आरण्यक, ब्राह्मण, दर्शन और गृह्य, सूत्रादि श्रुति, स्मृति के अतिरिक्त और आँग्ल भाषा के ज्ञान के अतिरिक्त वर्तमान काल में शिक्षा पूर्ति के लिये भूगोल, अर्थ शास्त्र, इतिहास तथा विज्ञान का भी स्यात् आपने समुचित प्रबन्ध किया होगा । स्यात् आप और आप जैसी अन्य संस्थाओं के अध्यापक तथा प्रबन्ध कर्ता अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिये प्राय अन्यान्य विचार करते होंगे, स्यात् यह भी आप ने सोचा होगा, कि जितना धन आप व्यय करते हैं और जितना परिश्रम करते हैं, तदनुरूप कार्य सिद्धि भी हो रही है, अथवा नहीं । गुरुकुल वृन्दावन से गत १४ वर्ष में ५० स्नातक उत्तीर्ण हुए हैं, क्या आप इससे सन्तुष्ट हैं ? यह भी विचारणीय है, कि कई छोटे छोटे गुरुकुलों के स्थान पर एक बृहद् गुरुकुल चलाना कहाँ तक नीति संगत और कल्याण कारी होगा । न जाने प्राचीन काल के नालन्द, काशी, तक्षशिला विश्वविद्यालयों में छात्रों की क्या संख्या होती थी । मेरी भावना है, कि १५०-२०० से तो कहीं अधिक होती होगी, जो अब एक गुरुकुल की संख्या है ।

'मुनीनां दश साहस्रं योऽन्नदानादि पोषणादध्यापयति विप्रर्षिः सो वै कुलपतिः स्मृतः ।'

ऐसे कुलों में अवश्य शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष आदि शास्त्रों पर बड़े बड़े विद्वान् अवश्य अन्वेषण करते रहे होंगे ।

'संघे शक्ति कलौ युगे' आज कल तो मेरे विचार में इसकी आवश्यकता है कि छोटे छोटे गुरुकुलों को छोटे बच्चों के विद्यालयों में परिवर्तित कर भागीरथी के किनारे अथवा कालिन्दी के किनारे एक बड़ा गुरुकुल हो, तो वह ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र हो जाय । ऐसे स्थान पर यज्ञादि के अतिरिक्त पुराने साहित्य को खोज निकालकर अनेक विषयों पर पुरानी पुस्तकों का विकास हो सकता है और यहाँ स्यात् आर्य मस्तिष्क और आर्य बुद्धि फिर चैतन्य हो जाय । कौन जाने कि ऐसे गुरुकुल से अध्यापक, उपदेशक, राजनैतिक नेता, समाचारपत्र सम्पादकों के अतिरिक्त कुछ ऋषि तेजोंऽश पुरुष भी निकलने लगें, स्यात् ऐसे गुरुकुल के व्यवसाय से सर्वग्राही बुभुक्षा की तीव्र आवेदना का भी कुछ प्रबन्ध निकल सके, स्यात् ऐसे गुरुकुल के कारण संसार की सेवा के लिये उत्तम विचार तथा अच्छी सामग्री का स्रोत प्रवाह फिर आर्यावर्त से होने लगे, जैसा कि प्रसिद्ध है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं-स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

प्राचीन काल में यह देश शिक्षक रहा है यह एक कपोल कल्पित घटना नहीं है । हीरन (Heeren) ने अपने Historical Researches में इसको सिद्ध कर दिया है और अभी एक सप्ताह नहीं हुआ, इटली के दो प्रमुख प्रतिष्ठित महानुभाव निष्पन्न नैपाल से सैकड़ों संस्कृत पुस्तकें ले गए हैं और उन्होंने कहा है कि पूर्वकाल मे इटली पश्चिम का और भारत पूर्व का शिक्षक रहा है, किन्तु मेरी तुच्छ सम्मति मे यह तब ही होगा जब एक बृहद्गुरुकुल को समस्त गुरुकुल शिक्षा के श्रद्धालु तन, मन, धन से सहायता देकर समष्टिरूप से स्थापित करें । तब ही मेरा स्वप्न है कि यहाँ के अध्यापक तथा स्नातक प्रमाणित कर सकेंगे कि वेद् कहाँ तक सारे ज्ञान का भंडार है, कहाँ तक आर्य सभ्यता में जीवन शक्ति है और कहाँ तक नई आयोजनाओं का अपनी सभ्यता में मिश्रित करना लाभदेय होगा । साथ ही साथ आपको समयानुकूल एकाग्रचित्त होकर संस्थारूप से राजनैतिक आन्दोलनों से कूटस्थ (Neutral) रहना होगा, नहीं तो भ्रूण हत्या का भय है, अस्तु ।

नए आविष्कारों को प्राचीन सिद्ध कर देना योग्यता प्रकट करता है ।

'द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति'

श्वेताश्वेतरोपनिषत् के इस श्लोक में अध्यात्मवादी परमात्मा और जीवात्मा का तत्त्व ज्ञान देखते हैं, किन्तु बिजली प्रयोग के पश्चात् एक महाशय इसमें Positiv और N[illegible] [illegible] ment का आयोजना देखने लगे । विमान, अग्निबाण, धनुर्विद्या, शतघ्नि, चिकित्सा आदि का हमारे यहाँ उल्लेख है, किन्तु क्या इससे हमको शान्त हो जाना चाहिये । कैसा अच्छा हो यदि नए आविष्कारों के प्रकाशित होने से पूर्व हमारे ब्रह्मचारी स्वय ही प्राचीन शास्त्रों से उनको निकालकर हमारी प्राचीन सभ्यता के महत्त्व को दिखलावें । मानने में कोई लज्जा नहीं । यदि हमारे ज्ञान भंडार में कुछ बातें नहीं हैं यथा Anesthetics, wireless t[illegible]ephone, wireless telegraph, X ray, Radium आदि, तो इसे अङ्गीकार करने में संकोच क्यों ? हमको उद्योग करना चाहिए कि हमारे ब्रह्मचारी स्वयं ऐसे आविष्कार अपनी प्रखर बुद्धि से प्राचीन शास्त्रों का आश्रय लेकर निकाल सकें अन्यथा मैं सविनय प्रश्न करता हूँ कि इस रटन से कि हमारे पूर्वज ऐसे प्रभावशाली तथा मेधावी थे, कहाँ तक सन्तोष होना सम्भव है ।

'उल्टा राम जपत जग जाना ।
वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना ॥'

यह माना कि इससे हमको उत्साह होता है, गर्व होता है, किन्तु इस अलाप से समय-कुसमय लाभ क्या ? अब तो यहाँ इस देव वाणी की हीन दशा निहार अकर्मण्यता छोड़ कर्त्तव्यपरायण होना चाहिए । मुझे विश्वास है कि गुरुकुल-जैसी संस्था ऐसे काम के लिए विशेष उपयोगी बनाई जा सकती है ।

'आवेंगे सत्र अरब से उनमें लिखा यह होगा, गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है'—यह मैंने करतल ध्वनि के मध्य में कई बार सुना है । यह अवश्य एक भजनीक का बुद्बुदरूप प्रोत्साहक पद था, किन्तु इसमें गुरुकुल के स्नातकों के सम्मुख संस्कृत प्रचार का एक आदर्श तो था । भारत से बाहर जाकर या भारत के दूरवर्ती प्रदेशों में कितने स्नातकों ने आर्य सभ्यता का प्रचार किया है । श्री पृथ्वर मेहता जैमिनी को छोड़ कितने आर्य सभ्यता की पताका भारत से बाहर ले गये हैं । पैरिस के प्रो॰ सिल्वाँ लेवी (Sylvain Lévi) ने मुझसे कहा कि जावा, बाली, सुमात्रा में संस्कृत अध्यापकों की बहुत आवश्यकता है । यूरोप भी संस्कृत के वास्तविक विद्वानों को माँगता है । अमेरिका में आर्य सिद्धान्तों के कितने उपदेशकों की आवश्यकता है और मैं नहीं समझता कि हमारे वैद्य तथा ज्योतिषी देश देशान्तरों में रहकर अपना और अपनी सभ्यता का हित क्यों नहीं करते, 'एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ।' मेघाच्छादित सूर्य से आवरण हटाने में क्यों नहीं दत्तचित्त होते, निज देश ही में कितना अज्ञान फैला है, उसको क्यों नहीं दूर करते । मुझे तो उस समय सन्तोष होगा, जब गाँव गाँव में विचरकर और निवासकर स्नातक वेद ध्वनि से अग्निहोत्र करेंगे और करावेंगे और निज चरित्र-बल तथा नित्यकर्म से कलियुग को सतयुग में परिवर्तित करेंगे ।

स्नातको, तुमको बधाई है कि तुमने इस तपोभूमि में शिक्षा पाई है । अब तुम अपनी शिक्षा को कार्य मे परिणत कर सकोगे । धर्म के दस लक्षण—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥

तुम यहाँ सीखे । अब संसार की कसौटी पर उनकी परीक्षा होगी । अब तक तो गुरु के आश्रय में भाँति भाँति के प्रलोभन तथा काम-मोहजनक विषयों से बचे रहे । अब संसार सागर की प्रचंड वायु, प्रबल तरंग तथा भयावह आवर्त्त से अपनी जीवन रूपी नौका (उडुप) को बचाना और उसको पार लगाना है । दीनानाथ दीनबन्धु चक्रपाणि तुमको शक्ति दे कि तुम धर्म पर दृढ़ बने रहो । अन्य जातियाँ इन्हीं बातों को अपने जीवन में नित्य परिणत कर रही हैं । हमको यदि आवश्यकता है, तो उपदेश की नहीं । तैत्तिरीयोपनिषद्, याज्ञवल्क्य और मनु से अधिक श्रेयस्कर उपदेश कहीं नहीं और उपरोक्त दस लक्षणों से विशेष लाभकारी न कहीं धर्म सिखाया गया । अब इनको कार्य में परिणत करो ।

'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' इस पवित्र भाव को लेकर जगत् की सविनय सात्विक भाव से सेवा शुश्रूषा के लिये कटिबद्ध हो जाओ । तुम्हारा हृदय विशाल है, तुम कह सकते हो [illegible] तुमको सिखाया गया है ।

'उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्'

तुम पुनर्जन्म के मानने वाले हो, तुम्हारे लिये—

'कालोऽह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथिवी'

इसलिये संसार में व्यवसायात्मिका बुद्धि, धर्मनिष्ठा तथा कर्त्तव्यपरायणता से निज ज्ञान फैला दो ।

यह कोई नई बात नहीं है । सन् ५१० ई॰ में परमार्थ ने चीनी भाषा में सांख्यकारिका का अनुवाद किया, ९७२ ई॰ में कितने ही श्रमण प्रचारार्थ चीन गये । लगभग अब से एक सहस्र वर्ष पूर्व नालन्द का एक मगध निवासी स्नातक धर्मदेव नामी चीन गया, उसने १८ संस्कृत पुस्तकों का वहाँ अनुवाद किया ।

मैं इस पुस्तक से विशेष उद्धरण नहीं करना चाहता । हमारे प्रोत्साहन तथा जागरण के लिये इतना ही पर्याप्त है । अब धर्म परिवर्तन कराने के लिये जाने का समय नहीं, न साहस है, न बल है, किन्तु अपनी प्राचीन सभ्यता को फैलाने के लिये, अपने साहित्य, कला-कौशल के प्रचार के लिये, अपने दर्शनों के तत्त्वज्ञान से विक्षिप्त पाश्चात्य देशों को शान्ति सान्त्वना का मन्त्र देने के लिये, बुद्धि और चरित्र के बली वाग्मियों की आवश्यकता है, जो अपने सदुपदेश, सद्विचार तथा सत्यव्यवहार से दिखला सकें, कि यह हैं भारत माता के सपूत, जिन्होंने आर्यकुल में जन्म ले गुरुकुल में शिक्षा पाई है । तब ही, प्रिय स्नातको तुम्हारा विद्या ग्रहण तथा ब्रह्मचर्य सेवन सफल होगा । यह मैं जानता हूँ, कि दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी है ; किन्तु यदि किसी नियमित नियन्त्रण के आधीन कार्य सम्पादन शुद्ध हृदय से करोगे, तो गज को ग्राह से बचाने वाले और द्रौपदी की विपत्ति में सहायता करने वाले तुम्हारी सहायता करेंगे ।

अन्त मे प्रार्थना है कि —

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरोयः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवंतु ॥
सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

जीवन्मुक्त महात्मा श्री तैलंग स्वामी का तत्वोपदेश

लेखक—श्रीयुत अजितनाथ भट्टाचार्य, बी० ए०, एल-एल० बी०

(गतांक से आगे)

जब तक मेरी अँगुली अलग नहीं है, तब तक वह अँगुली चेतनामय है, उस अँगुली को काटने ही से वह मुझसे अलग हो जायगी और तब उसमें चेतना नहीं रहेगी, तब वह अचेतन जड़ पदार्थ है। वह समस्त विश्व चैतन्यमय एक पुरुष का देह है, भिन्न-भिन्न शक्तियों का आधार, जैसे अग्नि, वायु, नदी, पर्वत और मिट्टी इत्यादि, उस देह के अंग हैं। यदि अग्नि को उस चैतन्यमय पुरुष से पृथक् भाव में न देखें, तो अग्नि में चेतना है यह समझना चाहिये। और जो यह समझते हैं कि अग्नि का उस चैतन्यमय पुरुष से कोई सम्बन्ध नहीं है, उनके लिये अग्नि केवल एक जड़ पदार्थ है। आत्मा सर्वदा सर्वगत होते हुए भी सर्वत्र प्रकाशित नहीं होती है, केवल निर्मल बुद्धि ही में प्रकाशित होती है। चूँकि इन्द्रियगण सब अपने-अपने काम में लगे हैं, इसलिये अविवेकी लोग यह समझते हैं कि आत्मा ही सब काम में लिप्त रहती है। जिस प्रकार बादलों को दौड़ते हुए देख कर यह भ्रम होता है कि चन्द्र ही दौड़ रहा है। शरीर, इन्द्रिय, मन, और बुद्धि, ये सब चैतन्य स्वरूप आत्मा का आश्रय करके कार्य में प्रवृत्त होते हैं, जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश का आश्रय कर के मनुष्यगण कार्य करते हैं।

राग, इच्छा, सुख, दुःख इत्यादि वृत्तियाँ बुद्धि ही की होती हैं, आत्मा की नहीं होतीं, कारण यह प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि सुषुप्ति के समय आत्मा रहती है, पर बुद्धि के न रहने से राग, इच्छा इत्यादि उस समय कुछ नहीं रहता है।

जिस प्रकार सूर्य का स्वभाव प्रकाश, जल का स्वभाव शैत्य, और अग्नि का स्वभाव उष्णता है, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव सत्य, चैतन्य, आनन्द, नित्यता और निर्मलता है। आत्मा की वर्तमानता, चैतन्य का अंश, और बुद्धिवृत्ति, इन तीनों के संयोग से अविवेक के द्वारा—हम जानते हैं, हम करते हैं—इस प्रकार की प्रवृत्ति होती है।

बुद्धि इस बातको कदापि नहीं समझ सकती कि आत्मा में कोई विकार नहीं है। इसलिये जीव, सब वस्तुओं को जानकर, मैं ज्ञाता हूँ, मैं द्रष्टा हूँ, इसी तरह के ज्ञान में मुग्ध हो रहा है। जिस प्रकार रस्सी को सर्प समझने से भय होता है, पर जब रस्सी की असलियत मालूम होती है तब सब भय जाता रहता है, उसी प्रकार जीव जब आत्मा को जीव समझता है, तो उसे डर मालूम होता है, पर जब यह ज्ञान हो जाता है कि मैं जीव नहीं हूँ, मैं परमात्मा हूँ, तब सब भय जाता रहता है।

एक आत्मा ही केवल बुद्धि इत्यादि और इन्द्रिय गण को प्रकाशित करती है। ये बुद्धि और इन्द्रिय गण अचेतन होने के कारण आत्मा को प्रकाशित नहीं कर सकते, जिस तरह दीप सब वस्तुओं को प्रकाशित करता है, पर उसको कोई वस्तु प्रकाशित नहीं कर सकती है। आत्मा का स्वरूप मालूम होने से उसके ज्ञान-स्वभाव से युक्त किसी और दूसरे ज्ञान की इच्छा नहीं रहती है, जिस प्रकार दीप का अपना स्वरूप प्रकाशित होने से दूसरे दीप की इच्छा नहीं रहती है।

अविद्या से उत्पन्न शरीरादि जो सब दृश्य वस्तु हैं, ये सब पानी की बूँदों की तरह क्षणस्थायी हैं। इन सब वस्तुओं का अतीत जो निर्मल ब्रह्म है वही मैं हूँ, यह ज्ञान होना चाहिये। मैं देह नहीं हूँ मेरा देह नहीं है, इस देह से मैं पृथक हूँ, इसलिये जन्म, जरा कृशता, और मृत्यु इत्यादि जो कुछ भी देह धर्म हैं, वे मेरे नहीं हैं और इन्द्रियगण भी मेरे नहीं हैं, इसलिये उनके विषय और उनके सब कार्यों के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

मेरा मन नहीं है इसलिये दुःख है, राग-द्वेष, भय इत्यादि जो कुछ भी मन के कार्य हैं, वे मेरे नहीं हैं। मैं अप्राण हूँ, मैं अमल और शुद्ध आत्मा का स्वरूप हूँ, यह बात वेद-प्रसिद्ध है। निर्गुण क्रिया रहित, नित्य जो आत्मा है, वही मैं हूँ। मेरा कोई आकार अथवा विकार नहीं, मैं चिरकाल मुक्त हूँ। मेरा जब कोई क्षय अथवा कोई संसर्ग नहीं है, तब मैं अचल, सर्वदा शुद्ध, निर्मल और आकाश की नाईं सर्वदा समभाव में सब वस्तुओं के बाहर और भीतर हूँ। जिस मनुष्य की सर्वदा यह वासना रहती है कि मैं ब्रह्म हूँ उसके सामने सब वस्तु नाशवान् प्रतीत होती हैं। ज्ञाता, ज्ञान, और ज्ञेय यह सब भेद परमात्मा में नहीं है, चैतन्यमय आनन्द स्वरूप का एक ही रूप है; इसलिये वह स्वयं दीपमान है।

जिस प्रकार एक ही आकाश जिसे घटादि उपाधि-भेद से घटाकाश कहकर भिन्न भिन्न मालूम पड़ता है और उस घट के टूट जाने से वह एक ही आकाश जो पहले था वही रह जाता है, क्योंकि आकाश भिन्न-भिन्न नहीं है, उसी प्रकार परमात्मा नाना प्रकार की उपाधि-भेद से भिन्न-भिन्न मालूम पड़ता है, उपाधि के नष्ट हो जाने से केवल एक परमात्मा ही रह जाता है।

जिस प्रकार नमक का रस, अथवा लोहू का रंग, पानी मिलने से, नमक अथवा लोहू के भेद से जल में नमक का रस अथवा लोहू का रंग हो जाता है, उसी प्रकार नाना प्रकार की उपाधि के कारण जाति नाम और आश्रम इत्यादि सब वस्तु परमात्मा में आरोपित हो जाता है।

यह मेरा है, यह मेरा नहीं है इत्यादि इस प्रकार का भ्रम ज्ञान ही संसार के बन्धन का कारण है और जब 'मैं' कहता हूँ तब आत्मा के सिवाय और कुछ नहीं है। सब लोग वही ब्रह्म हैं, इस ज्ञान के उत्पन्न होते ही मनुष्य मुक्त हो सकता है। यह उपाय भी अपने अधीन है, इसलिए इस स्वाधीन उपाय के रहते हुए भी इस संसार का असीम कष्ट भोग करना पड़ता है, बड़े दुःख की बात है।

तन्मयत्व

जीवन का प्रत्येक समय एक एक कार्य के लिए निर्दिष्ट है। मनुष्य को अपने जीवन में उस समय के अनुसार कार्य का अनुष्ठान करना चाहिये। इसका मतलब यह नहीं है कि एक समय का कार्य दूसरे समय में नहीं हो सकता। एक अवस्था में जो कार्य निर्धारित है दूसरी अवस्था में उस कार्य का सम्पादन किया जा सकता है। समय के अनुसार कार्य करने से वह कभी विफल नहीं होता, असमय में कार्य करने से वह प्रायः विफल हो जाता है, यदि उनमें से दो-एक में सफलता प्राप्ति भी हो तो भी वह सम्पूर्ण नहीं होता, थोड़ा ही होता है। योग का समय वृद्धावस्था है, जिस समय चित्त में किसी प्रकार के बुरे भाव उदय नहीं होते हैं, और मनुष्य के इन्द्रिय गण शिथिल हो जाती हैं, वही उपासना का ठीक समय है। पर यौवनावस्था मे उत्तेजित वृत्तियों को रोकने की शक्ति जिसमें है, वह भी योग शिक्षा के लायक है। अपनी प्रवृत्तियों की यदि निवृत्ति कर सके, तो यौवन काल में भी योग शिक्षा कर सकता है।

योग साधन सहज नहीं है, योग शब्द का अर्थ तन्मय है। यह तन्मय भाव जब तक कोई योग-शिक्षा नहीं कर सकता, और शिक्षा करने से भी वह फलदायक नहीं होगा। यदि तन्मय हो सको, यदि 'तुम' में और ईश्वर में कोई भेद न देखो तब तो तुम योग-शिक्षा कर सकते हो और उसके वास्तव मे अधिकारी हो। योग के सम्बन्ध में जो नियमादि हैं उनमे षट्चक्र भेद सब से बढ़कर है। यदि षट्चक्र भेद कर सको, तो दूसरी साधनाओं की आवश्यकता नहीं है। यह योग-शास्त्रों में प्रधान योग है।

जो मनुष्य षट्चक्र भेद कर सकता है, निर्वाण मुक्ति उसके लिये अत्यन्त सहज है। षट्चक्र क्या है उसको जानना चाहिये। उसके बाद यदि सामर्थ्य हो, तो उसको भेद करने की चेष्टा करनी चाहिये। तब उसका महत्व और उसकी आवश्यकता समझ में आ सकती है।

जीव-देह में अन्नमय कोष को अवलम्बन करके मनोमय कोष है, मनोमय कोष को अवलम्बन करके प्राणमय कोष है; प्राणमय कोष को अवलम्बन कर के विज्ञानमय कोष है, और विज्ञानमयकोष को अवलम्बन करके आनन्दमय कोष है। अंगुष्ठ परिमित जीवात्मा इस आनन्दमय कोष को अवलम्बन करके अवस्थान करती है। यह अवस्थान चार अवस्था में होता है। पहला, वैश्वानर—वह शरीर में रह कर उसको चलाता है, यही जीव की चेतनावस्था है, दूसरा, तैजस—वह जीव की स्वप्नावस्था है, तीसरा, प्राज्ञ—यह जीव की निद्रावस्था है, चौथा, ब्रह्म—सब प्राणियों में सब अवस्थाओं में ब्रह्मजीव शरीर में अवस्थित है, उसको जानना। ये चारो प्रकार की अवस्थायें अ, उ, म, अर्थात् ओं मन्त्र से सूचित होती हैं। नाड़ी समूह में निरन्तर जो वायु बह रही है, उसको अवलम्बन करके पञ्च वायु का अवस्थान है। इन सब के बीच से प्रधान नाड़ी जो सुषुम्ना है, वह अन्तर के ऊर्द्ध से उत्पन्न हो कर मस्तिष्क के भीतर से होकर केशमूल तक प्रलम्बित है। (क्रमशः)

हृदय की लहर

लेखक—श्रीयुत विश्वमोहनकुमारसिंह, एम. ए., बी-एल.

(गताक से आगे)

उसके जिरह में उसके बयान स बाहर और कोई विशेष बात न थी।

जब अनोखे कठघरे मे लाया गया, उसक चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई थी, मानो वह कोई जीवित मुर्दा हो। कभी कभी हृदय के द्वन्द्व की भावना नेत्रों द्वारा बाहर निकलती दिखाई देती थी। एक ओर थी समाज की लज्जा और दूसरी ओर मालती का उसमें अनन्य विश्वास। किसका सम्मान किया जाय, यह जानना उसक लिये कठिन सा हो रहा था। दोनो का एक साथ निबाह नही हो सकता। उसन अपने स्वजनो की ओर देखा, मि० रामकृष्ण बैरिस्टर को देखा, अन्त में लज्जा का जीत हुई। उसन अपन बयान म कहा—मैं बिलकुल निर्दोष हूँ। मुझे इस खून स कोई सम्पर्क नहीं। न मैं यहाँ का रहन वाला हूँ न मालती हो स मेरा कोई सम्बन्ध है। (मालती कटकित हो गई और आवेश स उसका मुख फूल उठा)। मैंन इसके प्रणय को कभी भी उत्साहित नहीं किया, मैं इसके किसी दोस्त का भी नहीं जानता। घटना के दिन मैं अपन स्थान हो पर था। घटना के दूसरे दिन शाम को मेरा मालती स भेंट हुई। उसके चेहरे पर घबड़ाहट अवश्य थी, पर किस कारण, मैं कह नहीं सकता।

मुद्दालह की ओर के दो चार गवाहो की गवाही लेकर कार्रवाई प्राय समाप्त हुई। सरकारी वकील न इन बातों पर जोर देते हुए कहा कि मालती का आचरण भ्रष्ट है, इसमें कोई सन्देह नहीं। वह अनोखे की ओर से प्राय निराश हो गई था। हीराचन्द से ऊब हो नहीं गई था, वरन् उसका बेनामी चिट्ठिया के कारण, उसके दिल म बदला लेने का ख्याल भी काफी स्थान कर चुका था।

उसके अलावे, उसके घर स छूरे का निकलना, और उसी नाप का जिससे घाव किया जा सकता है, उसके कमरे स थोड़ी दूर पर खून का छींटा मिलना, और उसका उसी रात से गायब होना, सभी उसे दोषी प्रमाणित करते हैं। यह कहती है कि इसने शाम ही को घर छोड़ दिया, पर अनोखे के बयान स मालूम होता है, वह शामको उनसे मिली। इससे अगर कुछ मालूम होता है, तो यहा कि यह खून के बाद पाँच बजे भोर की गाड़ी से रवाना हुई, और उस ट्रेन से उस जगह के दो टिकट भी बिके हैं। इससे साफ प्रकट है कि यह खून करके उसी ट्रेन से भागी है। इसका इरादा और अन्यान्य बातें मिल जान पर कैसे कहा जा सकता है कि यह निर्दोष है, वरन् यह सर्वथा दोषो है। अतएव इस कठिन से कठिन दण्ड मिलना ही न्याय-सगत है।

अनोखे बाबू के विरुद्ध कोई सबूत नही मिलता, अतएव वे दोषी करार दिये जाने लायक नहीं हैं।

मालती बेचारी गरीब थी, इसलिये इसकी ओर से कोई प्रख्यात् वकील काम नहीं करते थे। पर, जो थे उन्होने भी अपनी कह सुनाई। मालती के कर्त्तव्य भ्रष्ट भन ही हों, पर उसका हृदय बड़ा ही उच्च मालूम होता है, नहीं तो वह अपना बुराइयो को इस तरह साफ खोल-खोलकर न कहती। उसके बयान में कहीं भी बनावट की जगह नहीं। उसके शब्द-शब्द मे सचाई भरी है, क्योकि बिना सचाई के यह निर्भीकता आ नहीं सकती। केवल किसी के कमर स छूरा निकलना उसके दोषा होन का प्रमाण नहीं हो सकता। उसक अलावे छूरा बिल्कुल साफ है और छूरा के वहाँ होने का कारण भी मालती न ठीक ठाक द दिया है, इसमें भी सन्देह का कोई स्थान नही। हाँ मालती वहाँ नहीं था, पर उसक पत्रों से मालूम होता है कि वह अनोखे से मिलने के लिये पहल ही स सोच रही थी और यह एक बिल्कुल आकस्मिक घटना है कि खून भी उसी दिन हो गया। खून करने का कोई यथेष्ट Motive भी नही मिलता, अतएव यह पूरा न्याय होगा यदि उसे रिहाई दी जाय।

अनोखे की ओर स रामकृष्ण बाबु काम कर रहे थे। उन्होंने अपने बहस म कहा—अनोखे और मालती में कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता, अतएव ईर्ष्या का कोई स्थान ही नहीं रह जाता, ताकि खून कराया जाय। इसक अतिरिक्त प्रिंसिपल और प्रोफेसर के बयान से साफ मालूम होता है कि वह उस दिन पटने में था। फिर अनोखे का-सा सभ्य, सुशिक्षित युवक इन बातों मे आ पड़ेगा, यह समझ के बाहर की बात है, अतएव न्यायानुसार उसे रिहाई मिलनी चाहिए।

जज ने जूरर लोगों को चार्ज समझा दिया, और वे लोग राय करते अपने कमरे में चले गए।

कोर्ट में एक भयावह शान्ति विराज रही थी। सब लोग काना-फूसी कर रहे थे—कोई कहता रिहाई होगी। कोई कहता—भी, जज बिना सजा के न छोड़ेगा।

जूरर लोग लौट आए। अनोखे को एकमत से लोगो ने निर्दोष ठहराया। मालती को सब ने दोषी करार दिया। सिवाय एक के, वह थे, हमारे परिचित ताकीकुली खाँ।

जज ने अनोखे की रहाई करते हुए कहा कि वह सर्वथा निर्दोष है और मैजिस्ट्रेट को ही उसे छोड़ देना चाहता था। खून में कोई चश्मदीद गवाह नहीं, और ऐसी हालतों में चश्मदीद गवाह भी मिलना कठिन है। तथापि परिस्थिति और अवस्थाओं को विचार करने पर मालती दोषी मालूम होती है। Motive भी उतना पक्का तो नहीं, किन्तु बहुत सम्भव है। दूसरी बात है, कि हीराचन्द का मृत्यु वहाँ ही नहीं हुई, जहाँ आक्रमण किया गया था। खून के छींटे एक जगह हैं और मृत्यु उस स कुछ फासिले पर। इसके अतिरिक्त डॉक्टर का बयान है कि उचित समय पर सहायता मिलने स वह बच भी जा सकता था, अतएव इन बातो को ध्यान में रखते हुए और मालती की उम्र इत्यादि का ख्याल कर उस पाँच वर्ष का सख्त कैद की सजा दी जाती है।

कोर्ट भवन मानो एकाएक जग उठा। अनोखे के स्वजनों की प्रसन्नता का ठिकाना न था, मालती के सरक्षको पर मानो वज्र गिर गया। मालती भी अब स्थिर न रह सकी, उसकी आँखों से आँसुओ की लड़ी बँध गई। अनोखे पाषाणवत् खड़ा था। उसके मित्रों ने उस बधाई दी, पर वह उसे बहुत ही बुरी लगी। वह कोर्ट के बाहर चला आया और अपने को बार बार धिक्कारने लगा। यदि आज उसे फाँसी की सजा होती, तो वह प्रसन्न होता, पर उसे रहाई देकर लोगों ने फाँसी दे दी। उस का हृदय मरोड़ खा रहा था। क्या उसने नहीं कह दिया कि मालती उससे प्रात काल मिली? शायद उस की भी रहाई हो जाता। हाँ मैंने क्या कह दिया! मालती से कोई सम्पर्क नहीं! जिस आँखों से मालती ने उस उस समय देखा था, वही आँखें फिर उस के सामने आ गईं। वह डर गया। वे उन्हें शाप दे रही हैं। दें, दें, मैं भी चाहता हूँ कि उसके शाप से भस्म हो जाऊँ, तभी प्रायश्चित हो सकता है। कभी उस के दिल में आता, अब भी उस के पाँवों पर गिर कर अन्तिम बार क्षमा माँग ले, पर नहीं, वह तो देवी है, उस के पैरों के स्पर्श के भी वह योग्य नहीं। सताप के आग से ही जलना उसके लिए श्रेयस्कर है। उसका हृदय फूट रहा था, कह रहा था। स्वजनों ने उसे प्रसन्न करने की चेष्टा की, पर कोई यथेष्ट फल न हुआ।

उसी समय लोगों ने देखा, हथकड़ी से बँधी मालती सिपाहियों के बीच जा रही है। अनोखे ने देखा, उसके सिर में भयानक चक्कर आने लगा। शरीर थर्रा गया। मालती ने भी एक बार देखा। वह हाथों को फैलाने का चेष्टा करती हुई पागल की तरह दौड़ पड़ी। उसके नेत्र बरसात की गंगा हो रहे थे। उसका मुख पाला से ढँका हुआ गुलाब हो रहा था। उसकी आँखें अधखुली थीं, वह कुछ कहना चाहती थी, पर कह न सकी। अनोखे ज्ञान शून्य हो गया, न आगे बढ़ा, न पीछे। दूसरे क्षण मालती गिर पड़ी। सिपाहियो ने उसपर पानी छिड़कना शुरू किया। अनोखे को उसके साथियो ने गिरने स बचाया। दर्शकों की आँखें भी डबडबा आईं, पर उधर गुलाब का चीत्कार सुनने वाला कौन था?

कल्पना से दूर

ऊपरोक्त घटना हुए छ सात महीने से अधिक ही बीत गये। अनोखे एम० ए० की परीक्षा में सम्मिलित न हो सका, क्योंकि अनोखे अब वह अनोखे न था, अनोखे की छाया था। उसका मस्तिष्क श्मशान हो रहा था, उसका हृदय रेगिस्तान। फिर फल-फूलों की आशा व्यर्थ थी। उसने कभी स्वप्न मे भी न सोचा था कि उसकी मनोकामनाओं के पुष्पों पर इतना शीघ्र पाला पड़ जायगा। दूध का पला हुआ अब खार के समुद्र में छोड़ दिया गया। इतने ही नहीं, घर का सारा बोझ भी बहुत कुछ उसके ऊपर आ गया था, वह भी आमदनी का इन्तजाम करना नहीं, केवल

खर्चों का। उसकी सारी मिलकियत कर्ज से लद गई थी, अतएव खर्चों का इन्तजाम करना क्या था, मरने-जीने का सवाल था। यों तो पिछली बातों से वह स्वयं ही जर्जर हो रहा था, अब खाने-पीने की भी चिन्ता आ जाने से उसका रहा सहा उत्साह जाता रहा। कुछ दिनों तक तो वह हतबुद्धि सा समय बिताता रहा। समझदार लोग तो उसकी दशा पर रहम खाते थे, पर कितने हो हँसी उड़ाने से बाज नहीं आते थे। वास्तव में किसी का हृदय काँटे का बना होता है, तो किसी का पुष्प का, किसी का पत्थर का, तो किसी का चुम्बक का और इस विभिन्नता के अनुसार ही क्रिया और प्रतिक्रिया होती है।

जो हो, समय बीतने लगा, जिससे उसके हृदय का घाव कुछ कुछ भरता सा मालूम होता था। उसके अलावे उसकी परिस्थिति भी उसे संसार की ओर झुकाने की चेष्टा करने लगी। वह भला कब तक विमुख रह सकता था! यद्यपि उसे मनुष्यों से बात-चीत करना पसन्द न था, सभा इत्यादि मे जाने से उसे एक प्रकार की विकट अनिच्छा हो गई थी, तथापि उस अब जीविका की खोज करनी ही पड़ी। कभी-कभी सोचता, यदि मैं अपने दुखों से बेचैन रहूँ, तो यह कहाँ का न्याय है। दूसरो को भी तो देखना चाहिए। मेरा भोजन तो इस समय मेरे हृदय की पीड़ा ही हो रही है, पर इन बेचारे बच्चो के दुख का निवारण कैसे करूँ! जब तक जीवन है, भगवन्! मुझे ही सहने दो; पर इन लोगो को तो सुखी करो! यह सोचते सोचते उसकी आँखे छलछला आई, और विपत्तिया के बादलों को फाड़ती हुई एक मन्द मुस्कराहट भी उसके सूखे होठा पर छा गई। अब वह एकान्तवास को छोड़ गाँव के भाइयों से थोड़ा-थोड़ा मिलने लगा। कुछ लोग आश्चर्यचकित हुए, कुछ लोग प्रसन्न। अब बच्चे निराश हो उसके पास से न लौटते, वह किसी को चुमकार लेता, तो किसी की पीठ ठोक देता, और किसी को गोदी मे उठा लेता। आँगन में खाने जाता, तो मन मारे खाकर नहीं चला आता, भावजो से अथवा चाचियो से कुछ बातें कर लेता। प्रियहासिनी भी अब पहले से प्रसन्न थी, यह सोचकर कि वह और कुछ नहीं तो थोड़ी बात तो कर लेते हैं। इन सब के करने मे अनोखे को कितनी चेष्टा करनी पड़ती थी, यह तो वही जानता और समझता था, पर यह सब सर्वथा व्यर्थ ही न था, उसका हृदय भी अब कुछ हल्का मालूम होता था।

उसने अब पत्रो मे 'आवश्यकता है' की सूची देखना आरम्भ किया। अन्त में उसे एक स्कूल मे स्थान मिल गया। जिस समय वह अपनी नियुक्ति के स्थान पर जाने लगा, प्रियहासिनी द्वार पर खड़ी थी। उसकी आँखों ने कहा—'अब हमें न भूलना।' मनोरमा भी वहाँ खड़ी थी, उसने मुस्करा कर कहा—'मुझे फिर न भूल जाना, अनोखे!' उसके दिल मे एक बार फिर प्यार छलक आया। उसने एक सर्द आह ले विदा ली।

नवीनता का कुछ प्रभाव पड़ता ही है, नई जगह मे, नये साथियों के बीच, नये अनुभव का सामना करने से उसके जीवन मे कुछ देर के लिए नवीनता आगई। यद्यपि इस नवीनता मे सुख न था, पर दुख का अभाव कुछ अवश्य था। कहाँ बड़े-बड़े अरमानो का ताँता, कहाँ एक स्कूल का अध्यापन! पर वह समय के अनुकूल बनने की चेष्टा कर रहा था, अतएव वह अपने काम की ओर विशेष अनुराग दिखाने लगा। परिस्थिति आखिरस बेड़ी और जंजीर के समान है, जो शरीर को बन्धन में रख सकती है, मन को नहीं; उसके विचारों, आदर्शों, स्वप्नो को तिरोहित नहीं कर सकती। कुछ समय के लिए वह मनुष्य को अवश्य अपने अधिकार में कर लेती है।

यही दशा अनोखे की भी थी। हृदय का तो दिवाला हो ही गया था, उस के ऊपर स्वयं खाना और दूसरो को खिलाने का भार। वह परिस्थिति के बन्धन से जकड़ गया था, तथापि रह-रह कर उसको अपनी पुरानी जिन्दगी उसे तड़पाने से बाज न आती थी। वह अपनी स्थिति पर रोता, रेणु, मालती को याद कर रोता, इस ख्याल से कि वह प्यार के लिये तरसती रह गई। मैं भी रह गया, वह भी रह गई, पर जाने दो, प्यार! प्यार क्या है, मोह। इससे दूर रहना ही बलवानो का काम है। जब वह स्कूल में जाता, वह कुछ और ही रूप धारण करता। उसके सहयोगी समझते वह हर्ष की मूर्ति है, वह घर का सुखी है, क्योंकि उसे अपने दुख का बोझ दूसरों को देना पसन्द न था। यदि बनावटी प्रसन्नता से भी दूसरों को वह एक क्षण के लिये प्रसन्न कर सका, तो यह कहाँ का काम है? पर वह डेरे पर लौटते ही शोक की मूर्ति हो जाता। ज्यो-ज्यों वह वहाँ पुराना होने लगा, नवीनता जाती रही, त्यो-त्यों उसकी पुरानी याद भी जाग्रत होने लगी। अब उसे उतना वियोग का दुख न था, जितना ससार से संयोग का। दुनिया उसे काटने दौड़ती थी। वह सोचता यदि आज मैं अकेला होता, तो दुखो का बोझ इस तरह दबा न सकता था। मुझे कमाने की फिक्र नहीं होती, मैं जगलों, पहाड़ों में, मैदानों में झरना वा नदिया के किनारे स्वच्छन्दता पूर्वक खूब रोकर अपना अन्तिम जीवन शेष करता, पर यहाँ उसकी भी स्वतंत्रता नहीं। आँसू रोककर, दिल के धड़कने को रोककर, काम करना ही होगा। पसीना बहाना ही होगा। . मृत्यु ..। पर मेरे आश्रितों की क्या होगी? मेरे मरने से तो वे बे-मौत ही मर जायेंगे। वाह री माया! वाह री मोह! जैसे मैं ही लोगों का भरन-पोषण करता हूँ। वे ईश्वर के हैं, ईश्वर ही उनकी रक्षा करता है, और करेगा। पर अन्तत न उसकी मृत्यु ही हुई और न उसके आश्रितो के इन्तजाम का पैगाम मिला।

इसी तरह दिन बीतने लगा, पर उसका घाव भरा नहीं, दर्द बढ़ता ही गया। अन्त मे उसने सोचा विभिन्न कलाओ का अभ्यास करूँ, ताकि तबीयत हलकी रहे और दुनिया की दारुण व्यथा को भूल जाऊँ। अत उसने संगीतकला अध्ययन करना आरम्भ किया। उसने एक बाँसुरी खरीदी। उसे वह ले उषा आगमन के समय गगा तट पर चला जाता, और कभी अर्द्धरात्रि में उठकर मधुर तान छेड़ता। उसमें उसकी गति तो अच्छी नहीं हुई थी, पर जिस समय वह भावाविभोर हो जाता, उस समय उसे एक प्रकार से मुक्ति हो जाती, पर उसने आनन्दद्योतक गाना कभी न गाया, जब गाया तो किसी हृदय का चीत्कार। हाँ, उसने कई बार हास्यरस के गानों को गाने की चेष्टा की, पर उनमें उसे कुछ भी लुत्फ न मिला। जब गाता तो विषाद और निराश भरे गीतों को और उस दुख में ही उसे आनन्द मिलता। और इसका फल यह हुआ कि उसका हृदय किसी अज्ञात चाहना मे और भी व्याकुल रहने लगा। एक तो गीतों ही में एक प्रकार का उच्चाटन होता है, पर जब वे आहोजारी भरी होती हैं, तो उसका पूछना ही क्या! मुरली शान्ति न दे सकी, व्याकुलता दे गई, आनन्द न दे सकी, क्षुब्धता दे गई, संयोग न दे सकी, संयोग मे वियोग दे गई। एक दिन उसने अपनी मुरली को पानी मे बहा दिया। वह निर्झरिणि के साथ राग मिलाती हुई बह चली। अनोखे सजल नयनो से उसे देखता रहा।

थोड़े दिनों के बाद वह चित्रकारी करने लगा। चित्रकारी में भी उसकी गति न हुई, पर जब-जब अवकाश मिलता, वह कूची और कागज लेकर बैठ जाता, कभी बच्चो का दृश्य बनाता, तो कभी प्राकृतिक दृश्यों का। कभी-कभी वह मानवचित्र भी खींचने का प्रयत्न करता। बहुत प्रयत्न के बाद उसने एक चित्र तैयार किया। अवसर पाकर वह उसे देखता, विभोर होकर देखता, और मुस्करा भी देता, उसमे मनोरमा, रेणु और मालती तीनो ही का प्रतिबिम्ब था।

रविवार का दिन है। स्वाभाविकत आज भोजन में विलम्ब होगया, अभी खाना चूल्हे ही पर था। वह उसी चित्र को ले बार-बार निहार रहा था, उसके बहुमूल्य रंगो पर इतरा रहा था। और उसे वह सुनहले फ्रेम मे मढ़कर और सुन्दर हार विभूषित कर अपने कमरे मे रखने को सोच रहा था। उसी समय डाक-पिउन ने एक चिट्ठी दी। अनोखे कम्पित हाथों से लिफाफा फाड़ पढ़ने लगा। पढ़ना समाप्त कर, उसने पत्र छोड़ कर फिर ज्यों का त्यो रख दिया। फिर कुछ देर नि.चेष्ट-सा बैठा रहा। आँखें अश्रुपूर्ण होगई थीं। न जाने क्या सोच, एक दियासलाई लगा उसने उस चित्र को उसी में भस्मसात कर दिया। चित्र जल रहा था, अनोखे मुस्करा रहा था।

वास्तव मे, साधारण परिस्थिति के वायुमण्डल मे ही मनुष्य साधारण प्रकृति का रहता है, पर परिस्थिति असाधारण हो जाने पर मनुष्य की सज्ञा, धी, आहार-व्यवहार सभी असाधारण हो जाते हैं। यही दशा अनोखे की भी था। वह ससार की कठिनाइयो को, इसके भयंकर विपादो को, किसी तरह सह रहा था, कलाओ द्वारा अपनी मानसिक पीड़ाओं को भुलाने की चेष्टा कर रहा था, पर समय को वह भी देखा न गया। आज उस पत्र ने उसके सुख के प्याले मे विष घोल दिया। घर पर लोग दुखी थे, महाजनों का तकाजा था उसने पत्र पढ़ मन मे सोचा—मैं यहाँ कलाओ मे दिल बहलाऊँ और वहाँ पेट बहलाने का भी इन्तजाम नहीं। हा, मैं कैसा अन्धा हूँ! पर क्या मैं हो दिन-रात घर के लिए मरा करूँ, अपने वर्तमान और भविष्य दोनो को कुचल कर? और भी तो लोग हैं? जाने दो, इन बातो को सोचने से क्या लाभ! अब मैं रंग और कूचियों मे कभी खर्च न करूँगा। इसी विचार के आवेश में उसने अपनी कृति, जिसमें उसकी लालसा, पिपासा, उसके उमंग, धैर्य, उसकी आशा सभी निहित थी, भस्मीभूत कर दिया, और वह मुस्करा रहा था, समय का चक्र देख-देख कर। दूसरे ही डाक से उसके पास जो कुछ द्रव्य था। सब घर भेज दिया। (क्रमशः)

सन् १९३४ का भविष्य

लेखक—श्रीयुत पं० सूर्यनारायण व्यास, ज्योतिषाचार्य

जनवरी से १९३४ सन् का आरम्भ हो रहा है। यह वर्ष विविध हलचलों के विराट स्वरूप का उत्पादक होगा।

इस वर्ष भारत, इग्लैंड, जर्मनी, इटली, अमेरिका, आयर्लेण्ड, अफगान, चीन और जापान आदि देशों में अनेक उपद्रव और परिवर्तन की सभावना रहगा। प्राय इन देशों के शासन तत्र (पद्धति) में महत्वपूर्ण परिवर्तन होंगे। राजाओं के अधिकारों में (जहाँ राजतन्त्र है) कमी, और कहीं-कहीं तो अधिकारों की समाप्ति हो जायगा। मिनिस्टर्स में फूट होगी। बार बार अपने पदों से उनकी इज्जत घट जायगी। क्षणिक परिवर्तन, और पार्टी परिवर्तन तथा पतन तक सभावित होगा। वे लोकापवाद, एव निन्दा के पात्र बनेंगे।

प्रधान-मन्त्रियों के कार्यों में बडी बडी कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी। सभवत प्रीमियरों को अपने पद या पार्टी से हट कर नवीन पोजीशन अख्तियार करनी पडेगी। पहले पतन होकर, फिर उत्थान होना शक्य है। अनेक गुत्थियाँ सुलझाते हुए वे अकर्मण्य बनेंगे। प्रशिक्षण युद्ध की ध्वनि उनके कानों में गूँजती रहेगी। सहयोग बल टूटता हुआ दिखाई देगा।

प्रधानों के विरोध में—अथवा उनकी प्रस्तुत शासन शैली के विरोध में एक प्रबल दल खडा होगा। पुरुषों के अलावा इसमें स्त्रियों का भाग अधिक होगा। (प्रधान का फल इग्लैंड पर अधिक होगा।)

इटली के सर्वेसर्वा मोसियेमुसोलिनी यद्यपि अपने आतक, या राजनैतिककौशल से अन्य राष्ट्रों पर प्रभाव डालने का, और अपने सहयोगी बनाने का प्रयत्न करेंगे, परन्तु उनकी पीछे हार होगी। इधर जर्मनी की हिटलरशाही अपनी ध्वंसात्मक नीति से उस महत्व को कायम न रख सकेगी, जिसके कारण वह लोकप्रियता पा सकी थी। हिटलर का विरोधी शत्रु समाज बढ जायगा। कई बार वह घातक हमल से रक्षित होगा। उसके विरोध में सुसगठित दल तैयार होगा।

आयर्लैण्ड की शक्ति बढती जायगी। डी० वेलरा असफलता के गड्ढे के पास अक्सर दिखाई देगा, पर वह अपना वास्तव पैर जमाता चला जायगा। उसके सामने अन्य सत्ता को झुँकने के लिये विवश होना पडगा।

रूसो अमेरिकन व्यवसायिक सहयोग स्थाई न रह सकेगा। छोटे छोटे से प्रश्नों पर बाधाएँ खडी होंगी। अन्यान्य राष्ट्र सोवियट का विरोध करेंग, और उसकी सहायता पर अमेरिका का पक्ष लेना रूस को सह्य न होगा। परिणाम स्वरूप व्यवसायिक सधि टूट जायगी।

अमेरिका, जापान, चीन, रूस, इग्लैंड और भारत का व्यवसायिक प्रश्न उग्ररूप धारण करेगा। शीघ्र ही विषमता बढने की सभावना है। बाहरी सधि को आतरिक स्वार्थमय षड्यत्र नष्ट कर डालेगा। विरोध बढने की सभावना है।

अमेरिका के व्यापार को पुनरुज्जीवित करने के प्रयत्न में प्रे० रूजवेल्ट स्थाई सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगा बल्कि बीमारी को औषधि से दबा देना मात्र होगा, जो उस क्षण तो दब जायगी परन्तु दब कर वह दूसरे विकारों को बढाती हुई खतरनाक रूप में प्रकट होगी। एक बीमारी दबने से दूसरी उत्पन्न होगी, दूसरी दबने से तीसरी, बस यही क्रम रहेगा। नई नई पार्टियों का निर्माण होगा, और नए नए आन्दोलन उत्पन्न होंगे। परेशानी घटने के बजाय बढती जायगी। दुनिया अविश्वास के वातावरण में बनी रहेगी।

अफगान सीमाप्रान्त की स्थिति अशाति मय रहेगी। क्षणिक शांति केवल 'भ्रम'-मात्र है। गुप्त षड्यन्त्रों का विस्फोट होगा। शासन करना कठिन हो जायगा। षड्यत्र में बडी बडी शक्तियों का छिपा हाथ होगा। शासन में बड बड परिवर्तन सभव हो जायँगे।

जनवरी का 'गोलयोग' और जुलाई का 'चन्द्र ग्रहण' दुर्भिक्ष, अन्न की समस्या को लेकर, तथा बेकारी के कारण जनता में उद्वेग जागृत करेगा, असतोष बढेगा। युद्ध की शक्यता होगी।

'गोलयाग' एव ग्रहण के कारण आगे चलकर प्रलयकर जलवर्षा बाढ़, और कहीं कहीं अवर्षण से कष्ट, प्रजा में उत्पात, लूट खसोट, हत्याएँ, जलों का टूटना, युवकों का आतक बढता जायगा। भारत में काश्मीर, कोकण, सी पी, यू पी, बगाल, सिंध, बिहार, उडीसा, मद्रास, मालवा, बरार, आदि देशों में जल प्रलय, जन धन का नाश और उत्पात होंगे।

भारतीय स्त्रियों के आन्दोलन में नवजीवन आ जायगा। स्त्रियों के अधिकारों में वृद्धि होगी। महत्व बढ़ेगा और वे सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में प्रगति करती हुई दिखाई देंगी। अनेक नवीन अधिकारों पर ये दृढता से आसन जमाती जायँगी। उनकी शक्ति सामूहिक रूप से बढती जायगी। स्त्रियों के राज्यों की महत्ता होगी। 'कूर्मचक्र' के अनुसार गुजरात, मारवाड, पजाब, आसाम और यमुना के तटवर्ती गाँव, अतिवृष्टि, अनावृष्टि और उपद्रव के केन्द्र बने रहेंगे। भारत के दक्षिण भाग के राज्यों में विग्रह बढ़ेगा। राजा प्रजा मे विरोध उग्ररूप धारण करेगा। राज्यों की प्रजा में अधिकार लिप्सा बढेगी। जागृति होगा। जनवरी, फरवरी में यूरोप के किसी राजा या राजतत्र का अन्त होना शक्य है।

मारवाड के टोंक, जैपुर, जोधपुर, जैसलमेर में कुछ उपद्रव होंगे। देशान्तरों से युद्ध की ध्वनि सुनाई देगी। प्रत्येक राष्ट्रों को शिकार बनना पडगा, नए टेक्सेज लगाए जायँगे। प्रजा को कष्ट होगा। अत कलह बढेगा। श्रमजीवियों को कष्ट का सामना करना पडगा। बेकारी के कारण अनेक कारखानों का, और धनिकों का दीवाला निकल जायगा।

धनिकों की स्थिति बडी नाजुक होगी। राजकीय रक्षा प्राप्त होते हुए भी पूँजीपतियों की मिट्टी पलीद होगी। अत्याचार बढेंग! धान्य—सोने चाँदी के भाव में बडी घट बढ होगी। समस्त विश्व के लिए जनवरी और फरवरी मास बडा फर फार करने वाला सिद्ध होगा। भारत के विख्यात धनिकों की पोजीशन और जिन्दगी खतरे में रहेगी। बड बड साहस पूर्ण कार्य होंगे। भारत और इग्लैण्ड के राजनैतिक आकाश से कोई उज्ज्वल नक्षत्र टूट जायगा।

जिन लोगों का कुछ समय पूर्व नाम भी नहीं सुना होगा, वे आगे बढते हुए दिखाई देंग। लोगों के विचारों में क्षणिक और आश्चर्य कारक परिवर्तन दिखाई देगा। कट्टर विचार के लोग भी अधिकार के आसन पर, पद के लोभ से झुकते हुए दिखाई देंगे। राज्यों का अस्तित्व खतरे में दिखाई देगा। परिवर्तन इतनी शीघ्रता से होंग कि सावधान होने का अवसर भी नहीं मिलगा? परस्पर द्वेष बढ़ेगा। विचारों में मलीनता, और विलासिता अधिक बढेगी। बन्धन चाहे सामाजिक हो, राजनैतिक हो, अत्यन्त शीघ्रता के साथ इस वर्ष टूटते जायँगे। सन् १९३४ से लेकर १९४५ तक प्रति वर्ष अपनी विशेषताओं को लिये हुए होंगे। इस १० वर्ष के काल में शासन तत्र में सर्वत्र आश्चर्य जनक एव अभूतपूर्व कल्पनातीत परिवर्तन होंग। इसी अवसर में भीषण रक्तपात, देश और विश्वव्यापी क्रांति होगी। जो लोग धूर्तता, कूटनीति के कारण, षडयत्रों के गढ में बैठकर सुरक्षित बने हुए अपनी महत्ता का ढोल पीटते हैं, उनका वह पुख्ता गढ बालू के महल सा धराशाई हो जायगा। इस महाक्रांति के बाद दुनिया एक नये पथ पर अग्रसर होगी, जो पुरातन सस्कृति के द्वारा पोषित पद्धति से सचालित होगी।

नि शस्त्रा परिषद् के ढकोसले, राष्ट्रसघ का आडम्बर सभवत इसी वर्ष में अपने खोखल पन के साथ केवल नाम मात्रावशेष रह जायँगे! ये आगामी दस वर्ष विश्व मे महान् परिवर्तन करने वाले होंगे।

—(स्वराज्य से)

स्व० गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री के कुछ मननीय विचार

सकलयिता—श्रीयुत आनन्दराव जोशी,

'हमारे सम्राट् जार्ज महोदय जब भारत में सम्राट पदाभिषिक्त होने आये थे तब अपने गव्य पदार्थों के लिए वे अपनी विलायती गोशाला से अपनी नीजी मान्डी गायों को भी साथ लेते आये थे। उन्हें ज्ञात था कि भारत में अब वे पयस्विनी गायें नहीं हैं जिनके दूध और मक्खन को खाकर श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र हृष्ट पुष्ट और मेधावी बने थे। सम्राट् जार्ज की उस गो भक्ति को देख कर भी भारतीय नरेशों को अपने पूर्वज आर्यों की गो भक्ति का बोध नहीं हुआ। इसका कारण गोस्वामी तुलसीदासजी के सुन्दर और समपक शब्दों में 'जा कहँ विधि दारुण दुख दई। ताकी मति आगे हर लेई।' कहा जा सकता है। मेरे कथन का उपहास करने वाले कुछ दिव्य दृष्टि धारी विद्वानों की इस समय भारत में कमी नहीं है। वे कहते हैं कि भारत के किसान कृषि और गो परिपालन विद्या के चूडान्त पण्डित हैं, पर निर्धनता वश कुछ कर धर नहीं सकते। इस प्रकार का आक्षेप करने वाले उदार धी विद्वानों की पवित्र सेवा में मेरा यह निवेदन है कि जिस यथार्थ ज्ञान होता है वह मुक्ति तक पा सकता है तो सांसारिक सुख का पाना कितनी बड़ी बात है। 'ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति' आक्षेप करने वालों को इस पर उदार भाव से विचार करना चाहिये।'

'अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पाश्चात्य देशों के गवामिष भोजी लोग जब अपने गो वंश के परिपालनार्थ इतना उत्तम प्रबन्ध कर सकते हैं तब भारत के गो भक्त लोग उनके लिए अपने पूर्वज आर्यों का पदानुसरण कर वैसा प्रबन्ध क्यों नहीं करते? इस प्रश्न का सीधा-सादा उत्तर यही है, कि भारत के वर्तमान शिक्षा सूत्रधारी लोगों को गायों से होने वाले अलभ्य लाभों का बिन्दु मात्र भी ज्ञान नहीं है। यही कारण है कि ये लोग सब प्रकार से समर्थ होने पर भी अपने जीवन धन गो धन की यथार्थ सेवा कर उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। अंग्रेजी भारत में जो साक्षर और सधन गो भक्त बसते हैं, उनमें बड़े बड़े जमींदार और साहूकार हैं वे यदि अपने उस हित से परिचित होवें जो गो वंश की उन्नति से सम्बन्ध रखता है तो बहुत सम्भव है कि वे अपना निजी तथा अपने वर्तमान और भावी बाल बच्चों का हित सम्पन्न करते, पर अत्यन्त खेद और लज्जा की बात है कि भारत के जो धनवान प्रातःकाल उठकर—गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः। गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्—इस मन्त्र का पाठ किया करते हैं वे अज्ञानवश अपने निजी गो वंश का पालन बहुत निकृष्ट विधि से करते हैं।

जो लोग सनातन धर्म का ढिंढोरा पीटकर यज्ञों का अभिनय किया करते हैं उन्हें भी यज्ञाङ्ग गायों की गवायुर्वेद मूलक रक्षा का ज्ञान नहीं है। भारत के जिन कर्मचारियों को भारत के पुनरुत्थान से सच्चा प्रेम है उन्हें भारत को भरपेट पौष्टिक अन्न देने के लिए योग युक्त होना चाहिए क्योंकि भूखे पेट किसी प्रकार का योग नहीं हो सकता। भगवान कहते हैं—न चैकान्तमनश्नतः (६।१६)

भारत में इस समय भोज्यान्नों की समस्या दिनों दिन जटिल होती जाती है। उसे सुलझाकर सुलभ करना प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य कर्म है। विज्ञान मूलक कृषि शिक्षा की ओर गवायुर्वेद प्रमुख गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचारार्थ ज्ञान यज्ञ करना तथा तदर्थ योगी बनना ही गीता का प्रधान उद्देश्य है। भारत के जो सधन गोभक्त इस समय गीता प्रचारार्थ लाखों रुपयों का सात्विक दान कर रहे हैं उनका वह दान तभी सफल होगा जब वे गवायुर्वेद के प्रचारार्थ ज्ञान यज्ञ करने के लिए अर्जुन की नाईं योगी बनेंगे।'

• • •

इस समय भारत में जो हजार पन्द्रह सौ गोरक्षिणी सभायें गोशालायें और पिंजरापोल हैं, उनके पीछे धर्मभीरु लोगों का प्रतिवर्ष लाखों रुपया खर्च होता रहता है, पर उससे भारतीय गोधन का वह उपकार बिन्दु मात्र भी नहीं होता जिसके लिए भारत के प्राचीन आर्यों ने गौ को माता और विश्व माता के उचित पद पर स्थापित कर अपनी सर्व सम्मत बुद्धिमत्ता का परिचय दिया था। पाश्चात्य जगत के गवामिष भोजी लोगों में जिन्हें गो वंश के यथार्थ उपकारों का बोध हो गया है वे भी उसे अब अपनी भाषा में The cow the mother of ... ... it मानने लगे हैं। वहाँ के विद्वान् इस समय गवायुर्वेद के निर्माण में लगे हुए हैं उसका प्रचार वहाँ के व्यापारगण बड़ी द्रुत गति से कर रहे हैं गवामिष भोजी लोगों द्वारा गवायुर्वेद का उक्त प्रकार प्रचार किया जाना और भारत की गो भक्त जनता का उसके विषय में घोर रूप से उपेक्षा करना सीमा रहित निर्लज्जता की बात है। साधारण जनता अज्ञानवश गो वंश की जो उपेक्षा कर रही है वह उतनी नहीं खटकती जितनी उन लोगों की उपेक्षा खटकती है जिन लोगों ने सनातन धर्म और हिन्दू धर्म के उद्धार का बीड़ा उठाया है प्रति वर्ष तदर्थ बड़े बड़े अधिवेशन करते हैं पर बार बार याद दिलाने पर भी कल्याण परम्परा की दात्री गौ के परिपालन की शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता पर भूल कर भी टक् गत तक नहीं करते।'

मानव-जीवन ईश्वर से अधिक वेश्या को प्यार करता है। आदर्शवादियों को भले ही यह सफेद झूठ जान पड़े, पर इस मिट्टी की दुनिया का यह एक कठोर सत्य है। सुलभ पर दारायें हिन्दू दृष्टकोण से वेश्याओं की गिनती में आ जाती हैं और उनका आना युक्तिसंगत भी है। इस जीवन का जितना अंश वेश्या चिन्ता में व्यतीत होता है, उसका टुकड़ा क्या टुकड़ा भी ईश्वर स्मरण में नहीं खर्च होता—यह औसत का हिसाब है। ईश्वर से वेश्या अधिक सुलभ और आकर्षक है। अतः मानवता की वेश्या चिन्ता में उसकी ईश चिन्ता से अधिक ताज़गी रहती है और परिमाण भी। वास्तविक जीवन की सभी जरूरतों में इसका स्थान यदि पहला न हो, तो दूसरा शायद नहीं हो सकता और इसकी अवहेलना तो इस दुनिया की बात ही नहीं। याद रहे कि पत्नी चिन्ता वेश्या-चिन्ता नहीं। और संसार के बहुत कम हृदय केवल अपनी स्त्री की चिन्ता करते हैं। विशेषकर चिन्ता कष्ट-प्राप्य चीजों की ही होती है।

मन ही-मन किसी की इच्छा करने से प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि वैयक्तिक, धार्मिक, और सामाजिक दीवालें राह रोके खड़ी रहती हैं, परन्तु प्रबल इच्छा भी अपने मन को ही कुरेद के छोड़ती है। इस तरह मन को करने के लिए हिन्दू क्या, सारे संसार में सस्ती सुलभ पगडण्डी हैं—वेश्यायें।

कुल मिलाकर ये वेश्यायें हमारी काम पूर्ति का सुलभ साधन हैं, अतः समाज का एक आवश्यक अङ्ग हैं। इनको हम तब तक नहीं मिटा सकते, जब तक समाज के नर-सदस्यों से कामुकता का अन्त न कर दें।

इधर कुछ दिनों से हिन्दी ही नहीं, हिन्दू संसार में अवेश्यावाद का आन्दोलन राष्ट्रीयता और समा-

अवेश्या-वाद

लेखक—श्रीयुत श्रीरंग तिवारी 'विशारद'

ज-सुधार की दलील पर चल खड़ा हुआ है। अखबारों में इस विषय पर धारा प्रवाहिक निबन्ध निकल रहे हैं। वेश्याओं को दूर करने और सुधारने की तीन-चार मुख्य तरकीबें जोरों से पेश की जा रही हैं—वेश्याओं की शादी करना, उन्हें उद्योग धन्धों में लगाना सदाचार और शुद्धाचार का आकर्षक शिक्षा देना, उन्हें आर्थिक सहायता देना। कई उत्साही मित्रों ने वेश्या-वाद को निर्मूल करने की आंट में बार वनिताओं का पाणि ग्रहण भी किया है।

केवल दो चार शादियों से यह कल्पना करना कि यह कार्य सुघट है, उचित नहीं। पौने पाँच लाख खुली वेश्याओं के लिये पौने पाँच-लाख मर्द चाहिएँ। इसी तरह उन्हें उद्योग-धन्धों में फँसाना—जब सारा हिन्दुस्तान बेकार-सा हो—भी अकाट्य है। सदाचार की शिक्षा देने वालों की इस दुनिया में कमी है, क्योंकि इसकी राह पर रूप और वासना की बड़ी बड़ी दीवालें हैं। 'हुए बालम गुलाम तिरछी नजर जहाँ मटकाई।'

इन उपायों को कार्यसुघट मान कर भी समाज के अन्तः जीवन की भलाई और पवित्रता ध्यानमें रखकर क्या अवेश्यावाद वाञ्छनीय है? यह तो मोटी बात है कि संसार के मनुष्यों का एक बड़ा अंश सदा अपनी जोड़ी के साथ नहीं रहता और न रह ही सकता, जैसे कम वेतन के नौकरिये, भिखमङ्गे, अतिथि, सैनिक विदेशी, विद्यार्थी, साधु, रडुए, बूढे, कुँआर इत्यादि। इनकी काम पूर्ति की एक मात्र चारा हैं—'वेश्या बहनें।' यदि इन बार-वनिताओं की शादी कर दी जाय, तो उपरोक्त मनुष्यों की क्या हालत होगी? और उनकी कामुकता समाज को कहाँ ले जाकर पटक देगी, किसी को पता नहीं। मुझे तो वेश्या-विवाह करनेवाले मित्रों के विचार-सत्यता पर भी विश्वास नहीं जमता।

मेरे एक सम्मानित मित्र, डा० रामनारायण बन्सीकरजी से एक अमन-सज्जन ने पूछा—'क्यों डॉक्टर साहब, आपके देश में सुनता हूँ कि वेश्याओं की बस्तियाँ हैं?

हाँ हैं तो'—डॉक्टर साहब ने जवाब दिया।

'तो क्या आप इसे अच्छा समझते हैं?'

बेशक हमारे समाज को वे पवित्र रखती हैं। आपकी तरह हमारा सारा समाज वेश्या बन कर नहीं रह सकता।'

साहब बहादुर अवाक् थे।

इसी बहस पर उन्हें उद्योगी और सदाचारी बनाने की अपील भी रद्द की जा सकती है। एक उद्योग क्यों, वे तो तीन उद्योगों की मालकिन हैं—संगीत, नृत्य और । सभी पर जाहिर है, यदि ये नर्तकियाँ न होतीं, तो सभ्य हिन्दू दुनिया से सङ्गीत, विशेषतः नृत्य कब का सपना हो गया होता। वेश्याएँ हिन्दू जीवन का एक आनन्द बना दी गई हैं।

धार्मिक दृष्टि से विचार करने वालों के लिए तो वेद-पुराण खोल कर बता रहे हैं कि ये मंगला-मुखियाँ अनादि हैं और उस पुरातनकाल में भी इनका अपूर्व विकास हुआ था। इनका दर्शन शुभ माना जाता है, मन्दिरों तक में इनकी गति है और क्या चाहिए?

बात असल यह है कि वेश्यायें हमारे समाज की गन्दी नालियाँ हैं, जिससे समाज की गन्दगी साफ होती रहती है। यदि बात यहीं तक रहे, तो ठीक है, पर इनसे समाज की कुछ ऐसी क्षतियाँ भी होती हैं, जो क्षन्तव्य नहीं हैं। रूप और माया की पैठ करने वाली ये स्त्रियाँ, समाज को आर्थिक और नैतिक हानियाँ पहुँचाती हैं, जिससे जीवन कष्टकर हो जाता है। ये जोंकों की नाईं खींचती हैं। यदि हम इनकी रक्त खींचने वाली रग को ठण्ढा करदें, तो इनमें कोई ऐसा आकर्षण ही न रह जायगा जिससे समाज-सुधारकों का ध्यान इस ओर खींचना पड़े। और न कुल वधुएँ खामख्वाह इस ओर झुकेंगी, इस कुत्सित और दरिद्र जीवन से वे कुल में रहना ही अधिक पसन्द करने लगेंगी। उनके आर्थिक नियन्त्रण का कुछ उपाय ये हो सकते हैं—

(१) उनके व्यभिचार का मूल्य निश्चित करना।

(२) उन पर कड़े टैक्स लगाना, अथवा वेश्या-गामियों पर सरकारी तथा सामाजिक नियन्त्रण करना इत्यादि।

बहुत-से उपाय हैं, जिनसे वेश्या-जीवन बिना मिटाये भी भद्दा और घृणित बनाया जा सकता है।

आदर्शवाद की पट्टी बाँधकर चिल्लाने और लेख उगलने से सफलता की कोई आशा नहीं की जा सकती। प्राचीन पुरुषों की तरह वेश्याओं को नष्ट करने में नहीं, बल्कि उनके आकर्षण को दबाने में वास्तविक भलाई है और इसी अक्सीर दवा से सती और पति दोनों बच सकते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त और उनका काव्यमय जयद्रथ-बध

लेखक—श्रीयुत जैनारायण टंडन

'साहित्य मानव जीवन का एक चित्र है। उसका और मानव जीवन का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी ग्रन्थ को काव्य का पद इसीलिये प्राप्त होता है कि उसके पढ़ने से जीवन के साथ हमारा एक घनिष्ठ और नवीन सम्बन्ध उत्पन्न हो जाता है और यही कारण है कि काव्य मनुष्य के हृदय पर इतना अधिक प्रभाव डालता है।' साहित्य की आवश्यकता नवीन विचारों को तथा घटनाओं को सरक्षित रखने के लिये होती है। भारतवर्ष के साहित्य का आदि ग्रन्थ ऋग्वेद ऐसी ही घटनाओं और विचारों का वर्णन करता है। इसके पश्चात् युद्धों के वर्णन, घटनाओं के उल्लेख तथा कर्म-काण्ड के नियमों का साहित्य आता है। इस प्रकार अनेक छोटी-छोटी साहित्य जल की धाराएँ एक बड़ी धारा में आकर मिलती जाती हैं और सामाजिक जीवन पर अपना प्रभाव डालती हैं।

यदि हम बाबू मैथिलीशरण गुप्त के खण्ड काव्य—जयद्रथ बध—पर दृष्टिपात करें, तो हमको विदित होगा कि आपने हिन्दी कविता के लिये खड़ी बोली की उपयुक्तता कितनी अच्छी तरह सिद्ध कर दी है। गुप्तजी आधुनिक खड़ी बोली के सबसे प्रसिद्ध और प्रतिनिधि कवि हैं। इनकी भाषा में संस्कृत का पुट रहता है, पर इनकी जैसी परिमार्जित तथा धारा प्रवाहित भाषा और आधुनिक कवियों में कम पाई जाती है। इन्होंने अनेक प्रकार की कविता लिखी है, जिसमें खण्ड-काव्य, महाकाव्य फुटकर कविता, छायावादी कविता इत्यादि सभी प्रकार की कविताएँ की हैं। इन्होंने बहुत से ग्रन्थों का बँगला से भी अनुवाद किया है। इनके प्रसिद्ध मौलिक ग्रन्थों के नाम ये हैं—'भारत भारती', 'जयद्रथ बध,' 'पञ्चवटी', 'रंग में भंग', 'गुरुकुल', 'किसान', 'शकुन्तला', 'चन्द्रहास', 'साकेत' इत्यादि। अनुवाद के ग्रन्थों में 'मेघनाद बध' 'वीरांगना' 'व्रजांगना', 'पलासी का युद्ध', इत्यादि हैं।

आपके खण्ड काव्यों में जयद्रथ बध सर्वोत्तम है। इसकी कथा महाभारत के द्रोण पर्व से ली गई है। आरम्भ में ही हम देखते हैं कि अर्जुन की अनुपस्थिति में कौरवों ने चक्रव्यूह की रचना की है। इसीलिये पाण्डवों के शिविर में चिन्ता का साम्राज्य छाया हुआ है, क्योंकि चक्रव्यूह का तोड़ना अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था। इसी बीच में वीर पुत्र अभिमन्यु अपने गुरुओं की आपत्ति का कारण जानकर उनको धीरज बँधाता है और स्वयं युद्ध में जाने को तैयार हो जाता है। उसको युद्ध के लिये तैयार होते देख उसकी प्रिय पत्नी उत्तरा अपशकुनों से विचलित होकर उसको हठपूर्वक रोकने का प्रयत्न करती है और इस समय उसकी प्रार्थना में एक क्षत्राणी का गौरव तथा पतिव्रता पत्नी का प्रेम दोनों स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं, परन्तु अभिमन्यु उसका कहना न मानकर युद्ध के लिये प्रस्थान कर देता है। चक्रव्यूह का भेदन करके वह शत्रु सेना में कोहराम मचा देता है, पर अन्त में निःशस्त्र हो जाने के कारण कायर क्रूर कौरवों के हाथ से प्राण त्याग देता है, पर उसकी मृत्यु में विशेष हाथ जयद्रथ का है। इसके पश्चात् हमारे सामने बिलखती हुई उत्तरा का दृश्य आता है जो कि कठोर से कठोर हृदय वाले मनुष्य को भी कुछ क्षण के लिये रुला देगा। इस वर्णन में कवि को करुणा रस में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

> प्राणेश शव के निकट आकर
> चरम दुख सहती हुई,
> वह वधू फिर गिर पड़ी
> हा नाथ! हा! कहती हुई
> हा! एक ही जो विश्व में
> सर्वस्व था तेरा सदा
> यों नष्ट उसको देखकर भी
> बन रहा तू भार है!
> हे कष्टमय जीवन! तुझे
> धिक्कार बारम्बार है।

इस प्रकार वह शोकाकुल होकर सती होने का विचार करती है, पर गर्भ की रक्षा का विचार करके सती नहीं होती है।

इसके पश्चात् जब अर्जुन संसप्तकों के युद्ध से लौटकर आता है, तो वह शोक और क्रोध से विक्षिप्त सा हो जाता है और क्रोध में भरकर प्रतिज्ञा करता है कि यदि दूसरे दिन सूर्यास्त होने तक मैं जयद्रथ का बध न कर सकूँगा, तो चिता में जल कर भस्म हो जाऊँगा। क्रोध में प्रतिज्ञा करने के पश्चात् जब उसको अपनी प्रतिज्ञा का महत्त्व मालूम होता है तो वह चिन्तित होकर कृष्ण से सहायता की प्रार्थना करता है। कृष्ण उसे रातोंरात स्वर्ग ले जाते हैं और वहाँ से दिव्यास्त्र लेकर लौटते हैं। दूसरे दिन युद्ध प्रारम्भ होता है पर जयद्रथ को शकटव्यूह के पिछले भाग में छिपा दिया जाता है और सन्ध्या होने तक अर्जुन उस तक नहीं पहुँच पाता। इसी बीच में कृष्ण अपनी माया से सन्ध्या से पहले ही सन्ध्या का दृश्य उपस्थित कर देते हैं और अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये निराश होकर चिता पर भस्म होने को प्रस्तुत होता है। यह दृश्य देखकर जयद्रथ छिपे स्थान से बाहर निकल आता है और अर्जुन को बुरा भला कहने लगता है। इसी बीच कृष्ण अपनी माया समेट लेते हैं और पश्चिम दिशा में सूर्य चमकता दिखाई देता है। अर्जुन अब शत्रु जयद्रथ को मार डालता है और उसी दिन युद्ध समाप्त हो जाता है। पाण्डव लोग इस सफलता के लिये कृष्ण भगवान की प्रार्थना करते हैं और यहीं यह खण्ड काव्य भी समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस खण्ड की बीती सारी घटनाएँ दो दिन में घटित होती हैं, परन्तु घटनायें स्वयं इतनी महत्त्व पूर्ण तथा चित्ताकर्षक हैं कि जिनका वर्णन करके कोई भी कवि अपनी लेखनी को सफल कर सकता है। गुप्तजी को इस काव्य में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है। और कुछ समालोचकों का तो यहाँ तक कहना है कि जयद्रथ बध आपकी रचनाओं से सर्व श्रेष्ठ है।

यदि इस प्रकार परिपाक का विचार किया जाय तो इसमें करुण रस तथा वीर रस जो कि सब श्रेष्ठ रसों में से हैं भली-भाँति प्रकट हुए हैं। उत्तरा का विषाद पूर्ण किन्तु गौरव पूर्ण पति को रोकना, उसकी मृत्यु पर उत्तरा तथा पाण्डवों—विशेषकर अर्जुन—का विलाप अत्यन्त हृदय द्रावक है। जिस समय अपने प्रयत्न में असफल होकर चिता पर चढ़ते हुए अर्जुन कृष्ण से विदा माँगता है, उस समय का दृश्य भी अति करुणोत्पादक है—जैसे

> अपराध जो मुझसे हुए हों
> वे क्षमा करके सभी।
> कृपया मुझे तुम याद करियो
> स्वजन जान कभी कभी।
>
> • • •
>
> हा देवि कृष्णे! हा सुभद्रे!
> अब अधम अर्जुन चला,
> धिक् है—क्षमा करना मुझे
> मुझसे हुआ रिपु का भला।
> जैसा किया होगा प्रथम
> वैसा हुआ परिणाम है,
> माधव विदा दो बस मुझे
> अब बार बार प्रणाम है।

वीर रस में वीर पुत्र अभिमन्यु का साहस, शत्रुओं के साथ भयंकर युद्ध करना तथा निःशस्त्र होते हुए भी प्राण भिक्षा न माँगकर शस्त्र भिक्षा माँगना तथा दुष्ट कौरवों की क्रूरता का शिकार होकर वीर गति को प्राप्त होना ऐसी घटनायें हैं जो कि शत्रुओं को भी इस सिंह शावक की प्रशंसा करने के लिए विवश कर देती हैं। अर्जुन का दूसरे दिन वाला युद्ध तो वीर रस से परिपूर्ण है। इन दोनों रसों का वर्णन करने में कवि को आशा से भी अधिक सफलता प्राप्त हुई है। प्रसंगानुसार शब्द, उपमाओं तथा रूपकों की छटा अत्यन्त हृदयग्राही है, जैसे—

> तज दो भले ही तुम मुझे
> मैं नहीं तज सकती तुम्हें
> वह ठौर कहाँ पर है जहाँ
> मैं नहीं भज सकती तुम्हें?
> है विदित मुझको वह्नि पर
> त्रैलोक्य में तुम हो कहीं
> हम नारियों की पति बिना
> गति दूसरी होती नहीं।
> करता हुआ कर निकर दुर्धर
> सृष्टि के संहार को
> कल्पान्त में सन्तप्त करता
> सूर्य ज्यों संसार को,
> सब ओर त्योंही छोड़ कर
> निज प्रखर तर शर जाल को,
> करने लगा वह वीर व्याकुल
> शत्रु सैन्य विशाल को।

(शेषांश १४वें पृष्ठ के नीचे)

शिक्षक और भय

लेखक—श्रीयुत इन्द्रपति तिवारी 'इन्द्र'

शिक्षक और शिष्य का सम्बन्ध ठीक वैसा ही है, जैसे पिता-पुत्र का होता है। पिता के लिये यह आवश्यक है कि वह पुत्र पर शासन रखे, जिससे पुत्र उसके कथन का उल्लंघन न कर सके। क्या कोई पिता इसकी सिद्धि के लिये अपने प्रियतम आत्मज को ताड़ सकता है? कोई भी पाषाण-हृदय मनुष्य अपने कुरूप पुत्र को भी मार नहीं सकता। उसके हृदय में अपने पुत्र के लिये अगाध प्रेम होता है। जिस समय पिता अपने पुत्र से अपनी कार्य सिद्धि प्रेम पूर्वक कराता है, उस समय उसके (पिता के) हृदय में कैसा आनन्द होता है, यह लेखनी भी नहीं लिख सकती। यदि पुत्र से आज्ञापालन कराने के लिये पिता को ताड़ना देने की शरण लेना पड़ती है, तो उसे इस कार्य के लिये अपने बड़ो के सामने लज्जित होना पड़ता है। ठीक इसी तरह शिक्षक का शासन शिष्य पर होना चाहिये, जिससे शिष्य आज्ञापालन के लिये बाध्य हो।

शिक्षक का कठोर शासक होना अनिवार्य है, साथ ही अनुचित तथा कार्य सिद्धि में अति कठिन कार्यों के सम्पादन के लिये कठोर होना निषेध है। उचित मार्ग पर लाने के लिये कठोर होना उतना प्रशसनीय नहीं है, जितना प्रेमपूर्वक लाना है। एक विद्वान् कहता है कि "Speak gently as it is, Better to rule by love than fear"

अर्थात्—सज्जनता पूर्वक बोलो, क्योंकि प्रेम सहित शासन भय सहित शासन से अच्छा है। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षक को विद्यार्थी पर प्रेम-पूर्वक पिता-तुल्य शासन करना चाहिये। सप्रेम सिखलाई बाते बहुत दिनो तक बनी रहती हैं, किन्तु भयपूर्ण बताई बातें शीघ्र ही भूल जाती हैं। यही कारण है कि सध्या समय अपने माता-पिता आदि से सुनी बचपन की कथायें आज भी हम याद हैं। अत यदि आप पूर्ण शिक्षक होकर देश की भलाई करना चाहते हो, तो अपने शब्द-कोष ही से 'भय' शब्द को दूर कर दे।

बहुत से शिक्षक बालकों को पढ़ाते समय उन्हे मारना-पीटना प्रारम्भ कर देते है। फलस्वरूप-बालक भय के कारण अपनी शकाओ का समाधान नहीं करा सकता। वह बिना समझे ही 'समझ गया' यह कहने के लिये बाध्य किया जाता है। दूसरे दिन जब फिर पूछा जाता है और वह बालक उत्तर देने में असमर्थ रहता है, तब उसकी और भी इज्जे से पूजा की जाती है और यह कह कर टाल दिया जाता है कि 'उसमे समझने की शक्ति ही नहीं है।

कुछ शिक्षक अपने स्वार्थ साधन को अपने कर्तव्य से अधिक महत्त्व देते हैं। बालक की, ऐसी दशा मे इनकार करने पर, ताड़ना की जाती है। यह स्वय शिक्षक ही सोचें कि उनका यह कार्य कहाँ तक न्याय-सगत है। इन सब कारणो से शिक्षक का भय बालक के रग रगमे भर जाता है। ऐसे निठुर शिक्षक बालको के लिए हौआ हैं। कुछ अपठित माताएँ, जो बालको के पेट में अन्न ठूसना ही उसके शारीरिक उन्नति का सुमार्ग जानती हैं, बालक के खाने से मुँह मोड़ने पर शिक्षक का भय दिखाकर उनके पेट मे अन्न ठूँस देता हैं। उनका केवल यही कहना कि 'हम पण्डितजी से कह देंगे' पर्याप्त हो जाता है। कहिए ऐसे शिक्षक हौआ नहीं, तो और क्या हैं?

प्राचीन काल में जो विद्यार्थी बहुत पूछ पाछ करके अध्ययन करता था, उसका आदर किया जाता था। गुरुजी के अनुचित कार्यों का समालोचना करना उनके लिए सहज था। अध्यापक लोग भी इन समालोचनाओ को अपने आदर का अश मानते थे। क्या इस पर हम यह कह सकते हैं कि उस समय शिक्षको का शिष्यों पर शासन नहीं था? नहीं, शासन अवश्य था और आजकल जैसे शासनो से कहीं अधिक था। अतर केवल यही है कि उनका शासन सप्रेम था और इनका सभय है। जो कुछ वे शिक्षक करते सब न्यायपूर्ण होता था। इसी न्यायके कारण वे विद्यार्थी हर किसी के अनुचित कार्यों का सिंहावलोकन कर उनसे क्रान्ति मचाकर सुधार लेते थे, चाहे कर्त्ता गुरुजी ही क्यो न हों।

आज-कल गुरुजी या किसी के कार्यों की समालोचना करना दूर है। बालकों मे यह शक्ति भी नहीं कि गुरुजी से अपने पाठ्य-क्रम के विषय मे कुछ जान कर सतुष्ट हों। भला, जो बालक अपने गुरुजी से इतना भी नहीं जान सकता वह ससार में क्या कर सकता है। उसका जन्म निरर्थक है। वह जीवनान्त तक दबा रहता है। वह सदा भयभीत रहता है। वृद्धावस्था तक उसमें भला को भला और बुरे को बुरा कहने का शक्ति नहीं होती। इनका कारण केवल गुरुजी का हड्डियों तक में घुसाया हुआ भय है।

धन्य हैं, हमारे अंग्रेजी स्कूल के अध्यापक, जो इन बालको को कुछ स्वतन्त्रता दे सुधारते हैं। जो कुछ भी भय है उसका उत्तरदायित्व प्रारम्भिक शिक्षकों पर है। बचपन के विचार, भावनाएँ, और गुण जीवन के अन्तिम घड़ी तक बने रहते हैं, अत बालकों के सुमनुष्य बनने का पूर्ण उत्तरदायित्व प्रारम्भिक-शिक्षकों पर है। एक अंगरेजी विद्वान् लिखता है—

'ससार में बालको के हृदय पर सुभावनाये, सुविचार तथा सदाचार जमाना सबसे बढिया गुण है। बचपन मे अच्छी तरह जमी बाते जीवन पर्यन्त बनी रहती हैं।' अत. यदि अध्यापक गण प्रारम्भ मे ही बालकों को भयभीत बना देते हैं, तो ये बालक सदा के लिये डरपोक हो जाते हैं। वे मनुष्य बनने के स्थान पर पशु ही बन जाते हैं। जैसे एक सस्कृत ज्ञाता कवि कहता है कि,

'येषा न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शील गुणो न धर्मो।
ते मृत्युलोके भुविभार भूता,
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।'

बालक पाठशालाओ में जीवन के सच्चे लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जाते हैं वे मनुष्य बनने जाते हैं, पशु नहीं। एक अगरेज विद्वान का कथन है कि—

'बालक स्कूल में मनुष्य बनने, प्रेम सहित कार्य करने तथा सफलता के सुमार्ग को जानने के लिये जाता है।' अत जबतक अध्यापक अनुचित भय का राज्य बालकों पर से उठा न लेते, तब तक बालक वीर, ज्ञानी और गुणी नहीं हो सकते और न देश का भला ही हो सकता है।

(१३वें पृष्ठ का शेषांश)

कृष्ण और अर्जुन की शांत रात्रि में स्वर्ग-यात्रा में शांति रस का अच्छा वर्णन हुआ है और उस वर्णन से स्पष्ट प्रगट हो जाता है कि कवि का प्रकृति निरीक्षण तथा वर्णन-शक्ति कितनी प्रौढ है

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन दो दिन की थोड़ी-सी किन्तु महत्त्वपूर्णघटनाओं का सजीव चित्र प्रस्तुत करने में मैथिलीशरणजी गुप्त को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। बालक अभिमन्यु की लोकोत्तर वीरता, उत्तरा का अद्वितीय पति प्रेम, अर्जुन की दृढ़ प्रतिज्ञा, कृष्ण भगवान की भक्तवत्सलता, क्रूर कौरवो की नीचता, जयद्रथ का भीरुता, इत्यादि अनेक भावों का सजीव और हृदयग्राही वर्णन इस ग्रन्थ में मिलता है

भाषा पर विचार करने से हम इस काव्य को भाषा में कहीं शिथिलता अथवा भरती के शब्दों का प्रयोग नहीं पाते और न कहीं व्याकरण के नियमो का ही उल्लघन किया गया है। यथार्थ में मैथिलीशरणजी की कविता को भाषा—विशेषकर इस काव्य की भाषा—उन मनुष्यों के लिये मुँहतोड़ उत्तर है, जो कि यह कहते हैं कि खड़ी बोली में काव्य भाषा के गुण नहो आ सकते। इनकी भाषा में माधुर्य, ओज तथा प्रसाद तीनों प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। इस भाषा को मधुरता म हरिगीतिका छन्द वीर-रस का वर्णन करने के लिये उपयुक्त नहीं है। अतएव युद्ध इत्यादि का वर्णन करने में यदि कवि ने किसी और छन्द का प्रयोग किया होता, तो अच्छा होता।

तुलसी का ब्याह

लेखक—श्रीयुत रघुनाथसिंह बी० ए०

उषा स्मित हो उठी थी। उस स्वर्गीय स्थिति पर मुग्ध हो आकाश दीप बेत्र मूँद चुके थे। तटवर्ती गगन चुम्बी मन्दिरों एवं धवल भवनों के झरोखों में बैठे पक्षीगण उषा अभिनन्दन में अपनी माधुरी उँडेल रहे थे। चाह लोल लहरें अर्घ्य की गिरती जल धारा द्वारा उन्मिथित हो सोपानों को जाग्रत जगत् का स्मरण दिला रही थीं। दूर पर बैठे स्तवन निरत भक्त के प्रफुल्लित हृदय द्वारा उठते पदों के अवरोह एवं आरोह में हृदय-तन्तु झंकरित हो उठे थे।

धीरे धीरे वह स्मिति आकाश पथ में विलीन होने लगी। जाग्रत जगत् ने भी करवट बदली। नंगे भिखमंगों, पाखण्डियों एवं शोहदों से गंगा का पवित्र तट भरने लगा। स्वार्थी हृदयों की कपट पूर्ण मीठी ध्वनियों द्वारा आश्रम एवं गर्म हो चले। कितने त्रिपुण्ड एवं गोपीचन्दन धारी गत दिवस का पाप, माँ गंगा की पवित्र गोद में रख, नवीन की रचना करते सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। मैं भी अपने पापों पर विचार करता धीरे धीरे सीढ़ियाँ समाप्त कर रहा था। ऊपर फर्श पर आया ही था कि, एक पंच वर्षीया बालिका इधर उधर आश्चर्य पूर्वक देखती, सीढ़ी उतर रही थी। उसके पीछे षोडश वर्षीया युवती श्वेत वस्त्र पहने, धोती दबाए ताँबे का कमण्डलु लिये आ रही थी। युवती ने बालिका को सम्बोधित कर कहा—धीरे धीरे उतरो न!

बालिका घूम कर खड़ी हो गई।

'गिर पड़ोगी, संग चलो बेटी।'

बालिका ने फर्श पर एकत्र हुए स्त्रियों एवं बालिकाओं के झुण्ड की ओर उँगली उठाते हुए पूछा—छोटी माँ, यह क्या है?

'तुलसी का ब्याह।'

'तुलसी?'

'हाँ! तुम्हारा भी ब्याह इसी तरह एक दिन होगा।'—युवती ने मुस्कराते हुए कहा।

बालिका लजा उठी, युवती से लिपट, उसकी छाती में मुख छिपा लिया। युवती बालिका के उन्नत घुँघराले बालों युक्त मस्तक पर प्रेम पूर्वक हाथ फेरने लगी। युवती ने ज्योंही बढ़ने के लिये पैर उठाया, बालिका ने उँगली पकड़ कर कहा—चाचीजी! किससे ब्याह होगा?

'भगवान् से।'

'भगवान्?'—बालिका ने आश्चर्य पूर्वक चारों ओर देखते हुए पूछा।

'हाँ।'

'वह तो दिखाई नहीं पड़ते।'

'सब जगह हैं बेटी। वह अन्तर्यामी हैं।'—युवती ने सलिला भागीरथी की ओर देखते और गम्भीर श्वास लेते हुए कहा।

युवती पुनः चलने का उपक्रम करने लगी। बालिका ने उँगली खींचते हुए कहा—चाची?

युवती घूमकर खड़ी हो गई।

'ब्याह न देखोगी?'

युवती ने कुछ उत्तर न दिया।

'देखो, वहाँ ढोल बज रहा है, सब लोग गाती हैं।'

'गाने दो बच्ची! चलो हम नहा आवें।'

'क्यों माँ?'

'देर होगा।'

'नहीं छोटी माँ, मैं ब्याह देखूँगा'—बालिका ने प्रेम से युवती की धोती हिलाते हुए उसके मुख की ओर आकुल नेत्रों से देखकर कहा।

'शुभ कार्य में मेरा जाना ठीक नहीं है।'

'क्यों रानी माँ?'

युवती कुछ उत्तर न दे सकी। बालिका को उठाकर छाती से लगा लिया। रक्त अधर गुलाबी गालों पर जा लगा। बालिका को फुसलाते हुए कहा—चलो नहा आवें।

'नहीं चाचाजी।'

फिर देख लेना। घर पर हम लोग भी अपनी तुलसी का ब्याह करेंगी। तुम माड़ो का प्रबन्ध करना और मैं पाहुर बनाऊँगी। बारात आने पर हम सब मिलकर गावेंगी।'

नहीं छोटी माँ, जहाँ सब लड़कियाँ बैठी हैं वहाँ मैं भी बैठूँगी।'

रानी बिटिया अभी नहीं। अपने ब्याह का न्योता लेकर आना, तो उन लोगों को देना भी और बैठना।'

'अच्छा चाचीजी थोड़ी देर ही बैठो न!'

भला हम लोग कैसे बैठेंगी? कुछ न्योता या करनी तो साथ लेकर आई नहीं हूँ। कल आना तो बैठना।'

'नहीं छोटी माँ, आज ही।'

'नहीं लक्ष्मी बिटिया।'

'मां?

बालिका का प्रफुल्लित मुख उदास हो उठा। वह युवती के मुख की ओर एक-टक देखने लगी। युवती बालिका का उदास मुख देख विकल हो उठी। उसने उदास होकर कहा—अच्छा मुन्नी तुम बैठो। मैं नहाकर आती हूँ।

'तुम न चलोगी?'

'नहीं बच्चा! तुम देखो, मैं अभी आती हूँ।'

'क्यों रानी माँ?'

'यदि वे मुझे वहाँ न बैठने दें, तो तुम क्या करोगी नन्हीं?'—युवती ने मुस्कराते हुए बालिका का मुख चूम कर कहा।

'मैं लड़ूँगी लेकिन छोटी माँ! तुम्हें क्या न बैठने देंगी?'

'क्योंकि तुम्हारे चाचाजी नहीं हैं बेटा।'—युवती ने जाह्नवी की ओर मुख करके कहा।

वह उदास हो उठी। बालिका कुछ समझ न सकी। माँ का म्लान मुख देख उसका भी मुख कुम्हला उठा। उसका सब उत्साह समाप्त हो चुका था। उसने आगे से आगे बढ़ कर कहा।

'चलो माँ, नहा आवें।'

'नहीं मुन्नी, चलो मैं भी चलती हूँ!'—युवती ने बालिका को गोद में उठा कर छाती से लगा कर कहा।

स्त्री का हृदय बालिका के उदास मुख को देख कचोट उठा था। बालिका ने युवती के गले में हाथ डाल एवं कन्धे पर अपना गाल रख कर कहा—माँ! वे तुम्हें खुनसायँगी?

'नहीं बेटी! खुनसाने से क्या होता है।'

'ना माँ।'—कहते कहते बालिका ने माँ के वक्षस्थल में मुख छिपा लिया। माँ के पलक अश्रुकण पूर्ण हो गये। उन्हें अंचल से पोंछती हुई बालिका को हृदय से लगाये भागीरथी की ओर उतर चली। मैं किंकर्तव्य विमूढ़ सा खड़ा रह गया।

रूस और जापान

लेखक—श्रीयुत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

रूस जिस तरीके से अपनी पूर्वी सीमापर युद्ध की तैयारी कर रहा है, उसे देखकर यह अनुमान करना कठिन नहीं है कि उसे जापान की नीयत पर अब ज़रा भी विश्वास नहीं रह गया है। उसके मन में यह पक्की धारणा हो गयी है कि जापान निकट भविष्य में ही साइबेरिया पर आक्रमण करना चाहता है। इसी से वह उससे लोहा लेने के लिए पहले से ही कटिबद्ध हो जाना चाहता है।

जापान के समाचार पत्रों में आज कल इसकी खूब चर्चा हो रही है। इनमें से बहुतों में जानबूझ कर वास्तविक परिस्थिति का अतिरंजित वर्णन प्रकाशित किया जा रहा है। उनका मुख्य उद्देश्य यह मालूम होता है कि सर्व-साधारण के मनमें रूसी खतरे का भय उत्पन्न हो जाय और वे जापान के युद्ध विभाग की नीति को अधिक सहानुभूति के साथ देखने लगें। अवश्य ही इस प्रकार के कार्य में जापान के साम्राज्य वादियों का बहुत बड़ा हाथ है, जो सारा दोष रूस के मत्थे मढ़कर जनता को युद्ध मन्त्री जनरल आराकी तथा उनके सहयोगियों का समर्थन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहते हैं।

दोष किसका है

जिन्होंने पिछले दो-तीन वर्षों से पूर्वी एशिया में होने वाली घटनाओं पर ज़रा भी विचार किया है उनसे यह बात छिपी नहीं है कि इस समय वहाँ जो कुछ हो रहा है, उसके लिए प्रधानतया जापान ही उत्तरदायी है। रूस का उसमें प्रायः कोई दोष नहीं है।

मंचूरिया तथा उत्तर चीन में जापान ने जो सैनिक कारवाई की है, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो औद्धत्य प्रकट किया है और जिस तरह राष्ट्रसंघ के निर्णय तथा नौराष्ट्रों की सन्धि की उपेक्षा कर अपने संरक्षण में मंचूकुओ नामक नये राज्य की स्थापना करदी है, उससे जापान की नीयत के सम्बन्ध में रूस के मनमें सन्देह उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। रूस ने एक बार नहीं, कई बार उससे अनाक्रमण की सन्धि का प्रस्ताव किया पर वह बराबर ऐसी सन्धि करने से इन्कार करता गया।

जापान के इस व्यवहार का कारण और कुछ नहीं, सिर्फ इतना ही है कि जापान एशिया में अपने विस्तार का मार्ग निष्कंटक बनाने के लिए रूस से युद्ध करना अनिवार्य समझता है। उत्तरी जापान के अत्यन्त प्रभावशाली पत्र 'हाक्काई टाइम्स' ने साफ साफ लिखा है कि उक्त प्रस्ताव के अस्वीकृत करने का मुख्य कारण यह है कि जापान के सैनिक अधिकारी रूस से किसी तरह का बन्धुत्व स्थापित करना नहीं चाहते। उनका ख़याल है कि 'अब पूर्वी एशिया में रूस के पराक्रम को नष्ट करने और संसार के इस भाग में उसकी सारी महत्त्वाकांक्षाओं पर हमेशा के लिए पानी फेर देने का समय आ गया है।'

इन विचारों के सबसे बड़े समर्थक जापान के युद्ध मन्त्री जनरल आराकी हैं। केवल मंचूरिया और जहोल पर नियन्त्रण स्थापित करने से ही उन्हें संतोष नहीं हुआ। वे एक दिन एशिया मात्र पर जापान का आधिपत्य देखना चाहते हैं। सोवियट रूस से युद्ध छेड़ने और मंगोलिया तथा व्लाडीवोस्टक (रूसी बन्दर) पर अधिकार कर लेने का विचार उन्होंने खुले आम प्रकट किया है। जापान ने राष्ट्रसंघ से सम्बन्ध विच्छेद करने का जो निश्चय किया था, उसमें प्रधानतया आराकी का ही हाथ था। वे चाहते हैं कि वाशिंगटन की नौ सन्धि के अनुसार जापानी नौ शक्ति के लिए जो बन्धन लगा दिए गए हैं वे तोड़ दिये जायँ और जापान का बेड़ा अधिक शक्तिशाली बना दिया जाय। बजट में करोड़ों रुपये का घाटा हो रहा है, पर वे सैनिक व्यय की वृद्धि के लिए बराबर जोर देते रहे हैं। वे साफ साफ कहते हैं कि 'आर्थिक कठिनाइयों को (इस मामले में) कोई महत्त्व ही न देना चाहिये।

चीनी पूर्वी रल्वे के सम्बन्ध में रूस जापान या रूस और मंचूकुओ के बीच में जो झगड़ा चला था, उसका हाल पाठकों को मालूम ही है। रूस इस रेलवे को जापान के हाथ बेचने को तैयार हो गया था पर जापान ने उसका इतना कम मूल्य लगाया कि सौदा पट न सका। तब जापान ने इस रल-मार्ग की उपयोगिता नष्ट करने की गरज से वहाँ रेल की नयी नयी शाखाएँ खोलना शुरू किया। इन में से एक हलुन नामक स्थान से अमूर नदी तक बनाई जारही है। इस मार्ग से जापान जब चाहेगा, तब अत्यन्त थोड़े समय के भीतर सेनाएँ भेजकर साइबेरिया के आर पार जाने वाली रल्वे लाइन का सम्बन्ध तोड़ देगा, जिससे साइबेरिया का पूर्वी भाग बिलकुल निराला पड़ जायगा।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि 'सुदूर पूर्व' में इस समय जो परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, वह स्वयं जापान की ही तैयार की हुई है। अतः उसके लिए रूस को दोषी ठहराना जापान के पत्रकारों एवं राजनीतिज्ञों की स्वार्थ परायणता तथा निन्दनीय प्रचार-नीति का ही सूचक हो सकता है।

रूस तैयार है

जो हो, जापानी आक्रमण का सामना करने के लिए रूस पूरी तरह से तैयार है। जैसा कि गत ६ नवम्बर को मास्को में सोवियट के प्रधान श्री मोलाटव ने कहा था, 'यदि हमारे ऊपर आक्रमण किया गया तो शत्रु का पूर्ण विनाश हो जायगा और हमारी लाल सेना सब तरह से विजयी होगी' अभी हाल में ही सोवियट यूनियन की कार्य समिति में भाषण करते हुए उन्होंने जापान को पुनः चेतावनी दी है। उन्होंने कहा है कि 'यद्यपि हम शान्ति के लिये ही इच्छुक हैं पर हम अपने को सुरक्षित नहीं समझते। जापान चीन में पैर फैलाने की अपनी नीति पर डटा हुआ है और उसने राष्ट्र संघ का भी परित्याग कर दिया है। यदि युद्ध हमारे सिर आ ही पड़ा तो हमारे किसान और मजदूर युद्ध करेंगे और विजयी होंगे।'

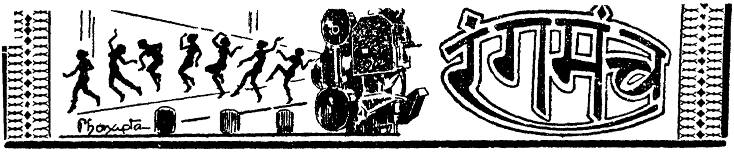
रूस की सैनिक शक्ति इस समय बहुत बढ़ गई है। जापान के रंग-ढंग देखकर पहले से ही सतर्क रहने का काफी मौका उसे मिल गया है, अतः जापान के लिये इस समय उससे लड़ाई छेड़ना, मानों अपने विनाश का आवाहन करना है। यद्यपि जापान का जहाजी बेड़ा काफी शक्ति शाली है, फिर भी उसके पास युद्ध में काम आने वाले उतने वायुयान नहीं हैं, जितने रूस के पास हैं। रूस जानता है कि जापान के सदृश्य द्वीप पर आक्रमण करने के लिये हवाई जहाजों से बढ़कर कोई साधन नहीं हो सकता इसी से उसने व्लाडीवोस्टक पोताश्रय में पर्याप्त जल-सेना तथा स्थल सेना के अतिरिक्त बहुसंख्यक हवाई जहाज भी इकट्ठे कर रक्खे हैं इस बन्दर से जापान बहुत पास पड़ता है अतः रूसी वायुयान अनायास ही वहाँ पहुँच कर बम वर्षा द्वारा जापानियों को अपार क्षति पहुँचा सकते हैं।

जापान का असमंजस

जापान भी यह स्थिति समझता है, इसी से वह अभी रुका हुआ है। खूब सोच विचार कर और पूरी तैयारी करने के बाद ही वह रण क्षेत्र में कूदना चाहता है। एक बात और है। अकेले रूस से भिड़ जाने की हिम्मत चाहे वह कर भी ले पर वर्तमान स्थिति से यह स्पष्ट है कि लड़ाई शुरू होने पर अमेरिका के भी रूस का साथ देने की संभावना है। इन दो दो प्रबल शक्तियों से लोहा लेना जापान के लिये असम्भव है, इसी से इस समय वह बड़े असमंजस में पड़ गया है।

इधर जापान की आर्थिक स्थिति भी दिन पर दिन खराब होती जा रही है। उसके राष्ट्रीय ऋण की मात्रा बढ़ गई है। कर भार असह्य होता जा रहा है। लीओन ट्रोजकी के शब्दों में जापान इस समय 'ज्वालामुखी के मुख पर बैठा हुआ है।' तात्पर्य यह है कि वर्तमान स्थिति अधिक समय तक टिक नहीं सकती। अतः यदि युद्ध करना ही है, तो उसमें देर न करनी चाहिये।

जापान इस समय इसी दुविधा में पड़ा हुआ है, रूस अपनी ओर से युद्ध छेड़ना नहीं चाहता। वह केवल जापानी खतरे का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहता है, किन्तु उसकी तैयारी का उल्लेख कर जापान के सैनिक अधिकारी रण सामग्री बढ़ाने पर और भी अधिक जोर दे रहे हैं। 'होक्काई टाइम्स' के शब्दों में इसका परिणाम यह होगा कि दोनों ही देश एक दुष्ट चक्र में फँस जायँगे और दोनों ओर से एक दूसरे की देखा देखी रण सामग्री बढ़ाने तथा सेना इकट्ठा करने का नतीजा यह होगा कि युद्ध करना अनिवार्य हो जायगा। यदि युद्ध हुआ, तो जापान की क्या दुर्गति होगी, कहना कठिन है



परदेशी-प्रीतम

लेखक—श्रीयुत नरेश'

बहुत दिनों से परदेशी प्रीतम का नाम सुन रहा था। सौभाग्य वश हाल ही में उसे देखने का मौका भी मिला। फिल्म साधारणत काफी अच्छा हुआ है, लेकिन जितनी आशा लेकर मैं गया था, उतनी ही गहरी निराशा भी हुई। श्री केशरीकिशोरशरण भी साथ में थे, उन्हें भी कुछ उतना अच्छा न जँचा।

माधुरी अपनी अदा और नजाकत भरी अभिनय कला के लिये काफी मश हूर है लेकिन इस फिल्म में उसकी खुलखुलाहट ने सीमा का अतिक्रमण कर दिया है। उसकी हँसी बहुत अस्वाभाविक है और बेतरह खटकती है। यह हँसी उल्लास की, मादकता की, और अल्हड़पन की हँसी नहीं, बनावट की हँसी है।

राजा सैंडो अपनी अभिनय कला के लिये प्रसिद्धि प्राप्त करते जा रहे हैं। पर, मैं यह जानना चाहता हूँ कि उनकी कला उन्नति की ओर अग्रसर हो रही है, या अवनति की ओर, क्योंकि जिस कमाल की एक्टिंग उन्होंने 'अवानी दीवानी' (F mmi L Y nth) में दिखलाई है वैसी इसमें नहीं हो सकी। मुझे आश्चर्य होता है कि इस फिल्म में हजरत ई० बिलीमोरिया भी चूक गये। चपत खाने पर प्यार को दबा कर उमड़ते हुए क्रोध का जैसा भाव दिखलाना चाहिये, वैसा वह नहीं दिखला सके।

डाइरेक्शन की त्रुटियों को देखकर और भी दुःख हुआ। पहली बात तो यह है कि देहात की लड़की लीलू को उन्होंने एक दम निर्लज्ज मिस अमेरिकन ? बना दिया है। इसके अलावे, गाय चराते समय जो डाकू लीलू को उठाकर ले भागता है, उस पर लाठियों की मार पड़ती है, लेकिन लाठियों को पीठ पर पड़ने नहीं दिया जाता। उस पर मजा यह कि आवाज बहुत जोरों की होती है, मानो वे लाठियाँ मनुष्य के बदन पर नहीं, पत्थर पर पड़ रही हों। और एक बार तो लाठी पड़ी और कुछ आवाज नहीं हुई, पर जब हाँथ हटा तो तड़ाके का शब्द हुआ। इसी तरह की अनेक छोटी मोटी त्रुटियाँ रह गई हैं, जिनसे फिल्म बहुत भद्दा हो गया है।

कथोपकथन फिल्म की जान है। उसकी सफलता पर ही फिल्म की सारी सफलता निर्भर करती है और इसका उत्तरदायित्व हिन्दी के यशस्वी लेखक—श्री धनीराम 'प्रेम'जी के हाथ में था।

प्रेमजी नये ढंग के ऊँचे कला मर्मज्ञ हैं और सिनेमा सम्बन्धी विशेषताओं के विशेषज्ञ भी। इसलिये पूरी आशा थी कि कथोपकथन अत्यन्त स्वाभाविक होगा परन्तु मुझे यह देख कर आश्चर्य के साथ साथ अपार दुख हुआ कि लीलू एक ग्रामीण बालिका होते हुए भी कहीं जीवन की उत्कट आकांक्षा इत्यादि इत्यादि कड़े कड़े शब्दों का व्यवहार करती है, तो कहीं 'पियारे' जैसे देहाती शब्दों का। पता नहीं प्रेमजी की देख रेख में ऐसी भूल कैसे हो गई।

प्रत्येक उपन्यास और नाटक का भावारोप (Fimpha is) मनुष्य की जीवन सम्बन्धी या हृदय सम्बन्धी दुर्बलताओं पर रहता है और उसी के कारण कथानक की वृद्धि और प्रस्तार होता है। और उसी की ओर लक्ष्य करते हुए जहाँ चरम सीमा या (atasti phe) पर पहुँचती है, वहाँ कथानक की परिसमाप्ति हो जाती है परन्तु परदेशी प्रीतम में सब गड़ बड़ घोटाला है। लीलू के आचरण और मनोभावों को देख कर मालूम होता है कि कथानक का भावारोप उसकी रानी होने की महत्वाकांक्षा पर है। इसी के आवेश में आकर वह मधू के सरल विशुद्ध प्रेम को ठुकरा कर राजा के मोह फाँस में आवद्ध हो जाती है। उसके मोह का फाँस पूरी तरह तब होता है, जब उसका पति उसकी आँखें फोड़ देता है। वह अन्धी हो कर वन-वन भटकती फिरती है और अचानक नदी में गिर पड़ती है। उस समय उसकी व्यथा और निस्सहाय अवस्था से दर्शक का हृदय द्रवीभूत हो जाता है। कथानक की यही चरम परिणति है। यदि यह फिल्म यहीं समाप्त हो जाता, तो यह सभी दृष्टि से सुन्दर, समीचीन और भाव पूर्ण होता, पर यहाँ तो लेखक का अभिप्राय ही शायद कुछ दूसरा है। उन्हें तो स्वाभाविक व्यथा की प्रधानता न दिखला कर प्रेम और त्याग का कृत्रिम महत्व दिखलाना अभीष्ट था। न जाने अभागे हिन्दी साहित्य में कितने ही ऐसे महत्व पूर्ण उपन्यास भरे पड़े हैं, जो इस तरह के ऊलजलूल सिद्धान्तों के कारण बदनाम हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस नीरस अथवा असंगत कथानक के प्रस्तार का उत्तरदायित्व 'प्रेम'जी पर उतना नहीं है, क्योंकि इसके लिये कथानक का लेखक ही जिम्मेवार है, फिर भी जब 'प्रेम'जी की देख-रेख में यह फिल्म तैयार हो रही थी, तो उन्हें उचित था कि सभी तरह से इसे सुफल बनाने की चेष्टा करते।

राष्ट्र-निर्माण के कार्य में मदद दीजिये

जनता को शिक्षित करने और उसके विचारों में क्रान्ति लाने के लिये किसी भी देश मे पत्र-पत्रिकाओं का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यही कारण है कि भारतवर्ष मे राष्ट्रीय जागृति के साथ-साथ भारत-वासियो मे पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने और प्रकाशित करने की अभिरुचि भी बराबर बढ़ती आ रही है। बिहार मे भी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का काफी प्रचार है, पर यह बड़े दुख की बात है कि यहाँ पर बिहारियों का अपना कहने के लिये कोई भी ऐसा पत्र खास कर हिन्दी समाचार पत्र नहीं है, जो बिहार के किसानो और मजदूरो की विविध तकलीफो को दूर करने के लिये आन्दोलन करे, उनकी समस्याओं के हल करने मे सहायक हो और नवयुवको मे नये युग के नवीन क्रान्तिकारी विचारों को संचारित कर भारत राष्ट्र के निर्माण करने मे पूरा योग दे।

बिहार के हर एक राष्ट्रवादी, साहित्य सेवी, हिन्दी-प्रेमी, धनी और गरीब तथा किसान और मजदूर इस कमी को हृदय मे महसूस करते हैं। इसलिये यह सोचा गया है, कि पटने से एक पूर्ण राष्ट्रवादी पत्र आगामी रामनौमी (२४ मार्च १९३४) से प्रकाशित किया जाय। यह पत्र शुरू में तो साप्ताहिक रहेगा, पर शीघ्र-से शीघ्र उसे दैनिक करने की चेष्टा की जायगी। पत्र की नीति पूर्ण रूप से राष्ट्रीय होगी, उसका एक मात्र उद्देश्य राष्ट्र की सेवा करना होगा तथा साम्प्रदायिकता के सकीर्ण विचारो अथवा दलबन्दी के दलदल से कभी भी इसका कोई सम्पर्क न रहेगा। इसके लिये एक लिमिटेड कम्पनी कायम की जा रही है, जिसके डाइरेक्टरो में रहने की मंजूरी श्री श्रीकृष्णसिंह (मुगेर), श्री रामदयालुसिंह (मुजफ्फरपुर), श्री बदरीनारायणसिंह (गया) और श्री हरवंशसहाय (चम्पारन) ने दे दी है। इनके अलावा इसकी पूरी उम्मीद है कि जेल से निकलते ही देश रत्न श्री राजेन्द्रप्रसाद तथा श्री शारंगधरसिंह से भी डाइ-रेक्टरों में रहने की मंजूरी मिल जायगी।

आप सभी महानुभावो से अनुरोध है कि देश-सेवा के इस शुभ कार्य में आप लोग पूर्णसहयोग तथा उचित सलाह देने की कृपा करें। पत्र का कोई नाम अभी निश्चित नहीं हुआ है और इस सम्बन्ध में भी आप लोगो से प्रार्थना है कि आप लोग देशबन्धु, हिन्दुस्तान, मातृ-भूमि, राष्ट्र सेवक, नवभारत, भारत केसरी, भारतवीर, सिंहनाद, प्रजा-तन्त्र, रणवीर, आदि नामो मे से कोई अथवा दूसरा ही कोई सुन्दर नाम बतलाने की कृपा करें।

विनीत—देवव्रत

C/o हरिजन सेवक-मण्डल, कदमकुआँ, पटना

जैन-पथ-प्रदर्शक

जो 'जैन पथ-प्रदर्शक' नामक साप्ताहिक पत्र १४ वर्ष से निकल रहा था, वह कुछ समय से कुछ कठिनाइयों के कारण बन्द सा है। अब जनवरी सन् १९३४ से पुनः बिलकुल ही नई सज धज और सजावट के साथ फिर से निकल रहा है। 'जैन पथ प्रदर्शक' सुलेखकों, सुकवियों एवं सम्वाद दाताओं तथा प्रेमियों से निवेदन है कि वे शीघ्र हर प्रकार की सहायता करके अपने पूर्व प्रेम का परिचय देकर सचालको के उत्साह को बढ़ावें।

संचालक—

जैन-पथ-प्रदर्शक, आगरा

पुरस्कार १००) रु०

जनवरी मास की 'हिन्दी प्रतियोगिता' पर १००) रु० के कुल २९ इनाम बाँटे जायँगे। पहला इनाम ५०) रु० का होगा। विषय है—'संसार मे सबसे अधिक लाभदायी वस्तु क्या है?' २० जनवरी, सन् १९३४ ई० तक प्राप्त उत्तर ही स्वीकृत किए जायँगे। नियम व विवरण-पत्र मुफ्त भेजा जाता है।

—सेक्रेटरी, अरुणोदय आफ़िस, काशी।

संसार का सबसे छोटा सरकस

बड़े से बड़े और भीषण हिंसक प्राणियों का खेल दिखाने वाले सरकस तो संसार में कई हैं, पर अभी अभी एक ऐसे सरकस को प्रसिद्धि हुई है। जो संसार का सबसे छोटे से छोटा सरकस है। आप ख्याल कीजिए कि छोटे से छोटे सरकस में साँप चूहे बिल्ली, छछूंदर कबूतर तोते, बटेर वगैरः प्राणी होंगे पर नहीं इनसे भी छोटे प्राणी इस सरकस में हैं। इस सरकस के जन्मदाता हैं श्री सानीर चिगालो और उनके सरकस का नाम है—इन्सेक्ट सरकस। श्री चिगालो गाँव गाँव घूम कर अपना खेल दिखलाते हैं और प्रत्येक खेल में एक बार ६ मनुष्य ही रह सकते हैं। सब सरकसों की तरह इसमें भी सबसे पहले मेड परेड शुरू किया जाता है। इसके बाद पतिंगों का नृत्य आरम्भ होता हैं कई पतिंग एक डोरे पर अपना नृत्य दिखलाते हैं, इसी बीच टिड्डियाँ अपने पैरों के घर्षण से संगीत की पूर्ति करती हैं। बाद में टिड्डियाँ 'हर्डल रेस' यानी टट्टी की कुदाई का काम करती हैं और इकवेस्ट्रीअन बीटल नामक एक टिड्डी से भी छोटा जन्तु उन पर सवारी करता है। इसके पश्चात् बीटल्स अपना बॉक्सिंग दिखलाते हैं। यह खेल बहुत ही मनोरंजक होता है।

बड़े सरकसों में तो एक एक दो दो प्राणी ही होते हैं, पर श्री चिगालो को हजारों जन्तुओं को शिक्षित करके साथ रखना पड़ता है क्योंकि इनमें से अनेक जन्तुओं की आयु कुछ ही महीनों की होती है, इसलिए अधिक तैयारी न रखी जाय तो सरकस खतम हो हो जाय।

एक हाथ के कला कुशल नरपुंगव

रियासत ग्वालियर के मालवा प्रान्तान्तर्गत शाजापुर नामक जिले में नलखेड़ा नामक एक कस्बा है। इसी कस्बे में उमर खाँ नामक एक मवाली सज्जन रहते हैं। आपके एक ही हाथ है पर एक ही हाथ में आप बन्दूक से अचूक निशाना लगाते हैं, ढोलक बजाते हैं रोटी बनाते हैं सिलाई करते हैं खाट बुनते हैं साफा बाँधते हैं और तैरते हैं। एक बार एक सज्जन की सोने की अँगूठी नदी में गिर गई अनेक तैराक खोजकर हार गये, पर आपने एक ही हाथ से निकाल कर सब को चकित कर दिया। जरी के किनारों का साफा आप इस कुशलता के साथ बाँधते हैं कि सब ओर जरी ही जरी नजर पड़ती है सूत जरा भी नहीं दीख पड़ता। सिलाई आप बहुत ही महीन करते हैं और अकसर अपने हाथ ही का सिला कुरता पहनते हैं।

लन्दन का नवीन शान्त होटल

लन्दन में हाइड पार्क के समीप एक नया होटल खुला है। यह होटल इंग्लैंड का सबसे नवीन होटल है। इसमें एक हजार कमरे हैं। इन कमरों में यह विचित्रता है कि जिस कमरे में आप बैठे हैं। उसमें एक विशेष बटन के दबाने से कमरे का तापमान वही हो जाता है, जो आपके देश का है। इस होटल के प्रत्येक कमरे के साथ स्नानागार,

बरामदा और शृङ्गार-भवन है। नौकरों को बुलाने के लिए घंटी नहीं बजाई जाती, परन्तु बिजली का बटन दबाने से एक विशेष प्रकार का प्रकाश हो जाता है जिसे देखकर नौकर फौरन उपस्थित होता है। कमरे का फर्श रबड़ का बना हुआ है जिससे आवाज़ न हो। सब दीवारें दोहरी हैं। और उनके बीच में खुली जगह है। इस बिल्डिंग मे एक घंटे म २००० टन ताज़ी हवा गुजरती है। जिसमें ४०० टन तो कमरों में से हो कर गुजरती है। इसके कारण चार-पाँच मिनट में होटल का मौसम परिवर्तित होता रहता है। जो भी वायु भीतर प्रवेश करती है पहले उसे स्वच्छ कर लिया जाता है। और गर्मियो में उसे ठण्डा किया जाता है। वायु को समस्त बिल्डिङ्ग मे भेजने के लिए ५२ बड़े-बड़े पंखे लगे हुए हैं, जो अपना काम बिना आवाज़ किए ही करते रहते हैं।

१००० वर्ष की अदालत।

स्पेन के प्रसिद्ध नगर वेलिन्सवा में एक अदालत है, जिसका नाम ट्रिब्युनल आफ़ वाटर्स है। यह ९७२ वर्ष से कायम है। इलाके में पानी के सम्बन्ध में जो झगड़े पैदा होते हैं, उन पर इसी अदालत में विचार होता है।

२७०० वर्ष का मक्खन।

बर्लिन की खबर है कि डिपी क़स्बे में लोहे के ज़माने की एक कब्र खोदी गई है जिसमें एक मुर्दे का अस्थि-पिञ्जर मिला है और पास ही मक्खन पड़ा था। यह कब्र २७०० वर्ष की बताई जाती है।

सूर्य का दुश्मन।

टोकियो की खबर है कि जापान सरकार के हुक्म से विज्ञानशालाओं मे एक ऐसा गैस ईजाद की गई है, जो दिन को रात में परिवर्तित कर सकती है। वह समुद्र और पृथ्वी सब जगह धुंआ-ही-धुंआं फैला सकती है।

पृथ्वी की सौत।

स्पेन के साहली समुद्र में एक मछली पाई जाती है, जो इस क़दर अण्डे देती है कि, अगर उसकी ५ नस्लों के अण्डों को एक जगह जमा किया जाय, तो उनका वज़न पृथ्वी के वज़न से सात गुना अधिक हो जायगा।

प्लेटफ़ार्मों पर रबर।

लन्दन का समाचार है कि लन्दन और नार्थ ईस्टर्न रेलवे के अन्य स्टेशनों के प्लेटफार्मों पर रबर के फर्श लगाने का निश्चय किया गया है; ताकि रात के समय जब मुसाफिर चलें तो सोते हुए मुसाफिरों की नींद मे खलल न पड़े।



बनारस मे बडे लाट, बडी लाटिनी और छोटे लाट साहब तशरीफ लाये थे। इसलिये, म्युनिसिपैलिटी बडी मुस्तैदी से, रातों रात, सडकों की मरम्मत करा रही थी। इस पर भैया 'आज' पूछते हैं—वह जो रात को काम करने में अधिक खर्च हुआ है, वह किसको उठाना पडगा ? भला पूछो, यह भी कोई प्रश्न है ! अजी जनाब, खर्चा म्युनिसिपैलिटी देगी, और अवश्य देगी, और जब तक बनारस में बुद्धुओं का वास है, किसी न किसी प्रकार अवश्य ही वसूल कर लेगी। देखें, लाट साहब की लाडली से कौन चीं चपड करता है !

❀ ❀ ❀

लाट साहब के आगमन की खुशी में बनारस चौक स्थित चित्रा के मिश्राजी भी अपना एक खास हुडदग नृत्य दिखाने वाले थे, पर अफसोस इन्वाटेशन मजूर न हुआ ! वर्ना बनारस वाले भी इस अलभ्य, अपूर्व अवसर का लाभ उठा लेते।

❀ ❀ ❀

प० मालवीयजी के 'सनातन धर्म' नामक पत्र में एक दण्डी स्वामीजी ने 'पण्डित के लक्षण' शीर्षक लेख लिखा है, जिसमें आपने बतलाया है कि 'पडित' शब्द आज ब्राह्मण का बोधक माना जाने लगा है पर बात ऐसी नहीं है। पडित के लक्षण बतलाते हुए आपने महाभारत उद्योग पर्व के विदुर प्रजागर अध्याय ३२ का प्रमाण दे डाला है। हाय ! हाय ! यह क्या गजब कर डाला स्वामीजी ! पोंगा पथी पडित पत्र के सम्पादकजी को तो अब सीधे गगाजी की ओर ही मुख उठा कर दौड पडना होगा !

❀ ❀ ❀

सुनते हैं 'मदारी' में 'निर्मल'जी का एक चित्र छपने वाला है—जिसमें निर्मलजी की चोटी मदारी सम्पादक के हाथ में होगी।

❀ ❀ ❀

जनवरी की 'माधुरी' में किसी सज्जन ने लिखा है कि 'एक कथावाचकजी अब कहानियाँ लिख कर हिन्दी के मैदान में आने वाले हैं।' तो इसमें आश्चर्य क्या है महाशय जी, जब निरे तोताराम आलोचक हो सकते हैं, तो क्या कथावाचकजी कहानी नहीं लिख सकते ?

❀ ❀ ❀

बिना पढ लिखे अगर कोई कथावाचक व्यास हो सकता है, तो क्या लेखक नहीं हो सकता ? पूछिये जरा—श्री रामानुग्रह शर्मा व्यास से।

❀ ❀ ❀

अब की बार पोंगा पथी 'पडित पत्र'जी ने साम्प्रदायिकता के समर्थक भाई परमानन्दजी की दिल खोल खोलकर तारीफ कर डाली है, और साथ ही हिन्दू महासभा की भी प्रशंसा की है, पर आगे आप कहते हैं—'पर हिन्दू महासभा के 'सुधारकीय' विचारों का समर्थन हम नहीं कर सकते।' ठीक ही है पोंगा प्रवर, 'बिगाडकीय' विचारों वाले भला 'सुधारकीय' विचारों का समर्थन कैसे कर सकते हैं ?

❀ ❀ ❀

अलीगढ से पोंगा पथियों का एक मासिक पत्र निकला है, जिसका नाम है—'सत्सग' इसकी सातवी सख्या में एक व्यग चित्र छपा है, जिसमें अपने पथवादी एक विद्यार्थी को आसन मारे हवन करते दिखाया गया है और नीचे सुधारक धर्मी (!) एक इग्लिश के विद्यार्थी को दिखाया गया है, जो कुर्सी पर बैठा सिगरट पी रहा है और जिसके सामने टेबल पर शराब और सोडा रखा है, हाथ में प्याला है। सो 'सत्सग' जी, अपने घर का हाल भली भाँति मालूम न हो, तो जरा अपने स्वर्गीय महामहोपाध्याय शास्त्रीजी की आत्मा से तार देकर पूछ लीजिये, या हवाई जहाज से ही जरा देर को ऊपर चले जाइये !

❀ ❀ ❀

क्या अपनी 'निखट्टू की रामकहानी' लिखने वाले श्रीपरिपूर्णानन्दजी बतावेंगे, कि उसमें जगह जगह आपने अपनी कथा का कुछ मनोरजक अश क्यों छोड दिया है ?

—मस्ताना

ता० २१ नवम्बर को आगर मालवा में सनातन धर्म पर बिना बादल-वर्षा के बिजली गिर पड़ी। उस दिन ग्वालियर नरेश की वर्षगाँठ थी, स्कूल में जल्सा मनाया जारहा था। एक विद्यार्थी ने मौखिक-निबन्ध पाठ मे 'स्वगत' शीर्षक एक पास बोल डाला। बोलतेही 'क्षुभित सिंधु सह दिग्गज भूधर' का दृश्य उपस्थित हो गया। अजी जनाब, सुनते भी हो! श्री तहसीलदार सा० प्रेसीडेण्ट थे और सरकार की वर्षगाँठ का जल्सा था वर्ना वहीं, उसी दम उस विद्यार्थी की चटनी बना दी जाती! सनातनधर्म पर और इस प्रकार आक्षेप! अँसे जी कोई सनातनी ऐसा नही सुन सकता था परन्तु अफसोस दिल थामकर सुनना पड़ा!

❀ ❀ ❀

आखिर उसमें था क्या? कहते हैं वह यहाँ की भँगेड़ी और गँजेड़ी पार्टी के खिलाफ था। बस उसे इन लोगों ने समझ लिया 'हम पर कहा जा रहा है।' 'चोरों की दाढ़ी में तिनका' बन गया। बस, मजहबी रङ्ग का छींटा दिया और कई उल्लू सीधे करके धर्म का झण्डा खड़ा कर दिया! 'सनातन धर्म पर भयानक आघात हुआ है।' सुनतही लोग दौड़े! आखिर क्या किया जाय? पचायत की जाय! ताबड़ तोड़ पचायत हुई, कोई आवे या न आवे, इसकी चिन्ता न करके पचायत कर डाली गई। सरपच की राय में, और कुछ ब्राह्मण कहलाने वालों की राय में विद्यार्थी को पचायत से बन्द कर दिया गया। आखिर वह विद्यार्थी तो सुनार है, उसे बनियों की पचायत से प्रयोजन? परन्तु करते भी क्या? कभी कभी खाने पीने को उसको बुला लेते थे, वह बन्द कर दिया। लड़ाई तो हमेशा यही है और पचायत तो जामन को रोकने और खोलने का द्वार है। काजी की दौड़ मस्जिद तक, इसे ही तो कहते हैं। बड़ा अच्छा किया बेचारों ने पचायत करके सतानन धर्म की लाज रख ली और अपनी नाक।

❀ ❀ ❀

'हम बड़े हैं, धनी हैं, लोग हमारी चापलूसी करते हैं' एक छोटे से लड़के ने और वह भी सुनार न कुछ कह डाला। वह उपदेश देने वाला होता कौन है? किसी ने कहा वह तो 'स्वराज्य' ता० १२ जुलाई १९३२ में प्रकाशित हो चुका है और उसके लेखक तो गणेशदत्त शर्मा गौड़ हैं। [illegible] सुब लोगों ने इसे पढ़ा सुना था, आज क्या हो गया, जो इस अन्धे [illegible] के उत्तर मिला—अजी बढ़ाकर कहा गया है—हमें गालियाँ दी हैं। हजारों लोगों में हमारी धूल झाड़ दी गई। हम मास्टरों को विद्यार्थी पन्नालाल को और उसके लेखक को देख लेंगे। गुट तैयार हुआ, चापलूसों ने दुम हिलाई, खुशामदियों ने दाँत निपोरे।

❀ ❀ ❀

परन्तु यह 'स्वगत' तो बोलने के लिए एज्यूकेशन डिपार्टमेंट लश्कर से स्वीकृत था। फिर यह कैसी दौड़ भाग? भई, बुद्धिमानी का इजहार है। अब वे कौशिक को और एज्यूकेशन मेम्बर साहब तथा सूबा साहब को भी अपने स्वार्थ सिद्धयर्थ अपनी प्राचीन परिपाटी के अनुसार मुगालता देकर हेडमास्टर, लेखक और उस विद्यार्थी को मडी कमेटी के ऑफिस के सामने फाँसी पर लटकवा देने के लिए आकाश पाताल के कुलाबे मिला रहे हैं। बोलो पोंगा सनातन धर्मोद्धारकों की जय!

❀ ❀ ❀

इन लोगों को शीघ्र ही 'वर्णाश्रम स्वराज्य-सघ' के मेम्बर हो जाना चाहिए या सघ को इन्हें अपनाना चाहिए। यदि इतना भी न हो, तो 'धर्मवीर' धर्मोद्धारक, धर्मसाँड़, धर्मधुरधर आदि उपाधियों या मेडल्स से इनका सम्मान करना चाहिए। महात्मा गाधी के हरिजन कार्य के विरुद्ध ये लोग अपने खर्च से जहाँ तहाँ जाने को तैयार हैं, क्योंकि सुनार तक को ये पचायत में से निकाल कर अपने धर्मध्वजी होने का सार्टीफिकेट पेश कर चुके हैं। साथ ही घर के सब आसूदा हैं। स्वय पैसा खर्च करके सनातन धर्म की रक्षा के लिए तैयार हैं, बशर्ते कि चौबीसों घण्टे नशा पत्ता बनाये रखने के लिए भग भवानी और गाँजा भैरव की उपासना का प्रबन्ध हो सके! इसके बिना धर्म रक्षा की सूझ होना असभव है।

—विचित्रानन्द।

जागरण

THE JAGARAN   सम्पादक—प्रेमचन्द   Illustrated Weekly

वर्ष २ ‖ काशी, मि० माघ शुक्ल ७ सोमवार, सं० १९९० वि० : ता० २२ जनवरी सन् १९३४ ई० ‖ अंक २३

बिहार-रत्न बा० राजेन्द्रप्रसादजी



मेडिकल बोर्ड ने आपके स्वास्थ्य की परीक्षा करके जो रिपोर्ट दी उसके फल स्वरूप आप रिहा कर दिये गये।

सहगामिनी से

आह ! निद्रा ने कर अधिकार
तुझे पल भर को शान्त किया,
थकी पलकों पर धर छवि-भार
बन्द की अन्वेषक आँखें,
किन्तु हैं अब भी अधर अशान्त
फड़कते हैं कुछ कह अनुक्षण,
चित्त भी होता सा है भ्रान्त
श्वाँस की गति भी द्रुततर है,
चौंक जाती रुक रुक क्षण मात्र
न जाने क्या कहती बुदबुद,
काँप जाता है सारा गात्र
चकित भीता सी दिखलाती,
अरे फस कर जिसके छवि जाल
मीन सी व्याकुल है बाले !
उसी का तुझको क्या री, ख्याल
सताती सोने सा सुख हर।—
हाय, आशा की धुँधली रेख
तुझे कितना दुख देती है ?
खोल आँखें फिर से ले देख
सार कितना लघु जीवन में ?
सभी भ्रमते रहते दिन रात
प्राप्त कर पाया कौन उसे ?
गया मिट सबका जीवन प्रात
कौन वह जाता जान चला ?
समझ ले अब सन्ध्या है पास
त्याग निद्रा उठ जाग अरी !
दूर है अब भी वाञ्छित वास
शयन कुसमय का तज आली !
स्नेह में जिसके तू है सिक्त
जाग, उस हित क्षण भर जलले,
कहीं अन्तर हो जाय न रिक्त,
चलें, आ, जितना सँग चल ले।

'अशोक'

इण्डियन दिमाग की विचित्र खोज, एक अद्भुत अपूर्व आविष्कार, जर्मन, फ्रांस, जापान, अमेरिका के बड़े-बड़े वैज्ञानिक डाक्टर भी हैरत में, पुनर्यौवन प्राप्त करने का सच्चा सस्ता और शर्तिया इलाज

(सहस्रों प्रशंसापत्र व मेडल प्राप्त)

रतिविलासामृत

हिमालय शैल-शिखर की दुर्लभ ताजी जड़ी बूटियों का अद्भुत चमत्कार है। निराश हुए जवानी में बुढ़ापे का कष्ट पाने वाले कमजोर, सुस्त, नामर्द, रोगी, निरोगी, सबल, निर्बल, बूढ़े, जवान सभी पुरुषों को हर एक मौसम में सेवन कर जीवन के उपवन में आजीवन पर्यन्त विहार करने के लिये सच्चा ईश्वरीय प्रसाद है।

यौवन-विनाश का खास कारण अधिक समय तक लगातार हस्त-क्रिया या बहु मैथुन करने से वीर्य धारिणी नाड़ियें कमजोर हो वीर्य पानी के समान पतला हो जाता है। रुधिर भी खराब हो नष्ट होने लगता है, इन्द्रियाँ नीली-ढीली हो नसें उभर आती हैं। इन्द्रिय टेढ़ी-पतली हो उत्तेजना कम हो जाती है। स्त्री को देखने अथवा मन में ही किसी रूप-यौवन का विचार करने-मात्र से ही लार के रूप में धातु बहने लगजाता है, ऐसी हालत में बड़े बड़े बलवान भी चन्दही दिन में निर्बल हो जीवन आनन्द से हाथ धो, वे मौत ही मौत का शिकार बन जाते हैं—

ताकत से ही संसार में बड़े-बड़े भारी काम होते हैं, देखिये बिजली में ताकत होने से ही एक मिनट में हजारों मील की खबर लाती है, ताकतवर घोड़ा ही घुड़दौड़ में बाजी मारता है, ताकत ही से तो रेलगाड़ी बात-की-बात में लाखों मन भार खींच ले जाती है, शेर बड़े बड़े हाथियों को मार भगाता है, फौजी लड़ाइयों में और भी जहाँ तहाँ शारीरिक व मानसिक ताकत ही हर जगह विजय पाती है, नर-देह में भी ताकत ही एक अमूल्य रत्न है, जो शुद्ध वीर्य ही के आधीन है (डाक्टर एक्टन साहब लिखते हैं शरीर में वीर्य शक्ति है, शक्ति ही जीवन है, शक्ति ही तरुणाई है, शक्ति की कमी ही बुढ़ापा है और शक्ति का नाश ही मृत्यु है, सच है कमजोर के लिये जीवन भार हो जाता है।

'रतिविलासामृत' सेवन करते ही बदन में वह शक्ति और जोश पैदा हो जाता है, जो चढ़ती जवानी में भी नसीब नहीं होता। पानी के समान धातु दही के समान गाढ़ी हो सचमुच ही पुनर्यौवन प्राप्त होने लगता है, यह तमाम शिकायतें दूर होने लगती हैं, सुस्ती स्वप्नदोष, धातु क्षीणता दुर्बलता, बासो प्रमेह, नामर्दी, मूत्र के साथ सफेद गोंद सी निकली धातु का गिरना, आहार-विहार (हाजाखाना) पाखाना होते जरा भी जोर लगाने से वीर्य-बिन्दु गिरना, जवानी में अपने हाथ से पैदा की खराबियाँ, मूत्र के प्रथम या पीछे तार के समान सूत के लच्छे की तरह धातु गिरना, शक्कर, रेत-सा मिला मीठा मूत्र जहाँ करो वहाँ चींटियों का इकट्ठा होना, पेशाब लाल तेल के समान अति दुर्गन्धयुक्त उतरना, या मूत्र में श्वेत घुले हुए चून के समान गिरना, पेशाब की हुई जगह सफेद हो जाना, बहुमूत्र रोग, बेखबर सोते समय खराब हालत हो जाना, दिमाग कमजोर हो घूमना, दिमाग खाली होने के सबब चक्कर आना, विचार शक्ति कम होना, सिरदर्द रहना, व घूमना, कमजोरी के सबब दिल की उम्मीद का पूरा न होना, रमण समय शीघ्र-पतन, मर्दूमी की कमी, मन हर समय उदास रहना, कमर, घुटने पिंडली अण्डकोष, आदि में दर्द रहना चलते-बोलते हाँपना, हर समय थका हुआ-सा रहना, दिल धड़कना, मनमलीन बातों का शीघ्र भूलना, किसी भी काम में मन न लगना, भूख कम, भोजन में अरुचि, कब्ज रहना, बदहजमी, हृदय में दाह, जलन, प्यास अधिक, मुख खुश्क रहना, उठते-बैठते आँखों के सामने पीली-पीली चिनगारियों-सी उड़ती दिखाई देना, दृष्टि कमजोर, चेहरे में खुश्की और पीलापन, बदन में फुर्ती का अभाव, कानों में सनसनाहट, रगों में कमजोरी, नई जवानी में ढीलापन, असली ताकत की कमी, नई उमर की उमंग में अपने हाथों जवानी को बरबाद करने से पैदा हुई नाताकती आदि तमाम शिकायतें बात-की-बात में 'रतिविलासामृत' से दूर होती हैं। शरीर में नया खून, शुद्ध वीर्य, नई शक्ति पैदा होती है।

मुर्दा दिलों में नई जान डाल देता है, जिससे संसार-सुख, उत्तम सन्तान, शरीर में अपूर्व बल, दिमाग में ताकत, अद्भुत विचार शक्ति, आँखों में तरावट, रोशनी, बदन में फुर्ती, स्मरण शक्ति बढ़ा कर फीके सूखे शरीर में सुर्खी पैदा कर सुस्त उत्साहहीन को शेर के समान बलवान पराक्रमी बना, मन की मुर्झाई कली को एकदम खिला देता है, गफलत से खोये पुनर्यौवन का मजा चखाता है—

रतिविलासामृत सेवन करते ही मनुष्य दाम्पत्य जीवन सुख के आनन्द का पूर्ण अनुभवकर व्याधिजाल से मुक्त होता है।

'रतिविलासामृत' स्त्रियों के रक्त श्वेत प्रदर, सोमरोग में जादू से बढ़कर काम करता है—जिन स्त्रियों को मासिक रजोधर्म ठीक खुल कर नियमानुसार न होता हो, या कष्ट के साथ होता हो, गर्भपात हो जाता हो, या बच्चे सूख-सूख कर मर जाते हों, या कन्या ही उत्पन्न होती हो, तो 'रतिविलासामृत' से सुन्दर तेजस्वी बलवान् बच्चे पैदा हो पूर्ण आयु भोगते हैं, बन्ध्या के लिये पूरी-पूरी शर्त तो नहीं है, मगर सैकड़ों बन्ध्याओं के भी सन्तानें हो चुकी हैं, आजकल एकबार प्रसूता होने के बाद ही स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य को सदा को खोकर बुढ़िया-सी मालूम होने लगती हैं, इस महौषध से तुरन्त ही नव-यौवन प्राप्त हो सौन्दर्य जोरों से बढ़ता है। हजारों पौण्ड लेकर इलाज करने वाले जर्मन, फ्रांस, अमेरिका के बड़े-बड़े वैज्ञानिक डाक्टर भी वह काम नहीं कर सके, जो रतिविलासामृत ने कर दिखाया है। सदियों से जमाना जिसकी खोजमें भटक रहा था 'रतिविलासामृत' ही वह औषधि है। आपको व आपके रिश्तेदारों व मित्रों को जिसकी खास जरूरत है—

देश देशान्तरों के बड़े-बड़े नामी डाक्टरों, वैद्यराजों और हकीमों की परीक्षा प्रशंसा और प्रचार का ही यह फल है, कि यूरोप आदि देशों में भी रतिविलासामृत की माँग जोरों से बढ़ रहा है, मगर आजकल इश्तहारों की जोरों से आँधी चल रही है। नकली झूँठी चीजों में बहुत खर्च करके शायद आप भी अविश्वास और निराशा को खरीद बैठे हैं, यही तो कारण है, कि औषधि-विज्ञापन में आपका विश्वास ही नहीं रह गया है। बेशक, यह समय के कुछ अनुकूल है; मगर हरएक में अविश्वास रखना सरासर बदकिस्मती और भूल है, इस विषय में सिर्फ इतना कहना ही उचित है अगर लेखानुसार दवा गुण न करे, तो मय खर्च के दाम वापिस देंगे। पार्सल बड़ी सावधानी से भेजे जाते हैं अगर पार्सल में से कोई शीशी टूटी-फूटी निकले, तो फौरन् सूचित कीजिये बिना किसी खर्च के दवा मुफ्त सेवा में पहुँचा देंगे। अगर अब भी कुछ शक है तो -)। टिकट भेज कर प्रतिज्ञा-पत्र लिखवा अपनी खूब तसल्ली कर लीजिये। दुर्भाग्यवश अब भी आपका दिल कायम न हो, तो इसका इलाज ही क्या है। सिवा इसके कि रोग-शय्या में पड़े तड़फते रहिये। गीता में भगवान लिखते हैं कि 'संशयात्मा विनाश को प्राप्त होता है और श्रद्धाहीन की भी यही दशा होती है।'

रतिविलासामृत की कीमत फी बड़ी शीशी २) रु० महसूल एक से दो शीशी तक ।।।) ३ शीशी की कीमत ५।।) महसूल ३ से चार शीशी तक १), ६ शीशी की कीमत १०) महसूल ६ से आठ शीशी तक १।।) १ दर्जन १९) महसूल माफ, विदेशी पार्सल में डाक खर्च दुगुना लगेगा

रतिविलासामृत मँगाने का पता—प्रोफेसर पुरुषोत्तम शर्मा वैद्यभूषण शिवफार्मेसी, पो० जटवाड़, जि० अम्बाला (पञ्जाब)
Pro. Purushottam Sharma Vaidya Bhushan Shiv Pharmacy, P.o. Jatwar, Dt. Ambala (Punjab)

जागरण

मि० माघ शुक्ल ७ सोमवार, सं० १९९० वि०

जमीदारों की दुर्दशा

बेचारे जमीदारों की दशा उस रूपसी स्त्री की सी हो रही है, जिसके यौवन की बहार अब ढल-ढलाव पर हो। एक समय था, जब उसका आशिक उस पर प्राण न्योछावर करता था, उसकी एक एक अदा पर जान कुर्बान करता था। एक एक नखरे पर लोट पोट हो जाता था, एक एक चितवन पर कलेजा थाम लेता था, लेकिन यौवन के उतार के साथ वह दिन और वह रातें सपना हो गईं। अब बेचारी तरह तरह के रंग भरती है, आठों पहर मिस्सी सुरमें के पीछे पड़ी रहती है, वही जतन के जतर मतर करती रहती है लेकिन भौंरा प्रेमी अब भागा भागा फिरता है। न वह पराग रह गया, न वह रस, फिर निरस फूल उसके किस काम का। अब तो यह जीवन है, और पट्टी पर सिर रखकर रोना है। प्रेमी के पैरों पर लाख सिर पटके, लाख उसके तलवे सहलाए, लाख जादू टोना करे, कुछ होने का नहीं। अब तो वह भी कृष्ण की भाँति इन गोपियों को वैराग्य का उपदेश करता है।

यह बेचारियाँ उन पुराने दिनों की याद दिलाती हैं, अपनी वफादारी और निष्ठा और अनुराग की कथाएँ कहती हैं लेकिन वह पट्ठा एकही जवाब देता है—वैराग्य धारण करो। और यह विलास की उपासिकायें रोष और शोक में सिर धुनती हैं, छाती पीटती हैं, मगर वह कठकलेजिया, वह पाषाण हृदय, नहीं पसीजता, नहीं पसीजता। धर्म का या प्रेम का बन्धन होता, तो पुरानी गाँठ की भाँति दिन दिन अभेद्य होता जाता, रूप और यौवन के पथरीले स्तरों को तोड़ कर उसकी जड़ें कोमल भूमि की गहराइयों में पहुँच जातीं, और उस रस से वृक्ष दिन दिन और पुष्पित और पल्लवित होता। लेकिन, यहाँ तो सब कुछ रूप और यौवन का खेल था। पत्थर पर की दूब के दिन टिकती। मगर उन्हीं रमणियों की भाँति हमारे जमींदारान भी बराबर समय की गति को फेरने और बीते हुए दिनों को बुलाने की विफल कामना करते चले आते हैं। जभी मौका मिला चट पट एक संघ, सभा, एसोसियेशन बना लिया जाता है और लोग बड़ी-बड़ी पगड़ियाँ बाँध और नीची अचकनें पहन और कमर में वफादारी का पटका कस और गरदनों में स्वामि भक्ति के तौक डाल कर गवर्नरों की बारगाह में हाजिर हो जाते हैं, और अपनी लायल्टी और भक्ति के पचड़े शुरू कर देते हैं। मगर यहाँ वही रूखा जवाब मिलता है—जोग धारण करो, अपने पैरों पर खड़ हो, अपनी सेवा और सहानुभूति से समाज में अपना स्थान सुरक्षित करो। लेकिन, ये महाशय कुछ ऐसे चिकने घड़े हैं कि उनपर कुछ भी असर नहीं होता, उसी गत-यौवना रमणी की भाँति शायद ये सज्जन अब भी इसी भ्रम में पड़े हैं कि सरकार पूर्ववत उनकी पीठ ठोंकेगी, उन्हें शाबाशी देगी और कहेगी, तुम हमारे दाहिने हाथ हो, और हम सदैव तुम्हारी मदद करेंगे और तुम्हारी डगमगाती हुई नाव को पार लगा देंगे। इन भक्ति के पुतलों को अब भी यह नहीं सूझता कि राजनीति की दुनिया में कल का शत्रु आज का मित्र हो जाता है और कल का मित्र दूध की मक्खी की भाँति निकाल कर फेंक दिया जाता है। सरकार जमीदारों की पीठ तब ठोंकती थी, जब वह समझती थी कि ये प्रजा के स्वाभाविक नेता हैं, प्रजा पर इनकी धाक है, ये असन्तुष्ट होकर आग लगा सकते हैं और हमारी खेती को जला सकते हैं, लेकिन जब उसने देखा कि ये हजरात भोग-विलास में पड़ कर सारा पुरुषार्थ खो चुके हैं, कर्ज के बोझ के नीचे दब चुके हैं, बल्कि पिस चुके हैं, और इनका अस्तित्व अब गरीबों पर अनीति और अत्याचार और हुक्कामों की चापलूसी और जी हुजूरी पर रह गया है, और ये अब उसके लिए शक्ति के यन्त्र न रह कर उसकी गति में और बाधक हो रहे हैं, तो उसने इनको तम्बीह शुरू की, कि यों काम न चलेगा, तुम अपने को संगठित करो, खरगोश की नींद से चौंको, अपने सत्कार्यों से प्रजा के दिल में घर करो, किसानों को दिखादो कि तुम उनके लिए कितने जरूरी हो, देश में ऐसा वातावरण पैदा करो, जो तुम्हारे लिए अनुकूल हो, तो ये सज्जन बगलें झाँकते हैं, और उसी गत यौवना नायिका की भाँति उसकी निष्ठुरता पर टेसुवे बहाते हैं और अपनी तकदीर को कोसते हैं कि किस निर्दयी के पाले पड़े कि उसने सुप्त में यौवन लूट लिया, और अब बात भी नहीं पूछता।

मगर वह पुराना आशिक अब भी प्रीति की रीति निभाये जाता है। अब उससे यह आशा तो नहीं की जा सकती, कि वह खिचड़ी केशों को नागिन समझे और झरोकेदार बत्तीसियों की चमक से चौंधिया जाय और झुकी हुई कमर पर फिदा हो जाय। नहीं, वह वीभत्स लीला अब वह नहीं कर सकता, हाँ ऊपरी दिल से चिकनी मीठी बातें कर सकता है। अपने सुगन्ध भरे रूमाल से उसके आँसू पोंछ सकता है और उसके नान नफ्के (जीवन निर्वाह) का प्रबन्ध कर सकता है। मखमली गद्दे न सही, फिर भी आगरे की दरी देने को तैयार है, लेकिन वह अज्ञात गतयौवना अभी तक वही हठ किये जाती है, मैं तो जड़ाऊ गहने लूँगी और पानदान का खर्च लूँगी, और लौंडियाँ लूँगी। मिल चुकीं। वह ठस्से यौवन के साथ चले गये। अब तो उसी रोटी कपड़े पर दिन काटने पड़ेंगे, हँस हँसकर काटो या रो रोकर। गनीमत समझो कि वह प्रीति का इतना निबाह भी कर रहा है। सूखा ही जवाब देता तो तुम क्या कर लेती। धर्म या प्रेम का बन्धन तो था नहीं, राजनीति ही का फुसफुसा और अस्थिर बन्धन तो था। सरकार ने कई प्रांतों में जमीदारों ही की रक्षा के लिये 'रईस सभा' ([illegible]) का निर्माण करना स्वीकार कर लिया, उन्हीं को महाजनों से बचाने के लिये एक दो कानून बनाये और अब ऐसा कानून बना रही है, जिससे उनकी जायदाद अखण्ड और अमर रहे। सरकार से अब और वे क्या चाहते हैं, जो सभी अवसरों पर सज धज बनाकर आ पहुँचते हैं। क्या वे चाहते हैं कि सरकार उनकी पुरानी वफादारी के उपलक्ष्य में उन्हें इस बात की खुली सम्मति दे दे, कि वे प्रजा से मनमाना लगान वसूल करें, मनमाने नजराने लें मनमानी बेगार कराएँ, मनमाने इजाफे और बेदखलियाँ करें, मनमाने भाव पर उनकी जिन्सें खरीदें, उन्हें रुपये उधार देकर उनसे मनमाना सूद वसूल करें, उन्हें जब चाहे और जितना चाहें पिटवायें, उसकी कहीं फरियाद न हो सके। अगर वे यह नहीं चाहते, तो और किस लिये गवर्नरों की दुम के पीछे पूँछ हिलाते फिरते हैं। सर माल्कम हेली पचासों बार इस गिरोह को फटकार चुके हैं, दुत्कार चुके हैं, अभी उस दिन बंगाल के गवर्नर ने डाँटा था, सभी प्रांतों के गवर्नर बारी बारी से इन महानुभावों को ठुकरा चुके हैं, फिर भी ये, दुम हिलाना नहीं छोड़ते, चुनांचे अभी उस दिन सर माल्कम हेली काशी आये तो यह गोल अपनी गुलामी और वफादारी और पातिव्रत का खर्रा लिये उनकी ड्योढ़ी पर हाजिर हो गया। सर माल्कम ने जैसा कि उनका धर्म था, और जैसा कि राजनैतिक शिष्टाचार का तकाजा था, उनको बहुत बहुत धन्यवाद दिया, उनकी प्रशंसा की, उनके स्वामी-सत्कार का यशोगान किया, और यह सब कुछ कर चुकने पर उन्हें वह उपदेश दिया, जिसने इनमें से अधिकांश महानुभावों को हतोत्साह कर दिया होगा और वे रोते हुए घर गये होंगे, कि यह सारी दवा दौड़ और नाक रगड़ौवल और माथ घिसौवल बेकार गई। सर हेली ने कहा—

'आने वाली व्यवस्था का चाहे जो रूप हो, और चाहे कैसे ही राजनैतिक दल बनें, अन्तिम निर्णय उन्हीं विचारों के हाथ रहेगा जिनका जनता पर प्रभुत्व होगा, और जो राजनैतिक प्रगति का नियंत्रण करेंगे। अगर आप बाजी ले जाना चाहते हैं, तो आपको अपने सामाजिक महत्व का क्रियात्मक प्रमाण देना पड़ेगा। आपको सिद्ध करना पड़ेगा कि जमींदार भी ग्रामीण जीवन में उतना ही उपयोगी है जितना किसान आपको उत्तर में यह प्रमाण देना चाहिये कि जमींदार किसान को जो सहायता देता है, उनसे जो मैत्री का सम्बन्ध रखता है, और उनको सामाजिक जीवन में अपना पूरा पूरा स्थान लेने के लिये जो प्रयत्न करता है, वह किसान ही कि भाँति हमारे कृषि व्यापार का आवश्यक अङ्ग है।'

सुना आप साहबों ने आँखें बंद करके और कान खोलकर? आपको कुछ बसन्त की खबर है कि जनता के दिल पर आज किन विचारों का आधिपत्य है? खूब सुन लीजिए कि यही विचार सरकार की राजनैतिक नीति का नियंत्रण करेंगे, आप चाहे अपनी वफादारी के कितने ही गीत गायें और कितने ही राग अलापें! आपको अपने सामाजिक महत्व का क्रियात्मक प्रमाण देना पड़ेगा, केवल इजाफे और बेदखली करके या नालिश करके या डंडेबाजी के जोर से लगान वसूल करके चैन की बंसी बजाना नहीं। अगर इसी को आप अपने महत्व का क्रियात्मक प्रमाण समझे बैठे हैं तो आप मूर्खों के स्वर्ग की हवा खा रहे हैं। आप इन्हीं कार्यों से यह सिद्ध करेंगे कि ग्रामीण जीवन में जमींदार उतना ही जरूरी है जितना किसान! आपका यह व्यवहार अगर किसी बात का प्रमाण है तो वह आपकी निरंकुशता, आपकी हृदय शून्यता, आपकी अमानुषिकता, आपकी स्वार्थांधता और आपकी वर्तमान विचारधारा से अनभिज्ञता का उज्ज्वल प्रमाण है। आप अपने वर्ग के लिये विशेष अधिकार और विशेष रियायतें माँग माँग कर खुद अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हैं और जन मत को अपने विरोध की चुनौती दे रहे हैं।

भारत व्यापी भूकम्प

१५ जनवरी को सवा दो बजे प्रकृति ने भारत को अपनी जभी पैशाचिक शक्ति का जो परिचय दिया, उसने कितने ही आस्तिकों को नास्तिक बना दिया होगा। शायद उसने सोचा, मनुष्य अपने खिलौने बाजुपात्रों और बेचारों

को लेकर बहुत बहक रहा है जरा उसे एक बार फिर अपनी शक्ति का मजा चखा दो। बस भूकम्प ने यह मजा चखाने का बीड़ा उठा लिया और नेपाल की तराई से उठकर बिहार का विध्वंस करता, संयुक्त प्रान्त की जड़ें हिलाता, दक्षिण को ठोकर जमाता, मद्रास के पेट में सिहरन डालता, बंगाल की खाड़ी में विलीन हो गया। कहते हैं १८९७ में भी भीषण भूकम्प आया था। आया होगा, मगर हमारा खयाल तो यह है कि वह इसका छोटा भाई रहा होगा। बिहार प्रान्त में तिरहुत, दरभंगा, गया, मुजफ्फरपुर, भागलपुर, पटना, आरा आदि नगरों में जान और माल की कितनी क्षति हुई, इसका अभी तक कोई गणना नहीं हो सकी और न शायद कभी हो सकेगी। एक हवाई जहाज ने तिरहुत का मुआइना किया है और उसके संचालक का कहना है कि मुजफ्फरपुर बाराम हो गया। और सड़कें लाशों से पटा पड़ा हैं। ३०० जानें तो केवल दरभंगा में गईं। ऐसा शायद ही कोई मकान बचा हो, जिसको कुछ न कुछ धक्का न पहुँचा हो, हजारों मकान गिर पड़े, सड़कों के पुल टूट गये, रेल की पटरियाँ हुमस गईं, तार के खम्भे टूट गये। कितने ही स्थानों में लोग सड़कों पर और मैदानों में समय काट रहे हैं। शक्कर के कितने ही मिल तबाह हो गये। जमालपुर में रेल विभाग के सैकड़ों मकान मिसमार हो गये और रेल के कारखाने मिट गये। कितने ही मजदूरों की जान गई। तिरहुत में भूमि में बड़ी बड़ी दरारें हो गईं और उसमें से गंधक मिला हुआ पानी निकल पड़ा और जमीन पर पाँच फुट पानी की बाढ़ आ गई, जिससे सारे कुओं का पानी जहरीला हो गया। सरकारी इमारतें तो शायद ही कोई बची हों। इस प्रान्त में इतना भीषण आघात तो न था, पर ऐसा जरूर था, कि लोग उसे इस जीवन में भूल न सकेंगे। बड़े बड़े महल इस तरह हिल रहे थे जैसे हवा से पत्ते हिलते हैं। शहरों में विरला ही कोई ऐसा मकान होगा, जिसकी मुंडेर या छत या दीवारें न फट गई हों। काशी ही में २५ आदमी जख्मी हो गये और दो मर गये। सभी शहरों की यही दशा हुई है। अगर सात ग्रहों के संयोग का यह फल था, तब तो इस खयाल से सन्तोष होता है, कि ये अभागे ग्रह फिर सौ दो सौ वर्ष में एकत्र होंगे, लेकिन जैसी एक विज्ञानाचार्य की राय है, अगर यह आक्रमण इस लिये हुआ है, कि हिमालय के शिलाखण्ड जल के आघात से टूटते जाते हैं और पृथ्वी पर उसका दबाव कम हो गया है और इससे भूतल की उष्णता मुक्त होकर दौड़ रही है, तब तो भारत का भविष्य बड़ा संकटमय जान पड़ता है, क्योंकि यह शिलाखण्ड तो टूटते ही रहेंगे और हिमालय का दबाव उत्तरोत्तर कम ही होता जायगा। हाँ, कोई बड़ा भारी ज्वालामुखी उबल पड़े और एक बार फिर भीतर से एक दूसरा हिमालय ढकेल कर निकाल दे, तो शायद दबाव बराबर हो जाय। जो कुछ भी हो, इस वक्त तो सबसे बड़ी और कठिन समस्या यह है, कि इन गिरे हुए और फटे हुए मकानों की मरम्मत कैसे होगी। अधिकांश आदमियों में तो यह सामर्थ्य ही नहीं, कि मकानों की मरम्मत करा सकें। विवश होकर जीर्ण घरों में पड़े रहेंगे और वर्षा काल में उनकी क्या दशा होगी, इसकी कल्पना ही से रोमांच हो आता है। कम से कम म्युनिस्पैलिटियों को इतना तो करना ही चाहिये, कि जिन इमारतों को खतरनाक देखें, उन्हें खाली करवा कर उनकी मरम्मत करावें। हमारे समाज सेवकों को रिलीफ के काम में अग्रसर होना चाहिये।

कुमारी शिक्षा का आदर्श

शिक्षा विभाग के अध्यक्ष मि० मैकेंजी ने मुरादाबाद की एक कन्या पाठशाला में कुमारियों की शिक्षा का जो आदर्श उपस्थित किया, उस पर हमारी देवियाँ उनसे खुश होंगी या नाराज, यह हम नहीं जानते। आपके विचार में कुमारों और कुमारियों की शिक्षा में वही अन्तर होना चाहिए, जो उनके जीवन में है। सभी करण और वायुविज्ञान से उनके जीवन का कोई उपकार नहीं होता। वर्तमान शिक्षा प्रणाली उन्हें माता और गृहिणी बनने के योग्य नहीं बनाती। मुश्किल तो यह है कि पुरुषों ने महिलाओं को इतना सताया है कि अब वे माताएँ और गृहिणी न बनकर अपनी आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने पर तुली हुई हैं। अगर पुरुष बच्चे पालना और भोजन पकाना नहीं जानता, तो स्त्री क्यों सीखे। जो विद्या पढ़कर पुरुष रोटी कमाता है और इसलिये औरतों को अपनी लौंडी समझता है, वही विद्या स्त्रियाँ भी सीखना चाहती हैं। वह खाना क्यों पकायें, वकालत क्यों न करें, अध्यापिका क्यों न बनें? इसका फैसला हमारी देवियों को ही करना चाहिए कि उनकी कन्याएँ कैसी शिक्षा पायें, स्वार्थी पुरुषों का फैसला वह क्यों मंजूर करने लगीं?

देहातों पर दया-दृष्टि

इंगलैंड के व्यापारी भारत के गरीब ग्रामीणों पर बड़ी दया करते हैं। बेचारे वहाँ से इन नंगों के लिये तरह तरह के कपड़े बनाकर अपने ही जहाजों पर लाद कर पहुँचा देते हैं। जिस चीज की यहाँ जरूरत हो, वह फौरन से पहले यहाँ मुहैया कर देते हैं। यह दया-दृष्टि नहीं तो क्या है? अब एक साहब जिनका नाम कर्नल हार्डिंग है सम्पूर्णतः निःस्वार्थ भाव से यहाँ के देहातों में बेतार के गाने और भाषण आदि सुनाने का प्रबन्ध कर रहे हैं। जब अन्य देशों के गाँवों में ब्रॉडकास्टिंग का प्रचार हो रहा है, तो भारत के किसान क्यों इस आनन्द से वंचित रहें। कर्नल हार्डिंग साहब से यह नहीं देखा जाता। पंजाब के देहातों में उनका दौरा भी शुरू हो गया है। हर बड़े गाँव में बेतार के यंत्र लगा दिए जायँगे, कौन बड़ा खर्च है, यंत्र का दाम कुल ३००) है और सालाना खर्च २०), इतने थोड़े से खर्च में देहात वाले अब बेतार के गाने और बाजे और भाषण सुन सकते हैं, तो क्यों न सुनाया जाय। आखिर देहातियों के पास मनोरंजन का और कौन सा सामान है। यह यंत्र लग जायँगे तो साँझ को देहातों में खासी चहल पहल हो जायगा। गाने और भाषण सब उनकी अपनी ही भाषा में सुनाए जायँगे। इंगलैंड दया करके करोड़ दो-करोड़ के यंत्र भेज देगा। भारत में ७ लाख गाँव हैं। ३००) गाँव पीछे मिले, तो कुल २१ करोड़ रुपए ही तो हुए! फिर कुछ पढ़े लिखे युवकों को रोजी भी तो मिलेगी। इंगलैण्ड के व्यापारी सचमुच दया और निःस्वार्थ सेवा के पुतले हैं।

बिल्ली बख्से, मुर्गा लँडूरा ही रहेगा। जिनके पास न खाने को अन्न है और न पहनने को वस्त्र, वह ब्रॉडकास्टिंग सुन कर अपना मनोरंजन न करेंगे, तो कौन करेगा? व्यापार चलाने की कितनी बढ़िया नीति है। यह व्यापारी मानवी प्रकृति की दुर्बलताओं को खूब समझते हैं और उससे खूब अपना मतलब गाँठते हैं। मनोविज्ञान उनकी व्यवसाय वृद्धि का मुख्य साधन है। कल्लोंच से कल्लोंच आदमी में भी आमोद विनोद की प्रवृत्ति होती है। यह व्यवसाई उसी स्थल पर निशाना लगाता है और शिकार मार लेता है।

रियासतों की रक्षा का बिल

सरकार ने अपनी लाडली रियासतों की रक्षा के लिए एक नया कानून बनाने की ठानली। इसके अनुसार किसी रियासत की आलोचना करना जुर्म समझा जायगा और सरकार ऐसे आलोचकों को जब चाहेगी गिरफ्तार करके मुकदमा चलायेगी। अभी देसी रियासतों की दुखी प्रजा कभी कभी ब्रिटिश भारत के समाचार पत्रों में अपने कष्टों का रोना रोकर अपना मन शान्त कर लिया करती थी, इससे जनता को रियासतों का कुछ रहस्य मालूम हो जाता था, और राजे भी लोकमत के भय से कुछ सचेत हो जाते थे, मगर इस कानून से ऐसे लेखों का प्रकाशित होना कठिन हो जायगा। फिर तो हमारे राजे और महाराजे जी खोलकर प्रजा पर अत्याचार करेंगे, कोई चूँ न कर सकेगा। किसी अखबार ने इस पर कुछ लिखा और बड़े घर पहुँचा दिया जायगा। यह बिल सम्मति के लिये प्रांतीय सरकारों और हाई कोर्ट के जजों के पास भेजा गया था। प्रांतीय सरकारों ने तो दिल खोल कर उसका स्वागत किया, जैसा उनका धर्म था। हाईकोर्टों के जजों में बहुतों ने तो उसपर कुछ राय देना उचित न समझा, कुछ ने उसमें बाल की खाल निकाली। केवल इलाहाबाद हाईकोर्ट के दो जजों ने—मि० जस्टिस नियामतुल्लाह चौधरी और मि० जस्टिस रक्षपालसिंह ने ही उसका विरोध किया है। चौधरी साहब का कथन है कि पीड़ितों को अपनी शिकायतों को वाइसराय के कानों तक पहुँचाने का अधिकार और रियासतों के हाईकोर्टों के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील करने की इजाजत मिलनी चाहिए। जस्टिस रक्षपालसिंह का एतराज यह है कि आखिर रियासती प्रजा को अपने कष्ट निवारण का और कौन सा साधन रह जाता है। इसका नाम है निर्भीक न्याय प्रियता!

मुसलिम छात्रों से

बम्बई मुसलिम स्टूडेंटस यूनियन में बम्बई सरकार के अर्थसचिव सर गुलाम हुसेन हिदायतुल्लाह ने जो भाषण दिया, उसे पढ़कर ऐसा कौन सा राष्ट्रप्रेमी है, जिसका दिल आनन्द से खिल न उठेगा। इस साम्प्रदायिक हो हल्ले के युग में वह भाषण व्यापक अंधकार में एक दीपक के समान है। मुसलिम-नेताओं में ऐसे सज्जन उँगलियों पर गिने जा सकते हैं, जो देश की समस्याओं पर राष्ट्र की दृष्टि से देखते हों। आपने छात्रों को आत्मनिर्भरता का महत्त्व दर्शाते हुए यह बहुत सत्य कहा कि 'बात बात में अपने समुदाय के लिए विशेष रिआयतों की हाँक लगाना अपमान जनक है। हमें अपने पैरों पर खड़ा होना सीखना चाहिये। हमें केवल अपनी योग्यता के बल पर आगे बढ़ना चाहिये और इसी तरह हम अपने साम्प्रदायिक कलंक को धो सकेंगे।'

आगे चलकर आप ने कहा—

'हमारा धर्म हमें ऐक्य की शिक्षा देता है, अपने सम्प्रदाय में ही नहीं, दूसरों के साथ भी। सच तो यह कि इन्हीं साम्प्रदायिक भेदों से हमारा पतन हुआ है। हम सब बराबर हानि उठा रहे हैं। हमें अपने ही हितों के विचार से मिल जाना चाहिए। इन भेदों का कारण है अविश्वास और सन्देह। हम दूसरों के दृष्टिकोण से नहीं देखते।

इसके बाद आपने अपने सहधर्मियों की इस शंका का समाधान किया कि हिन्दू उन पर अधिकार जमाना चाहते हैं। आपने जोर देकर कहा कि यह शंका निस्सार है; 'क्योंकि संख्या के हाथों में शक्ति नहीं होती; बल्कि मस्तिष्क के हाथ में होती है।'

काश मुसलमानों में ऐसे समदर्शी सज्जनों की संख्या इतनी कम न होती।

जागृति : जनतन्त्र अथवा साम्यवाद

लेखक—श्रीयुत वैद्यनाथसिंह

समय का पलटा खाना कौन अस्वीकार कर सकता है ? क्षण क्षण उस में रूपान्तर होता रहता है। यह क्षण वह क्षण नहीं रहता। रात दिनमें अन्तर है, एवं वय में विभिन्नता है। यथार्थत परिवर्तन ही प्रकृति का महत्व है। युग भी बदलता है, तथा जागृति अथवा संघर्ष ही उसकी आधार शिला है, विकास अथवा क्रान्ति ही उस की प्रमाण है, परिवर्तन ही उस के प्राण हैं, नवीनता ही उसकी विशेषता है, नवरूप ही उस का मधुर प्रसाद है।

समाज देश अथवा जाति का निर्णायक उसका प्रतिनिधि कहलाता है। शुभ व्यवस्था द्वारा, सुख शान्ति का उत्तरोत्तर वृद्धि करना ही उसका अखण्ड कर्तव्य रहता है। जागृति में युग निर्माण के सभी गुण गागर में सागर से सुरक्षित हैं। उचित प्रतियोगिता से, सुख शान्ति द्वारा, समाज को एक शृंखला में बाँधने का सच्चा एवं जोरदार प्रयत्न ही जागृति है। परिवर्तित युगों में, भिन्न भिन्न प्रतिभा के द्वारा वह उसके अभ्युदय का जी-तोड़ प्रयत्न करता है, युग को समुन्नत बनाने के लिए प्रबल संघर्ष ठानती है, इस प्रकार जागृति युग का साकार प्रतिनिधि है।

यों जागृति के बिना तो कोई एक क्षण भी अपने को मनुष्य-रूप में नहीं देख सकता। अत्याधिक व्यक्तिगत जागृति ही तो मनुष्य को खड़ा रखती है। पर, साथ ही वह सबल नहीं होती, एक व्यक्ति तक ही सीमित रहता है। समाज के किसी गरोह या दल की ओर से भी कभी कभी जागृति की क्षीण रूप रेखा देखने में आती है मगर संकीर्णता एवं दलबन्दी के खड्ग से उसकी शक्ति बेतरह हलाक की होती है। ऐसा एक भी जागृति की छाप, युग पर नहीं पड़ता। अपने युग के प्रतिनिधित्व के लिए उसके सब अङ्ग समान रूप से पुष्ट होने चाहिएँ बहुमत की भी उसमें प्रधानता नहीं। उत्साह, जोश के साथ त्याग का मूल्य आँका जाता है, बहुमत तो उसके पीछे रहता ही है। समाज के जिस छोर से त्याग का जितना जबर्दस्त प्रदर्शन रहेगा, जागृति में उतना ही बल होगा। अर्थात्, उत्कृष्ट त्याग युत जागृति ही अपने युग की प्रतिनिधि कहलाती है।

हमारा आदि काल धर्म जागृति का युग था। होम की वायु द्वारा वह सन्देश कोने कोने में फैल रहा था। कालिमा को धो डालने का प्रचण्ड लहरें उमड़ पड़ी थीं और उसे ऊपर उठा रहा था, कर्म का नैतिक कुशलता। ज्ञान के सम्मिश्रण का प्रबल सहारा था। उत्साह हो उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग थे। सर्वव्यापी जोरदार समर्थनों से आकाश गूँज रहा था। उस पाञ्चजन्य शङ्ख का व्योम भेदी झुमुक नाद सुदूर देशों के भी कान फूँक रहा था। कायापलट की अपूर्व तैयारी थी। सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान तन्तुओं का विश्लेषण हुआ। नास्तिकता की जड़ तक खोद डाली गई।

मध्यकाल में धर्म जागृति की न वह रूप-रेखा रही, न वह प्राबल्य रहा। पूर्व का वह दार्शनिक रहस्यवाद भक्तिवाद के रूप में परिणत हो चुका। महाप्रभु चैतन्य, सूर और तुलसी ने भक्ति रस की एक अद्भुत लहर उठाई। फिर भी वह गौण ही होकर रहा। उस समय जो अपूर्व जागृति देखने में आई, वह तो थी स्वदेश प्रेम की। सवंश स्त्री पुरुष हँसते हँसते सिर को हथेली पर रख सिक गये। स्त्री पुरुष दोनों तक वह जागृति समान रूप से सीमित रही। राणा प्रताप का स्वदेश प्रेम उस मध्य युगीन जागृति का सुस्मारक है। मातृ भूमि के अपमान पर अश्रु कण निकल पड़ते हैं। उन आँसुओं के रूप में वह एक अपूर्व विद्युत प्रवाह आन्दोलित करता है, नस की समस्त नलिकों पर रुधिर का सबल इञ्जिन बेरोक रेस करता है, सम्पूर्ण अङ्ग उबल सा पड़ता है। परित्राणेच्छुक भुजाएँ फड़क उठती हैं। वह वीर योद्धा उठ पड़ता है। मार्ग की विविध आपदाएँ उसे कब रोक सकतीं ? नदी, पर्वत, वन, घाटी और कन्दराएँ भी उसका मार्ग कब रोक सकतीं ? क्या फिक्र है, यदि दर दर मारा मारा फिरना पड़ता है, असंख्य निधि के स्वामी को एक रोटी का मुहताज होना पड़ता है ? स्त्री भी कितनी भावुक है। आपत्ति पर आपत्ति के पहाड़ टूट पड़ते हैं, कुछ फिक्र नहीं। यदि दो आँसू भी बहाती है, तो मेवाड़ भूमि की दुर्दशा पर। अबोध राजकुमार और राजकुमारियों का भी वह स्वदेश प्रेम, वह उत्साह, वह सहिष्णुता धन्य है !

परिवर्तन का यह आधुनिक युग भी जागृति से अछूता कैसे रहे ! हाँ, अपने दृष्टि कोण में यह उससे भिन्न है जो इस युग का खास विशेषता है। यह दृष्टि कोण राष्ट्रीय है अथवा सामाजिक। आज भारत भी परतन्त्रता के प्रति आवाजें उठा रहा है। जागरूक आत्माएँ आज स्वतन्त्रता के लिए छटपटा रही हैं, मनुष्य जीवन के वास्तविक आनन्द के लिए तड़प रहे हैं। पक्षियों को आकाश मण्डल में स्वच्छन्द उड़ते देख, हृदय में एक असह्य वेदना उठती है। एक हूक मन को नई स्फूर्ति प्रदान करता है। जागृति के बादल जमीन से ऊँचे आकाश में मँडरा रहे हैं। धाँय धाँय उठती परतन्त्रता की ज्वाला को शान्त करने के लिए, युवक समाज स्वयं अपनी आहुतियाँ दे रहा है। वास्तव में मृत्यु का नाम ही जीवन है त्याग का प्रदर्शन ही सुख की चरम सीमा है। कायापलट के अपूर्व चक्र चल रहे हैं।

साथ ही जहाँ स्वतन्त्रता रूपी चरम सुख की अभूत तैयारी है, स्वर्गीय कल्पना है, वहाँ स्वार्थ फूट, असमानता रूपी दुर्गन्ध क्यों साथ रहे ? इन परम्परागत कोढ़ों का भी समूलोच्छेद हो जाय, तभी तो सुख शान्ति है। अनैक्य में सुख की कल्पना भी ऊसर का खेती करने सी है। पाँच व्यक्तियों के छोटे परिवार के बीच की अन्यमनस्कता कौन सा अनर्थ नहीं कर डालती ? यहाँ तक कि पिता-पुत्र के बीच का कलह रात दिन अनेक धूम धड़ाका मचाता रहता है। एक ही देह मन्दिर की आत्मा और इन्द्रियों की खींचातानी किस गढ्ढे तक पहुँचा छोड़ती है, सबको विदित है। पर यह अनैक्य—यह विष की गाँठ—दूर कैसे हो ? यह द्वन्द्व का अन्त कैसे हो ? वास्तव में दो विपरीत वृत्ति वाली जिन्स का आपस में मेल-मिलाप, सुख शान्ति वैसा ही दुष्कर है, जैसे सिंह और सारंग की मैत्री। यह तभी सम्भव है जब दोनों में से एक दूसरे के मजहब को स्वीकार कर लें अर्थात् सिंह या तो मृग होकर रहे अथवा मृग सिंह ही हो जाय। एक स्वरूप

हुए बिना अनैक्य का फल भीषण परिणामों से बरी नहीं। मृग बेचारा तो अपने प्राण बचाने की धुन में रहेगा और सिंह उसे चार डालने हा की ताक ढूँढ़ता रहेगा। सच तो यह है कि वह उसे देखते ही निगल जायगा। विचित्र समस्या है। एक ओर ता एश्वय के कीड ऐशोआराम रूपा मदिरा के आशिक, स्वाथ क ठेकेदार, लोलुप, उच्छृङ्खल साथ ही मायावी—अपनी विविध ऐन्द्र जालिक क्रियाओं से जनता का धोखा देने वाला साम्राज्यवाद अथवा पूँजीवाद है, दूसरी ओर हड्डी कूटकर कमाने वाले मजदूर घास भूस खाने वाले किसान तथा भाला भाली जनता है। साफ साफ दो विभिन्न वृत्तियाँ हैं मगर शान्ति स्थापित इसी के बाच ठहरा। खैर हो कैसे ? यही सोचकर हमारे विश्व शान्ति थापक महात्मा गाधी तथा राष्ट्रकर्मी प० जवाहरलाल नेहरू आदि काग्रेस नेताओं ने एक पद्धति निकाली जिसका नाम जन तन्त्र अथवा साम्यवाद है। कइ वष पूव यूरोप के कतिपय देशों ने इस जन तन्त्र की आवश्यकता महसूस की थी। रूस की सोवियट सरकार (बाल्शेविज्म) इसी का फल है। आज भी इटली आदि देशों में फासिज्म के द्वारा इसका घोर आन्दोलन हो रहा है।

यहाँ पर हम यह कह देना उचित समझते हैं कि हमारा साम्यवाद पश्चि मीय ढङ्ग के कई अशों में विभिन्न होगा। वह व्यवहार प्रधान न होकर ईश्वरीय नियम नाति प्रधान होगा। देवा नियम ही व्यवहार के रूप में खरा उतारा जायगा, न कि व्यवहार हा का बोलबाला रहेगा। हमारा आदर्श, हमारी सभ्यता, सस्कृति, हमारी वर्तमान दशा उन पश्चिमाय नीति शास्त्र के चाल ढाल से पृथक है। हम उन पश्चिमाय आदर्शों का लीक पर अपनी गाडा न चलायेंगे। वह भ्रान्त आदशवाद तो आखिर हमीं को देख कर सुधार करगा। काग्रेस नेताओं तक तो मेरा पहुच नहीं पर क्या मजाल कि मेरी ऐसी एक भी छोटी बुद्धि की अवहेलना कर वे अपना आदर्श खड़ा कर सकें।

बहुत से विद्वान् यह कहत पाये जाते हैं कि भारत के राष्ट्रकर्मियों ने पश्चिम के ढङ्ग को अपनाया है, जो भारत की परम्परा के सवथा खिलाफ है। पश्चिम के रस्म रिवाज, वहाँ की सभ्यता, वहाँ के आविष्कारों को अपनाकर भारत सुख की नींद नहीं ल सकता। यहाँ की परम्परा और जल वायु इसके खिलाफ है। बात तो कुछ अशों में ठीक हे, पर मेरी दृष्टि में तो वैसी कुछ आवश्यकता की बात है नहीं। यूरोप के देशों ने भी तो इस साम्यवाद को कल ही से अपनाया है—रशियन क्रान्ति के बाद ही। ईसा के दो हजार वष पूर्व अहिंसादि का प्रतिपादन कर हमारे वेदादि ने साम्यवाद ही कि शिक्षा दी थी। कई हजार वर्ष पूर्व दर्शन ने भी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ पढ़ाया था। योगेन्द्र की गीता ने भी पूर्व सिद्धान्त ही की पूर्ति की है। कहाँ तक कहें, हिन्दू धम शास्त्र इस साम्यवाद की भूरिभूरि प्रशसाओं से भरा है। अन्त में तुलसीदास ने भी 'सियाराम मय सब जग जानी' कह कर उक्त वचनों को दुहराया है। कहने का तात्पर्य यह कि आधुनिक साम्य वाद भारतीय सस्कृति का सर्वोज्वल आविष्कार है। सिद्धान्त एक बात है और उसका कार्य में परिणत होना दूसरी बात। अहिंसा हमारा आदि सिद्धान्त है, पर हम यह कह सकते हैं कि बुद्ध भगवान् ने ही उसे गूढ़तम काय में परिणत किया। हमारे राष्ट्रकर्मी नेता अपने प्राचीन साम्यवाद को विस्तृत करना चाहते हैं, उसको सिद्धान्त ही के रूप में न रख, काय क्षेत्र में उतारना चाहते हैं। इसके बीच यदि पश्चिम के देशवालों ने भी इसका अनुभव किया, तो इसमें कोई बुराई नहीं दीख पडती। कुछ समय के लिए यदि यह भी मान लिया जाय कि यह पश्चिम ही का अविष्कार है, तो भी इसमें कोई दोष नहीं दिखाई देता। और यदि हम यह भी मान लें कि वहाँ की सभ्यता से हमारा सर्वनाश हो रहा है फिर भी हम इस सिद्धान्त के कारण हैं कि सर्प के मस्तक से भी मणि रत्न ले लेना चाहिये, वेश्या के अधरामृत का भी तौ-जान से बहिष्कार करना चाहिए। यह यथाथ है। इसमें तो किसी को आपत्ति न होनी चाहिये।

हाँ, तो साम्यवाद अथवा जनतन्त्र क्या है ? ऊपर हम कह आये हैं कि स्वत त्रता ही सुख का चरम सीमा है और अनैक्य ही दुर्दैव है। इसे सभी कबूल करते हैं। इतिहास शाक्षी है, ससार के किसी भी देश में, किसी भी काल में, अनैक्य—फूट—से जो बुराई हुई, किसी से नहीं। महाभारत और यूरोपीय महायुद्ध-ऐसे अनर्थ का कारण भी यही घातक अनैक्य है। भारत-ऐसे देश को उजाड करने का सर्वेसर्वा श्रेय इस अनैक्य दुर्दैव ही को है। यदि आज भारत को स्वतंत्रता-सुख प्राप्त हो जाय और अनैक्य का विष उसके शरीर से न उतरा, तो इससे क्या फायदा ? जहर कालान्तर में, पहले उस स्वतन्त्रता रूपी वृक्ष को खोखला ही कर छोडगा। बहुत वर्ष पूर्व भारत को यह स्वतन्त्रता सुख प्राप्त था, पर अनैक्य का डेरा पडा रह गया, फलत यह दशा हुई, अत उस चरम सुख के लिए तो हमें इस अनैक्य से उतना ही शकाशील होना चाहिए भयातुर रहना चाहिये, जितना परतन्त्रता से। मूल बात तो यह है कि ऐक्य का प्रसाद ही स्वतन्त्रता है। इसके अभाव में तो स्वतन्त्रता कठिनप्राप भी है। यदि मिला भी, तो क्षणिक होकर। इसलिए, उचित तो यह है कि परतन्त्रता के बन्धन को तोडने के साथ साथ इससे भी पिण्ड छुडाने का सामान—उद्योग—करते रहें पर यह हो कैसे ? किसी वस्तु के होने का कुछ कारण होता है, तब काय। कारण क बिना काय का होना असम्भव है। और बिना कारण को दबाए काय के दबाने का प्रयत्न मिथ्या है। पाप का कारण है मन की उद्दण्डता। अब बिना मन को वश मे किये पाप से छुटकारा पाना दुश्वार है। इसलिये, अनैक्य को दूर करने के लिये हमें उसके कारण पर दृष्टिपात करना चाहिये, तभी तो हम काय अनैक्य को दबा सकेंगे, अनैक्य का एक मात्र कारण तो स्वाथ ही मालूम पडता है। जहाँ कहीं बड बड राज महाराज से लकर तालुकेदार एव साधारण जन समाज तक व्यापारी मण्डल से लेकर छोटे छोटे मजदूर तक, भाई भाई में सर्वत्र इसी स्वाथ के कारण अन बन बढती है। राजा स्वाथ वश दूसरे छोटे राज्य पर आधिपत्य जमाना चाहता है, जनता एक साधारण बटवारे पर लड पडता है। इसी प्रकार व्यापारी, वैद्य आदि सभी अपने अपने स्वाथ के वशीभूत हो आपस में विद्रोह की अग्नि सुलगाते रहते हैं।

इस पिशाच ने न जाने कितने ऐश्वर्य में पले राजकुमारों से कफन बुनवाये, फूल सी राज महिषियों को काँटे का सेज सुलाया, कितने बसे घर उजाड, नेह-नाते का तोडा आँख देखत रोटी छीनी, रक्त की नदियाँ बहाईं, सोने को सुहागा और मन्दिर को खाक बनाया, सगे को दूध की मक्खा बनाया, पिता पुत्र को छुडाया, मित्र बान्धवों को उभारा और न जाने क्या क्या किया। मेधा हीन जीव जन्तुओं में भा इसी स्वाथ को पाकर बखेडा उठता है। दो पिल्ले इसी कारण लड़ पडते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। यदि वह जमींदार पिल्ला अपने खाद्य का क्षीणांश भी उस क्षीणकाय दूसरे देहाती पिल्ले को दे दे, तो फिर कोई बखेडा ही न जडे, सुख शान्ति हो बीते मगर वह तो वैसा करना चाहता ही नहीं, उसको तो सिर्फ अपने जयाल के लिए खुशबूदार साबुन चाहिए सोने की जजीर चाहिए। दो चार नौकर भी सुबह शाम की सैर कराया करें। बैठने के लिए भी कोमल गद्दी हो। खैर इसकी भी उस देहाती पिल्ले को किञ्चित परवा नहीं। इनके अभाव में भी वह अपना जीवन धारण कर सकता है। मगर इसको जो असह्य हो रहा है वह तो है, उस जमींदार पिल्ले का उग्र व्यवहार उसकी खुदगरजी, उसकी ओछी नजर—दूध भात आगे पडे पड़े सड़ जाय पर क्या मजाल कि दूसरे उसकी जूठी पतरी का भा हकदार हो। वह तो इस देहाती पिल्ले को देखना तक नहीं चाहता, एक होने की तो बात जुदा ही है। आँखे लाल लालकर वह उसे एक ही बार में निगल जाना चाहता है। आखिर वह भी तन जाता है और अशान्ति की रूप-रेखा खडी हो जाती है अत कल्याण इसी में है कि दोनों एक रूप होकर रहें—न जमींदार होकर रहे, न देशी ही बना रह पर एक होना जरूरी है। बाघ और बकरी में तो कभी निभ नहीं सकती। यही प्रयत्न तो हमारा सीधा सादा साम्यवाद है। सुख की नींद का अख्तियार हो तो सबको चना चबाना हो तो सब को, वास्तव में यही एक सिद्धान्त ससार को महा भय से बचा लेता है। इसमें कुछ विचित्रता नहीं, न कोई नकल ही है। यह तो एक साधारण, विश्व को एकता सूत्र में बाँधकर सुख-शान्ति का राज्य स्थापित करने वाला, सीधा-सादा वाद है।

जिन्हें एकता का सिद्धान्त मान्य है, पर साम्यवाद के नाम पर चौंक उठते हैं, उन्हें गहरा विचार करना चाहिये। यथार्थत साम्यवाद एकता ही है। साम्यवाद का अथ ही एकता अथवा समानता है, सुख शान्ति है। जिन्हें एकता से भी चिढ़ है, अनैक्य को ही जो सुख शान्ति का साधन बताते हैं, उनसे तो मेरा कुछ कहना ही नहीं है।

अत साम्यवाद युत स्वतन्त्रता पाने की आवृति ही इस युग की प्रतिनिधि हो सकती है। कोरी स्वतन्त्रता नहीं।

जीवन्मुक्त महात्मा श्री तैलंग स्वामी का तत्वोपदेश

लेखक—श्रीयुत अजितनाथ भट्टाचार्य, बी० ए०, एल एल० बी०

(गतांक से आगे)

इस नाड़ी में प्रवेश करके ज्ञान और आनन्द मय अन्तराकाश में पद्मवत् गृह के मध्य में आत्मा का वास है। भूभुव इत्यादि सब वहीं अवस्थित हैं। इस षट्चक्र को भेद कर के प्रधाना नाड़ी सुषुम्ना के मध्य में आत्मा को प्रवेश करा कर उस सच्चिदानन्द के साथ मिलाना होता है। इस सम्मेलन को षट्चक्र भेद कहते हैं। कठिन योग की अपेक्षा सरल योग सहज और अधिक फलदायक है। कठिन योग शारीरिक और मानसिक शिक्षा है, सरल योग केवल मानसिक शिक्षा है। मानसिक शिक्षा समाधान होने से शारीरिक शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं होती है। कठिन योग, कुम्भक, विकुम्भक, आनुमीन, उत्क्रान्ति और दृष्टि है। सरल योग, सत्य, सत् और निर्विकार है। सरल योग सहज, साध्य और साधारण मनुष्यों के ग्रहण करने योग्य है। कठिन योगसाधन साधारण मनुष्य के भाग्य में नहीं होता है। सरल योग की शिक्षा के लिए वनवास, शारीरिक क्लेश, इत्यादि कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं होती है, केवल चित्त वृत्ति को अपने वश में करने और सत्मार्ग में चलने की क्षमता होने ही से महाफल लाभ होता है। शारीरिक क्लेश, तीर्थ पर्यटन उपवास इत्यादि की आवश्यकता नहीं होती है। सद्वृत्तियों की आलोचना और सद्वृत्तियों का अनुशीलन करने से जो फल मिलता है, तीर्थ पर्यटन करने में वह फल नहीं मिलता है। जब मन शुद्ध हो जाता है, जब चित्त निर्मल हो जाता है, तब मनुष्य अपने हृदय में सब तीर्थों को देखने में समर्थ हो जाता है। जितने भी तीर्थ हैं, वे सब मनुष्य के शरीर में विद्यमान हैं। गङ्गा नासापुट में, यमुना मुख में, वैकुण्ठ हृदय में, वाराणसी (काशी) माथे पर, हरिद्वार नाभि में इत्यादि।

स्वर्ग अथवा मर्त्यलोक के जितने भी तीर्थक्षेत्र हैं, वे सब मनुष्य के शरीर में वर्तमान हैं। जिस पुरी में प्रवेश करने में कोई कुंठा अर्थात् संकोच नहीं होता है वही वैकुण्ठ है।

पाप भय का मूल है। जो पापी है वह सभी कार्य में संकोच करता है और जो निष्पाप है, वह कहीं भी शंका नहीं करता है। वह सर्वदा ही कुंठा रहित होता है, इसलिये वह वैकुण्ठ पुरी जाने का अधिकारी होता है। उसके हृदय में चित्-स्वरूप आनन्दमय और सत्-स्वरूप वैकुण्ठनाथ विराजमान है।

वैकुण्ठ अर्थात् हृदय के नीचे ईड़ा और पिङ्गला नाड़ियाँ हैं। इनको चन्द्र, सूर्य अथवा गंगा और यमुना भी कहते हैं। इनका संगम है।

इस संगम में स्नान करने से जीव सब पापों से मुक्त हो जाता है। गङ्गा और यमुना का संगम हृदय के नीचे है। ईड़ा आत्मज्ञान और पिंगला विवेक कहलाता है। गंगा और यमुना का जिस प्रकार का सम्बन्ध है, ईड़ा और पिंगला का भी ठीक उसी प्रकार का सम्बन्ध है। पिंगला अर्थात् विवेक से ईड़ा अर्थात् आत्मज्ञान की उत्पत्ति है, मन को इस पिंगला के रास्ते प्रवेश करा के क्रमश. निवृत्ति के द्वारा ईड़ा में मिला देना होता है। इसके बाद ईड़ा और पिंगला का जहाँ संगम हुआ है, अर्थात्—जिस स्थान पर आत्मज्ञान और विवेक मिले हैं, मन को उसी स्थान पर ले आकर स्नान कराने से ही महाफल प्राप्त होता है। जिसको आत्मज्ञान हो गया है, उसके लिये योग अत्यन्त सहज है। आत्मज्ञान का लाभ करना ही योग का कारण है। उस आत्मज्ञान को लाभ करने के लिये ही योग की शिक्षा की जाती है। उसके लिये गृहत्याग अथवा वनवास की कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ ऐसे नियम हैं, जिनकी चिन्ता करने और उनके अनुसार चलने ही से योग फल और आत्मज्ञान का लाभ होता है। आत्मज्ञान लाभ करने के लिये किसी अन्य प्रकार की कठिन साधना की आवश्यकता नहीं है, केवल उनकी चिन्ता करने ही से योग फल की प्राप्ति हो सकती है। उनको सरल योग कहते हैं। योग फल प्राप्त करने के लिये इन सब वृत्तियों को रोकने की बड़ी आवश्यकता है और जिसके निग्रह के बिना योग फल प्राप्त नहीं हो सकता, वे नियमादि नियमावली में हैं यदि उस तरह के आचरण किये जायँ और उसी प्रकार के भावों का हृदय में पोषण किया जाय, तो निश्चय ही योग फल से लाभ हो सकता है।

नियम निम्न लिखित हैं—

१—जो स्वयं असन्तुष्ट है, वह किसी को सन्तुष्ट नहीं कर सकता है, जो सर्वदा सन्तुष्ट रहता है, वह सबको प्रफुल्लित और आनन्दित कर सकता है।

२—जिह्वा (जबान) पाप बात करने में सदा तत्पर रहता है, उसको संयत करना (रोकना) चाहिये।

३—आलस्य सब अनर्थ का मूल है, इसलिये आलस्य को त्याग देना चाहिये।

४—संसार धर्म और अधर्म की परीक्षा का स्थान है, बड़ी सावधानी से धर्म और अधर्म की परीक्षा करके काय में लगना चाहिये।

५—किसी धर्म में अश्रद्धा न करो, सब धर्म में सार, तत्व और सत्य वर्तमान है।

६—दान दरिद्र को देना चाहिये, धनी को दान देना व्यर्थ है, क्योंकि उन्हें उसकी आवश्यकता नहीं है।

७—सत्संग ही स्वर्ग है, और असत्संग नरकवास का मूल है।

८—आत्मज्ञान, सत्पात्र को दान और संतोष से मोक्ष प्राप्त होता है।

९—जो शास्त्र पढ़कर और उसके मर्म को जान कर उसका अनुष्ठान नहीं करता, वह पापी से भी अधम है।

१०—अनुष्ठान के मूल में धर्म रहना चाहिये, नहीं तो, वह सिद्ध नहीं होता है।

११—कभी किसी की हिंसा न करो, सत् अथवा असत् उद्देश्य से कभी किसी जीव का वध न करो।

१२—जो मनुष्य पाप कलंक को न धोकर और सत्यानुरागी न होकर केवल रंगे कपड़े पहनकर ब्रह्मचारी बनता है, वह मनुष्य धर्म का कलंक स्वरूप है।

१३—बिना छत के मकान में जिस प्रकार वर्षा का पानी गिरता है, उसी प्रकार चिन्ताहीन मन में रिपुगण प्रवेश करते हैं।

१४—पापी मनुष्य इस लोक में पश्चात्ताप की अग्नि में जलता है, जब कभी वह अपने बुरे कर्मों का खयाल करता है, तभी उसके हृदय में पश्चात्ताप की अग्नि जल उठती है।

१५—(क) चिन्ताशीलता अमरत्व-लाभ का पथ है, चिन्ताहीनता मृत्यु का पथ है।

(ख) गर्व मत करो, काम उपभोग की चिन्ता न करो।

१६—शत्रु शत्रु का जितनी हानि नहीं पहुँचा सकता है, कुपथगामी मन उससे भी अधिक हानि पहुँचाता है।

१७—मधुमक्षिका जिस प्रकार पुष्प के सौन्दर्य (सुन्दरता) अथवा सुगन्ध का अपव्यवहार न करके मधु का संग्रह करती है, तुम भी उसी प्रकार पाप में लिप्त न होकर ज्ञान-लाभ करो।

१८—यह पुत्र मेरा है, यह ऐश्वर्य मेरा है, अज्ञानी लोग इस प्रकार की चिन्ता करते हैं और दु:ख पाते हैं। वह स्वयं ही अपना नहीं है, पुत्र अथवा सम्पत्ति उनका किस प्रकार हो सकता है।

१९—थोड़े ही लोग इस संसार समुद्र के पार जाते हैं, अधिकांश लोग भ्रम के नाम पर दौड़ते रहते हैं।

२०—संग्राम में जिस मनुष्य ने लाखों आदमियों पर विजय पाया, वह वास्तव में विजयी नहीं है। जिसने अपने को जीत लिया है, वही वास्तव में विजयी है।

२१—यह सोच कर निश्चिन्त न रहो कि पाप हम पर आक्रमण नहीं करेगा। एक-एक बूँद पानी से जलपात्र भर जाता है, बेसमझ (मूर्ख) मनुष्य क्रमश. पापमय हो जाता है।

२२—किसी को कड़वी बात न बोलो, कड़वी बात बोलने से कड़वी बात सुनना होगा। मारने से मार भी सहना होगा। रुलाने से रोना भी पड़ेगा। (क्रमश.)

हृदय की लहर

लेखक—श्रीयुत विश्वमोहनकुमारसिंह, एम. ए., बी-एल.

(गतांक से आगे)

समय जाने लगा उसकी निराशा बढ़ने लगी और वह पहले से भी अधिक एकान्तप्रिय हो गया। जब देखो दरिया किनारे बाजारों में सड़कों पर बाग में हमेशा अकेला मानो इसे दुनिया में कोई नहीं। वास्तव में होता भी ऐसा ही है। जब कोई युवक एकान्तवासी हो जाय, समझना चाहिए इसके हृदय में कोई विकट संग्राम छिड़ गया है जिससे छुटकारे की लालसा से वह सुनसान में जाता है पर उसे क्या मालूम कि सुनसान मनुष्य के स्थित भावों को और भी गम्भीर बना देता है चाहे वह सुखमय भाव हों या दुखमय। कभी कभी अनोखे ऊब कर साथियों से भी जा मिलता था उनके साथ हँसता और समय बहलाता था पर उसकी मुखमुद्रा पर विषाद की छाया सर्वदा वर्तमान रहती थी। उसकी प्रायः यह धारणा हो गई थी कि प्रेम केवल मोह का दूसरा नाम है। यह संसार में मनुष्य को सर्वथा अयोग्य बना देता है अतएव वह कठिन परिश्रम कर अपने को संसार के योग्य बनाना चाहता था, पर हृदय की चोट रह रह कर कसक ही जाती थी।

कुछ दिनों के बाद वह रोगग्रस्त हो गया पर उसने रोग की कोई परवा न की। उसने अपना नित्य कर्म जारी रक्खा। फल यह हुआ कि ज्वर का प्रकोप बढ़ने लगा। वह बीमार था एक दो दिन तक उसे देखने वाला कोई नहीं एक दिन उसके कई मित्र वहाँ आये और बोले—'आप घर खबर क्यों नहीं कर देते ?

अनोखे—घर खबर देने की कोई जरूरत नहीं मैं बहुत जल्द अच्छा हो जाऊँगा।

मित्र—अच्छे तो अवश्य हो जाइयेगा पर सेवा शुश्रूषा भी तो करनी चाहिए।

अनोखे—नहीं मित्र मुझे सेवा-शुश्रूषा की कोई जरूरत नहीं। मैं किस लायक हूँ। भाई मुझे तो जीने से मरना ही अच्छा मालूम होता है।

मित्र लोग उसके स्वभाव से कुछ परिचित थे। अतएव उसके मुख से ये निराशापूर्ण शब्द सुन वे आश्चर्यान्वित न हुए पर उन लोगों के बहुत कहने पर अनोखे घर पत्र लिखने को राजी हो गया।

कुछ और ही

सवेरा हो चला था। नर्स ने मधुर स्वर में पूछा—आपकी तबीयत कैसी है ? धन्यवाद अब मैं अच्छा हूँ यह कह अनोखे ने अपनी आँखें चारों ओर दौड़ाईं फिर नर्स को देखा एक सुन्दर नवयुवती थी होठों पर मुस्कुराहट थी और एक हाथ में थरमामेटर लिये देख रही थी। उसने पूछा—मैं यहाँ कब आया ? नर्स ने कहा—क्या इतना भी याद नहीं ?

नहीं मुझे तो कुछ भी याद नहीं नर्स।

जिस समय आप यहाँ लाये गये नर्स ने कहा—उस समय आप बेहोश थे बुखार बहुत था। २४ घण्टे पर अभी आपको होश हुआ है। आप बेहोशी में क्या बोलते थे कुछ कह सकते हैं ?

अनोखे कुछ सोच कर बोला—नहीं मैं कुछ नहीं कह सकता। नर्स खिलखिला कर हँस पड़ी।

अनोखे उसका कुछ अभिप्राय न समझ सका। उसने पूछा—आप हँसीं क्यों ?

नर्स ने मुस्कुरा कर कहा—नहीं बताऊँगी।

अनोखे ने फिर कहा—नहीं नर्स बताइये।

नर्स मुस्कुरा रही थी, बोली—आप बहुत बड़े Love (प्रेमी) हैं देखिये इन लड़कियों के फेर में बहुत न पड़िये

अनोखे झेंप गया और वह मुस्कुराती हुई कमरे के बाहर चली गई

कुछ ही दिन में अनोखे की तबीयत अच्छी हो चली और वह अपने डेरे पर वापिस आ गया। पर रह रह कर उसे उस नर्स की याद आती थी, उसे देखने की एक वेदना सी हो जाती थी वह एक दिन यों ही घूमता घामता अस्पताल जा पहुँचा। कुछ आशा से उसका मुख प्रफुल्ल हो रहा था कि कम से कम वह उस नर्स को देख तो सकेगा और वह भी उसे पहचानेगी। कुछ देर तक वह नजर न आई पर अन्त में अनोखे ने उसे देख लिया। उसका हृदय धड़कने लगा। वह वहाँ चक्कर लगाता रहा। नर्स उसके बगल से निकल गई, पर उसने उसे आँख उठाकर भी न देखा। अनोखे को मानो किसी ने चुटकी लेकर जगा दिया। वह अपनी मूर्खता पर बहुत लज्जित हुआ कि हजार कष्टों के झेलते रहने पर भी वह सौन्दर्य को देखते ही मचल पड़ता है, पर वह निराशा से दुखित होने के बदले, उसे कुछ सन्तोष हुआ, इस आत्मनिरोध में उसे एक प्रकार का असाधारण आनन्द मिला।

कुछ दिनों के बाद वह एक रोज यों ही बैठा एक अखबार पढ़ रहा था। उसकी नजर बड़े बड़े अक्षरों में लिखी हुई एक पंक्ति पर जा पड़ी—

'न्याय का खून'

भाग्यविधाता आँखें फाड़ कर देखें। निर्दोष स्त्री को कठिन कारावास।

अनोखे उत्सुकता से पढ़ने लगा। लिखा था—प्रायः दो वर्ष की बात है पाठकों ने इन्हीं स्तम्भों में खून करने के अपराध में एक बालिका को पाँच वर्षों की कठिन सजा की कहानी पढ़ी होगी बालिका का नाम मालती था और कहा जाता है उसने प्रेम के ईर्ष्या में एक मारवाड़ युवक का खून कर डाला था वह बेचारी अपने निर्दोष होने का कोई काफी सबूत शायद पेश न कर सकी और इसी कारण उसे कठिन दण्ड दिया गया पर अब पता चलता है कि खून करनेवाला कोई और था। वह और हो नहीं था उन न्यायाधीशों में से एक था। उसने मरते समय जो इस रहस्य का भण्डाफोड़ किया है उससे इन न्यायालयों के प्रति बड़ी अशंका हो जाती है। ताकीतुल्लाखाँ साहब ने—जब वे अपनी जिन्दगी की घड़ियाँ गिन रहे थे—अपने भाई को बुलवाया और कहा—भाई साहब मुझे अब खुदा के पास जाना है इसलिये अपने दिल को पाक बना डालना ही अच्छा है। मैं एक खूनी हूँ। लेकिन इन्सानी अदालतों के मुताबिक एक दूसरा ही शख्स सजा भुगत रहा है। भाई जब मैं उसे ख्याल करता हूँ तो तबीयत बेचैन हो जाती है। खुदा रहीम है, वह सब पर रहम करता है जो कुछ मैं कह रहा हूँ इसे तुम सब लोगों पर जना देना क्योंकि गुनाहों को कह डालने से गुनाह माफ हो जाता है और दिल में भी एक सफाई और सहूलियत आ जाती है।

एक वक्त था जब कि मैं मालती की मुहब्बत का दीवाना हो रहा था पर वह मुझे चाहती न थी। एक शब को मैं घूमता घामता उसके दरवाजे के पास जा पहुँचा। जँगले से झुक कर देखा कोई नौजवान उससे बात कर रहा है। एक आशिक के दिल में माशूका को दूसरे के पास देख कर कैसी जलन होती है यह तो कोई आशिक ही जानता है वह अपनी बरदाश्त के बाहर हो जाता है चन्द लहमों के बाद वह नौजवान कमरे से बाहर आया। उसका चेहरा जर्द हो रहा था। अँधेरे में वह आगे बढ़ा, मैंने पीछे से उसे पकड़ कलेजे में छुरा भोंक दिया। वह चिल्लाया कुछ बोला शब्द न सुनी अनसुनी कर दी। मैं चम्पत हो गया। उस मुकदमे में मैं भी एक जूरर था मुकदमे में जो बात खुली उससे पता चला कि मालती न उस हीरा को ही चाहती थी न मुझे ही। जो हो मैं जानता था मालती बेकसूर है मैंने मालती को बेगुनाह करार दिया लेकिन जज और दूसरे दूसरे जूररों की राय उलटी ठहरी बेचारी मालती पाँच वर्षों के लिये जेल में ठूँस दी गई।

उसी के बाद से मेरी तबीयत बिगड़ने लगी। हीरा के खून और मालती के जेल की जड़ मैं ही हूँ। उन दोनों की याद मुझे कभी भूलती ही नहीं। वे हर तरह की डरावनी सूरत बना ख्वाब में आते हैं। मैं डरने लगा हक हक मुआफ खुदा, रहम कर रहम कर'

ऊपर की बातें खाँसाहब के भाई अनवरअलीखाँ ने प्रकाशित करने के लिये भेजा है। आप बहुत ही पढ़े लिखे सुप्रतिष्ठित पुरुष हैं, अतएव उनकी बातों को तथ्य न मानना योग्य नहीं। सुतरां हम लोगों ने इस पत्र की अविकल प्रकाशित कर दिया है। इन बातों से आधुनिक अदालतों पर पूरा प्रकाश पड़ता है। ये सत्य की खोज और जाँच के लिये स्थापित नहीं हुईं, वरन Evidence Act के दिग्दर्शन और प्रदर्शन के लिये। ऐसा बहुत समय आता है, जब मनुष्य अपने कामों का पक्का सबूत नहीं दे सकता, जब तक कि सबूत बनाया न जाय। इसके अलावा

जो दरिद्र हैं उनके लिये तो न्याय पाना कठिन ही नहीं असम्भव-सा हो गया है। पुराने समय के न्याय विवरण की प्रणाली की जाँच कीजिए तो पता लगेगा कि न्यायाधीश सत्य की खोज के लिये कितना प्रयत्न करते थे पर आजकल के हाकिम तो न्याय करना अपना धर्म नहीं समझते, बल्कि अपनी दानविक शक्ति का प्रयोग करना ही अपना ध्येय समझते हैं। खुफिया पुलिस तो विशेष कर राजपदाधिकारियों की रक्षा ही के लिये रखी जाती है। वास्तव में जब तक न्यायविवरण की प्रणाली बदली नहीं जाती तब तक घोर अन्याय और अत्याचार होता रहेगा। देशहितैषीगण आँखें खोलकर देखें।

लेख का पठन समाप्त करते करते अनोखे का मस्तिष्क घूम गया। ललाट पर पसीना चमचमा आया उसकी आँखें पथरा गईं और वह हतश सा कुरसी पर गिर गया। कुछ दिनों तक उसे मालूम हुआ उसका सिर फटता जा रहा है वह हमेशा बेचैन रहा करता था। यों तो सांसारिक व्यवहारों को वह किसी तरह निबाहता जाता था पर उसके आचार विचार में परिवर्तन लोगों से अदृश न रह सका। कभी कभी बात करते करते अन्यमनस्क हो जाता भृकुटि चढ़ जाती और होंठ सूख जाते कभी कभी वह रोते रोते हँस देता। लोगों ने समझा उसका दिमाग कुछ बिगड़ रहा है। लोग उसे कितना ही समझाते और असली बात जानने की चेष्टा करते पर सभी निष्फल। वह सिर्फ यही कहता—मुझे जीने की साध नहीं। डाक्टरों ने भी राय दी वह घर भेज दिया जाय उसे तीन महीने की छुट्टी मिली। वह घर चला गया।

*

दुःख पर दुःख

भादों का महीना है, व्योममण्डल की विचित्र दशा हो रही है। अभी धूप चमक रही है पर साथ साथ वृष्टि भी हो रही है। दूर से काली घटा घिरने के चिन्ह दिखाई दे रहे हैं। हवा सन सन कर बह निकलती है। सामने नदी के जल में चुनन पड़ जाता है फिर बिखर जाता है। अभी कुछ कुछ वृष्टि भी हो रही है धूप भी चमक रही है।

घर के भीतर से कुछ गुनगुनाने की आवाज आई। अनोखे का माथा ठनका यह तो चाचीजी की आवाज थी, वह व्याकुल हृदय हो चुपचाप कुछ निकट जा सुनने लगा—

चाची—हाँ जी हाँ क्या नहीं बोलोगी वह जो कमाते हैं न।

मनोरमा—कमाते हैं तो कौन अपने ही खा जाते हैं। सब तो तुम्हीं लोगों में खर्च करते हैं।

चाची—जिसके लिए करें उसके लिये हम बेचों को कौन पूछता है। हम लोग तो भार हो रहे हैं जब तब ताना मारते हैं।

मनोरमा—ऐसा न कहो मैं तो समझती हूँ वे तो तुम लोगों के लिए अपने भर उठा नहीं रखते।

चाची—रहने भी दो हमारे पति ने जो कुछ कमाया इन्हीं लोगों में लगा दिया एक पैसा भी बच्चों के लिए नहीं छोड़ा नहीं तो हमारे बच्चे आज ऐसे बेवारिस नहीं होते।

मनोरमा—तुम तो बेकार इन बातों को सोचती हो। तकलीफ है तो सब को है। फिर आया गया सब किसी तरह चल ही रहा है। विद्यावती की शादी हो ही गई, और ईश्वर की कृपा से अच्छी ही हुई

चाची—चुप भी रहो। तुम भी लगीं ताना देने एक लड़की की न शादी की जन्मभर के लिए कहने को हो गया। अब तो हम प्रेमावती की शादी उन लोगों का कभी न करने देंगे। एक पत्तल भात देकर किसी को दान कर देंगे पर यह सब ताना अब न सहेंगे

मनोरमा—तो क्या इससे इज्जत बढ़ जायगी?

चाची (आँसू पोंछती हुई)—इज्जत इज्जत का नाम न लो मनोरमा। अब इस घर में इज्जत ही क्या है? खाने को लाले पड़ रहे हैं दिन रात गाँजा और शराब चलता ही है

मनोरमा—क्या अनोखे के बारे में या तुम ?

चाची—(आँखों से आग बरसाती हुई)—अब मत बोलो। मैं कहे देती हूँ। बड़ी हिमायती बनने चली हैं। कमा कमा कर देते हैं न इसीलिए

मनोरमा—बस ज्यादे न बोलो, हमें गाली सुनने का शौक नहीं तुम लोगों के बीच में बोलना ही (घरेस) एक बिचारा मरे और ये लोग घर में बैठे बैठे कनून

मनोरमा चली गई। चाची जली कटी नज़रों से उसे देखती रही। फिर बकबक करने लगी—वफफड पड़े जहन्नुम में जाय ऐसा घर—सब को चढ़ा बढ़ा कर भेजता है हम संतान के लिए! फिर रो रो कर गाने लगी—हे परमात्मा! देखो जो मुझसे जैसा करे वैसा ही फल पावे जैसी ही मैं बेवा हूँ वैसा ही उसकी औरत भी बेवा हो—मरे ही मा वह भी रोए मरे गले कलपे

प्रियहासिनि अपनी कोठरी से सब सुन रही थी बिलख बिलख कर रो भी चुकी थी आँसू पोंछ चुकी थी। उसे कई बार इच्छा हुई वह भी जा कर कुछ सुनाये पर रह रह कर उसे अनोखे की बात याद आ जाती—जो कुछ हो सब सहते जाना वह अब तक उनके झूठी लाञ्छनाओं को सुनती रही सहती रही सोचती थी कि जो कुछ उनसे बना उठा नहीं रखा और उनके जवाब में प्रेम और आदर के बदले गालियाँ मिलती हैं पर ज्यों ही उसने चाची को उनके मरने के लिए मनाते हुए सुना वह अपने को रोक न सकी और चाची के निकट जा कर बोली—क्या अभी तक संतोष नहीं हुआ सबको खा कर ही दम लोगी?

यह कहना क्या था कि बिजली टूट पड़ी वह गरज गरज कर गालियाँ देने लगी औरतों की थोड़ी भीड़ सी हो गई, पर दर्शकों की संख्या बढ़ती जाती थी। ऊपर बादल गरज रहे थे नीचे चाची गरज रही थी।

अनोखे धीरे से बाहर दालान में चला आया। उसे दुःख था महान् दुःख था। वह यही सोच रहा था कि बिजली भी मुझ पर टूट कर नहीं गिरती धरती भी नहीं फट जाती! जब किसी आवेश को बाहर निकालने का मार्ग मिल जाता है तब वह उतना कष्टकर नहीं होता पर जब वह हृदय में बन्द रह जाता है तब मनुष्य का जीवन असह्य प्रतीत होने लगता है। वही दशा अनोखे की थी। उसके हृदय में क्रोध और दुःख छलाँग मार रहे थे यदि वह क्रोध को प्रकट कर देता या अपना दुखड़ा किसी को सुना देता तो उसका बोझ बहुत कुछ कम हो जाता पर वह क्रोध करे तो किस पर? चाची घर की विधवा थीं दुःख सुनाये तो किसे? हे आश्रयविहीन मित्रविहीन था वह दिल थाम बैठा रहा। कभी बिजली की कड़क सुनता तो कभी मूसलधार वृष्टि की घहड़ घहड़ सुनता कभी कभी दूर में आते हुए जलस्रोत का हाहाकार सुनता।

कुछ देर के बाद घटा साफ हो आई वृष्टि भी रुक गई वायु भी मन्द मन्द चलने लगी। अब कुछ लोग घर से बाहर घूम घूम कर प्रकृति की नवीन सजल शोभा देखने लगे पर अनोखे बैठा ही रहा। उसका मस्तिष्क घूम रहा था न जाने क्यों उसकी बाईं आँख फड़क रही थी। वह किसी अनिष्ट की आशंका से व्यग्र हो उठता था। वह इसी उधेड़बुन में था कि उसने एक सिपाही को अपनी तरफ झपटते हुए आते देखा। निकट आने पर सिपाही ने पूछा—आपने इधर से किसी को जाते देखा है?

अनोखे—किस को? आदमी की पहिचान?

सिपाही—किसी पगली औरत को?

अनोखे—कितनी देर हुई?

सिपाही—अभी अभी।

अनोखे—नहीं मैंने तो नहीं देखा बात क्या है?

क्या बताऊँ! कहता हुआ सिपाही तेजी से निकल गया। अनोखे की इच्छा हुई कि वह पीछे पीछे जाकर देखे पर वह स्वयं संताप के बोझ से इतने दबा हुआ था कि उसे चलना भारी मालूम हुआ। वह केवल बैठा बैठा नदी की ओर देखा किया। (क्रमशः)

खद्दर पहनो और देश के दुख-दारिद्रय को दूर भगाओ।

७ लाख रु० वार्षिक वेतन पानेवाला पत्रकार !

२०० दैनिक और ५०० साप्ताहिकों का लेखक !

लेखक—श्रीयुत गोपीवल्लभजी उपाध्याय

बीसवीं शताब्दी में अमेरिका की नई दुनिया और उसका न्यूयार्क शहर सभी बातों में नवीनता रखता है। उसकी वह नवीनता समाचार-पत्रों में विशेषरूप से दृष्टिगोचर होता है। वहाँ ऐसे ऐसे लेखक और संवाददाता मौजूद हैं, जो दो-दो सौ दैनिक एवं पन्द्रह सौ साप्ताहिकों में कलम चलाया करते हैं, और जिन्हें वार्षिक सात-सात लाख रुपया वेतन के रूप मे मिलता है। इस विषय में भारत का स्थान कहाँ है, यह तनिक विचार करने जैसी बात है। अस्तु आज हम अपने पाठकों की जानकारी के लिये ऐसेही व्यक्ति का परिचय देना चाहते हैं, जिससे भारतीय पत्रकारों को सीखने-योग्य कई बातें मिल सकती हैं।

यह मानी हुई बात है कि परिश्रम का उचित बदला, वेतन के रूप में चुकाने के लिए अमेरिकन लोग संसार में अपना सानी नहीं रखते। उनकी उदार वृत्ति इस विषय में अद्वितीय कहला सकती है। वहाँ के समाचार-पत्रों के विख्यात करोड़पति स्वामी मि० विलियम रेन्डोल्फ हर्स्ट अपने पत्र में एक कॉलम लिखने वाले विख्यात पत्रकार मि० आर्थर ब्रिस्बेन को प्रतिवर्ष २॥ लाख डॉलर अर्थात् सात लाख रुपये से भी अधिक वेतन देते हैं। क्या इतना वेतन संसार में किसी सम्पादक को मिलता है ?

मि० ब्रिस्बेन का जीवन भी उनकी लेखनी की विचित्रता की तरह कम आश्चर्य-जनक नहीं है। वे जब न्यूयार्क के 'सन्डे वर्ल्ड' में काम करते थे, तब एक दिन उन्हें प्रे० जार्ज वाशिंगटन (अमेरिका को अंग्रेजी शासन से मुक्त कर स्वतंत्र बनाने वाले) जैसे महापुरुष के जन्मदिन पर एक लेख लिखने के लिये कहा गया। इससे पहले अर्थात् वाशिंगटन की मृत्यु के पश्चात् उनके सम्बन्ध में अनेक लेख लिखे जा चुके थे, किन्तु उनमें के अधिकांश लेखों में केवल शुष्क आलोचना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था, किन्तु जब ब्रिस्बेन ने लेख लिखा, तो वह सर्वथा वैचित्र्य-पूर्ण एवं जनता के लिये एकदम नवीन था। उन्होंने वाशिंगटन के विषय मे संसार के लिये अज्ञात विषय-अर्थात् उनका खाद्य सामग्री, उनकी आदतें एवं उनके हाथ-पैर आदि अवयवों की मुटाई आदि पर बड़े ही आकर्षक ढंग से प्रकाश डाला। जनता वैसेही मानव जाति का स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ—खासकर बड़े आदमियों से सम्बन्ध रखने वाली बातें जानने के लिए आतुर रहती है, अतएव मि० ब्रिस्बेन का वह लेख लोगों को बहुत पसन्द आया।

इस प्रकार के लेख मानव-जाति की इस वृत्ति को जागृत करने वाले (Human Intrest Story) कहाते हैं, अतएव इस प्रकार के लेखक इङ्गलैंड अमेरिका जैसे देशों मे मनमाना धन कमा सकते हैं।

उदाहरण के लिए भारतीय बड़ी धारा सभा के अध्यक्ष स्व० विट्ठलभाई पटेल को ले लीजिए। वे लाल रंग की तुर्की टोपी पहनते और ऐसे कड़ी आलोचना वाले भाषण करते कि लार्ड विलिंग्डन का आसन हिल जाता और वे उठ खड़े होते, किन्तु लेडी विलिंग्डन पीछे से उनके कोट का सिरा खींच कर नीचे बिठा देती थीं। इस प्रकार का वर्णन यदि कोई लेखक लिखता, तो श्री पटेल के गंभीर विचारयुक्त भाषणों की अपेक्षा लोग इसी को विशेष रुचि के साथ पढ़ते। यूरोप और अमेरिका के पत्रों मे इस प्रकार के मनोरंजक लेखों पर खासा पुरस्कार भी दिया जाता है।

हाँ, तो अमेरिका के पत्रों के विख्यात सम्पादक मि० दाना ने १८ वर्ष की अवस्था में ब्रिस्बेन को 'रिपोर्टर' के रूप मे नौकर रक्खा। उस समय सम्पादकीय विभाग में उनके यहाँ वहा सबसे छोटे रिपोर्टर थे, किन्तु बड़े तीव्र बुद्धि।

मि० ब्रिस्बेन घूँसेबाजी के विरोधी हैं, किन्तु 'न्यूयार्क वर्ल्ड' पत्र के प्रतिनिधि के रूप में उन्हें शेन्टली के विख्यात चेम्पियन जान सुलीवन और प्रसिद्ध घूँसेबाज चार्लीमिचल के दंगल की रिपोर्ट लेने के लिए फ्रान्स भेजा गया, किन्तु उन्होंने दोनों पहलवानों की कलाबाजियों का ऐसा मनोरंजक वर्णन लिखा कि सारी अमेरिका के लोगो ने, जो बड़ी रुचि के साथ पढ़ा और उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की।

इसके बाद उन्हें 'न्यूयार्कवर्ल्ड' के प्रबन्ध-सम्पादक की जगह दी गई और कुछ ही दिनों बाद वे वहीं 'इवनिंग वर्ल्ड' के प्रबन्ध सम्पादक बना दिये गये।

मि० ब्रिस्बेन ने विचार किया कि अपने पत्र के प्रथम पृष्ठ पर संक्षिप्त और मनोरंजक भाषा मे अपने नाम से मानव जाति की भावनाओं पर प्रभाव डालने वाली बातों का स्तंभ (कॉलम) खोलकर प्रति दिन कुछ लिखा जाय। [जैसा कि 'बम्बई क्रानिकल' और 'नवभारत' आदि दैनिक-पत्रों ने आरंभ किया है] यह प्रयोग कुछ ही दिनों चल सका था कि इसी बीच यूरोप से पत्र के स्वामी जोसफ पुलिटजर का तार मिला—

'यह कॉलम एक दम बन्द कर दिया जाय। मेरे पत्रों में सम्पादक के (नाम से) स्वतंत्र-विचार प्रकट करने की आवश्यकता ही नहीं है।'

लाचार होकर उन्हें पत्र के स्वामी की इच्छानुसार बड़े ही असन्तोष के साथ वह मनोरंजक कॉलम बन्द कर देना पड़ा।

किन्तु एक मशहूर धनी के लाड़ले बेटे ने मि० ब्रिस्बेन के उस मनोरंजक कॉलम का स्वाद चख रक्खा था। वह युवक था—मि० विलियम रेन्डोल्फ हर्स्ट, जो कि कैलिफार्निया में सम्पादक के नाते ख्याति पाकर न्यूयार्क के पत्रों में ताजी ही झलक दिखलाने लगा था। पिता की सम्पत्ति में से मनमाना पैसा खर्च कर समाचार-पत्रों की दुनिया में एकदम अद्भुत परिवर्तन कर, क्रांति कर डालने के लिये मि० हर्स्ट उतावले हो रहे थे। और उन्हें इसके लिये मि० ब्रिस्बेन से ही पूरी सहायता मिल सकती थी। फलतः उस हल्की भूरी आँखों और शर्मीले व्यवहार वाले युवक मि० हर्स्ट ने न्यूयार्क वाले सुन्दर बंगले में मि० ब्रिस्बेन को मिलने के लिये बुलवाया। पिता के पैसे खरचने की आशा और उत्साह पूर्ण शक्ति रखने वाले इस बेचैन युवक ने व्यर्थ शिष्टाचार या उल्टी-सीधी बातें न करके सरल शब्दों में कहा—मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप मेरे यहाँ मेरे पत्र में काम करें।

इस पर मि० ब्रिस्बेन ने सावधानी के साथ कुछ देर तक आना कानी की, क्योंकि उनकी इच्छा अपनी लगी लगी हुई, नौकरी को छोड़ देने की नहीं थी, साथ ही यह भी एक विचारणीय प्रश्न था कि अमेरिकन-पत्रों की दुनिया में मि० हर्स्ट कब तक टिक सकेंगे ? किंतु मि० ब्रिस्बेन के चेहरे पर शंका की छाया देखते ही मि० हर्स्ट ने ललचाने के लिये ऐसा अचूक वाक्बाण चलाया कि मि० ब्रिस्बेन को चुपचाप मि० हर्स्ट की बात मान लेनी पड़ी। मि० हर्स्ट ने कहा कि 'सम्पादक के प्रथम पृष्ठ के जिस कॉलम को बन्द करने के लिये आपको विवश किया गया है, मैं आपसे वही कालम लिखवाना चाहता हूँ।' इन शब्दों को सुनते ही मि० ब्रिस्बेन ने प्रसन्नता पूर्वक तत्काल मि० हर्स्ट के पत्र में काम करना स्वीकार कर लिया।

इसके बाद दोनों के बीच वेतन के विषय मे इस प्रकार वार्तालाप हुआ—

मि० हर्स्ट—अच्छा तो आप वेतन क्या लेंगे ?

मि० ब्रिस्बेन—वही, जो आजकल प्रति सप्ताह दो सौ डालर के रूप में मुझे मिल रहा है।

मि० हर्स्ट—'किंतु यह तो कोई पर्याप्त वेतन नहीं कहा जा सकता। [क्योंकि मि० हर्स्ट इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि कब किसको कितना वेतन देना चाहिये, अतएव उन्होंने बिना किसी संकोच के तत्काल कहा कि] मैं आप को चार सौ डालर प्रति सप्ताह देना चाहता हूँ। आशा है इसे आप अवश्य स्वीकार करेंगे !'

मि० हर्स्ट के उदारता-पूर्ण

'ऑफर' को सुनकर प्रत्येक साधारण पत्रकार के मुँह में पानी छूट सकता था, क्योंकि उस समय अर्थात्—आज से ४०-४५ वर्ष पहले अमेरिका में भी पैसे की कीमत आज से बहुत ज्यादा थी। किंतु मि० ब्रिस्बेन अपनी लेखन-शक्ति और उसके मूल्य का सट्टा न खेलना चाहते थे, अतएव उन्होंने युक्ति के साथ कहा 'नहीं महाशय मैं दो गुना वेतन नहीं ले सकता।' किंतु साथ ही उन्होंने दूसरे ढंग से यह भी जता दिया कि 'आपके 'इवनिंग जर्नल' की प्रतियाँ जिस कदर बढ़ें उसी अनुमान से प्रति हजार कापियों पर वृद्धि के रूप में एक डॉलर प्रतिसप्ताह वेतन आप बढ़ा सकते हैं।'

मि० हर्स्ट ने इस शर्त को भी तत्काल स्वीकार कर लिया। क्योंकि वे मि० ब्रिस्बेन को प्रति-सप्ताह ५०० डालर तक वेतन देने को तैयार थे। उन्होंने तत्काल अपनी टेबल की दराज से एक लेटरफार्म निकालकर उपयुक्त शर्तनामा उस पर लिख दिया। इस बात के लिए किसी गवाह की जरूरत नहीं थी, अतएव उस कागज पर केवल महीन अक्षरों में मि० ब्रिस्बेन के और मोटे, किन्तु तेजस्वी अक्षरों में मि० हर्स्ट के ही हस्ताक्षर हुए।

इसके बाद कुछ ही महिनों में मि० हर्स्ट के पत्र का प्रचार इतना अधिक बढ़ गया कि मि० ब्रिस्बेन प्रति वर्ष ५० हजार डॉलर वेतन के रूप में पाने लगे। तब वह शर्तनामा (परस्पर राजी खुशी से) फाड़ डाला गया और मि० ब्रिस्बेन को वार्षिक २॥ लाख डॉलर (आज के भाव से लगभग ७ लाख रुपया) वेतन दिया जाने लगा।

एक बार मि० हर्स्ट से उनके एक मैनेजर ने कहा—महाशय, क्या आप यह नहीं समझते कि मि० ब्रिस्बेन को हद से ज्यादा वेतन दिया जा रहा है?' इस पर वे हँसे, और अपने थामे, किंतु तेज स्वर में बोले—मैं चाहता हूँ कि इतने ही मूल्य में मुझे और भी कुछ ब्रिस्बेन मिल जायँ तो उन्हें रक्खूँ।'

अमेरिकन-पत्रों का सिन्डीकेट (कंपनियाँ) विख्यात लेखकों की कहानियाँ, लेख आदि रचनाएँ उनसे भारी कीमत पर खरीदकर विभिन्न पत्रों को एक साथ प्रकाशित करने के लिए देते हैं। इसी नियमानुसार मि० ब्रिस्बेन के कालम प्रति दिन २०० एवं १५०० साप्ताहिकों में नियमित रूप से छपते हैं। एक बार अमेरिकन डॉलर के विषय में उन्होंने अपने कॉलम में लिखा था—'डॉलर किसका है! लंदन का तार समाचार कहता है कि फ्रेंच लोग डॉलर को स्थिर करने के लिए जोरों से अनुरोध कर रहे हैं। किस लिए? इन लोगों ने जब फ्रेंच हुंडी को अस्थिर कर दिया, तब अमेरिकनों ने फ्रांक' को दर स्थिर करने के लिए कब जोर दिया था? बतलाइये डालर किसका है?' फ्रेंच लोग अमेरिकन डॉलर का भाव स्थिर करने के लिए क्यों जोरों का आग्रह कर रहे हैं?'

मि० ब्रिस्बेन ने मानव-समाज में पत्र पठन की अभिरुचि बढ़ाकर उसे मनोरंजक सामग्री द्वारा परिपुष्ट एवं प्रतिक्षण बढ़ाते रहने की अद्भुत कला संपादन की है; और इसी पर उनकी सारी सफलता आधार रखती है। उनका ज्ञान बड़ा अद्भुत है और उसका वे पूरा-पूरा उपयोग कर सकते हैं। वे अपने निजी टाइपिस्ट एवं सेक्रेटरी भी रखते हैं, किन्तु इतने पर भी आवश्यकता पड़ने पर वे खुद ही अपना लेख खुद टाइप कर, रेल मार्ग के किसी भी तार घर को अपने लेख की 'कॉपी' दे देते हैं, जो उनकी सिन्डीकेट को प्रति दिन शाम के ५ बजे तक हर हालत में पहुँचा देते हैं। इधर अमेरिकन रेलों में उनकी यात्रा चलती ही रहती है। छोटे-छोटे गाँवों में जाकर वहाँ के निवासियों की मनोभावनाओं को समझने तथा नई-पुरानी बातें जानने की मि० ब्रिस्बेन को आदत-सी पड़ गई है और इस ज्ञान का उपयोग वे अपने लेखों में पूरी तरह करते हैं। उनका—कॉलम To day के नाम से विख्यात है।

जब कभी भी कोई रिपोर्टर अथवा पत्र प्रतिनिधि उनके पास 'इंटरव्यू' (मुलाकात) के लिए पहुँच जाते हैं और उनसे विभिन्न विषयों पर पूछताछ करते हैं तो वे उनकी बातों को शांति पूर्वक सुन लेते हैं, और अपने डिक्टेफोन (विचार या भाषण को सुनने का यंत्र) को सामने रखकर उनका उत्तर दे डालते हैं इसके कुछ ही मिनट बाद उनके सेक्रेटरी उन रिपोर्टरों को प्रश्न, उत्तर और उनके शीर्षक तक तैयार करके टाइप की हुई कॉपी लाकर दे देते हैं।

अपना 'इंटरव्यू' यदि वे खुद ही लें, तो वे (मि० ब्रिस्बेन) संभवतः नीचे लिखी बातें ही लिखेंगे—मैं प्रति दिन नाश्ते में क्या और किस तरह खाता हूँ अपना कमीज कई बार मैं हफ्ता तक नहीं बदलता। मेरा सूट बिलकुल 'फिट' नहीं बैठता। मैं अब ७० वर्ष का होने जा रहा हूँ इसी कारण मेरे सिर पर ताज (खल्वाट) पड़ रहा है। मेरी आँखें एक नजर में ही सब कुछ देख लेती हैं।

('बम्बई-समाचार' के आधार पर)

: महापुरुषों के निकट न जाइये :

लेखक—श्रीयुत गजाननसिंह

स्वामी सत्यदेवजी बहुत ऊँची श्रेणी के व्यक्ति हैं। प्रायः वे समयानुकूल नवयुवकोपयोगी लेख समाचार पत्रों में लिखा करते हैं। उनसे हम लोग बहुत कुछ सीख सकते हैं, तथा अपने विचारों को उन्नत बना सकते हैं। उसी प्रकार का स्वामीजी का एक लेख गत ८ जनवरी के 'जागरण' में निकला, उसमें आपने 'कुछ अनुभव की बातें' लिखी हैं। उनमें दो बातों पर अपने विचारों को प्रकट किया है, पहली बात है 'हमारा अनुभव कहता है महापुरुषों के अति निकट जाना उचित नहीं नहीं तो बड़ी निराशा होगी।' दूसरी बात है यदि आपका कोई धनी मित्र हो, तो उसके भी अति निकट न जाइये।'

दूसरी बात कई अंशों में सत्य है, पर पहली बात हमारी क्षुद्र बुद्धि के अनुसार कुछ असंगत-सी प्रतीत होती है। संसार में ऐसे बहुत इने गिने व्यक्ति हैं जिनका बाह्य जीवन तथा गृह-जीवन एक समान हो। ऐसे अनेक महापुरुष तथा सुधारक कहलाने वाले व्यक्ति प्रत्येक समाज में हैं जो जनता के सम्मुख सुन्दर उपदेश देंगे लम्बे चौड़े व्याख्यान झाड़ेंगे कि मादक वस्तुओं का सेवन न करो, विदेशी का व्यवहार न करो, दहेज आदि की प्रथा को दूर करो, पर उनके घर जाइये, तो आप उन्हीं को अनेक बुराइयों में लीन पावेंगे। क्या हम ऐसे व्यक्ति को महापुरुष कह सकते हैं। यदि हम किसी के सुन्दर व्याख्यानों को सुनकर उसमें बाह्याचरण को देख कर उसे महापुरुष मान बैठते हैं, तो अपने आप को धोखा देते हैं। हमारा धर्म तो यह है, कि हम किसी को महापुरुष मानने के पूर्व उसको पूर्ण रूप से परख कर लें। महापुरुष उसे कह सकते हैं जो जन समाज के सम्मुख जिन बातों को कहता है, स्वयं उन पर आचरण करता हो और ऐसे महापुरुष से निराशा होना असम्भव है।

'किसी महा-पुरुष के द्वारा लाभ उठाना चाहें, तो उसे दूर से अध्ययन कीजिये' यह एक विचित्र बात है। महापुरुषों के जीवन की प्रति दिन की छोटी छोटी बातों के निरीक्षण से हम अपने को जितना सुधार सकते हैं, जितना ऊँचा बना सकते हैं, जितना लाभ उठा सकते हैं, उतना लाभ उनसे दूर रह कर कदापि नहीं उठा सकते। महापुरुषों के जीवन में उनके वे कार्य, जो वे प्रकट रूप से संसार के सम्मुख करते हैं, उतने शिक्षाप्रद नहीं होते जितने कि वे कार्य, जिनको वे घर के अन्दर अपने नित्य प्रति के व्यवहार में करते हैं। सबके सामने तो दुष्ट भी भला बनने का प्रयत्न करता है बुरा भी अच्छा बनने की चेष्टा करता है। समाज के सामने कोई चोर अपने को चोर नहीं कह सकता वह अपने को सर्वदा सच्चा सिद्ध करने की चेष्टा करता है। यदि हम सच्चे गुणग्राहक हैं, तो हमारा कर्तव्य यह है कि हम किसी को महापुरुष मान बैठने के पहले उसको पूर्णरूप से समझें। यदि किसी महापुरुष से लाभ उठाना है, तो उसके साथ कुछ दिन रहिये उसके गृह जीवन का निरीक्षण कीजिये। हमको देखना चाहिये उसका अपने नौकरों के साथ कैसा व्यवहार है, वह उनको गाली देकर बुलाता है या प्रेम से पुकारता है। माता, पिता, भाई, बहन तथा स्त्री के साथ उसका कैसा आचरण है। वह माता पिता की आज्ञा का पालक है या उनको उपेक्षा की दृष्टि से देखता है वह अपने पड़ोसियों से कैसा सम्बन्ध रखता है। हिसाब किताब वह किस प्रकार रखता है। उसके सोने, काम करने आदि का नियम और समय किस प्रकार बँधा है। यदि इस परीक्षा में कोई पूर्णरूप से सफल हो जाय, तो वह महापुरुष है और उसको हम कितने ही अंशों में अपना आदर्श मान सकते हैं।

अनेक लोगों का यह ख़याल है कि किसी के 'प्राइवेट' जीवन से क्या मतलब, उसका पब्लिक जीवन देखना चाहिये, किन्तु जिनका यह सिद्धान्त है वे भूल करते हैं। नामधारी समाज सुधारकों पण्डा पुरोहितों तथा उपदेशकों के फेर में पड़ कर हम बहुत कुछ गवाँ चुके हैं अब सम्हल जाना चाहिये यह आदर्श नवयुवक समाज को पतन की ओर ले जाने वाला है।

'आप अपने व्यक्तित्व को देख महापुरुषों को दूर से देखिये' संगति का प्रभाव प्रत्येक मनुष्य पर पड़ता है। यदि हम भले मनुष्यों के साथ रहते हैं तो हम अपने को भला बना सकते हैं। बुरे व्यक्तियों के साथ रहने से, जिनका आचरण घृणित है, हम अपने को भी पतन की ओर ले जाते हैं, इसकी सत्यता में तो कोई सन्देह नहीं है, विचारणीय बात यह है कि जितना लाभ हम महापुरुषों के पास से उठा सकते हैं, उतना भला दूर से किस प्रकार उठा सकते हैं। महापुरुषों के पास रह कर उनके गुणों को देख उनको अपनाने की चेष्टा करनी चाहिये।

स्वामीजी ने महात्मा गांधी के पास रहने वाली एक महिला का वर्णन अपने लेख में किया है। इनके इसी लिखने के कारण मुझे एक दूसरी महिला का भी स्मरण हो आया। देवी मीरा बाई को कौन नहीं जानता। महात्मा गांधी के प्रिय शिष्यों में से एक हैं। यदि वे महात्मा गांधी के इतने निकटतम सम्पर्क में न आतीं, तो कौन कह सकता है कि वे मिस स्लेड से देवी मीराबाई हो गई होतीं। महात्मा गांधी के पास रहने से कितने व्यक्तियों में अद्भुत परिवर्तन हो चुका है। अनेक परिवार जो सर्वदा विदेशी वस्त्रों का व्यवहार करते थे, अब खद्दर तथा स्वदेशी वस्त्रों को पहने दिखलाई देते हैं। अस्तु,

सच्चे महापुरुष तो वे हैं, जिनका बाह्य जीवन तथा गृह जीवन एक है। वे तो ढोंगी कहे जा सकते हैं, जिनका गृह जीवन कुछ और, और बाह्य जीवन कुछ और है इस प्रकार के सच्चे महापुरुषों के जीवन से भला निराशा किस प्रकार हो सकती है? उनके पास रहने से हम अपने को ऊँचा तथा उन्नत बनाने की चेष्टा करेंगे। तथा अपने आदर्श और मनोभावों को श्रेष्ठतम बनाकर अनेक लाभ उठावेंगे।

मेरी उपर्युक्त शंकायें स्पष्ट हैं। मुझे स्वामीजी पर विश्वास है। एक विद्यार्थी होने के नाते स्वामीजी से मैं करबद्ध प्रार्थना करूँगा कि वे मेरी शंकाओं को दूर करने का कष्ट उठावें।

'अभागा ग्रेजुएट'

लेखक—श्रीयुत शिवाशंकरप्रसाद 'विश्ववासी'

सन्ध्या का समय था। सूर्यदेव अस्ताचल को जा चुके थे। मैं टहलने जाने को तैयार था कि महादेव एक चिट्ठी लिये आ पहुँचा। मैंने लपक कर चिट्ठा ले ली। तभी से पढ़ने लगा। पढ़ते पढ़ते मेरे विचार बदल गये। मैंने मोहन से कहा—भाई तुम जाओ। मैं आज टहलने न जा सकूँगा। मुझे अभी इलाहाबाद जाना है।

मोहन ने पूछा—आखिर, बात क्या है? अभी चिट्ठी आयी, और अभी तैयार हो गये।

मैंने कहा—पीछे कह दूँगा। इस समय, इतना समय नहीं। फिर अपना सामान सँभाल ताँगे पर सवार हो सेन्ट्रल स्टेशन की तरफ बढ़ा।

गाड़ी का समय हो गया था। ताँगेवाला जी तोड़ कर ताँगा हाँक रहा था। उसे उम्माद था कि बाबूजी को गाड़ी मिला दूँ, तो कुछ इनाम भी मिलेगा। पर, स्टेशन पर आते आते गाड़ी छूट गई।

अब करता क्या, सामान वगैरह वेटिंग रूम में रख आराम करने लगा पर तबीयत न लगी। घर की बातें रह रह कर याद आती थीं। जानें उसकी हालत इस समय कैसी होगी? चिट्ठी में तो कुछ लिखा न था यह मूजी पोस्ट कार्ड किसी और ने तो नहीं भेज दिया? अगर किसी और ने दिल्लगी की हो, तो बड़ा बेवकूफ बनूँगा। आराम तो कभी मुझको खत न लिखता था आज ही क्यों लिखा? हो सकता है कोई बात हो। अनेक विचार इसी प्रकार के मन में आते और सिनेमा के फिल्म की भाँति अदृश्य हो जाते। मैंने कुछ मनोविज्ञान का भी अध्ययन किया था और अपनी इस बेचैनी पर कुछ कुछ मुस्करा भी रहा था। ऐसी अवस्था में मुझे खाली वेटिंग रूम में बैठना असह्य प्रतीत होने लगा। सामान को बेरा के सुपुर्द कर बाहर प्लेट फार्म पर टहलने लगा ताकि कुछ ठण्डी हवा लगने से तबीयत स्वस्थ हो।

मैं कुछ ही दूर बढ़ा था कि आगे से कुछ खाकी वर्दी वाले पुलिस सिपाहियों को गिरोह बाँधे आते देखा। समझ में न आया, मामला क्या है? कोई गाड़ी का भी तो समय न था। उत्सुकता से आगे बढ़ा। अपनी मूर्खता पर फिर हँसी आई, लौट पड़ा। इधर तो आ ही रहे थे, आगे जाने की जरूरत!

पुलिस वाले आ गये। उनके बीच में एक सफेद पोश व्यक्ति था, जिसके चेहरे पर प्रसन्नता की आभा एक क्षण के लिये विद्युत की भाँति झलक कर फिर अविश्रान्त मलिनता में परिणत हो जाती थी। मैंने ताड़ लिया—यह मूक वेदना है और आशा का एक कणि भी स्थिर हो जाता है। मेरे दिल में उत्सुकता हुई कि मैं जान लूँ कि यह कौन व्यक्ति है, और क्यों इस प्रकार ले जाया जा रहा है? मैं इस उत्सुकता को रोक न सका। उनके साथ-साथ चला। मेरे खुशी का पारावार न था जब मैंने देखा कि पुलिस वाले भी उसे ले, वेटिंग रूम के पास वाले बेञ्च पर बैठ गये। मैं भी पास ही एक कुर्सी खींच कर बैठ गया। अभियुक्त की तरफ निगाह की, तो सहम गया वह खेद और रोष की ज्वाज्वल्य आँखों से मेरी तरफ घूर रहा था। मैंने मुँह फेर लिया और सिपाहियों से पूछा—कहो भाई, इनका क्या अपराध है?

सिपाहियों में से एक बोला—बाबूजी, इनकी मत पूछो। आज ही चार बार सो गये। हम इनसे तंग हैं, दया कर छोड़ देने का यही परिणाम है। जब मौका मिलता है पटरी पर सो जाते हैं। गाड़ी रुक जाती है और आप आत्म हत्या के जुर्म में कैद कर लिये जाते हैं। फिर जब पूछते हैं, तो यही हालत।

मैंने प्रार्थना की—भाई, आखिर बात क्या है कि इतने नाराज दीखते हो, दुनिया से और यहाँ तक कि अपनी प्यारी जान से।

वह बोल उठा—पहले तुम बताओ कि कहीं पढ़ते हो, या नहीं?

मैंने कहा—मैं सनातन धर्म कालेज में पढ़ता हूँ।

अभियुक्त—किस दर्जे में पढ़ते हो?

मैं—बी० ए० प्रीवियस में।

अभियुक्त—बस, तब तो ठीक है। बी० ए० कभी न पास करना। अगर रोजी मिले, तो अवश्य करना। सकारते हो, तो मैं अपनी राम कहानी तुम्हें सुनाऊँ।

उत्सुकता ने मेरी जबान से 'हाँ' कहलवा ही दिया।

वह अपनी कहानी इस तरह कहने लगा—

'मैं ढाका युनिवर्सिटी का एक ग्रेजुएट हूँ। मैंने सन् १९२० में बी० ए० पास किया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं कॉलेज में सर्व प्रथम रहा करता था। सभी प्रोफेसर और सहपाठी मुझे आदर की दृष्टि से देखा करते थे। मुझे पढ़ते पढ़ते कुछ आधुनिक बन्धनों से भ्रान्ति सी होने लगी। मैंने समझा धर्म कर्म कुछ नहीं, माता पिता भाई बन्धु कुछ नहीं यह जीवन कुछ नहीं। मेरे विचार अजीब प्रकार के होने लगे। नतीजा यह हुआ कि वार्षिक परीक्षा में कोई और ही विद्यार्थी सर्व प्रथम हुआ।

मैं गरीब घर का लड़का था। व्यसन वगैरह कर अभी तक पढ़ा था। अब आगे पढ़ना मुश्किल मालूम पड़ा। सोचा कहीं कोई नौकरी कर लूँ। पास करने के पहले तो हजारों मनसूबे बाँधे थे। मेरा बराबर यही विचार रहता कि बड़े-से बड़ा आदर्श अपने सामने रक्खूँ। मैं अपने को डिप्टी मजिस्ट्रेट से कम देखने में अपनी हिकारत समझता था। चारों तरफ कोशिशें कीं किसी तरफ सफलता न मिली। पहला साल, तो डिप्टी मजिस्ट्रेटी की याद में बिताया। दूसरे साल सोचा, दरोगा से छोटा काम न करूँगा। तीसरे साल तो कोई भी बाबूगीरी का काम करने के लिये तैयार हो गया।

पर मुझे क्या पता था कि यह दुनिया है—यहाँ तो शिकार पर एक मरतबा हाथ मार दिया कि फिर पौ बारह। बैठने की जगह मिल गई तो सोने का भी इन्तजाम कर सकते हैं। कालेज में तो कोई ऐसी शिक्षा मिली न थी। निरे पोथे के पोथे पढ़ डाले थे पर वास्तविक दुनिया पर कोई भी किताब न पढ़ाई गई थी। इस पर भी तुर्रा यह कि जब महोदय कानवोकेशन पर व्याख्यान देने आये तो आपने कहा—

हमारे विश्वविद्यालय की शिक्षा काम करने वाले घोड़े और बैलों के लिये नहीं है। यह तो मानसिक विकास के लिये है। मनुष्य भूखों रह सकता है अगर उसके मस्तिष्क को ज्ञान का भोजन मिल सके।

इन्हें तो कागजी बातें बनानी थीं। आप दूसरे विश्व विद्यालय से चार हजार मुफ्त की तनखा पाते थे। बातें बनाकर भी अपनी योग्यता का परिचय न दें तो और करें ही क्या? अस्तु, असली बात यह है कि मुझे सन् १९३० तक कोई नौकरी न मिली।

इसी बीच अपने घर के सारे सामान को पेटार्पण कर चुका था। बीबी और दो बच्चे थे और एक मेरा वही टूटा मड़ैया। गाँव वाले तो मुझे पहले आदर की दृष्टि से देखा करते थे पर जब देखा कि कोई जरिया न लगा तो आड़े हाथों लेने लगे। जमींदार ने मालगुजारी के लिये तकाजा किया। मैं लाख गिड़गिड़ाया पर न माना कहने लगा—तेरे बाप हमारे दुश्मन थे, मैं क्या साँप के बच्चे को दूध पिलाऊँ। जा अपना रास्ता ले। घर मेरा है वरना तीन सौ रुपये यूनिवर्सिटी फीस देने के लिये जरपेशगी पर लिए थे वह और बाकी मालगुजारी के सौ रुपये अभी लाओ।

मैंने अपनी स्त्री की तरफ देखा—मुश्किल से उसके नयी रोशनी के गहने दस बीस खींच सकते थे।

निराश हो कह दिया—एक हफ्ते की मोहलत दीजिये। मैं घर छोड़ दूँगा।

• • •

एक हफ्ते के बाद मैं अपनी जन्म भूमि को नमस्कार कर सीधा कानपुर चला आया। स्त्री और लड़कों को भी साथ लेता आया। उन्हें छोड़ता किस पर? बड़ी दौड़ धूप की। बंगालियों से दोस्ती की। अपना हाल जाहिर किया। अन्त में मुझे एक नौकरी ट्राम पर २९) रुपये माहवार की मिल गई। दिन भर तो ट्राम में खटता और शाम को घर आता। घर भी क्या था? एक मैली कुचैली खोह! किराया तीन रुपये माहवार पर करता क्या? २९) में ही तो चार प्राणियों का भार चलाना था!

एक दिन की बात है। मैं बैठा अपनी स्त्री से बातें कर रहा था। उसका सौन्दर्य मिट्टी के टिमटिमाते दीपक के क्षीण प्रकाश में भी एक स्वर्गीय आभा से चमक रहा था। मैं अकस्मात प्रेम में विह्वल हो गया। आज प्रथम दिवस था, कि मुझे इस छोटी सी कुटिया में भी स्वर्ग का आनन्द मालूम पड़ा। मैंने विधाता से प्रार्थना की क्योंकि अब वास्तविक दुनिया में आने पर कुछ कुछ मैं विश्वास करने लगा था—ईश्वर के अस्तित्व पर। भगवन्! मेरे इस छोटे से कुटुम्ब की रक्षा करना। दूसरे क्षण अपनी स्त्री से कहा—भामिनी, आज तुम्हारी अपूर्व छटा देख कर, तो कविवर विद्यापति की राधिका की याद आती है। सचमुच तुम मेरे इस छोटे से भवन की लक्ष्मी हो। तुम्हारे बिना यह घर प्रकाशित नहीं रह सकता।

भामिनी—तुम भी अजीब पागल हो। भला कहाँ मैं और कहाँ राजरानी राधिका? हाँ, तुम श्रीकृष्ण कहे जा सकते हो। मैं ..

मेरी लड़की रम्मो बड़बड़ाने लगी—बाबू, लड्डू ले दो। रोते रोते सो गई थी। आज तीस तारीख थी। पहली को रुपये मिलते। मैं लड्डू न ले सका था। उधार लेने की मेरी आदत न थी। आज उधार ही के बदौलत तो अपनी मातृभूमि से इतनी दूर, २९) पर खट रहा था। भामिनी रम्मों के पास चली गई।

मैंने देखा—कहते कहते उसकी आखों में आँसू छलक पड़े थे।

• • •

उसने आँखें पोंछ कर फिर कहना शुरू किया—मुझे दूसरे दिन रुपये मिले। मै रम्मों के लिये मिठाई लेता आया। मन में बहुत प्रसन्न था। सोचा—आज उसे अपने हाथ से खिलाऊँगा। बाहर खड़ी होगा।

रम्मों तो बाहर खड़ा न थी, भामिनी खड़ा थी। मैंने मिठाई हाथ मे दे दी और पूछा—यहाँ क्यों खड़ी हो? मुझे कोई डर थोड़े ले जाता, जो इतनी उत्सुकता से खड़ी थीं।

दूसरे ही क्षण उसके चेहरे पर विषाद के चिन्ह देख मैंने पूछा—बात क्या है, क्यों उदास हो? रम्मो कहाँ है?

भामिनी—रम्मों की तबीयत खराब है न जाने क्या क्या बक रही है।

सभी आशा के हवाई किले विधना के एक ही झकोरे में टूट पड़े। मिठाई की याद न रही। दिल किसी भावी आशंका से घबड़ा उठा। रम्मों के पास पहुँचा। देखा, वह बेहोश सी पड़ी चिल्ला रही है।

मुझे देखकर बोली—बाबू, लड्डू दो, अब मैं वह देखो ऊपर को जा रही हूँ—। वहाँ बहुत लड्डू मिलेंगें। तुमने तो लाकर न दिया।

मैं घबड़ाया हुआ डाक्टर के पास गया। समद साहब बड़ा मुश्किल से आये। चार रुपये नजर करने पड़े। लड़की को देख कर बोले—इसे डबल निमोनिया हो गया है। अगर रात तक बच गई, तो सुबह को दवा देगें। रात भर हम दानों प्राणी जागते रहे। रज्जू को पड़ोसी के यहाँ सुला दिया।

मैंने तो रात भर राम राम की रट लगा दी। जिन देवताओं को मैं अपनी जवानी के जोश में पत्थर और लकड़ी का टुकड़ा समझता था, आज दुख में सच्चा मान अपराध क्षमा कराने लगा और लड़की की जान की भीख माँगने लगा।

सुबह का तीन बज रहे थे। मेरी आँखें सुबह की ठंडी हवा से कुछ झिंप सी गईं। मुश्किल से पाँच मिनट सोया हूँगा कि भामिनी रोती हुई बोली—हायरे! मेरी बिटिया को तो देखो! हाय, मेरी रम्मो!

मैंने देखा—पिंजड़ा खाली था। प्राण पखेरू उड़ गया था। उसी समय अकस्मात् जोर से उल्लू बोल उठा। मैं पछाड़ खाकर गिर पड़ा।

पास के पड़ोसी मकान पर आ जुटे। बेचारे मिल में काम करते थे! पर ऐसे अवसर पर सदा सहायता देते थे। मजदूरी को भी भूल जाते थे। आखिर मनुष्य हृदय ही तो ठहरा! वे कभी अपने मिल मालिकों या जमींदारों सरीखे पिशाच हो सकते थे, जिन्हें दूसरों की लाशों पर ही ताण्डव नृत्य करने में मजा आता है।

हम लोग लड़की की अन्त्येष्टि क्रिया कर गंगा से लौटे।

भामिनी तो खाट पर सिर दिये रो रही थी। रज्जू पास में रो रहा था।

मैंने मन में कहा—ऐ नासमझ लड़के, तुझे क्या पता कि यह दुनिया क्या है, फिर तू क्यों रो रहा है?

भामिनी को सान्त्वना दी। अनेक ऊँच नीच समझाया पर उसे क्या रोकता, मैं खुद ही रोने लगा। ऐसा मालूम होता था कि कोई चीज मेरी खो गई। वह अब फिर नहीं मिल सकता। मेरे हृदय में रह-रह कर एक टीस सी उठती। हाय रम्मो, मैं अभागा पिता तेरे लिए लड्डू न ला सका। जा तुझे वहीं लड्डू मिलेगा। तू मेरे पास क्यों कर आयी थी? क्यों, मुझसे बढ़ कर तुझे लड्डू ही प्यारा है न?

• • •

जैसे जैसे दिन बीतते गये हम लोगों का भी शोक कम होता गया। साल बीतते बीतते तो हम एक प्रकार से रम्मों को भूल ही गये।

दुनिया है अपने कार्य मे लग जाने पर आगे पीछे की याद नहीं रखती। अगर ऐसा न हो, तो हमें यहाँ एक क्षण भी ठहरना मुश्किल हो जाय।

दूसरे साल भामिनी को एक लड़का हुई। हमने उसका नाम प्रभात रक्खा। हमारे दिन प्रभात के लालन पालन मे कटने लगे।

१९३३ ई० की जुलाई की बात है। कानपुर में जोरों से सीजर का प्रकोप था। मुझे ट्राम की नौकरी भी छोड़ देनी पड़ी थी। ट्राम कतई बन्द हो गयी थी। लाइनें उखड़ रही थीं। मेरे मालिकों का कहना था कि कानपुर में ट्राम से अच्छी आमदनी नहीं हो सकती। हम लोग तो उनके काम के कल पुर्जे थे। काम ही न रहा, तो कल पुर्जे को कौन पूछता है। दूध की मक्खी की भाँति हम लोग करीब सौ आदमी निकाल बाहर कर दिये गये। अब हम लोगों का नाम निकम्मों में दर्ज हो गया। डिप्रेशन (Depression) का जमाना था। नौकरी नहीं मिलती थी। यहाँ तक कि कुली का भी काम करना चाहें, तो वहाँ पर भी हजारों हमारे जैसों की दर्ख्वास्तें पड़ी थीं।

साहब बेचारा कहता—हम क्या कर सकता है। तुम बाबू इण्डियन, कोई और काम नहीं कर सकता। ग्रेजुयेट हो बोझा ढोयेगा। हम काम नहीं देवे सकटा। तुम टेररिस्ट होगा, बंगाली है।

जो कुछ दो चार पैसे जमा किये थे, वह भी धीरे धीरे साफ हुए जा रहे थे। जब मैं सन्ध्या समय नौकरी की तलाश करने के बाद वापिस आता, तो भामिनी दर्वाजे पर खड़ी मिलती। पूछती—आज कहीं ठिकाना लगा?

मैं कहता—कुछ नहीं। जमाना बहुत बुरा है।

हताश हो बेचारी बिछौने पर बैठ रहती। मैं भी उसका साथ देता। दोनों एक-दूसरे को सान्त्वना देते और इस प्रकार हम लोगों के दुख का बोझ बहुत कुछ हलका हो जाता। वास्तव में, दुनिया में अगर भाग्य से भला भी मिल जाय, तो दुखी जीवन में भी सुख के अभिनय प्राय खेले जा सकते हैं। पर विधाता से यह भी न देखा गया। भयानक हैजे का प्रकोप था ही हमारे मुहल्ले मे भी सैकड़ों आदमी दो तीन दिन में लुढ़क गये। मेरा घर भी न बचा रहा। पहले दोनों बच्चों को हुआ, बाद में भामिनी को। हर चन्द कोशिशें की पर तीनों में से एक भी न बचा।

हाय! वह दिन भी स्पष्ट याद है कि जब भामिनी ही ने मुझसे कहा था—प्राणनाथ! मैं तो जाती हूँ पर उम्मीद करती हूँ कि दूसरे जन्म में तुम्हारे दर्शन फिर होंगे। पर एक बात मेरी मानना। अपनी दूसरी शादी तब तक न करना, जब तक तुम्हारे पास पूरे पैसे न हों। शायद मेरी सौत दूसरी प्रकृति की हो, तो तुम्हें तकलीफ होगी। दूसरी बात यह कि तुम रज्जू को पढ़ाना मत। अगर पढ़ाना भी तो थोड़ा। उसे खेती सिखलाना। वह अपने गाँव के खेत में शरीर से मिहनत कर पैसा पैदा करे, यही मेरी इच्छा है।

पर दूसरे दिन रज्जू की लाश को भी उसकी माता के बाद ही बहाना पड़ा।

हाय! वह कैसा दृश्य था। चारों ओर हाहाकार, कोई किसी को पूछने वाला नहीं। सब अपने अपने दुख में थे।

जब मैं श्मसान से लौटा, तो कुछ पागल सा हो चुका था। घर आया, तो सूना घर काटने दौड़ा। मकान मालिक को बुलाकर किराया चुका दिया। अब पास में कुछ भी पैसे न रह गये। सोचा—अब करना क्या है। नौकरी चाकरी करूँ भी तो किसके लिये। 'न आगे नाथ न पाछे पगहा।' जो थे, वे तो सब सुख तरसते चले गये।

पटरी पर आकर सो गया। पकड़ा गया, परवाह नहीं। जब फुर्सत मिली, उसी वक्त मरूँगा पर देखो भैया—ग्रेजुएट न होना, याद है न? फिर वह एक विकट अट्टहास कर चुप हो गया!

• • •

मेरे आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। हे भगवन्! एक पढ़े लिखे का ऐसा पतन! कब गाड़ी आई, कब निकल गई, मुझे पता नहीं।

किसी ने कन्धे पर हाथ रक्खा, तो मैं अपनी तन्द्रा से जागा। देखा मेरे साले साहब हैं।

वे बोले—कहाँ जाने की तैयारी? विरेन ने शरारत की थी। मुझे मालूम था, परसों से आपका फर्स्ट टर्मिनल इक्जामिनेशन (First Terminal Examination) है, इसलिये मैं अब के गाड़ी से चला आया।

दोनों आदमी होस्टल लौट आये। पर उस अभागे ग्रेजुएट की रामकहानी मेरे हृदय में बैठ सी गई।

विदेश - वार्त्ता

तिब्बत का हाल

लेखक—श्री युत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

पाठकों ने समाचार पत्रों में पढ़ा होगा कि गत १७ दिसम्बर को तिब्बत के शासक धर्माधीश्वर श्री 'गवग लोप संग तुबदन ग्यतसो' दलाईलामा का स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु के कारण वहाँ का हाल जानने और भावी स्थिति के सम्बन्ध मे क्या क्या अनुमान किया जाता है, इसकी जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता होना स्वाभाविक है। इसी से हाल संक्षेप में दे रहे हैं।

भूतपूर्व दलाईलामा

भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत से सटा हुआ तिब्बत एक पहाड़ी देश है। पर्वतों की अगम्य श्रृंखला के कारण पड़ोसी होने पर भी उसके साथ भारत का आवागमन और सम्पर्क प्राय नहीं होने पाता, इसी से वहाँ का बहुत कम हाल हम लोगों को मिलता है। दूसरे देशों के सम्बन्ध मे भी यही कहा जा सकता है, क्योंकि उनके लिए भी तिब्बत से सम्बन्ध स्थापित करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं।

तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार है और वहाँ के बौद्ध महन्त लामा कहलाते हैं। उनमें सबसे बड़ा पद दलाईलामा का है। वही वहाँ के प्रधान शासक समझे जाते हैं। सैकड़ों वर्षों से यही व्यवस्था चली आ रही है। वहाँ के लोगों का विश्वास है कि प्रत्येक दलाईलामा भगवान् बुद्ध का ही अवतार होता है, जिसकी मृत्यु कभी नही होती—केवल आत्मा एक शरीर को छोड़ कर भावी शासक के शरीर मे प्रवेश कर जाती है।

स्वर्गीय दलाईलामा श्री गवग लोपसग तुबदन ग्यतसो का जन्म सन् १८७६ ईसवी मे हुआ था। बालिग होने पर सन् १८९४ में तिब्बत का शासनाधिकार उनके हाथ में आया, किन्तु वास्तविक सत्ता अब भी 'सरक्षक' महन्त के हाथ में थी, क्योंकि राजमुद्रा उसी के कब्जे में थी। तुब दन ग्यतसो ने किसी तरीके से सरक्षक के मजबूत सन्दूक में से कुल मुद्रा निकाल ली। तुरन्त ही उसका प्रयोग कर उसने सरक्षक को गिरफ्तार कर लिया और उसे एक मठ में कैद कर दिया, जहाँ कुछ समय के बाद उसकी मृत्यु हो गई।

अब दलाईलामा को तीन और बाधाओं का सामना करना पड़ा, चीन की केन्द्रीय सरकार तो तिब्बत पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने की चेष्टा कर ही रही थी, साथ ही एक ओर से रूस और दूसरी ओर से ब्रिटेन उसे दबाने का प्रयत्न कर रहे थे। चीन के प्रतिनिधि की तो उन्होंने उपेक्षा की और शासन सम्बन्धी मामलों मे उसे किसी भी तरह हस्तक्षेप नही करने दिया; किन्तु रूस और ब्रिटेन की कार्रवाइयों का सफलता पूर्वक विरोध करना उनकी सामर्थ्य के बाहर की बात थी। फिरभी उन्होंने रूस के साथ सुलह की बात चीत आरम्भ कर दी और ब्रिटिश प्रभाव को रोकने का इरादा किया।

जब लार्ड कर्जन भारत के वाइसराय हुए, तब उन्होंने तिब्बत मे रूस का प्रभाव रोकने का प्रयत्न किया, क्योंकि इससे भारत मे ब्रिटिश शासन के लिये खतरनाक समझते थे। इस उद्देश्य से उन्होंने कई पत्र दलाईलामा के पास भेजे, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ तब सन् १९०३–०४ मे कर्नल यंग हजबेण्ड के नेतृत्व मे एक सैनिक दल वहाँ भेजा गया। दलाईलामा ने भारत सरकार की इस कार्रवाई को अपने धर्म तथा अपने पूर्वजों के विरुद्ध आक्रमण समझा और ल्हासा छोड़कर अन्यत्र चले गये।

यंग हजबेण्ड ने ७ सितम्बर को वहाँ के स्थानापन्न शासक से एक सन्धि की, जिसके अनुसार तिब्बत के तीन व्यापारिक स्थान अंग्रेजों के लिये खोल दिये गये और यात्रा का कुल खर्च हरजाने के रूप मे तिब्बत से वसूल किया गया। ब्रिटेन की ओर से यह आश्वासन दिया गया कि वह तिब्बत पर कब्जा न करेगा और न वहाँ के भीतरी मामलों मे दस्तन्दाजी करेगा। इसी तरह तिब्बत ने यह स्वीकार किया कि किसी अन्य देश के साथ कोई व्यापारिक या अन्य रिआयत न की जायगी और न उसके प्रतिनिधियों को तिब्बत मे प्रवेश करने की अनुमति दी जायगी।

पाँच वर्ष तक मंगोलिया में रहने के बाद दलाईलामा ने सन् १९१० मे पुनः ल्हासा मे प्रवेश किया, किन्तु वहाँ रहना खतरनाक समझ कर वे शीघ्र ही भारत की सीमा में चले आये। चीनी अधिकारी बराबर उनका पीछा कर रहे थे। यदि जरा भी देर और हुई होती, तो वे अवश्य गिरफ्तार कर लिये जाते। चीन में राज्य क्रान्ति होने पर तिब्बत वालों ने चीनी सरकार के सैनिकों को निकाल बाहर किया। दलाईलामा पुनः ल्हासा लौट गये। तबसे अन्त तक वे बराबर ब्रिटेन के मित्र बने रहे। यूरोपीय युद्ध के समय उन्होंने ब्रिटिश सरकार की ओर से लड़ने के लिये एक हजार सैनिक भी भेजे थे।

उत्तराधिकार का प्रश्न

उत्तराधिकार के सम्बन्ध में एक विचित्र प्रथा प्रचलित है। कहा जाता है कि दलाईलामा की मृत्यु होने पर उनकी आत्मा उस बच्चे के शरीर मे प्रवेश कर जाती है, जो ठीक उनकी मृत्यु के समय पैदा हुआ हो। वही बच्चा इस उच्च पद का उत्तराधिकारी चुन लिया जाता है। १८–२० वर्षों तक किसी अच्छे मठ में रखकर उसे इस पद के योग्य अच्छी शिक्षा दी जाती है। शिक्षा समाप्त होने पर शासन दायित्व उसके हाथ सौंप दिया जाता है।

पेकिंग से आये हुए ९ जनवरी के तार से विदित होता है कि ल्हासा के पास ही ऐसे शिशु का पता लग गया है और ल्हासा के लामाओं ने सर्व लक्षण सम्पन्न समझ कर उसे दलाईलामा के पद पर अभिषिक्त करना स्वीकार कर लिया है। इस तार मे और कुछ नहीं कहा गया है, जिससे वहाँ की वास्तविक स्थिति का हाल नहीं मालूम होता, उत्तराधिकार का प्रश्न इतना आसान और सीधा सादा नहीं है।

वहाँ पर इस समय तीन तीन राष्ट्रों के कुचक्र चल रहे हैं। ब्रिटेन इस बात की चेष्टा में होगा, कि जो उत्तराधिकारी बनाया जाय, वह ऐसा हो, जिससे बृटेन का प्रभाव किसी तरह कम न होने पावे। इसी तरह सोवियट रूस और चीन की नानकिंग सरकार की ओर से भी अपना अपना नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयत्न किये जाने की सम्भावना है।

इसके सिवा एक प्रश्न और है, भावी दलाईलामा का अभिभावक कौन होगा? साधारणतया तीन से पाँच तक वृद्ध लामाओं का अभिभावक मण्डल स्थापित किया जाता है और उन्हें सलाह देने के लिये दस बारह अन्य सन्यासी भी रहते हैं। नये दलाईलामा के बालिग होने तक यह धर्म परिषद् ही वहाँ का शासन कार्य चलाती है। विदेशी राष्ट्रों तथा चियांग काईशेक की नीति के कारण सम्भव है, इस प्रश्न का निपटारा करने में भी बाधाओं का सामना करना पड़े।

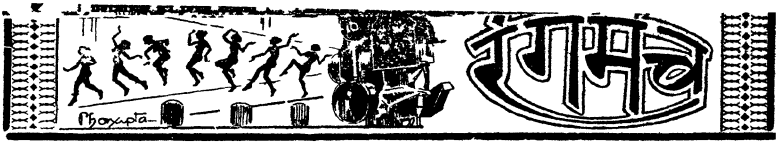
अशान्ति की सम्भावना

तिब्बत की स्थिति कुछ नाजुक होने का कारण यह है कि वह तीन देशों की सीमाओं के बीच में पड़ता है। कहने के लिये वह एक तरह से स्वतन्त्र हो गया है, पर वस्तुतः वह भारत की अँगरेजी सरकार के सरक्षण मे है। उधर चीन की केन्द्रीय सरकार भी उसे अभी तक अपना अधीन राज्य समझती है और इस पर नियन्त्रण स्थापित करने की चेष्टा करती रहती है, किन्तु बृटिश प्रभाव के कारण वहाँ उसकी दाल गलने नहीं पाती।

आठ वर्ष पहले वहाँ के दोनों बड़े लामाओं मे अर्थात् दलाईलामा और पञ्चेन या ताशी लामा मे, जो वहाँ के आध्यात्मिक गुरु समझे जाते हैं, गृह युद्ध शुरू हुआ था। दलाईलामा को भारत से सहायता मिलती थी और ताशीलामा को चीन सरकार मदद देती थी। अन्त मे दलाईलामा की जीत हुई और ताशीलामा को चीनी सीमा के अन्तर्गत जेचवन प्रान्त मे भाग जाना पड़ा। १९३२ में जब जेचवन के गवर्नर ने ताशीलामा का पक्ष लेकर तिब्बत पर आक्रमण करने की धमकी दी, तब दलाईलामा ने सन् १९२५ की गुप्त सन्धि के अनुसार भारत सरकार से सहायता माँगी। सरकार ने गोला, बारूद, हवाईजहाज तथा सैनिक परामर्शदाताओं को भेजकर लामा की मदद की, जिससे चीनी आक्रमण विफल कर दिया गया।

दलाईलामा की मृत्यु के कारण अब फिर वहाँ अशान्ति की सम्भावना उत्पन्न हो गई है। सम्भव है, ताशीलामा पुनः वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न करें। वे चीन के पक्षपाती हैं, अतः बहुत करके चियांगकाई शेक की सरकार भी उनका समर्थन करेगी। पिछली घटनाओं से जो कुछ अनुभव किया जा सकता है, उससे स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार उनका समर्थन न करेगी। सम्भव है, वह जारोंगशापे नामक व्यक्ति का पक्ष ले, जो पहले तिब्बत का प्रधान मन्त्री रह चुका है और जो ब्रिटेन की बहुत ज्यादा तरफदारी करने के कारण १९३० में पदच्युत कर दिया गया था।

वहाँ के राष्ट्रवादी महन्त सम्भवतः इन दोनों 'उम्मेदवारों' में से एक का भी समर्थन न करेंगे। वे अपने देश को चीन तथा ब्रिटेन दोनों के ही प्रभाव से स्वतन्त्र रखने की चेष्टा करेंगे। ऐसी स्थिति में वहाँ अशान्ति एवं विद्रोह की अवस्था उत्पन्न होने की पूरी पूरी सम्भावना है। परिणाम क्या होगा और तिब्बत की स्वतंत्रता कायम रह सकेगी या नहीं, इसका उत्तर भावी घटनाओं पर ही निर्भर है।



मिस ३३

(ले० महाराज कुमार श्री दुर्गाशंकरप्रसादसिंह)

मित्रा ने कहा—सिनेमा चलो आज मिस थर्टी थ्री है।

मैंने कहा—मेला चलो। आज अंतिम है।

लकिन मैं अकेला था, व तीन थे, मेजारिटी उनकी थी, मुझे विवेश होकर मन न रहते भी मोटर में बैठना पड़ा। मिंटों में हम पैलेस थेटर की अपर सीट पर जा बैठे।

मिस थर्टी थ्री अनेक भाव भंगिओं के साथ गा रही थीं। हम लोगो का ध्यान उधर हुआ और वार्ता समाप्त हुई।

किसी सेठ की पोषित कन्या 'कुसुम' मोटर ड्राइव करती हुई चली आ रही है कि उन्हीं सेठ के पुत्र जेन' नामक डाक्टर से, जो कुसुम से अपरिचित है और मोटर पर उधर चला जा रहा था, उसकी भेंट होती है। उसकी मोटर स कीचड़ उछल कर कुसुम के बदन और मोटर पर पड़ जाता है, जिससे वह कुपित हो हार्न देकर अपनी मोटर रोक देती है। जेन भी हार्न सुनकर मोटर रोक लेता है। कुसुम क्रुद्ध हो उसे डैमफूल (बेवकूफ सुअर) कहती है और जेन अपशब्दो को कहते हुए मोटर से उतर कर उसको फटकार सुनाता है और कुसुम की मोटर के नम्बर के अनुसार उसका नाम करण करता है, 'मिस थर्टी थ्री'। कुसुम भी जेन को मोटर के नम्बर के अनुसार 'मिस्टर सिक्स्टी सिक्स' कह कर सम्बोधन करती है। चन्द गरम शब्दों की कहा सुनी के बाद मिस तेजी से अपनी मोटर बढ़ा देती है और मिस्टर नीचे से ऊपर तक कीचड़ स लद जाते हैं।

पुन. दोनो की भेट सेठ के घर में होती है। मिस, मिस्टर को अजनबी और बदतमीज कहकर घरसे निकालना चाहती है। इस पर लड़ाई होती है, पर समय से सेठ आकर उनका परस्पर परिचय करा देता है। इस तरह दोनो में पारस्परिक झगड़े के अनेक दृश्य हैं और अन्त में वे एक दूसरे पर आसक्त होकर विधिवत विवाह करते हैं; परन्तु दम्पती कलह पूर्ववत् जारी ही रहता है। जरा जरा-सी बात पर दोनों लड़ते हैं और फिर लड़ झगड़ कर मेल कर लेते हैं।

किशोरी नाम की एक दूसरी लड़की है, जो जेन की सहपाठिका और रमेश की प्रेमिका तथा एक मोटे सेठ म अपने रूप के बल से रुपया ऐंठने वाली विदुषी है। वह जेन पर आसक्त होती है और उसके साधन के लिये सेठ द्वारा पिक निक पार्टी का प्रबन्ध कराती है। उस पार्टी में सभी निमन्त्रित होकर जाते हैं और किशोरी अपने प्रेम-जाल में जेन को फँसती है और कुसुम स रमेश का परिचय होता है। जेन को कुसुम पर शंका होता है और उसक कुसुम को रमेश से मिलने को मना करने पर, कुसुम भी उसको किशोरी से न मिलने का आदेश देती है। इस पर कलह होता है। कुसुम का हृदय पातिव्रत-धर्म से ओत प्रोत है, पर दिमाग स्त्री-पुरुष के समान अधिकार वाले सिद्धान्त से भरा है और इसको वह कार्य में परिणत करना चाहती है।

जेन चला जाता है। कुसुम से किशोरी की भेंट होती है। झगड़ा होता है और कुसुम उसे बताती है कि तुम स्त्री-पुरुष के समान अधिकार प्राप्त करने की आड में अपने मन की वासना और स्वच्छन्द व्यभिचार को चरितार्थ करना चाहती हो। मैं समानाधिकार चाहती अवश्य हूँ, किन्तु पातिव्रत धर्म का निबाह करके और पुरुष का सुधार करने के लिये। कुसुम किशोरी को मार भी देती है। इसी बाच जेन आता है और किशोरी को लेकर चला जाता है। कुसुम शोक करती है, बेहोश होते-होते बचती है। उसी समय रमेश वहाँ आ जाता है और कुसुम बदले के भाव से उसका सहारा लेकर बाहर टहलने निकलती है। जेन भी

किशोरी के साथ घूमता नजर आता है। फिर इसी बात को लेकर जेन रमेश से मार-पीट करता है और रमेश को पीट कर वह कुसुम के यहाँ आता है और लड़-झगड़ कर उसे भी मारता और घर से निकल जाने का आदेश देता है। कुसुम कैम्प से चली आती है और उसके कमरे में जेन को कुसुम के नाम रमेश का लिखा हुआ पत्र मिलता है, जिसमें शोलापुर जाने की बात लिखी थी और जिसे किशोरी ने छल से वहाँ रख दिया था। इससे जेन कुसुम को रमेश के साथ भाग जाने की अपराधिनी समझता है।

इधर कुसुम जब रो-कलप कर स्टेशन आता है, तब वहाँ उसे प्लेट-फारम पर रमेश से भेंट होती है और वह उसको अपने साथ चलने के लिये एक मित्र का हैसियत से प्रलोभन देता है। वह कहीं सहारा न देख कर उसके साथ चल देती है। घर आने पर रमेश शराब पीकर रात्रि में उस पर हमला करता है। वह अपने को अपनी शक्ति भर पहले बचाती है, पर अन्त में रमेश के पिस्तौल को छीन कर उसी से उसे मार डालती है। वह गिरफ्तार होती है। जेन के पिता को इसकी सूचना मिलती है, वह जेन को फटकारता है। जेन कुसुम से जेल में मिलता है और बहुत आग्रह से रमेश के उस पत्र का रहस्य जानता है। कोर्ट में पेशी होता है। कुसुम केस को Defend करती है और स्वयं बहस करती है। हुकुम सुनाने के पहले ही किशोरी कुसुम की बहस से प्रभावित होकर जहर खा कोर्ट के सामने आती है और अपना खत लिखना स्वीकार करके कुसुम को निर्दोषी बताती हुई मर जाती है और कुसुम छूट जाती है।

इसी मूल कथानक को लेकर तीन घंटे में फिल्म खतम हुआ। जब हम फाटक से बाहर निकले तब एक विद्वान् मित्र ने अपन मित्र से कहा—कहो कैसा रहा?

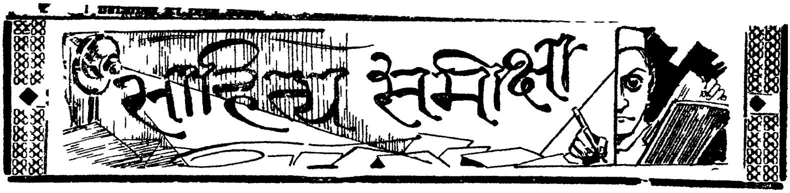
विद्वान् मित्र ने तुछ गम्भीर होकर उत्तर दिया—उतना अच्छा तो नहीं कहा जा सकता, हाँ, इसमें यदि जरा-सा सुधार कर दिया गया होता, तो किसी भी सेकेण्ड क्लास अँग्रेजी फिल्म के मुकाबले का हो जाता। मामूली संशोधन से ही ४० फीसदी उन्नति की इसमें सम्भावना थी।

प्रश्न कर्त्ता ने झुँझला कर कहा, क्या बाते करते हो। बड़ा रद्दी फिल्म है। इसी से हिन्दुस्तानी फिल्म देखने का मेरा जी नहीं चाहता।

तीसरे मित्र ने आलोचक मित्र का समर्थन करते हुए कहा, इनको स्वाभाविकता का तो ध्यान ही नहीं रहता। एकही सेन में प्रेम भी दिखाया, हत्या और हास्य भी दिखाया, व्यभिचार, अत्याचार तथा उपदेश भी सुनाया, romance की कोई भी चीज ऐसी नहीं बची, जिसको दिखाने से लेखक महाशय बाज आये हों। अंग्रेजी फिल्मों में जिस बात को लिया जाता है, उसको पूर्णरूप से आद्योपान्त पुष्ट करके समाप्त कर दिया जाता है। वहाँ नवो रसों की खिचड़ी नहीं पकाई जाती।

विद्वान् मित्र ने नम्र होकर कहा—किसी अंश तक यह भी मान्य कहा जा सकता है, किन्तु प्लाट मे मुख्य कमी स्वाभाविकता, सुरुचि और उच्च कला के अभाव की है। जब रात्रि में मान लीला को लेकर कुसुम और जेन में कलह कराया गया है, वह इतना लम्बा तथा कुरुचि पूर्ण लड़ाई झगड़े से भर दिया गया है कि उससे पात्रों के स्वभाव चित्रण की पुष्टि न होकर उलटे वह उन्हें उसको स्वाभाविकता से दूर हटा देता है, इसके साथही वे लड़ाई झगड़े इतने कृत्रिम और बेहूदे तरीके से दिखाए गए हैं कि उनमें जो कुछ सुन्दरता निम्न श्रेणी के लोगों के लिए होभी सकती थी, वह भी उससे नष्ट होजाती है।' दूसरे मित्र ने पूछा—और दृश्य?' उन्होंने कहा, दृश्य तो माशेअल्ला हैं। एकाएक बिना किसी पूर्व सूचना के वर्षा का दृश्य, जो केवल कुसुम को हटाकर जेन से मिलाने के लिए दिखा दिया जाता है। वह बहुत ही अस्वाभाविक और अप्रासंगिक हुआ है। कुसुम का बिजली की कड़क के साथ चीखना, उसके स्वभाव के नितान्त प्रतिकूल उतरा है। जैसे तीव्र और दृढ़ तथा स्वतन्त्र और निर्भीक स्वभाव की कुसुम स्त्री थी। वैसे स्वभाव की स्त्री के लिए बादल देख कर बच्चों के ऐसा चीखना बिलकुल अस्वाभाविक और विरोधात्मक हुआ है। इसको देखने से घृणा-सी उत्पन्न हो जाती है।'

(क्रमशः)



चाँद—नववर्षांक—हिन्दी मासिक पत्रों म 'चाँद ही एक ऐसा पत्र है, जिसने एक आदर्श सामने रखकर सदेव उसको पूरा करने का यत्न किया है। उसके आदर्श से बहुतो को मतभेद हो सकता है पर उसने जो कुछ सत्य समझा है, उसका प्रतिपादन किया है और प्रशसनाय निर्भीकता से। नवम्बर से उसका नया वर्ष आरम्भ होता है और इस साल उसका नववर्षांक बड़ी सजधज के साथ निकला है। कविताओं, कहानियों और इसके विशेष स्तम्भों के अतिरिक्त इस अङ्क मे कइ विचार पूण लेख है, जिनमें प्रो० रामदास गौड का 'भारताय परलोक वाद,' पण्डित लक्ष्मीधर वाजपयी का हमारी पतिता बहनें' श्रीबालकृष्ण गुप्त का 'सोवियेट रूस,' श्रीसत्यजावन वर्मा का 'प्राचीन भारत में गणिका,' तथा 'हिन्दू विवाह की रस्मों मे परिवर्तन,' आदि लेख विचारणीय हैं। वाजपेयीजी ने जिस सगठन की चर्चा की हे, उससे वेश्याओं का चाहे आर्थिक लाभ हो सके मगर समाज में सम्मान, तो तभी मिल सकता है, जब उनके चरित्र में सयम आ जाय। यदि फिर वे नृत्य और गान को पेशा बनाकर भो गृहिणी बनकर रहे। वर्माजी ने बहुत से प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है, कि पुरान जमाने में गणिकाओं का समाज में अच्छा आदर था। आदर सदैव चरित्र मे मिलता हे। आज भी ऐसी वेश्याएँ मौजूद हैं, जिन्होंने सगात की उपासना को ही अपने जावन का आधार बनाए रखा है। अनादर और अपमान तो रूप के बेचने से होता है। अगर आज भी प्राचीन गणिकाओं की भाँति वेश्याएँ नाचने गाने को अपना मुख्य कार्य बना लें और केवल प्रेम होने पर किसी नारिक से सम्बन्ध कर लें और एकाचारिणी बनकर रहे, तो कोई वजह नहीं, कि आज भी उनका अनादर हो। श्रीमोहनलालजी ने अपने लेख में दिखाया हे कि पुराने समय में हिन्दुओं की विवाह प्रथा में क्या क्या परिवर्तन हुए पर विवाह की वतमान समस्या को हल करने की चेष्टा नहीं की, समाज की यह बड़ी कठिन समस्या है। हम अँधेरे में टटोल रहे हैं पर कोई मार्ग नही पाते। एक ओर पुरानी बेहूदा रस्में हैं, दूसरी ओर पश्चिम की अन्धाधुन्ध नकल है और उससे पैदा होने वाले उपद्रव।

• • •

आकर्षण—मासिक पत्र। अक्टूबर से देहली से निकलने लगा है। सम्पादक हैं, कुशल गल्प लेखक श्रीभूदेव शर्मा। देहली से दैनिक और साप्ताहिक पत्र तो निकलते थे, पर मासिक पत्र का स्थान खाली था। हमें आशा हैं, भूदेवजी अपने शुभ उद्योग में सफल होंगे। पत्रिका में शिक्षा और मनोरजन की काफी सामग्री है और उसे कई कुशल लेखकों का सहयोग प्राप्त हो गया है। पत्र सम्पादन बड़ी जिम्मेदारी का काम है और हमे आशा हे, शर्माजी ने जो यह भार उठाया है, उसमें वह सफल होंगे। वार्षिक मूल्य ५)

• • •

तूफ़ान—राष्ट्रवादी साहित्यक साप्ताहिक-पत्र है। कलकत्ता से श्रीराधा मोहन गोकुलजी के सम्पादकत्व में निकला है। राधामोहन गोकुलजी इस वृद्धावस्था में भी नौजवानों का जोश रखते हैं। तूफान में हास्य, बाल विनोद, कहानी आदि मनोरजन की काफी सामग्री रहती है। गभीर और विचारपूर्ण लेख भी दिये जात हैं। सम्पादक ने अपने कार्यक्षेत्र के विषय में लिखा है—'तूफान देखने में कभी कभी ससार के लिये बहुत अहितकर, बहुत भयावना और अवाछनीय प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं। उसकी गर्मी, सर्दी, तरलता, सरलता, कठोरता आदि में से प्रत्येक गुण प्रकृति देवी के किसी न किसी उद्देश्य साधन के निमित्त ही होता है।' इसी से पत्र के नाम की यथार्थता सिद्ध होती है। वार्षिक मूल्य ३॥), एक प्रति का -)

• • •

मदारी—हास्य रस का पाक्षिक पत्र है। प्रयाग से श्री वल्लभप्रसाद गुप्त 'रसिक' की एडीटरी मे प्रकाशित होता है। चार अङ्क निकल चुके हैं। कविताएँ और गल्पें भी देता है। हमे आशा है, मदारी साहित्यक गुटबन्दियों से अलग रह कर अपने बन्दरों को नचाता रहगा। ऐसे एक पत्र की जरूरत थी। हाँ, मदारी का काम इतना आसान नही होता। कभी कभी बन्दर उसे काट भी लिया करते हैं। इसलिये बन्दरों को नचाते समय चुमकार पुचकार कर काम लेना अधिक निरापद होगा। वार्षिक मूल्य १) एक अक का -)

• • •

अरुण—यह सचित्र मासिक पत्र भी देहली से निकला है। अब वहाँ दो मासिक पत्र हो गए। अरुण के सम्पादक हैं, श्री पृथ्वीराज मिश्र। उनका आदर्श ऊँचा और सकल्प पक्का है, उनकी लेखनी मे ज़ोर है, साहित्यिक लेखों के अतिरिक्त स्वास्थ्य और शृगार, हास्य मजूषा, परिमल, हास्य विनोद आदि इसके मुख्य स्तम्भ हैं। पत्र होनहार है। गेट अप सुन्दर। वार्षिक ३॥) पृष्ठ सख्या ७२

• • •

जयाजी-प्रताप—वर्ष गाँठ का अक, १९३३, मूल्य १) जयाजी प्रताप कार्यालय, लश्कर, ग्वालियर।

इस पत्र में अँगरेजी और हिन्दी का सम्मिश्रण रहता है। इस वर्ष गाँठ नम्बर में भी आधे लेख अङ्गरेजी हैं, आधे हिन्दी। अङ्गरेजी लेखों में प्राय सभी पढने योग्य हैं। कइ लेख तो ग्वालियर, उसके वर्तमान शासन और उसके व्यवसाय के विषय के हैं। गृह-निर्माण पर भी एक प्रकाश डालने वाला लेख है। बाघ-गुफाओं का सचित्र वृत्तान्त, जैनियों के समय का राजदर्बारी जीवन, शिक्षा और नई जाग्रति, आदि लेख पठनीय हैं। 'हिन्दी भाषा में भारतीय चित्र कला का दिग्दर्शन' और 'सस्कृत साहित्य के कुछ मुसलमान भक्त' अच्छे लेख हैं। इस अङ्क में चार रङ्गीन और कितने ही सादे चित्र और कार्टून हैं। एक हास्य रस की कहानी, और बच्चों के लिये मनोरजक तुकबन्दियाँ भी दी गई हैं। अङ्क सग्रह करने योग्य है।

दाढ़ी वाली औरत

अफगानिस्तान के जलालाबाद में एक ऐसी स्त्री है, जिसके डेढ़ बालिश्त की सफेद दाढ़ी है। अब वह पुरुष वेष में बाजार में घूमती है, तब उसे कोई स्त्री समझ ही नहीं सकता।

छः वर्ष की बुद्धिमान बालिका

स्वीडन के स्टाकहेल्म में एक ऐसी विलक्षण बुद्धिशालिनी लड़की है, जिसने इसी उम्र में समग्र गणित शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

डाक के टिकिट कब से चले ?

इस समय जो डाक के टिकिट चल रहे हैं, कहा जाता है कि वे ११४ वर्ष पहले ६९ फ्लीट स्ट्रीट लंदन से बनने आरम्भ हुए थे। यह कहा जाता है कि १०१९ ई० में अमेरिका के दो व्यक्तियों ने टिकिटो के डिजाइन बनाने और छापने के काम का आरम्भ किया था। उन दो व्यक्तियों में से एक का नाम था—जेकब पर्किंस, और यही टिकट का आविष्कर्ता था। दूसरे का नाम था—गिडन फेयर-मैन, यह टिकिट के डिजाइन पर से ब्लाक तैयार करता था। जब लाखों की तादाद में डाक के टिकिटों के छापने की आवश्यकता हुई, तो पर्किन्स के बनाये तरीके पर टिकिट छापे जाने लगे। कहा जाता है कि पहले-पहल सन् १८४१ मे डाक के टिकिट का आरम्भ हुआ। और आरम्भ में टिकटों का रंग काला था, बाद मे अनेक रंग हो गये।

कोयले से चलने वाली मोटर

अभी तक मोटर पेट्रोल, गैस और हवा से ही चली है, पर अब ऐसा समय आ रहा है कि मोटरें कोयले से ही चलाई जा सकेंगी और आश्चर्य यह है कि कोयला सड़े भुसे, शाक, भाँजी से ही बनाये जा सकेंगे इटली में इसके लिए ज़ोरों से प्रयत्न हो रहा है।

एक पहिए की मोटर साइकिल

पहले एक पहिए की मोटर बनाये जाने की खबर छप चुकी है। अब एक पहिए की मोटर साइकिल भी बन गई है, इसकी चाल प्रति घंटे सौ मील की है। १ गैलन पिट्रोल से यह २८० मील सफर कर सकेगी।

बिना तैल से चलने वाली मोटर

जापान वालों ने सबको मात कर दिया है, वे इस प्रयत्न में हैं कि केवल स्प्रिंग से चलने वाली ही मोटर तैयार हो। बहुत कुछ सफलता प्राप्त हो गई है आशा है, जल्दी ही ऐसी मोटरें बिकने को बाजार में आयेंगी।

मुर्दे भी जिंदा होंगे

पाश्चात्य वैज्ञानिकों की खोज बहुत आगे बढ़ गई है। न्यूयार्क के सुप्रसिद्ध हृदय-तत्त्वज्ञ डाक्टर अलबर्ट हाइमन ने प्रकट किया है कि एकाएक आत्मघात या अपघात द्वारा मरे हुए मनुष्य को जीवित किया जा सकता है। वह रुकी हुई हृदय की गति को पुनः आरम्भ कर के मरे हुए आदमी को पुनर्जन्म दिया जा सकता है। डाक्टर साहब ने एक लम्बी सूई तैयार की है और उसमें एक लम्बा तार फिट किया है। सूई का दूसरा सिरा बिजली से जोड़ रक्खा है। हृदय की गति बन्द हो जाने पर, हृदय के विवक्षित स्थान पर यह सूई चुभा दी जाती है और बिजली की सहायता से हृदय की गति पुनः आरम्भ होने लगती है। इस विधान से केवल आत्मघात किये हुए मनुष्य ही जिलाये जा सकते हैं।

चिट्ठी-पत्री

अखिल भारतवर्षीय मासिक-पत्र प्रदर्शिनी

[१४ जनवरी से ३१ जनवरी ३४ ई० तक]

प्रयाग के विद्या मंडल ने इस साल माघ मेले के अवसर पर अखिल भारतवर्षीय मासिक पत्रों की प्रदर्शिनी खोलने का निश्चय किया है। इस प्रदर्शनी में भारतवर्ष में प्रकाशित होने वाले सभी भाषाओं के पत्र रखे जायँगे। इस प्रदर्शनी में किसी तरह का टिकट न लगेगा और मासिक पत्र भेजने वालों को भी कुछ देना न पड़ेगा। भारतवर्ष के मासिक पत्रों के प्रचार का यह सुन्दर अवसर है और उन्हें इससे पूरा लाभ उठाना चाहिये। सब मासिक-पत्रों के प्रकाशकों से प्रार्थना है कि वे अपने पत्र का नया अङ्क नीचे पते से भेज दें। आशा है कि भारतवर्ष के कोई पत्र इस सुअवसर से लाभ उठाने से वञ्चित न रह जायँगे।

कमलाप्रसाद, मन्त्री—
अखिल भारतवर्षीय मासिक पत्र प्रदर्शिनी, विद्या-मण्डल, (आरामबाग)
कैम्प माघ मेला, इलाहाबाद

मेरठ कॉलेज मैगजीन, मेरठ

'इस वर्ष उपरोक्त मैगजीन का एक हिन्दी विशेषांक निकालने का निश्चय किया गया है, अतएव पूर्ण आशा है, हिन्दी के गण्यमान्य लेखकगण अपनी साहित्यिक रचनाओं द्वारा सहयोग प्रदान कर हमें कृतार्थ करेंगे। इस अंक के लिये सुन्दर रचनाएँ भेजने वाले विद्यार्थियों को रजत पदक तथा अन्य पुरस्कार दिये जाने का भी निश्चय किया गया है। समस्त रचनाएँ निम्नलिखित पते से इस मास के अन्त तक अवश्य आ जानी चाहिए—'

सत्येन्द्रचन्द्र 'श्याम'
उ० सम्पादक मेरठ कॉलेज-मैगजीन
२५ न्यू० हाउस, मेरठ कॉलेज, मेरठ

लेखकों सम्पादकों तथा प्रकाशकों की सेवा में

साग्रह आदर के साथ निवेदन

गावों में रहनेवाले, बिना पढ़े लिखे लोगों में शिक्षा प्रचार करने के उद्देश्य से 'प्रजाबन्धु पुस्तकालय' नामक एक संस्था स्थापित है। जिसके लिए हमें कृषि, उद्यान, पशुपालन गोपालन, आरोग्य, चिकित्सा, ग्राम-संगठन व ग्रामसुधार, उद्योग धंधा विषयक सभी—विशेषतः हिन्दी भाषा में प्रकाशित होने वाले—समाचार पत्र तथा पुस्तकों की आवश्यकता है। अतएव इन विषयों के सभी पत्र पत्रिकाओं के व्यवस्थापकों तथा पुस्तक प्रकाशकों से प्रार्थना है कि अपने अपने पत्र एव इन विषयों की पुस्तकें उदारता पूर्वक भेजने की कृपा करें और यश के भाजन बनें।

निवेदक—मंत्री, प्रजाबन्धु-पुस्तकालय,
चौबेपुर (कानपुर)

धन और स्वयंसेवकों के लिये काशी-सेवा-समिति की अपील

आगामी चन्द्रग्रहण पर्व, जो माघ शुक्ल १५ तदनुसार ता० ३० जनवरी सन् १९३४ ई० को है, समिति की ओर से यात्रियों की सुविधा के लिये घाटों स्टेशनों तथा मन्दिरों आदि में स्वयंसेवकों द्वारा पूर्ववत् प्रबन्ध होगा। इस कार्य में २००० स्वयंसेवक तथा १०००) रुपये के खर्च का अनुमान है।

इसके पूर्व के अवसरों पर स्थानीय प्रायः सभी मुख्य संस्थाओं, कालेज तथा स्कूलों से स्काउट तथा स्वयंसेवक काफी संख्या में मिलते रहे हैं और नगर के दानी और उदार महानुभाव धन से सहायता करते रहे हैं।

इस अवसर के लिये जाड़े के कारण भूले-भटके तथा असहायों के लिये विशेष आयोजन करना पड़ेगा। अस्तु, संस्थाओं और पाठशालाओं, स्वयंसेवक तथा दानियों से धन से सहायता करने की प्रार्थना है।

विनीत—मंत्री, काशी-सेवा-समिति।



काशी में रत्नाकर-रसिक मंडल ने 'प्रसाद'जी के नाटक का आयोजन किया था। साहित्यिक लोग बड़े प्रसन्न हुए, अनेक बड़े बड़े कहलाने वाले लोगों ने चन्दे का वचन दिया— भरपेट तमाशा देखा और चन्दे के वक्त दम साध गये! इस पर एक सज्जन कहते हैं—चलो अच्छा हुआ, कम से कम 'घर फूँककर तमाशा देखने' की कहावत को तो रत्नाकर रसिक मंडल के लिए चरितार्थ कर दिया!

❀ ❀ ❀

दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर से कोई ४५ हजार के गहने और जवाहरात चुरा ले गया! ओफ, गजब हो गया! अवश्य ही काली माई गहरी छानकर सो रही होंगी; अन्यथा उनके जागते कोई चोर मन्दिर में कदम रख लेता तब जानते!

❀ ❀ ❀

रामपुर के नवाब साहब भी अलवर नरेश की तरह भाग्यशाली निकले! आप भी दो साल के लिए परिस्तान की सैर करने जायँगे!

❀ ❀ ❀

मद्रास में श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री ने भाषण करते हुए श्वेत पत्र योजना की निन्दा कर डाली और कहा कि अब इंगलैंड के लोग, यहाँ तक कि कट्टर कन्जर्वेटिव भी यह कहने का हिम्मत नहीं कर सकते कि हमने ऐसी योजना तैयार की है, जो भारतीयों को सन्तुष्ट कर देगी।' सो शास्त्रीजी महाराज, उन्हें सन्तुष्ट करने की आवश्यकता ही क्या है, भारतीय तो स्वतः सन्तोषी जीव हैं, अपने आपही वे सन्तुष्ट हो जायँगे!

❀ ❀ ❀

और भारतीय सन्तोष का पहला प्रमाण अम्बेडकर साहब हैं, जो विलायत से पूर्ण सन्तुष्ट होकर आये हैं, इसीलिए न वे कहते हैं कि इससे ज्यादा के लिए चिल्लपों करना निरी मूर्खता है!

दूसरा उदाहरण हैं—जयकर साहब! लेकिन आप अपने आशावाद के बल पर सन्तुष्टि लाभ कर रहे हैं।

❀ ❀ ❀

कहते हैं अबकी बार ठंड ज्यादा होने की वजह से शेषनाग को भी सर्दी हो गई और वे ठीक दोपहरी के वक्त छींक बैठे! पर इस अभागे देश में तो भूकम्प से हाहाकार मच गया! अब इसकी गुहार किससे की जाय? भलेमानुस से यह भी न हुआ कि एक बोतल द्राक्षासव मँगाकर सेवन कर लेते!

❀ ❀ ❀

बुढ़ापे में श्रीयुत राधामोहन गोकुलजी महोदय ने गद्दावाद का ईजाद किया है, पर आपके वाद में छायावाद के अनन्त के गीतों की-सी मधुरता नहीं है, इसलिये शायद ही कोई उसे पसन्द करे।

❀ ❀ ❀

पहले 'प्रेम पत्रिका' स्त्रियों के द्वारा निकलती थीं, पर अब श्रीगिरिजाशंकरजी शुक्ल 'गिरीश' ने भी अपना 'प्रेम पत्रिका' निकाला है! अब प्रश्न यह है कि यह 'प्रेम पत्रिका' स्त्रियों के लिए है, या पुरुषों के लिए? गिरीशजी जैसे भले आदमी स्त्रियों को तो प्रेम पत्रिका लिख नहीं सकते, अगर पुरुषों के लिखी गई है, तो अवश्य ही उन्होंने अपना हृदय खोलकर सामने रख दिया है!

❀ ❀ ❀

आजकल विशालभारताचार्य चौबेजी चुप से नजर आते हैं इसलिए एक मित्र का खयाल है कि कहीं जाड़ा न लग गया हो! सो चौबेजी महाराज, अगर यह बात सच हो, तो शीघ्र दवा कीजिए, वर्ना कहीं आप भी शेषनागकी तरह छींक दिये, तो हिन्दी-साहित्य में भूकम्प ही आ जायगा?

—विचित्रानन्द

ब्राह्मणी वर्ण-विधान

[शब्द]

पण्डित, धन्य आपु की माया। टेक
निज स्वारथ हित ऊँच नीच का वर्ण विधान बनाया।
आपु बने महराज मजे में, सिगरा देश छकाया। पण्डित०
लट्ठ लड़ाकुन को 'क्षत्रिय' कहि, राज भोग समुझाया।
दुर्बल दीन प्रजा पर उनसे, बहुत अनर्थ कराया। पण्डित०
कृषि व्यापार सौंपि बनियन को, अपुनी गेर मिलाया।
दान-बहाने कर निज बाँधे, स्वरग के लोभ लुभाया। पण्डित०
कही टहल सेवा मिहनत को, शूद्र कर्म ठहराया।
करै दासता तीन बरन की, झूठा पाप लगाया। पण्डित०
गढ़ि श्लोक शिल्पकारन को, 'संकर बरन' बताया।
सब के कर्म गनाय आपु को, कर्म-रहित कथि गया। पण्डित०
की शूद्र पशु सम राखे, पढ़ना नहीं सिखाया।
उच्च-भावना अभी न उनमें, कैसा फन्द फँसाया। पण्डित०
परमारथ-मिस कर्मकाण्ड का, झूठा जाल बिछाया।
गढ़ि-गढ़ि कथा देव देविन की, सिगरा जग भरमाया। पंडित०
निज प्रभुता थापन हित पंडित, जो तुम्हरे मन भाया।
झूठे शास्त्र पुरान अनेकन, रचि रचि जगहि सुनाया। पण्डित०
क्षत्रिय के अवतार बनाये, अपना पाँव पुजाया।
गोधन दान माँगि छकि-छकि के, दूध दही घी खाया। पण्डित०
रास-विलास कृष्ण राधा रचि, भक्तिसिक्त रस चुचुवाया।
बनि कपट गुरु विषय-भोग में, भारत देश डुबाया। पण्डित०
धर्म गुरू है विकट दुख का, ढोंग जगत में छाया।
भोग वासना तनिक न त्यागी, ताकत माल पराया। पंडित०
दया, सत्य, समता, मानवता का, कर दिया सफाया।
कहो, संगठन होइ कहाँ से, स्वारथ चहुँदिशि छाया। पण्डित०
उगो ज्ञान रवि भयो 'जागरण' पलटी जग की काया।
अब 'प्रकाश' छल बल चलिहैं कस, भारत है अकुलाया। पण्डित०

— प्रकाशस्वरूप —

सहकारी सम्पादक—श्री प्रवासीलाल वर्मा, मालवीय-द्वारा सरस्वती-प्रेस, काशी से मुद्रित और प्रकाशित।

जागरण

THE JAGARAN | सम्पादक—प्रेमचन्द | Illustrated Weekly

वर्ष २ | काशी मि० माघ शुक्ल १४ सोमवार, सं० १९९० वि० : ता० २९ जनवरी सन १९३४ ई० | अंक २४

स्वर्गीय स्वामी विवेकानन्दजी

जिनकी ७२ वीं जन्म-गाँठ भारत के अनेक नगरों में मनाई गई।



स्वामीजी का हार्दिक सन्देश यह था—

"मेरी हार्दिक इच्छा है कि बार बार मेरा जन्म हो और सहस्र गुना कष्ट मुझे झेलने पड़ें, केवल इसलिए कि मैं अपने परमात्मा की सच्चे शब्दों में पूजा कर सकूँ। मेरा परमात्मा तो दरिद्रनारायण है, जो इन सारे पीड़ित जीवों में ही व्यापक है।"

क्यों विश्व छला जाता है ?

मैं भोली हूँ अति भोली
जग मुझको भोला दिखता।
छलनामय है भोलापन
जग निज जीवन में लिखता।
तारों से बातें करने
हँस तुहिन विन्दु हैं आते
पर क्यों प्रभात वेला में
तारे नभ में छिप जाते ?
शशि अपनी उज्ज्वलता से
जग उज्ज्वल करने आता,
पर काले बादल का दल
क्यों उसको ढँकने जाता ?
हँस इन्द्र धनुष अम्बर में
छवि राशि लुटाने आता,
पर अपनी सुन्दरता खो
क्यों रो-राकर मिट जाता ?
खिल उठते सुमन सुमन जब
शोभामय होता उपवन,
पर तोड़ लिये जाते क्यों
खिलकर खोते क्यों जीवन ?
दीपक को प्यार जताने
प्रेमी पतङ्ग है आता,
पर हँसते-हँसते उसको
क्यों अपने प्राण चढ़ाता ?
जब विश्व छला जाता है
क्या मैं न छली जाऊँगी ?
जिस ओर बसा भोलापन
मैं वहीं चली जाऊँगी।

श्री रत्नकुमारी देवी

जागरण

मि० माघ शुक्ल १४ सोमवार, सं० १९९० वि०

प्रकृति का तांडव

ज्यों-ज्यों इस देश-व्यापी भूकम्प के समाचार आते जाते हैं, यह निश्चय दृढ़ होता जाता है कि यह भी उन्हीं प्रलयंकरी घटनाओं में है, जिन्होंने दूर अतीत में समुद्रों को पर्वत और पर्वतों को समुद्र, महाद्वीप को महासागर और महासागर को महाद्वीप बना दिया। इतिहास इतने भयंकर भूकम्प से अनभिज्ञ है। पहले तीन-चार हजार हतों का अनुमान था। अब यह संख्या दस गुनी बढ़गई है और कुछ लोगों का अनुमान है कि पचास हजार से कम आदमियों की हानि नहीं हुई। धन की कितनी हानि हुई, इसका अन्दाजा ही नहीं किया जा सकता। मोतिहारी, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, तो मिट गए, दरभंगा, पटना, गया, जमालपुर आदि स्थानों पर भी विपत्ति कुछ कम नहीं आई। उनका वर्णन सुन सुन कर कलेजा दहल जाता है खून सर्द हो जाता है। सोचिए, उस आदमी की दशा क्या होगी, जो अपने प्यारों को हँसते खेलते छोड़कर दफ्तर या दूकान गया हो और प्रकृति के इस उच्छ्वास के बाद दौड़ा हुआ घर आए, तो देखे कि उसका सर्वनाश हो चुका है। कितना हृदय विदारक दृश्य है।

अब हमारा क्या कर्तव्य है? क्या यही कि जब दो चार मित्र मिल बैठें, तो भूकम्प का जिक्र छिड़ जाय! अमुक परिवार या अमुक नगर या अमुक गाँव में कितने आदमी मरे, कितने जख्मी हुए। कैसे जमीन फट गई, कैसे उसके अन्दर से पानी उबल पड़ा, कैसे बड़े बड़े महल जमीन में धँस गए। यह तो मनुष्य का केवल कुतूहल प्रेम है। क्या केवल अपने मुहल्ले या घर में होम-यज्ञ कराके ही हम अपने कर्तव्य को पूरा कर सकते हैं? यह तो केवल स्वार्थ-कामना है।

नहीं, हमारी मानवता और बन्धु भावना की यह अग्नि परीक्षा है। हम अपने मंगल के निमित्त, बड़ी बड़ी तीर्थ यात्राएँ करते हैं, दान-पुण्य करते हैं। हम अपने आत्म प्रदर्शन के लिये पैसे को ठीकरा समझते हैं और भोग विलास के लिये धन को पानी की तरह बहाते हैं। क्या आज जब हमारे लाखों भाई अकथनीय कष्ट भोग रहे हैं, हम अपनी मंगल कामना के लिये तीर्थ-यात्रा करते रहेंगे, क्या शादी ब्याहों में रुपए लुटाना इस समय उचित है, जब हमारे लाखों भाई आहत और नंगे पड़े कराह रहे हैं? क्या हम अब भी तमाशे देखते रहेंगे, जब प्रकृति अपना ताण्डव नृत्य दिखा रही है? पीड़ितों के लिये बड़ी तत्परता से सहायता का काम शुरू हो गया है। सरकारी और गैर सरकारी शक्तियाँ सहयोग से इस पुण्य कार्य मे हाथ बढ़ा रही हैं, प्राय सभी प्रांतों में सहायक समितियाँ पीड़ितों के लिये धन और वस्त्र एकत्र कर रही हैं, वाइसराय ने जो फंड खोला है, उसमें चारो तरफ से रुपए आ रहे हैं। हमारा भी धर्म है कि अपने सामर्थ्य भर अपने भाइयों की मदद करें—धन से, वस्त्र से, अन्न से। यह न समझिए कि हमारे दो-चार आने कौन-सा बड़ा उपकार कर देंगे। आपके चार आने सम्भव है किसी भाई के लिये समय पर मिल जाने से एक कोष का काम करें। हम गरीब हैं, सामर्थ्यहीन हैं, लेकिन इसीलिये हमारे ऊपर और बड़ी जिम्मेदारी है, गरीब की मदद गरीब न करेंगे तो कौन करेगा?

यह भूकम्प क्यों आया, इस पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के भिन्न भिन्न मत हैं। भूगर्भ के जानकार कहते हैं कि हिमालय पर्वत उस कम्पन रेखा पर पड़ता है, जो आल्पस से ऐंडीज पहाड़ तक चला गया है और चूँकि उसका ऊपरी भाग वर्षा, बर्फ के पिघलने और अन्य प्राकृतिक कारणों से क्षीण हो रहा है, वह भीतर से ऊपर उठ रहा है, जैसे पानी में तैरता हुआ बर्फ का टुकड़ा ज्यों ज्यों ऊपर से गलता है, पानी से बाहर निकलता आता है। कम्पन जब बहुत दिनों के बाद आता है तो उसका जोर बहुत ज्यादा होता है। इसलिये यही अच्छा है कि कभी-कभी हलका हलका कम्पन होता रहे। ऐसा भीषण कम्पन २५ वर्षों के बाद आया है। आखिरी भूकम्प काँगड़ा में सन् १९०७ में आया था, जिसमें २० हजार आदमी मर गये थे। उत्तर भारत हिमालय के समीप है, इसलिये यहाँ भूकम्पों की सम्भावना अधिक है।

दूसरा दल उन लोगों का है, जो इसे दैवी कोप कहते हैं! क्या दीन, दुखी, दलित, दरिद्र भारत पर ही दैवी कोप को आना था? या इसे गरीब देखकर दैव भी इसे ठोकर मारता है, जैसे कोई शरीर लड़का पड़े हुए कुत्ते को ठुकरा देता है? और मान लिया दैवी कोप ही है, तो यह क्यों? इसीलिये तो कि यहाँ के लोग दैव की समझ में संसार भर से ज्यादा पापी, स्वार्थी और भ्रष्ट हैं। स्पष्ट ही है कि जब तक हम सत्यवादी, परोपकारी और पवित्र न हो जायँगे, यह कोप हमारे ऊपर से न टलेगा; लेकिन हम चौरस्तों पर होम तो कर रहे हैं, दुर्गा-पाठ तो बैठा रहे हैं, देवी को बकरे चढ़ा रहे हैं, मगर क्या हम असत्य और स्वार्थ और दुष्टाचरण का त्याग कर रहे हैं? क्या इन आठ-नौ दिनों में हमने अपने जीवन को पवित्र बनाया है? तब दैवी कोप कैसे टलेगा? होम से और बकरे से भूकम्प वाला देवता प्रसन्न नहीं होता। इन रिशवतों से तो हमारी छोटी मोटी देवी भवानी और देवतागण ही प्रसन्न होते हैं, जो अधिक-से अधिक हमें बीमार डाल देते हैं, या हमें घुला-घुलाकर मार डालते हैं। साधु कहता है लोग साधु-सेवा भूल रहे थे, इसलिये दैवी कोप आया। वर्णाश्रम संघ शायद यह कहता हो कि मन्दिरों को हरिजनों के लिये खुलवाने से कोप आया, पंडे भी फरमाते हों, देवताओं में लोगों की श्रद्धा कम हो गई, इसलिये देवता कुपित हो गए। इसी तरह दफतरों के अमले कहते होंगे, लोग अब दिल खोलकर उनकी पूजा नहीं करते, देते भी हैं तो बहुत रोकर, इसलिये कोप आया। यह सब स्वार्थियों की युक्तियाँ हैं। न दैवी कोप है, न शेषनाग की करवट। यह एक प्राकृतिक विस्फोट है, जो वैज्ञानिक कारणों से आया करता है। इसका मनुष्य के पास कोई इलाज नहीं। अगर कोई इलाज है, तो यही कि शहर की तंग गलियों और ऊँचे ऊँचे महलों से विदा ली जाय और खुली जगहों में, एक तल्ले, हलके, गहरा नींव वाले मकान बनाए जायँ और स्त्रियों के परदे को एक दम तोड़ दिया जाय। अगर परदे वाली स्त्रियाँ, भयभीत होकर लज्जावश घरों में न छट पटाकर—दौड़ती हुई खुली जगहों तक आ जातीं, तो बहुत सम्भव है कि इतनी जानें न जातीं।

लेकिन हमारे लिये यह बिल्कुल नई परिस्थिति है और अपने को उसके अनुकूल बनाने में अभी बहुत दिन लगेंगे।

हवा का रुख़

किसी पत्र के इंगलैंड के एक सम्वाददाता ने लिखा है कि २५ साल पहले केम्ब्रिज मे साहित्य और कविता ही छात्रों के विचार विनिमय का विषय था, राजनीति से किसी को जरा सी दिलचस्पी न थी। उसी केम्ब्रिज में आज कम्युनिज्म का सबसे ज्यादा असर है। मगर वह महाशय यह भूल गये हैं कि २५ वर्ष पहले कम्युनिज्म की सूरत ही किसने देखी थी। विज्ञान ने मशीन गन और बेतार बनाए, तो क्या राजनीति ज्यों की-त्यों बैठी रहती। उदार और परम्परा वादी दलों मे युवकों के आदर्शवाद के लिये क्या आकर्षण हो सकता है। कम्युनिज्म अर्थात साम्यवाद का विरोध वही तो करता है, जो दूसरों से ज्यादा सुख भोगना चाहता है, जो दूसरों को अपने अधीन रखना चाहता हैं। जो अपने को भी दूसरों के बराबर ही समझता है, जो अपने में कोई सुर्खाब का पर लगा हुआ नहीं देखता, जो समदर्शी है उसे साम्यवाद से क्यों विरोध होने लगा। फिर युवक तो आदर्शवादी होते ही हैं। भारत में ही देखिये। बाप तो साम्प्रदायिकता के उपासक हैं, और बेटे उसके कट्टर विरोधी। युवक क्या नहीं देखते कि वर्तमान सामाजिक और राजनैतिक संगठन ही उनकी उदार, ऊँची और पवित्र भावनाओं को कुचल कर उन्हें स्वार्थी और संकीर्ण और हृदय शून्य बना देता है। फिर वे क्यों न उस व्यवस्था के दुश्मन हो जायँ, जो उनकी मानवता को पीसे डाल रही है, और उनमें प्रेम की जगह संघर्ष के भाव जगा रही है। उसी सम्वाद दाता के शब्दों में 'ऐसा मुश्किल से कोई समझदार आदमी मिलेगा, जिसमें जरा भी विचार शक्ति है, जो वर्तमान परिस्थिति का साम्यवादी विश्लेषण न स्वीकार करता हो।'

काश्मीर की असेम्बली में उर्दू

काश्मीर में नई व्यवस्थापिका की जो योजना प्रकाशित हुई है, उसमें जमींदारों और महाजनों के लिये विशेष निर्वाचन नहीं रखा गया है, और यहाँ अंग्रेजी-सरकार जमींदारों की रक्षा के लिये एक द्वितीय सभा आवश्यक समझ रही है। यह कौन नहीं जानता कि निर्वाचन मे अधिकतर जमींदार और धनवान ही कामयाब होते हैं, इसलिये इन समुदायों के लिये विशेष निर्वाचन की व्यवस्था वास्तव में उन्हें दोहरा निर्वाचन देना है। इसके साथ ही काश्मीर दरबार ने बहुमत का आदर करके वहाँ की व्यवस्थापिका सभा की सारी कार्रवाई उर्दू में करने का निश्चय किया है। असेम्बली के मेम्बरों के लिये उर्दू का ज्ञान आवश्यक रखा गया है। उर्दू काश्मीर के मुसलमानों की भाषा हो या न हो, लेकिन उन्हें

उर्दू से प्रेम है। अतएव सरकार ने उनके भावों का आदर करके वही किया है, जो उसे करना चाहिये था। हमारी व्यवस्थापिका सभाओं में क्यों बहुमत की भाषा का प्रचार नहीं किया जाता? वहाँ क्यों सारी कारवाई अंग्रेजी में की जाती है?

महिलाओं की शिक्षा पर पं० जवाहिर लाल नेहरू

किसी पिछली संख्या में हम ने मि० मैकेंजी के स्त्री शिक्षा सम्बन्धी विचार की आलोचना की था। मि० मैकेंजी महिलाओं को माता और गृहणी बनने की शिक्षा देना चाहते हैं, और अनावश्यक विषयों को उनके दिमाग में ठूँसकर वही गलती नहीं करना चाहते, जो लड़कों की शिक्षा में की गई। लड़कों को दफ्तरों के लिए क्लार्क बनाना अभीष्ट था। लड़कियों के सामने वह यह आदर्श नहीं रखना चाहते। पंडित जवाहिरलाल नेहरू ने महिला विद्या पीठ के दीक्षान्त भाषण में इस के विपरीत मत प्रकट किया। आप का खयाल है कि महिलाओं को केवल वैवाहिक जीवन के लिए क्यों तैयार किया जाय। उन्हें जब तक आर्थिक स्वतन्त्रता न प्राप्त होगी उस वक्त तक पति पत्नी में साम्यभाव न उत्पन्न होगा। अगर साम्यता का एक मात्र आधार आर्थिक ही हो जाय, तब भी कमी-बेशी का झगड़ा रहेगा ही। अगर देवी जी १००) लाती हैं, और देवता जी १२०), तो अवश्य ही कुछ थोड़ी सी असमता आ जायगी। उसी तरह देवी जी ज्यादा कमाती हैं तब भी असमता पैदा होगी। दोनों बराबर लायें तभी मीजान ठीक बैठेगी। इस का अर्थ यह होगा कि मुश्किल से सौ में पाँच दम्पति सुखी होंगे। बात यह है कि देवताओं में प्रधानता की जो भावना उत्पन्न हो गई है यह केवल उन की मूर्खता के कारण। वह समझते हैं वे बाहर से धन कमाकर लाते हैं, इसलिए उनका महत्त्व अधिक है। उन्हें यह भूल जाता है कि स्त्री घर में जो काम करती है, वह उनकी कमाई से कई गुना ज्यादा महत्त्व की चीज है। जहाँ पुरुष बिलकुल गधे नहीं हैं वहाँ पराधीनता और स्वाधीनता की गन्ध तक नहीं है। दोनों ही एक दूसरे के समान रूप से पराधीन हैं। पुरुषों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाने से यह सारा विवाद मिट सकता है, और पारिवारिक विच्छेद के लज्जास्पद दृश्यों से समाज की रक्षा हो सकती है।

बिहार मंदिर-सम्मेलन

बिहार में हिन्दू धर्म के ठीकेदारों ने अपने सम्मेलन में हरिजनों के मंदिर प्रवेश का खूब जोरों के साथ विरोध किया और स्व० महारानी विक्टोरिया के धार्मिक निष्पक्षता की घोषणा की दुहाई दी। हिन्दू धर्म तो यह कहता है कि प्राणीमात्र में परमात्मा का वास है, सर्वात्मवाद का इतना ऊँचा आदर्श और किसी धर्म ने भी नहीं उपस्थित किया, मगर मुसलमानों में तो मेहतर भी मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ सकता है, और यहाँ समाज का एक बड़ा भाग मंदिरों से बहिष्कृत किया जाता है। समाज का जो अंग बड़ी से बड़ी सेवा करता है, वह तो अछूत है, और जो तिलक लगा कर मुफ्त का माल उड़ाते हैं, वह समाज के श्रेष्ठ अंग हैं! यह व्यवस्था हिन्दू धर्म को कलंकित करनेवाली है और हिन्दूसमाज इस अनीति का अब सहन नहीं कर सकता।

अच्छी और बुरी साम्प्रदायिकता

इण्डियन सोशल रिफार्मर अंग्रेजी का समाज सुधारक-पत्र है और अपने विचारों की उदारता के लिए मशहूर है। डॉक्टर आलम के हिंदी-कमजुनल की आलोचना करते हुए, उसने कहा है कि साम्प्रदायिकता अच्छी भी है और बुरी भी। बुरी साम्प्रदायिकता को उखाड़ना चाहिए। मगर अच्छी साम्प्रदायिकता वह है, जो अपने क्षेत्र में बड़ा उपयोगी काम कर सकती है, उसकी क्यों अवहेलना की जाय। अगर साम्प्रदायिकता अच्छी हो सकती है, तो पराधीनता भी अच्छी हो सकती है, मक्कारी भी अच्छी हो सकती है, झूठ भी अच्छा हो सकता है, क्योंकि पराधीनता में जिम्मेदारी से बचत होती है, मक्कारी से अपना उल्लू सीधा किया जाता है और झूठ से दुनिया को ठगा जाता है। हम तो साम्प्रदायिकता का समाज का कोढ़ समझते हैं, जो हर एक संस्था में दलबंदी कराती है, और अपना छोटा-सा दायरा बना कर सभी को उस से बाहर निकाल देती है।

सी-पी० सरकार की सतर्कता

सी० पी० के होम मेम्बर एक हिन्दुस्तानी सज्जन हैं। महात्माजी अभी जब उस-प्रांत में दौरा कर रहे थे, तो आपने एक सरकुलर निकाला था कि सरकारी नौकरों को इस आंदोलन में भाग न लेना चाहिए। बिलकुल ठीक। संक्रामक बीमारियों में बाहरवालों को छूत लग जाने का ज्यादा भय रहता है।

बिहार की विपत्ति और काशी

हमें यह जानकर खेद हुआ कि बिहार की सहायता के प्रश्न पर यहाँ की दो प्रमुख सेवा संस्थाओं में मतभेद हो जाने के कारण अभीतक संगठित रूप से कुछ नहीं किया जा सका। दोनों ही अलग-अलग अपनी खिचड़ी पका रही हैं और ऐसे नाजुक वक्त में भी सहयोग नहीं कर सकतीं। हम काशी-सेवा समिति और काशी नागरिक-मण्डल दोनों ही के कार्यकर्ताओं से विनय के साथ अनुरोध करते हैं कि परस्पर के वैमनस्य पर पानी डालकर एक दिल से बिहार की सहायता करके काशी का गौरव बढ़ाएँ।

भूडोल और काशी के अधिकारी

अगर हमारे एक योग्य मित्र की यह शिकायत ठीक है कि काशी के अधिकारियों ने भूकम्प के अवसर पर जनता की कोई मदद नहीं की, किसको क्या नुकसान पहुँचा है, इसकी कोई जाँच नहीं की गई, जर्जर मकानों को खाली कराके घर वालों को सुरक्षित स्थानों में ठहराने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया, जनता की घबराहट को दूर करने के लिये एक विज्ञप्ति तक न निकाली गई, तो हमें इसका खेद है। हमें आशा है कि काशी के अधिकारी-वर्ग अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे और जनता को निराशा या बेकसी का कटुक अनुभव न कराएँगे। विशेषकर जब हाकिम जिला और हाकिम शहर दोनों ही हिन्दुस्तानी हैं, तब तो हम उनसे सहायता और सहानुभूति की और भी आशा रखते हैं। अगर हमारे भाई हमारे अफसर होकर हमारी ओर से मुँह फेर लें, तो गैरों से क्या आशा की जाय।

मनुष्यता का महत्त्व

लेखक—श्रीयुत हरनरायण शर्मा 'किंकर' हिन्दी प्रभाकर

इस मशीन-निर्माण के युग में मनुष्य निर्माण की चर्चा भले ही न हो, लेकिन प्राचीन साहित्य में इस सम्बन्ध में लोगों की विशेष नहीं, तो थोड़ी बहुत रुचि अवश्य पाई जाती है। सन्तति-निरोध आन्दोलन के समय सम्भव है, यह बात बेतुकी मालूम हो। कोई भी कह सकता है—'इतनी बड़ी संख्या में मनुष्य पैदा होते रहे हैं कि देश हितैषियों को सन्तान निग्रह की चिन्ता करनी हुई है।' बात झूठी नहीं है लेकिन हमारा मतलब मनुष्यता युक्त मनुष्यों के अभाव से है रक्त, मांस, हड्डी के पुतलों से नहीं। हमारा उस मनुष्य से अभिप्राय है जिसके लिए किसी उर्दू के कवि ने कहा है—

हमने माना हों फरिश्ते शेख जी,
(पर) आदमी होना बहुत दुश्वार है।'

सचमुच 'नरत्व दुर्लभ लोके' आदमी होना बड़ा ही कठिन है, तभी तो समझदार नेताओं के मुँह से एक ही बात सुनाई देती है—'Man want!' स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के शब्दों में आज भारत एक स्वर से कह रहा है—'कहीं से खरा आदमी लाइए' मालूम होता है, दुनिया में आदमी हैं ही नहीं। यदि हैं तो बहुत कम, नहीं के बराबर। सवाल उठता है, हिन्दुस्तान में जिनकी आबादी अंगरेजों के प्रताप से ३५ करोड़ विदित हुई है, वे क्या हैं? उत्तर में कह दिया जा सकता है—'मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।' तो फिर इनमें से किसे मनुष्य समझा जाय? इस प्रश्न का उत्तर देने की कुछ बड़े पुराने कवियों ने कोशिश की है। एक कहते हैं—

'साहित्य सङ्गीत कला विहीन साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीन
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद् भाग धेयं परमं पशूनाम्।'

(भर्तृहरि)

अर्थात्—आदमी केवल वह है, जो साहित्य और सङ्गीत-कला का ज्ञान रखता है।

दूसरे एक आजकल के महाकवि का कहना है—

'वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे।'

बात बड़ी उलझन की है, यह तक पहुँच कर निर्णय करना तो और भी टेढ़ी खीर लेकिन यदि संसार में अथवा संसार के किसी हिस्से में, हमें या किसी और को शान्ति स्थापित करनी है, तो सबसे पहले यह समस्या हल करनी होगी। आवश्यकता है कि मनुष्य—ऐसे आदमी, जिनके लिये कहा गया है—

'रङ्ग लाती है हिना पत्थर पै पिस जाने के बाद,
आदमी होता है इन्सौं ठोकरें खाने के बाद।'

जो मामूली इन्सान से भिन्न हैं तैयार किये जावें, और हर एक मनुष्य में से इन्सानियत—मनुष्यता—न होने का कलङ्क मिटाया जाय।

संसार की हलचलों ने इस प्रश्न को इतना महत्त्वपूर्ण बना दिया है कि 'कुछ सोच-समझकर ही नेताओं की दृष्टि इधर नहीं जाती'—यह कह देने से न तो सन्तोष ही होगा, न काम चलता ही दिखाई देता है, जहाँ देखो—हाव ताका—अपनी डफली अपनी राग!

एक लालाजी—६ बजे उठे, दौड़ भागकर रोटी खाई, दूकान पर जा बैठे। कब कोई चिड़िया फँसे, बस इसी उधेड़-बुन में रात के १०—११ बजे दूकान बन्द की, घर आये और सो गये।

एक बाबूजी—८ बजे उठे हजामत बनाई जूतों पर पालिश की, जैसे तैसे नहाये तो नहाये, नहीं तो रोटी खाई, दफ्तर पहुँच गये। शाम के ६ बजे तक घर पहुँच ८-९ बजे तक हाथ मुँह धोकर भोजन किया और झपकियाँ आने लगीं, लेट रहे।

एक मजदूर सुबह से शाम तक या रात तक काम किया, हुक्का पिया और सो रहा।

एक विद्यार्थी ने प्रातः ७ बजे से रटाई शुरू की फिर हजामत बनाई बूट पर पालिश की बाल सवाँरे पैण्ट कोट चढ़ाये, कॉलेज पहुँच गया। छुट्टी मिली, खेल में गया, फिर मास्टर से पढ़ा और सो रहा।

स्त्रियों की दशा तो इससे भी अधिक सोचनीय है। अब किसे फुर्सत है कि देश धर्म जाति और परोपकार के पचड़े में समय नष्ट करे। चलते फिरते कुछ समय मिला, तो मनोरञ्जन भी आवश्यक है। इधर जो पढ़ाई की सीमा पार कर चुके हैं उन्हें नौकरी की चिन्ता है जिनकी रोजी चल रही है, उन्हें अधिकाधिक धनी होने की इच्छा है। जवानी आई भी नहीं कि सिर पर बीबी बच्चों का बोझ—

'छोटी सी जिन्दगी में करें क्या न क्या करें,
फिक्रे मुआश सिर्फ या जिक्रे खुदा करें?'

संसार में असन्तोष, अशान्ति, और ईर्ष्या की आग धू धू करके जल रही है, मनुष्यों के हृदय, मस्तिष्क, धन और धर्म उसमें स्वाहा हो रहे हैं। आखिर किसी ने सोचा है, यह सब क्यों है? जहाँ के जन समाज की ऐसी अवस्था हो, वहाँ साहित्य, धर्म राष्ट्रीयता, सेवा तथा त्याग की चर्चा 'बिन अवसर की बात' के अतिरिक्त क्या हो सकती है। अछूतोद्धार, देश भक्ति, समाज-सुधार के आन्दोलन वहाँ इज्जत रखने या शौक पूरा करने के सिवाय कुछ नहीं।

बात असल में यह है कि गरीब भारतीयों को यही नहीं मालूम है, कि वास्तविक आदमी अथवा मनुष्यता वस्तु क्या है? जब तक किसी मनुष्य में मनुष्य का हृदय नहीं है तब तक न तो वह उचित अनुचित बात को सोचने की शक्ति रखता है न किसी महापुरुष का अनुसरण करने का साहस। अन्धानुसरण करने वालों की बात यहाँ नहीं कही जाती क्योंकि उनका वेग क्षणिक होता है, और इसीलिये अस्थायी भी। अब, सबसे पहले आवश्यक हो जाता है, कि काम के आदमी तैयार किये जावें। आज हमें—महात्मा गाँधी प० जवाहरलाल नेहरू आदि उँगलियों पर गिन लिये जाने वाले दो चार नेताओं को छोड़—ऐसे मनुष्य दिखाई ही नहीं देते, जो इनके बाद भी बूढ़े भारतवर्ष की लकड़ी बन सकें। हमें चाहिये कि मनुष्य बनें और मनुष्य बनाकर पराधीनता के साथ परावलम्बन की बेड़ियाँ काटने में भी समर्थ हों।

वेश्या-वृत्ति और पूँजीवादी सभ्यता

लेखक—श्रीयुत परमानन्द

सभ्य जनता की आँखों मे वेश्यावृत्ति से बढ़कर निकृष्ट तथा पतित और काम नहीं है। 'यह घोर पापाचार है'—वे सोचते हैं। अगर किसी 'बाई' का नाम ले लीजिये उनके सामने, तो वे नाक भौं सिकोड़ने लगेंगे। वे उनका नाम सुनना भी गवारा नहीं कर सकते। वास्तव में है भी यह मानव सभ्यता की सबसे बड़ी कालिमा।

आज बहुत-से धर्मात्मा इस समस्या को 'कलि' का माहात्म्य कह कर सुलझा देते हैं, मानों वेश्याएँ पहले जमाने में थीं ही नहीं। वेश्यावृत्ति, वर्तमान युग की वस्तु निस्सन्देह नहीं है। यह बहुत पुराने समय से चली आ रही है। संस्कृत तथा लैटिन के बड़े पुराने पुराने ग्रन्थों मे इस शब्द का प्रयोग हुआ है। उर्वशी और मेनका की अति प्राचीन कथाएँ आज भी प्रचलित हैं अतएव यह कहना, कि यह 'कलि' का माहात्म्य या पाश्चात्य-सभ्यता का प्रभाव है, लचर दलील है।

समय समय पर इसके सम्बन्ध में कई लेख निकल चुके हैं—कुछ पक्ष में और कुछ विपक्ष में, लेकिन उनमें से बहुत कम ऐसे हैं, जिन्होंने इसपर वैज्ञानिक दृष्टि डालने की कोशिश की हो। इस प्रथा के समर्थकों का बात तो पूछिये मत। अभी उस रोज, एक धनी सज्जन से बातें होने लगीं। वे वेश्यावृत्ति के कट्टर पक्षपाती थे। उनकी दलीलें विचित्र थीं। वे कहने लगे—'जिस प्रकार एक शहर या मकान को साफ सुथरा रखने के लिये एक नाली की आवश्यकता होती है और उस नाली के न होने से गन्दगी इकट्ठी होकर सारे स्थान को दुर्गन्धमय बना देती है, उसी प्रकार समाज को यदि हमें पवित्र और स्वच्छ रखना है, तो हमें वेश्या प्रथा को जारी रखना होगा, वरना—उन्होंने भय प्रदर्शन करते हुए कहा—समाज के गुण्डों और लुच्चों को रोक रखना मुश्किल हो जायगा और फलतः प्रत्येक बहू बेटियों का सतीत्व खतरे में रहेगा। वैसी अवस्था में आश्चर्य नहीं कि हम लोगों की इस Morality की दीवार टूट जाय।'

इस कायरता पूर्ण दलील पर सिवा हँसने के कोई और क्या कर सकता था। उनकी दलील मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आई।

'चूँकि समाज में बहुतेरे चोर और डाकू रहा करते हैं'—मैंने उत्तर में कहा—'इसलिये अब आप जैसे धनी मानी व्यक्तियों को चाहिये कि उन चोर डाकुओं से अपनी सम्पत्ति लुटवाने के लिए तैयार रहें अन्यथा समाज के प्रत्येक मनुष्य के लिए अपने जान माल की रक्षा करना अतीव कठिन हो जायगा और समाज में बड़ी गड़बड़ी फैलेगी। जिस प्रकार आप लुच्चों के डर से और अपनी बहू बेटियों के सतीत्व रक्षा के ख्याल से पराई स्त्रियों के सतीत्व लुटवाने, या यों कहिए कि वेश्यावृत्ति के कायम रखने के लिए तैयार हैं, उसी प्रकार आप को चोर डाकुओं के डर से तथा आम जनता के जान-माल की रक्षा के ख्याल से अपना धन लुटाने के लिए तैयार रहना चाहिए।'—वे फिर कुछ न बोले।

इस तरह व्यर्थ की बातें लोग बहुधा किया करते हैं, जिसपर ध्यान देना वस्तुतः समय को व्यर्थ नष्ट करना है। हमें क्या अधिकार है कि अपनी क्रूर और पतित लिप्साओं को शान्त करने के लिये दूसरों के चरित्र और आत्म सम्मान का बलिदान करें?

क्या उनमें—वेश्याओं में—आत्म सम्मान नहीं होता? क्या वे मानवात्मा नहीं है? क्या वे रबर की चलती फिरती मूर्त्तियाँ हैं कि जिसकी इच्छा हो वह, जिस तरह चाहे उसी तरह उनके साथ व्यवहार करे? क्या उनके दिल नहीं है?

अगर ये प्रश्न मैं उन सभ्यों से पूछूँ, जो इस वेश्या प्रथा को समाज तथा राष्ट्र के लिए घातक समझते हैं, तो उनका उत्तर नकारात्मक होगा। वे समझते हैं इन वेश्याओं के न तो दिल होता है और न उनमे आत्म सम्मान। वे सर्वथा भ्रष्ट, बेशर्म और अधम होती हैं। भोले भाले रईसों को अपने बनावटी प्रेम जाल में फँसाकर उनके एक एक पैसे को चूस लेना और उन्हें दर दर का भिखारी बना देना—यही उनका काम है।

कहने को तो अनेक अनेक विशेषणों से हम उन्हे बदनाम करते हैं, परन्तु क्या कभी इस विषय पर सोचने का प्रयत्न किया है? क्या यह जानने की कोशिश की है, कि वे इस निर्लज्ज पेशे को क्यों अख्तियार करती हैं। आखिर वे भी तो मानवात्मा ही हैं। उन्हे भी तो हमी लोगों के समान शरीर है और सोचने की शक्ति है। वे भी कला इत्यादि (संगीत, नृत्य) में उतनी ही प्रवीण हो सकती हैं और होती हैं, जितना कि एक कुलीन मनुष्य हो सकता है। फिर क्यों वे इस असभ्य पेशे को अख्तियार करती हैं? क्या मनुष्य स्वभाव इतना पतित हो गया कि बिना किसी मजबूरी के वह ऐसे अधम्य कार्य करने को तैयार हो जायगा? मैं इसमें विश्वास नहीं करता। मनुष्य तो क्या, सृष्टि के प्रत्येक जन्तु में स्वभाव ही से स्वतंत्रता और आत्म सम्मान रहता है। प्रकृति ने बिना किसी पक्षपात के इन दोनों अमूल्य पदार्थों को प्राणी-मात्र में बिखेर दिया है। यह मनुष्य स्वभाव का एक खास अङ्ग है। कोई भी किसी का अनुचित दबाव या व्यवहार बर्दाश्त करने को तैयार नहीं होता, जब तक किसी प्रकार की असहायावस्था लाचारी न हो। वेश्याओं की भी ठीक यही हालत है, वरना कौन ऐसी होगी, जो योग्य रमणी न बनकर बाजार में बैठना पसन्द करेगी, जहाँ उसे प्रतिष्ठा, सतीत्व तथा आचार का खून करना होता है। फिर वह कौन-सा दबाव है, जो हम लोगों की बहुत-सी बहनों को उस गड्ढे में ढकेल देता है?—

सामाजिक-कुरीतियाँ

सुधारवादियों का मत है कि 'सामाजिक कुरीतियाँ' ही इन व्यभिचारों की जड़ और कारण हैं। आज भारतवर्ष में हजारों बाल विधवाएँ सामाजिक रूढ़ियों की चोट से बेचैन होकर इस पेशे को कबूल कर रही हैं। पुरुषों की स्वार्थान्धता चरम सीमा तक पहुँची हुई है। मनुष्य खुद तो न जाने कितनी शादियाँ कर सकता है और करता है परन्तु उन बाल विधवाओं को, जिन्होंने अपने पति की सूरत तक नहीं देखी है, दाम्पत्य सुख से वञ्चित रखता है। क्या यह सर्वथा प्रकृति के नियमों के विरुद्ध नहीं है? एक नौजवान यदि वेश्यागामी भी हो जाता है, तो उस समाज के मनुष्य मक्कारी के साथ चुप्पी साध लेते हैं। किन्तु, वही अपराध किसी बहन से हो जाय, तो उसके करम फूट जाते हैं। कहीं रहने का ठिकाना भी नहीं रहता। एक तो सामाजिक रूढ़ि का प्रहार और दूसरा स्वतन्त्रता की कमी के कारण हुनर और साहस का अभाव। ऐसी स्थिति में बहुत सी बहनें वेश्याएँ बन जाती हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? उन्हें और भी उत्साह तब मिलता है, जब बड़े बड़े धनी मानी, प्रतिष्ठित और विद्वान् उनकी मदद करने लग जाते हैं।

सुधारवादियों का यह मत सत्य है अवश्य, किन्तु आंशिक। इसमें सन्देह नहीं, कि बहुत सी बहनें समाज के अत्याचारों से विचलित होकर इस पेशे को कबूल कर लेती हैं, परन्तु इसका मुख्य कारण यह नहीं है। एक प्रतिष्ठित आर्यसमाजी से मैंने इस घृणित पेशे की उत्पत्ति का कारण और इसके निवारण का उपाय पूछा। उन्होंने भी यही कारण दिखाये। आपने यह भी कहा कि ऐसे व्यभिचारों को रोकने के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक युवक और युवती को विवाह स्वतन्त्रता मिले। पिता माता का कर्तव्य यह होना चाहिये कि अपने पुत्र पुत्रियों को उनके जीवन के साथी ढूँढ़ने के कार्य में केवल सहयोग और अच्छी सलाह दें। बस, इससे आगे न बढ़ें। आज कल शादी करने वालों की इच्छा के विरुद्ध विवाह कर दिया जाता है। फल यह होता है कि उन्हें मजबूरन आपस मे प्रेम करना पड़ता है, किन्तु 'प्रेम' कहीं किसी पर जबरदस्ती लादा जाता है? उसका सम्बन्ध तो दिल से है। जिससे प्रेम हो, उससे शादी करना (To marry whom one loves) स्वाभाविक आनन्ददायक तथा उपयुक्त हो सकता है किन्तु जिससे शादी हुई हो, उसे प्यार करना (To love whom one Marries) बनावटी और दुखदाई हो सकता है। ऐसा बनावटी प्रेम आगे चलकर विरोध का रूप धारण कर सकता है। सम्भव है, ऐसे कारणों से ऊब कर भी युवक वेश्यागामी तथा युवतियाँ वेश्यायें हो जाया करती हों, अतएव विधवाश्रम, अनाथालय, विधवा विवाह, विवाह सुधार आन्दोलन ही—उन्होंने फरमाया—ऐसे साधन हैं, जो इस घृणित व्यवहार का मूलोच्छेद कर दें।

बातें बिलकुल ठीक हैं, किन्तु वेश्या प्रथा का यही मुख्य कारण नहीं हो सकता। इसकी जड़ कहीं दूसरी जगह है। यदि यही मुख्य कारण होता, तो उस जाति अथवा राष्ट्र में, जहाँ ऐसी कुरीतियाँ नहीं हैं, वहाँ यह जघन्य पेशा होता ही नहीं। यूरोपियन लोगों में न विधवा विवाह पर रुकावट है और न प्रेम विवाह पर। इन्हें हर प्रकार की स्वतन्त्रता है, जैसा चाहें कर सकते हैं। भारतवर्ष की तरह वे रोटी के गुलाम भी नहीं हैं किन्तु तब भी वहाँ वेश्याओं की काफी संख्या है। फिर वह कौन ऐसा सार्वभौम कारण है—इस वेश्यावृत्ति का?

मुझे इन पंक्तियों के लिखने की आवश्यकता कदापि न होती, यदि मेरे विचार भी उसी तरह के होते। वेश्यावृत्ति पूँजीवादी सभ्यता का एक खास अङ्ग है। जब तक पूँजीवादी सभ्यता संसार में है, तब तक वेश्यावृत्ति भी है। नहीं नहीं, चोरी, डकैती, उठाईगीरी इत्यादि कथित पाप भी तब तक जिन्दा रहेंगे, जब तक समाज का वर्तमान पूँजीवादी संगठन कायम है।

हरिजनों के अधिकार

लेखक—श्रीयुत नरेन्द्रदेव शर्मा, साहित्य रत्न'

बबजात ज्योति की नूतन ज्योत्स्ना में भी इस आध्यात्मिक विचार विहीन ईश्वरीय मर्यादाओं का उल्लंघन कर, सर्व हितचिंतक बुद्धि खोकर स्वार्थपूर्वक शास्त्र विवेचना मात्र से ही धर्महानि की आशंका करने लगते हैं, उपरोक्त दोषों से रहित होकर यदि शास्त्र विचार किया जाय, तो पता चलता कि धम की सृष्टि ही इसी लिये हुई कि अद् जगम जगत् में शांति का निवास हो, सभी प्राणियों के जन्म सिद्ध अधिकार निष्पक्षय रूप से सुरक्षित रहें। ऋषियों ने प्राचीन काल में जिस धर्म-तत्व की धारणा की थी, वह निस्सन्देह मनुष्यों का समान सुख शांति और पवित्र प्रेम का द्योतक था, वह दीन दुखियों के कटकाकाण मार्ग को माजन करने के लिये ही नहीं प्रत्युत बलवानों और आततायियों को भी शासन में रखता था, उसकी रचना बक्षपाती के सिद्धान्त को नष्ट कर समान संयम द्वारा ऐहिक तथा पारलौकिक उन्नति के लिये ही हुई थी। धम के घर पाण्डेय सत्युपारी की क रिआयत नहीं थी। ब्राह्मण वणस्थ रावण भी धम के तीक्ष्ण धार क आधार पर राक्षस कहलाया था, धम के ही पवित्र अवलम्बन ने विश्वामित्र वशिष्ठ को ऊपर उठाया था। इस ढग से प्रत्येक मनुष्य को अभ्युदय के लिये पूर्ण अवकाश प्राप्त था, तभी तो दीन हीन भीलिनी भी राम को प्रम पाशों मे बांधकर सद्गति को प्राप्त कर सकी था अहल्या का ार भ तभी हुआ था। ऐसी घटनायें अँगुलियों पर गणना करने योग्य ही नहीं बल्कि धम का लक्ष्य ही मनुष्य मात्र का आत्म उद्धार अन्तत मोक्ष वा अपवग प्राप्ति था।

सनातन धर्म में सबसे महत्वपूर्ण बात यही रही हे कि वह अन्य धर्मों के साथ भी उदारता का परिचय देता रहा है वह ईशोपासक होता हुआ भी साम्यवाद का आदर करता रहा है। उसने अपने प्रतिपक्षी बुद्ध को भी अवतार कह कर ही प्रेम प्रदर्शन किया है चार्वाक आदि मत भी उसके बगलगीर ही रहे हैं, जहाँ अन्य मतावलम्बियों ने विपक्षियों को तीक्ष्ण असिधार क घाट उतारा है, वहाँ सनातन धर्म ने कर पसार कर उर से उर मिलाया है, नाच निषाद के साथ राम की उदारता के दृष्टान्त अन्य धर्मों में कम ही मिलते हैं राक्षस विभीषण और राम की मित्रता को कौन नहीं जानता, मनुष्यों का ही क्यों, सनातन धम तो पशु पक्षियों को भी श्रौतामृत पान करा सद्गति प्राप्त कराता रहा है। सकड़ों कथाओं के उल्लेख शास्त्रों मे मौजूद हैं जिनमें कीक सर्पादि अधम कोटि के जन्तु के सद्गति प्राप्त कर चुकने का भी वर्णन आता है।

परन्तु 'कालस्य कुटिलागति' इस युक्ति के अनुसार आज वह दशा नहीं रही, आज सनातन धर्म एक सङ्कुचित सीमा के अन्दर ही सुरक्षित है जो कभी विश्वव्यापी था। आज वह पण्डे पुजारी और चन्द पण्डितों के ही स्वार्थ का साधन है। सैकड़ों बेकसी से सिसक रहे हरिजनों पर मनमाने अत्याचार करने में आज उसे तनिक भी सङ्कोच नहीं है।

आज सनातन धम कच्चे तागे से भी अधिक नाजुक हो गया है पशु तो दूर करुण कृपा वञ्चित हरिजनों का स्पर्श होते ही उसके शत खण्ड हो जाते हैं। अपने पालन पोषण कर्ता प्रभु के आगे दुःखों की ग्रन्थि खोलने का अधिकार आज उनको नहीं है उनको कभी वेद पढने का अधिकार नहीं है वह कभी देवार्चन नहीं कर सकते। ऐसे धर्म के नाम पर चिल्लाने वाले शास्त्र विरुद्ध आचरण करते हुए भी शास्त्रों की दुहाई देने वाले आज बहुत है।

ऐसे लोग यदि शास्त्रों की अवहेलना भी करें तो इसमे क्या आश्चर्य है। तथापि हम सब शास्त्र सम्मत हरिजनों के सर्वाधिकार सिद्ध करते हैं बुद्धिमान् जन निर्णय करें।

प्रथम शिक्षा ही मनुष्यों की सर्वोन्नति का साधन है जैसे प्रभु की रची हुई प्रत्येक वस्तु (सूर्यादि प्रकाश) का अधिकार ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज पर्यन्त को समान रूप से है ऐसे ही वेद भी ईश्वरीय ज्ञान है इसका अधिकार भी मनुष्य मात्र को है, इसके लिए यजुर्वेद २६।२ का प्रमाण है—

'मैं सब मनुष्यों के लिये इस कल्याणकारी वेदों की वाणी का उपदेश करता हूं, वैसे ही तुम भी किया करो। हमने ब्राह्मण वैश्य शूद्र भृत्य, स्त्री, वा अति शूद्र के लिये वेदों का उपदेश किया है।'

इसी के सम्बन्ध में पुराण देखिए क्या कहता है—

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्रायेऽशचयोऽमला।
तेषां मन्त्रा' प्रदेयाबै नतु सङ्कीर्ण धर्मिणाम् ॥

भ० पु० उ० प० ४ अ० १३ श्लो० ६२

अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जो शुद्ध भाव तथा निर्मल हों, तो मन्त्रों का उपदेश देना चाहिये और सङ्कीर्ण धर्म वालों को नहीं देना चाहिये।

श्लोक में शुद्धता का नियम सब पर समान लागू है शुद्ध भाव से सर्व साधारण शिक्षा उपदेश प्राप्त कर सकते हैं। सक ण हृदय वाले शूद्र हों अथवा ब्राह्मण दोनों के लिये समान रूप से निषेध हे। न जाने हमारे कट्टरपन्थी सनातनी भाई शताब्दियों शिथिल हिन्दू जाति को किस गर्त में डुबोना चाहते हैं। क्या अशेष स्वाहा करके ही सन्तोष होगा ? क्या अब भी कुटिल कलाओं के पाश पसारे ही रहोगे ? याद रखो अब समय का सुन्दर समीरण तुम्हारा सभी पोल प्रकाश कर देगा, अब शास्त्र के नामपर अत्याचार नहीं कर सकते, अब शास्त्र के नितान्त ठेकेदार आप नहीं बन सकते आँखें खोलो और देखो शास्त्र क्या कहता है।

शूद्र-स्त्री का मन्त्र अधिकार

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणां स्त्री जनेश्वर।
यथा क्रमेण पूज्याना गन्ध पुष्प जलाक्षतै ॥
कुङ्कमालक्त कैर्दीपैर्मोषन्न बटकै शुभै।
कुशुमैर्वत्सक चापि मन्त्रेणानन पाडव ॥

'ओं माता रुद्राणा दुहिता वसूना स्वसादित्या नाम मृतस्यनाभि। प्रनुवोच चिकितुषे जन य मागामना गामदितिं वधिष्ठ नमो नम स्वाहा। इत्थ सम्पूज्य गा पुष्टा पश्चात्ता च क्षमा पयेत् भ० पु० (सि० ख) श्लो० ८२ से ८५ तक

अर्थात्—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र का क्रमश गन्ध पुष्पादि से पूजा करके 'ओं माता रुद्राणाम् इस वेद मन्त्र से गोदान करे।

व्याध को वेद पठन का अधिकार

वाराह पुराण (अ० ३८। श्लो० ३२ से ३५ तक) दुर्वासाऋषि व्याध को वेद पढ़ने का अधिकार देते हैं। कथा का वर्णन इस प्रकार है।

एक व्याध ने शुद्ध मन से गुरु का स्मरण करते हुए बड़ा तप किया, उसकी तपश्चर्या से प्रसन्न हो दुर्वासाऋषि ने उसे साङ्गसरहस्य पद क्रम वेद का प्रवचन किया और कहा कि अब तुम सत्य तप नाम के ऋषि कहलाओगे। कट्टर पन्थियों के आतङ्क से भयभीत बेचारे व्याध को ऋषि की बात का तनिक भी विश्वास नहीं हुआ, घबरा कर ऋषि से निवेदन किया—भगवन् ! व्याध होकर मैं कैसे वेद पढ़ूँगा। ऋषि ने सरलता से कहा—हे श्रेष्ठ व्याध ! उपवास करने से अब तुम्हारा पुराना शरीर चला गया, अब तुम पवित्र हो मैं सच कहता हू कि अब तुम्हारा पुराना ज्ञान नष्ट होकर नवीन उत्पन्न हो गया अब तुम्हे सम्यक वेद शास्त्रों का बोध होगा। धन्य है ऋषि का उदार हृदय कोई आधुनिक सनातनी सज्जन होते तो व्याध बेचारे की जो गति होती उसका देश कालज्ञ स्वय अनुमान कर लें अब तो सनातनी सज्जन शायद कहेंगे कि शूद्र वेद पढेंगे तो नष्ट हो जायँगे। कहेंगे भी क्यों ! ऋषि दुर्वासा का अपमान कैसे करेंगे ?

आज जब ईसाई मुसलमान आदि भी वेद शास्त्रों का विवेचन कर रहे हैं और नष्ट होने के बजाय दिनदूना समृद्ध पर है तो फिर न जाने हरिजनों पर ही इनके कटु कटाक्ष क्यों पड़ते हैं।

मनु महाराज ने भी विद्या के अनधिकारी बताते समय शूद्र को अनधिकारी नहीं ठहराया। यथा—

धार्मसूत्रो विषादीच श्रम नैष्कृताऽन्लस

असूयकाय मादृ स्तथा इत्यादि दोषों से युक्त ब्राह्मण हो अथवा शूद्र विद्या दान नहीं करना चाहिए। मनु० अ० २ श्लो० ११४

शूद्रों की उत्पत्ति ब्राह्मणादि वर्णों से

जिन हरिजन भाइयों से हमारे कट्टरपन्थी ब्राह्मण इतनी घृणा करते हैं, शास्त्र विवेचना से पता चलता है कि इनकी उत्पत्ति का कारण भी यही हैं।

यथा—योऽनाधीत्य द्विजा वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वय ॥ मनु०अ०२श्लो०१६८

अर्थात् जो ब्राह्मण वेद को न पढकर वृथा कार्य करता है, वह शीघ्र ही कुल सहित शूद्र हो जाता है। (इससे स्पष्ट सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों के ही वेदादि न पढ़ने से हरिजनों की उत्पत्ति हुई है) (क्रमश)

भारतीय-शिक्षा का माध्यम

लेखक—श्रीयुत प्रवीणचन्द

मैं कई बार कह चुका हूँ कि मनुष्य के स्वाभाविक विकास को उत्तेजित करने वाला साधन शिक्षा है। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न औजारों और मशीनों की सहायता से अच्छे-अच्छे और सुन्दर-सुन्दर पदार्थ हमको मिलते हैं, उसी तरह हम शिक्षा के द्वारा विभिन्न बलवती और सुषमामयी भावनाओं को जो सभ्यता की सौन्दर्य कहाती हैं, न केवल प्राप्त करते हैं, वरन् अपने जीवन का एक आवश्यक अंग बनाते हैं।

चाहे भौतिक उन्नति हो, चाहे आत्मिक बोध, इनकी प्राप्ति शिक्षा केवल शिक्षा के द्वारा सम्भव है। चाहे वह पुस्तकों द्वारा दी जाय और चाहे कार्यों के द्वारा और चाहे अनुभवों के द्वारा। जब शिक्षा की इतनी सर्वाङ्गीय आवश्यकता है, तो उसको किस तरह प्राप्त की जाय, यह प्रश्न सुतरां उचित है।

शिक्षा भाषा के द्वारा ही जाती है, क्योंकि भाषा ही विचार प्रकाश का मुख्यतम साधन है। संकेत आदि और जो साधन हैं, उनमें अपूर्णता है, इतना ही नहीं, उनके समझने में समय की अधिक आवश्यकता है।

मनुष्य-समाज दूर-दूर बसने के कारण भिन्न भिन्न प्रकार के शब्दों से अपने भाव प्रकट करता है, यही इतनी भाषाओं की उत्पत्ति का मूल्य है। मनुष्य में एक स्वाभाविक प्रवृत्ति यह है कि वह अपने विचार दूसरों से जाहिर करके अपने व्यक्तित्व की छाप जमाता है। वह परस्पर एक भाषा भाषी होने ही से सम्भव है, पर चूँकि वह भिन्न भिन्न स्थानों में रहता है, इसलिये लाचार है। एक भाषा नहीं बोल सकता।

शिक्षा का माध्यम वही भाषा हो सकता है और होनी भी चाहिये, जिसको वह बोलता है और जिसके समझने में उसे श्रम नहीं होता, कठिनता का बोध नहीं होता। यह भाषा मातृभाषा ही हो सकती है।

ज्ञान किसी देश विशेष या जाति विशेष की सम्पत्ति नहीं है, वह तो कहीं भी और किसी को भी प्राप्त हो सकता है। चाहिये लगन और अध्यवसायशीलता। यही कारण है कि सात समन्दर पार रहने वाले लोग अपने दिमाग से, ज्ञान से सभ्यता के आदि गुरुओं को बुरी तरह से नाच नचा रहे हैं। क्या उनका यह ज्ञान गौरव हेय है? नहीं, तो फिर यह मातृभाषा में कैसे प्राप्त हो सकता है, हर एक को कैसे मिल सकता है, केवल उनकी भाषा जानने से।

इससे तो यह सिद्धान्त निकला कि जिस देश का ज्ञान खूब बढ़ा हो, उसका साहित्य पूर्ण हो, उस देश की भाषा का प्रचार अपने में करके अपनी उन्नति करनी चाहिये। जिस समय भारतीय शिक्षा पद्धति और उसके माध्यम के विचार का अवसर आता है और आया है, यही दलील काम करती गई है, पर दृष्टि कोण में भेद अवश्य है।

किसी स्थान में सौ व्यक्ति रहते हैं, उनको कपड़ा पहनना जरूरी है, अच्छा कपड़ा पहनना चाहते हैं, खुद कपड़े बुनना भूल गये हैं, बुनते भी हैं तो खराब ऐसी अवस्था में हम सब अपने दिल से पूछें कि कुछ चुने हुए लोग—केवल वही लोग—जो योग्य हैं और इस कमी को पूरी करना दिलोजान से चाहते हैं, कहीं से भी उस कला का ज्ञान प्राप्त कर लें, आकर कपड़ा बुनें सबको कपड़ा पहना दें यह अच्छा होगा या सबके सब लोग उसी तरफ पिल पड़ें, अपना और सब काम छोड़ बैठें कुछ सफल हों और बहुत से असफल होकर भूखे प्यासे रोया करें।

भारत में सभी तरह के व्यक्ति हैं, कोई जर्मनी पढ़े कोई अंग्रेजी कोई फ्रेंच, कोई फारसी और कोई अरबी, सब भाषाओं को इस तरह पढ़कर वहाँ के ग्रंथ रत्नों का अपनी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा में अनुवादित करें या मौलिक रूप में अपने तत्सम्बन्धी विचारों को प्रकट करें, तुलनात्मक दृष्टि से किसी तत्व का विचार करें तो अवश्य उन्नति हो सकती है। यह नहीं कि ऐरे गैरे सभी अंगरेजी पढ़ रहे हैं, जानते नहीं, भाषा का महत्व क्या है। अपने आपको भुला दिया, जो कुछ है, बाहर है, घर कुछ भी नहीं। सब लोग न तो अंगरेजी के विद्वान ही होते हैं, न अपनी भाषा की ओर ही उनका खयाल होता है। ऐसी अवस्था में जो अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है, वह बड़ी भयानक होती है और राष्ट्रीय जीवन का तो उससे एक प्रकार का अन्त ही हो जाता है।

हमारी समझ में यह बात नहीं आती कि पूरे बीस बरस तक विदेशी भाषा पढ़ना और फिर किसी तत्व को समझने की योग्यता प्राप्त करना कौन जरूरी है? भारतीय चालीस पचास की उम्र तक हद से-हद पहुँचते हैं, बीस वर्ष में एम० ए० पास हुए, फिर भी अंगरेजी पर अधिकार नहीं, फिर विचार करने का अवसर नहीं, क्योंकि खाने पहनने की चिन्ता सिर पर सवार, घर की गरीबी, आधी उम्र का पढ़ा-लिखा व्यवहारिकता शून्य अनुभव, केवल पढ़े विषय को पढ़ाने के अलावा—वह भी उसी ढंग से—और कुछ नहीं कर सकते तब मरने के सिवा और चारा ही क्या रह जाता है इसके विपरीत अपनी ही मातृ-भाषा में पाँच, सात वर्ष किसी विषय का अध्ययन होता तो योग्यता तो उस विषय में उतनी ही होती, जो एक एम० ए० को २० वर्ष पढ़ने पर प्राप्त होती, इतना ही नहीं, इससे भी अधिक काम करने करने की युवा शक्ति व्यवहारिक प्रयोगों में लगती, तो बड़ा लाभ होता, ज्ञानोन्नति के साथ शरीर रक्षा भी होती। बड़ा मजा रहता—न रोनी सूरत, न कमजोर शरीर, सब खुशहाल और मस्त नजर आते। देश के लिये बढ़िया-से-बढ़िया ज्ञान कुछ चुने लोग इकट्ठा कर ही रहे हैं सबको उस ओर जाने की—अपनी शक्ति में बाहर काम करने की—जरूरत ही कौन है?

अपनी भाषा के प्रयोग में एक खूबी और है, आपस में अपनापन बना रहता है। हम एम० ए० पास हुए, डॉक्टर हुए, फौरन समझते हैं, हम हवाई जहाज पर और हमारे भाई जमीन पर रेंग-रेंग कर चलने वाले! कहाँ हम और कहाँ वह, यह भी कोई मुकाबिला है?

अकसर यह शिकायत की जाती है कि जब तक विदेशी माध्यम न हो, अच्छे ग्रन्थ पढ़ने को नहीं मिल सकते। इसको दूर करने के लिये हम शिकायत करने वालों ही से पूछते हैं। हँसी की बात तो यह है कि शिकायत करने वाले भारतीय तत्वों से पले हुए, विदेशी संस्कारों में संस्कृत हमारे भाई ही हैं।

१—क्या तुमने कभी यह सोचा भी है कि हमने जो पढ़ा-लिखा है उसको फैलायें? उसको अपनी भाषा में लिखें?

२—क्या तुमने, जो थोड़े बहुत ऐसा करने वाले हैं, उनका उत्साह बढ़ाया है? यदि नहीं, तो फिर यह शिकायत कैसे हट सकती है? जब सुना तब यही कहते सुना कि भारत में बंगाली है गुजराती है, मराठी है, उर्दू है, हिन्दी है, किस-किस में अनुवाद किया जाय, क्या क्या किया जाय? अंग्रेजी भी अच्छी है, क्यों न उसको सर्वमान्य कर दिया जाय! कहीं और जोर पकड़ा तो कह डाला कि इससे साम्प्रदायिक विष वमन हो जायगा, दंगा हो जायगा, झगड़ा हो जायगा, और न जाने क्या-क्या?

इस समझ के लिये हम क्या कहें! बात तो यह है कि यह सब केवल बहाने हैं। अपनी अकर्मण्यता को छिपाना है। भारत की भिन्न भिन्न भाषाओं की समस्या तो कुछ भी नहीं है। बड़ी आसानी से इस हल किया जा सकता है। हिन्दी, उर्दू की बोल चाल में कोई विशेष भेद नहीं है। भारत में ये दोनो भाषाएँ मिलकर सबसे अधिक प्रान्तों में बोली जाती हैं। और भाषाएँ देश के छोटे-छोटे हिस्सों में बोली जाती हैं। इन छोटे प्रान्त के निवासियों को परस्पर विचार-विनिमय के लिये किसी विदेशी भाषा को ही अपनाना है तो फिर भारत की सब से अधिक बोली जानेवाली भाषा हिन्दी उर्दू को ही क्यों न अपना लें। क्या घर की शक्कर भी किरकिरी है और बाहर का गुड़ शक्कर से भी मीठा? फिर गुजराती, बंगला आदि भाषाओं के जानने वाले तो अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी उर्दू को कम समय में, कम मेहनत में और कम खर्च में सीख सकते हैं।

रहा हिन्दी-उर्दू की लिपि का प्रश्न। वह तो योग्यता की दृष्टि से बड़ी आसानी से हल हो जाता है। हिन्दी की लिपि उर्दू की अपेक्षा कहीं विशिष्ट है। अधिक वैज्ञानिक है। यह तो संसार भर के विद्वानों की सम्मति है। हिन्दी-लिपि में यदि हिन्दी उर्दू दोनों ही लिखी जायँ, तो थोड़े ही वर्षों में दोनों भाषाएँ जो आज केवल लिपि भेद के कारण इतनी दूर दिखाई दे रही हैं, आपस में ऐसी घुल मिल जायँगी कि सब जगह उसका सम्मिलित रूप सबको आकर्षक और इसीलिये हृदयग्राही होगा।

(शेषांश १०वें पृष्ठ के नीचे)

हृदय की लहर

लेखक—श्रीयुत विश्वमोहनकुमारसिंह, एम. ए., बी-एल.

(गतांक से आगे)

कुछ लड़के बंसी से मछलियाँ फँसा रहे थे, कुछ केले के खम्भों की या मिट्टी के घैलों की किश्ती बना के ले कर मन बहला रहे थे। कुछ पानी में कंकड़ों को फेंक, खेल रहे थे। उसी समय दूर से आवाज आई—'पकड़ो, पकड़ो, बचाओ।' लड़के उत्सुकता से उस ओर देखने लगे। नदी के किनारे कुछ दूर पर लोगों की भीड़ थी। भीड़ बढ़ती आ रही थी और कह रही थी—'पकड़ो, पकड़ो।' अब लड़कों ने देखा, नदी के स्रोत में एक स्त्री बहती आ रही है। तब तक भीड़ भी निकट आ गई और अनोखे भी उन लोगों से आ मिला। दो-एक नाव भी पीछे-पीछे छोड़ी गई और प्राय: आध मील की दूरी पर स्त्री पकड़ी गई। भीड़ भी काफी इकट्ठा हो गई थी। स्त्री को बाहर लाने पर किसी ने नहीं पहिचाना, पर अनोखे का दिल धक् से हो गया। बहुत से उपाय किये गये कि वह स्त्री जीवित हो सके, पर वह पहले ही अन्त धाम पहुँच चुकी थी। सिपाही ने और लोगों के सामने ही उसके कपड़ों की जाँच की। कुछ भी न मिला, केवल एक कागज का पुरजा मिला। उस पर लिखा हुआ था—'प्यार भ्रम है, धोखा है।' सब का कौतूहल बहुत बढ़ गया। वे लोग सिपाही को घेर कर पूछने लगे, वह कौन थी, क्या थी, इत्यादि। सिपाही ने कहा—'यह एक खूनी है।' इसके कहते ही दर्शकगण कटकित हो गये, सब ने आँखें फाड़कर निहारना शुरू किया। उनके आनन से यह झलक रहा था, मानो कुछ उसे विश्वास करने को तैयार थे, कुछ नहीं। एक बालक खूनी का नाम सुनते ही अपने पिता की धोती का छोर पकड़ उसके बदन से सट गया। सिपाही कह रहा था—'इसे पाँच वर्ष की सजा मिल चुकी है।' उस समय एक युवती ने लम्बी साँस ली। 'दो वर्ष के बाद इसका माथा बिगड़ गया। वह पागलखाने भेज दी गई। वहाँ वह कभी रोती, कभी हँसती, और न जाने यह किसका नाम बराबर लिया करती। कुछ दिनों के बाद यह सँभलने लगी और ऐसा मालूम होने लगा, इसे कोई रोग न हो। इसे फिर जेलखाने लौटाने की बात हो रही थी। वह एक दिन बाहर कोई काम कर रही थी, उस समय वह देखने से कुछ वैसी नहीं मालूम होती थी। यकायक चिल्ला उठी और एक जोड़ी को जिसपर एक युवक-युवती बैठे थे, वह एक टक से देखने लगी। गाड़ी चली गई, जिसपर भी वह देखती ही रही। लोगों ने कितना ही इसका मन बदलना चाहा, पर कुछ कहीं न हुआ। फिर कई दिन तक एक दम ठीक रही। पन्द्रह बीस रोज हुआ न जाने यह कहाँ से कैसे भाग निकली। खोज शुरू हुई। यहाँ के थाने में रपोर्ट गई कि एक पगली कई दिनों से घूमती है और पुलिस की निगरानी में है। हम देखने के लिये आये तो मालूम हुआ वही है।'

एक ने कहा—मैंने कल इसे देखा था, वह मुस्कुरा रही थी और इसने मुझसे कुछ पूछा भी था, पर मैं कुछ समझ न सका, चुप हो गया।

दूसरे ने कहा—हाँ, इसने हमसे भी कुछ पूछा था, आज या कल। लेकिन उस समय वह रो रही थी।

तीसरा बोला—अभी नदी के किनारे खड़ी-खड़ी वह कुछ-कुछ गुन-गुना रही थी, फिर 'खून खून, उफ-उफ' करती हुई धड़ाम से नदी में कूद पड़ी।

चौथे ने कहा—ओह! ऐसी औरतों का क्या ठिकाना। कहीं किसी का खून करने तो नहीं आई थी?

पाँचवें ने कहा—हाँ भाई स्त्रियाँ या तो देवियाँ होती हैं या पिशाचनी। मनुष्य नहीं होतीं।

सिपाही उनमें से कुछ गवाहों को संग ले जल्दी जल्दी लाश के साथ थाने को प्रस्थान कर गया।

लोगों की भीड़ हटने लगी। सभी तरह तरह की बातें करते अपने-अपने घर जा रहे थे, पर अनोखे की नजरों से विश्व छिपता जा रहा था।

आत्म विसर्जन

मकान कुछ अंग्रेजी ढाँचे का था, बाग में चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था, केवल मकान के प्रवेश-द्वार पर एक बिजली की रोशनी जल रही थी, जिससे दरवाजों पर पड़े हुए फूलदार परदे साफ नजर आ रहे थे। सीढ़ियों पर एक कुत्ता सो रहा था। वह रह रहकर बिना सिर उठाये ही भूँक देता था। यकायक भीतर से धीमे-धीमे रोने की आवाज आई। कुछ क्षण के बाद किसी ने कहा—'रेणु, रेणु, क्या हुआ?' रेणु जाग पड़ी और अपने पति के वक्षस्थल में मुँह छिपाती हुई बोली—'स्वप्न देख रही थी।' अखिलेश ने उसके केशों पर हाथ फेरा और पीठ थपथपाते हुए कहा—क्या देख रही थी? देखो, अब तो सबेरा हो चला है।' रेणु ने मुँह उठाकर जंगले की ओर देखा, शुक्र तारा चमचमा रहा था। वह सँभल गई और कहने लगी—'मैंने देखा, एक सुन्दर युवक है, उसकी आँखों में तेज है, ललाट में महत्ता और होठों में मधुरिमा, वह प्रफुल्ल कमल की तरह खिलता आ रहा था। दूसरे ही क्षण देखा वह किसी चीज को बहुत ध्यान से देखने लगा। उसकी प्रकृति बदलने लगी। फिर देखा वह एक नदी पार करने लगा। नदी गहरी थी। जैसे-जैसे वह जाने लगा, मेरा हृदय धड़कने लगा। वह डूबे बिना न रह सकेगा। न जाने कैसे वह पार कर एक बाग में घुसने लगा, उसका सौन्दर्य जाता रहा और वह एक तेजहीन मनुष्य की तरह अभद्र दीखने लगा। ओह, उस बाग में सिवा काँटों के और कुछ न थे, उसके अंग-अंग में चुभने लगा वह रोता, सिसकता, व्याकुल होता जा रहा था। रह-रहकर मुझे मालूम होता, वह जाना हुआ आदमी है, और खूब जाना हुआ है, पर कौन कुछ कह नहीं सकती। मैं पुकार कर उसे मना करना चाहती थी, पर पुकार ही नहीं सकती थी। अन्त में देखा वह एक पेड़ के नीचे खड़ा है, पेड़ पर बहुत सुन्दर-सुन्दर फल लटक रहे हैं। उसने उन फलों का तोड़ने की बड़ी चेष्टा की, पर कुछ फल न हुआ। तब मैंने देखा वह कुरूप प्रतीत होता था, पर वह भूखा था। वह ललचाई आँखों से फलों को देखता और सिर झुका लेता। अन्त में उसके लिये कोई एक फल का उपहार लाया। उसने उसे हाथ में ले देखा, फिर थाल में ज्यों का त्यों रख दिया। उसके मुख से मालूम होता था, अब वह लगा, उन्हीं फलों को लगा। उपहार लाने वाला फल को वहीं छोड़ चलता बना। वह फल जमीन पर लुढ़क रहा था। वह भूख से व्याकुल हो उठा। उसने एक बार फिर उन फलों को देखा, जमीन पर पड़े हुए फल को भी देखा। उसने कलेजा थाम लिया, फिर अपने हृदय से एक रक्त वर्ण धागा निकाल अपने गले में डाला, और उसके दोनों छोरों को एक पेड़ के डाल में। होठों में मधुर मुस्कुराहट थी, आँखों में उदासी। मैं उस दृश्य को न देख सकी, रोने लगी। तब तुमने जगाया।'

अखिलेश ने खींच कर उसे अपने वक्षस्थल से लगा लिया और बोला—'ओ मेरी रेणु तुम क्या क्या देखती हो?' रेणु ने भी यों ही हँस दिया, पर किसी अनिष्ट की आशंका उसके हृदय में बनी रही।

अखिलेश अब डिपुटी मैजिस्ट्रेट हैं। उन्होंने सम्मान सहित एम॰ ए॰ पास कर यह पद प्राप्त किया है। उसी के बाद उनका विवाह रेणु से हो गया। अब वे आनन्द से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऊपर की घटना के हुए प्राय कई दिन बीत गये। उन लोगों को स्वप्न की बात प्राय याद ही न रही।

एक रोज अखिलेश ज्योंही कोर्ट में गया—एक सप्ताह के लिये सब डिविजन का इचार्ज वही था—दारोगा ने सूचना दी कि एक व्यक्ति आत्म हत्या करने की चेष्टा में पकड़ा गया है। वह करीब करीब बेहोश है। अखिलेश ने उसे डाक्टर की निगरानी में रखने और उसके तीसरे दिन कोर्ट में लाने की आज्ञा दी।

तीसरे दिन उचित समय पर वह मनुष्य फिर लाया गया। दारोगा ने कहा कि वह आदमी अपना नाम और पता बताने में इन्कार करता है, और उसके साथ साथ उसके अच्छे हो जाने की डाक्टर की रिपोर्ट भी दी। कोर्ट के आज्ञानुसार अभियुक्त कठघरे में उपस्थित किया गया। अखिलेश ने उसे देखा, उसने भी अखिलेश को देखा। अभियुक्त की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली, मानो उसका कभी अन्त ही न होगा। अखिलेश ने भी बड़ी कठिनता से अपने को सँभाला। उसने आज्ञा दी कि अभियुक्त टिफन के बाद लाया जाय। इसी बीच में अखिलेश अभियुक्त से मिला, और उसकी ओर से एक वकील ठीक कर

दिया, परन्तु ये सभी काम चुपचाप किये गये। टिफिन के बाद मुकदमा खुला। पेशकार ने नाम पूछा। उसने बताया—'अनोखे।' अन्यान्य प्रारम्भिक क्रियायें हो जाने के बाद अभियुक्त के वकील ने कहा—'यह पढ़ा-लिखा आदमी है, बड़े घर का है, और इसका यह पहला कसूर है, इसलिये इसे माफ किया जाय। कोर्ट ने बातें मान लीं, और अनोखे चेतावनी दे छोड़ दिया गया।

प्राय: पाँच बजे शाम को रोज ही रेणु दरवाजे पर आ अखिलेश की अगवानी करती थी, और उसे देखते ही अखिलेश का भी सारा श्रम दूर हो जाता था। अखिलेश अकेले ही कोर्ट से लौटा करते थे। रेणु ने दूर ही से देखा आज उनके साथ गाड़ी पर कोई दूसरा आदमी भी है। गाड़ी निकट आई, रेणु ने अखिलेश को देखा या न देखा, उस नवागन्तुक को देखा। उस रात का सारा स्वप्न फिर उसके सम्मुख नाच गया। उसने उन दिनों के अनोखे को सोचा और आज के अनोखे को देखा, दोनो गाड़ी से उतर पड़े। अखिलेश ने मुस्कुराते हुए रेणु का कंधा हिलाकर पूछा—'पहचानती हो ?' रेणु कुछ न बोली, देखती रही। तीनों एक कमरे में जा बैठ गये। कुछ क्षण तक कोई कुछ न बोला, अन्त में रेणु ने अनोखे की अँगुलियाँ को थाम लिया और एक टक से देखती हुई बोली—'अनोखे, कहाँ से आये ? कितने दिनों पर आये ? हम लोगों को एक दम भूल गये ? एक पत्र भी लिखना न था ?' अनोखे ने किसी का कुछ उत्तर न दिया, वह रो रहा था। रेणु अपने हाथ से उसके आँसू पोंछने लगी और प्रश्न-सूचक दृष्टि से अपने पति को देखी। अखिलेश भी डब-डबा गया था। उसने धीरे से कहा—'नाश्ता कराओ, कपड़े बदलवाओ, फिर देखा जायगा।' ऐसा ही हुआ।

समय पाकर उस दिन की सारी कथा अखिलेश ने रेणु को कह सुनाई, रात होने पर कुछ गाना-बजाना हुआ। रेणु ने भी हारमोनियम पर दो एक गाना गाया, जिससे अनोखे अपनी पीड़ा को भूल-सा गया।

दूसरे दिन रेणु और अनोखे बाग में अकेले घूम रहे थे। यों ही इधर-उधर की बातें हो रही थीं। अनोखे ने पूछा—माँ स्नेहमयी कैसी हैं?

रेणु—वे घर पर सुखी हैं।

अनोखे—क्या वे मेरी कभी याद भी करती थीं ?

रेणु—बराबर, एक दिन तो आप की याद में वे रो भी दी थीं।

अनोखे—वे देवी हैं, यथार्थ में स्नेहमयी हैं। संसार से विदा होने के पहले एक बार उनका चरण अवश्य छू लूँगा। तभी मुझे शान्ति होगी।

रेणु—हाँ, अनोखे बाबू, आप अवश्य जाइये, उन्हें भी बहुत संतोष होगा।

अनोखे—क्या वे मुझे पहचान सकेंगी ?

रेणु—अवश्य पहचान लेंगी ?

अनोखे—लेकिन कौन-सा मुँह जाकर दिखाऊँ ?

रेणु—यही मुख, अनोखे बाबू, इसमें बिगड़ा क्या है ?

अनोखे—बहुत कुछ बिगड़ चुका है।

रेणु—तब तो माँ के लिये और भी अच्छा। उन्हें तो इसे सँवारने में आनन्द आएगा।

अनोखे—और आप को ?

रेणु—सिर्फ देखने में।

अनोखे (कुछ देर के बाद)—रामकृष्ण बाबू ?

रेणु—वे भी अच्छे हैं।

अनोखे—और बच्चे सब ?

रेणु—वे सब सुखी हैं। सभी स्कूल में पढ़ रहे हैं। जब आपका वह मुकदमा चल रहा था, बच्चों ने भी बाबूजी से शिफारिस की थी।

अनोखे—हाँ, बच्चे कितने प्यारे हैं।

इसी तरह अनोखे का जीवन दो-तीन रोज नितान्त करुनामय रहा। उसे मालूम हुआ संसार में काँटे ही-काँटे नहीं हैं, इसमें सुन्दर सुगन्धमय पुष्प भी हैं, पर भाग्य जुदा-जुदा है। उसे मालूम हुआ, उसने स्वयं अपने को बरबाद कर दिया।

लेकिन अब सोचना व्यर्थ है। वह बराबर विदा लेने की चेष्टा करता, पर उसे विदा की आज्ञा मिलती ही नहीं, क्योंकि अखिलेश ने उसके घर तार दे दिया था और वहाँ से किसी के आने की बाट देख रहे थे। वे अनोखे को अकेले जाने देना नहीं चाहते थे।

दूसरे दिन प्रात:काल ही अनोखे ने मनोरमा की आवाज सुनी। उसके साथ एक विश्वासी नौकर भी आया था। पीछे मालूम हुआ कि जिस रात को अनोखे घर से भागे थे, उसी के दूसरे दिन से प्रियहासिना का भी पता नहीं। एक रोज के बाद जिस समय विदा लेकर मनोरमा गाड़ी पर सवार हो रही थी, वह दुख की प्रतिमूर्ति मालूम होती थी, अनोखे बिल्कुल असहाय, बेबस-सा प्रतीत होता था, केवल रेणु खड़ी-खड़ी अपनी स्वर्गीय सहानुभूति की फुलझड़ियों को उनके कण्टकाकीर्ण मार्ग में बिखेर रही थी।

(७वें पृष्ठ का शेषांश)

इसमें हिन्दी और उर्दू-प्रेमियों को थोड़ा-सा त्याग जरूर करना पड़ेगा। हिन्दी वाले केवल संस्कृत प्रेमी नहीं रह पायेंगे और उर्दू वाले केवल अरबी-फारसी प्रेमी न रहेंगे, इतना त्याग हुए बिना समझौता असंभव है।

हमारे कितने ही मुसलमान भाई अपने मत के विषय में कट्टर इसीलिये हैं कि उनको दूसरी तरफ के विचारों को पढ़ने का मौका ही नहीं मिलता, हमारा तो विश्वास है कि हिन्दी और उर्दू के एक लिपि में लिखे जाने से बहुत कुछ साम्प्रदायिक वैमनस्य हट जायँगे। सबके विचार समुन्नत और उदार हो जायँगे।

हमें दुख तो इस बात का होता है कि हिन्दी को जो हमारी शिक्षा का सबसे उचित माध्यम है, न केवल हमारे अधिकारी ही उदासीन दृष्टि से देखते हैं, वरन् युवकगण भी—जिन पर हमारा सारा दारोमदार है—अनादर की दृष्टि से देखते हैं। इससे बढ़कर अमंगल और क्या होगा ?

इस हिन्दी-उर्दू को एक लिपि वेदी पर साथ-साथ बैठे देखकर शायद कुछ संस्कृत विद्वान और अन्य कतिपय हिन्दू भाई नाराज होंगे, पर उनसे हम इस विषय पर ठंडे दिल से विचार करने के लिये निवेदन करते हैं।

इसमें हम हर्ष भी होता है कि हाई स्कूल तक, चाहे नाम को ही सही, कई शिक्षा-बोर्डों ने हिन्दी उर्दू आदि मातृभाषाओं को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया है, पर इस अपूर्ण माध्यम से, हम कहना पड़ेगा, हमारी ही बड़ी हानि है। यह तो निश्चत ही है कि हाई स्कूल तक मातृभाषा को माध्यम मान कर पढ़ने वाले विद्यार्थी की अंगरेजी कमजोर होगी, फलत कॉलेज में जहाँ सब विषयों का माध्यम अंग्रेजी है, वह कमजोर ही रहेगा। सारा श्रम व्यर्थ जायगा। इसलिये हमारी तुच्छ सम्मति में कॉलेज-भर के माध्यम मातृभाषा ही—उनमें भी हिन्दी ही—होनी चाहिये। हाँ, जो विदेशी भाषाओं में विशेष योग्यता प्राप्त करना चाहें, उनके लिये स्वतन्त्र रूप से अन्य संस्थाएँ खोली जायँ।

इस समय तो हम इतना ही लिखकर विराम लेते हैं। आशा करते हैं कि हमारे देश के विचारक शीघ्र ही हिन्दी को अपनी शिक्षा का माध्यम बनायेंगे और भारतीय जीवन की रक्षा करेंगे।

जीवन्मुक्त महात्मा श्री तैलंग स्वामी का तत्वोपदेश

लेखक—श्रीयुत अजितनाथ भट्टाचार्य, बी० ए०, एल-एल० बी०

(गताङ्क से आगे)

२३—जिसने वासनाओं पर विजय नहीं पाया है जटा धारण भस्म लेपन, उपवास, मिट्टी पर सोना इत्यादि उसके मन को पवित्र नहीं कर सकते।

२४—दूसरे को जैसा होने का उपदेश देते हो, स्वयं वैसे ही हो—जिसने अपने को वश में किया है, वह दूसरे को भी वश में कर सकता है। अपने को वश में करना ही कठिन है।

२५—पाप और पुण्य सब अपना ही किया हुआ है, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को पवित्र नहीं कर सकता।

२६—यह संसार जल बुद्बुद मरीचिका के सदृश है, जो इस संसार को तुच्छ समझ सकता है, मृत्यु उसको देख नहीं सकती है।

२७—दौड़ते हुए घोड़े की तरह, जो मनुष्य अपने उत्तेजित क्रोध को रोक सकता है, वही वास्तव में सारथी है, दूसरे केवल रास पकड़े रहते हैं।

२८—प्रेम के बल से क्रोध को जीतो, मंगल से अमंगल को जीतो, निस्वार्थ से स्वार्थ को जीतो और सत्य से मिथ्या को जीतो।

२९—गुरु जो उपदेश दें, उसे ध्यान पूर्वक सुनो और उसका पालन करो।

३०—व्यर्थ बात न करो जो अधिक बातें करता है वह अवश्य ही अधिक झूठी बातें कहता है। जहाँ तक हो सके कम बोलने की चेष्टा करो, तब शान्ति मिलेगी।

योग शिक्षा किसे कहते हैं?

योग शिक्षा के लिये अनाहार अथवा बनवास की आवश्यकता नहीं है। चित्तवृत्तियों के रोकने का नाम ही योग है। मन के वशीभूत इन्द्रियगण को इष्ट साधन में लगाने की क्षमता जिसमें है, उसके लिये संसार और बन दोनों बराबर है। एकाग्रता ही योग का प्राण है, इस एकाग्रता से जब जीवात्मा और परमात्मा एक हो जायँगे, जब उन दोनों में कोई भेद दिखाई नहीं पड़ेगा तभी वह वास्तविक योगी कहलायेगा। ईश्वर-प्राप्ति के लिये योगाङ्ग अवलम्बन करने की आवश्यकता नहीं होती केवल भक्ति ही से वह ईश्वर में समाहित हो सकता है। भक्त अपनी भक्ति से उसे प्रसन्न करके उसमें समाहित होता है। उसी को समाधि कहते हैं।

समाधि क्या है?

समाधि का अर्थ ब्रह्म में चित्त स्थिर करना, परमात्मा और जीवात्मा को एक करना है, इसलिये समाधि योग का फल स्वरूप है। चित्त वशीभूत होकर सब कर्मों से निस्पृह होकर केवल आत्मा ही में जब अवस्थान करता है, उसी अवस्था को समाधि कहते हैं। समाधि अर्थात् तन्मय भाव। जब जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद भाव नहीं रहता है जब जीव बाह्यज्ञान शून्य हो जाता है, और इन्द्रियगण सब अचल हो जाते हैं, उस समय का नाम समाधि है।

योग किसे कहते है

जिस अवस्था में शुद्ध अन्तःकरण से आत्मा को अवलोकन करके आत्मा ही में तृप्ति होती है, अतीन्द्रिय और अत्यन्त सुख अनुभव होता है, जिस अवस्था में रहने से आत्मतत्व से परिच्युत नहीं होता है, जिस अवस्था के लाभ से और दूसरे किसी लाभ की आवश्यकता नहीं होती, जिस अवस्था पर पहुँचने से घोर दुख भी मनुष्य को विचलित नहीं कर सकते, उस अवस्था का नाम योग है।

मन को आत्मा में निहित करके स्थिर बुद्धि से धीरे-धीरे विरत होने का अभ्यास करो, और विषय की चिन्ता न करो। चञ्चल मन जिस जिस विषय की तरफ दौड़ेगा, उसी उसी विषय से उसको खींचकर आत्मा में वशीभूत करो। रजोगुण और तमोगुण से विहीन योगी गण इसी प्रकार मन को सर्वदा अपने वश में करके अनायास ही ब्रह्म दर्शन के परम सुख को प्राप्त होते हैं। ब्रह्मदर्शी सर्वत्र ही समाहित चित्त से सब भूतों में आत्मा और आत्मा में सब भूतों को देखते हैं। कामना-शून्य होकर जो योग का अभ्यास करते हैं, वे ही समाधिस्थ अथवा मुक्त होने के योग्य हैं।

मुक्ति क्या है

ईश्वर में लीन होकर जीवात्मा और परमात्मा के सम्मेलन ही का नाम मुक्ति है। इन्द्रिय समूह को मन के वश में करना ही योग शिक्षा का प्रधान उपाय है।

पहले, इन्द्रिय से उत्पन्न चित्त वृत्ति का निरोध और उसे वशीभूत करो, उसके बाद सांसारिक और इन्द्रियवृत्ति के वशीभूत चित्त को कामनाओं से हटाना होगा, अनेक प्रकार के लक्ष्य से चित्त को हटाकर काम्य लक्ष्य के पथ पर चलना होगा। विविध प्रकार के चिन्ता से धीरे-धीरे अपने को हटाकर आत्म चिन्ता में नियुक्त रहना होगा। योग दो प्रकार के हैं—सकाम और निष्काम। सकाम योगी मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है, पर निष्काम योगी मोक्ष को प्राप्त होता है। निष्काम धर्म का पालन करना ही योग का मूल है।

तन्मयत्व क्या है?

तन्मयत्व योग का और एक प्रधान अंग है और योग का फलस्वरूप है। जब तन्मय भाव उपस्थित होता है, तब और किसी अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं होती है योग की सिद्धि यही तन्मयत्व भाव है। इस भाव के उपलब्धि होने पर केवल काम वस्तु ही पर दृष्टि रहती है, अन्य किसी वस्तु पर दृष्टि नहीं रहती है, अन्य चिन्ता की धारणा नहीं रहती केवल मात्र काम्य वस्तु ही के अस्तित्व की उपलब्धि होती है। मन और अभीष्ट वस्तु के बीच कोई पार्थक्य नहीं रह जाता है काम्य वस्तु के सिवाय और किसी बात की चिन्ता नहीं रहती है, संसार में और कुछ भी वह नहीं देखता है वह अभीष्ट वस्तु ही हृदय में पूर्ण रूप से विराजमान रहता है, तब वह संसार में रह कर भी संसार वासी नहीं रहता है। काम्य वस्तु ही में उसका अस्तित्व रहता है, उसके बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं रहती है, वह काम्य वस्तु ही में मिल जाता है। इसी का नाम तन्मयत्व है।

किसी कार्य के अनुष्ठान के समय सबसे पहले उस कार्य में तन्मय होना आवश्यक है, तब उस कार्य में कभी भी विफल मनोरथ होने की सम्भावना नहीं रहती है, सिद्धि निश्चित है। जिसकी जैसी भावना होती है, उस कार्य में उसी प्रकार उसकी सिद्धि होती है। जो मनुष्य अपने अभीष्ट विषय में जितना मन लगावेगा वह मनुष्य उतना ही उसमें सफलता प्राप्त करेगा। यदि किसी विषय में सम्पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त करना हो, तो उसमें पूर्ण रूप से तन्मय होना चाहिये। बिना एकाग्रता के तन्मयत्व नहीं होता है। किसी कार्य के करने के लिये एकाग्रता की शिक्षा होनी चाहिए, बिना एकाग्रता के तन्मयत्व भाव नहीं आता है। जब तक किसी कार्य में विश्वास न हो जब तक यह न समझो कि इसमें हमें सफलता अवश्य होगी, तब तक उस कार्य के करने के लिये आगे मत बढ़ो, क्योंकि उसमें सफलता नहीं होगी।

पहले कार्य में विश्वास करो, क्योंकि विश्वास ही सफलता का मूल है। तन्मयत्व, एकाग्रता और सिद्धि लाभ, इन सब के मूल में विश्वास है।

सृष्टि काल में ईश्वर ने सबसे पहले माया का प्रकाश किया था। वह माया ज्ञाता, ज्ञेय, और ज्ञान रूपी और कार्य कारण रूपी है और सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से विशिष्ट है। उसकी दो शक्तियाँ हैं—एक 'आवरण' अर्थात् माया से जीव आच्छन्न होने के कारण नित्य सत्य परमात्मा को नहीं देखता है और इसी कारण अहंकार की सहायता से अपने को ईश्वर से स्वतन्त्र समझता है, दूसरा 'विक्षेप' जिसके द्वारा जीव असत्य वस्तु में सत्यारोपण करके इस संसार अथवा जगत् को नित्य और सत्य समझता है और परमात्मा को भूलकर अनित्य वस्तु में मस्त रहता है।

(क्रमशः)

'रूपये के सत्तरह आने दीजिए और आसमान से तारे मँगवा लीजिये ।'

'अपना आदर करने वालों के सामने अपना अपमान कई गुना असह्य हो जाता है ।'

'ससार में रहे, पर संसार का होकर न रहे। इसी को वैराग्य कहते हैं ।'

'बहुत बातें करना बुद्धिमानी का लक्षण नहीं, मूर्खता का लक्षण है ।'

'सखिया मर कर रस हो जाती है ।'

'धर्म को तौलने के लिये बुद्धि उतनी ही अनुपयुक्त है, जितना बैंगन तौलने के लिये सोनार का काँटा ।'

'बेहयाई की रोटियाँ खाने से भूखों मर जाना अच्छा है ।'

'मजबूरी में हमें उन लोगों की याद आती है, जिनकी सूरत भी विस्मृत हो चुकी होती है ।'

'स्वप्न की रचना स्मृतियों की पुनरावृत्ति मात्र होती है ।'

'मनोभावों के अनुचित आवेश को हम बहुधा मुसकिराहट से छिपाते हैं ।'

'असली स्वाधीनता वही है, जो विचार के प्रवाह में बाधक न हो ।'

'रक्षा का अर्थ पराधीनता के सिवा और कुछ नहीं ।'

'जिसकी अपने घर में इज्जत नहीं, उसकी बाहर भी इज्जत नहीं होती ।'

'घरवालों का स्नेह डॉक्टर की दवाओं से कहीं ज्यादा लाभदायक होता है ।'

'अमीरों के सामने दीन बनना पड़ता है। उनसे बराबरी का दावा नहीं किया जाता ।'

'कृतघ्नता से बुरा कोई दूषण नहीं ।'

'ईर्ष्या में गुणग्राहकता नहीं होती ।'

'ईर्ष्या की व्यापकता ही साम्यवाद की सर्वप्रियता का कारण है ।'

'वादी को निरुत्तर होते देख हम दिलेर हो जाते हैं ।'

'सरल प्राणियों के सामने कपट भी लज्जित हो जाता है ।'

'धन का देवता आत्मा का बलिदान पाये बिना प्रसन्न नहीं होता ।'

'पढ़ना एक दार्शनिक क्रिया है ।'

'गीली लकड़ी खराद पर नहीं चढ़ती ।'

'लज्जा अत्यंत निर्लज्ज होती है ।'

'रंगभूमि' की सूक्तियाँ

प्रथमभाग

संकलक—ब्रजबिहारीलाल गौड़

'मूर्खों के पास युक्तियाँ नहीं होतीं, युक्तियों का उत्तर वे हठ से देते हैं ।'

'धर्म का मुख्य स्तंभ भय है ।'

'वृद्धावस्था में मौन विचार-प्रौढ़ता का द्योतक होता है, और युवावस्था में विचार-दारिद्र्य का ।'

'कृतज्ञता हमसे वह सब कुछ करा लेती है, जो नियम की दृष्टि में त्याज्य है ।'

'आदमी जितना ही निस्पृह होता है, उपकार का बोझ उस उतनाही असह्य होता है ।'

'धर्म-भीरु प्राणी तार्किक नहीं होता ।'

'धर्म-भीरुता जड़वादियों की दृष्टि में हास्यास्पद बन जाता है ।'

'गृह-चिन्ता आत्म चिन्तन की घातिका है ।'

'धर्म और व्यापार को एक तराजू में तौलना मूर्खता है ।'

'सच्चा दानी प्रसिद्धि का अभिलाषी नहीं होता ।'

'अनुराग अंतर्वेदना की सबसे उत्तम औषधि है ।'

'दुखी आत्मा दूसरों की नेक नीयती पर संदेह करने लगती है ।'

'चिंता त्याग मूलक होती है ।'

'निश्चिंतता का आमोद विनोद से मेल है ।'

'दाम्पत्य मनुष्य के सामाजिक जीवन का मूल है ।'

'प्रेम और वासना में उतना ही अन्तर है जितना कंचन और काँच में'

'प्रेम को, जब वह स्त्री पुरुष में हो वासना से निर्लिप्त रखना आसान नहीं ।'

'कर्तव्य कभी आग और पानी की परवाह नहीं करता ।'

'चिन्ता की निद्रा क्षुधावस्था का विनोद है ।'

'लड़कों की चोट प्रतिकार के साथ ही गायब हो जाती है ।

'जीवन की भाँति मृत्यु का भी सबसे विशिष्ट आलोक मुख ही पर पड़ता है ।'

'क्रियात्मक सहानुभूति ग्राम-निवासियों का विशेष गुण है ।'

'सफलता में दोषों को मिटाने की विलक्षण शक्ति है ।'

'निद्रावस्था में भी उपचेतना जागती रहती है ।'

'झोंपड़े की आग, ईर्ष्या की आग की भाँति, कभी नहीं बुझती ।'

'आशा से ज्यादा दीर्घजीवी और कोई वस्तु नहीं होती ।'

'भिखारियों के लिये धन-सचय पाप सचय से कम अपमान की बात नहीं ।'

'ईर्ष्या में तम-ही-तम नहीं होता, कुछ सत् भी होता है ।'

'धैर्य नैराश्य की अंतिम अवस्था का नाम है ।'

'गालियाँ खाकर भी जिसके खून में जोश न आए, वह जड़ है, पशु है, मृतक है ।'

'जिस ससार में रहकर सांसारिकता का ज्ञान न हो, वह मंद बुद्धि है ।'

'जो बातें जबान पर नहीं आ सकतीं, उनके लिये कभी अवसर नहीं मिलता ।'

'प्रेम ग्रस्त प्राणियों की प्रतिज्ञा कायर की समर-लालसा है ।'

'युवावस्था को अतिशयोक्ति से प्रेम है ।'

'वृद्धावस्था बड़ी आविनयशील होती है '

नैराश्य की अन्तिम अवस्था विरक्ति है ।'

'जहाँ आत्मा और सिद्धांतों की हत्या होती हो, वहाँ से स्वच्छन्दता कोसों भागती है ।'

'उपदेश करना सिद्ध पुरुषों ही का काम है ।'

'युवावस्था अनुभव-लाभ का समय है ।'

'अपने प्रेमियों से हम उपदेश और शिक्षा की बातें नहीं, प्रेम और परिताप की बातें सुनना चाहते हैं ।'

'कठिनाइयों में पड़कर परिस्थिति पर क्रुद्ध होना मानव-स्वभाव है ।

'सफलता में अनन्त सजीवता होती है, विफलता में असह्य अशक्ति ।'

'अन्धकार में लकड़ी का कुंदा भी सजीव हो जाता है ।'

'सेवा और उपकार बहुधा ऐसे रूप धारण कर लेते हैं, जिन्हें कोई शासन स्वीकार नहीं कर सकता ।'

'स्त्रियों के सामने कोरी साफगोई नहीं चलती, वे लल्लो-चप्पो ही से राजी रहती हैं ।'

'गरमियों में किसान वर्षा का नहीं; ताप का भूखा होता है ।'

'नेकनामी के लिये सच्ची बातों में दबना अपनी आत्मा की हत्या करना है ।'

'कपट से कपट ही पैदा होता है ।'

'जातीय सेवा का दूसरा नाम बेहयाई है ।'

'उपहास इतना निंद्य नहीं, जितना अन्याय ।'

'अधिकारियों के भय से न्याय-पथ से मुँह फेरना अत्यन्त अपमान-जनक है ।'

'अपने सामर्थ्य का ज्ञान हमें शीलवान् बना देता है ।'

'हमारी अभिलाषाएँ ही जीवन का स्रोत हैं ।'

'युवावस्था में हमलोग अपनी योग्यताओं का बृहत् कल्पनाएँ कर लेते हैं ।'

'नैराश्य में प्रेम भी द्वेष का रूप धारण कर लेता है ।'

'हम अपनी दुर्बलताओं को व्यंग की आड़ में छिपाते हैं ।'

'अपमान अन्याय से अच्छा है ।'

'राजा और रईस, सबके सब शासनाधिकारियों के हाथों के खिलौने हैं ।'

'ससार शांति भूमि नहीं, समर-भूमि है ।'

'विजय पाकर परास्त शत्रु को मुँह चिढ़ाना परले सिरे की नीचता है ।'

'सच्ची बात विश्वासोत्पादक होती है ।'

'ऐश्वर्य निंदित होने पर भी मानवी इच्छाओं का स्वर्ग है ।'

'अहित कामना क्रोध की पराकाष्ठा है '

'क्षमा मानवी भावों में सर्वोपरि है ।'

'कवि का कर्मक्षेत्र सीमित होता है, पर भाव-क्षेत्र अनंत और अपार है ।'

'दनदार को हिसाब के दिन का उतना ही भय होता है, जितना पापियों को ।'

'शराफत ठाठ बाट बढ़ाने में नहीं है, अपनी आबरू बचाने में है ।'

'जिस आज्ञा का आधार केवल पशुबल हो, उसका पालन करना आवश्यक नहीं ।'

'जब तक हम खून से डरते रहेंगे, हमारे स्वत्व भी हमारे पास आने से डरते रहेंगे ।'

'राजनीति का क्षेत्र, समर-क्षेत्र से कम भयावह नहीं ।'

पं० पद्मसिंह शर्मा के संस्मरण

लेखक—श्रीयुत कृष्णगोपाल माथुर

कोई तीन साल से ऊपर होते हैं। इन्दौर के मध्यभारत-हिन्दी साहित्य समिति भवन में स्व० पं० पद्मसिंहजी शर्मा पधारे। आप के साथ ज्वालापुर महाविद्यालय के मुख्याध्यापक प० हरिदत्तजी शास्त्री भी थे। विद्वानों के क़द्रदान और प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी वाणिज्यभूषण सेठ लालचन्दजी सेठी ने अपनी तुकोगंज की कोठी 'मानिक-भवन' से मुझे पण्डितजी को ले आने के लिये भेजा। इसके पहले दिन आप मुझसे एक पत्र लिखा कर पंडित-जी को भेज चुके थे। जब मैं मोटर लेकर पहुँचा, तो आप भवन की दूसरी मंज़िल के एक कमरे में खटिया पर लेटे लेटे 'विशाल-भारत' पढ़ रहे थे। दर्शन पाकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। परिचय होने और यह जानने पर कि सेठ साहब को वह चिट्ठी मैंने ही लिखी थी, आपने फ़र्माया कि 'आप तो बड़ी अच्छी इबारत लिखते हैं, मैं तो इस लेखन-शैली को देख कर मुग्ध हो रहा था।' मैं लज्जित सा हो गया।

मानिक-भवन में आप पधारे और सेठ साहब से बहुत देर तक साहित्य-चर्चा होती रही। कोठी में सेठ साहब के भतीजे हिन्दी-प्रेमी सेठ भँवरलालजी सेठी ने और और पक्षियों के साथ 'काकातूआ' पक्षी भी पाल रक्खा है, जो मनुष्यों की तरह साफ़ तौर पर इतने ज़ोर से बोली बोलता है कि सड़क पर जाने वाले ज्यों-के-त्यों सुनते हैं। प० पद्मसिंहजी उसे देख कर कहने लगे—कल मैं जब इधर होकर निकला, तब इस पक्षी की बोली सुन कर बड़ा खुश हुआ और बहुत देर तक सड़क पर खड़ा खड़ा सुनता रहा, इसका चित्र और परिचय मैं 'विशाल-भारत' में छपाना चाहता हूँ, इसलिये इसके परिचय सम्बन्धी हिंट्स मुझे लिखवा दीजिए और इसका फ़ोटो भी उतरवा दीजिए। यह सुन कर शायद सेठ साहब ने इन्दौर के प्रसिद्ध फ़ोटो-ग्राफ़र रामचन्द्रराव-प्रतापराव के यहाँ फ़ोटो उतरवाने का प्रबन्ध कर दिया था। इसके बाद पंडित-जी सेठ साहब के बहुत आग्रह पर उज्जैन आये।

यहाँ आप १५-२० रोज़ तक ठहरे रहे। सेठजी की ख़ातिर-दारी से आप बहुत खुश हुए, उज्जैन नगरी को देखकर आपको बहुत ही प्रसन्नता हुई। मैं आपके साथ कई प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थान दिखाने को जाता रहा। एक रोज़ पानी बरसते हुए में हमलोग क्षिप्राजी के स्नान करने को गए। पण्डे लोग तो सब जगह 'बगुला-भक्त' की तरह हाथ पसारे बैठे ही रहते हैं। हमारे पीछे भी 'धर्म कीजिए, ब्राह्मण भोजन करवा दीजिये' के लिए पड़ गए। पंडित-जी ने कहा कि हम ऐसा धर्म नहीं करते हैं, और भी कई विनोद की बातें उन्होंने कहीं, जिनको सुनकर हम लोग खूब हँसे। इसके बाद श्रीमहाकाल भगवान के और महाराज विक्रमादित्य की देवी के दर्शन किए। श्रीमहाकाल के मन्दिर में पण्डों ने फ़ी आदमी एक-एक पैसा वसूल किया। देवी के मन्दिर में आप बहुत देर तक दुर्गा पाठ करते रहे। इसके पश्चात् श्री-महाकाल के मन्दिर की पिछली भूमि को बड़े गौर से देखा। और बोले कि महाकवि कालिदास का निवास यहीं होना चाहिये, क्योंकि उन्होंने अपने काव्यों में यहाँ का जो जो सुन्दर और सरस वर्णन किया है, उसके बहुत कुछ चिन्ह यहाँ पर मिलते हैं, मन्दिर के पीछे जो तालाब की शक्ल है, उसको देख कर आपने फ़र्माया कि यह वही तालाब जान पड़ता है, जिसका वर्णन कालीदास ने किया है। इस तरह आप वहाँ कालिदास के वर्णन से मीलान करके बड़े खुश होते रहे। वहीं पर बड़े गणेशजी के मन्दिर में मित्रवर सूर्यनारायण-जी व्यास रहते हैं, उनसे मिलने को हमलोग गये, पर वे वहाँ मौजूद नहीं थे।

नित्य ही सेठ साहब के ख़ास कमरे में पंडितजी के लिये चाय होती थी। हम सब लोग चाय पाते थे, बाद को साहित्य-चर्चा होती थी। उस समय पंडितजी के मुख से साहित्य के मर्म की वे गूढ़-गूढ़ बातें निकलती थीं, जिनसे खूब ज्ञान प्राप्त होता था, दिन को और रात को यही ज़िक्र रहता। 'पद्म पराग' के लेख आप स्वयम् पढ़कर सुनाते, आप के पढ़ने का ढंग निराला और चित्ताकर्षक होता था। कई संस्कृत सूक्तियाँ आप सुनाते, आपकी 'बिहारी सतसई' की टीका पर ज़िक्र छिड़ गया। हमारे मित्र बा० ताराचन्दजी पाँड्या बी० ए० वहीं मौजूद थे। पंडितजी से पूछ बैठे—'साहित्य में अच्छी से अच्छी पुस्तकों के रहते हुए भी चरित्र पर बुरा असर डालने वाली सतसई जैसी पुस्तक की टीका लिखना आपको कैसे पसन्द आया?' पंडित जी ने कहा कि यह रस नवरसों में प्रधान है, साहित्य का ख़ास अंग है और फिर बिहारी की काव्य चातुरी इतनी जबरदस्त है कि उसने दोहे जैसे छोटे से छन्द में बड़े ही गंभीर भाव भर दिये हैं। उनका एक-एक दोहा इतना गूढ़ है कि बड़े-बड़े पंडित लोग उनका अर्थ लगाने में चकराते हैं। मैंने तो उसे साहित्य की उत्तम वस्तु समझ कर ही हाथ में लिया था। हमारे हिन्दी-साहित्य में उसका ख़ास स्थान है। इस तरह शर्माजी ने पाँड्याजी को बहुत कुछ समझाने की कोशिश की, लेकिन उनकी समझ में नहीं आया और आख़िर यह विषय विनोद के साथ ख़त्म हुआ।

एक रोज़ उर्दू के कवियों पर ज़िक्र छिड़ गया। सभी जानते हैं कि पंडितजी उर्दू साहित्य के भी कितने गहरे विद्वान् थे। ज़िक्र छिड़ते ही आपने उर्दू के साहित्य भण्डार से वह-वह रत्न निकाल कर सामने रक्खे कि हम लोग दंग रह गए। उर्दू साहित्य की अकसर वे बातें ही अब तक प्रकाश में आई हैं, जिनमें आशिक़ माशूक़ का प्रेम भरा हुआ है। गुल, चमन और बुलबुल के राग उसमें गाये गये हैं। विरहणियों का वर्णन तो अत्यन्त ही अत्युक्ति-पूर्ण किया गया है। पर, पण्डितजी की बात चीत इन बातों से बहुत ऊँचा महत्व रखती थीं। कौन-सा शायर किस वक्त हुआ है और उसने समाज, राष्ट्र और जातियों को उन्नत करने के लिये कैसी-कैसी नीति युक्त उक्तियाँ कही हैं, इस विषय पर पण्डितजी ने बड़े अच्छे ढंग से विवेचन किया।

हिन्दी-साहित्य के सम्बन्ध में तो रोज़ ही बातें हुआ करती थीं। हिन्दी का साहित्य आज-कल जिस उन्नति-पथ पर जा रहा है, उससे पंडितजी को सन्तोष अवश्य था, पर वे कहते थे, कि फिर भी हिन्दी-साहित्य में कूड़ाकर्कट की भर्ती बहुत हो रही है। इसे रोकना होगा। मासिक-पत्रों के लिये भी ज़िक्र होता रहता था। आप 'विशाल-भारत' को बहुत प्यार करते थे। कहते थे, कि मैंने मासिक पत्रों में एक तरह से लिखना छोड़ ही दिया था पर पं० बनारसीदास-जी चतुर्वेदी ऐसे पीछे पड़े, कि मुझसे कुछ न कुछ लिखवाने लगे। तभी से मैं 'विशाल भारत' के लिये तो कुछ-न-कुछ लिखकर भेज ही देता हूँ।'

पण्डितजी के सत्संग में वे दिन इतने आनन्द से निकले कि वह आनन्द लेखनी द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। पंडितजी की वे सारी बातें आज भी मेरे हृदय-पट पर अंकित हैं। हज़ारों क़िस्म की मर्म-भरी बातें उनके मुखारविन्द से सुनने को मिलीं। वे इतने ज़बर-दस्त विद्वान् होकर भी बहुत ही सीधे सादे ढंग से रहते थे। उनका अभाव सबके लिये खटकने वाला ही नहीं, बल्कि बेहद खटकने वाला है।

उन्हीं दिनों मुझे ज़रूरी काम के कारण झालरापाटन आना था, मेरा बिछुड़ना आपको मालूम हुआ, तो दूसरे साथी की तलाश आपको हुई। भाई गोपीवल्लभजी उपाध्याय उन दिनों वहीं थे। मेरे चले आने के बाद वे पंडितजी के साथ रहे। कौन जानता था कि मेरे लिये पंडितजी के वे अन्तिम ही दर्शन थे। कराल काल की गति विचित्र ही होती है।

चालाकी

लेखक—श्रीयुत घोष, बोस, बनर्जी, चटर्जी

उस दिन एक ही कमरे में दो गल्प-लेखक पाये गये। कमरा साहबी ढग से सजा हुआ और सुन्दर था। बीच में एक गोलमेज को करके दोनों आदमी कुर्सियों पर आमने सामने बैठे हुए थे।

एक का नाम है देवीप्रसाद शर्मा, नाटे आदमी हैं, सिर बिल्कुल फुटबाल की तरह गोल है। और भगवान् की तारीफ तो देखिये, इसी गोल फुटबाल के अन्दर दो सुरग के सहित एक चपटा नाक भी बना डाली है, पलकों के नीचे दो आँख भी हैं, मुह चौडा, अधर मोटे मोटे। हँसते हैं तो एकाएक मुह फाड देते हैं, और तब क्रमश हाहा हाहा हीहा हीहा की ध्वनि निकालना आरम्भ करते हैं। चेहरे के दोनों ओर दो कान लटक रहे हैं। सचमुच इन्हे देखकर विधाता की बुद्धि का अदाज लगाना कठिन हो जाता है। आज गर्मी के दिन में भी कमीज के ऊपर टसर का कोट लगाए बैठे हैं। जैसे गर्मी को चैलेञ्ज दे रहे हों कि आओ तो तुम्हें देखें और गर्मी इन्हें परेशान किये देती है। पसीना निकल रहा है।

दूसरे सज्जन हैं—भूपालनाथ चतुर्वेदी। आप 'गीली आँख' के उपनाम से कहानियाँ लिखा करते हैं। बिल्कुल लम्बे आदमी हैं। सिर भी लम्बा, मालूम होता है, जैसे भगवान् ने इन्हे बनाकर एक थाप इधर से और दूसरी थाप उधर से जमा दी हो। शारदा उकील के बनाये हुए चित्र की तरह बेतरह लम्बी लम्बी अगुँलियाँ। आप अपना पोजीशन ठीक करने के लिये सर्वदा सचेष्ट रहते हैं। पहले कवितायें लिखा करते थे, किन्तु जब देखा कि कहानी लिखना बहुत सहल है, यहाँ जो लिख डालो वही अच्छी कहानी हो जाता है, तो कहानी लिखने में ही जुट गये। अभी आज ही इनकी कहानियों का एक सग्रह छप कर निकला है। इनकी समझ से वही ससार की सबसे अच्छी कहानियों का सग्रह है। इसका कारण है कि इन्होंने हिन्दी और उर्दू की कहानियों का सग्रह छोड कर और कुछ पढा ही नहीं है।

और देवीप्रसाद इनसे जरा पुराने लेखक हैं, इसी कारण चश्मा लगाकर मूँछ नही घुटाते हैं। जिस पत्रिका में जो कुछ भेजते हैं, वह छप जाती है। अबकी बार साढे सात सौ पृष्ठ का एक क्रान्तिकारी मौलिक सामाजिक उपन्यास लिखने का विचार है। उसकी प्रस्तावना और भूमिका आपने पहले ही लिख डाली है। उसकी समालोचना साहित्यचन्द्र, भाषा सागर, शब्द समूह-कुल-कण्ठस्थ श्रीमान गण्डकप्रसादजी 'पाटल प्रसून' लिखेंगे, और किताब का ऐडवरटाइज किया जायगा, रेलवे स्टेशन के मुसाफिरखाने में, किन्तु, खेद की बात है कि अभीतक आपने उस उपन्यास का प्रथम परिच्छेद भी नहा लिखा है। अक्सर सोच जाते हैं कि हमारी किताब पर पत्र पत्रिका वालों की क्या सम्मतियाँ होंगी। अगर किसी पत्रिका वाले ने ऐसा लिखा, तो मैं ऐसा जवाब दूँगा। और कल्पना जगत् मे उनकी किताब की अटूट बिक्री होती है। पत्र पत्रिका वाले उनकी तुलना मोंपासा और गोरकी से किया करते हैं। गरज यह कि आप बडे आदमी हैं, इसमें कोई सदेह नहीं।

देवीप्रसादजी जरा मुसकिराये, और एक दृष्टि मेज पर पडी हुई पुस्तक पर फेंककर बोले—हाँ जनाब, यही आपकी कहानियों का सग्रह है?

'हाँ, और सम्भवत आपकी कहानियों के सग्रह से अच्छी है।'

कारण, कि भूपालनाथ अपने को ससार के किसी लेखक से कम नहीं लगाते हैं।

देवीप्रसादजी ने सोचा था कि बेचारा नया लेखक है और उसपर मेरा मुलाकाती आदमी है, किताब छपने पर एक अच्छी-सी समालोचना लिख डालूँगा, किन्तु जब यह बात सुनी, तो त्योरियों पर बल पड गये। यह जानता नही कि हिन्दी मे आज कल किसका राज्य है? जिसका नाम निकल गया है, वहा सब कुछ कर सकता है। जरा-सा लिखना आ गया कि समझता है, जो कुछ है, वह मैं ही हूँ। पूछा—किस बात में?

'सास पतोहू के झगडे में मैं कही आप से ऊँचा उठ गया हूँ।'

'कैसे?'

'अच्छा, जब पतोहू की ओर से उसका पति उठकर डडा लेकर अपनी माता को पीटने लगता है, उस समय माँ अपने बेटे को क्या गालियाँ देती है, इसपर आपने जो लिखा है, वह याद है?'

'हाँ, याद है। मैंने लिखा है—मुँहजला! नास काटा!'

'और मैंने क्या लिखा है?'

भूपालनाथ ने किताब खोलकर दिखला दिया—'दोगला! हरामजादा! भठियारा!'

फिर बोले—अब कहिये, मैं आपसे ऊँचा उठ गया हूँ कि नहीं?

देवीप्रसादजी ताने के ढंग पर बोले—हाँ, गाली बकने में तुम मुझसे जरूर आगे बढ गये हो!

भूपालनाथ हँसते हँसते बोले—यहाँ तो गाली बकने की बात नहीं है, आप खाम-खा रज हो गये। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि मुँहजला, नासकाटा में आर्ट है या दोगला, भटियारा में।

देवीप्रसाद आश्चर्य से मुँह बा कर उनकी ओर देखने लगे।

भूपालनाथ ने कहा—किसी चीज का यथार्थ रूप से वर्णन करने में ही रियलिज्म की सार्थकता है। और आजकल रियलिज्म का जमाना है, जिसको हिन्दी में यथार्थवाद कहते हैं। आपके मुँहजला, नासकाटा में वैसा यथार्थवाद नहीं है जैसा कि हमारे दोगला, भठियारा में।

देवीप्रसाद इतने सहज में ही अपना बडप्पन छोडने के लिये तैयार नहीं थे। बोले—तब क्या मुँहजला और नासकाटा झूठ है?

'झूठ नहीं,—भूपालनाथ ने सिर घुमा कर कहा—'मुँहजला, नासकाटा भी ठीक है, मगर दोगला भठियारा में जितना गहरा यथार्थवाद है, उतना उसमे नही है।'

एकाएक देवीप्रसाद उठ कर खडे हो गये। आलमारी से एक किताब निकालकर कर मेज पर पटक दी और बोले—यही मेरी कहानियों का सग्रह है। आप बतलाइये कि इस पुस्तक से आप कहाँ कहाँ आगे बढ गये हैं। अगर सचमुच ऐसा ही होगा, तो मैं अपने किसी मित्र से दोनो की तुलनात्मक समालोचना कराऊँगा।

भूपालनाथ ने उनकी कहानियों का सग्रह खोल कर दिखलाना आरम्भ किया—देखिये, आप एक वाटिका का वर्णन कर रहे हैं—'पारिजात [१] पुष्पों की अजब गजब बहार देखिये। कूजा [२] की क्यारियों में तो कुछ और ही छटा छिटक रही है। जाती [३], अष्टपदी [४], स्थूल पुष्पा [५], आकीन [६], कांचन कुसुम [७], योनिपुष्प [८], करवि [९], धुस्तुरक [१०], त्रिसंधी [११], मुद्गर पुष्प [१२], आदि की शोभा देखते ही बनती है। इसी प्रकार वार्तालाप करते हुए वे लोग अम्लीकापामक वृक्ष के नीचे जा बैठे।

और अब मेरी कहानी में देखिये—दोनों बगीचे में टहल रहे थे। प्रातःकाल के अरुण की अरुणवर्ण रश्मियाँ दोनो के चेहरे पर पड रही थीं। रजनी गधा के सुमन खिल कर खिलखिला रहे थे। बहुत दूर पर कोई भीमपलासी का राग गा रहा था। एक ओर गुलाब, दूसरी ओर गेंदा, तीसरी ओर चमेली, चौथी ओर हरसिंगार और कचनार, गरज कि चारों ओर फूल-पत्तियों से घिरे हुए वे लोग ऐसे मालूम होते थे, जैसे मूँछ-दाढी के बीच मे मुँह।

देवीप्रसाद बडे जोर से मुँह फाड़ कर हँसने लगे—हाँ, क्या कहा, प्रातःकाल के अरुण की और रजनीगधा के सुमन खिल कर खिलखिला रहे थे; वाह वा! कमाल की कल्पना है!

भूपालनाथ ने दाँत से जीभ काट कर कहा—उफ ओ, भूल हो गई!

देवीप्रसाद बोले—और बहुत दूर पर कोई भीमपलासी गा रहा था, क्यों न?

'क्यों, भीमपलासी कब गाया जाता है?'

'दिन के पिछले पहर जनाब, पिछले पहर।'

भूपालनाथ का चेहरा उतर आया। बोले—खैर, पिछले पहर ही गाया जाता होगा। इस किताब मे यही एक-दो भूलें आपको मिलेंगी, अधिक नहा। तो 'सत हस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार' के अनुसार आप अपनी समालोचना में इस बात पर ध्यान मत दीजियेगा, क्योंकि समालोचक हस होता है, इसलिये दुष्ट हस होने की अपेक्षा सत हस होना बहुत उत्तम है।

दोनों ने एक दूसरे को देखा, और हँस पडे। देवीप्रसाद ने मन ही मन कहा—तुम मुझे बनाते हो बच्चू, ठहरो, सिखलाऊँगा। और भूपालनाथ के चेहरे पर लिखा हुआ था—कुछ परवाह नहीं!

भूपाल ने कहा—आठ बज गये, अब मुझे जाना चाहिये।

देवीप्रसाद बोले—अब मुझे भी किवाड़ लगा लेना चाहिये।

---

[१] पारिजात=हरसिंगार। [२] कूजा=गुलाब। [३] जाती=चमेली। [४] अष्टपदी=बेला। [५] स्थूलपुष्पा=मखमली। [६] आकीन=चम्पा।

[७] कांचन कुसुम=कचनार। [८] योनिपुष्प=अपराजिता। [९] करवि=कनैल। [१०] धुस्तुरक=धतूरा। [११] त्रिसंधी=कृष्णकेलि। [१२] मुद्गरपुष्प=गन्धराज। [१३] अम्लीकापामक=इमली।

देवीप्रसाद ने समालोचना क्या लिखी कि दिल का गुबार उतार दिया। उसके लिखने का सारांश यह था, 'ऐसी निकम्मी और बेहूदी पुस्तक न हिन्दी में आजतक कोई छपी है और न छपने की आशा है। लेखक ने अनधिकार लेखनी चलाई है। मनोविज्ञान से तो लेखक को भेंट भी नहीं, प्रकृति वर्णन में लेखक इस तरह चित गिर पड़े हैं; जैसे—काई में पैर रपट गया हो। व्याकरण में तो पूरे बाबाजी हैं। लेखक ने कहीं भी लिंग पर ध्यान नहीं दिया। इस पुस्तक के लेखक को चाहिये कि अब वे पुन पहली श्रेणी में जाकर विद्यालाभ करें, और जब कुछ लिखने लायक हो जायँ, तब कहानी लिखने के लिये कलम उठायें।'

किन्तु जब उनकी आलोचना छप कर आई, तो देवीप्रसाद को चकित रह जाना पड़ा। यहाँ कुछ दूसरी ही बात लिखी हुई थी। आलोचना में छपा हुआ था—ऐसी अच्छी और सुन्दर पुस्तक न आजतक कोई छपी है और न छपने की आशा है। लेखक ने बड़ी सफलता पूर्वक अपनी लेखनी चलाई है मनोविज्ञान से लेखक को पूरी अनुभूति है और प्रकृति वर्णन में तो कमाल कर दिया है। लेखक व्याकरण के आचार्य जान पड़ते हैं। लिंग भेद—जो हिन्दी का प्रचण्ड शत्रु है—को लेखक ने इस सफाई से गायब कर दिया है, जिसका ठिकाना नहीं। अब तो मालूम भी नहीं होता कि हिन्दी में कभी लिंग भी था।

अब लाल कहाँ ? देवीप्रसाद को ऐसा मालूम हुआ जैसे भूपालनाथ ने बड़ी गम्भीरता पूर्वक कान पकड़ कर उन्हें दस लप्पड़ जमा दिये और आप खड़े मुसकिरा रहे हों। परीशानी के मारे बदन से पसीना चूने लगा। तुरत साइकिल उठाई, दौड़े हुए भूपालनाथ के यहाँ पहुँचे। वे उस समय कहानी लिखने में व्यस्त थे। कहा—आप ने तो ऐसी अच्छी आलोचना लिखी है कि मैं आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूँ। सदैव आपका कृतज्ञ रहूँगा।

देवीप्रसाद उनका हाथ पकड़ कर झकझोरते हुए बोले—अरे नहीं, नहीं, सच बतलाओ तुमने कैसे क्या किया ?

भूपालनाथ ने कहा—पहले पान खा लो, तब बतलाऊँगा।

'नहीं पान खाने के पहले बतला दो।'

भूपालनाथ मुसकिराते हुए बोले—सुनिये, पहले मैंने खुद एक आलोचना लिख डाली, और उसके बाद एक अठन्नी के साथ साथ 'मजूर' कार्यालय के फोरमैन के हाथ में उसे थमा दिया। उसके बाद उसके कान में धीरे से फुसफुसा कर कहा, कि जब देवीप्रसाद शर्मा की लिखी हुई कोई आलोचना तुम्हें कम्पोज कराने के लिए मिले, तो इसी कागज के साथ बदलकर कंपोज करने के लिये दे देना।

देवीप्रसाद ने दाँत पीस कर कहा—तुम बड़े दुष्ट हो !

भूकम्प क्या है ?

प्रकृति के भीषण उत्पात

यह भूकम्प कैसे आता है ? हमारी यह स्थिर पृथ्वी क्यों विचलित होती है ? इस प्रश्न का उत्तर वैज्ञानिकों ने दिया है और भूचाल का उपयोग भी किया है। भूकम्प का अनुभव आप घर पर कर सकते हैं। चौके में दाल की पतीली पर एक कटोरी ढक दीजिये। पानी खौलने पर अन्दर भाप बनेगी और वह बाहर निकलने की चेष्टा करेगी। फलतः कटोरा हिलने लगेगा। वह कटोरी कम्प है। कटोरी के छोटे से संसार में भूचाल आगया। यही हाल पृथ्वी का समझिये। सृष्टि के प्रारम्भ में पृथ्वी एक आग का गोला थी। ठण्डी होते-होते उस पर पपड़ी जम गई, पर अन्दर अब भी ज्वालायें धधक रही हैं, जिनके दर्शन कभी कभी ज्वालामुखी के विस्फोटनों में हो जाते हैं, इस अग्नि गर्भा पृथ्वी के भीतर अग्नि और जल की प्रतिक्रिया से भाप बनता है और साथ ही अन्य कई प्रकार की गैसें भी बन जाती हैं। भाप बड़ी ही शक्तिशाली वस्तु है। अन्दर से निकलने की चेष्टा करती है। जिस प्रकार पतीली की भाप निकलने की चेष्टा करने पर ढक्कन को हिला सकती है, उसी प्रकार पृथ्वी के अन्दर की शक्तिशाली भाप पृथ्वी को हिला देती है। कहीं ज्वालामुखी और कहीं दरारों में से भाप निकल जाती है, कहीं गरम पानी के झरने फूट निकलते हैं। पूरी तौर से भूकम्प का कारण अभी नहीं समझा गया है, पर मोटी रीति से यही इसका कारण है। भूकम्प का एक मुख्य केन्द्र होता है अर्थात् वह स्थान जिससे भाप निकलने की चेष्टा करती है। जिस प्रकार पानी के तालाब में एक स्थान पर पत्थर डालने से चारों ओर लहरें जाती हैं, उसी प्रकार भूकम्प की लहरें पृथ्वी को हिला देती हैं। बड़े भूकम्पों का कारण दूसरा है। पृथ्वी की सतह और विशेष कर पहाड़ सिकुड़ते रहते हैं। उनमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता है। अन्त में एक स्थिति ऐसी आता है कि बीच की पृथ्वी सिकुड़ने के दबाव के कारण तड़क जाती है। तभी भूकम्प होता है। भारत में आसाम ही ऐसा प्रदेश है, जहाँ भूकम्प पैदा हो सकता है। हिमालय में परिवर्तन हो रहे हैं और वही इस भूकम्प का एक प्रकार से कारण है। कई बार बड़े विनाशकारी भूकम्प आते हैं, जैसा कि १० साल पहले जापान में आया था। बड़े भूकम्पों में मकान ढह जाते हैं, पृथ्वी फट जाती है, जमीन कहीं बैठती है, कहीं उठ जाती है। कहीं पानी एक दम घट जाता है, तो कहीं गाँव के-गाँव बह जाते हैं। एक भूकम्प विचित्र चक्करदार होता है। पेड़ों की सीधी कतार गोल हो जाती है। सीधी दीवार गोल हो जाती है और बिना टूटे, जैसे किसी ने उसे कागज की तरह मोड़ दिया हो। कई बार तो पृथ्वी पर के मनुष्य आकाश में उड़ते सुने गये हैं और पहाड़ की चोटियाँ गिर पड़ी हैं।

वैज्ञानिकों ने भूकम्पों का खूब अध्ययन किया है। बड़ी बड़ी प्रयोगशालाओं में भूकम्प का लेखा लेने के यन्त्र लगे रहते हैं, जिनसे पृथ्वी की जरासी हलचल का भी पता लग जाता है। इन यन्त्रों में भूकम्प स्वयं अपनी कहानी लिख देता है। यह भी पता चल जाता है कि भूकम्प पृथ्वी के किस भाग में हुआ और उसकी तीव्रता क्या है। पाठकों को जानकर आश्चर्य होगा कि छोटे मोटे भूकम्प पृथ्वी पर हर तीसरे चौथे रोज हुआ करते हैं। भूकम्प जानने के यन्त्रों को सेसीमोग्राफ (sesimograph) कहते हैं। इस प्रकार का यन्त्र आगरे की हवाई वेधशाला (Meterological observatory) में है तथा देहरादून में कई यन्त्र है।। अलीपुर (कलकत्ता) में भी हैं, जो हाल के भूकम्प की तीव्रता के कारण टूट गया।

भूकम्पों के अध्ययन से यह पता चलता है कि पृथ्वी के अन्दर की हालत क्या है। पृथ्वी कितनी लचीली है तथा कितनी कठोर है। एक आध बार तो भूकम्पों के अध्ययन से धातु की खानों तक का पता चल चुका है। (ज० प्र०)

विदेश-वार्त्ता

रूमानिया की स्थिति

लेखक—श्रीयुत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

आस्ट्रिया की तरह रूमानिया में भी इस समय नाज़ियों का जोर बहुत बढ़ गया है और उसी की तरह वहाँ भी सरकार की ओर से बड़ी तत्परता के साथ उनका दमन किया जा रहा है। पहले तो रोमानिया नरेश स्वयं उनसे सहानुभूति रखते थे और उनके खिलाफ कोई सख्त कारवाई करने को तैयार नहीं होते थे; किन्तु परराष्ट्र सचिव श्रीटिटूलेस्कू की दृढ़ता के सामने अब उन्हें भी झुकना पड़ा है और लाचार होकर दमन नीति ज़ोरों से जारी करने की स्वीकृति देनी पड़ी है।

कैरोल की प्रणयिनी, लुपेस्कू

रोमानिया से आये हुए समाचारों से विदित होता है कि इस समय वहाँ जो गड़बड़ मची हुई है, उसका एक बड़ा कारण मैडेम लुपेस्कू नामक रमणी के प्रति राज द्वितीय कैरोल की प्रेम-वासना भी है। वहाँ की अनेक घटनाओं के साथ इस सुन्दरी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध बतलाया जाता है। इसी से टिटूलेस्कू ने अभी उस दिन जब रोमानिया नरेश से भेंट की थी, तब उनसे इस महिला का परित्याग कर देने के लिए विशेष आग्रह किया था। राजा उनकी बात टाल न सके। उन्हें विवश होकर हामी भरनी ही पड़ी।

लुपेस्कू इस समय कहाँ है, कहना कठिन है। बहुतों का अनुमान है कि राजभवन परित्याग कर वह चुपचाप बाहर चली गई है। जो हो, राजा के जीवन और रोमानिया के राजनीतिक वातावरण पर उसका विशेष प्रभाव पड़ा है, इसमें सन्देह नहीं। इसी से यहाँ हम राजा के साथ उसके प्रणय सम्बन्ध का हाल थोड़े में देना आवश्यक समझते हैं।

प्रिंस कैरोल का जन्म १६ अक्टूबर १८९३ को हुआ था। रोमानिया के राजा स्वर्गीय फर्डिनेण्ड और रानी मेरी के दुलार प्यार तथा राजप्रासाद के विलास मय जीवन में पाले जाने के कारण, वे शुरू से ही बड़े चपल स्वभाव के थे। प्रायः रंगीले संगी साथियों के साथ आमोद प्रमोद में ही उनके दिन बीतते थे। जिस समय यूरोप में युद्ध छिड़ा हुआ था और शत्रु की सेना रोमानिया में प्रवेश करती आ रही थी, उस समय राजकुमार कैरोल रमणी प्रेम के पीछे पागल हो रहे थे। अपने ही देश के एक सेनानायक की तरुणी कन्या को लेकर तोपों की गड़गड़ाहट से दूर, वे 'स्वर्गसुख' का उपभोग करने में मस्त थे।

रमणी ने भी राजपुत्र के प्रेम में भूलकर अपना सर्वस्व उसे अर्पण कर दिया; किन्तु उसका सुखस्वप्न अधिक समय तक न टिक सका। कैरोल ने शीघ्र ही उसका परित्याग कर दिया और उसे निराश होकर पेरिस नगर की शरण लेनी पड़ी।

युद्ध समाप्ति के बाद सन् १९२१ में ग्रीस की राजकुमारी सुन्दरी हेलेन के साथ कैरोल का विवाह हो गया, किन्तु राजरानी होने पर भी वे सुखी न हो सकीं, इनके उदर से युवराज माइकेल का जन्म होने के बाद ही कैरोल के हृदय पर एक और रमणी ने अधिकार जमा लिया। यही उपर्युल्लिखित मैडेम लुपेस्कू थी।

लुपेस्कू न तो सेनापति की कन्या की तरह सरल चित्त वाली थी और न राजपुत्री हेलेन की तरह सत्स्वभावा ही थी, फिर भी उसने अपने यौवन सचार से प्रिंस कैरोल को इस तरह मुग्ध कर लिया, मानो कोई जादू कर दिया हो। उसके पीछे राजकुमार ने रोमानिया के सिंहासन तक को ठुकरा दिया और दिसम्बर १९२५ में स्वदेश से प्रस्थान कर दिया।

उस समय राजा फर्डिनेण्ड मरणासन्न अवस्था में पड़े हुए थे और रानी मेरी अमेरिका गई हुई थीं। जरूरी तार पाकर वे शीघ्र ही रोमानिया लौट आयीं। पुत्र की उच्छृंखलता का हाल सुन कर, वे अत्यन्त दुःखी हुईं। राजा से सलाह लेकर उन्होंने राजकुमार को लौटा लाने के लिए फ्रान्स जाने का निश्चय किया। लूपेस्कू के प्रेम में मतवाले कैरोल ने जब उनसे मुलाकात तक करने से इनकार कर दिया, तब वे निराश होकर वापस चली आयीं। मुमुर्षु फर्डिनेण्ड के हृदय को इससे बड़ी चोट लगी और वे शीघ्र ही स्वर्गगामी हुए। मृत्यु के पहले रोमानिया का राज्य वे अपने पोते माइकेल को सौंपते गये।

राज्य त्याग के बाद प्रिंस कैरोल अपनी प्रणयिनी के साथ फ्रान्स, इंग्लैण्ड, बेलजियम आदि देशों की सैर में दिन बिताते रहे; किन्तु साथ ही वे रोमानिया की तरफ से उदासीन भी न थे। वहाँ की घटनाओं और विविध षड्यन्त्रों की खोज खबर वे बराबर लेते रहते थे। ७ जून १९३० को अकस्मात् एक जरूरी तार पाकर, उन्होंने स्वदेश के लिए प्रस्थान कर दिया और राजधानी में पहुँच कर सिंहासन पर अधिकार जमा लिया।

सिंहासनासीन हो जाने पर भी कैरोल के हृदय से लूपेस्कू का मोह दूर नहीं हुआ। इसके कारण उन्होंने राज महिषी हेलेन से विवाह विच्छेद तक कर लिया। अभागिनी हेलेन को जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक वृत्ति लेकर रोमानिया का परित्याग कर देना पड़ा। बहुत कोशिश के बाद अब उन्हें राज्य में लौट आने की अनुमति मिली है। यह है राजा कैरोल और मैडेम लुपेस्कू के प्रणय की कथा, जिससे रूमानिया की वर्तमान अशान्ति का बहुत कुछ सम्बन्ध है।

अल्प संख्यक जातियों का प्रश्न

गत २९ दिसम्बर को रूमानिया के प्रधान मन्त्री श्री डूका की जो हत्या की गई थी, उसके सम्बन्ध में दिए गए अभियुक्त कान्सटेंटिनेस्कू के बयान से स्पष्ट है, कि वहाँ की मौजूदा हालत का एक कारण अल्पसंख्यक जातियों का प्रश्न भी है। डूका उनके साथ न्याय करने और उनके अधिकारों का ध्यान रखने की चेष्टा किया करते थे, इसी से 'राष्ट्र की पूजा' करने वाले रूमानियन नवयुवकों की आँखों में वे खटकने लगे और उनमें से एक ने अन्त में उनके प्राण ही ले लिये।

रूमानिया में कई जातियों के लोग पहले से ही रहते थे, किन्तु यूरोपीय युद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों की कृपा से उसे जो और भू भाग प्राप्त हुए, उनके कारण वहाँ अल्प संख्यक जातियों की समस्या और भी जटिल हो गयी। युद्ध समाप्ति के बाद जब मध्य यूरोप में नये राज्यों की रचना की गई, तभी यह समझ लिया गया था, कि अल्प संख्यक जातियों को सन्तुष्ट रखने में इन्हें विशेष कठिनाई होगी और उनके कारण शान्ति भंग होने की भी सम्भावना रहा करेगी। इसीसे विजयी राष्ट्रों के गुट ने रोमानिया पोलैण्ड, जेकोस्लोवाकिया आदि से जो सन्धियाँ कीं, उनमें स्पष्ट रूप से यह शर्त रख दी, कि अल्प संख्यक जातियों को पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता होगी और उन्हें नागरिकता के समान अधिकार भी प्राप्त होंगे।

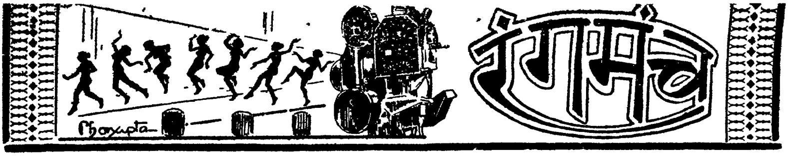
सन्धियों पर हस्ताक्षर कर देना तो आसान था, पर उन्हें कार्य में परिणत करने की चेष्टा करते समय वास्तविक कठिनाइयों का पता चला। अन्य देशों की अपेक्षा कदाचित् रूमानियों के सामने यह समस्या और भी अधिक जटिल रूप में पेश हुई। वहाँ जो हंगेरियन लोग रहते हैं, वही अकेले रूमानियों के राष्ट्रनायकों का दिमाग चाटने के लिये काफी हैं, किन्तु उनके सिवा वहाँ ऐसी जातियों के नागरिक भी हैं, जिनकी सहानुभूति सोवियट रूस या बलगेरिया अथवा गैलेशिया के साथ है; अतः वहाँ पर जातिगत भेदभाव की शिकायत प्रायः सुन पड़ती है। इन सब विचित्र जातियों के कारण रूमानियों के लिये राष्ट्रीय एकता की स्थापना करना अत्यन्त कठिन हो गया है।

लौह संरक्षक-दल का दमन

रूमानियों के बहुसंख्यक नवयुवक अपने देश की विभिन्न जातियों में एकता स्थापित करने के लिये विशेष रूप से व्यग्र हो रहे हैं। राष्ट्र के सामूहिक हित से पृथक अपने अपने स्वार्थों की रक्षा का, जो प्रयत्न वहाँ अल्पसंख्यक जातियों की ओर से किया जाता है, वह उन्हें पसन्द नहीं। वे उनकी इस प्रवृत्ति के कट्टर विरोधी हैं। जर्मनी और इटली का आदर्श उनके सामने हैं। उन्हीं के मार्ग पर रूमानियों को भी ले जाने के लिये वे लोग लालायित हो रहे हैं। उनकी दृष्टि में फासिज्म या नाजीइज्म अर्थात् उग्र राष्ट्रवाद ही देश की उन्नति का सबसे सरल, सबसे सीधा और सबसे शीघ्र प्रभाव दिखाने वाला उपाय है। इसीसे नाजियों के ढंग पर ही उन्होंने अपने दल का संगठन शुरू किया और बात बात में उन्हीं की गतिविधि का अनुकरण करने लगे।

लौह संरक्षक-दल के नवयुवक चाहते थे कि वैध शासन की परवाह न करके, राष्ट्र हित की तुलना में अल्पसंख्यक जातियों की मांगों की उपेक्षा की जाय। इसलिये जब स्वर्गीय प्रधान मंत्री श्री डूका ने उनके विचारों की ओर कोई ध्यान न देकर देश की सभी जातियों को सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न किया, तो वे उनसे चिढ़ गये। थोड़े से लोगों को खुश रखने की चेष्टा में समय गवाना और राष्ट्रोन्नति के कार्य में विलम्ब करना उन्हें असह्य मालूम होने लगा। 'अराष्ट्रीय' कहकर वे प्रधान मंत्री की नीति की निन्दा करने लगे और किसी तरह राजा कैरोल को भी प्रभावित कर मनमानी करने पर उतारू हो गये। डाक्टर डूका ने उनका दमन करने की भरपूर कोशिश की, किन्तु सफलता प्राप्त होने के पहले ही उन्हें 'आयर्न गार्ड' दल के एक सदस्य के हाथ अपने प्राण गँवाने पड़े।

इस दल ने सारे रूमानिया में ऐसा आतंक फैला दिया था कि किसी को उसके विरुद्ध सख्त कार्रवाई करने का साहस ही नहीं होता था, किन्तु अब वहाँ के परराष्ट्र सचिव श्री टिटूलेस्कू ने अपने प्राणों का मोह छोड़ कर और अपनी सारी शक्ति लगा कर लौह संरक्षक दल का दमन करना शुरू कर दिया है। राजा कैरोल से घण्टों बहस कर, उन्होंने उन्हें भी इस काम के लिए राजी कर लिया है। मैडेम लुपेस्कू को सारे अनर्थ की जड़ समझ कर उन्होंने उनका परित्याग करने के लिए भी राजा को विवश किया है, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं। उनकी कार्रवाई के कारण इस समय नाजियों का आन्दोलन बहुत कुछ दब गया है; किन्तु आस्ट्रिया की तरह वह शीघ्र ही फिर उमड़ न पड़ेगा, यह कहना कठिन ही है।



मिस ३३

(ले० महाराज कुमार श्री दुर्गाशंकरप्रसादसिंह)

(गतांक से आगे)

प्रथम मित्र ने पूछा—और गाना ?

विद्वान् मित्र ने कहा—गाने इतने अधिक और लम्बे हैं तथा इतने अनुचित रूप से उनको स्थान दिया गया है कि उनको सुनते-सुनते जी ऊब जाता है और कहीं-कहीं तो हँसी आती है। दो एक स्थलों को छोड़कर, जो दो साधुओं से अनावश्यक गाना इसलिये गवाया गया है कि पात्रों को तैयार होने के लिये समय मिले, बहुत ही वाहियात है। पात्रों का समय से तैयार रखना नाट्य-कला का मुख्य अंग है।

तीसरे मित्र ने कहा—कुसुम जो शीशे के सामने बैठ कर बीसो मिनट तक गाती रहती है, वह किस लिये ?

विद्वान् मित्र ने कहा—वही पात्रो को तैयार होने का समय देने के लिये। यदि हृदय के भाव को जनाने के लिये गाना रखना वहाँ पर आवश्यक ही था, तो मतलब की दो-एक कड़ी शृङ्गार के बीच में आलाप देती या गुनगुना देती। उससे रोचकता और बढ़ जाती।

प्रथम मित्र ने कहा—उच्चारण कैसा था ?

विद्वान् मित्र ने कहा—चन्द पात्रो का उच्चारण ठीक नहीं था। उच्चारण की अशुद्धियाँ तो अच्छे-से अच्छे नाटकों के सौन्दर्य को भी बिगाड़ देती हैं।

दूसरे मित्र ने पूछा—अच्छा मोटे सेठ के सेक्रेटरी का जो अपनी स्त्री को पढ़ाने का दृश्य दिखाया गया है, वह किस लिये ?

विद्वान् मित्र ने कहा—मुझे तो वह दृश्य अनावश्यक-सा जँचा। उसका कथानक के साथ आद्योपान्त कोई सम्बन्ध नहीं है।

तीसरे मित्र ने सिगरेट जलाते हुए कहा—भाई, बात तो यह है, कि ये देशी कम्पनियाँ मूर्ख पब्लिक से रुपया भर ऐंठना जानती हैं। ये यह नहीं समझतीं कि इसके अतिरिक्त सुरुचि, कला और उन्नत विचार का प्रचार करना भी इनका कर्तव्य है।

विद्वान् मित्र ने मोटर का दरवाजा खोलते हुए कहा—भाई, ये तो पेशावाले ठहरे। जब कम खर्च से अधिक पैसा मिल ही जाता है, तब ये क्यों अधिक रुपये और परिश्रम व्यर्थ नष्ट करें ? यह तो दर्शक का न कर्तव्य है, कि वह उनके बुरे कला-विहीन फिल्मों का बहिष्कार करके अच्छे कला पूर्ण फिल्मो की माँग पेश करे, लेकिन हम दर्शकवृन्द अच्छे बुरे सभी फिल्मो को केवल देखने भर के लिये ही देख लेते हैं। जो मूर्ख हैं, वे अच्छा-बुरा क्या समझे, लेकिन जो शिक्षित है और कला तथा सुरुचि को समझते हैं, वे भी तो हिन्दी-फिल्मो का सहानुभूति-पूर्ण भाव से देखकर उनके सुधार के लिये उनकी आलोचना न करके, उन्हे घृणा करते हैं। आज अधिकांश कॉलेज के विद्यार्थियों को हमने यही कहते सुना है, कि देशी फिल्मे रद्द-भद्दी और वाहियात होती हैं। उन्हे देखना पैसा गँवाना है, लेकिन उन्हे यह नहीं ज्ञात है कि उनको देख कर उनका तीव्र आलोचना करके उन्हें सुधारना और अपने अनुकूल बनाना तथा मूर्ख पब्लिक को ठगे जाने से बचाना भी तो उन्हीं शिक्षित होनहार युवकों का कर्तव्य है।

अब मैंने टुक गम्भीर होकर कहा—भाई, जो आलोचनाएँ अभी तक की गई वे तो फिल्मकार, सञ्चालक और मालिक से सम्बन्ध रखता हैं। पात्र और पात्रियो का सम्बन्ध तो आजकल जो कुछ उन्हे दिया जाता है, उसी को अपना नाट्यकला से स्वाभाविक रूप में प्रदर्शित कर देना है, सो मेरे विचार से जहाँ तक Acting और हाव-भाव-प्रदर्शन का प्रश्न है, वहाँ तक कोई दोष नही नजर आता।

विद्वान् मित्र टुक गम्भीर होकर मेरी ओर देखने लगे और बोले—ठीक कहते हो। प्रसंग प्लॉट ही का था। कुसुम की Acting बहुत ही नायाब है। जेन की भी वैसी ही है। किसी अंश मे ये अंग्रेजी पात्रो से कम नहीं कहे जा सकते। यदि इन्हे हालीवुड की शिक्षाएँ और सुविधाएँ मिली होतीं, तो यह भी आज World famous actress होती।

मैंने कहा—कुसुम की जेल में जेन से भेंट होने के अवसर पर की Acting तथा जेन के विदा होने के समय उनके भाव-प्रदर्शन बहुत ही सुन्दर और नायाब हैं।

फिर रमेश की हत्या के समय का दृश्य भी बहुत ही स्वाभाविक और सुन्दर उतरा है। उसमें रमेश की शराबी की Acting भी खराब नहीं है। फिर तस्वीर को लेकर जेन और कुसुम का कलह और फिर बाद का भेद खुलने पर प्रेम प्रदर्शन भी अच्छा रहा है। फिर कुसुम और किशोरी का कैम्प का कलह, जैन के किशोरी के साथ चले जाने पर कुसुम और रमेश का भेंट और उसके साथ टहलने जाते समय के आन्तरिक भाव संग्राम का स्वाग चित्रण सुन्दर है, फिर मोटे सेठ की Acting भी सुन्दर कहा जा सकता है।

विद्वान् मित्र ने कहा—यहाँ तो किसी का आक्षेप नहीं हो सकता और प्लॉट भी बुरा नहीं कहा जा सकता। लेकिन जितना लेखक ने प्लॉट को शिक्षा-प्रद मनोरंजक, उत्तेजक, और व्यङ्ग्यात्मक बनाने की चेष्टा की है, उतना इस सुरुचि, स्वाभाविक, चुस्त, सिमिट्रिकल, कला और परिमार्जित भाषा पूर्ण बनाने की कोशिश नहीं की है। उन्हीं बातो को जरा-जरा उलट फेर और कमी-बेशी तथा सुधार और परिवर्तन के साथ रखने से यह दूसरा ही फिल्म तैयार होता।

मैंने कहा—बिलकुल ठीक है। कुसुम से कोर्ट में जो स्पीच दिलवाई गई है या किशोरी से लड़ाई होते समय जो लेक्चर झड़वाया गया है, वह एक उपदेशक की स्पीच है। कुसुम वहाँ उपदेशिका नहीं, बल्कि निर्दोष अपराधिनी और वकील है। निर्दोष अपराधिनी की हैसियत से उसकी अपील हृदय द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचनी चाहिये थी, न कि मस्तिष्क-द्वारा हृदय तक। उसका हृदय दुखित था, अत उसे आवेश-पूर्ण न होकर शान्त और करुणान्त होना चाहिये था। तभी करुणा उत्पन्न होती। जो इस लम्बी-चौड़ी भूमिका के साथ समाज को लक्ष्य करके दिखाई गई है, वह किशोरी से आत्म हत्या कराने वाली स्पीच नहीं है। और दिमागी बहस मे वकील की हैसियत से कानूनी नुस्खे के अन्दर ही उसे सीमित रहना चाहिए था, न कि लम्बा चौड़ा आलोचनात्मक उपदेश देना।

तीसरे मित्र ने कहा—भाई ये उपदेश Direct न होकर Suggestive और आप बीती दुःख कहानी के रूप में भी तो रखे जा सकते थे। उससे सुन्दरता की वृद्धि ही होती।

विद्वान् मित्र ने कहा—उनका यह कहना कि 'कलापूर्ण चित्रपट के दर्शक नहीं हैं। दर्शक की रुचि नीची है, इसलिए उनको रुचि से अधिक ऊँची फिल्म तैयार कराने से आम आकर्षण नहीं रह जायगा और घाटा होगा, बिलकुल लगी बात है, क्योंकि जब अच्छे उच्च श्रेणी के अंग्रेजी फिल्मों के दर्शक हैं, तब कला-पूर्ण हिन्दी-फिल्मो के दर्शक क्यों न होंगे।

मैंने कहा—भाई, मेरी राय में तो इन कम्पनियो को एक स्थान विशेष पर मिलना चाहिये और इन त्रुटियो के सुधार को चर्चा करनी चाहिये। इतने में मेरे बँगले पर मोटर आ खड़ी हुई और मैं Good night कहते हुए नीचे उतर पड़ा।

विचित्र-जगत्

भूकम्प से कहाँ कब, और कितने आदमी मरे

स्थान	वर्ष सन्	मृत्यु संख्या
लिसबन	१७५५	६०,०००
केलेब्रिया	१७८३	३०,०००
नेपल्स	१८५७	१२,३००
जापान	१८९६	२९,०००
भारतवर्ष	१९०५	२०,०००
मेसिना	१९०८	१००,०००
मध्य इटली	१९१५	३०,०००
चीन	१९२०	१००,०००
जापान	१९२३	१४२,०००

लकड़ी से शकर

जर्मनी में एक प्रकार की लकड़ी से भी शकर बनाई जाने लगी है।

काच की तरह कपड़ा

लंकाशायर वालों ने एक ऐसा कपड़ा बनाया है, जो बिलकुल काच की तरह होता है।

सबसे बड़ी घड़ी

वियना में एक ऐसी घड़ी बनाई गई है, जो संसार में सबसे बड़ी है। कहा जाता है कि उसके दोनों काँटे ही डेढ़ मन वजन के हैं।

हाथों में बारह अँगुलियाँ

ट्रिनीडाड में क्लीफर्ड रिचर्डसन नामक एक प्रोफेसर हैं, उनकी लड़की, बहन, माता और दादी को अँगुलियों में बारह-बारह अँगुलियाँ हैं। बहन के तो पैर में भी १२ अँगुलियाँ हैं, केवल एक भाई के ११ अँगुलियाँ और ११ अँगूठे हैं।

पशुओं को भूकम्प का ज्ञान

अनेक बातों में ईश्वर ने पशुओं को मनुष्य से भी अधिक ज्ञानवान बनाया है। भूकम्प जैसी विपत्ति का ज्ञान जहाँ मनुष्य को पहले नहीं हो पाता, वहाँ पशुओं को चार दिवस पूर्वही हो जाता है। और वे ऐसे भय के स्थान को छोड़ कर सुरक्षित स्थान में जाकर आश्रय लेते हैं। मेक्सिको में जब कुछ काल पूर्व भूकम्प हुआ था, तो वहाँ के तोते वगैरह पक्षी और चूहों को ४ दिन पहले ही खबर लग गई और वे स्थान छोड़ कर गायब हो गये।

मूँछें मुँड़ाओ

जर्मनी के एक वैज्ञानिक डाक्टर ने सूचित किया है कि अगर आप नाक, मुख और आँख के रोग से बचना चाहते हैं, तो मूँछें मुँड़ा डालिए। डाक्टर साहब का खयाल है कि नजला, आँखों की कमजोरी आदि का कारण मूँछें ही हैं।

मुहम्मद साहब की कब्र

ऐसा प्रकाशित हुआ है कि सारे संसार की कब्रों में मुहम्मद पैगम्बर साहब की कब्र ही सबसे अधिक मूल्यवान है। क्योंकि उस पर २० लाख पौंड के मूल्य के हीरे जवाहरात जड़े हैं।

चिट्ठी-पत्री

द्विवेदी-जयन्ती

द्विवेदी जयन्ती वैशाख शुक्ला चतुर्थी को पड़ती है। इस वर्ष प्रथम वैशाख की शुक्ला चतुर्थी १ अप्रैल १९३४ को पड़ती है। इस दिन रविवार की स्वाभाविक छुट्टी भी होगी अतः सबको अधिक सुविधा रहेगी।

साहित्यिक संस्थाएँ तो समारोह से द्विवेदी जयन्ती मनाती ही हैं, जिनमें सभाएँ, साहित्यगोष्ठी और कवि सम्मेलन आदि होते हैं तथा प्रीतिभोज भी दिये जाते हैं, परन्तु व्यक्तिशः भी साहित्य प्रेमी इस जयन्ती को मना सकते हैं और अपने घर स्थानीय साहित्यिक मित्रों को आमन्त्रित कर संगीत साहित्य के इस सरस्वती-मूर्ति की आराधना कर सकते हैं। धूमधाम से जयन्ती मनाइए और पूज्य आचार्य के स्वास्थ्य की भगवान् से प्रार्थना कीजिए।

—किशोरीदास वाजपेयी।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

स्वागत-समिति दिल्ली की विज्ञप्ति नं० ६

साहित्यिक प्रदर्शनी

जब से साहित्यिक प्रदर्शनी के सम्बन्ध में स्वागत समिति की विज्ञप्ति निकली है, प्रदर्शन योग्य वस्तुओं के कार्यालय में आने का ताँता लग गया है। अतः भावीकार्यक्रम में कार्य की गुरुता को दृष्टि में रखते हुए प्रदर्शनी उपसमिति ने अपने ३० दिसम्बर सन् १९३३ के अधिवेशन में प्रदर्शनी के भावी रूप में थोड़ा परिवर्तन कर दिया है। उक्त प्रस्तावों के अनुसार प्रदर्शनी के तीन भाग होंगे—१—साहित्यिक विभाग, २—पत्रविभाग और ३—पुरातत्व विभाग।

साहित्यिक विभाग में पुस्तकों का वर्गीकरण महत्त्वपूर्ण कवियों तथा लेखकों के नामानुसार होगा। उसमें प्रत्येक निर्दिष्ट कवि तथा लेखक के प्रायः सभी प्रकाशित तथा अप्रकाशित ग्रन्थों को रखने का प्रयत्न किया जायगा। इस विभाग में हस्तलिखित ग्रन्थों को विशेष प्रोत्साहन दिया जायगा, यदि सम्भव हो सका, तो इसमें प्रत्येक कवि तथा लेखक के चित्र तथा अन्य संस्मरणों को भी स्थान दिया जायगा।

प्रदर्शनी का पुरातत्व विभाग केवल देवनागरी लिपि के विकास तथा हिन्दी भाषा के इतिहास तक ही परिमित रहेगा। इसमें प्राचीन लिपियों के शिलालेख अथवा उनकी प्रतिलिपियों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया जायगा कि वर्तमान देवनागरी लिपि की रचना किस प्रकार हुई है। यथा सम्भव चित्रकला को भी स्थान दिया जायगा।

अतएव हमारा प्रत्येक पुस्तक प्रकाशक, पत्र प्रकाशक तथा पुरातत्व प्रेमी से अनुरोध है कि वह अपने अपने यहाँ की प्रदर्शनी के योग्य सामग्री को शीघ्र से शीघ्र प्रदर्शनी कार्यालय में भेजने का प्रयत्न करें। यह विश्वास रखने की आवश्यकता है कि प्रदर्शनी में भेजी हुई यह सभी सामिग्री यहाँ पूर्णतया सुरक्षित रखी जायगी और प्रदर्शनी हो चुकने के पश्चात् सुरक्षित रूप में ही वापिस भी कर दी जायगी।

विनीत—

चन्द्रशेखर शास्त्री, संयोजक प्रदर्शनी विभाग

'गंगा' के अनुग्राहकों की सेवा में

१५ जनवरी के भीषण भूकम्प में 'गंगा' के प्रधान संरक्षक कुमारसाहब का गढ़ और सम्पादक त्रिवेदीजी का मकान बुरी तरह चकनाचूर हो गया है। करीब ५०,००० की हानि हुई है, प्रेस का सारा सामान उठाकर दूसरे मकान में लेजाने और मशीनों को फिट करने में २०-२५ दिनों का समय लगेगा। इस दैवी दुर्घटना के कारण 'गंगा' का 'विज्ञानांक' अब 'संयुक्तांक' के रूप में, फरवरी के अन्त में ग्राहकों और अनुग्राहकों की सेवा में पहुँचेगा। एतदर्थ हमारे ग्राहक और अनुग्राहक महोदय क्षमा करने की कृपा करेंगे।

भवदीय

मैनेजर 'गंगा' सुलतानगंज E. I. R.

श्री सनातनधर्म-लेखक मण्डल

सनातन धर्मी साहित्य को उत्तेजना देने के विचार से इस संस्था का जन्म हुआ है। इसका प्रधान उद्देश्य हिन्दी के समस्त सनातनी पत्रकारों, लेखकों, कवियों आदि का संगठन एवं उनके सुन्दर विचारों का समाचार पत्रों-द्वारा जनता में प्रचार करना है। समय-समय पर 'मण्डल' की ओर से पुस्तिकाओं, प्रचार पत्रों, आदि का प्रकाशन होगा, जो 'मण्डल' के सदस्यों में अमूल्य वितरण होगा। 'मण्डल' की संचालक समिति में भारत के सुप्रतिष्ठित दश व्यक्ति महानुभाव रहेंगे, जिनके द्वारा देश एवं धर्म की सेवा अधिक-से-अधिक होने की आशा है।

विशेष पत्र-व्यवहार इस पते से कीजिए—

शास्त्री ईशदत्तशर्मा, प्रधान मन्त्री

स० ध० लेखक-मण्डल-कार्यालय, बड़ा हनुमानघाट, काशी।

चन्द्र-ग्रहण की सूचना

विदित हो कि आगामी चन्द्र ग्रहण मंगलवार ता० ३० जनवरी सन् १९३४ ई० को पड़ता है। उस समय बिजली घर से भोंपा होगा और बत्तियाँ धीमी की जायँगी। सिगनल (चेतावनी) का समय यों रहेगा—

रात ९ बजकर ३१ मिनट	भोंपा	स्पर्श
,, १० ,, १२ ,,	रोशनी धीमी होगी	मध्यम
,, १० ,, ५४ ,,	भोंपा	मोक्ष

—बनारसीलाल

पब्लिक मिलिटरी टाइम-कीपर

गुरुकुल कांगड़ी का ३२ वां वार्षिकोत्सव

विश्वविद्यालय गुरुकुल काँगड़ी का ३२ वाँ वार्षिकोत्सव ईस्टर की छुट्टियों में तिथि १७,१८,१९ और २० चैत्र सम्वत् १९९० वि० तदनुसार ता० ३०,३१ मार्च तथा १ और २ अप्रैल सन् १९३४ ई० शुक्र, शनि, रवि, तथा सोमवार को मनाया जाना निश्चित हुआ है।

२—नये बालकों का चुनाव ता० ३० और ३१ मार्च को होगा, जो सज्जन इस वर्ष अपने बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने के अभिलाषी हों, उन्हें शीघ्र ही प्रार्थनापत्र भेजकर स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिये।

मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुलकांगड़ी



उस दिन गुरुवयूर में महात्माजी ने श्री जमोरिन महोदय से भेंट की। भेंट में जमोरिन महोदय ने महात्माजी से अपने देश के विषय में पूछा, तो आपने कहा—'यह तो परियों का देश है!' ओह अब पता चला! तभी तो हम सोचते थे कि यहाँ लाख लाख प्राणी परमधाम को प्रयाण कर गये और क्या कारण है कि महात्माजी अभी तक इधर क्यों ही नहीं बढ़ते? आखिर परियों के देश में हैं, परियों के बीच हैं! परियों के बीच रहकर महात्मापन उड़ँछू हो जाय, तो कौन आश्चर्य!

❁ ❁ ❁

उस दिन बहावलपुर के नवाब साहब लन्दन की सैर को निकले, तो बारह हजार के खिलौने खरीद लिये! गरीबों की गाढ़ी कमाई को यदि अपने सुपुत्रों के लिये यों सदुपयोग न किया जायगा, तो क्या उन गरीबों के बाप-दादे कब्र से निकल कर उसका उपयोग करेंगे! जब वे फटे हालों रहकर, भूखों मर कर, पेट काट कर इतनी कमाई करते हैं, तो इस पिछड़े देश के किस काम आयगी?—दे सकता है कोई इसका जवाब? है किसी में साहस?

❁ ❁ ❁

देवास-नरेश अन्तिम साँसें ले रहे हैं, और अब तक अपने धार्मिक स्वार्थों की रक्षा के लिये महादेवी सरकार से चिरौरी कर रहे हैं, पर दयामयी देवी को जरा भी तरस नहीं आता! भला कुछ तो तरस खाओ ऐसे धर्मात्मा पर देवि!

❁ ❁ ❁

बंगाल में स्त्रियों पर अत्याचार और स्त्री अपहरण के अपराध बढ़ रहे हैं। उस दिन कामन्स सभा में जब यह प्रश्न किया गया, तो भारत मन्त्री श्री बटलर साहब ने फर्माया—'यह तो नहीं मालूम होता कि इस प्रकार के अपराध बढ़ रहे हैं।' खूब फर्माया बटलर साहब ने! भला ऐसे अपराध इस अभागे और दरिद्र देश में भी हो सकते हैं? गौरांग देश में ऐसे अपराध होते, तो आपको खबर होती!

गुरुवयूर में कुछ सनातनी गुण्डों ने ऊधम मचाया, और भले आदमियों को यह पसन्द न आया। फल-स्वरूप कुछ पण्डितरूपधारी गुण्डों की पनौती-पूजा हो गई! इस पर पोंगा-पन्थी, पण्डित पत्र बड़ी उछल कूद मचा रहा और महात्माजी को कोस रहा है! बेचारा, चपत खाकर चीखने के सिवा करता ही क्या?

❁ ❁ ❁

'न्यू सिनेमा संसार' के सम्पादक जी सिनेमा सम्बन्धी पत्रों के विषय में लिखते हैं कि 'सिनेमा सम्बन्धी कुछ पत्र सिनेमा-कम्पनियों तथा पत्र सम्पादकों को तो अच्छे कागज पर छापकर प्रतियाँ भेजते हैं, और अधिकांश वे रद्दी कागज पर ही छापते हैं, क्या वे यह कुत्सित नीति नहीं त्याग सकते?'

अपने राम पूछते हैं, जिस नीति के द्वारा, चार पैसे हाथ आते हों, भला वह नीति कुत्सित है, और यदि वह कुत्सित है, तो क्या आपका 'फ्यूचर्स मार्केट रिपोर्ट' छापना, कोई भला काम है? क्यों सम्पादकजी, उत्तर दीजिएगा?

❁ ❁ ❁

उस दिन लखनऊ विश्वविद्यालय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल की बैठक में, हिन्दी में भाषण करने पर प्रो॰ चन्द्रभानुजी गुप्त को, चासलर श्री पराजपे साहब ने रोक दिया! इस पर लोग व्यर्थ ही चिल्लपों मचा रहे हैं। अजी जनाब, परांजपे साहब की तारीफ कीजिए कि उन्होंने अपनी चासलरी भक्त का कितना उत्तम उदाहरण पेश कर दिया! वे ऐसा न करते, तो बेचारे हिन्दी जानने वाले हिन्दुस्तानी कैसे समझते कि 'इकड़े तिकड़े' वाली भाषा के बीच पले परांजपेजी, इङ्गलैंडीय माँ-बाप सरकार से मुफ्त का माल खाकर यों नखशिखपर्यन्त अंग्रेजी भक्त बन गये हैं?

❁ ❁ ❁

श्री॰ पं॰ जवाहरलालजी नेहरू ने मुजफ्फरपुर का अपना आँखों देखा हाल लिखा और कहा है कि 'तीन दिनों तक सहायता न पहुँची—यह सरकार के लिए

कलंक की बात है ।' पर अपने राम तो ईमानदारी से यह कहेंगे कि सरकार के लिए तनिक भी कलंक की बात नहीं है जनाब ! कलंक की बात तो उन स्वार्थी और कलंकियों के लिए है, जो उस नेक सरकार की नौकरी करते हुए, हमारे ही भाईबन्ध होते हुए, इतने नीच हो गये हैं कि ऐसे महा संकट के समय भी अपने कर्तव्य का ज्ञान भूल जाते हैं !

❀ ❀ ❀

एक प्रकार के स्वार्थी तथा नीच और होते हैं और वे डाक्टर वैद्यों की श्रेणी में जोड़े जा सकते हैं, जो सर्वदा मनाया करते हैं कि आफत आये, उल्कापात हो, महामारीका प्रकोप बढ़े और हम भूखे गिद्धों का पेट भरे ! कहते हैं, मुजफ़्फ़रपुर में भी ऐसे प्राणियों के दर्शन लोगों को हुए हैं !

❀ ❀ ❀

एक प्रकार के स्वार्थी तथा नीच प्राणी और होते हैं, जो डाक्टरों और वैद्यों की तरह ही मनौती मनाया करते और ऐसे समय जब सरकार या प्रजा की ओर से चन्दा होता है, तब उसे अपने अधीन कर अघियाने की चेष्टा किया करते हैं !

❀ ❀ ❀

एक प्रकार के और भी स्वार्थी तथा नीच प्राणी होते हैं, जो ऐसे अवसरों की ताक में रहते और अपने गले सड़े माल के दूने टके वसूल करके तोंद पर हाथ फेरा करते हैं ! सो जनाब वाला, इस ओर भी जरा ध्यान दीजिएगा !

—विचित्रानन्द

सुनने में आया है कि कवि सम्राट् 'हरिऔध'जी ने प्रयाग के महिला विद्यापीठ की मीरा जयन्ती में एक सज्जन के निबन्ध पढ़ने पर आर्डिनेन्स लगा दिया था । आखिर सम्राट् ही तो ठहरे !

❀ ❀ ❀

जब आदमी किसी चीज से हैरान हो जाता है, तो उसके उलटे की ख्वाहिश करने लगता है । जैसे गर्मी में सर्दी की और सर्दी में गर्मी की । जान पड़ता है इसीलिए ठाकुर गोपालसिंह लिङ्ग विरोधी वस्तु से आजिज आकर अब इसके अन्वेषण में व्यस्त हैं ।

❀ ❀ ❀

पता चलता है 'सुकवि' के लेखक कोई मुख्तार साहब 'निराला'जी पर मानहानि का दावा करने की तैयारी कर रहे हैं । क्या ऐसे समय में दुलारेलालजी अपने लँगोटिया यार की डूबती नौका का कर्ण नहीं धारण करेंगे ?

❀ ❀ ❀

२१ जनवरी की 'रंगभूमि' में प्रो० मनोरञ्जनजी की 'अरी ओ सुन्दरी बोल बोल' शीर्षक कविता छपी है । उसमें आप लिखते हैं—

'उठाती हो जब सर पर भार, हाथ से लेती उसे सँभार,
दिखाती तन की नवल बहार, देखकर मन उठता है डोल ।'

आप आगे फर्माते हैं—

'तुम्हारी यौवन ज्योति नवीन, झलकती अचल में अनमोल ।'

बापरे, क्या आफत है ! आपकी नजर हटती ही नहीं । इतने हो पर मान जायँ, सो भी नहीं , कहते हैं—

'मचल कर चल न सरे बाजार, बड़ा ही पापी है संसार ।'

देखिये न, एकही बार में बड़े बड़े महात्मा ब्रह्मचारी सब पर हाथ फेर दिया !

—एकलव्य

सहकारी सम्पादक—श्री प्रवासीलालवर्मा, मालवीय-द्वारा सरस्वती-प्रेस, काशी से मुद्रित और प्रकाशित।

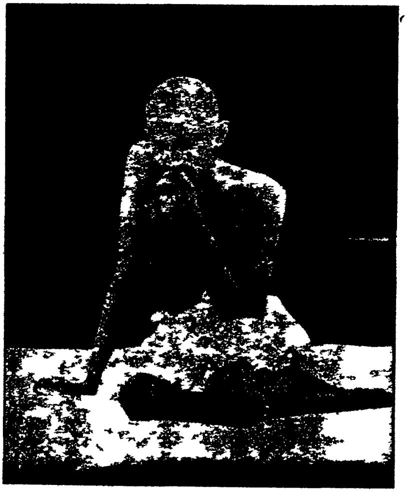
जागरण

THE JAGARAN | सम्पादक—प्रेमचन्द | Illustrated Weekly

वर्ष २ ‖ काशी, मि० फाल्गुन बदी ६ सोमवार, स० १९९० वि० : ता० ५ फरवरी सन् १९३४ ई० ‖ अंक २५

महात्मा गांधी

आज कल आप अपने भ्रमण में नित्य ही भूकम्प की कष्ट कथा सुनाते और सहायतार्थ चन्दा वसूल करते हैं।



बिहार भूकम्प पीड़ितों के लिये आप विदेशों में भी धन के लिए अपील कर रहे हैं।

ओस

बिखरे वैभव हैं कितने ये
नभ के आकर अवनी में ?
आभा का परिधान पहन कर
बिकने आये रजनी में।
सुन्दर सुमनों की आहों से
द्रवीभूत होकर आये,
जीवन देने दुखी हृदय को
उनकी आँखों में छाये।
मोल नहीं हो सकता इनका
इस अँधियारी दुनिया में,
फिर पीड़ा का राज्य छिपा है
इस जग की रँगरलियों में।
देखा मोती की लड़ियों को
नभ मण्डल का व्यापारी,
जाली फैलाकर किरणों की
ली बटोर निधियाँ सारी।

कृष्णकुमारसिन्हा 'कुमार'

जागरण

मि॰ फाल्गुन बदी ६ सोमवार, सं॰ १९९० वि॰

भावी महासमर तथा जापान

रूस के अधिनायक मोशिये स्टॉलिन की भावी महासमर के सम्बन्ध की ताजी विज्ञप्ति बडी रोचक, विचारपूर्ण तथा सूचनापूर्ण है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसार की इस समय जैसी दशा हो रही है, उसे देखते हुए यह विज्ञप्ति सत्य से बहुत ही निकट प्रतीत होती है। वर्गवादी दल कांग्रेस के सामने उन्होंने जो रिपोर्ट पेश की है, उसमें वे लिखते हैं—'पूँजीवादी देशों पर महासमर तथा बदला-वृत्ति का भूत छाया हुआ है। चीन जापानी युद्ध, मन्चूरिया में जापान की नीति, उत्तरी चीन की दिशा में जापान का बढ़ता जाना, जापान तथा संयुक्तराज्य अमेरिका का नौसैनिक शक्ति करण, बृटेन और फ्रांस का सेना में बढ़ती, इस से अवस्था और भी खराब हो गई है और पिछली बात का कारण प्रशान्त महासागर पर अधिकार करने के लिए उपरिलिखित चारों शक्तियों की प्रतिस्पर्द्धा है।'

मोशिये स्टॉलिन ने जितनी बातें कही हैं, वे नई नहीं हैं पर सभी मार्के की हैं। सचमुच भावी-समर का बहुत बडा कारण जापान की वर्त्तमान गृह नीति है और हालही में जापानी पार्लमेन्ट के सामने जापानी पर राष्ट्र-सचिव ने जो व्याख्यान दिया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जापान अपनी शान्ति प्रियता की जितनी ही दुहाई देता है, वह सब पोल है और वह अशान्ति की नीति का उतना ही प्रतिपादन करता है। चीन का अङ्गच्छेद कर, मन्चूरिया को स्वतन्त्र बना कर, उसमें अपना आर्थिक तथा राजनैतिक अधिकार जमा लेना, कहीं शान्ति प्रियता नहीं कही जायगी। चीन से अन्यायपूर्वक जेहोल छीन लेना शान्ति प्रियता नहीं कही जायगी। सोवियेट रूस की रलवे लाइन हडप लेने की चेष्टा करना शान्ति प्रियता नहीं कही जायगी और सब से बडी बात यह है कि अब भी यह कहना कि 'चूँकि चीन का भाव अमैत्रीपूर्ण है अतएव जापान लाचार है' घोर नादानी है और यह सिद्ध कर देना है कि जले पर नमक छिडकना भी दर्द को कम करना है। जापान चीन का क्या नहीं बिगाडा? सोवियट का प्रगति रोकने की वह क्या चेष्टा नहीं कर रहा है। 'अमेरिका उसकी उग्रता तथा प्रगति की किसी नैतिकता से नहीं, दार्शनिकता या दयालुता से नहीं, पर कोरे द्वेष के कारण विरोध करना चाहता है। प्रशान्त महासागर अमेरिका तथा जापान के बीच का समुद्र है। एक म्यान मे दो तलवार, एक वन में दो सिंह, नहीं रह सकते। उधर बृटन के लिए भी भारत तथा आस्ट्रेलिया तथा अन्य उपनिवेशों के कारण प्रशान्त महासागर बडा महत्वपूर्ण है। वह सिंगापुर का जहाजी अड्डा इसी हेतु से बनवा रहा है कि वक्त जरूरत काम आवे, अतएव बृटेन के अभ्युदय से भयभीत फ्रांस को भी कुछ करना ही पडेगा। ऐसी दशा में, इतने उग्र स्वार्थों का संघर्ष तो होगा ही। अमेरिका से वैर लेकर, बृटेन को प्रसन्न रख कर, अपना अस्तित्व बनाये रखने का जापान का पूरा प्रयास सफल नहीं हो सकता। एक न एक दिन भयंकर कलह खडा होगा और मोशिये स्टॉलिन का यह अनुमान सत्य है कि सारी जिम्मेदारी जापान की होगी।

काशगर और मुस्लिम विप्लव

चीन के अङ्ग भङ्ग का एक सामूहिक षड्यन्त्र हो रहा है। और काशगर चीनी तुर्किस्तान की जंगली मुस्लिम जातियों का विप्लव और उसके प्रति भारत के अर्ध सरकारी (एंग्लो इण्डियन) पत्रों की सहानुभूति हमारे मन में एक विचित्र शंका उत्पन्न कर देती है। 'डेली गजट', ने चीनी तुर्किस्तान में एक नई मुस्लिम जाति तथा राष्ट्र की स्थापना पर हर्ष प्रकट किया है तथा इस प्रकार भारतीय मुसलमानों का सहानुभूति तथा सहायता प्राप्त करने या 'दिखाने' की छिपी चेष्टा की है। इस नीति की जितनी निन्दा की जाय थोडी है। हमें भारत में चीनी राजदूत के इस कथन पर पूरा विश्वास है कि इस विषय में प्राप्त समाचार अधूरे, अविश्वसनीय हैं। तथा चीन-सरकार अपने अधिकार को जमाने की पूरी चेष्टा करेगी। चीन सरकार की सफलता की हरेक सच्चा भारतीय कामना करेगा तथा यह चाहेगा कि कुछ जंगली हमारे पडोसी की हानि न करें। साथ ही इस विषय में रूटर के तारों पर अभी विश्वास न करेगा।

विपत्ति-विपत्ति !

१९३४ अवश्य अपने साथ विपत्तियों का समुद्र लेकर आया है। भारत, चीन, और मेक्सिको की अरबों का हानि भूडोल से हो गई। हमारे देश में बिहार तथा युक्त प्रान्त के काशी, इलाहाबाद आदि की गहरी हानि का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। नेपाल बरबाद हो गया। पडोसी चीन की हानि की कहानी बडी दर्दनाक है। दर्दनाक ज्यादा इसलिए है, कि वहाँ रेल, तार-डाक आदि का प्रबन्ध न हो सकने के कारण सहायता नहीं पहुँच सकती, या बहुत देर में पहुँचेगा। इधर कई हवाई जहाजों के टूटने, गिरने, नष्ट होने के समाचार एकही महीने में प्राप्त हो चुके। २८ जनवरी का समाचार है कि अन्टार्टिक खोज का बेडा, अर्थात् कप्तान बर्ड का दल भङ्ग हो गया और ९३ आदमी बर्फ पर 'तैर' रहे हैं। एक स्थान में हजारों आदमी बर्फ की आँधी में बरबाद पडे हैं। बर्फ ने उनकी जान ले ली। मोटर तथा साइकिल दुर्घटना का औसत दुगुना होगया है। चोरी डकैती के समाचारों से अखबार भर पडे हैं। ज्योतिषियों ने १९३४ को 'उत्पातों' का वर्ष बतलाया है। लक्षण भी ऐसे ही प्रतीत हो रहे हैं। भारत में—बिहार आदि भागों में—जो गन्दगी फैल गई है, चीन में जो उत्पात हो गये हैं, उनसे गहरी बीमारी तथा संक्रामक रोगों के विस्तार का भय है। ऐसे विपत्ति के युग में ईश्वर ही रक्षा करे!

आश्चर्य है कि मनुष्य को महत्त्वाकांक्षाओं, उसके साधनों रचनाओं की इतनी कृत्रिमता तथा उसकी परवशता की, इतनी लाचारी की दुर्दशाओं की, ऐसी अवस्था देखते हुए भी, उसकी आँख नहीं खुल रही है तथा वह लालसा, लोभ, लालच, द्वेष, मत्सर के गढे में गिरता ही जा रहा है। ईश्वर हमें अब भी बुद्धि दे!

मुँगेर-मुज़फ्फरपुर की दशा

श्रीयुत जवाहरलाल नेहरू ने यह स्पष्ट कहा था कि यदि बिहार सरकार तत्परता से काम लेती, तो मुजफ्फरपुर में इतनी तबाही न आती तथा भूकम्प के तीन दिन बाद तक उसका कुछ न करना, इस नगर के लिये—अभागे निस्सहाय जनता के लिये—बडा ही घातक सिद्ध हुआ। ३१ जनवरी को काशी में टाउनहाल के मैदान में काशी के सर्वमान्य नेता श्री सम्पूर्णानन्दजी का जो रोचक व्याख्यान हुआ था, उससे भी यही प्रतीत होता है कि मुँगेर में सरकार से जो आशा की जानी चाहिये थी, तथा समाचार पत्रों मे सरकारी विज्ञप्तियों से जो विश्वास हो गया था, वह वास्तविकता से दूर है तथा इस मुसीबत के समय भी सरकार का सरकारीपन दूर नहीं हुआ तथा 'नौकरशाही' नौकरशाही ही बनी रही। मि॰ जायसवाल ने १० दिन पहले ही कहा था कि मुँगेर के विषय में सरकारी कार्य देखकर यह कहना पडता है कि बीसवीं सदी की सभ्य कहलाने वाली सरकार 'ऐसा' कर सकती है। हमें यह सब देखकर बडा दुःख होता है। बडी लज्जा आती है तथा यदि सरकार के ऊपर आक्षेप सत्य है, तो इसका बडा बुरा प्रभाव पडेगा। श्री सम्पूर्णानन्दजी का कहना है कि टाटा कम्पनी को जिस सहायता का बडा डङ्का पीटा गया है, वह भी ठिकाने से नहीं बाँटी गई है। मुँगेर में आर्तों के लिये केवल एक हजार टन 'टिन' ही मिले हैं, जो बहुत कम हैं। दाल में नमक के बराबर है। उनके कथन से तो यह भी प्रतीत होता है कि सहायता कार्य में शीघ्र ही सरकारी तथा गैर सरकारी लोगों मे पूरा मतभेद हो जाने वाला है।

'आज' में श्रीसम्पूर्णानन्दजी का मुँगेर से भेजा पत्र छपा था। इससे पता चलता है कि यद्यपि राजेन्द्रबाबू ने बाहरी 'आदमियों' की सहायता नहीं माँगी थी, पर यदि बाहरी लोग पहुँच गये होते और मलबा साफ कर देते, तो

हजारों जानें, जो केवल 'भूख प्यास' से तड़प कर मरी हैं, बच जातीं ! यह सन्तोष का विषय है कि कुछ बाहरी लोग स्वयं चले गये थे ! हमें यह रिपोर्ट पढ़कर बड़ा खेद होता है। जो भूख प्यास से मर गये, उनकी पीड़ा की कल्पना भी असम्भव है। ख़ैर, जो होना था, वह तो हो गया। जो बाहरी दल स्वयं पहुँच गया था, वह बिहार की कृतज्ञता का पात्र है, यद्यपि यह कृतज्ञता नहीं, पर सेवा की सार्थकता ही उसे अभीष्ट है।

सेवासमिति का सराहनीय कार्य

विगत चन्द्रग्रहण के अवसर पर, भीड़ कम होने पर भी यात्रियों का काफी जमाव था और ईश्वर ने वर्षा और शीत के कारण उन्हें काफी कष्ट दिया था, पर काशी-सेवासमिति ने यात्रियों की सुविधा तथा सेवा के लिये जो प्रबन्ध किया था, वह सराहनीय था और इसके लिये उसके मन्त्री श्री बेनीप्रसादजी तथा सहायक मन्त्री श्री त्रिवेणीदत्तजी धन्यवाद के पात्र हैं। सेवासमिति ने भूकम्प पीड़ितों की सहायतार्थ बड़ा परिश्रम किया है और अब उसने नगर के भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिये एक कमेटी ही बना दी है। आशा है, यह कमेटी अपने परिश्रम में सफल होगी। हमारा विश्वास है कि भूकम्प से इस नगर की जो बड़ी हानि हुई है और चूँकि सरकारी तौर पर अभी इसका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है सेवासमिति का यह कार्य उसके नाम तथा यश के अनुकूल होगा।

काशी सेवासमिति नगर की प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण संस्था है और यहाँ की हरेक नागरिक संस्था को उसके अन्तर्गत, सहयोग तथा सेवा द्वारा, उसकी सहायता करनी चाहिए।

वेश्या-वृत्ति और पूँजीवादी सभ्यता

लेखक—श्रीयुत परमानन्द

(गताङ्क से आगे)

प्रत्येक के जीवन में सदा आर्थिक नियम काम करते रहते हैं और इसी कारण बहुतों को लाचार होकर ऐसे काम करने पड़ते हैं, जिनसे वे समाज में नीच और निर्लज्ज समझे जाते हैं। थोड़ी देर के लिए चोर और डाकुओं की मिसाल ले लीजिये। एक आपके घर आकर रुपये चुरा लाता है, दूसरा पिस्तौल दिखला कर रुपयें छीन लेता है। अब सोचिये तो सही कि वे ऐसा क्यों करते हैं? यदि उनके पास खाने पीने का काफी सामान हो, पहनने को ट्रंकों में काफी कपड़े हों, अपने परिवार के लोगों का पालन करने के लिए, बच्चों को उचित शिक्षा देने के लिए यथोचित धन हो, तो वे अन्धेरी रातों में इधर उधर मारे फिरने का, अपनी जान हथेली में रखकर दूसरे के मकान में घुसने के खतरे का, क्यों सामना करेंगे। संसार में आनन्द पूर्वक रहने की यदि उन्हें उचित सुविधाएँ मिल जायँ, तो वे, अपने हाथ पैरों के बल अन्धेरी जगहों में, अनजान मकानों के भीतर, चुपके चुपके चल कर, अपनी जान खतरे में कभी नहीं डाल सकते। ठीक यही हालत वेश्याओं की भी है। उन्हें भी यदि सम्मान पूर्ण जीवन व्यतीत करने का मौका मिलता, रुपये पैसे की कमी न रहती, तो इस प्रकार का कलुषित जीवन व्यतीत करने को वे हर्गिज राजी न होतीं।

अतएव, यह कहना कि समाज में ये पापी—वेश्या, चोर, डाकू—बुरे हैं, और बड़े बड़े सेठ साहूकार—जो जनता से चूसे हुए धन का एक छोटा हिस्सा दान करके दानवीर कहलाते हैं—नेक, धर्मात्मा और भले हैं, सर्वथा अनुचित ही नहीं, बल्कि मक्कारी है। वाकया तो यह है कि हम में न कोई बुरा है और न भला। सभी अपनी अपनी परिस्थिति के अनुसार अच्छे-से अच्छा काम करना चाहते हैं और करते हैं। मैं इन 'पापियों' को उसी प्रकार निर्दोष बतलाऊँगा, जिस प्रकार बड़े रोजगारी, वकील, डॉक्टर अपने पेशे में दोषी नहीं समझे जाते। रुपये के लोभ में पड़ कर एक वकील वैसेही अपना आत्मा का हनन करता है, जैसे एक वेश्या। अपने बड़े बड़े कारखानों और कम्पनियों के सहारे एक अमीर, जनता को उसी प्रकार लूटता है, जिस प्रकार चोर या डाकू, जो बेचारे धन्धा रोजगार न पाकर और गरीबी से तङ्ग आ कर यह पेशा अख्तियार कर लेते हैं, किन्तु फिर भी एक पापी समझा जाता है और दूसरा धर्मात्मा। यह इसलिए कि अमीरों को रुपये लूटने के अच्छे ढंग मालूम हैं। उनके पास कल हैं, कारखाने हैं, बेशुमार रुपये हैं और कानून का शस्त्र भी है, जिसके सहारे अपना लूट का कार्य बड़ी आसानी से करते हैं। गरीबों के पास वैसा कोई साधन नहीं, और उन्हें दुनिया में रहने के लिए कोई स्थान भी नहीं। सभी स्थानों पर अमीरों का अधिकार है। ऐसी अवस्था में गरीबों के लिए रोटियों का क्या प्रबन्ध हो सकता है? ऐसे ही व्यक्ति, जिन्हें कोई अच्छा धन्धा न मिला, निराश और लाचार होकर अपनी प्राण रक्षा के लिए ऐसे निकृष्ट पेशे कबूल कर लेते हैं। इन में उनका क्या दोष? वे तो परिस्थिति के शिकार हैं।

आज कल की व्यापारिक नीति बड़ी तरक्की कर रही है। समाज का धन कुछ थोड़े से इने गिने मनुष्यों के हाथों में इकट्ठा हो रहा है। दूसरी ओर लोग महान् दरिद्र हो रहे हैं। इसका फल क्या होगा? यही कि कोई धन्धा रोजगार न पाकर लोग इन 'पाप' कहलाने वाले कर्मों की शरण लेने लगेंगे। कोई ठग हो जायगा, कोई चोर, कोई डाकू हो जायगा और कोई वेश्या क्योंकि अपनी प्राण रक्षा और सुभीता सभी खोजते हैं। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा रहती है कि वह अपना गुजारा आसानी से करे और समाज में इज्जतदार बनकर रहे, किन्तु उसके लिये चारों तरफ दरवाजे बन्द हैं, उनके जन्म के पहले ही से दुनिया के चप्पे चप्पे पर जमींदार और पूँजीपतियों का अधिकार हो चुका है। यहाँ पर वे इन अमीरों की लगाई गई जालिम शर्तों के अनुसार ही रह सकते हैं। ये जमींदार दूसरे मनुष्यों को अपने आनन्द के लिये लूटते हैं, जिससे उन बेचारों को घोर कष्टों में जीवन बिताना पड़ता है, परन्तु मनुष्य स्वभाव—पहले कहा जा चुका है—सदा आराम के साथ रहने की कोशिश करता है और फलतः अच्छे रोजगार न पाकर घृणित पेशे तलाश कर लेते हैं।

पिछले साल मुझे एक रईस की बारात में शामिल होने का अवसर प्राप्त हुआ। महफिल की रौनक के लिये वेश्या का प्रबन्ध हुआ था। वेश्या धनी थी और सुन्दरी भी गाना इत्यादि हो चुकने के पश्चात सभ्य रईसों ने उससे मजाक करना आरम्भ किया। वह भी सब के अश्लील और भद्दे मजाकों का अपनी कृत्रिम मुस्कराहट और कटाक्ष के साथ उत्तर देने लगी। मैं भौचक्का सा सभी देख सुन रहा था। सोच रहा था—वह इतने भद्दे मजाकों को सरे आम कैसे बरदाश्त करती है? क्या मनुष्य का इतना पतन हो सकता है?—आखिर मैं उससे पूछ ही बैठा। पहले तो उसने अपनी झिझक के कारण इसे हँसी में उड़ा देना चाहा। पश्चात मेरे हठ के कारण बड़ी गम्भीरता से बोली—बाबू साहब, यदि मैं भी आप लोगों के समान धनी होती, तो अपने से नीचों को अपेक्षा की दृष्टि से देख कर ऐसे ही प्रश्न करती। मेरा तो यही रोजगार है। अगर ऐसा न करूँ, तो भोजन कहाँ से मिले।—मैं सर्द हो गया। मेरे पास उत्तर ही क्या था।

वास्तव में बात यही है भी। प्राण और शरीर इकट्ठा रखने के लिये ही उन्हें अपनी आत्मा को नीचे झुकाना पड़ता है। वह हँसती है, मुस्कराती है, मुहब्बत की बातें करती है और अपने 'शिकार' को मुग्ध करने के लिये तरह तरह के छल बल भाव दिखलाती है परन्तु ये हँसी और प्रेमालाप सर्वथा कृत्रिम होते हैं।

यह बनावटीपन ही इनका पेशा है, वे इसलिये प्रेमालाप नहीं करतीं कि वे किसी व्यक्ति से प्रेम करती हैं, या उन्हें इसमें मजा आता है; बल्कि इसलिये कि वैसा करने से उन्हें रुपये मिलने की आशा रहती है। अपनी बेइज्जती सह कर भी उन्हें हँसना होता है। कोई कितना भी बेहया, बदसूरत और दुष्ट प्रकृति का क्यों न हो, उसके साथ भी उन्हें प्रेमालाप करना होता है, क्योंकि यही उनका पेशा है—रोटी-मक्खन का जरिया है।

एक मित्र ने मेरी इन बातों का खण्डन करते हुए बतलाया—वेश्याएँ अपनी इच्छानुकूल ही ऐसा काम किया करती हैं, उन्हें अपने कार्य में मजा मिलता है। अपनी धारणा की पुष्टि के लिये उन्होंने उन वेश्याओं का हवाला दिया, जो काफी धनी हैं और ऐसे घृणित कार्य में संलग्न भी हैं।

यदि हम लोग इस पर ध्यान पूर्वक सोचें, तो पता चलेगा कि बातें वैसी नहीं हैं। कारण प्रत्यक्ष है—

(१) वे वेश्याएँ, जो धनी होने पर ऐसा करती हैं, दूरदर्शिता से काम लेती हैं। वे उस समय तक ठहरना नहीं चाहतीं, जबतक कि उनके पास मे एक पैसा भी न रहे। अपने भविष्य सुख को वे निर्विघ्न कर देना चाहती हैं।

(२) आज कल की सभ्यता का ऐसा प्रभाव हुआ है कि धनवान बनने की इच्छा प्रत्येक प्राणी को रहती है। इस बीमारी से बहुत कम मनुष्य बचे हैं। कितना भी धनवान क्यों न हो, वह और भी धनी होना चाहता है। ये वेश्याएँ भी, वकील डाक्टरों की भाँति, इस प्लेग से वंचित नहीं हैं।

(३) यह जानते हुए कि यह पेशा नीच है, आर्थिक भावनाओं से लोग उसे नहीं बदलते, क्योंकि यदि एक मनुष्य किसी खास पेशे में सिद्ध-हस्त हो गया है और वर्षों से उसी पेशे की तालीम पाई है, तो उसके लिये उस पेशे को बदलना बहुत कठिन हो जाता है। एक रोजगार में तजुरबा हासिल करने मे न जाने कितने वर्ष लग जाते हैं, फिर कौन जाने कि नये रोजगार में सफलता मिलेगी, या नहीं। जान-बूझ कर खतरे में पड़ना कौन चाहेगा। वेश्याओं की भी ठीक यही हालत है। अपने पेशे को बदलने में उन्हें काफी आर्थिक खतरा है और उस खतरे का सामना करने का साहस विरले ही में है। आज बहुत सी ऐसी बहनें, जो धनी हैं और जिन्हें अच्छी शिक्षा का भी लाभ हुआ है, इस पेशे को छोड़ रही हैं।

बहुत सी वेश्याओं को शायद ऐसा संस्कार ही पड़ जाता हो कि कोशिश करने पर भी वे इस पेशे को नहीं छोड़ सकती हों। उनमें से बहुत सी यह भी सोचने लगती हों कि वे अपनी इच्छानुकूल ही कर रही हैं और यदि चाहें, तो छोड़ दें। वे स्वयं इसके मूल कारण को नहीं जानतीं। ध्यान देने से मालूम होगा कि इन सब व्यभिचारों का कारण, आज के सामाजिक संगठन में छिपा है। वे इसी पूँजीवादी संगठन की शिकार हैं। अपनी मर्जी के अनुसार वे हर्गिज वैसा नहीं कर रही हैं, उन्हें लाचारी है और वीभत्स लाचारी है।

मैं पहले कह चुका हूँ कि वर्तमान सभ्यता की नीव यदि पूँजीवाद रहा, तो ये पाप कहलाने वाले रोजगार अवश्य रहेंगे। यह न तो विधवाश्रम खोलने से रुक सकते हैं और न अनाथालय से, न कानून बनाने से रुक सकते हैं और न सुन्दर उपदेशों से। आज यदि संसार की सारी वेश्याएँ मार डाली जायँ और सामाजिक संगठन ज्यों का-त्यों रहे, तो कुछ दिनों में आप से आप वेश्याओं की उत्पत्ति हो जायगी क्योंकि अमीरों की लूट से गरीबों की दशा घोर कङ्गाली में डूबती जा रही है और कंगाली की चोट से बचने के लिए आदमी कुछ भी कर सकता है।

यदि हम इस पेशे को कानून द्वारा रोकने की चेष्टा करें, तो भी यह नहीं रुक सकता। भेद इतना ही रहेगा कि वेश्याएँ खुले आम बाजार में न बैठ सकेंगी और यह रोजगार गुप्त रूप से चलने लगेगा, जैसे—कोकीन इत्यादि के रोजगार कानून के खिलाफ गुप्त रीति से चलाये जारहे हैं। और तो और पूँजीवाद-व्यवस्था में ऐसे कानून बनाना असम्भव सा है, क्योंकि शासन सूत्र बड़े बड़े धनियों के हाथ मे रहता है और उनके लिए वेश्याएँ विलास की सामग्रियाँ हैं। अपने विलास से वे कब अलग होना चाहेंगे, जो ऐसे कानून बनने देंगे ?

इस कलङ्क को मिटा देने के कार्य में उपदेशकगण भी वैसे ही निकम्मे हैं, जैसे—कानून। उपदेशकों से कुछ भी नहीं हो सकता। वे सब को धर्मात्मा, ईमानदार तथा सज्जन बनने के उपदेश देते है और फरमाते हैं, कि धर्मात्मा मनुष्य ही सुख से जीवन व्यतीत करता है। पापी, झूठे, चरित्र-हीन और दगाबाज का जीवन दुःखमय होता है। किन्तु, प्रत्येक मनुष्य जानता है कि दगाबाज और झूठे ही यहाँ मौज उड़ाते हैं। सज्जन और धर्मात्माओं की सारी उम्र सख्तियों से लड़ती रहती है और इन सब का कारण है—सामाजिक व्यवस्था। ये उपदेशक अधिकांश तो अमीरों के एजेण्ट हुआ करते हैं, जो पूर्व-जन्म और पुनर्जन्म की झूठी फिलासफी में लोगों को भुलाकर निकम्मा बना देते हैं। अगर किसी सेठ ने अनाथालय बनवा दिया, तो वह धर्मात्मा के नाम से पुकारा जायगा। ये उपदेशक हमें यह बताने की कृपा नहीं करेंगे कि उसी धर्मात्मा की रक्त-शोषक नीति के कारण न मालूम कितने व्यक्ति अनाथ हो गये हैं और हो रहे हैं।

बस, इस पापाचार को रोकने की सिर्फ एक ही दवा है और वह है पूँजीवाद का नाश और स्वतन्त्रता तथा समानता की नींव पर समाज की नवीन रचना। वेश्यावृत्ति, चोरी तथा डकैती समाज की बीमारी नहीं हैं, वे सब किसी भयंकर बीमारी के लक्षण हैं। लक्षणों की दवा नहीं की जाती, दवा मर्ज की ही की जाती है। उसके छूटते ही लक्षण आप-से आप शान्त हो जाते हैं। यदि किसी मनुष्य का खून गन्दा हो गया हो, तो उसे तरह तरह के फोड़े उठेंगे, सिर दर्द रहेगा इत्यादि। उन फोड़ों पर आप लाख मरहम लगाएँ, वह आराम न होगा, क्योंकि वह तो केवल खून के गन्दा हो जाने के लक्षण हैं। यदि उसे उन फोड़ों से पिण्ड छुड़ाना है तो पहले खून साफ करने की दवा पीनी होगी। पश्चात् फोड़े आप से आप ठीक हो जायँगे। ठीक वही हालत यहाँ भी है। आप पूँजीवाद व्यवस्था मिटा दीजिये, ये पापी रोजगार आप से-आप मिट जायँगे।

आज पूँजीवाद व्यवस्था के कारण ही चारों ओर पाप पूर्ण रोजगार नजर आते हैं। एक ओर तो कुछ थोड़े से मनुष्य बड़े-बड़े महलों में बिना हाथ पैर हिलाये ही विलासमय जीवन व्यतीत करते हैं, दूसरी ओर जमान, कारखानों और खानों मे गरीब लोग दिन भर गुलामों के सदृश काम करके भी मुश्किल से जीवन व्यतीत कर रहे है। बहुत से मनुष्यों को जीवन निर्वाह का मौका ही नहीं मिलता। यदि उन्हें सुख से अपना रोटी पैदा करने का मौका मिले, तो वे ऐसे निकृष्ट कार्यों में हाथ क्यों लगावें। अमेरिका के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने एक बार अपने भाषण में कहा था—

"मैं दावे के साथ कहता हूँ कि मुझे संसार के किसी जेल से पाँच सौ नीच से नीच अपराधी तथा किसी शहर की गन्दी गलियों से निर्लज्ज से निर्लज्ज पाँच सौ वेश्याएँ चुन कर दे दो, और एक ऐसा स्थान दे दो, जहाँ उन लोगों के रहने तथा खेता बारी के लिये काफी जमीन हो। कुछ समय पश्चात् आप देखेंगे कि वे भ्रष्ट समझे जाने वाले लोग, उसी तरह के सभ्य और सज्जन बन जायँगे, जैसे संसार के साधारण मनुष्य होते हैं।

बिलकुल ठीक। यदि उन्हें अपने जीवन निर्वाह का मौका मिलेगा, तो भ्रष्ट पेशे का क्यों कबूल करेंगे। जिस मनुष्य के घर में इतनी सामग्री हो, जिससे वह सुख से अपना जीवन व्यतीत कर सके, तो वह चोरी डकैती क्यों करेगा। यदि अपने घर ही में आनन्द पूर्वक रहने का मौका मिले, तो वेश्याएँ अपने रूप और यौवन को बेच कर पैसे पैदा करने के लिये बाजार में क्यों बैठेंगी।

अतएव, यदि हम लोगों को मानव समाज के इस घोर कलङ्क को धोना है, तो सर्व साधारण को जीवन निर्वाह के लिये समान अवकाश देना होगा, अमीरों और गरीबों का भेद मिटाना होगा, जमींदारी इत्यादि जैसी प्रथाओं को—जो जनता के रक्त-शोषण की मशीनें हैं—ध्वंस कर देना होगा तथा हर प्रकार के विशेषाधिकारों को धूल में मिला देना होगा, जिससे साम्यवाद का आविर्भाव हो।

साम्यवाद के उस नवीन युग में, जब न कोई अमीर रहेगा न कोई गरीब, न अत्याचारी रहेंगे और न पीड़ित, ऐसे पापाचारी क्यों रहेंगे ? प्रत्येक पाप कार्य करने वालों का लक्ष्य साधारणतः जीवन रक्षा तथा धन पैदा करना ही होता है। जहाँ इसकी उन्हें गारण्टी है और साथ ही साथ शिक्षा तथा उन्नति की सुविधाएँ प्राप्त हैं, वहाँ ख्वाम ख्वाह नीच बनने की कोशिश कोई क्यों करेगा। यह मनुष्य प्रकृति के विरुद्ध है।

तात्पर्य यह कि पूँजीवादी सभ्यता ही इन सारे पापा-चारों का केन्द्र है। इसे ध्वंस कर दीजिये और देखिये कि आप ही आप यह वेश्या वृत्ति तथा अन्य पापाचार एक या दो पीढ़ी में समूल नष्ट हो जायँगे।

हरिजनों के अधिकार

लेखक—श्रीयुत नरेन्द्रदेव शर्मा साहित्य रत्न'

(गताङ्क से आगे)

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रिय जातयः।
वृषलत्वं गतालोके ब्राह्मण दर्शने-न च ॥ मनु० अ० १०-४३

अर्थात्—ये क्षत्रिय जातियाँ क्रिया लोप होने से शूद्र हुई हैं।

शूद्रों से ब्राह्मणों की उत्पत्ति

तपोबीज प्रभावैस्तु त गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षंश्चापकर्षंश्च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ मनु० अ० १० ४२

अर्थात्—युग युग में ब्राह्मण आदि जातियाँ उत्कर्षत्व (ब्राह्मणत्व) और अपकर्षत्व (शूद्रत्व) को प्राप्त होती रहती हैं।

शूद्रो ब्राह्मणता मेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्। मनु० अ० १० ६५

अर्थात्—वेदादि सत्य शास्त्रों को न पढ़ सकने के कारण ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त करता है और शुद्ध बुद्धि शूद्र शास्त्रों को पढकर ब्राह्मणता को प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट सिद्ध हो गया कि शूद्रों से भी ब्राह्मण हो सकते हैं

हमारे सनातनी भाई यदि ठण्डे दिल और विवेक बुद्धि से विचार करें, तो उनको पता चलेगा कि वह अपने से ही विच्युत भाइयों पर कुठाराघात कर रहे हैं, अपनी तीव्र बुद्धि का परिचय देते हुए सनातनी भाई ऐसा भी कह उठते हैं कि 'गधा कभी गौ नहीं हो सकता और गौ गधा नहीं' इसका भी भविष्य पुराण में बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। यथा ऋषय ऊचु —

भो ब्रह्मनादि कल्पेहि ब्राह्मण्य ब्रूहि किं भवेत।
जात्यध्ययन देहात्म संस्काराचार कर्मणाम् ॥ भवि० पु० ब्रह्म० पर्व अ० ४

अर्थात्—ऋषियों ने कहा, हे ब्रह्मन ! आदि कल्प में ब्राह्मणादि की व्यवस्था जन्म से होती है अथवा पठन पाठन आत्म संस्कार आदि कर्म से।

ब्रह्मोवाच—पुरुषानुगता जाति ब्राह्मणत्वादिकास्ति चेत्।
द्विवर्ण जाति भेदेन प्रत्यक्षार्थोप लक्षणान् ॥
गोवर्गमध्य च गता यथाऽश्वानिधीर्यतक्षै सुविचक्षणत्वात्,
मनुष्यभावात् विशिष्यमानस्तद्वद्विजः शूद्रगान्नभिन्न.।
मनुष्यजातेर्न परोविशेषोयः कल्प्यतेसर्वं नरानुयायो,
संस्कार युक्ताहिक्रिया विशिष्टा द्विजन्मनां शूद्रविवेकहेतु।
तस्मान्नगोऽश्ववन् कश्चिज्जाति भेदोऽस्ति देहिनाम्,
कार्य शक्ति निमित्तस्तु संकेत. कृत्रिमो भवेन्।
भवि० पु० ब्राह्मपर्व १ अ० ४० श्लो १९ २० २१-३४

अर्थात्—ब्रह्मा बोले यदि ब्राह्मणादि जाति किन्हीं पुरुषों के सङ्ग हो तो उसकी वर्णभेद से प्रत्यक्ष प्रतीति हो, गौवों के मध्य मे गया हुआ घोड़ा बुद्धिमानों से प्रत्यक्ष पहचाना जाता है परन्तु ब्राह्मणों के मध्य में गये हुए शूद्र भिन्न नहीं पहचाने जा सकते। इसलिये ब्राह्मणों और शूद्रों में गौ घोड़ों की तरह कोई भेद नहीं है। ब्राह्मण आदि का संकेत कर्म करने की शक्ति से ही होता है, जन्म से नहीं।

शास्त्रों ने कितनी उत्तमता से ब्राह्मणादि जाति की व्यवस्था की है किसी के, नाम ब्राह्मणत्व की रजिष्ट्री नहीं की परन्तु तो भी भारत भू भार पापाचार प्रचारक जठरज्वाला की पूर्ति के लिए शास्त्रों के नाम पर जनता की आँखों में धूलि प्रक्षेप करने वाले नवीन सनातनी शास्त्र सिद्ध हरिजनों के अधिकारों पर सर्पफणि पसारे बैठे हैं, तिल भर भी टस से मस नहीं होते। आज महात्मा गान्धी तथा महामना मालवीय जैसे लोक प्रसिद्ध नर रत्नों को गाली देना ही सनातन धर्म रक्षा का सरल उपाय समझ लिया है, हरिजनों को हरि दर्शन करने के विरोध में निन्दनीय से निन्दनीय व्यवहार करने वाले इन शास्त्र शत्रुओं से हमारा निवेदन है कि देखो शिव पुराण अ० १८ कथा का वर्णन इस प्रकार है।

एक व्याध ने वृक्ष पर बैठे किसी पक्षि को बाण मारा। बाण से पतित बेल पत्र तत्रस्थ शिवलिङ्ग पर गिरे, भोले महादेव ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये, तब व्याध दिव्य स्वरूप महादेव के दर्शन कर तुरन्त ही मोक्ष को प्राप्त होगया। अरे सनातन धर्मी भाइयो ! कुछ तो समझो जब अनायास बिल्व पत्र पड़ने से भोले बाबा इतने प्रसन्न होगये और दर्शन देकर नीच व्याध का भी उद्धार किया, तो क्या उत्कट इच्छा से दर्शनों के लिए लालायित देव दर्शन करके हरिजन भाइयों का सुधार नहीं होगा। फिर पाषाण लिङ्ग पूजन का अधिकार तो शूद्रों को शिवपुराणों में स्पष्ट दिया गया है।

यथा—स्वर्णलिङ्गन्तु वैश्यानां महा धन पतित्वदम्।
शिलालिङ्गान्तु शूद्राणां महा शुद्धि कर शुभम् ॥

अर्थात्—सोने का लिंग वैश्यों को और पाषाण का शूद्रों के लिए महाकल्याणकारी है। पाषाण लिंग पूजन का अधिकार नितान्त शूद्रों को ही है, इसमें सनातनियों को सन्देह नहीं करना चाहिये इसलिए सर्व देव मन्दिरों को जहाँ पाषाण लिंग की पूजा होती है उनमें बिना ननुनच के हरिजनों का प्रवेश होना चाहिए, क्योंकि शास्त्र इस बात की स्पष्ट घोषणा कर रहा है। यदि कोई कहे कि हरिजनों को केवल लिङ्ग पूजन का ही अधिकार है, मन्दिर प्रवेश का नहीं, तो उसके लिए भी देखिये एक प्रेत ने किसी वनिक से कहा—

प्रतिष्ठान पुरवरे विष्णाराय तन महन्।
प्रभात समये तत्र विष्णाराय तन शुभे ॥
ब्राह्मण क्षत्रिया वैश्या शूद्रास्तत्र समागता। वाराह—१६५ श्लो ३९

अर्थात्—प्रतिष्ठान नाम उत्तम नगर में एक विष्णु का मन्दिर है। प्रात काल उस मन्दिर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी उसमें इकट्ठे होते हैं, इससे सिद्ध होगया कि हरिजन, बिना किसी छूआछूत के मन्दिर में जा सकते हैं। आज महात्मा गान्धी हरिजनों के अधिकार रक्षा के लिए सर्व समर्पण कर रहे हैं, वहाँ हमारे कट्टर पन्थी शास्त्रों का डिंडिम पीटते हैं, परन्तु अवसर पड़ने पर उससे भी खिसकते हैं। स्वार्थी दाषान्ध यशपति पूर्वजों के नाम कलङ्कित, भारत विध्वंसक, शास्त्रों को बदनाम करने वाले, सत्य रूपी सूर्य के प्रकाश में भला कब ठहर सकते हैं, निशाचर तो अमावस्या की अन्धतम निशा को ही चाहता है। धर्म धुरीणों को चाहे शास्त्र का प्रमाण दो, चाहे सयुक्तिक प्रत्यक्षादि प्रमाणों का, परन्तु इनके यहाँ सब टके सेर कोई अधिक दर की बात नहीं। वैष्णव धर्म ध्वज रामानुजादिकों के आचार्य्य शठकोपाचार्य शूद्र कुलोत्पन्न नर-रत्न थे, जिनके शिष्य आज कल सनातन धर्म के आधार स्तम्भ मन्त्री, सभापति तथा धुरन्धर प्रचारक हैं। अब भी वृन्दावन आदि मन्दिरों में अपने शूद्र आचार्य की पुण्य स्मृति में धेनुकोत्सव और वैकुण्ठोत्सव बड़े चाव भाव से मनाये जाते हैं, इससे कोई सज्जन इनकार नहीं कर सकते।

सनातनी भाइयो ! समझो और सोचो ! संस्करण शील संसार की प्रगति को रोकना साध्यातीत है, उसके प्रत्येक कार्य भी ईश्वरीय नियमानुकूल ही प्रतीत होते हैं। प्रत्येक वस्तु का परिवर्तन भी उसके अन्तर्निहित ही है, सर्व शास्त्र भी उसी के प्रवचन हैं। आज जो पद क्रान्त हैं, उसके सुनियमानुसार वह कल अवश्य सर्व सिद्धियों से विभान्त होंगे। यदि इस समय दीन दुखियों पर अत्याचार करोगे, तो उस समय सन्तप्त होकर अवश्य पश्चात्ताप करना पड़ेगा। अभी से सँभलो और भारत का अध पतन होते होते बचालो। शास्त्र के नाम पर आतङ्क मत उठाओ, क्योंकि शास्त्र आप के घर की उपज नहीं रहे। आज हरिजन भी अपने अधिकारों की रक्षा के लिये पुराणों के पन्ने उलट रहे हैं, यदि आप अत्याचार करना छोड़ दोगे, तो शास्त्र सबको सत्य पथ पर ले जायँगे, पुनः भारत में सुख शान्ति का सञ्चार होने लगेगा और तभी सबका कल्याण होगा। अन्त में हम सत्यप्रिय सनातन धर्म निष्ठ देशकालज्ञ सज्जनों से इतना और निवेदन कर देना चाहते हैं कि हमने हरिजनों के अधिकारों के सम्बन्ध मे जितने प्रमाण ऊपर दिये हैं, इनके अतिरिक्त भी सैकड़ों प्रमाण शास्त्रों में मौजूद हैं, जिनका समय समय पर उल्लेख किया जायगा, विचारशील सज्जन सत्य को ग्रहण करके यथा शक्ति हरिजन उद्धार करें, क्योंकि इन्हीं के उठने से हिन्दू जाति का कल्याण होगा और भारत उद्धार भी तभी हो सकेगा।

(८वें पृष्ठ का शेषांश)

जो दरिद्र था, आज उस पर लक्ष्मी पूर्णत प्रसन्न दिखलाई पड़ती हैं। चालीस वर्ष के पश्चात् बात की-बात में उसने दो करोड़ रुपया पैदा कर लिया !

आज एक वर्ष हुआ 'बरनार मेकफेडन' ने एक ट्रस्ट बनाया है, जिसका नाम है—'मेकफेडन फाउन्डेशन फार फिजीकल कल्चर।' शरीर साधना के लिये ही मेकफेडन ने इस संस्था की स्थापना की है और अपनी साठ लाख डालर की सम्पत्ति अपने 'फिजीकल कल्चर' 'ट्रू स्टोरीज' और और 'ट्रू रोमान्सेज' नाम के तीन मासिक-पत्रों की मालिकी, अपने फिजीकल कल्चर होटल और फिजीकल कल्चर स्कूल, सेनोटेरियम आदि सब ट्रस्ट के आधीन कर दिये हैं। इस समय मेकफेडन के पास कुछ भी नहीं है, ट्रस्ट इन्हें एक छोटी सी निश्चित रकम देती है और रहने के लिये एक मकान दे रखा है। सब संस्थाएँ स्वदेश सेवा में निमग्न हैं और मेकफेडन का यश विस्तृत कर रही हैं।

(फू० ला० के एक लेख के आधार पर)

वह पागल जिसने २ करोड़ रुपया एकत्र करके संसार के हित-साधन में व्यय किया

लेखक—श्री वीरेन्द्र वर्मा, मालवीय

आज से ४० वर्ष पूर्व अमेरिका की दशा ठीक भारतवर्ष से मिलती-जुलती थी। अनेक प्रकार की कुरीतियों ने अमेरिकन जीवन को जकड़ रखा था। सिगरेट, शराबखोरी और विलासिता ने अमेरिका का वातावरण कलुषित बना रखा था। सम्पूर्ण देश का स्वास्थ्य खतरे में था। मानसिक अवस्था अधःपतन की सैर कर रही थी और 'आध्यात्मिक उन्नति करो, आत्मा का विकास करो' का ढोल पीटा जा रहा था। जीवन संग्राम के मूल आधार स्वास्थ्य पर कोई भी ध्यान नहीं दे रहा था। विनाशक व्यसन और घातक कुसंस्कार जीवन को विद्रूप और भयानक बनाने का अथक उद्योग कर रहे थे! ऐसे विपत्ति काल में एक 'पागल' ने खतरे की घंटी बजाई और स्वदेश का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया! वह कौन था?—बरनार मेकफेडन।

स्वदेश हितैषी वह पागल! राज मार्गों में घूम-घूम कर तीव्र स्वर से कहता फिरता था—'उन्नति के मूल मन्त्र स्वास्थ्य पर ध्यान दो, मृत्यु के मुख में जाने वाले कृषाग स्वास्थ्य पर दृष्टि डालो!' और राष्ट्र के 'जीवन दीप' को बुझने से बचाओ! जीवन के सबसे पहले और महत्त्व पूर्ण कर्तव्य का पालन करो, 'शरीर माद्य खलु धर्म साधनम्' अतः शरीर की साधना करो! धर्म साधना का आदि साधन शरीर ही है। यही कर्तव्य पालन का मूल आधार है, इसे सँभालो?' वह न्यूयार्क शहर की ठोस बस्ती से आश्चर्य के साथ प्रश्न करता था—मनुष्य साक्षात् सत्य की उपेक्षा क्यों करता है? सत्य उसकी समझ में क्यों नहीं आता? किन्तु इसका उत्तर उसे इन शब्दों में मिलता था—यह पागल है! बकता है! इसका मस्तिष्क विकृत होगया है!

किन्तु, वह तो वीर था, वीर अपने सिद्धान्तों के पक्के होते हैं। वह संसार के असहयोग से नहीं डरता, मुकाबिला करने का साहस दिखलाता है! वह अपने पागलपन पर अटल था, समाज की उपेक्षा की उसने परवाह न की और वह अपने संकल्प पर अटल और दृढ़ रहा, उसने निश्चय कर लिया था कि देश को बरबाद करने वाले व्यसनों, अज्ञान और भ्रम को मैं बरबाद कर दूँगा! स्वास्थ्य-शालाओं के द्वारा देश की संकट से रक्षा करूँगा! और वह अपने लक्षित कार्य में जुट गया।

एक दिन वह पागल एक गिर्जे में आ पहुँचा! वह विशाल काय गिर्जा राज महल की क्षमता रखता था। उसकी दिवारें कलाकारों की सुन्दर कला से सुशोभित थीं। मुख्य द्वार पर बहु मूल्य नक्काशी की गई थी और खिड़कियों को अद्भुत ढंग से बनाया गया था। रंग बिरंगे मूल्यवान चित्रों से उसका अन्तरंग सुसज्जित था। उसके प्रत्येक स्तंभ पर रत्न जड़े हुए थे। जीसस का क्रास और जीसस का चित्र स्फटिक स्तंभ पर खुदा हुआ था। अपनी आकर्षक चमक से सब का मन अपनी ओर खींचने की उसमें अनुपम शक्ति था। सुगन्धित धूप की दिव्य सुवास आह्लाद प्रदान कर रही थी। गिर्जे के व्यास पाठ से धर्माचार्य आदेश कर रहे थे—'आत्मा का विकास करो। आत्मोन्नति की साधना करो, साधक बनो। जगत् पिता के साथ एक रूप बन जाओ। सांसारिक माया का त्याग करो। स्थूल शरीर के मोह में मत फँसो। शरीर तो निर्बल है और निर्बल ही रहेगा। शरीर की परवाह मत करो। आत्मा में ध्यान दो, सूक्ष्म में दृष्टि गड़ाओ। इस भौतिक जगत् को विस्मृत करदो। परोक्ष जगत की ओर अपना लक्ष्य करो। यही तत्त्व है।' व्हिस्की की बोतलें, जिनके जेबों की शोभा बढ़ा रही थीं, जिनके मस्तिष्क में व्यापार क्रीड़ा नृत्य कर रही थी, नख से शिख पर्यन्त जिनके शरीर पर बहु मूल्य वस्त्राभूषण आच्छादित थे और जिनके उदरों में कीमती स्वादिष्ट पदार्थों के स्वाद घुटते थे, वे विलास के पुतले कह रहे थे—आमीन—एवमस्तु! ठीक इसी समय उस पागल ने कहा—'धर्मगुरु! आप भूलते हैं। शरीरोन्नति के बिना आत्मोन्नति कैसे हो सकती है? प्रकट सत्य को आप क्यों भूलते हैं? मानव जाति के स्वास्थ्य और शरीर की उन्नति के मार्ग में आप धर्म और ईश्वर के पवित्र नाम पर बाधा न डालिये।' किन्तु नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है! 'वह पागल है, उसका मस्तिष्क विकृत हो गया है'—सबने कहा।

कोमल और दुर्बल शरीर वाले उस पागल ने, स्वास्थ्य और स्फूर्ति की शोध करने पर मानव मात्र को स्वास्थ्य प्रदान करने वाला एक अद्भुत और अचूक कीमिया खोज निकाला और उसने उसको व्यवहार में लाना आरम्भ कर दिया।

तब उसने आश्चर्य के साथ अनुभव किया कि इस सूर्य के प्रकाश का आनन्द लेने के लिये समाज भी उत्सुक है, किन्तु फिर भी मानव प्रत्यक्ष का आनन्द लेने के लिये उतना उत्सुक नहीं है, जितना कि परोक्ष का। वह जिधर दृष्टि डालता था, सभी उसे दुर्बल, व्यसनी, अस्वस्थ, अर्ध स्वस्थ शरीर की ओर से उपेक्षा दिखलाने वाले ही दृष्टि पड़ते थे। उसके हृदय में करुणा भर आती थी। स्वास्थ्य सुधार के अपने अनुभूत प्रयोगों को वह घूम घूम कर जनता को समझा देना चाहता था, जिससे कि वह अपनी इस होने वाली हानि से रक्षा कर सके; किन्तु फिर भी लोग उसे पागल समझते थे।

जिस दिन यह बात उसकी समझ में आई कि अज्ञान, वहम और उदासीनता की आँधी में सूर्य का प्रकाश ग्रस्त हो गया है, उसी दिन से उसने 'स्वास्थ्य सुधार' अपना धर्म बना लिया। इस प्रकट सत्य का प्रचार उसका ध्येय बन गया।

अविचार और ला-परवाही से होने वाली शारीरिक क्षति के भीषण परिणाम समझाकर वह इस बर्बरता को नष्ट कर देना चाहता है। अज्ञान से होने वाले शारीरिक पतन का प्रतिकार करने के लिये वह अज्ञान और भ्रम को नष्ट कर देना चाहता है। वहम, जड़ता और रूढ़ि-पूजा से वह मनुष्य की आस्था उठा देना चाहता है। आज के स्वास्थ्य-रक्षा के अन्धकारमय वातावरण में अन्धकार का ह्रास चाहने वाला वह सबसे पहला मशालची है। सबसे पहला दूत है।

धर्म गुरुओं ने उसे जड़वादी कहा, लोगों ने पागल कहकर उसका मजाक उड़ाया। उसने परवाह न की, शरीर सिद्धि के विरोधी डाक्टरों ने उसे 'नीम हकीम' कहा, उसने इस उपालम्भ पर ध्यान भी न दिया। इस त्रिमुखी विरोध का वह दृढ़ता पूर्वक सामना करता रहा। वह साहस के साथ कहता रहा—एक सच्चे मनुष्य का सबसे पहला कर्तव्य अपने शरीर को सँभालना है, स्वास्थ्य का निर्माण करना है!

सन् १८९७ में उसने अपने सन्देश को अधिक स्थायी स्वरूप प्रदान करने के लिये 'फिजीकल कल्चर' नामक मासिक-पत्र निकालना शुरू किया, उसमें उपदंश और धातु सम्बन्धी रोगों के कारण और गंभीर परिणामों पर प्रकाश डाला गया था। इस पर विरोधियों द्वारा काफी हो हल्ला मचा, तथा एक मुकदमा भी चलाया गया कि लेख में काफी गन्दगी थी। परिणाम-स्वरूप 'मेकफेडन' को जेल यात्रा करनी पड़ी, किन्तु इससे उसका कार्य बन्द न हुआ; प्रत्युत वेग से चलने लगा। और वह मासिक आज संसार भर में विख्यात है। कौन ऐसा अंग्रेजी साहित्य प्रेमी है, जो इसका नाम नहीं जानता। 'मेकफेडन' के सहयोगियों ने उसका कार्य अपने हाथ में ले लिया, साथ ही एक बड़ी सभा करके उन्होंने 'मेकफेडन' के विचारों की महत्ता बताई और जनता को जताया कि अज्ञान के कारण तथा मौज शौक से उत्पन्न होने वाले रोग, जो उनके हृदय में घर बना चुके हैं, उनके लिये कितने अधिक घातक हैं! और व्यसन उनके जीवन के लिये कितने खतरनाक हैं! मेकफेडन के सहयोगियों ने प्रधान मंत्री से मेकफेडन को छोड़ देने के लिये प्रार्थना भी की और वह मंजूर हुई, फल स्वरूप मेकफेडन छोड़ दिये गये।

जेल से मुक्त होने पर मेकफेडन के हृदय में शरीर साधना 'Physical cultur' के नियमों को जन समाज में ओत प्रोत कर देने की अत्यधिक इच्छा जागृत हुई और उसने शरीर के प्रति की जाने वाली लापरवाही तथा शरीर को अयोग्य बनाने वाले अज्ञान, वहम और रूढ़ियों के प्रति विद्रोह आरंभ कर दिया। चालीस वर्षों के पश्चात् उसे अपने कार्य में सफलता मिली है। अमेरिका में ही नहीं, लगभग पूरी दुनिया पर 'मेकफेडन' ने विजय प्राप्त किया है। सबने स्वीकार कर लिया है कि 'जीवन विकास' में शरीर के स्वास्थ्य का मुख्य स्थान है! शरीर की स्वस्थता के बिना धर्म साधना असम्भव है, शरीर की उपेक्षा अवाछनीय है, समस्त कर्तव्यों के पालन का मूल श्रेय शारीरिक स्वास्थ्य को है! स्वास्थ्य नहीं, तो कुछ नहीं।

आज इटालियन और पोर्तगीज सरकार 'मेकफेडन' की शिक्षा अपनी प्रजा के लिये आवश्यक समझकर अपने युवकों को उसके पास शिक्षा के लिये भेजती है। स्वीस सरकार अपने और अन्य राष्ट्रों की प्रजा के युवकों को शिक्षित बनाने के लिये 'मेकफेडन' को निमंत्रित करती है। 'मेकफेडन' का कार्य आज सर्व-स्वीकृत बन गया है, आज उसका वास्तविक सम्मान किया जा रहा है! एक दिन ऐसा था कि खाद्याखाद्य का विचार केवल डॉक्टरों का ही विषय समझा जाता था। उपवास केवल मुमुक्षुओं के ही मोक्ष-साधन की क्रिया समझी जाती थी, किन्तु आज वह दिन लद चुका, जनता में नवीन स्फूर्ति का संचार हुआ है! नवीन संस्कृत विचारों ने उसके हृदय पर अधिकार कर लिया है, और यह सब उस वीर मेकफेडन का ही प्रभाव है, उसी को इसका श्रेय है!

मेकफेडन ने खाद्याखाद्य और पेयापेय के सिद्धान्तों पर एक 'फिजिकल कल्चर होटल' या रेस्टोराँ भी खोल दिया है, जिससे काफी लाभ सिद्ध हुआ है। न्यूयार्क से थोड़ी दूर न्यूजर्सी में मेकफेडन ने तीन सहस्र एकड़ जमीन ली और वहाँ 'फीजीकल कल्चर एकेडेमी' की स्थापना की। धीरे धीरे इस प्रकार के होटलों की माँग बढ़ती गई, साथ ही उपदेशकों की भी माँगें बढ़ीं और 'ट्रू स्टोरीज़' नामक एक मासिक पत्र और निकाला गया, उसका भी पर्याप्त सम्मान हुआ। इस तरह कल

(शेषांश ७वें पृष्ठ के नीचे)

जीवन्मुक्त महात्मा श्री तैलंग स्वामी का तत्वोपदेश

लेखक—श्रीयुत अमितनाथ भट्टाचार्य, बी० ए०, एल-एल० बी०

(गतांक से आगे)

तन्त्र में षट्चक्र भेद

इड़ा और पिङ्गला नाड़ी के मध्य में सत्व, रजः और तमः गुण से विशिष्ट, चन्द्र, सूर्याग्नि रूप, शुभ्र, सुषुम्ना नाड़ी है; इस नाड़ी में चार दल हैं, और मूलाधार पद्म से लेकर मस्तक में ब्रह्मरन्ध्र तक गया है। इस सुषुम्ना नाड़ी में प्रथित गुह्य, लिङ्ग, नाभि, हृदय, कण्ठ, भ्रू (भौं) और मस्तक में, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मनिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार के नाम से सात पद्म हैं। इस सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में मणि की तरह उज्ज्वल प्रभायुक्त वज्रा नाम की नाड़ी है, फिर उसके भीतर चन्द्र, सूर्य, अग्नि स्वरूप, ब्रह्मा, विष्णु, शिवयुक्त मकड़ी के जाल के सूत की तरह चित्रा नाड़ी है। निर्मल ज्ञानोदय जब तक नहीं होता है, तब तक इस नाड़ी को कोई जान नहीं सकता है। फिर इस चित्रा नाड़ी के मध्य में ब्रह्म नाड़ी के नाम से एक अत्यन्त सूक्ष्म बिजली की तरह उज्ज्वल और एक नाड़ी है, इसके छिद्र से ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रार पद्म से सुधा निकलती है। योगी लोग इस सुधा को मूलाधार के पद्म में स्थित कुण्डलि-शक्ति से पी कर चिदानन्द भोग करते हैं।

मूलाधार चक्र गुह्य में है

यह चतुर्दल, रक्तवर्ण, स्वर्णाभ अधोमुख पद्म है (साधक को ध्यान के समय ऊर्द्ध मुख होकर चिन्ता करनी चाहिये।) इसके चारों दल में वं, शं, षं, सं, ये चार वर्ण हैं, कर्णिका में चतुष्कोण पृथ्वी चक्र है, यह चक्र उद्दीप्त, पीतवर्ण, अष्टशूलयुक्त है, उसके बीच में लं अर्थात् पृथ्वी बीज है और उसके साथ लक्ष्मी बीज है। इस चक्र के देवता इन्द्र हैं, उनके गोद में चतुर्भुज ब्रह्मा भौतिक पदार्थों की सृष्टि कर रहे हैं और चतुर्वेद पाठ कर रहे हैं। इस चक्र में रक्तवर्ण चतुर्बाहु, द्वादश सूर्य के तुल्य, डाकिनी शक्ति विद्यमान है। वज्रा नाड़ी के मुख पर कामरूप नाम का पीठ है, उसके मध्य में त्रिकोण यन्त्र है। इस यन्त्र से निकला हुआ कन्दर्प वायु जीवात्मा को अपने अधिकार में कर लिया है। इस त्रिकोण यन्त्र के मध्य में शरदिन्दुप्रकाश लिङ्गरूपी स्वयम्भू हैं।

इस लिङ्ग के पात्र में अर्ध त्रिपाक को घेर कर ब्रह्म नाड़ी के मुख के पास कुण्डलि शक्ति निद्रिता (सोई हुई) है, यही महामाया है, यह भौंरे की तरह नाद कर रही है, यही शब्द जननी है, यही श्वास प्रश्वास के विभाग से प्राणियों की रक्षा करती है। इस कुण्डलिनी के देह के भीतर परमाकला त्रिसरा रूपा प्रकृति सकल ब्रह्माण्ड को प्रकाश कर रही है।

स्वाधिष्ठान चक्र लिङ्ग-मूल में है

षट्दल अरुण वर्ण पद्म है। इसके षटदल में षट् वर्ण ब, भ, म, य, र, ल है। उसके बीच में श्वेत पद्माकार वरुण देवता का चक्र है, इस चक्र के बीच शरच्चन्द्र द्युति, मस्तक में अर्धचन्द्र धारी, मकरारोही वं बीज रूप वरुण देवता हैं। उस देवता की गोद में चौबीस लक्षणों से युक्त पीताम्बर नारायण हैं। इस चक्र की शक्ति लक्ष्मी रूपा राकिनी है।

मणिपुर चक्र नाभि-मूल में विद्यमान है

दसदल नील वर्ण पद्म है। दसो दल में ड, ढ, णं, त, थं, द, धं, न, प, फ, इन दस अक्षरों से युक्त वर्ण है। उसके ठीक मध्य में र कारात्मक त्रिकोण वह्नि बीज है। स्वस्तिमण्डल उसको घेरे हुए है। यह वह्नि देवता चतुर्भुज है, रक्त सूर्य के समान और मेषवाहन है। उनके गोद में इष्टदाता और संहारकारी महाकाल हैं। इस चक्र की शक्ति लाकिनी है, और यह श्याम वर्ण की है।

अनाहत चक्र हृदय में है

सिन्दूर वर्ण द्वादश दल पद्म है। इन द्वादश दल में कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं वर्ण युक्त पद्म है। उसके बीच में षट्कोण धूम्र वर्ण वायुमण्डल है, उसके मध्य में य कारात्मक वायु बीज देवता कृष्णसार मृगारूढ़ हैं। इस बीज के मध्य में हंस की नाईं शुक्लवर्ण अभय वरदाता ईशान महादेव हैं। इस चक्र की शक्ति काकिनी है, यह पीतवर्ण आनन्दमयी है। इस पद्म के मध्य में अत्यन्त कोमल त्रिकोण शक्ति है। इस शक्ति के बीच में सुवर्ण वर्ण बाणलिङ्ग महादेव हैं।

इसके सिवाय इस पद्म के मध्य में और एक द्वितीय अष्टदल पद्म है, उसमें एक कल्प वृक्ष है, उसके नीचे मणिपीठ में हंसरूपी जीवात्मा विद्यमान है। साधक इसी स्थान पर गुरु से उपदिष्ट इष्ट देवता का ध्यान करें, तभी आत्मदर्शन होगा।

विशुद्ध चक्र कंठ में विराजमान है

धूम्राभ षोडश दल वर्ण अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः षोडश (सोलह) स्वर युक्त पद्म है। कर्णिका के मध्य में सुधाकर्षण, उज्ज्वल शरीर धारी, शुभ्र वर्ण, करिपृष्ठ में, शुक्लाम्बर पहने हुए, गोलाकार आकाश चक्रधारी हैं। इस चक्र के मध्य में हुताकार पाशाङ्कुश धारी, द्विभुज, और अभयवर प्रद, आकाश बीज हैं। उनके गोद में पञ्चमुख, त्रिनेत्र, दसभुज, हरगौरी हैं।

उक्त कर्णिका के मध्य में चन्द्रमण्डल के सुधापान में रत, पीतवर्ण वाली चतुर्भुजा साकिनी शक्ति है।

आज्ञा चक्र दोनों भौं के बीच में है

यह ध्यान का स्थान है, शुक्ल वर्ण, द्विदल ह, क्ष वर्ण युक्त पद्म है। इस स्थान पर इड़ा, पिंगला, वरुणा असीरूप में मिलित होकर वाराणसी तीर्थ हुआ है। इस पद्म में शुक्लवर्ण, षड्मुखी, हाकिनी शक्ति विराजमान है। उसके चतुर्भुज में पुस्तक, कपाल, डमरू और जपमाला है। इस पद्म के ध्यान करने से ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। इस पद्म के मध्य में मन और कर्णिका में त्रिकोण यन्त्र है। यह स्थान परम लय का स्थान है, वहाँ शुक्ल नाम का महाकाल और इतराख्य सिद्धलिङ्ग विराजमान है। यह शिव अर्द्ध नारीश्वर के नाम से विख्यात है।

आज्ञाचक्र का ज्ञान लाभ होने से जीव अद्वैतवादी हो जाता है।

आज्ञा चक्र के कुछ ऊपर शुद्ध, ज्ञान, ज्ञेय, प्रदीप शिखा की नाईं ज्योतिर्मय, ओंकारात्मक अन्तरात्मा निरन्तर वास करता है। उसके ऊपर अर्ध चन्द्र, उसके ऊपर बिन्दुरूपी नाद, वहाँ शक्ति रूपाधार से कारात्मक पूर्णचन्द्र की तरह उज्ज्वल शिवलिंग है। इस आकार के ऊपर के भाग में आकाश और नीचे के भाग में पृथ्वी है, उसके बीच में निरलम्ब भगवान हैं। इस ओंकार के ऊपर के भाग में द्विभुज महानाद नाम का शिवाकार वायु का लय स्थान है। उस आज्ञा चक्र के ऊपर के भाग में शङ्खिनी नाम की नाड़ी है, उसके सामने आकाश है, उसमें विसर्गरूप युगल बिन्दु है। उसके नीचे पूर्णचन्द्र की नाईं शुभ्रवर्ण, तरुण तपन किरण के सदृश केशरयुक्त सहस्र दल पद्म नीचे मुँह किये हुए हैं। उसमें पचास मातृका वर्ण है। इसी स्थान पर निर्मलचन्द्र विराजमान हैं। उस चन्द्र के भीतर बिजली के आकार का त्रिकोण यन्त्र विराजमान है, इस यन्त्र के मध्य में गुह्यतम बिन्दु रूपाकार शून्य स्थान है, वहाँ परमात्मा के स्वरूप परम शिव विराजमान हैं। वह योगानन्द ज्ञान और मंगलदाता हैं, इनको परमहंस भी कहते हैं। इसी स्थान में शैव का कैलास, वैष्णव का गोलोक, शाक्त का महाशक्ति का निवास है। इस सहस्र दल पद्म के भीतर प्रातःकाल के तपन के सदृश, लोहित वर्ण मृणाल सूत्र की नाईं अत्यन्त सूक्ष्म और बिजली की तरह ज्योति वाली शुद्धा, विकार से रहित, और नित्य प्रकाशवान, लय और उदय से रहित, अधोमुख वाली, और पूर्णानन्द श्रेणी से जो अमृतधारा निकलती है, उसको धारण करने वाली, ऐसी अमानाम की शशिकला है। उसके मध्य में केशाग्र का सहस्रांश परिमित और अर्द्ध चन्द्राकार, द्वादश सूर्य की नाईं प्रभायुक्ता, प्राणियों का इष्ट देवता, निर्वाण नाम की कला है, वह महाकुण्डलिनी के नाम से विख्यात है। पुनः इस निर्वाण नाम की कला के मध्य में कोटि सूर्य की नाईं प्रभायुक्त शिवलिङ्ग से प्रेमधारा निकलती है और उसमें कर्मफल दायिनी निर्वाण शक्ति विराजमान है। इस निर्वाण शक्ति के मध्य भाग में योगी और महात्माओं के चिन्ता करने योग्य परम सुखमय नित्यानन्द स्वरूप शाश्वत तुरीय ब्रह्म है।

(क्रमशः)

गोस्वामी तुलसी दास की स्मृति-रक्षा

राजापुर की सभा में डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, डी० एस-सी० की जोरदार अपील

श्री गोस्वामी तुलसीदास की जन्म भूमि, राजापुर (बाँदा) में बसन्त पञ्चमी १० जनवरी को श्री तुलसी स्मारक सभा का वार्षिक उत्सव बड़े समारोह के साथ हुआ। सभा मण्डप श्री तुलसी स्मारक संस्कृत पाठशाला के अहाते में बनाया गया था, जो दर्शकों से खचा खच भरा था। राजापुर तथा उसके आस पास के गावों के प्राय सभी प्रतिष्ठित पुरुषों के अतिरिक्त प्रयाग, काशी, कानपुर आदि से भी कई गण्य मान्य सज्जन पधारे थे। पाठशाला के छात्रों द्वारा वेद पाठ से कार्यारम्भ हुआ। प्रयाग विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध प्रोफेसर और प्राचीन कविता के ममज्ञ विद्वान् डॉक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, डी० एस सी० ने सभापति का आसन ग्रहण किया। फिर कई संस्कृत तथा हिन्दी की समयानुकूल स्वागत-कविताओं के पाठ के पश्चात् स्वागताध्यक्ष पण्डित रामप्रसाद रुपौलीहा ने स्वागत-भाषण पढ़ा। उसमें उन्होंने राजापुर के पुरातन इतिवृत्त और उसके गोस्वामीजी के जन्म स्थान होने के प्रमाण बतलाये। तत्पश्चात् सभा के मन्त्री प० गङ्गाप्रसाद मिश्र ने सभा का अब तक का संक्षिप्त कार्य-विवरण सुनाया। फिर जो निमन्त्रित सज्जन किसी कारण वश सभा में उपस्थित नहीं हो सके थे, उनके सहानुभूति सूचक सन्देश सुनाये गये।

इसके बाद स्थानीय वैष्णव महात्मा श्री सीतारामशरणजी (टाटम्बरीजी) और राय साहब ठाकुर शिवकुमारसिंह (बनारस) ने गोस्वामीजी के महत्व, रामनाम की महिमा, रीवाँ नरेश स्वर्गीय महाराज वेंकटरमणसिंह के तुलसी स्मारक की रक्षा सम्बन्धी कार्यों आदि पर बड़े ओजस्वी भाषण दिये। कुछ अन्य स्थानीय वक्ताओं के बाद सभापति डाक्टर त्रिपाठी का विद्वत्ता पूर्ण सार गर्भित भाषण हुआ। जब तक वे बोलते रहे, जनता मन्त्र मुग्ध सी रही। आप की वक्तृता का सारांश यह था—

उत्तरी भारत में जो काम गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस के द्वारा हुआ है, वह अन्य किसी ग्रन्थ द्वारा इस भू भाग पर नहीं हुआ और यह कहना भी असत्य न होगा, कि इतना अधिक व्यापक एवम् स्थायी प्रभाव भारत के ही नहीं भू मण्डल के किसी भी ग्रन्थ द्वारा किसी स्थान या देश पर नहीं हुआ। ऐसे महान् ग्रथ के रचयिता महापुरुष की कीर्ति की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है, हम लोगों पर चाहे और कितने ही दोष आरोपित किये जा सकें, परन्तु कृतघ्नता का घोर कलंक नहीं लगाया जा सकता।

हम भारतवासी कृतज्ञता के लिये सदैव से प्रसिद्ध हैं। इसी के कारण अपने पूर्वज महात्माओं की इसी देन के कारण, हम लोग समय की थपेड़ें इतनी अधिक लगातार आने वाली विषम परिस्थितियों के होते हुए भी अब तक खड़े हुए हैं, इसलिये गोस्वामी तुलसीदास की सेवा तथा उनके प्रति कर्तव्यपालन करने का अवसर जाने देना ठीक नहीं। ऐसा प्रयत्न किया जाय, जिससे किसी को यह कहने का मौका न मिले कि उनके देश-वासियों ने तुलसीदास का वह सम्मान नहीं किया, जो उनके लिये उचित था।

जिन तुलसीदास ने संसार-सागर से उद्धार के लिये राम चरित-मानस रूपी नौका तैयार की थी, और जिस मानस में उन्होंने भव सिन्धु को पार करने के लिये सात-सात सीढ़ियों वाले चार घाट तैयार किये थे उन गोस्वामीजी के गाँव के रहने वालों के लिये, उनके स्मारक की रक्षा के निमित्त केवल एक घाट तैयार करना अनुचित नहीं, असम्भव भी नहीं। मुझे तो यह कहने का उत्साह होता है कि राजापुर निवासियों को इस बात का गर्व होना चाहिये कि उन्होंने यह काम किसी बाहरी सहायता के बिना अपने आप पूरा किया, परन्तु यदि आर्थिक कठिनाइयों के कारण वे ऐसा न कर सकें तो उन्हें यह अभिमान और संतोष अवश्य होना चाहिये कि उन्होंने इस महत्व पूर्ण कार्य में प्रमुख भाग अवश्य लिया था। जिसके पास धन हो केवल वही इस काम में सहायता दे, इसकी आवश्यकता नहीं। जो ऐसा नहीं कर सकते, वे ईंट पत्थर देकर, अपने शरीर से गारा उठा कर, या अन्य जिस प्रकार से हो सके, उसी प्रकार से इसमें योग दे। जब राजापुर वासी इतना कर लेंगे, तब अधिक दूर जाने की आवश्यकता न पड़ेगा, निकट के दो चार जिलों से ही इतना धन आ जायगा, जिससे घाट बन जावेगा। बस अभी से यह उद्योग आरम्भ कर दीजिये कि राजापुर में एक भी व्यक्ति ऐसा न रह जाय, जिसने इस कार्य के लिये कुछ न कुछ न दिया हो। सामर्थ्य के अनुकूल, प्रेम पूर्वक जो कुछ दिया जायगा वह बहुत है। जैसे आप प्रति वर्ष श्राद्ध करते हैं, और पितृपक्ष में अपने पितरों के साथ ही भीष्म पितामह को भी जलाञ्जलि देते हैं, वैसे ही तुलसी के लिये जो अनेक दृष्टियों से भीष्म पितामह से भी बढ़ कर हैं, तब तक निरन्तर प्रति दिन, प्रति महीना, प्रति वर्ष कुछ-न कुछ दीजिये, जब तक उनका स्मारक यमुना से रक्षित न हो जाय।

जिस समय मैं इङ्गलैण्ड में था, उस समय शेक्सपियर के जन्म-स्थान में उसकी स्मृति-रक्षा का प्रश्न छिड़ा था। उसके मकान की एक एक ईंट के लिये लोग पाँच पाँच सौ पौण्ड देने को तैयार थे, वहाँ जो भव्य स्मारक बाद में बना उसमें शेक्सपियर की सब उपलब्ध वस्तुएँ सुरक्षित हैं। शेक्सपियर अंग्रेजों का सब श्रेष्ठ नाटक-कार था, इससे वहाँ एक विशाल नाट्यशाला भी निर्मित हुई, जिसमें अभिनय करने के लिये यूरोप के बड़े-से-बड़े अभिनेता आते और ऐसा करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं। जब केवल कवि की दृष्टि से महान् शेक्सपियर का इङ्गलैण्ड में ऐसा सम्मान किया गया, तब महान् कवि होने के साथ ही हमारी जाति, सभ्यता, संस्कृति और धर्म धारणा के अन्यतम रक्षक तथा लोक एवं परलोक दोनों के साधने वाले तुलसीदास के स्मारक की रक्षा के लिये राजापुर, संयुक्त-प्रान्त तथा भारत के निवासी अभी तक कुछ नहीं कर सके—यह कितनी लज्जा की बात है। खेद है, जिस तुलसी ने हमारी जाति, भाषा, साहित्य तथा नाम की रक्षा की है, हम उसके स्मारक की रक्षा तक नहीं कर सकते। फारसी की एक उक्ति है कि दो दिल एक होने पर पहाड़ तक काट सकते हैं, फिर आप सब लोग यदि एक दिल हो जावें, तो एक घाट का बन जाना कठिन नहीं। फरहाद ने पहाड़ को काट कर नदी निकाल कर अपनी प्रियतमा शीरीं के महल तक पहुँचा दी थी, यदि आप उसी तरह दृढ़ निश्चय कर लें, तो यमुना नदी का बहाव रोकना कोई बड़ी बात न होगी। हममें तुलसीदास के प्रति श्रद्धा की कमी नहीं है और श्रद्धा ही धर्म तथा सिद्धि का मूल है। इससे इस काम को पूरा करने में संकल्प करने भर की देर है। आप इससे न घबड़ाइये कि अभी हमारे साथ कम लोग हैं और न यह सोचिये कि इस घाट को बनाने में कितना रुपया लगेगा। यह तो कार्यकर्ताओं, इञ्जिनियरों, विशेषज्ञों का काम है आप इनसे कह दीजिये कि आप काम आरम्भ कर दें, आप की आवश्यकतायें हम पूरी करेंगे, ऐसा निश्चय कर लेने पर अवश्य सिद्धि होगी।

अत अब इस कार्य के लिये आन्दोलन करना आरम्भ कर दीजिये, कोई भी समाचार-पत्र, साहित्यिक गोष्ठी, सभा या समाज ऐसा न रह जाय, जिसमें आपके मन्तव्यों का पूर्ण प्रकाशन न हो जाय। सबके हृदयों को एक बार आन्दोलित कर दीजिये। अपने कर्तव्य का ध्यान करके सहयोग के साथ काम करने से पूरी सफलता मिलेगी—यह ध्रुव सत्य है।

त्रिपाठीजी की प्रभावोत्पादक वक्तृता के बाद प० रामबहोरी शुक्ल ने उन्हें रुग्णावस्था में भी अपनी मोटर पर इलाहाबाद से ५० मील की कष्ट साध्य यात्रा करके राजापुर पधारने एवम् सभा का कार्य संचालन करने के लिये हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए धन्यवाद दिया और सभा तथा राजापुर-वासियों की ओर से विश्वास दिलाया कि वे अपने कर्तव्य को यथाशक्य पूरा करने में कुछ उठा न रखेंगे।

सभा स्थल पर ही और दूसरे दिन राजापुर में इस अर्थ संकट के समय में भी लोगों ने सहर्ष पाँच सौ के लगभग दान श्री तुलसी-स्मारक सभा को दिया।

: शक्कर के उपयोग से दाँतों को नुक़सान :

दाँतों की हिफ़ाजत के लिये हमारे यहाँ वैद्यकशास्त्र में कई तरह की दातुन करना बताया गया है, पर अफ़सोस की बात है कि अधिकांश मनुष्य उन पर ध्यान नहीं देते और अपने दाँतों का लापरवाही के कारण बिगाड़ डालते हैं। दाँत बिगड़ने से उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है और तन्दुरुस्ती बिगड़ जाने से उनका जीवन जल्दी ही अस्त हो जाता है।

बाजारों में आजकल कई प्रकार के दंतमंजन मिलते हैं और कई पुस्तकों में कई प्रकार के दन्त मंजन बनाने की विधियाँ भी लिखी हैं, पर उन सब में दाम खर्च करने पड़ते हैं। हम तो कहते हैं कि इतने ज्यादा दाम खर्च करने की भी जरूरत नहीं है। नीम और बबूल आदि की दातुन दाँतों के लिये बहुत ही मुफ़ीद साबित हुई हैं। और ये पेड़ हर जगह बहुतायत से मिल सकते हैं। उन्हीं को क्यों नहीं काम में लाया जाय।

लेकिन इधर तो दाँतों की सफ़ाई में यह लापरवाही और उधर यह भी जानने की कोशिश न करना कि दाँत किन किन कारणों से बिगड़ जाया करते हैं। कई कारण दाँतों के बिगड़ने के होते हैं। उनमें से एक कारण शक्कर से दाँतों का बिगड़ जाना भी है। हमारे यहाँ शक्कर का उपयोग बहुत अधिक किया जाता है। बच्चों को तो हर तरह की मीठी चीजें दी जाती हैं और वे भी मीठी चीज के ऐसे आदी हो जाते हैं कि दिन भर उनके लिये कुछ-न-कुछ मीठी चीज होनी चाहिए। यह तरीका अच्छा नहीं है। इससे बचपन से ही दाँतों में ऐसे रोग लग जाते हैं, जो जिन्दगी भर दुख देते हैं और फिर बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं सुधर पाते। खैर, आज हम 'जागरण' के पाठकों को यह बताना चाहते हैं कि शक्कर के खाने से दाँत किस तरह बिगड़ जाया करते हैं और यह निश्चय किन किन डाक्टरों ने करके बताया है।

डॉ० जे० सामवल्स लंडन के अस्पताल में मुखिया थे। आप दाँतों की शस्त्र क्रिया (Dental Surgery) और दंत रोग के निदान करने में बड़े होशियार थे। उन्होंने खोज करके बताया है कि अगर कुदरती उपायों से न रोका जाय, तो आटे के सत्व वाले (Starchy) और शक्कर के पदार्थ दाँतों को सड़ाने का काम किया करते हैं। ७ या १३ वर्ष के बच्चों को चाकलेट (Chocolate) खिलाये जायँ और आध घंटे के बाद उनके दाँतों को देखा जाय, तो दाँतों के अन्दर की पोल में चाकलेट भरी हुई मालूम पड़ेगा। बस, यही खराबी का कारण है। चाकलेट का यह अंश इस तरह दाँतों के अन्दर रह जाने से वह सड़ने लगता है और अन्त में उसमें सूक्ष्म जन्तु पैदा हो जाते हैं, जो धीरे-धीरे दाँतों को खा डालते हैं। इसी को दाँतों में कीड़ा लग जाना कहते हैं। चूँकि चाकलेट में शक्कर होती है और मिठास ही कीड़ों की उत्पत्ति का कारण बनता है। असल में चाकलेट और कोको दाँतों को कुदरती तौर पर साफ़ नहीं करते, बल्कि बिगाड़ते हैं। हाँ, चाय और काफ़ी अवश्य दाँतों को साफ़ करते हैं।

डा० विलियम मिलिगन और डा० सीमवल्स दोनों ने ज्युइस बालकों के दाँत दूसरी जाति के बालकों के दाँतों में मिलाये। इस तरह दोनों का मुकाबला करने से उनको मालूम हुआ कि ज्युइस जाति के बालकों के दाँत बहुत मजबूत होते हैं। इसका कारण उन्होंने बताया है कि ज्युइस लोग अपनी खुराक में शक्कर की अपेक्षा तेल का उपयोग ज्यादा करते हैं। इसी से उनके दाँत मजबूत होते हैं।

डा० होटल शोपशायर परगने के और उसके स्कूल के मेडिकल आफिसर हैं। उन्होंने अपने अनुसन्धान का 'रिकार्ड' बताते हुए विश्वास दिलाया है कि लड़ाई के कारण एलीमेंटरी स्कूलों में शक्कर का उपयोग कम कर दिया गया था और खुराक की किस्म में भी फेर फार किया गया था और दूध का उपयोग बढ़ा दिया गया था, इससे यह लाभ हुआ कि उस स्कूल के बालकों के दाँतों की बीमारी बहुत कुछ कम हो गई। यह उदाहरण देते हुए होटल ने इस बात पर जोर दिया है कि शक्कर का अधिक उपयोग ही दाँतों को बिगाड़ता है।

कर्नल एडम लिवरपूल यूनीवर्सिटी के 'वाइस चांसलर' हैं। उन्होंने बताया कि—मुझे अपने अनुभव से मालूम हुआ है, कि अमेरिका और कनाडा के लोगों के दाँतों के मुकाबले में इंगलैंड के लोगों के दाँत विशेष सड़े हुए होते हैं। इसका कारण यह है, कि एक तो वे भोजन के बाद दाँतों को और मुँह को साफ़ नहीं करते, दूसरे, उनकी खूराक में मीठा प्रायः होता ही है।'

इन डॉक्टरों के सिवाय और भी बहुत से डॉक्टरों की रायें पेश की जा सकती हैं, पर लेख का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं जान पड़ता। कहना सिर्फ इतना ही है, कि दाँतों की रक्षा के लिए हमको शक्कर का उपयोग बहुत कम करना चाहिए। कम-से कम बच्चों को तो इससे दूर ही रखना ठीक होगा, क्योंकि उनके दाँतों का हम लोग वैसे ही लापरवाही रखते हैं, तिसपर अगर लाड़ प्यार के कारण बाजार की मिठाई उनको खिलाते रहे तो उनके दाँत बिगड़ने में कोई सन्देह नहीं रहता, इसलिये सब से जरूरी बात यह है कि हमारे बालकों के दाँतों की सँभाल अवश्य ही करनी चाहिए।

एक तामिल लेख

लेखक—श्रीयुत घोस, बोस बनर्जी, चटर्जी

आज तामिल भाषा की एक कहानी सुनाता हूँ। वहाँ एक घनघोर कवि विद्यमान हैं। नाम है—भानुपति तिवारी 'विचित्र'। आप कोर कवि ही नहीं, प्रत्युत धुरन्धर लेखक, गायक, अभिनेता आदि बहुत कुछ हैं। तामिल तुरग पर चढ़कर आपने उपन्यास गढ़, कविता किला, समालोचना महल आदि बहुतरे दुर्ग फतह किये हैं। उन्हें यदि उस भाषा के शिवाजी के नाम से पुकारा जाय, तो अत्युक्ति का दोष छोड़कर और कोई गलती नहीं हो सकती। बस तामिल की तूती आपही के नाम से बोलती है। और साहब, वे जो कुछ लिखते हैं ऐसा सुन्दर लिखते हैं कि वाह वाह, जी प्रसन्न हो जाता है। आये दिन बराबर आपकी रचनाओं से तामिल साहित्य की वृद्धि होती रहती है। एक बार इन्होंने साम्यवाद पर ऐसा लेख लिखा, जिसका माने मतलब किसी की समझ में नहीं आता था। वह लेख इस प्रकार था—

साम्यवाद

लेखक श्री भानुपति तिवारी विचित्र

उल्लू की दुम फाख्ता !

इस अद्भुत लेख को पढ़ कर तामिल के धुरन्धर सम्पादक श्री काशीसेवक चौबे चकित हो गये। उसे 'हिन्दुस्तान' से उद्धृत करके अपने 'बड़ा हिन्दुस्तान' में छापा। लेख का अर्थ समझाने वाले को ५० रुपयों के पुरस्कार की घोषणा की और इस पर अन्य लेखकों की राय माँगी। तामिल भाषा के लेखकों की राय भी बड़ी सस्ती है, जितनी चाहिये मुफ्त खरीद लीजिये और तारीफ तो यह कि उन सम्मतियों का एक अक्षर भी आपके मन के विपरीत न होगा। हाँ, तो चौबेजी के पास सम्मतियों का ताँता बँध गया। किसी ने कहा था—लेख बिल्कुल निकम्मा, वाहियात, खुराफात और उससे भी बढ़कर बुरा है। ऐसे लेखक को तो साहित्यिक फाँसी की सजा मिलनी चाहिये। किसी की सम्मति थी—जान पड़ता है लिखते समय कवि महोदय को सन्निपात ने जकड़ कर पकड़ा था, इसी कारण उनकी कलम से इस प्रकार के अर्थहीन शब्द निकल सके थे। एक परामर्श दाता ने कहा था—आप अर्थ बतलाने वाले को सिर्फ ५० रुपये देना चाहते हैं, मैं तो उस व्यक्ति को सवा आना अपनी जब से दूँगा, जो इसका ठीक ठीक माने मुझ समझा सके, क्योंकि मैं स्वयं कुछ नहीं समझ सका हूँ। इसके लेखक भानुपतिजी 'विचित्र' बिल्कुल विचित्र हैं, देखिये न कविता लिखने में मुझसे बहुत आगे बढ़ गये!

अब विचित्रजी की बारी आई। चिल्लाने लगे, यह प्रोपेगेंडा है, इस प्रोपगैंडा में तामिल के अनेकों धुरन्धर विद्वान् सम्मिलित हैं लेकिन तौभी उनकी बातों में कोई सार नहीं। असल बात कि वे सब के सब सन्निपात ग्रस्त हैं। मैंने उस लेख को बड़ी विद्वत्ता से लिखा है। अब उसकी टीका सुन लीजिये—

मूल—उल्लू

टीका—यह एक पक्षी का नाम है। पक्षी, अर्थात् जीवधारी और जीव क्या? आत्मा। आत्मा के विषय में गीता कहता है 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि न शोषयति मारुतः।' यह आत्मा कभी मर नहीं सकती। और यही आत्मा सब जीवों में समान रूप से निवास करता है। आत्मा के लिहाज से संसार में कोई प्राणी न छोटा है, न बड़ा। सबमें आत्मा है, सब जीवधारी हैं, सब बराबर हैं। चौबेजी यह सूक्ष्म अर्थ तो समझते नहीं, व्यर्थ गोलमाल मचाने लगते हैं।

मूल— की

टीका—यह सम्बन्ध कारक का चिन्ह है। सम्बन्ध किससे? कर्ता से, और कर्ता कौन? ईश्वर! ईश्वर को हम दार्शनिक भाषा में चपन्दुक सेठ भी कह सकते हैं, क्योंकि आज कल दर्शनशास्त्र में सब कुछ जायज है। चपन्दुक का सूक्ष्म अर्थ यह है—चप, अर्थात् सब में चिपके हुए, मिले हुए, यानी सब में लिप्त, और दुक, यह बिहार प्रान्त में घूँसे के अर्थ में कभी कभी व्यवहृत होता है, अर्थात् भगवान सबमें लिप्त रहकर भी कभी कभी उसे वेदना के दो चार दुक लगा देते हैं, यानी लिप्त रह कर भी निर्लिप्त हैं। हाँ, तो चपन्दुकसेठ अर्थात् ईश्वर, आत्मा से भिन्न नहीं हैं। जिस प्रकार बूँद सागर से पृथक् नहीं है और सागर भी बूँद से पृथक् नहीं है, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा बिल्कुल अभिन्न हैं। अब कहिये, साम्यवाद हुआ कि नहीं?

मूल— दुम

टीका—यह एक ऐसा चिन्ह है, जो मनुष्यों में नहीं पाया जाता, किन्तु अनेक आत्माधारी जीवों में यह चिन्ह पूर्ण रूप से मिलता है। आत्मा शरीर में रहती है और शरीर में दुम रहती है अतएव आत्मा दुम में मिली हुई है। आत्मा को दुम से पृथक् नहीं किया जा सकता, जब तक कि उसे शरीर से पृथक् न कर दिया जाय। अब यह स्पष्ट हो गया कि दुम में भी आत्मा है। सोऽहं! सोऽहं!! इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जो उल्लू है, वही उल्लू की दुम भी है, सभी सम हैं, बराबर हैं, यही मेरा साम्यवाद चला आ रहा है।

मूल— फाख्ता।

टीका—यह भी एक पक्षी का नाम है। जब यह पक्षी है, तो इसे भी आत्मा है। आत्मा होने के कारण यह भी उल्लू के समान है, और मैं पहले ही साबित कर चुका हूँ कि उल्लू भी अपनी दुम के बराबर है, इससे यह भी सिद्ध हुआ कि फाख्ता भी उल्लू की दुम के बराबर है। यही इस लेख का निष्कर्ष है, कि जो उल्लू है, वही उल्लू की दुम है और जो उल्लू की दुम है, वही फाख्ता है। आत्मिक दृष्टि से सब समान हैं। मेरे कहने का यही मतलब था कि जब तक हमलोग बाहरी साम्यवाद को छोड़कर भीतरी साम्यवाद को नहीं पकड़ेंगे, तबतक कुछ नहीं हो सकता। यही इस लेख का तात्पर्य है। अब चौबेजी बतलावें कि मेरा लेख ठीक सार्थक है कि नहीं? असल बात कि तामिल के विद्वान् सूक्ष्म अर्थ को नहीं समझते केवल हाय तोबा मचाना जानते हैं। मैंने अपने लेख का यह टीका बावन ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् लिखी है। अब चौबेजी उत्तर दें, या पुरस्कार दें!

फिर मालूम नहीं कि चौबेजी को सन्तोष हुआ या क्या हुआ। बिना किसी फैसला के ही तामिल साहित्य में इसकी चर्चा एकाएक बन्द हो गई।

इस कहानी की घटना तथा पात्रगण कोरे काल्पनिक हैं। कोई भोले पाठक इसे सत्य समझने का प्रयत्न न करेंगे। —लेखक

विदेश - वार्त्ता

इंग्लैण्ड और जापान

अनुवादक—श्रीयुत 'म'

[जापानी प्रतियोगिता के कारण इस समय इंग्लैण्ड के व्यापारी, विशेषकर सूती-वस्त्र के व्यवसायी, बहुत परेशान हैं। गत २३ जनवरी को मैंनचेस्टर में एक सभा जापानी प्रतियोगिता से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने और बृटिश व्यवसाय की रक्षा के लिये उपाय सोचने के लिये हुई थी। इसमें इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया गया है कि बृटिश सरकार जापान के साथ हुए उन सभी व्यापारिक समझौतों को रद्द कर दे, जिनमें कर के मामले में उसके साथ अधिक से अधिक रिआयत करने की बात कही गई हो। साथ ही प्रस्ताव में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि उपनिवेशों से भी ऐसा करने को कहा जाय। इससे स्पष्ट है कि जापान के प्रति इस समय इंग्लैण्ड के व्यवसायि मण्डल मे घोर असन्तोष फल गया है। इस सम्बन्ध में एक अच्छा लेख बँगला 'आनन्द बाजार पत्रिका' में प्रकाशित हुआ है। उसका साराम नीचे दिया जाता है]—अनुवादक

विगत यूरोपीय युद्ध के पहले व्यवसाय-वाणिज्य के क्षेत्र में इंग्लैण्ड को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। उस समय पृथ्वी के विभिन्न देशों को जो माल भेजा जाता था, उसका अधिकांश इंग्लैण्ड ही भेजता था। अन्तर्राष्टीय वाणिज्य का कोई ४० प्रतिशत भाग अंग्रेजी जहाजों द्वारा ही पहुँचाया जाता था। अनुन्नत देशों के बैंकों और बीमा का काम भी प्राय: अंग्रेजी कम्पनियाँ ही किया करती थीं। अन्य देशों में रेल, तार आदि निकालने क लिये जो राशि-राशि धन आवश्यक होता था, वह प्राय इंग्लैण्ड वालों से ही उधार लिया जाता था।

इंगलैंड की वाणिज्य-नीति

इस सुविधा पूर्ण स्थिति में रहकर इंगलैंड के अर्थ-शास्त्रज्ञों ने संसार भर को यह पाठ पढ़ाना शुरु किया कि व्यवसाय वाणिज्य में सरकार का हस्तक्षेप करना ठीक नहीं। सब देशों की आर्थिक उन्नति के लिए मुक्त वाणिज्य नीति ही सर्वोत्कृष्ट है। इंगलैण्ड खूब समझता था, कि इस समय किसी भी देश के लिए व्यवसाय वाणिज्य के क्षेत्र में सरकार की सहायता के बिना बृटिश व्यवसायियों से टक्कर लेना सम्भव नहीं, इसीसे अबाध वाणिज्य पर वह इतना जोर देता था। यह नीति ही उस समय उसके लिये सबसे अधिक सुविधाजनक थी।

महा समर के बाद स्थिति बदल गया। संसार के प्राय सभी देशों का सरकारों ने अपने अपने देश के शिल्प-वाणिज्य की उन्नति का कार्य अपने हाथ में ले लिया। रूस, इटली, अमेरिका, जापान आदि देशों का सरकारें अब इस तरह आर्थिक नीति का सञ्चालन कर रही हैं, जिससे देश के वाणिज्य-व्यवसाय की उन्नति हो। छोटे छोटे देश भी प्राय इन्हीं का अनुसरण कर रह हैं। इस समय अनेक देश अपनी आवश्यकता के लिये स्वयं जहाज तैयार करा लेते हैं और बैंक तथा बीमा का काम भी स्वयं सँभाल रहे हैं। इसी तरह वे अपने यहाँ कल कारखाने खोल कर नित्य की आवश्यकता की चीजें खुद हा तैयार कराने लगे हैं। इंगलैंड की बनी चीजें संसार में अब उतनी तेजी से नहीं बिकती और न उसके जहाज ही माल पहुंचाने के लिए उस तरह भाड़े पर लिए जाते हैं। इसी तरह विदेशों में स्थापित अंग्रेजी बैंकों और बीमा-कम्पनियों का काम भी दिन पर दिन घटता जा रहा है।

इस स्थिति के कारण अब वहाँ वालों का भी मत बदल गया है। जो इंगलैंड सन् १७७६ में ऐडम स्मिथ के 'वेल्थ आफ नेशन्स' नामक ग्रन्थ प्रकाशित होने के बाद से मुक्त वाणिज्य का समर्थन करता रहा है, वही अब संरक्षण नीति का अनुयायी बनकर विदेशों से आने वाली चीजों पर आघात कर बैठा रहा है और आर्थिक सहायता देकर बृटिश जहाजी कम्पनियों की रक्षा का प्रयत्न कर रहा है।

इस नीति-परिवर्तन से भी इंग्लैंड की आर्थिक समस्या हल नहीं होता। वहाँ कृषि के योग्य भूमि बहुत कम है, अत उसे राशि राशि खाद्य पदार्थ एवं कच्चा माल बाहर से मँगाना पड़ता है। युद्ध के पहले उसका आमदनी बहुत बढ़ी हुई थी, जिससे अपनी आवश्यकता का चीजें बाहर से मँगाने में उसे कोई दिक्कत न होती थी, किन्तु, अब उसकी आमदनी कम हो गई है और उसके लिए अत्यावश्यक खाद्य पदार्थ तक खरीदना कठिन हो रहा है, अत यदि इंग्लैण्ड के वहिर्वाणिज्य का वृद्धि नहीं होती, तो वहाँ वालों को कुछ ही दिनों मे भूखों मरना पड़गा।

जापानी माल का आक्रमण

इंग्लैण्ड के वहिर्वाणिज्य की उन्नति में इस समय अन्य देशों की अपेक्षा जापान ही विशेष रूप से बाधक हो रहा है। चीन के बाजार से जापान ने ही इंगलेण्ड को निकाल बाहर किया है। भारतवर्ष में मानों इंग्लैण्ड की खास 'जमींदारी' ही था, किन्तु अब यहाँ भी इंग्लेण्ड के वस्त्र व्यवसाय तथा अन्य छोटे मोटे व्यवसायों का लगभग आधा भाग जापान ने छीन लिया है। इसी तरह आस्ट्रेलिया, जावा, इण्डो चाइना, श्याम, पूर्व अफ्रिका, ईराक, प्रभृति देशों में अंग्रेजी माल के खरीदारों को भी जापान अपनी ओर खींचता जा रहा है। प्रति दिन विभिन्न देशों में इंग्लेण्ड के प्राय सभी तरहके व्यापार पर जापानी माल का आक्रमण बढ़ रहा है।

मैनचेस्टर की धमकी

ऐसी स्थिति में मैनचेस्टर के व्यवसायियों का विचलित हो उठना स्वाभाविक ही है। वहाँ की वणिक सभा का जो वार्षिक विवरण हाल में ही प्रकाशित हुआ है, उससे वहाँ वालों के मनमें जापान क प्रति कितनी चिढ़ पैदा हो गई है, इस पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस विवरण से स्पष्ट है कि मैनचेस्टर की वणिक सभा जापान के बढ़ते हुए व्यापार का फूटी आँखों से भी नहीं देखना चाहती। उसने यह इच्छा प्रकट की है कि जापान प्रत्येक देश को एक निर्दिष्ट मात्रा से अधिक अपना माल न भेजने पावे और वह अपने कारखानों में तैयार की गई भिन्न भिन्न वस्तुओं का मूल्य भी बढ़ा दे। यदि वह ऐसा करने से इनकार कर तो वणिक् सभा का राय है कि वणिक क्षेत्र में जापान को इंग्लैण्ड कोई सुविधा न दे, इंग्लैण्ड से कल पुर्जों का जापान भेजा जाना बन्द कर दिया जाय, जापानी छात्रों को इंग्लेण्ड के कारखानों में शिक्षा प्राप्त करने का मनाही करदी जाय और जापान की शिल्पोन्नति के लिए इंग्लेण्ड कोई पूँजी लगाने की व्यवस्था न करे।

इस धमकी से जापान डर जायगा, ऐसा समझने के लिए कोई कारण नहीं। जापान अब अपने ही देश में कल-कारखाने तैयार कर रहा है, अपने ही स्कूल-कॉलेजों में विद्यार्थियों को व्यावसायिक शिक्षा दे रहा है और अपनी शिल्पोन्नति के लिए स्वयं आवश्यक पूँजी जुटाने की व्यवस्था कर रहा है। इन सब बातों में उसे इंग्लैंड की सहायता की बहुत कम आवश्यकता है।

इंग्लैंड इतना ही कर सकता है कि भारत की तरह अपनी 'जमींदारी के अन्य देशों में जापानी व्यापार के बढ़ने में बाधाएँ उपस्थित कर दे। इसी से हाल में ही जापान को भारत में कपड़ा भेजने के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड से समझौते की बात चीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा है किन्तु जो देश भारत की तरह इंग्लैण्ड के अधीन नहीं हैं, उन सब देशों मे इंग्लैण्ड उसे किस तरह रोक सकेगा?

स्वार्थपरता की पराकाष्ठा

यूरोप के उन्नत देशों ने गुटबन्दी करके प्राय एक शताब्दी तक अनुन्नत देशों की व्यवसाय वाणिज्य की गिरी हुई हालत से लाभ उठाते हुए अपनी चीजें प्राय चौगुने दाम में बेंच कर खूब धन बटोरा है। हजारों दरिद्र व्यक्ति २०—२५ वर्ष के भीतर ही लखपति या करोड़ पति हो गये हैं। (इनमें से इंग्लैण्ड ने सबसे अधिक वैभव प्राप्त किया है।) अब जापान भी पृथ्वी के वाणिज्य क्षेत्र में अवतीर्ण होकर विभिन्न देशों—विशेष कर इंग्लैंड—के मार्ग में कण्टक बन गया है। इसी से मैनचेस्टर की वणिक्सभा उसे धमका दे रहा है कि 'इतना सस्ता माल तुम्हें हम बेचने न देंगे।'

स्वार्थपरता की भी एक सीमा होती है। यदि कोई देश किसी बाजार से अपने प्रतिद्वन्द्वी को हटाने के लिए पड़ता से भी कम मूल्य में चीजें बेचना आरम्भ करे, तो उसका प्रतिवाद करना ठीक है किन्तु यदि कोई देश कम खर्च में माल तैयार कर सकता हो, तो वह क्यों प्रतिपक्षी के कहने से अपनी चीजें ज्यादा दाम पर बेचे? अत मनचेस्टर की उक्त धमकी से बृटिश व्यापारियों की स्वार्थपरता का पराकाष्ठा ही सूचित होती है।

भारतीय किसानों का कृषि संबंधी प्राकृतिक भौगोलिक ज्ञान

लेखक—श्रीयुत् ठाकुर राजेश्वरीप्रसादसिंह

'आसिन बुद्ध के होइहैं बदरी।
बिना बरसले नाहीं टरी॥'

क्वार मास में बुद्धवार को यदि बादल घिरे, तो समझना चाहिये कि चन्द दिन मे या उसी दिन पानी अवश्य बरसेगा।

'दक्खिन रास न जइहा भाय।
गइले अनजा कम है जाय॥'

अन्न का ढेर (रास) जब खलिहान में तौला जाता है, उस समय किसी को रास के दक्षिण न जाना चाहिये। किसानों का विश्वास है कि रास के दक्षिण जाने से अन्न कम पैदा होता है। गल्ला बढाने के लिये रास के सिर (चोटी) पर गोबर का एक लोदा रखा जाता है, जिसका नाम देहात में 'बढ़ावन' है और जिसका मतलब अन्न को बढाने से है।

'जब मेघ न फाटै दुपहर।
भइया, बरिसै घहरि घहर॥'

एक किसान अपने भाई से कहता है, हे भाई! यदि सुबह से बदली घिरी हो, तो दैवी नियमानुसार उसे मध्याह्न काल में अवश्य फट जाना चाहिये और सूर्य का दर्शन हो जाना चाहिये। यदि ऐसा न हो और बदली घिरी ही रहे तो समझना चाहिये कि बारिश खूब होगी और शाम तक बदली घिरी रहेगी।

'ढूँढ़ बनौरी जो जन खाय।
रोग शरीर दूर भगि जाय॥'

बारिश के समय आसमान से जो बादल का कण पत्थल के रूप में पृथ्वी पर गिरता है और छोटा होता है, उसे देहात में बनौरी कहते हैं। उसके खाने से शरीर का रोग नाश हो जाता है, खून साफ होता है, आँख की रोशनी बढती है, मन्दाग्नि नहीं होती, पेट में साल भर अकन नही पैदा होती, गर्मियों मे फोड़े फुन्सी नहीं निकलते, आदि खराबियाँ दूर होती हैं। इससे बनौरी बहुत ही लाभदायक समझी जाती है।

आलू—आलू की फसल को तैयार होने में प्रायः २½ ढाई मास लगते हैं। आलू जब भली भाँति उग जाय—अर्थात् बोने के २० दिन बाद—तब पानी देना चाहिये और जमीन उठ जाने पर मिट्टी चढ़ाना चाहिये। इसी प्रकार तीन पानी और तीन बार मिट्टी १५ या बीस दिन पर चढ़ाना चाहिये, तब आलू खूब बैठता है और बहुत बड़ा बड़ा होता है।

पात कोबी—बँधी जब अपने युवावस्था पर चढ़ने लगे, तब उसके ऊपरी पत्ते को चारों तरफ से बटोर कर किसी रस्सी से ऊपर की तरफ मिलाकर बाँध देना चाहिये। इससे पत्ते इधर उधर तितर बितर नहीं होने पाते। पेड़ बहुत बड़ा होता है और पहले पत्ते को छोड़ बाकी सभी पत्ते मुलायम तथा तरकारी के योग्य होते हैं। जब करमकल्ले के साथ ऐसा नहीं किया जाता, तब पत्ते इधर-उधर फूट कर बाहर निकल जाते हैं, और पत्तों से मोलायमियत दूर हो कड़ापन आ जाता है और तरकारी बनाते समय बहुत ज्यादा पत्ता छील (काट) कर फेंक देना पड़ता है। जिससे नुकसान छोड़ फायदा नही होता और फूल भी छोटा होता है।

मेथी—मेथी का बीज बहुत कड़ा होता है, इससे उसके फूलने तथा नया अंकुर फेंकने में जमीन की ओदी काम नहीं देती। इससे मेथी को बोने के ४ दिन बाद क्यारी को हलके पानी से सींच देना चाहिये, जिससे बीज फूल कर जल्दी अंकुर बाहर को फेंक दे। इस प्रकार की गलती देहातों में प्राय पाई जाती है—कृषक यह सोचता है कि अंकुर निकल जाने के बाद पानी देंगे, इससे उसे १५ या २० दिन अंकुर की बाट देखने में लग जाता है, उसी बीच जमीन में बीज सड़ जाता है।

पृथ्वी में बैठने वाली वस्तु—जो चीज जमीन के अन्दर बैठती या पैदा होती है, जैसे—गाजर, मूली, आलू, कन्दा, सुथनी, सलजम, हलदी, लहसुन आदि। उनके लिये खेत को २०, २५ और ३० चास के करीब जोतना चाहिये, तब पैदावार बड़े जोरों में होता है और चीजें खूब बैठती हैं। जहाँ हल न चल सकता हो, वहाँ कुदार से दो बालिस्त कम से-कम जमीन खोदनी चाहिए। (क्रमश)

मुंशीजी की कहानी

लेखक—श्रीयुत तारकेश्वरप्रसाद झा

दुनिया में कौन किसका होता है। प्रत्येक मनुष्य की सहानुभूति अपने लिये होती है—दूसरों के लिये नहीं। इस सिलसिले में एक सच्ची घटना कहता हूँ।

मुंशीजी ने हुक्के की एक लम्बी कश खींचते हुए कहा—उस बात को गुजरे आज आठ वर्ष हो गये, पर मेरे सामने वह वाकयात बिल्कुल जिन्दी जागी है। आप लोग यकीन नहीं करेंगे, जब मैं कहूँ कि तब से भीतर ही भीतर मैं कितना बार रोया हूँ—तड़पा हूँ।

तब मैंने दुनिया की एक झलक देखी थी। आह! देखकर सिर से पैर तक सिहर उठा था। तो, आज आठ वर्ष गुजर गये, इसी सामने वाले मकान में एक बिल्कुल छोकरे-से डिप्टी साहब नये बहाल होकर आये थे। उनके साथ उनकी पत्नी और एक नन्हा-सा बच्चा था। वह बच्चा क्या था, मानों फूलों का ढेर खड़ा कर दिया गया हो।

जब डिप्टी साहब से मेरा परिचय हो गया, तो वह लड़का—रमेश—अपने बाप की गोद से खिसक कर कहता—'मुल्ला जी'—और डिप्टी साहब मुस्करा कर कहते—मुंशी जी, यह बदमाश आपके यहाँ आना चाहता है, तो मैं मानो पुलक कर उस बच्चे को गोद में उठा लेता। वह कहता—'मुल्ली जी घोड़ा—' ओह, मैं घोड़ा बन कर उसे अपनी पीठ पर चढ़ा लेता। उसे घण्टों खेलाता और स्वयं खेलता।

क्या कहूँ। उसकी बातों को याद करता हूँ, तो कलेजा भर आता है—रोयें खड़े हो जाते हैं।

एक बार की बात कहता हूँ—होली के दिन थे। डिप्टी साहब ने मुझे निमन्त्रित किया था। मैं रमेश के साथ खा रहा था। अकस्मात रमेश मेरे मुँह पर थोड़ा दही लगाकर ही हा करके हँसने लगा। डिप्टी साहब हँसते हँसते दोहरे हो गये। घर से भी उनकी पत्नी का दबा हास्य सुनाई पड़ा, पर जब रमेश अन्दर गया तो कई चाँटें खाकर रोता हुआ वापस आया। मैंने उसे गोद में लेकर कहा—क्यों रोता है भैया?

'अम्मा—' कहकर उसने यह जाहिर किया कि माँ ने उसे दही लगाने के अपराध में मारा है। मैंने कहा—'तुम अब अपनी अम्मा के पास न जाना, मेरे यहाँ रहना।' तो क्या कहूँ साहब, वह दिन भर फिर अपनी अम्मा के यहाँ वापस न गया। उसकी माँ कभी बाहर आती, कभी भीतर जाती, पर वह तो मेरी गोद में किलकारियाँ मारता था।

• • •

यह एक स्मृति है—दर्द भरी स्मृति है—जो मुझे रुलाती है, हँसाती और खेलाती है। वह नन्हा-सा बच्चा मेरे अनन्त नीरस जीवन को सरस और मधुर बनाने के लिए आया था, पर क्या जानता था कि मेरे प्राणों के तार जल्द टूट जाने वाले थे।

वह माघी पूर्णिमा का दिन था।

अचानक डिप्टी साहब ने आकर कहा—मुंशीजी जरा चलिए, रमेश बीमार है।

और मैं काँपता हुआ हृदय लेकर रमेश के पास पहुँचा। उसकी देह तवा हो रही थी। मैंने पुकारा—रमेश—ओ भैया!

पर, वह सो गया था। मेरी बातों का उत्तर न दे सका। क्या समझा था उस दिन के बाद 'मुल्ला' का तोतला शब्द फिर कभी नहीं सुन पाऊँगा!

डिप्टी साहब डॉक्टर को बुला लाये।

उसने रोग को टायफाईड बताया। कुछ दिनों तक तो रोग उसी अवस्था में रहा, बाद को वह पूरी रफ्तार से आगे बढ़ने लगा। उसकी माँ ने तो खाना एक तरह से बिल्कुल छोड़ सा दिया था। दिन रात निरन्तर अपने 'नयन तारा' के सिरहाने बैठी रहती।

एक दिन शहर के विख्यात डॉक्टर ने कहा—रोगी के आस पास सड़क आदि पर कुछ भी हल्ला न होना चाहिये, नहीं तो जान का खतरा है।

डिप्टीसाहब ने मलिन मुख से मुझसे कहा—मुंशीजी घर पर हल्ला न होगा, पर सड़क पर के हल्ले को कौन रोकेगा और कौन सुनेगा।

मैंने कहा—बाबू ईश्वर को देखो वही सब ठीक कर देगा।

डिप्टी साहब ने एक महीने की छुट्टी ले ली थी। उनका काम अब दिन भर बाहर बैठ कर हल्ला को रोकना था। सचमुच ऐसा मालूम होता, मानों दम्पति ने ज्ञान खो दिया था। उनके आकुल प्राण जैसे वेदना जनित उत्ताप से अनायास ही मुर्झा उठे थे। एक दिन रमेश की अवस्था कुछ ज्यादा खराब हो गई थी। वहाँ शोर-गुल बड़ जोरों से था।

डिप्टी साहब कहते—भाई साहब यहाँ पर शोर गुल मत कीजिये; मेरा बच्चा बीमार है।

पर, सड़क पर चलते हुए असंख्य नर-नारियों का समूह उसी अविराम गति, उसी अविचलित भाव से, उसी रफ्तार से, अपने काम को जारी रखता।

जब हल्ला किसी तरह नहीं रुका, तो रमेश की अम्मा एक चीत्कार कर उठी। विभ्रान्त सी मेरे पैरों पर गिर कर बोली—मुंशीजी मेरे बच्चे को बचाओ—बचाओ। हाय! मेरा बच्चा मर रहा है, पर उसका बचाने वाला कोई नहीं है! उसका करुण आर्तक्रन्दन मेरे कलेजे को चीरे डालता था। मैंने अपने पैरों को हटाते हुए कहा—बहन, रमेश तुम्हारा बेटा है, तो क्या वह मेरा बेटा नहीं है? देवी तुम अपने इस अभागे भाई की ओर देखो, वह पत्थर का दिल लिये यहाँ मौजूद है। नहीं तो—नहीं तो—।

उसके बाद मैं दाढ़ें मार कर रोने लगा। डिप्टी साहब की पत्नी अवाक् रह गयीं। मुझे रोते देख कर डिप्टी साहब ने कहा—मुंशीजी, यदि आप ही रोने लगेंगे, तो हमें धारज कौन बँधायेगा!—और मैं धोती की छोर से, अपनी आँखों से निकलते हुए अजस्र अश्रु प्रवाह को पोंछता हुआ चुपचाप बैठ गया।

• • •

दो रोज के बाद मालूम हुआ जैसे हालत सुधर रही है, पर विपत्ति की अज्ञेय चालों को कौन परख सका है!

उस दिन दुर्भाग्य से बराबर सड़क पर हल्ला जारी रहा।

सन्ध्या समय सैकड़ों आदमी ढोल और बैंड के पीछे सड़क से गुजर रहे थे।

डिप्टी साहब बदहवास उनके आगे गये, बोले—'ईश्वर के लिए बाजा बन्द कीजिये, मेरा बच्चा मृत्यु सेज पर है'—पर, झुण्ड का मुखिया अपने बेटे की बरात में जा रहा था। उसने डिप्टी साहब की ओर एक उचटती निगाह डाली, बोला—बाबू, यह मेरे बेटे की बरात है, बाजा नहीं रुक सकता है।

डिप्टी साहब उनके पैरों पर लोटते हुए बोले—तुम्हें ईश्वर की सौगन्ध है, बाजा को रुकवा दो।

पर, यह असम्भव था। हँसी, खेल और आनन्द में विभोर बरात उसी गति से चली गयी।

डिप्टी साहब को क्या मालूम था कि आज उनके बेटे की बरात भी किसी अनन्त प्रदेश को जायगी, और उसमें जो वाद्यध्वनि होगी उसको रोकने वाला भी कोई नहीं होगा!

• • •

उसके बाद रमेश की अवस्था अत्यन्त ही चिन्ताजनक हो गई।

उसकी बड़ी-बड़ी खुली आँखें बराबर छत की ओर स्थिर थीं, मानों वह जानना चाहता था कि ईश्वर का अस्तित्व सन्देहात्मक है।

रात को कई डॉक्टर आये, विषण्ण मुखों से उन्होंने कहा—रोगी उन लोगों के हाथ के बाहर है। कई घण्टे गुजर गये। ऊपर आकाश में तारों की निष्प्रभ ज्योति क्षीणता हो रही थी। बाहर शान्ति छाई हुई थी, पर भीतर भी तो शान्ति का अखण्ड साम्राज्य विस्तीर्ण था।

यह स्मृति है—पर तेज छुरी की तरह तीखी और मर्म वेधी!

और हम लोगों ने देखा, मुंशीजी के दुखित मुख पर, आँसुओं की दो धाराओं से टपाटप बूँदें चू रही थीं।

विचित्र-जगत

सोने वाला वृक्ष

बंगाल प्रान्त मे एक ऐसा वृक्ष है, जो रात को सोता और सूर्योदय होने पर जाग जाता है।

लंबोदर वृक्ष

काश्मीर में कुछ ऐसे वृक्ष हैं, जिनके तनों का घेरा ५४ फीट तक होता है।

चोर वृक्ष

बड़े-बड़े वृक्षों के निकट नीचे की जमीन पर यह वृक्ष उगते हैं। अपनी जड़ों को बड़े वृक्षों की जड़ों के साथ मिलाकर उनसे यह रस प्राप्त करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। इन वृक्षों पर लगने वाले फूलों का घेरा ४ फीट तक का होता है। बड़े वृक्षों का अधिक-से-अधिक जीवन रस शोषण करने और चोरी करने के लिये यह वृक्ष अत्यन्त कुशल कहलाते हैं। इसीलिये यह चोर वृक्ष कहे जाते हैं। यह जावा द्वीप में होते हैं।

कंजूस वृक्ष

दूसरे वृक्षों के खाद्य पर अपना निर्वाह करने वाले और अपने खाद्य को सुरक्षित रूप से संग्रह करके रखने वाले वृक्ष भी जावा द्वीप मे हैं। दूसरे वृक्षो से इन्हें खाद्य न मिलेगा, तो यह अपना जीवन खो देंगे, पर अपने रक्षित खाद्य को छुएँगे भी नहीं! इसीलिये इन्हें कंजूस वृक्ष कहा जाता है।

तोप वृक्ष

दक्षिण अमेरिका में कुछ वृक्ष ऐसे हैं, जो तोप के बराबर का फल देते हैं। अगर इन फलों को मनुष्य के सिर पर लाद दिया जाय, तो शायद दब कर ही मर जायँ।

मोमबत्ती वाला वृक्ष

एक ऐसा वृक्ष है, जिसमें मोमबत्ती की तरह फल लगते हैं। इसलिये यह मोमबत्ती वाला वृक्ष कहलाता है।

तृषाहारी वृक्ष

यह वृक्ष रेगिस्तान में होते हैं। पानी के अभाव से रेगिस्तान वाले तृषा से अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं, यह वृक्ष उन तृषित मुसाफिरों को ठंढा पानी देकर, उनकी तृषा शान्त करते हैं। इस वृक्ष के तने में पानी का एक बहुत बड़ा निर्मर रहा करता है। वृक्ष देखने में सुन्दर मालूम होता है।

रोटियों का वृक्ष

कुछ देशो में रोटियो के भी वृक्ष हैं, इन वृक्षों के फल बड़े-बड़े होते हैं और उनकी गरी से रोटी बनाई जाती है।

कुतुबनुमा वृक्ष

उत्तर अमेरिका मे कुछ ऐसे वृक्ष भी हैं, जो कुतुबनुमा का काम करते हैं। जिस प्रकार कुतुबनुमा यन्त्र की सुई हर समय उत्तर की ओर रहती है, उसी प्रकार इस वृक्ष के पत्तो की चौड़ाई हमेशा पूर्वदिशा की ओर ही रहती है।

चाँदी का वृक्ष

दक्षिण अफ्रिका में एक ऐसा वृक्ष है, जिसके पत्तों पर चाँदी के पत्रों की तरह सफेद और पतले आवरण होते हैं। यह आवरण बिलकुल चाँदी की तरह चमकदार होते हैं, और शोभा के रक्षा करने के लिए ही पत्तों पर यह जमते हैं।

भाला वृक्ष

इस वृक्ष की डालियाँ भाले या बल्लम की तरह नोकदार होती हैं। कोई प्राणी इस वृक्ष के नीचे पहुँच जाता है, तो वृक्ष की डालियाँ झुक कर उसका काम तमाम कर देती हैं।

मनुष्य भक्षक वृक्ष

ये वृक्ष दक्षिण अफ्रिका में हैं और इनका नाम है 'योटेबो'। इस वृक्ष की डालियों मे कीलों की तरह हजारों काँटे होते हैं। जब कोई आदमी वृक्ष के निकट जाता है, तो इस वृक्षकी डालियाँ, उससे लिपट कर अपने काँटों के द्वारा उसका खून पीने लगती हैं। खून पीने के बाद डालियाँ उसे जकड़ भी लेती हैं। दक्षिण अफ्रिका मे फीजो प्रदेश के अपराधी, खूनी और जादूगरों को इन्हीं वृक्षों के सिपुर्द कर दिया जाता है, और वे उनका काम तमाम कर देते हैं। यह वृक्ष जब क्रोध में होता है, तो अपनी टहनियो को आकाश में फैला कर साँपो की तरह फूँकार करता रहता है।

गाने वाला वृक्ष

अमेरिका के जङ्गलों में एक इस प्रकार का वृक्ष मिला है, जो हवा लगते सितार की तरह झनझनाने लगता है। वृक्ष के पत्तों से ही यह मधुर ध्वनि निकलती और चलते हुए मुसाफिरों को ऐसा आकर्षित कर देती है कि वे घण्टों वृक्ष के पास खड़े रह जाते हैं।

पुष्पमाला वृक्ष

इस वृक्ष पर लगने वाले फूल पुष्प-माला की तरह नीचे तक लटक जाते हैं। इससे इसे पुष्प-माला वृक्ष कहा जाता है।

छींक लाने वाला वृक्ष

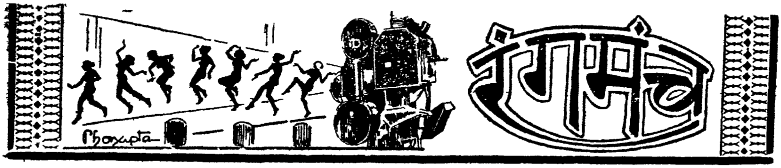
नेटाल दक्षिण अफ्रिका मे एक ऐसा वृक्ष है, कि उसके निकट जाते ही छींकें आने लगती हैं।

सबसे बड़ा व पुराना वृक्ष

अमेरिका के नेशनल पार्क में 'सीकवोइया' नामक एक वृक्ष है, जो पाँच हजार वर्ष पुराना है। यह वृक्ष २०० हाथ ऊँचा है और इसके तने की परिधि २० हाथ है। इस वृक्ष में डालियाँ भी अनेक हैं और एक डाली तो इतनी मोटी है कि उसका व्यास ६ हाथ है।

मांसाहारी वृक्ष

इस वृक्ष के पत्तों पर लसदार पदार्थ का जाला-सा लगा रहता है, कीड़े-मकोड़े या मक्खी वगैरह इस पर बैठती हैं कि यह जाला पैर पकड़ लेता है। जब कोई कीड़ा-मकोड़ा पकड़ जाता है, तो पत्ता सिकुड़ने लगता है और वह अपने शिकार को स्वाहा कर जाता है। अगर कोई मांस का टुकड़ा भी उसपर रख दे, तो वह पत्ता उसे भी उसी प्रकार खा जाता है।



नूरे-ईमान पर एक दृष्टि

लेखक—श्रीयुत रामचन्द्र अग्रवाल

कथानक—एक गरीब के मकान में पली हुई शाहजादी अमीना पर एक डाकू रशीद की दृष्टि पड़ती है, वह अमीना से जबरदस्ती करता है, किन्तु उसे शाहजादा याकूब बचा लेता है। याकूब का चचा अमीना से विवाह करना चाहता है, किन्तु उसका पालक एवं वह स्वतः मना कर देते हैं। अमीना किसी तरह वहाँ से भाग निकलती है। याकूब का चचा (नवाब) अमीना की परवरिश करने वाले की आँखें फुड़ डालता है। बेचारा अन्धा यहाँ-वहाँ भटकता फिरता है। अमीना को बहुत मुसीबतें उठानी पड़ती हैं। याकूब अमीना की सहायता करके उसे अपने राजमहल में ले आता है। याकूब की चची, जिसे याकूब अम्मी कहता है, उसे सम्हाल कर रखती है। याकूब और अमीना में प्रेम हो जाता है। नवाब भी अमीना पर अपना प्रेम प्रकट करता है और जबर्दस्ती करता है। याकूब की शादी की बातचीत एक दूसरी शाहजादी से पक्की की जाती है, किन्तु वह इंकार कर देता है। अमीना नवाब के फन्दे से निकल भागती है, किन्तु रास्ते में उसे रशीद डाकू पकड़ कर ले जाता है। अमीना का पता न चलने पर याकूब घर से निकल भागता है और पता लगाकर रशीद से छुड़ाने का प्रयत्न करता है, किन्तु वह कैद कर लिया जाता है। मरियम के कहने पर नवाब याकूब को छुड़ाने जाता है।

वह रशीद डाकू को मार डालता है। तत्पश्चात् वह भी घायल कर दिया जाता है। याकूब छुटकारा पा जाता है। अमीना की परवरिश करने वाला अन्धा वहाँ किसी तरह पहुँच जाता है और नवाब का भण्डा फोड़ करता है। उसके कथनानुसार नवाब ने अपने बड़े भाई नवाब मरहूम को मार डाला था। अमीना मरहूम की बेटी थी। नवाब अपने गुनाहों की माफी माँग कर मर जाता है। अमीना और याकूब की शादी हो जाती है।

कथानक के दोष—कथानक में कई जगह शिथिलता आ गई है। याकूब नवाब को कभी चचा कहता है, तो कभी अब्बा। यदि वह अब्बा था तो नवाब एक जगह यह क्यों कहता है कि 'देख लेना चचा भी अपने भतीजे पर कुर्बान हो सकता है।' यदि याकूब नवाब का भतीजा था, तो वह मरहूम का पुत्र होगा। मरहूम का पुत्र होकर वह अमीना का सगा भाई है। तब वह सगी बहन से विवाह कैसे कर लेता है?

कथानक में अन्य कई दोष हैं। कथानक की भाषा ठीक नहीं है।

सम्वाद—रोचक व स्वाभाविक नहीं है। राजा सेण्डो व नन्दराम का सम्वाद अच्छा था। सम्वाद में कहीं कहीं अश्लीलता की पुट है।

गायन—गायनों का चुनाव साधारण श्रेणी का है। रिकार्डिङ्ग की खराबी के कारण गाने कहीं कहीं समझ में नहीं आते हैं। दुलारी अच्छा गाती है, किन्तु गाने ठीक नहीं हैं। एक दो गानों की तर्ज की नकल पूरन भगत से की गई है। गानों में नवीनता कोई नहीं है।

वाद्य—वाद्य प्रणाली खराब है। बैक ग्राउण्ड म्यूजिक ठीक नहीं। फालतू बाजा बजना कर्णकटु प्रतीत होता है। बाग बगीचे, जंगल में गाने के साथ बाजा—हारमोनियम तबला—का बजना खेल को अस्वाभाविक बनाने में कोई कसर उठा नहीं रखता। भारतीय फिल्म कम्पनियों का यह भारी दोष न मालूम कब मिटेगा!

नृत्य—नृत्य एक है, वह भी तृतीय श्रेणी का। केवल हाथ पैर मटकाये जाते हैं।

डायरेक्शन—ठीक नहीं है। मदनराय वकील से ऐसे खराब डायरेक्शन की आशा न थी।

वेष-भूषा—अच्छी है, किंतु एक जगह मरियम की आँख में काजल का बहुत ज्यादा अधिकता खटकती है। नवाब की वेष भूषा साधारण है।

फोटो-ग्राफी—साधारण है। कहीं कहीं तो बहुत खराब होजाती है। प्रकाश—छाया का ठीक ख्याल नहीं किया गया है।

रिकार्डिंग—खराब है। रिकार्डिंग में शुरू से आखीर तक खटर-पटर होती रहती है। एक स्थान पर रिकार्डिंग में भारी भूल हुई है जो कि ध्यानके साथ देखने पर खटकती है। जब याकूब अमीना से बगीचे में बातचीत करता है, तब उसका मुख का खुलना व शब्दोच्चारण बिलकुल नहीं मिलते।

दृश्य—दृश्य अच्छे हैं। स्वाभाविक दृश्य मन मोहक हैं। बाग-बगीचे, सरवर, मार्ग, गाँव इत्यादि के दृश्य अच्छे हैं।

सेटिंग्ज—राज-महल का सेटिंग कमजोर है।

अभिनय

मिस दुलारी (अमीना)—दुलारी का अभिनय अस्वाभाविक है। दुलारी से भविष्य में भी ऐसी आशा न थी।

राजा सेण्डो (नवाब)—अभिनय अच्छा रहा। स्वाभाविक अभिनय है।

नन्दराम पहलवान (याकूब)—अभिनय साधारण है। उससे भविष्य में काफी आशा थी, किन्तु वह इस संसार से उठ गया और अपनी अन्तिम कृति हमारे सामने रख गया। हम उसका सहर्ष मान करते हैं।

कॉमिक—अच्छा है। कॉमिक एक्टर का अभिनय भी अच्छा है।

उपसंहार—मुझे भविष्य में भी यह आशा न थी कि अरविन्द मिनटोन का खेल इतनी साधारण श्रेणी का निकलेगा। आशा है अब कम्पनी जनता के सम्मुख एक कला पूर्ण चित्रपट उपस्थित करके अपना कलंक मिटा डालेगी।

चिट्ठी-पत्री

मेरी सफ़ाई

काशी का भूकम्प

महाराय,

'लीडर' तथा 'आज' दो पत्रों में एक 'पत्र' लिखकर मैंने भूकम्प से काशी की गहरी हानि तथा हानि के समय स्थानीय अधिकारियों की उपेक्षा की शिकायत की थी। इन पत्रों से स्थानीय अधिकारी तथा प्रान्तीय सरकार तक चिन्तित हो गई और कलेक्टर का तार तथा प्रान्तीय सरकार की विज्ञप्ति तक निकल गई, जिसमें मुझे झूठा साबित करने का पूरा प्रयास किया गया था। मैंने अपनी सफ़ाई 'लीडर' तथा 'आज' दोनों में भेजा था। 'लीडर' का मेरा पत्र दबा लेना, तो स्वाभाविक था, पर 'आज' तो राष्ट्रीय पत्र है, 'लड़ाई का समाचार' नहीं। उसे तो मेरा उत्तर छाप ही देना उचित था, पर वह इतनी थोड़ी कृपा न कर सका। यूनाइटेड प्रेस तथा फ्री प्रेस के प्रतिनिधि का मैं कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने सरकारी विज्ञप्ति के प्रकाशित होते ही मुझसे ,भेंट की, मेरी सफ़ाई ली तथा अपने पत्रों में भेज दिया।

पर, हिन्दी-पाठकों के सामने अपनी सफ़ाई देना उचित समझकर, मैं आपको कुछ पंक्तियाँ प्रकाशित करने का कष्ट दे रहा हूँ। मैं इस नगर के किसी उच्च अधिकारी से कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं रखता। विद्या तथा बुद्धि में सभी मुझ से बड़े हैं। स्थानीय जिलाधीश श्री पन्नालाल के प्रति हृदय में पर्याप्त आदर भाव है। नगर का जितना उन्हें ध्यान रहता है, उतना कम कलेक्टरों को रहता होगा, पर मुझे जो दोष दीख पड़ता है, वह तो कहूँगा ही। मैं अब भी कहता हूँ और चुनौती देकर कहता हूँ कि भूकम्प से काशी की कम नहीं, लगभग एक करोड़ की हानि हो गयी है। मकानों का गिर जाना अच्छा है, पर फटकर, भर्रा बनकर खड़े रहना और उनके मालिकों का लोभवश उनमें पड़े रहना कहीं खतरनाक है। मकानदारों ने मकानों की फटी दीवालों को ऊपर से सीमेन्ट लगाकर ठीक करा दिया है, पर स्थिति कितनी खराब है, यह इन दो दिनों की वर्षा से ही पता चल गया है तथा आगे की वर्षाऋतु को राम जाने! गिरे मकानों की संख्या भी, मेरी समझ में पचहत्तर तक जरूर होगी, निकम्मे मकानों की कई सौ।

भूकम्प से आतंक के समय तथा १५ जनवरी के कई दिन बाद तक सरकारी अधिकारियों का पता तक न था। भूकम्प के दुबारा चलने तक सरकार की ओर से कोई आश्वासन तक न दिया गया था और लोग बेहद परेशान थे। सरकारी अधिकारी अगर कहीं घूमे होंगे, तो केवल ऐसी गलियों में जिसकी मुझे तथा मेरे मित्रों को कोई सूचना नहीं है। रह गई म्युनिसिपल बोर्ड की बात। कलेक्टर साहब कहते हैं कि बोर्ड के अतिरिक्त जिलाधीश अफ़सर ने सारे नगर का गश्त लगाया। मैं इतना जानता हूँ कि मेरे आस-पास का मुहल्ला काफ़ी महत्त्व पूर्ण है वहाँ तो म्युनिसिपैलिटी के दारोगा का भी पता न था, न है? गश्त की बात तो दूर है। बोर्ड के विषय में मैं क्या लिखूँ। लिखना केवल अरण्य रोदन है। मि० लिंच तो अपने को 'बोर्ड' समझते होंगे। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं सरकारी बोर्ड का इसलिये नहीं विरोध करता कि वह सरकारी है। मैं उसके कुछ अच्छे कामों की मुक्त-कण्ठ से सराहना भी करूँगा॰; पर मुझे कोई अच्छा काम मालूम भी हो। अभी तक केवल एक ही अच्छा काम मुझे मालूम है, वह यह कि चूँकि शिक्षा विभाग में खद्दर का उपयोग बन्द कर दिया गया है, अतएव पुराने शिक्षाध्यक्ष के समय का एकत्रित खद्दर बिहार भेज दिया गया। चलो, बड़ा अच्छा हुआ। सरकारी बोर्ड के लिये जो विष था, वह हमारे पीड़ित भाइयों के लिये अमृत बन गया।

हाँ, सरकारी बोर्ड के कर्मचारियों की मुझे सख्त-सख्त शिकायत है। उनका नगर का बोर्ड में उतना ही हाथ है, जितना कलेक्टरी-कचहरी के किसी कर्मचारी का। दो दिन की वर्षा ने यह साफ़ बतला दिया कि

सड़कें पहले से ज्यादा खराब हो गयी हैं। धूल के सुरखे न आने के कारण कीचड़ बहुत होता है। पानी के छिड़काव से केवल कीचड़ होता है, कोई लाभ नहीं। गलियों में कूड़े का ढेर, सड़क तथा नाली की सफाई-दारोगा का, चीफ सैनिटरी इन्सपेक्टरों का गश्त न के बराबर लगाना, इन बातों की शिकायत हमें है और रहेगी। शिक्षा-विभाग की शिक्षा अ-राष्ट्रीय हो गयी, चर्खा उठ गया। चर्खा गया, खद्दर गया, गांधी टोपी गई, राष्ट्रीय पुस्तकें गयीं, अब केवल बागवानी होती है। जो म्युनिसिपल अध्यापक नगर की सेवा के हर कार्य में आगे रहते थे, वे सेवा-समिति की भूकम्प-पीड़ित-सभा में भी मौजूद न थे। इसका कारण भी है। उनके अफसर साहब जब किसी सार्वजनिक सभा में नहीं आते और शायद अपने को जनता का नहीं, सरकारी बोर्ड का ही सेवक समझते हैं, तो भला अक्लमन्द अध्यापक के लिये यह 'इशारा' काफ़ी नहीं है! भूकम्प-पीड़ितों के लिये न जाने म्युनिसिपल स्कूलों में चन्दा हो रहा है या नहीं। वाइसराय के स्वागत के लिये गरीब मास्टर तथा बच्चों के पिताओं ने अपने भरसक काफ़ी चन्दा दिया था और उसकी वसूली भी काफ़ी उत्साह के साथ की गयी थी। तात्पर्य यह है कि शिकायत हरेक नागरिक को है, पर बनारस की जनता जैसी है, यदि वैसी न होती, तो उसकी नागरिकता का अपमान कर यहाँ सरकारी बोर्ड न आती!

भूडोल से मकान जर्जर हो गये हैं। बरसों तक उनकी मरम्मत न हो सकेगी, कितने मकान साल के आखीर तक खड़े तक न रहेंगे, पर सरकार को 'असेसमेन्ट' का ही ख़्याल है। जिन वार्डों की तशखीस हो गई है, उनमें दुबारा काम करना होगा। मेरी सलाह थी कि काम मुल्तवी हो जाय, वरना अनुचित तशखीस से नगर तथा बोर्ड दोनों की हानि होगी। मुझे दुःख है कि कलक्टर साहब ने इस अपील का गलत अर्थ लगाया। मैं तशखीस से घबड़ाता नहीं। हम लोग गरीब आदमी हैं। हमारे पास मकान नहीं, झोपड़े हैं। हमारा नहीं, पर नगर का पूरा नुकसान होगा, यह मेरी राय है। यदि बड़े लोग इसे नादानी समझते हैं, तो वे जानें उनका काम जाने।

मैं इस पत्र द्वारा यह स्पष्ट कर दूँ कि मैं सदैव अपनी भूल स्वीकार करने तथा उसके लिये क्षमा तक माँगने के लिये तैयार हूँ। मैं बोर्ड के भी हरएक अफसर को, यदि मेरी कोई सहायता अभीष्ट हो तो वह भी देने के लिये तैयार हूँ, पर मेरे पास 'कमिश्नर' के ऐसे तारों का कोई भी जवाब नहीं है, कि वे भी शहर घूम चुके। इसका जवाब शहर भी न देगा। मैं इधर कलक्टर साहब की मुस्तैदी के कारण अधिकारियों को भी सतर्क तथा नगर में रुचि लेते देख रहा हूँ और इसके लिये उनका कृतज्ञ भी हूँ,

परिपूर्णानन्द वर्मा

लेखों पर स्वर्ण-पदक

श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर, का

श्री० डॉ० सरजूप्रसाद-स्वर्ण-पदक

श्री मध्यभारत-हिन्दी साहित्य-समिति ने निम्नलिखित विषयों पर सर्वश्रेष्ठ लेख लिखने वाले लेखकों को 'श्री डॉ० सरजूप्रसाद स्वर्ण पदक' देना निश्चित किया है।

(१) सूर-साहित्य।

(२) 'भारतीय सघ शासन-विधान' (Indian Federation)

विशेष सूचना—

(१) पहले लेख के सम्बन्ध में लेखक को १—सपूर्ण सूर-साहित्य का सक्षिप्त विवरण, २—सूर साहित्य और तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति, ३—सूर-साहित्य का समाज पर प्रभाव, ४—सूर-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन ५—साहित्य की विशेषता, ६—सूर साहित्य और भाषा, आदि बातों पर प्रकाश डालना चाहिये।

(२) दूसरे लेख के सम्बन्ध मे लेखक को अपने लेख में निम्न लिखित बातों की विवेचना करनी चाहिये, १—सघ-शासन की व्याख्या और इतिहास, २—भारतीय राजनीति में सघ शासन का स्थान ३—प्रस्तावित भारतीय सघ-शासन, ४—भारतीय सघ-शासन और लोकमत, ५—भारतीय सघ-शासन से हानि-लाभ, ६—भारतीय सघ-शासन और देशी राज्य, ७—प्रस्तावित भारतीय सघ शासन की अन्य सघ-शासनों से तुलना। किस प्रकार का सघ शासन भारत के लिये उपादेय है, इत्यादि।

प्रत्येक लेख फुलस्कैप आकार के कम-से-कम १०० पृष्ठ का होना चाहिये।

जो लेख सर्वश्रेष्ठ होगा उसे छापने का अधिकार समिति को होगा, परन्तु यदि समिति छापना निश्चय करेगी, तो पदक के अतिरिक्त लेखक महोदय को उचित पुरस्कार या रॉयल्टी भी देगी।

एक ही लेखक यदि चाहे तो दोनों विषयों पर लिख सकता है, परन्तु यह अनिवार्य नहीं है। किसी एक विषय पर भी लिखा जा सकता है। दोनों लेखों पर पदक पृथक्-पृथक् दिया जायगा।

सब लेख तारीख ३० जून १९३४ ई० तक समिति-कार्यालय में आ जाना चाहिये।

श्रीनिवास चतुर्वेदी, एम० ए०, मन्त्री, साहित्य-विभाग

आवश्यक सूचना

गत ता० १५ जनवरी सोमवार को सवा दो बजे दिन में जो भारत-व्यापी भयंकर भूकम्प हुआ, उससे पुस्तक-भण्डार का भवन और प्रेस चकनाचूर हो गया, जिससे लगभग पचास साठ हजार की हानि हुई है। स्कूली सीजन की बिक्री एकाएक बिलकुल रुक जाने से और भी हानि हुई है। ईश्वर की असीम दया से और कोई प्राणनाश नहीं हुआ, केवल 'बालक' कार्यालय के एक लाईब्रेरियन की मृत्यु हुई है। 'भंडार' के विशाल भवन में असंख्य पुस्तकों का जो स्टॉक है, उसे सुरक्षित रखने के लिये 'भंडार' के विस्तृत अहाते के अन्दर ही एक स्थाई गोदाम बनवाने का प्रयत्न किया जा रहा है। प्रेस के मकान से टाइप आदि सामान निकलवाने की भी कोशिश की जारी है। छापे की मशीनें ईश्वर की दया से बच गई हैं। टाइपों के निकलते ही प्रेस चालू कर दिया जायगा। स्थानीय बिक्री के लिये 'भंडार' के फाटक पर दूकान खोल दी गई है और ऑफिस का काम भी शुरू हो गया है। ता० १५ से ही डाक, तार और रेल के बन्द हो जाने से आर्डर सप्लाई और चिट्ठी पत्री का काम बन्द रहा। गत २० जनवरी शनिवार (वसन्तपंचमी) से मोटर द्वारा डाक आने-जाने लगी है। इसलिये डाक द्वारा होनेवाले सभी काम सुविधानुसार होने लगे हैं, किन्तु रेल अभी तक बन्द है और उसके खुलने की कोई निश्चित सूचना अभी नहीं मिल रही है। ऐसी दशा में रेलवे पार्सल भेजने की कठिनाई आ पड़ी है। फिर भी समस्तीपुर से रेलवे-पार्सलों के भेजने की व्यवस्था की जा रही है। आशा है कि अति शीघ्र वह व्यवस्था भी ठीक हो जायगी। यदि ईश्वर की कृपा हुई तो एक सप्ताह के अन्दर प्रेस के चालू होते ही फरवरी का 'बालक' छपने लगेगा और फरवरी के अन्दर ही सब के पास पहुँच जायगा।

अब, 'भंडार' के कृपालु हितैषियों और ग्राहकों तथा सहयोगियों से सविनय निवेदन है कि 'भंडार' की क्षतिपूर्ति करने में यथाशक्य हमारी सहायता करें, जिससे उत्साहित होकर हम शीघ्र ही 'भंडार' द्वारा आप लोगों की सेवा कर सकें। यद्यपि बिहार के प्रकाशकों में 'भंडार' ही सबसे अधिक क्षतिग्रस्त हुआ है, तथापि आप लोग यदि 'भंडार' की सेवाओं का ख्याल कर हमारे साथ यथोचित सहानुभूति दिखावेंगे, तो हम पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि अब तक 'भंडार' ने हिन्दी की जैसी सेवा की है वैसे ही आगे भी करता रहेगा। हमें आशा है कि आपलोग हमारे धैर्य और साहस को द्विगुणित करेंगे।

आपलोग जानते हैं कि महान् उद्देश्य की सिद्धि में अनेक विघ्न हुआ करते हैं, किन्तु भगवत् कृपा से हम विघ्नों के कारण अपने पवित्र लक्ष्य से विचलित न होंगे। 'भंडार' को उत्तरोत्तर उन्नत बनाना ही हमारे जीवन का मुख्य ध्येय है और उसकी पूर्ति में हम सदा अविचलित भाव से दत्तचित्त रहेंगे। ईश्वर की कृपा से हतोत्साह होने का कोई अनिवार्य कारण नहीं है। अधिक से अधिक १५ फरवरी तक सब विभागों के कार्य संचालन की सुव्यवस्था हो जाने पर पुनः चौगुने उत्साह से पूर्ववत् सब काम होने लगेंगे।

अन्त में आपको यह भी सूचित कर देना आवश्यक है कि पटने में जो 'भंडार' की शाखा है, उसका विशाल भवन भी टूट गया है और वहाँ भी नये मकान में कार्यालय ले जाने का प्रबन्ध हो रहा है, किन्तु यहाँ की तरह वहाँ भी काम चालू हो गया है। अतएव आप लोग हमारे शाखा-कार्यालय से भी पूर्ववत् व्यवहार जारी कर दें—यही प्रार्थना है।

अनुग्रहाकांक्षी—
रामलोचनशरण
संचालक—पुस्तक-भंडार,
लहेरियासराय

२३—१—३४

कर्मयोग

ईश्वरभक्ति, दिव्यजीवन, दैवीशक्ति-सम्पत्ति का साधन

सचित्र मासिक पत्र

सम्पादक—पं० श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे (काशी)

जिस ज्ञान, प्रेम और कर्म के द्वारा भगवान् प्रसन्न होते हैं, उसी ज्ञान, प्रेम और कर्म का प्रचार करना इस पत्र का उद्देश्य है। कारण भगवान् की प्रसन्नता ही प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक देश और समग्र विश्व की प्रसन्नता का कारण है। इस पत्र के द्वारा यह प्रयत्न होगा कि इसके पाठकों को अपनी आत्यन्तिक, वैयक्तिक उन्नति का रास्ता मिले। देशहितचिन्तकों को देश के वास्तविक कल्याण का प्रशस्त पथ दिखाई दे और मानव-समाज का ध्यान उस ओर लगे, जिस ओर ध्यान लगने से मनुष्य पशुता को छोड़ मनुष्यता से भी ऊपर उठकर दुःखमय संसार को परम सुखास्वादन से उत्फुल्ल कर देता है। सुखमय संसार की कल्पना को सत्य कर दिखाने का जो वेद-विहित मार्ग है, भगद्वचनों से जो निर्दिष्ट है, सत्पुरुषों का जो बताया हुआ है, वही मार्ग देखना और दिखाना इस मासिक पत्र का कर्म मार्ग है। यह ध्वजारोपण तिथि चैत्र शुक्ल १ सम्वत् १९९१ से प्रकाशित होगा। इसका प्रत्येक अंक अंगरेजी महीने की १५ वीं तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा। इसका आकार २०×३० अठपेजी होगा। और प्रति अंक की पृष्ठ संख्या ८० होगी। तथा इसी मार्ग के पोषक उत्तम भावपूर्ण रंगीन और सादे चित्र भी रहा करेंगे। वार्षिक मूल्य ४≡) होगा।

१५ मार्च १९३४ तक ग्राहक होने वालों को केवल ३॥≡) देना होगा।

मैनेजर—'कर्मयोग' हिन्दुस्तानी बुकडिपो, लखनऊ



बिहार के भूकम्प के विषय में श्री० सी० एफ० एन्ड्रूज ने कहा है कि 'कौन जानता है कि प्रभु ने हमें सेवा करने का यह अवसर प्रदान किया है।' कसम उस दयालु गॉड या खुदा की, हम तो एंड्रूज साहब की इस अपूर्व सूझ पर फिदा हो गये! सचमुच यदि वह प्रभु ऐसा ही बुद्धिमान और दयालु है, तो संसार के बेकारों को उससे ऐसे लाख-लाख सुअवसर प्राप्त करने की भीख माँगनी चाहिए। सेवा के साथ मेवा का यह सुयोग कभी न खोना चाहिए!

* * *

इंगलैण्ड के जो बेकार व्यर्थ ही लन्दन नगर पर चढ़ाई कर-करके परीशान हो रहे हैं, उन्हें भी ध्यान देना चाहिए। यह दो हाथ, दो पैरों वाला (जिसकी दुम घिस गई है) मनुष्य तो कभी दया न दिखाएगा, लेकिन वह दयालु पिता अवश्य ही तरस खाएगा। शीघ्र ही उन्हें भी सेवा के साथ मेवा वाला सुअवसर प्राप्त करने के लिए, लन्दन के सब से बड़े गिर्जे में जाकर पादरी एंड्रूज साहब का नाम लेकर प्रार्थना करनी चाहिए। देखिए, चुटकियों में तो मसला तय हो जाता है!

* * *

महात्माजी ने कहा है कि 'बिहार की भूकम्प-दुर्घटना हरिजनों के साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार के पाप के कारण हुई है।' लेकिन अपने राम की समझ में नहीं आता कि इस पाप के करने वाले तो अपने मंदिर और मठों को सुरक्षित लिए बैठे रहे और बेचारे उन निरपराध प्राणियों का कचूमर क्यों बना दिया गया? अगर यह ईश्वर ने ही किया है, तो अवश्य ही वह सन्निपात ग्रस्त हो गया, या गहरी 'बूटिया' या शीराज़ी छानने लगा है, या उसकी आँखों पर नवाला उतर आया है।

* * *

अगर अपने राम को, उसके दरबार से कोई टेलीफोन के द्वारा उसका सच्चा हाल सूचित करदे, तो इसी साल आला खिताब पाये प० त्र्यम्बकजी शास्त्री के द्वारा सब प्रकार के इलाज का इन्तजाम किया जा सकता है, और तारीफ यह कि फीस एक पाई भी न देना होगी! अगर उन्हें लाभ हो जाय और उनके भक्तों का मन चाहे, तो कोई स्वर्गीय अप्सरा ही बुढ़ौती में सेवा के लिए वैद्यरत्नजी को अर्पित करदी जाय। बस, और एक टका भी खर्च न होगा!

* * *

लेकिन हमें चिन्ता है कि हमारी यह खबर कौन पहुँचाएगा। वहाँ से सीधा सम्बन्ध तो शायद वर्णाश्रम स्वराज्य संघ वालों से ही है, यदि वे दया कर दें, तो दुनिया का बड़ा उपकार हो जाय।

* * *

असेम्बली में जमींदारों की ओर से श्री लहरी चौधरी ने कहा कि 'यदि सरकार जमींदारों के हितों का खयाल नहीं करेगी, तो इसका अर्थ यह है कि सरकार हिन्दुस्तान में क्रान्ति, साम्यवाद तथा आतंक बुला रही है।' भाई राम भला करे, चौधरीजी का, कैसी पेचदार बात कही है? कहने के भी ढंग होते हैं जनाब, वैसे तो सरकार के आगे कोई चूँ तो कर ले!

* * *

बिहार के भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए जो टाटा कम्पनी ने टीन और अन्न से सहायता की है, सुना है उसका उपयोग सरकारी कर्मचारी और मजदूरों के लिए किया जा रहा है। सो ठीक ही तो है, जो चीज सरकार के हाथ में होगी, वह उसकी इच्छानुसार ही तो खर्च की जायगी! जनता ने जो रुपया भूकम्प-पीड़ित सहायक केन्द्रीय कमेटी को भेजा है, क्या वह कमेटी अपने मनानुकूल नहीं खर्च कर रही है? अरे भाई, जनता जनता का भला चाहती है, तो सरकार सरकारी आदमियों का भला न चाहेगी?

* * *

बंगाल के कट्टर सनातनियों ने महात्माजी के बंगाल में पहुँचने पर उनके स्वागतार्थ एक कमेटी कायम की और १००१) रुपया एकत्र करके प्रसिद्ध सनातनी विद्वान् प्रमथनाथजी तर्कभूषण के द्वारा, उन्हें भेंट करने का आयोजन किया है। अपने राम की राय में बंगाल के सनातनी भूल खा गये हैं, वर्ना इस आयोजन के पूर्व काशी वर्णाश्रम स्वराज्य संघ से अवश्य सम्मति ले लेते।

* * *

बिहार में लगभग ५०,००० आदमी परमधाम की यात्रा कर गये और सरकार के दरबार में अभी ६००० की ही गणना हुई है। इस पर काशी का सहयोगी 'आज' पूछता है कि 'आखिर इतनी कम संख्या बताने का कारण?' अरे भाई, इतना भी कारण समझ में न आया? सब पाप-दोष तो भी सरकार के सिर मढ़ा जा रहा है, सो यहाँ तो वह जो कह देगी, हो जायगा; पर अगर सच्ची संख्या लिख दी, तो उस खुदा-वन्दकरीम के घर वह क्या जवाब देगा? आखिर आकबत का भी तो ख्याल रखना चाहिए?

—विचित्रानन्द

काशी के पंडितों ने भी ता० २७ को भारत पर आफत आने की भविष्यवाणी प्रकाशित करके नाम कमा लिया।

* * *

अगर उज्जैन के सूर्यनारायणजी व्यास ज्योतिषाचार्य भी कोई नयी भविष्यवाणी छपवा देते, तो अवश्य ही उनके सिर भी विजय का सेहरा बँध जाता।

* * *

भविष्यवाणी में यह जरूरत थोड़े ही थी कि उसकी एक-एक बात सच होती। अगर लिख दिया जाता कि चन्द्रग्रहण के अवसर पर कुछ लोगों को जीवित समाधि हो जायगी, कुछ लोगों पर सरकार का कोप होगा, कुछ लोग ऐसे मर जायँगे, कुछ लोग वैसे मर जायँगे, तो बस था। दो-चार बातें तो अवश्य सच हो जातीं। श्री सूर्यनारायणजी को काशी के पंडितों से इस मन्त्र की दीक्षा लेनी चाहिए।

* * *

इस देश के ज्योतिषी भी बड़े चालाक हैं। उनके पंचांग देखिए—बापूदेव, रामविनोदी, रेवाशङ्कर और चौकरी आदि जुदे-जुदे रूपरंग में प्रकट होते हैं। उनका गणित भी किसी का एक नहीं; अलग-अलग है। इसीलिए तो उनके ग्रहों में वक्रातिचार और उदयास्तादि जुदे-जुदे दिनों में होते हैं। शायद एक होते, तो उन सबके पंचांगों को कोई पूछता नहीं। एक ही पंचांग 'जगद्विनोद' बन जाता।

* * *

परन्तु तारीफ यह है कि होली, दिवाली, दशहरा और अक्षय सब पंचांगों में एक दिन आते हैं। किसी में आगा-पीछा नहीं होता। यह प्रसिद्ध त्योहार हैं, तमाम दुनिया इनको जानती और मानती है। इनमें अगर ज्योतिषी लोग आगे-पीछे कर दें, तो उनकी पोल खुल जाय। देखते नहीं गुरु-शुक्र के उदयास्त तो कई दिन के आगे-पीछे होते हैं, और होली, दिवाली सबकी एक आ जाती है। यह चालाकी नहीं, तो और क्या है।

* * *

लौट लीजिये, जिन ग्रहों को वे लोग कई दिनों के अन्दर प्रत्येक राशि में बहुत कुछ आगे-पीछे रखा करते हैं, उनको गत योग योग के लिए सभी पंचांग वालों ने अमावस के दिन मकर में लगा दिया। और दोयज को सभी ने उनको निकाल दिया, यह भी तो उनकी चालाकी ही है। अगर और बातों की तरह वे इनको आगे पीछे रख देते, तो दुनिया की दृष्टि में उनकी पण्डिताई प्रकट हो जाती!

—'ज्योतिषराज'

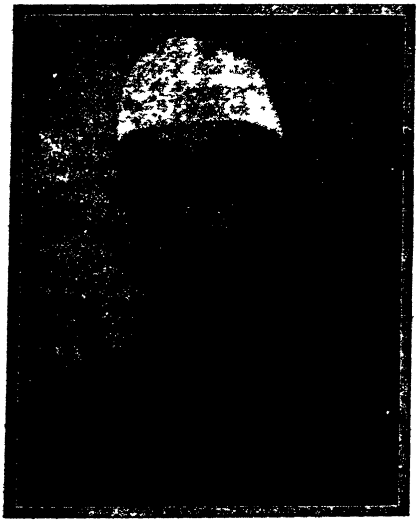
सहकारी सम्पादक—श्री प्रवासीलालवर्मा, मालवीय-द्वारा सरस्वती-प्रेस, काशी से मुद्रित और प्रकाशित।

जागरण

THE JAGARAN | सम्पादक—प्रेमचन्द | Illustrated Weekly

वर्ष २ ‖ काशी, वि० फाल्गुन बदी १३ सोमवार, सं० १९९० वि० : ता० १२ फरवरी सन् १९३४ ई० ‖ अंक २६

श्री पं० जवाहरलालजी नेहरू



आपने अपनी प्यारी पुत्री कुमारी इन्दिरा नेहरू के नाम १०६ पत्र लिखे जो टाइप किए हुए १,६०० पृष्ठों में हैं। इन पत्रों में सारे विश्व-भर की झलक आ गई है। उसका अन्तिम अध्याय पाठक ५ ६ पृष्ठों पर पढ़ें।

निर्झर से

हे निर्झर के झर-झर निनाद !
शत-शत शैलों का बल टटोल
लाखों की लहरी लोल-लोल !
जब उषा लुटाती घोल-घाल
हँसती जब उदय-द्वार खोल—
कैसा तब तुम करते विवाद,
हे निर्झर के झर-झर निनाद !
जब लोक-मुग्ध मार्त्तण्ड खण्ड—
का पाता ताप अखण्ड-चण्ड।
किरणें भी देतीं दण्ड-दण्ड
जब नभ भी होता खण्ड खण्ड !
उदय-श्री की होती न याद—
क्या, निर्झर के झर-झर निनाद !
नीलाम्बर में हीरक-लेखा
झिलमिल-सी आती मधुरेखा।
मुसकाना मधु रजनी का वह—
क्या आह ! कभी तुमने देखा ?
पागल ! कह सकते हो प्रसाद !
निर्झर के हे झर झर निनाद !
जब होता है प्रलयान्धकार
जगथल का भैरव चीत्कार।
जब मृत्यु क्रूर करती प्रहार—
संसार जहाँ होता असार !
क्या तुमको भी होता विषाद ?
हे निर्झर के झर-झर निनाद !

ईशदत्त पाण्डेय 'श्रीश' शास्त्री, विशारद

जागरण

मि० फाल्गुन बदी १३ सोमवार, सं० १९९० वि०

आगरा ज़मींदार-सम्मेलन

आगरा ज़मींदार सम्मेलन के सभापति नवाब साहब छतारी ने अपने भाषण में ज़मींदार साहबान को केवल अपना संगठन करने ही की ज़रूरत नहीं बतलाई, बल्कि उन लोगों के सहयोग की ज़रूरत भी बतलाई, जो ज़मींदार नहीं हैं पर व्यवस्थित उन्नति के समर्थक हैं। लेकिन हमारा विचार है, कि जिस चीज़ को नवाब साहब व्यवस्थित उन्नति कहते हैं, उसके समर्थक ज़मींदारों के सिवा शायद ही कोई सज्जन निकलें। व्यवस्थित उन्नति इस के सिवा और क्या है, कि ज़मींदारों को इस वक्त जो शक्ति और जो अधिकार प्राप्त हैं वे दिन दिन और व्यापक होते जायँ, उनका क्षेत्र दिन दिन विस्तृत होता जाय। मज़ा यह है कि कृषकों को साहूकारों की सख्तियों से बचाने के लिये जो व्यवस्था की जा रही है, उससे पूरा फायदा उठाने के लिये यह लोग अपने को कृषकों में शामिल किये देते हैं। किसानों को संरक्षण की इसलिये ज़रूरत है कि वे दीन हैं अशक्त हैं, एक ओर ज़मींदारों के शिकार हो रहे हैं, दूसरी ओर साहूकारों के। उन्हें न रोटी मयस्सर है, न कपड़ा, न बीज मयस्सर है, न बैल। इसके विरुद्ध हमारे ज़मींदार साहबान प्रान्त में सबसे समर्थवान्, सबसे प्रभावशाली वर्ग हैं। उनमें से कितने ही ऐश की ज़िन्दगी बसर करते हैं और जो गये बीते हैं, वे भी डण्डे के ज़ोर से किसानों से खेती करा लेते हैं, तरह तरह के बेगार और तावान वसूल करते हैं और मज़े से अफीम खाते या भंग उड़ाते हैं, अगर ऐसे शक्तिशाली वर्ग को भी संरक्षण की ज़रूरत है, तो इसका अर्थ यही है कि ये लोग चाहे जितना अन्याय करें, चाहे जितने कर्ज़ लें, उन पर कानून का वार न चल सके।

मगर ऐसी कारवाइयों से हमारा ज़मींदार वर्ग उस रहे सहे विश्वास और सम्मान को भी खोता जाता है, जो जनता में उसके प्रति बाकी है। जब यह संरक्षण ज़मींदारों को न प्राप्त थे, उस दशा में भी वे अन्धाधुन्ध कर्ज़ लेने से न चूकते थे, तो अब ये संरक्षण मिल जायँगे, तब उनकी उमंगें क्या रंग लायँगी, इसका अनुमान किया जा सकता है। कमज़ोर का जबरदस्तों से संरक्षण चाहना तो स्वाभाविक है लेकिन जबरदस्तों का संरक्षण चाहना, इसके सिवा और क्या है, कि वे और भी शक्तिवान हो जायँ। क्या हमारे ज़मींदार भाइयों ने कभी यह सोचने की तकलीफ उठाई है कि जनता से क्यों उन्हें इतना भय हो रहा है? क्यों वे यह सोच सोच कर व्याकुल हो रहे हैं कि आने वाली व्यवस्था में बहुमत उनके अधिकारों को छीनने की चेष्टा करेगा, और इसलिये उन्हें आपस में संगठित होकर उस बहुमत को अपने हाथ में कर लेना चाहिए? इसका कारण इसके सिवा और कुछ नहीं है कि ज़मींदारों को अभी तक जो अधिकार प्राप्त थे, उनका उन्होंने बराबर दुरुपयोग किया है, और जनता नहीं चाहती कि समाज का कोई अंग इतना प्रबल हो जाय कि वह निर्बलों को कुचलता रहे। हमारे ज़मींदार साहबान अपने लिये संरक्षणों और रिआयतों पर ज़ोर देकर जनता में और भी अविश्वास और भय उत्पन्न कर रहे हैं। इस नीति से वे जनता पर आतंक जमा सकते हैं, उसकी सहानुभूति और विश्वास के पात्र नहीं बन सकते। जब तक वे यह न समझेंगे कि जनता के हित के साथ उनका भी हित है, और उनके अस्तित्व का उद्देश्य यही है कि वे अपने असामियों की सेवा और सहायता करें, तब तक जनता उनकी ओर से सदैव सशंक रहेगी और उनके विरुद्ध आन्दोलन करती रहेगी। किसान इसलिए समाज का उपकारी अंग है कि उसके बिना समाज एक दिन न चलेगा। दूकानदार सारे दिन दूकान पर बैठकर और नौकर सारे दिन स्वामी की आज्ञा पालन करके अपनी कमाई हलाल कर लेते हैं। सभी को अपनी जीविका के लिये कुछ-न-कुछ परिश्रम करना पड़ता है। यहाँ तक कि साहूकार को भी बहुधा नादिहन्द कर्ज़दारों से पाला पड़ जाता है और उसकी रकमें डूब जाती हैं। लेकिन ज़मींदारों से कोई पूछे, तुम जनता का क्या उपकार करते हो? तुम्हारी ज़ात से समाज का क्या भला होता है। तुम में से जो सम्पन्न हैं वे मज़े से लखनऊ या इलाहाबाद में बँगलों में ऐश करते हैं और जो इतने भाग्यवान नहीं हैं, वे देहातों में ही मूसलचन्द बने घूमते हैं, जैसे गीदड़ मुर्दे जानवरों की खोज में रात को निकलते हैं। उनका उद्यम इसके सिवा और कुछ नहीं है कि किसी असामी को किसी बहाने से फँसाकर उसकी जमा अथवा डकार जायँ। कहीं दो असामियों में लड़ाई हो जाय, ज़मींदार साहब की चाँदी हो गई। दोनों ही से कुछ न कुछ डाँड वसूल करेंगे और चैन की बंसी बजायेंगे। या दाल गलती न देखी, तो पुलिस की दलाली करने लगे और लूट में शरीक हो गए। ऐसी मुफ्तखोर, निकम्मी, लुटेरी, आरामतलब संस्था बहुत दिन जीवित नहीं रह सकती, चाहे वह अष्टधातु के किले ही में क्यों न अपने को बंद करले। जनता आज किसी का शिकार नहीं बनना चाहती, ज़मींदार हो या साहूकार, सरकार हो या मिल मालिक—उसे किसी से दुश्मनी नहीं है, उसे दुश्मनी करने की भी शक्ति नहीं वह असंगठित है, दीन है, पराधीन है। कोई दल अपने को संगठित करके उस पर आतंक जमा सकता है। लेकिन अगर कोई वह चाहे कि उसे अपना शिकार भी बनाए और उससे वोट भी ले, उसे ठोकर भी जमाए और उससे पाँव भी दबवाए तो उसे लज्जित होना पड़ेगा।

दिल्लगी यह है, कि आज भी ज़मींदार साहबान अपने को ज़मीन का मालिक ही समझते हैं। अंग्रेज़ी सरकार के पहले उनकी हैसियत दलालों की थी, जो बादशाह की ओर से लगान वसूल करने के लिये रखे जाते थे और लगान न अदा कर सकने पर निकाल बाहर किये जाते थे और बड़ी ज़िल्लत के साथ। अंग्रेज़ी राज्य में उनका मान बढ़ गया। सरकार को देश में ऐसे एक जत्थे की ज़रूरत थी, जो प्रजा पर उसकी हुकूमत जमाने में सहायक हो। उसने यह काम इन्हीं लगान वसूल करने वालों से लिया। तब से यह लोग अपने को ज़मीन का मालिक समझने लगे। ख़ैर, हमें इससे मतलब नहीं, आप ज़मीन के मालिक नहीं खुदा सही लेकिन आप प्रजा के लिये क्या करते हैं? आप प्रजा के दिये हुये कर में से ५० फीसदी लेते हैं, तो उसके बदले में आप प्रजा के साथ क्या सलूक करते हैं? आप अगर बीज देते हैं, तो उसका डेवढ़ा वसूल कर लेते हैं, अगर लकड़ी या बाँस देते हैं, तो उसके बदले में चौगुनी बेगार लेते हैं और आज आपका अस्तित्व इतना निरर्थक हो गया है, कि आप को यह शंका हो रही है, कि कहीं भविष्य में आप का निशान ही न मिट जाय। आप समय के गति के प्रतिकूल चलने का प्रयत्न कर रहे हैं। थोड़े दिनों आप चाहे इस प्रयत्न में सफल हो जायँ लेकिन वह दिन दूर नहीं है, जब आपको राष्ट्र की इच्छा के सामने सिर झुकाना पड़ेगा और आप आतंक के बल पर नहीं, सेवा के बल पर अपना अस्तित्व कायम रख सकेंगे।

बिहार और देशी रियासतें

बिहार की परिस्थिति के विषय में बाबू राजेन्द्रप्रसाद का जो बयान प्रकाशित हुआ है, उसे पढ़कर बिहार के पुनरुद्धार का प्रश्न अपने भीषण रूप में हमारे सामने आ जाता है। एक तरह से दूसरा बिहार को फिर से आबाद करना पड़ेगा। इस अवसर पर समस्त राष्ट्र ने जिस बन्धुत्व का परिचय दिया है और दे रहा है, वह बहुत ही आशा जनक है। बड़े बड़े शहरों में ही नहीं, छोटे छोटे कस्बों और मदरसों और दफ्तरों में भी बड़ी तत्परता से चन्दे जमा किए जा रहे हैं और लगभग १५ लाख रुपए नकद और लाखों रुपए के कपड़े और कम्बल और अनाज भेजे जा चुके हैं। चारों ओर से राष्ट्र के सेवक पहुँच गए हैं और अपने विपत्ति के मारे भाइयों की सेवा कर रहे हैं मगर अभी तक डुमराव और गोंडाल के राजाओं के सिवा हमें किसी ऐसे राजा का नाम न मिला जिसने उद्धारकार्य के लिये कोई बड़ी रकम दान दी हो। जो लोग लाखों रुपए साल मोटरों और सैर तमाशों पर खर्च कर देते हैं वह ऐसे मौके पर दो दो चार चार हजार देकर अपने कर्तव्य से मुक्त नहीं हो सकते। अगर डुमराँव के राजा ५० हजार दान दे सकते हैं, तो ऐसे कितने ही महाराज हैं, जो दो दो चार चार लाख दे सकते हैं। शायद इतना वे वाइसराय की एक-एक दावत में खर्च कर देते होंगे। कितने खेद की बात है कि जिस देश में पचासों तिलकधारी हों, वहाँ इन तीन सप्ताहों में ५० लाख भी जमा न हो जायँ। इतना लिख चुकने के बाद हमें यह जानकर बड़ा संतोष हुआ कि महाराजा दरभंगा ने बिहार पीड़ितों की सहायता के लिये २६ लाख का दान दिया है।

संरक्षणों की धूम

जिसे देखिए, संरक्षण माँग रहा है। वाइसराय से लेकर व्यापारी और ज़मींदार तक संरक्षण के पीछे पड़े हुए हैं। जिसके हाथ में शक्ति है, वह तो आप ही अपनी मरजी से कानून बनाकर संरक्षण प्राप्त कर लेता है। जिसके हाथ में वह शक्ति नहीं है, वह सरकार से संरक्षण माँगता है। कपड़े को संरक्षण मिल ही गया। गाज और बनियाइन वाले, रेशम वाले, खिलौने वाले, गरज सभी वस्तुओं के व्यवसायी संरक्षण माँग रहे हैं। इसलिए कि बाहर से आने वाले माल के मुकाबिले में वे ठहर नहीं सकते। जनता की जेब से कैसे ज्यादा से-ज्यादा पैसे

खींच लिए जायँ यही फिक्र सबको पड़ी हुई है। चीजों को सस्ता बनाकर बाहर के माल को न आने देने का सामर्थ्य किसी में नहीं है और जनता बेबस है। भारतीय व्यवसाइयों के जमा-खर्च में दखल देने का उसे कोई अधिकार नहीं। व्यवसायी जितनी फ़िजूल खर्ची चाहे करे जितना कुप्रबन्ध चाहे करे कोई उससे बोल नहीं सकता। उसे मनमाना नफा करने की भी आजादी है। वह न मेहनत करेगा न किफायत से काम लेगा न सुप्रबन्ध को अपने यहाँ घुसने देगा। उसने तो आसान लटका पाया है कि हमें संरक्षण चाहिये। बाहर का व्यवसायी जो चीज आठ आने में देता है उसी को वह एक रुपये में देगा और जनता मजबूर है। किसानों को तो संरक्षण की जरूरत है क्योंकि इससे एक बहुसंख्यक समाज का हित होता है। इसलिए भी कि हम जानते हैं किसानों की दशा बहुत ही खराब है लेकिन यहाँ तो उन्हें भी संरक्षण चाहिए जो लाखों उड़ाते हैं और केवल अपनी छोटी-सी जमाअत के लिए सारी जनता को मँहगी चीज खरीदने के लिए विवश करते हैं मगर यह व्यवसायियों का युग है। उनके सामने किसकी चलती है।

काश्मीर में फिर दंगा हुआ

पहले दंगे के बाद काश्मीर में नया विधान हुआ और हमारा खयाल था कि यह व्यवस्था जनता की शिकायतों को दूर करेगी और वहाँ सुख और शान्ति का राज्य हो जायगा। लेकिन इधर जो समाचार आरहे हैं उनसे मालूम होता है कि जनता इस व्यवस्था से भी सन्तुष्ट नहीं है। जब घरों से स्त्रियों और बालकों के जत्थे निकलते हैं तो यह मानना पड़ेगा कि जनता को विशेष कष्ट है नहीं तो औरतें मैदान में न आतीं। वास्तविक दशा क्या है और क्यों जनता ने यह आन्दोलन उठाया है इस पर इन समाचारों से कोई प्रकाश नहीं पड़ता। बस इतना ही मालूम होता है कि जनता ने पुलीस पर हमला किया और पुलीस ने उन पर गोलियाँ चलाईं। गोलियाँ चलाना तो बहुत आसान है लेकिन यह सुशासन नहीं है। सुशासन तो वह है कि जनता सुखी और सन्तुष्ट हो। वह समय अब नहीं रहा कि केवल कागजी सुधारों से जनता को सन्तुष्ट कर लिया जाय। जनता अख्तियार चाहती है जिससे वह अपनी तकलीफों को दूर कर सके।

जर्मनी में नाच पर बंदिश

हिटलर की सरकार ने हाल में ऐसा फरमान जारी किया है कि १८ वर्ष से कम उम्र के किशोर युवक युवतियों के गंदे नाच में न जायँ। हाँ अगर उनके साथ कोई तजरबेकार आदमी हो तो जा सकते हैं। जर्मनी के रसिक और मनचले युवकों ने इस फरमान का विरोध किया है लेकिन जर्मन सरकार ऐसे विरोध की परवाह नहीं करती। यूरोप में नग्न विलासिता जोरों से बढ़ रही है और वहाँ लोग जो स्त्रियों के आदर का गुल मचाते हैं बालिकाओं का नग्न वेश में देखकर अपनी आँखें तृप्त करते हैं। हम तो उन युवकों से कहेंगे कि इस हुक्म का विरोध करने के बदले उसका स्वागत करो और वही समय जो तुम नंगा नाच देखने में खर्च करते थे मरदाना खेल खेलने में लगाओ।

सर्वदल सम्मेलन का विरोध

सर्वदल सम्मेलन को हमने पहले भी बेवक्त की शहनाई समझा था और अब भी ऐसा ही समझते हैं। सफेद कागज का सबसे आपत्तिजनक भाग उसकी साम्प्रदायिकता है। उसपर सर्वदल सम्मेलन के संचालक जबान नहीं खोलना चाहते। तो अब ऐसी और कौन सी बात रह गई है जिसपर भारत की सु[illegible] प्रमुख राजनीतिक संस्थाओं ने अपना मत न प्रकट कर दिया हो। सरकार [illegible] व्यवस्था कर रही है वह यह जान कर कर रही है कि इससे भारत वालों [illegible] सन्तोष न होगा। उसे मुसलमानों जमींदारों और सरकारी नौकरों के सहयोग से भारत की राजनीतिक प्रगति को रोकना है और वह ऐसी कोई व्यवस्था [illegible] स्वीकार कर सकता जिससे उसकी शक्ति रत्ती भर भी कम हो। उसने तो इ[illegible] व्यवस्था से अपने को और मजबूत बनाने का निश्चय कर लिया है। राजनीति[illegible] आचार्यों ने एक स्वर से कह दिया है कि यह व्यवस्था वर्तमान व्यवस्था से [illegible] गई गुजरी है। ऐसी दशा में सर्वदल सम्मेलन के प्रस्ताव सरकार पर क्या प्रभा[व] डाल सकते हैं। सरकार पर दबाव डालने का उसके पास क्या साधन है। इ[स] जमाने में उन्हीं प्रस्तावों की सुनवाई होती है जिनकी पुश्त पर शक्ति हो खाली प्रस्तावों से कुछ नहीं होता।

श्री रंगस्वामी आइंगार की शोकजनक मृत्यु

तामिल के प्रमुख दैनिक पत्र स्वदेश मित्रम् के यशस्वी सम्पादक श्री रंगस्वामी आइंगार की मृत्यु से एक ऐसा व्यक्ति उठ गया जो राजनीतिक गुत्थियों को सुलझाने में अद्वितीय था और जो कुछ सत्य समझता था उसे प्रकट करने में सत्ता या अधिकार से लेश मात्र भी भयभीत न होता था। आप पहले मद्रास के प्रसिद्ध अंगरेजी दैनिक पत्र हिन्दू के सम्पादक रहे फिर आपने अपना तामिल पत्र स्वदेश मित्रम निकाला और अपनी प्रतिभा और ओज से इस पत्र को पर पहुँचा दिया कि वह बड़े-से बड़े प्रभावशाली अंग्रेजी पत्रों से भी ज्यादा आदर से पढ़ा जाता था। भाषा के पत्रों में जितना सम्मान स्वदेश मित्रम् को मिला उतना शायद किसी अन्य भाषा के पत्र को नहीं प्राप्त हुआ। आप कुछ दिनों कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी रहे थे और स्वराज्य पार्टी के निर्माणकर्ताओं में आप भी थे। स्व० पण्डित मोतीलाल नेहरू और सी० आर० दास आपको अपना दाहिना हाथ समझते थे। दूसरी गोलमेज सभा में आप भी सम्मिलित हुए थे और इस वक्त आप का विचार यह था कि कांग्रेस को नई व्यवस्था से दूर न रहना चाहिये क्योंकि इससे लाभ की जगह बहुत बड़ी हानि होगी। आपकी मृत्यु से राष्ट्र को जो क्षति पहुँची है उसका अनुमान उन शब्दों से हो सकता है जो महात्मा गाँधी ने शोक प्रकट करते हुए लिखे हैं।

मजूर दल का डिक्टेटरशिप से विरोध

डिक्टेटरशिप की कुछ चर्चा इंगलैंड में भी होने लगी है और एक दल ऐसा उठ खड़ा हुआ है जो इंगलैंड में भी डिक्टेटरशिप का समर्थक है मगर मजूर दल ने एक सभा करके डिक्टेटरशिप का विरोध किया है और जनतंत्र में अपने विश्वास की घोषणा की है। डिक्टेटरशिप कोई बहुत अच्छी चीज नहीं है यह सभी जानते हैं मगर जब जनतंत्र केवल धनवानों और पूँजीपतियों के हाथ का खिलौना हो जाय तो ऐसी दशा में स्वभावतः यह खयाल होता है कि इस ढोंग से क्या फायदा। रूस जर्मनी अमेरिका स्पेन आस्ट्रिया इटाली टर्की आदि राष्ट्रों ने विवश होकर डिक्टेटरशिप की शरण ली मगर इसमें अनेक दोष हैं। आज जो आदमी प्रजाहित का पुजारी है सम्भव है कि कल वह स्वार्थ का पुजारी हो जाय जिसकी मिसाल नेपोलियन है। फिर यह क्या खबर है कि एक डिक्टेटर के बाद दूसरा डिक्टेटर किस ढंग का आदमी हो। हमारा विचार है कि धीरे धीरे दुनिया फिर राज्य प्रथा की ओर आ रही है हाँ वह इससे कुछ उन्नत अवश्य होगी।

(६ वें पृष्ठ का शेषांश)

या जोखिम और खतरे को अपना साथी बनाकर पहाड़ों के ऊपर चढ़ जायँ ताकि ऊपर की शुद्ध वायु का पान करें और दूर दूर के दृश्यों को देखें और उदय होते हुए सूर्य का स्वागत करें।

मैंने तुम्हें इस पत्र में कवियों और दूसरों के बहुत से उद्धरण और अवतरण दिये हैं। मैं एक और अवतरण से इस पत्र को समाप्त करूँगा। यह गीतांजलि से है। यह रवीन्द्रनाथ टाकुर की कविता है—

चित्त जथा भयशून्य उच्च जथा शिर ज्ञान जथा मुक्त जथा गृहेर प्राचीर
आपन प्राङ्गणतले दिवसशर्वरी वसुधारे राखे नाइ खण्ड क्षुद्र करि,
जथा वाक्य हृदयेर उत्समुख ह ते उच्छ्वसिया उठे जथा निर्वारित स्रोते
देशे देशे दिशे दिशे कर्मधारा धाय अजस्र सहस्रविध चरितार्थताय
जथा तुच्छ आचारेर मरुबालुराशि विचारेर स्रोत पथ फेले नाइ ग्रासि
पौरुषेरे करेनि शतधा नित्य जथा तुमि सर्व कर्म चिन्ता आनन्देर नेता —
निज हस्ते निर्दय आघात करि पितः भारतेरे सेइ स्वर्गे करो जागरित।

समाप्त कर चुका प्रियतमे! और यह अन्तिम पत्र भी खतम हो गया। अन्तिम पत्र! निःसन्देह नहीं! मैं तुम्हें बहुत से पत्र लिखूँगा, लेकिन इस पत्रमाला का अब अन्त होता है और, अतएव, तमाम शुद।

देहरादून-जेल से अन्तिम पत्र

(श्रीयुत पं० वेंकटेशनारायण तिवारी, एम० ए , द्वारा प्राप्त)

पहली बार जब पण्डित जवाहरलालजी को दो साल की सजा हुई तब पहले की तरह इस बार भी उन्होंने अपनी पुत्री इन्दिरा नेहरू के नाम पत्र लिखे। उनकी संख्या १७६ है और टाइप किये हुए १६०० पृष्ठों में वे समाप्त हुए हैं। अंगरेजी में प्रकाशन के साथ साथ, हिन्दी, उर्दू और गुजराती में उनके प्रकाशन का प्रबन्ध किया जा रहा है। हिन्दी में जब वे छपेंगे तब उनका आकार सरस्वती के १३०० पृष्ठों के बराबर होगा। इस अपूर्व और महत्व पूर्ण ग्रन्थ का नाम होगा 'विश्व इतिहास की झलक'। उसका अन्तिम अध्याय आज पाठकों की भेंट करने में मुझे अत्यन्त खुशी है।

—वेंकटेश नारायण तिवारी

हम समाप्त कर चुके, प्रिये! लम्बी कहानी का अन्त हो गया। मुझे अधिक लिखने की जरूरत नहीं है, लेकिन शान के साथ—खूब बढ़ा के समाप्त करने की अभिलाषा मुझे एक और पत्र लिखने के लिए उत्साहित कर रही है—यही अन्तिम पत्र।

समय आ गया था कि मैं लिखने को खत्म कर देता, क्योंकि दो साल की मेरी अवधि का अन्त भी बहुत समीप आ गया है। आज से तीन और तीस दिन बाद मुझे रिहा हो जाना चाहिये, यदि इसके पहले ही जैसा अक्सर समय समय पर धमकाया करते हैं, मैं रिहा न कर दिया गया। पूरे दो साल अभी बिल्कुल समाप्त नहीं हुए हैं लेकिन मुझे साढ़े तीन महीने की छूट मिली है जैसा सभी नेकचलनवाले कैदियों को मिलता है। मैं भी एक नेकचलन कैदी समझा जाता हूँ, यद्यपि इस नेकनामी को कमाने की मैंने कुछ भी कोशिश नहीं की। इस तरह से मेरी छठी सजा का खातमा होता है, और मैं एक बार फिर सुविस्तृत संसार में निकल कर विचरूँगा, लेकिन किस अभिप्राय से? इसका क्या प्रयोजन है, जब बहुत से मेरे दोस्त कैदखानों में सड़ रहे हैं, और सारा देश एक बहुत बड़ा जेलखाना-सा मालूम होता है?

मैंने जो पत्र लिखे हैं, उनका एक खासा पहाड़ सा बन गया है। और न जाने, मैंने कितनी अधिक अच्छी स्वदेशी स्याही स्वदेशी कागज पर फैलाई है। क्या यह सब करना उपयोगी था—मैं कभी कभी विस्मय के साथ सोचता हूँ? क्या यह सब कागज और स्याही तुम तक कोई ऐसा सन्देश पहुँचायेगी, जिससे तुम्हें कुछ दिलचस्पी हो। निःसन्देह तुम कहोगी, हाँ क्योंकि तुम सोचोगी कि और किसी जवाब से मुझे कहीं चोट न पहुँचे, और तुम मेरा इतना अधिक प्यार करती हो कि इस तरह की जोखिम तुम उठाना न चाहोगी। तुम इन पत्रों की परवा करो या न करो लेकिन इनके लिखने से मुझे जो आनन्द मिला है, उससे वंचित करने की तुम्हें भी इच्छा नहीं हो सकती। पिछले दो लम्बे लम्बे सालों में मैंने प्रतिदिन इन पत्रों को तुम्हारे लिए लिखा है। तब जाड़ा था, जब मैं यहाँ आया था। जाड़े का स्थान हमारे अल्पकालिक वसन्त ने लिया, जिसका गर्मी की उष्णता ने जल्द ही संहार कर डाला और तब, जब पृथ्वी सूख गई और कड़क रही थी और आदमी तथा मवेशी हवा के लिए तड़प रहे थे, बरसात आ पहुँची और मेंह का ताजा और ठण्डा पानी काफी तादाद में चारों ओर फैल गया। शरद् वर्षा ऋतु के बाद आया और आकाश अद्भुत रूप से स्वच्छ और नील रंग रंजित हो गया और दोपहर के बाद का समय बहुत ही सुहावना मालूम होने लगा। एक संवत्सर का क्रम समाप्त हो गया और फिर उसका क्रम शुरू हुआ—जाड़ा, गर्मी, बरसात और वसन्त। मैं यहाँ बैठा बैठा तुम्हें लिखता और तुम्हारी बाबत सोचता और ऋतुओं की गति को देखता और अपनी बारिक की छत पर मेंह के पटपट की ध्वनि को सुनता रहा हूँ—

> सुमधुर! वर्षा संगीत मधुर! बरसी बूँदें कर मधुमय स्वर
> झर अम्बर से झर झर, झर झर गिर भूतल पर, गिर भवनों पर!
> खिल उठा श्रान्त चिर चिन्तित उर! सुमधुर! वर्षा संगीत मधुर!!*

बैनजमिन डिजरैली ने, जो उन्नीसवीं सदी में एक बड़ा अंगरेज राजनीतिज्ञ हुआ है, लिखा है कि 'दूसरे आदमी निर्वासन और कारागार से दण्डित होने पर, यदि वे बच गये हताश हो जाते हैं। साहित्यसेवी उन दिनों को अपने जीवन के सबसे मधुर तिथियों में गिनेगा।' उसने यह ह्यूगो ग्रोटियस के सम्बन्ध में लिखा है, जो सत्रहवीं शताब्दी में हालैंड का एक प्रसिद्ध दार्शनिक और विधान शास्त्र का वेत्ता था, और जिसे आजन्म कारावास की सजा हुई थी लेकिन जो दो साल के बाद कैदखाने से निकल भागा था। उसने कैदखाने में अपने दो साल दार्शनिक और साहित्यिक काम में व्यतीत किये थे। बहुत से प्रसिद्ध साहित्यिक कैदी हुए हैं, जिनमें से सबसे अधिक ख्यातनामा दो हैं—एक तो स्पेन का सरवेंट, जिसने 'डान क्विग्ज़ोट' लिखा था और दूसरा एक अंगरेज, जॉन बैनियन, जो पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' का रचयिता था।

मैं कोई साहित्यकार नहीं, और न मैं यही कहने के लिए तैयार हूँ कि वे बहुसंख्यक वर्ष, जिनको मैंने जेल में बिताया है, मेरे जीवन में सबसे अधिक मधुर थे लेकिन यह मैं निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि पढ़ने और लिखने ने मुझे उनको काटने में बेहद सहायता पहुँचाई है। मैं साहित्यकार नहीं और न मैं इतिहासकार ही हूँ मैं वास्तव में हूँ क्या? इस प्रश्न का उत्तर देना मुझे कठिन मालूम होता है। मैंने बहुत से कामों में दखल दिया है। मैंने कालेज में विज्ञान से आरम्भ कर कानून को अपनाया और जीवन की बहुतेरी बातों में दिलचस्पी लेने के बाद अन्त में जेल जाने के पेशे को अख्तियार किया, जो हिन्दुस्तान में लोकप्रिय हो रहा है और जिसे बहुत से लोग अपनाते हैं!

मैंने इन पत्रों में जो कुछ लिखा है उसे तुमको किसी विषय के सम्बन्ध में अन्तिम प्रमाण न मानना चाहिए राजनीतिज्ञ प्रत्येक विषय पर रायजनी करना चाहता है और जितना वह जानता है उससे अधिक जानने का वह सदा ढोंग भी रचता है। बहुत होशियारी के साथ उस पर नजर रखना चाहिए। मेरे ये पत्र महज छिछले चित्रण हैं—जो एक दूसरे के साथ एक बहुत ही पतले धागे में बँधे हैं। मैं विचरता हुआ बढ़ता गया हूँ सदियों को एक एक छलाँग में पार करता और बहुत सी महत्त्वपूर्ण घटनाओं को छोड़ता हुआ बढ़ गया हूँ और कभी कभी मैं उस घटना के पास जिसने मुझे आकृष्ट किया है अपना तम्बू गाड़ काफी देर तक रम भी रहा हूँ। जैसे तुम देखोगी मेरे राग द्वेष काफी स्पष्ट हैं। और इसी तरह से जेल की मेरी मानसिक तरंगें भी। मैं यह नहीं चाहता कि तुम इन सबको जैसा का तैसा ही समझ लो। मुझमें बहुत से दोष भी निकलेंगे। एक जेल जहाँ न तो पुस्तकालय और न विश्वकोष के समान ग्रन्थ प्राप्त होते हैं—ऐतिहासिक विषयों पर लिखने के लिए सबसे उपयुक्त स्थान नहीं हो सकता है। मैंने बहुत कुछ सहारा उन बहुत सी नोटबुकों का लिया है जिनको मैंने उस समय से जमा करना शुरू कर दिया था जब १२ वर्ष हुये मैंने जेल यात्रा का श्री गणेश किया। यहाँ पर मेरे पास बहुत सी किताबें भी आईं। वे आईं और चली गईं क्योंकि मैं यहाँ पर एक पुस्तकालय को तो संग्रह नहीं कर सकता था। मैंने निर्लज्जता के साथ उन किताबों से घटनायें और विचार हड़प लिये हैं मैंने जो कुछ भी लिखा है उसमें कोई बात नवीन नहीं है। शायद तुम्हें मेरे पत्रों को समझने में कभी कभी कठिनाई हो। उन हिस्सों को छोड़ जाना। उनकी परवा न करना। मेरे उस अंश ने जो सिन रसीदा है, कभी कभी मुझे अपने काबू में कर लिया और मैं इस तरह से लिख गया जिस तरह से मुझे न लिखना चाहिये था।

मैंने तुम्हें महज खाका दिया है। यह इतिहास नहीं है। जो कुछ है वह है हमारे सुदीर्घ भूतकाल की केवल अनित्य झलक। यदि इतिहास में तुम्हें अभिरुचि है यदि तुम इतिहास की मोहकता के कुछ अंश को भी अनुभव करती हो तो तुम्हें आसानी से उन किताबों तक पहुँचने का मार्ग मिल जायगा जिनके द्वारा भूतकालिक युगों के उलझे हुए सूत्रों के सुलझाने में तुम्हें बहुत कुछ सहायता मिलेगी। लेकिन महज किताबों के पन्ने ही से मदद नहीं मिलेगी, यदि तुम भूतकाल को जानना चाहती हो तो तुम्हें उसको ओर सहानुभूति और समझ से देखना चाहिये। उस आदमी को समझने के लिये जो बहुत पहले जीवित था, तुम्हें उसके वातावरण को समझना पड़ेगा समझना पड़ेगा उन परिस्थितियों को, जिनके अन्तर्गत उसने अपना जीवन निर्वाह किया और उन विचारों को जिनसे उसका मस्तिष्क भरा था। यह नितान्त भूल है कि हम भूतकाल के मनुष्यों के विषय में अपनी सम्मति कायम करें जैसे मानो वे आज दिन जीवित हैं और उसी तरह से ही सोचते विचारते हैं जैसे हम सोचते विचारते हैं। आज दास प्रथा के समर्थन में कोई बोलनेवाला नहीं है लेकिन तिस पर भी महान् प्लेटो की यह सम्मति थी कि दासत्व आवश्यक है। हाल में लाखों जानें लोगों ने दे दीं, ताकि संयुक्तराज्य (अमरीका) में गुलामी जारी रहे। हम वर्तमान की कसौटी पर भूतकाल को नहीं कस सकते। सब लोग सहर्ष इसे स्वीकार कर लेंगे लेकिन सब लोग इस बात को उसी तरह से न मानेंगे कि वर्तमान काल को भी भूतकाल की कसौटी से न परखना चाहिये। बहुत से मत मतान्तरों ने उन पुराने विश्वासों और रीति नीतियों को सड़न गलने से बचाने में विशेष सहायता पहुँचाई है, जो अपने जन्म के युग और देश में सम्भवतः कुछ उपयोगी रही हों, लेकिन जो आज कल के जमाने के लिये नितान्त ही अनुपयुक्त हैं।

तो फिर यदि तुम भूतकालिक इतिहास को सहानुभूति की दृष्टि से देखोगी, तो रूखी-सूखी हड्डियाँ मांस और रक्त से भर जायेंगी और जीते जागते, हमसे

---

* मूल में अंग्रेजी पद हैं, जिनका ऊपर भावानुवाद दिया गया है। इस लेख के अवतरण पद्यांशों का अनुवाद श्री 'नरेन्द्र' जी ने किया है—वे. ना. ति.

भिन्न और बहुत कुछ हमारे समान ही, समान मानव गुणदोषों से युक्त, नर-नारी और बच्चों का एक बड़ा भारी जलूस, प्रत्येक युग और देश देशान्तर से आता हुआ तुम्हें दिखाई देगा। इतिहास जादू का खेल नहीं है, लेकिन उन लोगों के लिए उसमें भरपूर मात्रा में जादू मौजूद है, जिनके देखने को आँखें हैं।

इतिहास की चित्रशाला से असंख्य चित्रपटों का हमारे मन में जमघट लग जाता है। मिस्र, बैबिलोनिया, निनेवा, प्राचीन भारत की सभ्यतायें? हिन्दुस्तान में आर्यों का आगमन, यूरोप और एशिया में उनका प्रसार, चीनी संस्कृति का आश्चर्यजनक उल्लेख, कनौसस और ग्रीस, साम्राज्यवादी रोम और बिजेन्टियम, दो महाद्वीपों के एक कोने से दूसरे कोने तक अरबों का विजयकारी पद-विक्षेप, भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान और उसका ह्रास, मंगोलों की विस्तृत विजय, यूरोप में मध्यकालीन युग और उसके चमत्कारी गाथिक गिरजे, भारत में इस्लाम का पदार्पण और मुगल साम्राज्य, पश्चिमीय यूरोप में विद्या और कला का पुनः प्रसार, अमरीका और पूर्व के समुद्री मार्गों का अन्वेषण, बड़ी बड़ी मशीनों का प्रचलन और पूँजी पथ का विकास, व्यवसायवाद और यूरोप के आधिपत्य और साम्राज्यवाद का विस्तार और आधुनिक संसार में विज्ञान के चमत्कार।

बड़े बड़े साम्राज्य उठे और गिरे, और हजारों साल से लेकर तब तक आदमी को उनकी सुध न आई, जब तक फिर से सहिष्णु खोजियों ने बालू के नीचे से उनके खँडहर खोद न निकाले, लेकिन बहुत से विचार, बहुत-सी कल्पनायें तभी बची रहीं। और वे साम्राज्य के मुकाबले में अधिक बलशालिनी और चिरस्थायिनी सिद्ध हुईं।

> अब कहाँ मिस्र के शक्ति साज?
> चिन्तन के गहरे गर्त्तों में है लीन सकल ऐश्वर्य आज!
> हैं कहाँ आज अवनीतल पर यूनान और वह ट्रॉय नगर?
> वेनिस का गर्व कहाँ भू पर? है कहाँ रोम का ताज आज?
> उनके शिशुओं के स्वर्ण-स्वप्न—जीवित हैं बस वे स्वप्न आज!
> थे वृथा, थिरकते से सपने धुँधले, छायामय, छाया से—
> चल वात सदृश चलते फिरते, पर जीवित हैं वे स्वप्न आज!
> चिन्तन के गहरे गर्त्तों में अब लीन सकल ऐश्वर्य साज!

मेरी कोलीज ने इसी प्रकार गाया है।

भूतकाल हमारे लिए बहुत से उपहार लाता है, सचमुच संस्कृति, सभ्यता, विज्ञान या सत्य के कुछ पहलुओं का ज्ञान, जो कुछ भी आज दिन हमें प्राप्त है, वह सब अतीत या समीपस्थ भूतकाल की हमें देन है। यह उचित है कि भूतकाल के प्रति हम अपनी कृतज्ञता को स्वीकार करें। लेकिन भूतकाल ही तक हमारा कर्तव्य या हमारी कृतज्ञता का अन्त नहीं हो जाता। भविष्य के प्रति भी हमारा कर्तव्य है और भूतकाल के प्रति हमारे कर्तव्य से भी अधिक बड़ा यह कर्तव्य है। क्योंकि जो होना था वह हो चुका और उसका खातमा हो गया। हम उसे बदल नहीं सकते, भविष्य को तो अभी आना है, और कदाचित् हम उसको किसी अंश तक सुधार सँवार सकें। यदि भूतकाल ने हमें सत्य का कुछ अंश दिया है, तो सत्य के बहुत अंशों को भविष्य भी छिपाये हुए है। और उसको खोज निकालने के लिये वह हमें आमन्त्रित करता है। लेकिन प्राय भूत भविष्य से डाह करता और हमें अपने भीषण चंगुल में पकड़े रहता है। हमें उसके साथ लड़ना पड़ता है, ताकि मुक्त होकर हम भविष्य की ओर उन्मुख होकर अग्रगामी बनें।

हमारे पढ़ाने के लिए, यह कहा गया है, इतिहास के पास बहुत से पाठ हैं; और एक दूसरी भी कहावत है कि इतिहास अपने आपको भी दोहराता नहीं है। दोनों ही ठीक हैं। क्योंकि आँख बन्द कर उसकी नकल करने से, या यह आशा करने से कि वह अपने आपको दोहराये या उसका प्रवाह बन्द हो जाय, हम कुछ नहीं सीख सकते। लेकिन उससे हम कुछ न कुछ अवश्य सीख सकते हैं, यदि हम उसके पीछे झाँक कर देखें और उसको सञ्चालित करने वाली शक्तियों को खोजने की चेष्टा करें। इतने पर भी हमें जो कुछ मिलता है वह कदाचित् ही कभी सीधा सादा उत्तर होता है। 'इतिहास,' कार्ल मार्क्स कहता है, 'पुराने सवालों का और किसी ढङ्ग से उत्तर नहीं देता, बजुज इसके कि वह नये सवाल उपस्थित करे। पुराना जमाना श्रद्धा—अन्धी, शंका रहित श्रद्धा—का जमाना था। गत सदियों के विस्मयकारी मन्दिर, मस्जिदें और गिरजे कदापि न बनते, यदि उनके शिल्पियों, बनाने वालों और जन साधारण में दुर्जेय श्रद्धा न होती। वे ही पत्थर हमें इस विश्वास का पता देते हैं, जिनको उन्होंने श्रद्धा के साथ एक के ऊपर दूसरे को रखा, या जिनमें उन्होंने सुन्दर सुन्दर चित्रकारी अङ्कित की। मन्दिरों के स्तूप, मस्जिदों की सुकुमार मीनारें गाथिक गिरजाघर—सब भक्ति की विस्मयोत्पादिनी गम्भीरता से ऊपर की ओर इशारा करते हैं, मानों पत्थर या संगमरमर ऊपर के आकाश की वन्दना कर रहे हों—आज दिन भी हमें पुलकित कर देते हैं, यद्यपि हममें उस प्राचीन श्रद्धा का अभाव है, जिसको वह समूर्त करते हैं; लेकिन उस विश्वास के दिन चले गये और उन्हीं के साथ पत्थर का मोहक स्पर्श भी जाता रहा। हजारों मन्दिर, मस्जिदें और गिरजाघर निरन्तर निर्मित होते हैं, लेकिन उनमें उस आत्मा का अभाव है, जो उन्हें मध्यकालीन युग में सजीव करती थी। उनमें और आज कल के व्यापारी इमारतों में जो हमारे युग की प्रतिनिधि हैं—कुछ भी अन्तर नहीं है।

हमारा युग एक भिन्न युग है। यह अविश्वास, संकल्प विकल्प और सवाल का युग है। प्राचीन विश्वासों में से बहुतों को हम अब स्वीकार नहीं कर सकते। उनमें हमारा कुछ भी विश्वास नहीं रह गया—क्या एशिया में, क्या यूरोप या अमेरिका में। अतएव, नये तरीकों को, सत्य के उन नवीन पहलुओं को, जो हमारी परिस्थिति के अधिक अनुकूल हैं, हम खोजते हैं। हम एक दूसरे से सवाल पूछते बहस करते और तरह तरह के वाद और दर्शनों को गढ़ते हैं। जैसे सुकरात के जमाने में, वैसेही अब हम शंका के युग में रह रहे हैं; लेकिन वह शंका एथेन्स के से नगर ही तक परिमित नहीं है—वह जगद्व्यापी है।

कभी-कभी संसार का अन्याय, दुःख, निर्दयता हमें सताती है और हमारी आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है और बाहर निकलने का हमें कोई मार्ग नहीं दिखाई देता है। मैथ्यू आर्नाल्ड के साथ हम भी अनुभव करते हैं कि इस संसार में कोई आशा नहीं है, और जो हम कर सकते हैं वह यही है कि एक दूसरे के के प्रति हमारा सच्चा व्यवहार हो—

> विविध रम्य नूतन स्वप्नों से सज्जित है आशा का लोक!—
> किन्तु कहाँ सुख स्नेह स्वप्न में? कहाँ अचल विश्वास? ज्योति दृढ़?
> कहाँ शान्ति वह, स्वप्न देश में—हर के जो डर-डर का शोक?
> विविध रम्य नूतन स्वप्नों से सज्जित है यद्यपि वह लोक!
> हम सब हैं तम लीन क्षेत्र में—अनियन्त्रित से युद्ध नाद में,
> युद्ध निरत हैं यहाँ सैन्य-दल निशि में, तम में, बिन आलोक!
> विविध रम्य नूतन स्वप्नों से सज्जित है यद्यपि वह लोक!

और इतने पर भी यदि हम दुःखमय दृष्टिकोण का आश्रय लें, तो न तो जीवन और न इतिहास के पाठ को हमने ठीक-ठीक पढ़ा होगा, क्योंकि इतिहास विकास और प्रगति और मनुष्य के लिए अनन्त उन्नति की सम्भावना का पाठ हमें पढ़ाता है। जीवन सम्पन्न और विभिन्न है और यदि उसमें दलदल, कीचड़ और सीलन है, तो उसमें बड़े बड़े समुद्र भी हैं; पहाड़, हिम, ग्लेशियर, चमत्कारिणी, तारागणों से दीप्त रजनी (विशेषकर जेलखाने में), और परिवार और मित्रों का स्नेह, समान सकल्प की सिद्धि में लगे हुए कार्यकर्त्ताओं की सहकारिता भी हैं। और हैं संगीत पुस्तकें और विचारों का साम्राज्य। इस तरह से हममें से हर एक यह पद कह सकता है—प्रभो! यद्यपि मैं पृथ्वी पर रहा, पृथ्वी की संतति था तो भी मैं नक्षत्रमय आकाश द्वारा पालित पोषित था।

विश्व की विभूतियों की प्रशंसा करना और विचार तथा कल्पना के संसार में विचरना आसान है। लेकिन न साहस और न सहानुभूति का यह लक्षण है कि हम इस तरह से दूसरों के दुःख से दूर भागने की चेष्टा करें, और इसकी कुछ भी परवा न करें कि उन पर क्या बीत रही है। अपने को सार्थक सिद्ध करने के लिए, विचार का कार्य में परिणत होना आवश्यक है। "कार्य विचार का ध्येय है," हमारे मित्र रोमैं रोलाँ का कहना है, "वे सब विचार जो कार्योन्मुख नहीं हैं गर्भपात हैं और विश्वासघातक हैं। अतएव, यदि हम विचारों के सेवक हैं, तो कार्य का अनुचर हमें बनना चाहिये।"

लोग प्राय कार्य से बचते हैं क्योंकि वे उसके परिणामों से झिझकते हैं। कार्य का अर्थ जोखिम और खतरा है। खतरा दूर से भयानक मालूम होता है, लेकिन वह इतना भयानक नहीं है, यदि हम उसे पास से देखें। और वह प्राय एक सुखकारी सहचर होता है, जो जीवन को अधिक रसमय और आनन्दपूर्ण बनाता है। जीवन का साधारण क्रम समय समय पर नीरस हो जाता है। और हम बहुत सी बातों को जैसा का तैसा मानकर स्वीकार कर लेते हैं, और तब उनमें कुछ मजा नहीं रह जाता। लेकिन जीवन की इन्हीं साधारण वस्तुओं का कितना अधिक मोल हमारी आँखों में जँचने लगता है, जब उनके बिना हमें कुछ दिन काटने पड़ते हैं। बहुत से आदमी ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ते हैं, और चढ़ाई के आनन्द के लिए और उस उच्छ्वास के लिए जो किसी कठिनता को जीतने या किसी आपत्ति पर विजयी होने पर प्राप्त होता है, अपने जीवन और अपने अङ्गों को जोखिम में डालते हैं; और चूँकि उस समय उनके चारों ओर खतरा मँडराया करता है, उनकी दृष्टि अधिक पैनी हो जाती है और जीवन में उनका आनन्द अधिक गम्भीर हो जाता है, क्योंकि तब उनके प्राण एक धागे के सहारे लटका करते हैं।

हममें से प्रत्येक को यह आजादी है कि चाहें तो हम नीचे घाटियों में रहें, जहाँ रोगोत्पादक कुहरा और पाला है, लेकिन जहाँ जान की जोखिम कम है;

(शेषांश ९वें पृष्ठ के नीचे)

वैदिक काल में कोई भी मनुष्य भारत में अछूत नहीं था

लेखक—श्रीयुत आत्मारामजी अमृतसरी, 'राज्य-रत्न'

श्रीमान् महाराजा साहब बड़ौदा ने १५ सहस्र रुपये खर्च करके चारों वेदों की जो परम प्रामाणिक शब्द-अनुक्रमणिका संस्कृत विद्या के भारी विद्वान् पूज्य स्वर्गीय श्रीस्वामी नित्यानन्दजी से तैयार कराई है, उसमें हिंदू स्मृतिकारों का शब्द अन्त्यज जिसके अर्थ अछूत मनुष्य के हैं, है ही नहीं। अतः वैदिक काल में कोई भी मनुष्य भारत में अछूत नहीं था—यह सिद्ध हो गया।

यजुर्वेद अ० २६ मन्त्र २ में वेद का पठन-पाठन मनुष्य-मात्र के लिये है और चमकार को भी उक्त मन्त्र में वेद पढ़ने का अधिकार है। उक्त मन्त्र के अर्थ बंग-भूषण पं० श्री सत्यव्रतसामाश्रमी तथा महर्षि दयानन्द कृत समान ही हैं।

यजुर्वेद में शूद्र को तपस्वी कहा गया है।

तीनों वेदों के पुरुष सूक्त में समाज के नेता को ब्राह्मण नाम देकर, जहाँ उसको मुख से उपमा दी है, वहाँ शूद्र को वैदिक आर्य-समाज के पग से उपमा दी है। पग शरीर की उन्नति का अंग है। जब मानवी बच्चा पग पर खड़ा होना और पग से चलना आरंभ करता है, तब ही वह बल प्राप्त करता है। अतः शूद्र समाज के बल के आधार हैं।

वैदिक काल में चारों वर्ण गुण कर्म पर थे। वैदिक काल का आरंभ ऋग्वेद से और समाप्त सुप्रसिद्ध गीता काल तक है—कारण कि जिस प्रकार वेद के यौगिक शब्दों में जो पुरुष या स्त्री, ब्रह्म अर्थात् ईश्वर की भक्त तथा वेद का पंडित या पंडिता हो, उसको ब्राह्मण कहा जाता है। ठीक इसी वैदिक तत्त्व को श्री पूज्य योगेश्वरकृष्णदेव महाराज गीता में दर्शाते हैं कि सृष्टि में चारों वर्णों की रचना गुण-कर्म के विभाग से है।

अतः एक वैदिक काल में इसके दृष्टान्त भी इतिहास में मिलते हैं। यथा वाल्मीकि डाकू या दस्यु दुष्ट पुरुष विद्या और सदाचार से महर्षि बनकर अमर रामायण रचता है तथा श्री पूज्य महर्षि व्यासदेवजी वेदव्यास बनकर वेदान्त दर्शन रचते तथा महाभारत के कर्ता बनते हैं। इनकी माता क्या थीं, यह कौन नहीं जानता?

इसी वैदिक राज में हम उपनिषद् में वर्णन पाते हैं कि वेश्या-पुत्र जाबाल, ऋषि के गुरुकुल में प्रविष्ट हो, भारी विद्वान बन जाबाल ऋषि बनता है।

वेद तथा गीताकाल के पीछे, भारत में बौद्धकाल आता है। इस काल में भी हम अछूतपन का नाम नहीं पाते। इसी काल में यवन-देश का प्रसिद्ध यात्री मैगस्थनीज आता है उसके वर्णित इतिहास से सब इतिहासकार मानते हैं, कि भारत के बौद्ध आर्य काल में अछूत मनुष्य एक भी नहीं था। स्वर्गीय राजरत्न पद्याजी कृत History of Education in the Baroda State अंगरेजी ग्रन्थ आप देख सकते हैं।

पौराणिक काल में ही जब पठानराज देहली में था, तब अलाउद्दीन बादशाह की परदा-वाली १०० बेगमों के मलमूत्र उठाने के लिये हिंदू कैदी लगाये जाते थे, जिनका फारसी में मेहतर का नाम दिया जाता था। यह जेल कैद से छूट कर आते, तो हिन्दू-समाज इनको पुनः प्रायश्चित्त कराकर अपने में नहीं लेता, यह तथा इनकी सन्तान को अछूत माना जाता था, इनके साथ ही इसी काल में अनेक हिन्दू स्मृति ग्रन्थ जो बने उनमें—धोबी, नाई, चर्म उतारने वाले तथा मैला काम करने वालों को अछूत लिखकर अन्त्यज शब्द दिया गया।

पंजाब के लाहौर नगर तथा काश्मीर में आजकल मुसलमान बंधु मेहतर का काम भी करते हैं, किन्तु इनको सनातनी हिन्दू बराबर छूते हैं। काठियावाड़ तथा गुजरात के ग्रामों में मेहतर भंगी को छूकर मुसलमान बंधु को छूने से छूत भाग जाती है। यह बात कौन नहीं जानता?

रणभूमि में जाने वाले हिंदू-सैनिक जो गंदे मुरदों में खेलते हैं, हस्पतालों के हिन्दू डाक्टर तथा हिन्दू Compounder जो मेहतरों से भी गंदा काम करें, वह मंदिरों में जा सकते हैं।

ब्रिटिश-राज्य के आरम्भ में राजा राममोहनराय तथा ऋषि दयानन्द ने आर्य हिन्दू-जाति से अवैदिक तथा पापजनक अछूतपन रोग को दूर करने का उपदेश भारत की हिन्दू प्रजा को दिया, किन्तु प्रयोग द्वारा हिन्दू-जाति में यह रोग दूर करने का सौभाग्य तथा प्राथमिक श्रेय निस्सन्देह श्रीमान् महाराजा साहब बड़ौदा को है, कारण कि इन्होंने आज से पूरे ५० वर्ष पूर्व अर्थात् १८८३ के सन् में अमरेलीप्रान्त में प्रथम स्कूल अन्त्यज-उद्धार के लिये खोला और तब से इनके शिक्षण का क्रम दिनोंदिन बढ़ता ही गया है।

यही नहीं, वरन सन् १९०८ आज से पूरे १५ वर्ष पहले दीर्घदर्शी युगप्रवर्त्तक अन्त्यजोद्धारक श्री० महाराजा स० बड़ौदा ने कारेलीबाग में अन्त्यज बो० हाउस की नींव डाली जो भारतवर्ष में एक Model आदर्श गुरुकुल इनके लिये बन गया है। दानवीर पूज्य राव बहादुर श्री जुगलकिशोर बिरलाजी के यह वचन हैं। इसी वर्ष सेवक यहाँ बड़ौदा आया, यहाँ से पूर्व मैं हिन्दू High School अमृतसर का जन्मदाता तथा संचालक प्रमुख कार्यकर्त्ता था। मेरे उस स्कूल की तीन विशेषताएँ यह थीं—

(१) शर्तिया दुराचारी तथा गुंडे छोकरों को सदाचारी बनाना।

(२) शर्तिया परम मन्द बुद्धि छोकरों को पास कराना।

(३) हिन्दू सिक्ख तथा मुसलमान छोकरों को सुधारने में समान प्रेम का व्यवहार दर्शाना।

अमृतसर में उक्त हिन्दू-सभा स्कूल अमर है, एक लाख के मकान में यह स्वयं है। ५ लाख की सम्पत्ति इसको मिल चुकी है। आजकल ईश्वर कृपा से यह कालेज तक हो गया है। अमृतसर में बड़ा प्रसिद्ध है। As an humble Educationist मैं वहाँ काम करता था।

बतौर Humble Social Worker यह लिखना जरूरी है, कि पंजाब के आर्यजगत् में लाला लाजपत राय, महात्मा मुंशीराम से पहले पं० चौधरी रामभजदत्त से भी १५ मिनिट पहले अछूत मेघों की शुद्धि करके उनके हाथ से शरबत पीनेवाला तथा भाषण देने वाला सेवक ही था। जनवरी मास के The Modern Review Calcutta में लाला लाजपत राय सम्बन्धी लेख में लेखक ने स्वर्गीय पं० चौधरी रामभजदत्त के नाम से पहले मेरा नाम नहीं छापा, पर पंजाब में तो सब जानते हैं, कि मैं ही प्रथम था। अस्तु,

विदित हो कि मैंने पंजाब में उक्त अछूत हिन्दू सिक्खों की शुद्धि के साथ दूसरे दिन से एक अछूत शुद्ध किये हुये, बन्धु को अपने घर में अनेक वर्ष पाचक के तौर पर नौकर रखकर प्रजा को सहभोज का दृष्टान्त दे दिया और इस कार्य के लिये पंजाब की बिरादरी ने १२ वर्ष मुझे ज्याति से बाहर रखा, इन दिनों पूज्य महात्मा स्वामी नित्यानन्दजी ने श्री महाराजा बड़ौदा को मुझे अन्त्यज खाते का शिक्षा इन्स्पेक्टर होने की सिफारिश की और आज से २५ वर्ष पूर्व मैंने आकर श्रीमान् महा० साहब के नीचे, जो कुछ काम उक्त दो विभागों अर्थात् अन्त्यज-शिक्षण तथा बड़ौदे के नामी अन्त्यज बो० हाउस सम्बन्धी किया वह श्रीमान् महाराजा साहब के पुण्यप्रताप से सफल होकर मेरी आत्म तुष्टि का नहीं कारण बना वहीं उदार श्रीमान् ने राज्य रत्न के पदक से उक्त प्रयोग की सफलता पर मानो मोहर लगा दी। आज जो उक्त श्रीमानों की अध्यक्षता में बड़ौदा राज्य के आर्य राजपूत बन्धु जो श्रीमान् को मानपत्र ५० वर्षीय तथा २५ वर्षीय, उनके प्रयोगों की सफलता पर कृतज्ञता दर्शाते हुए, दे रहे हैं, यह एक ऐतिहासिक घटना है, कारण कि वह एकमात्र Pioneer Reformer होने से इनके सर्वथा योग्य हैं। सेवक को मानपत्र देने की क्या जरूरत थी, यह मैं नहीं समझता, अब चूँकि महाराजा साहब ने उनको ऐसा करने की आज्ञा दी है, इसलिये पूज्य श्रीमान् का धन्यवाद, उक्त कृपा के लिये किस मुख से मैं करूँ, यह मैं नहीं जानता। उक्त बन्धुओं को भी मैं हार्दिक धन्यवाद करता हूँ, जिन्होंने प्रेम वश मेरे गीत गाकर मुझे ऋणी बना दिया है।

मैंने अपने भाषण में इनको आर्य राजपूत कहा है। उसके लिये नम्र हेतु हैं। प्रथम, यह कि इनके विवाह गोत्र या अटक राजपूतों के हैं, इसलिये यह राजपूत हैं। हमारे आर्य ऋषिमुनियों की आर्य-संस्कृति के यह परम भक्त हैं इसलिये यह आर्य है। राम कृष्ण आदि के नाम-लेवा हैं, क्योंकि इनकी संस्कृति का सबन्ध हिन्दू या आर्य संस्कृति से है, इसीलिये इस शिक्षण खाते के लिये सिर्फ हिन्दू या आर्य इन्स्पेक्टर और सुपरिन्टेण्डेण्ट की जरूरत श्रीमान् ने अनुभव की थी। अब भी यह प्रजा हिन्दू मन्दिर प्रवेश चाहती है, जो बतलाता है कि इनकी निस्सन्देह आर्य संस्कृति है।

(अन्त्यज वसतिगृह बड़ौदा के रौप्य महोत्सव के समय दिये गये भाषण का सार)

कविता क्या है ?

लेखक—श्रीयुत सूर्यबलीसिंह परिहार

अनेक परिभाषाओं के होते हुए भी कविता की परिभाषा बतलाना उतना ही दुरूह है, जितना जीवन या प्रेम की परिभाषा बतलाना। फिर भी जिसमें जीवन है और जो प्यार के योग्य है, हम उसके गुणों और प्रभावोत्पादकता से उसे जानते हैं, उसी प्रकार हम उसे भी जानते हैं जो कविता है। कविता का पहला गुण है भावों को प्रचलित करना। कविता किसी न किसी के भावों को प्रकट करती है और उसी प्रकार का भाव दूसरों के हृदय में उत्पन्न करने का प्रयत्न करती है।

एक अर्थ में हम सब कवि हैं क्योंकि हम सब में भाव होते हैं और उन भावों को दूसरे पर व्यक्त करने की शक्ति होती है किन्तु जिन्हें हम कवि कहते हैं, उनमें अपेक्षाकृत हमसे अधिक अनुभूति और भावुकता होती है, और वे अपनी अनुभूति को दूसरों पर व्यक्त करने में तथा उन्हें उस अनुभूति में रंजित कर देने में अधिक समर्थ होते हैं। दूसरे शब्दों में, उनका ज्ञान जनसाधारण से अधिक व्यापक और तीव्र होता है तथा उनकी आवाज ज्यादा दूर तक पहुँचती है। प्रकाश, पर्वतीय सौन्दर्य या पाटल धुँधली दृष्टि से हम सब देखते हैं किन्तु कवि उसी में दीप्तिमान प्रकाश पाता है। इसे देखकर वह प्रसन्नता से चिल्लाने लगता है और इस प्रकार वह हमें एक बार और अधिक ध्यान से उसे देखने के लिये प्रेरित करता है। यह सब वह इसलिये करता है कि उसी की भाँति वह हमें भी दीखने लगे। हमें झरनों में संगीत के शब्द उसी तरह सुनाई पड़ते हैं, जैसे बहरों को किसी शब्द का अपूर्ण बोध होता है परन्तु कवि उसमें सुरालापन पाता है और हमें उसे ध्यान से सुनने के लिये कहता है, ताकि हम भी उसे समझ सकें। तारा मण्डल के रहस्य और विभूति पर हम सब चकित होते हैं किन्तु कवि उनके सामने मुँह के बल लेट जाता और पुजारी की भाँति हम सबसे प्रार्थना करता है कि मेरे साथ उस स्वर्गीय सौंदर्य के सिंहासन तक चलो और मेरी तरह उसका अनुभव करो। बहुत स्थानों में, जहाँ अविकसित या सूक्ष्म सौंदर्य होता है और जिसे हम कदापि नहीं देख पाते, कवि की दृष्टि वहाँ भी पहुँच जाती है और वह अपने शब्दों द्वारा उसे स्पष्ट कर देता है।

यन्त्र के अन्वेषकों ने समाज को अतिरिक्त अंग ही प्रदान किये हैं किन्तु कवियों के प्रसाद से हमारे ज्ञान के नवीन मार्ग खुल जाते हैं।

सबसे बड़ा कवि वह है, जो सब वस्तुओं के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचानता है और साथ ही उससे अत्यन्त प्रभावित होता है। इतना ही नहीं अधिकांश हृदयों में उन मर्मस्पर्शी स्थलों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर देता है। यही कारण है कि कालिदास, तुलसीदास शेक्सपीयर (Shakespeare) इत्यादि—जिनके हृदय में मानव समाज का महत्व भरा हुआ है और जिनकी वाणी अखिल मानव-समाज की भाषा को अभिव्यंजित करने का सामर्थ्य रखती है, एकान्त सुख का अनुभव करते हैं और हम उन्हें ईश्वर तुल्य मानते हैं।

जिस प्रकार सब मार्मिक पदार्थों की उत्तमता का ज्ञान प्राप्ति में सहज बुद्धि का बहुत बड़ा हाथ होता है, उसी प्रकार उत्तम काव्य को जानने में भी। कारण यह है कि कविता भी मार्मिक पदार्थ है किन्तु मानव उन्नति के साथ ही सहज बुद्धि का ह्रास हो रहा है और तर्क संगत निश्चय तत्स्थान ले रहा है। अस्तु, पाठकों को कविता सीखने के लिये आलोचना और सहज बुद्धि दोनों की आवश्यकता है क्योंकि सयानों की आलोचनात्मक बुद्धि वस्तुतः आदत से बनती है।

उत्कृष्ट भावोत्पादन की शक्ति कविता की सबसे महत्वपूर्ण बात है क्योंकि हमारा हृदय कवि हृदय से अधिक कठोर तथा हमारा ज्ञान कवि ज्ञान से अधिक मलिन होता है और कभी कभी बिना भाव समझे हम मस्त हो जाते हैं। अस्तु, बहुत उत्तम काव्य को छोड़ कर भाव हमारे पथ प्रदर्शक नहीं हो सकते। हमें इसके गुणों और बाह्य उपकरणों में उसके महत्व को समझना चाहिये। कविता के लिये कोई विषय विशेष नहीं होते, कला के लिये किसी विषय विशेष की आवश्यकता नहीं क्योंकि कला संसार स्थित किसी भी पदार्थ में सौंदर्य ढूँढ सकती है और उसे प्रकट कर सकती है। भावोद्रेक का कारण विषय नहीं विषय के प्रतिपादित करने का ढंग होता है। कविता में वस्तु विशेष के एक पहलू का ज्ञान होता है स्वतन्त्र वस्तु का नहीं। वह ऐसा होता है, जिसका परिज्ञान कविता के बिना कभी नहीं हो सकता। विज्ञान उसी वस्तु के दूसरे पहलू पर विचार करता है, धर्म तीसरे पर और शायद साधारण बुद्धि किसी और ही पर।

मेरे घर के पास राजमार्ग पर पुराने झोपड़े कतार बाँधे खड़े हैं। वे नष्टप्राय अन्धकार पूर्ण और गन्दे हैं और मानव निवास के लिये बिलकुल अयोग्य हैं। दिन में उन्हें देखने से नेत्रों को पीड़ा और हृदय को वेदना होती है। इतने पर भी रात्रि में जब उनके ऊँचे मस्तक मार्ग के प्रकाश से आलोकित हो जाते हैं, तब उनकी काया पलट सी हो जाती है और वे एक अलौकिक एवं चमत्कार पूर्ण प्रकाश से प्रदीप्त हो जाते हैं। उस समय ऐसा लगता है, मानों स्वप्न सौंदर्य की सृष्टि हो गई है। अस्तु, कला द्वारा कुरूपता में भी सौंदर्य की सृष्टि की जा सकती है और वस्तुएँ आश्चर्यजनक बनाई जा सकती हैं। 'टामस हार्डी' के उपन्यास उदाहरण स्वरूप हैं।

ऐसा क्यों होता है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जो हमारे सामने एक बड़ी समस्या उपस्थित कर देता है, अर्थात्—हमें भले और बुरे के कारण तक ले जाता है। जो वस्तु कभी सुन्दर दीखती है, वह क्या वस्तुतः कुरूप हो सकती है? क्या उसमें सदा सौंदर्य न होगा, चाहे हम उसे देख भले न सकते हों, पर वह कौन सा दृश्य था, जिसने कीट्स को 'निशीथ में विकासोन्मुख प्रभात छिपा है' कहने के लिये प्रेरित किया था।

'चेस्टरटन' महोदय ने 'हार्डी की कला पर मार्मिक आक्षेप करते हुए 'मैथ्यू ऑरनॉल्ड' का समर्थन किया है कि कला को वस्तुओं का वास्तविक रूप प्रदर्शित करना चाहिये किन्तु मेरी समझ में कला का वस्तु की वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं, उसका तो सम्बन्ध है उस प्रभाव से, जो कलाविद् के मस्तिष्क पर पड़ता है। कलाकार से हम उसकी सचाई की आशा कर सकते हैं, किन्तु वास्तविकता की नहीं, क्योंकि यह कोई नहीं बतला सकता है कि गणित विज्ञान के संकुचित क्षेत्र में कितनी सचाई है। कला कलाविद् की भावना का अभिव्यंजन है, विषय रूप निरूपण नहीं। जब कवि की मनोवृत्ति प्रेमी की होती है, समुद्र उसका साथी बन उसके साथ मुसकराता है, पवन उसके प्रिय का नाम उसे सुनाता है, तारा गण मित्र भाव से उसे देखते हैं किन्तु वही कवि जब दूसरी भावना में मस्त होता है तब उसे वही समुद्र निर्दय दिखलाई पड़ता है, पवन उसके उच्छ्वास के लिए उसकी हँसी करता है और शीतल तारे उसे निष्क्रिय तथा निस्तेज दृष्टि से देखते हैं।

काव्य के प्रतिपाद्य विषय चाहे भले हों या बुरे, कवि के मस्तिष्क की उपज हैं, उनमें ज्ञेय पक्ष की सचाई नहीं होती ज्ञातृ पक्ष की सचाई होती है।

आलोचना उस कला का अध्ययन है, जिसके द्वारा कवि वस्तुओं में भावोत्पादन की ऐसी शक्ति ला देता है, जिससे उसके भाव दूसरों पर व्यक्त हो सकें। भाव कविता नहीं, कविता का कारण है। और भावपूर्ण व्यंजना तभी कविता हो सकती है, *जब उस के रूप में सौंदर्य हो। यहाँ फिर कठिनाई उपस्थित होती है—हम अधिक से अधिक यही कह सकते हैं कि कुछ मनुष्यों में ऐसी शक्ति होती है, जो भावुकता के बल पर ऐसे दृश्य उपस्थित कर सकते हैं, जो दूसरों को दंग कर दें, और उस शक्ति के प्रयोग का नाम कला है। संगीत, कला, चित्रकला, मूर्तिकला और सम्भवतः अभिनय कला ये सब इसके उदाहरण हैं। कविता के लिए सबसे महत्व की बात यह है कि वह बुरी से बुरी वस्तु में भी सौंदर्य ले आती है। जब भाव सत्य नहीं होते, वे कविता की कोटि में नहीं रखे जा सकते। वे काव्याभास हैं जो कभी-कभी सच्ची कविता से इतने मिलते जुलते हैं कि परिष्कृत रुचि के विवेचक के अतिरिक्त उनकी कवितोचित सचाई पर कोई संदेह नहीं कर सकता। जब ऐसी बात है, तो फिर अन्तर निकालने का कष्ट ही क्यों उठाया जाय? यह दृढ़तापूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ऐसी कष्ट साध्य शिक्षा से ही हम कला की कदर कर सकते या उससे कोई लाभ उठा सकते हैं। 'जब हम सर्वोत्तम को पा जायँगे तो हम उसे अवश्य चाहेंगे' यह ईश्वर पर ही लागू हो सकता है, उसके बनाये हुए जीवों की करतूतों पर नहीं। किन्तु, यदि 'पाना' के स्थान में 'कदर करना' रख दें, तो यह कला पर भी घट जाय।

काव्याभास में भावोद्रेक नहीं होता भावाभास होता है। यह आत्मा को उन्नत, महान् और आनन्द पूर्ण नहीं बना सकता।

उत्कृष्ट के काव्य के लिए आवश्यक है कि भाव उत्तमता से तो प्रकट किये ही गये हों साथ ही संगीत मय हों। बिना संगीत के काव्य में आनन्द नहीं आता। मान लीजिये, दो कवि कविता लिख रहे हैं दोनों बराबर सहृदय हैं, किन्तु एक कवि की कविता में प्रवाह नहीं—स्थान स्थान पर यतिभंग है, शब्द कटु हैं। और दूसरे कवि में इन किसी बातों की कमी नहीं है। आप किस कवि की कविता पसन्द करेंगे? निश्चय है, जिसके भाव संगीतमय हैं। अस्तु, यह सिद्ध हुआ कि भाव के साथ संगीत के रहने से कविता का सौंदर्य बढ़ता है और सौंदर्य बढ़ने से उसमें प्रभावोत्पादकता भी बढ़ना स्वाभाविक ही है। तब क्या कविता के लिये केवल यही दो वस्तुएँ आवश्यक हैं? संकेतमय भाव रखे हुए हैं किन्तु हमारे सामने कोई चित्र नहीं खड़ा होता। तब भी क्या उस कविता का प्रभाव हमारे ऊपर पड़ेगा? संगीत और भाव के कारण हम उसकी ओर आकर्षित तो होंगे अवश्य पर बोधगम्य न होने के कारण हम उससे निराश ही होंगे। हम तभी सफल मनोरथ हो सकते हैं, जब उनका शब्द चित्र स्पष्ट और बोधगम्य हो। यह तभी हो सकता है, जब हम उन चित्रों से परिचित हों। कवि वही है, जो भाव पूर्ण सुन्दर शब्द चित्र और संगीत की सृष्टि कर सके और उपयुक्त भाषा लिख सके और यह सब वही कर सकता है, जो सहृदय होता है, क्योंकि कविता बुद्धि का विषय नहीं—हृदय का विषय है।

* दी एलीमेण्टस आव क्रिटीसिज्म के आधार पर

स्वस्थ रहने के सच्चे साधन

लेखक—श्रीयुत सरजूप्रसाद द्विवेदी, बी. ए.

शरीर और मस्तिष्क में अति निकट का सम्बन्ध है। हमारे सारे अंग में टेलीफोन और टेलीग्राम के तार के समान नसों और हड्डियों का जाल इस भाँति बिछा है कि वे सभी एक-दूसरों से सम्बद्ध हैं और एक अवयव के सन्देश को पहले प्रधान केन्द्र (मस्तिष्क सभी नसों का केन्द्र है) पर, और बाद को अभीष्ट स्टेशन पर (हाथ, पैर, नासिका, आँख आदि किसी खास अवयव पर) ले जाते हैं। कोई मनोहर फूल पहले हम आँख से देखते हैं, इस क्रिया से जो ज्ञान लाभ होता है, वह हमारे मस्तिष्क तक Nerves नसों द्वारा पहुँचाया जाता है। फिर केन्द्र से सेन्शेसन हमारे हाथ में आता है, तब हम उस पुष्प को तोड़ते हैं। पुन हाथ के स्पर्श का ज्ञान मस्तिष्क में जाकर हमारी नासिका में उसे सूँघने का सेन्शेसन आता है। इस भाँति शरीर के सब अंगों और मस्तिष्क के कार्य एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। इससे किसी अवयव में जब कोई विकार उत्पन्न होता है, तो उसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है और मस्तिष्क भी विकृत हो जाता है। इस भाँति यह सिद्ध है कि स्वस्थ व्यक्ति का मस्तिष्क कदापि पुष्ट नहीं हो सकता। Sound mind in Sound body. परन्तु आजकल अधिकांश ऐसे सज्जन मिलते हैं, जिनका कि यदि कुछ पढ़ने लिखने या किसी आफिस के काम से सम्बन्ध है, तो वे अपने स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान नहीं देते। उनके विचार में शायद मस्तिष्क कोई ऐसी वस्तु है, जो उन्हें गर्भ ही में ईश्वर द्वारा मिल जाती है और जिसका क्षय उनके जीवन पर्यन्त किसी भी भाँति नहीं हो सकता, परन्तु उन्हें यह ध्यान देना आवश्यक है कि जब तक शरीर निर्विकार न हो, तब तक मस्तिष्क में किसी विषय के ग्रहण करने की तथा उसे चिरकाल तक धारण करने की शक्ति कदापि नहीं रह सकती।

अब हमें यह विचार करना है कि हम स्वस्थ कैसे रह सकते हैं। क्या वैद्यों और डॉक्टरों तथा हकीमों की अच्छी-अच्छी औषधियों का सर्वदा सेवन किया करें, तो रोग-पाश से हम यावज्जीवन मुक्त रह सकते हैं? इसका उत्तर तो प्रत्यक्ष अनुभव से मिल जाता है, जहाँ जितनी ही औषधियों की भरमार है और जितने ही औषधालय हैं, वहाँ उतने ही रोगों का आक्रमण होता है। गावों में जहाँ औषधियाँ नहीं मिलतीं और यदि मिलती भी हैं, तो कुछ साधारण जड़ी-बूटियाँ ही वहाँ के निवासियों को हम उतना रोगाक्रान्त नहीं पाते। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पूर्व पुरुषानुभूत अथवा आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा आविष्कृत दिव्य औषधियाँ हमारे लिये अनावश्यक हैं। वे गुणकारी अवश्य हैं, और कोई प्रबल रोग जब शरीर में व्याप्त हो जाय, तो रोग की प्रकृति समझ कर किसी अनुभवी चिकित्सक के परामर्श से इनका कुछ काल तक सेवन अवश्य करना चाहिए, परन्तु इनके वश में होकर इनका आदी बनना उचित नहीं। अधिक औषधियों के सेवन करने वाले व्यक्तियों को पहले तो ये अधिक लाभ नहीं करतीं, और कुछ काल पश्चात् वे किसी रोग का सहसा रोक कर उसके विकार को नाना रोगों के रूप में परिणत कर देती हैं। इसी से आजकल के अनुभवी व्यक्ति प्रकृति के सहारे स्वास्थ्य-लाभ करने पर अधिक जोर दे रहे हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी इसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं। इस ढंग से रोग धीरे-धीरे निश्शेष हो जाता है। आप देख सकते हैं कि रत्नादि की भस्मों को खाने वाला कितना सुखी रहता है और आहारविहारादि में संयम-नियम रख कर केवल साधारण भोजन करने वाला कितना स्वस्थ रहता है।

हर एक व्यक्ति के शरीर और मस्तिष्क की पुष्टि के लिये शुद्ध वायु, दोष-रहित निर्मल जल तथा बल-वर्धक भोजन की अतीव आवश्यकता है। इन तीनों में एक की भी कमी हुई, तो शरीर में कोई-न-कोई विकार की उत्पत्ति अनिवार्य है। हमें सबसे पहले वायु, जो हम श्वास द्वारा मिलता है, उसकी स्वच्छता पर ध्यान देना उचित है। शहरों में नलों और नाबदानों के रहने से नीचे से गैस हमेशा निकलकर यहाँ की हवा को दूषित किये रहती है। हमें ऐसी वायु का सेवन करना उचित है, जिसमें ऑक्सीजन पर्याप्त मात्रा में रहे। आक्सीजन पर हम लोगों का जीवन अवलम्बित है। किसी छोटी कोठरी में कई आदमी बन्द कर दिये जायँ और यदि उसमें हवा जाने का थोड़ा भी मार्ग न हो, तो कुछ घन्टों में वे सब मर जायँगे, क्योंकि थोड़ी ही देर में उस कोठरी की हवा ऑक्सीजन-रहित हो जायगी। इससे हमें खुले मैदानों में कुछ समय तक सुबह और शाम घूमना आवश्यक है। जिन कमरों में हम सोवें अथवा उठें-बैठें, वहाँ भी हवा आने-जाने का मार्ग होना चाहिये। उनके आस-पास कूड़ा करकट मलमूत्रादि रहना उचित नहीं।

इसी भाँति हमें जल के प्रयोग में भी विशेष ध्यान देना चाहिये। जो तालाब इस भाँति घिरा हो, कि जिसमें जल आने और निकलने का मार्ग न हो और जिसमें आदमी और जानवर स्नान करते हों, उसका जल कभी भी न पीना चाहिए। ऐसे कुओं का जल भी न पीना चाहिए, जिनमें कभी सूर्य का प्रकाश न जाता हो अथवा जिसमें नमक का अंश न हो। मैदान के गहरे कुओं का जिनसे जल निकला करता है, बड़ा लाभदायक होता है। झरनों और बड़ी नदियों का जल भी पीने और स्नान के निमित्त बड़ा उत्तम होता है।

भोजन में भी हमें बहुत सावधान रहना आवश्यक है। हमें उन्हीं पदार्थों का भोजन में प्रयोग करना चाहिए और उतनी ही मात्रा में खाना चाहिए, जो और जितना भली भाँति कुछ ही घन्टों में पच सके। गरिष्ठ और अधिक मात्रा में भोजन अति हानिकर और अनेक रोगों का कारण होता है। दाल, भात, रोटी और तरकारी तथा घी, दूध और कुछ फल सबसे उत्तम होते हैं। इनसे मस्तिष्क और शरीर की जितनी पुष्टि होती है उतना मद्य, मांस और अनेक बहुमूल्य रसायनों से नहीं हो सकती। ये सब उत्तेजक होते हैं और पाचन क्रिया में भी विकृति उत्पन्न कर देते हैं। Plain living and high thinking 'साधारण जीवन और उच्च विचार' यह आदर्श माना गया है। आजकल के बाबू लोग बाजार की बनी मिठाइयों और वैद्यों की दी हुई पुष्टिकारक औषधियों के सेवन करने से अपने को चौपट कर डालते हैं और कुछ ही काल के पश्चात् उन्हें साधारण से भी साधारण भोजन पचना मुश्किल हो जाता है। गाँव के रूखे सूखे भोजन करने वालों की पाचन-शक्ति देख कर ये लोग घबरा जाते हैं और अपनी असावधानी पर ध्यान न देकर ये केवल अपने भाग्य को और ईश्वर को कोसते हुए औषधियों को झोंकते चले जाते हैं।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त साधारण शारीरिक परिश्रम के बिना शरीर कभी स्वस्थ नहीं रह सकता। व्यायाम या घूमने से या और भाँति के परिश्रम से रक्त का दौरान वेग से होता है और आलसियों की भाँति यदि चुपचाप बैठे रहे, तो इसकी गति मन्द हो जाती है और उसमें अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। रक्त के उचित परिचालन से इसके विकार स्वेदादि रूप में होकर बाहर निकल आते हैं। अंग भी परिश्रम से पुष्ट हो जाते हैं। आवश्यकता से अधिक परिश्रम करने से भी रोगों की उत्पत्ति हो जाती है, परन्तु अपनी शक्ति के अनुकूल परिश्रम करते रहने से बड़ा लाभ होता है। परिश्रम की शक्ति क्रम से बढ़ाई जा सकती है।

व्यायाम सब कामों की सामर्थ्य पैदा करता है, देह को स्थिर करता है और अग्नि को बढ़ाता है। बलवानों को और चिकने भोजन करने वालों को सब काल में गुण देता है। व्यायाम से दृढ़ चित्त वाले व्यक्ति को रोग नहीं होते। विरुद्ध अथवा जला भोजन किया जाय, तो शीघ्र पचता है तथा शरीर में शीघ्र शैथिल्य और वृद्धत्व नहीं आता।

स्वस्थ रहने के लिये हमें अपने जीवन को नियमित रखना चाहिये। भोजन, शयन और शौचादि निश्चित समय पर होना चाहिए। जितने दीर्घायु और उच्च आदर्श के महापुरुष होते हैं, उनके जीवन की घड़ियाँ आवश्यक कार्यों के लिये सुचारु रूप से विभक्त रहती हैं। वे कभी आवश्यकता से अधिक या कम नहीं सोते। हमें स्वस्थ और दीर्घायु होने के लिए जितेन्द्रिय होना परमावश्यक है। हमारे विचारों का हमारे शरीर की पुष्टि और उसके क्षय होने में बड़ा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि शरीर और मस्तिष्क दोनों का सम्बन्ध अति निकट का है। हमारी चिन्ताओं और दुर्भावनाओं का हम पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। चिन्ताग्रस्त व्यक्ति का शरीर सूखकर काँटा हो जाता है और उसकी विचार-शक्ति भी दुर्बल हो जाती है।

जीवन्मुक्त महात्मा श्री तैलंग स्वामी का तत्वोपदेश

लेखक—श्रीयुत अजितनाथ भट्टाचार्य, बी० ए०, एल-एल० बी०

(गतांक से आगे)

नियम आसन, प्राणायाम, तपस्या, इत्यादि के द्वारा योगी दीर्घजीवन आकाश में गमन करने की शक्ति अन्तर्धान होने की शक्ति, दूसरे के देह में प्रवेश करने की पटुता, दूरदर्शन भूत, भविष्य, और वर्त्तमान त्रिकाल दर्शन और अष्ट सिद्धि—अणिमा, लघिमा महिमा प्राप्ति प्रकामा, ईशित्व वशित्व और कामावशायिता लाभ कर सकता है। अणिमा, अर्थात् अणु के तुल्य क्षुद्र देह धारण करने की क्षमता लघिमा अर्थात् लघुता के कारण ऊर्द्ध गमन करने की शक्ति, प्राप्ति अर्थात् सृष्टि के सकल पदार्थ का अपने वश होना, प्राकाम्य अर्थात् यथेच्छा कारित्व, इशित्व अर्थात प्रभुत्व, वशित्व अर्थात सबको वश में रखने की शक्ति कामावशायिता अर्थात सब प्रकार के काम की परिपूर्णता करके शेष में निष्काम होना। भक्ति के बिना साधक अपने साधन के द्वारा चाहे जितना ही उन्नत हो, तब भी उसके पतन (गिरने) की सम्भावना रहती है।

तपस्या के सबसे ऊँची सीढ़ी पर चढ़ने के बाद भी तपस्वी को कभी कभी अविश्वास और नैराश्य उपस्थित होता है, परन्तु साथ ही उसके, यदि एक बार उसमें भक्ति पैदा हो जाय तब फिर कभी अविश्वास आ नहीं सकता। योगी लोग तब अनायास ही मुक्ति लाभ कर सकते हैं। आत्मा के साथ परमात्मा का जो योग है, वही तन्मयत्व है। किसी विषय में गहरी चिन्ता करना ही उस विषय में तन्मय होना है। तन्मयत्व होने ही से बन्धन मोचन हो जाता है और मुक्ति लाभ होती है।

कुछ सार बातें

शिष्य—पृथ्वी पर सृष्टि के आदि में क्या था ?

गुरु—पञ्चभूत और ईश्वर।

शिष्य—पृथ्वी और जीव को किसने बनाया है ?

गुरु—ईश्वर ने।

शिष्य—सृष्टि की वृद्धि कौन करता है ?

गुरु—ब्रह्मा।

शिष्य—ब्रह्मा कौन हैं ?

गुरु—ईश्वर की शक्ति।

शिष्य—सृष्टि का पालन कौन करता है ?

गु०—विष्णु अर्थात् नारायण।

शि०—विष्णु कौन हैं ?

गु०—ईश्वर की शक्ति।

शि०—सृष्टि का ध्वंस अथवा लय कौन करता है ?

गु०—महेश्वर अर्थात महादेव।

शि०—महादेव कौन हैं ?

गु०—ईश्वर की शक्ति।

शि०—ब्रह्माणी कौन हैं ?

गु०—ब्रह्मा की शक्ति।

शि०—लक्ष्मी कौन हैं ?

गु०—विष्णु की शक्ति।

शि०—दुर्गा कौन हैं ?

गु०—महादेव की शक्ति।

शि०—संसार सागर से कौन उद्धार करता है ?

गु०—ईश्वर।

शि०—बन्धन किसे कहते हैं ?

गु०—विषय में अनुराग।

शि०—मुक्ति किसे कहते हैं ?

गु०—विषय में विरक्ति और ईश्वर में लय।

शि०—घोर नरक क्या है ?

गु०—अपना देह।

शि०—स्वर्ग कहाँ है ?

गु०—आशा का क्षय होने पर यह पृथ्वी ही स्वर्ग है।

शि०—संसार का बन्धन कैसे जाता है ?

गु०—आत्मा बोध होने पर।

शि०—मुक्त कैसे होता है ?

गु०—तत्वज्ञान होने से।

शि०—नरक का कारण क्या है ?

गु०—नारी।

शि०—स्वर्ग का कारण क्या है ?

गु०—अहिंसा।

शि०—मनुष्य का शत्रु कौन है ?

गु०—उसकी इन्द्रियाँ।

शि०—मनुष्य का मित्र कौन है ?

गु०—वशीभूत इन्द्रियाँ।

शि०—दरिद्र कौन है ?

गु०—जो अत्यन्त लोभी है।

शि०—ऐश्वर्य शाली कौन है ?

गु०—जो सर्वदा सन्तुष्ट रहता है।

शि०—जीवन्मृत कौन है ?

गु०—उद्यम-हीन पुरुष।

शि०—माया क्या है ?

गु०—अत्याधिक प्यार।

शि०—महा अन्ध कौन है ?

गु०—कामातुर।

शि०—मृत्यु क्या है ?

गु०—अपयश ही मृत्यु है, मनुष्य अमर है।

शि०—चिर रोग क्या है ?

गु०—संसार।

शि०—उस रोग की औषधि क्या है ?

गु०—निर्लिप्त होकर रहना।

शि०—प्रधान तीर्थ क्या है ?

गु०—अपना पवित्र मन।

शि०—त्याग करने योग्य वस्तु क्या है ?

गु०—अर्थ दुराशा।

शि०—सुनने योग्य वस्तु क्या है ?

गु०—गुरु के निकट वेद वाक्य

शि०—ब्रह्मज्ञान लाभ का उपाय क्या है ?

गु०—सत्संग।

शि०—साधु कौन है ?

गु०—जिसमें मोह और अनुराग नहीं है।

शि०—जीव का ज्वर क्या है ?

गु०—चिन्ता।

शि०—मूर्ख कौन है ?

गु०—विवेकहीन नास्तिक मनुष्य।

शि०—नास्तिक कौन है ?

गु०—जो अत्यन्त मूर्ख है।

शि०—पण्डित कौन है ?

गु०—ज्ञानी।

शि०—धार्मिक कौन है ?

गु०—यथार्थ पण्डित।

शि०—कर्त्तव्य कार्य क्या है ?

गु०—ईश्वर में भक्ति।

शि०—विद्या क्या है ?

गु०—जिसके द्वारा ब्रह्मज्ञान होता है।

शि०—लाभ क्या है ?

गु०—ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति।

शि०—जगत् जयी कौन है ?

गु०—जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर लिया है।

शि०—विष क्या है ?

गु०—विषय।

शि०—दुखी कौन है ?

गु०—विषयानुरागी।

शि०—सुखी कौन है ?

गु०—जिसको कोई चिन्ता नहीं है

शि०—धन्य कौन है ?

गु०—परोपकारी।

शि०—पूजनीय कौन है ?

गु०—तत्व ज्ञानी मनुष्य।

शि०—कर्त्तव्य कर्म क्या है ?

गु०—धर्म का उपार्जन।

शि०—अकर्त्तव्य क्या है ?

गु०—स्नेह और पाप।

शि०—बुद्धिमान कौन है ?

गु०—जो नारी के वश में नहीं है।

शि०—उत्तम व्रत क्या है ?

गु०—सत्पात्र में दान।

शि०—शृङ्खला क्या है ?

गु०—नारी।

शि०—किस बात के जानने में सब लोग असमर्थ हैं ?

गु०—नारी का मन और चरित्र।

शि०—पशु कौन है ?

गु०—मूर्ख।

शि०—किसके साथ संसर्ग नहीं करना चाहिये ?

गु०—मूर्ख पापी, खल और नीच लोगों के साथ।

शि०—छोटा कौन है ?

गु०—जो माँगता है।

शि०—बड़ा कौन है ?

गु०—जो कुछ चाहता नहीं।

शि०—जन्म किसने लिया है ?

गु०—जिसको फिर जन्म ग्रहण करना न होगा।

शि०—मरा कौन है ?

गु०—जो फिर नहीं मरेगा।

शि०—विश्वासी कौन है ?

गु०—तत्वज्ञानी पुरुष।

शि०—अविश्वासी कौन है ?

गु०—नारी।

शि०—क्या करने से मनुष्य शोक रहित होता है ?

गु०—धर्म और उपासना।

शि०—आकांक्षा की निवृत्ति किसकी नहीं होती है ?

गु०—रिपुओं की।

शि०—दुःख का मूल क्या है ?

गु०—माया।

शि०—दया क्या है ?

गु०—अभय।

शि०—मन का विनाश क्या है ?

गु०—मोक्ष।

शि०—किसमें कोई भय नहीं है ?

गु०—मुक्ति में।

शि०—क्या करने से मृत्यु भय नहीं रहता है ?

गु०—ईश्वर चिन्ता में मग्न रहने से।

शि०—दस्यु कौन है ?

गु०—कुवासना।

(क्रमशः)

संस्कार

लेखक—श्रीयुत महाराजकुमार दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह

'आइये-आइये, बाबूजी !'

'बड़ा तेज इक्का है, हुजूर !'

'मैं ले चलूँ बाबूजी ?'

'कहाँ चलू ? आइये आइये ?'

उपर्युक्त प्रश्नों के साथ दर्जनों इक्केवानों ने मुझे घेर लिया। मैंने इधर-उधर देखकर उदासीनता दर्शाते हुए कहा—अस्सी चलोगे ?

सब ने एक स्वर में कहा—चलूँगा आइये आइये !

मैंने पूछा—क्या लोगे ? हिन्दू का इक्का चाहिए ?

इसके उत्तर में कुछ तो चुप रहे, कुछ पाठ मोड़कर इक्के पर जा बैठे, दो-एक ने कहा—जो हुजूर देंगे वही लेंगे। और एक ने कहा—आठ गंडे दे दीजियेगा अव्वल दर्जे का इक्का है।

मैंने जोर देकर पूछा ठीक ठीक बताओ, क्या लोगे ?

एक ने पूछा—पूरा इक्का चाहिए ?

मैंने कहा—हाँ।

उत्तर मिला—छः आने।

मैंने दुहराया—तीन आने।

उसने रुककर कहा—पाँच आने से कम नहीं।

मैं लापरवाही दिखाते हुए आगे बढ़ा। अब अस्सी की सड़क पर खाली इक्कों को ताकते हुए आगे चला जा रहा था। हृदय में कुछ झुँझलाहट, कुछ क्रोध और कुछ चिन्ता के भावों का उदय हो रहा था। कभी सोचता—ये इक्केवाले इतने लोभी क्यों? एक एक पैसे के लिए उलझ पड़ते हैं। घंटों मोल तोल करने पर तुल जाते हैं।

तुरत ही हृदय से उत्तर मिला—तुम्हीं इतना लोभ क्यों करते हो ? वे तो गरीब हैं इसी के ऊपर मरते जीते हैं !

मैं सहम गया। आगे विचारने की शक्ति जाती रही। लज्जा आने लगा, किन्तु तुरत ही मुँह से एक ऊँह का शब्द निकला और वे सभी सद्भावनाएँ रफूचक्कर हो गईं। इतने में एक खाली जाता हुआ इक्का दिखाई पड़ा। लपककर पुकारा—अस्सी चलोगे ?

उसने धीरता पूर्वक घोड़े की रास खींचते हुए गंभीर मुद्रा से कहा—आइये।

मैंने पूछा—हिन्दू हो ?

उसने कहा—हाँ।

मैंने पूछा—कौन जाति हो ?

उसने मुस्कराकर कहा—कौन-सी जाति चाहिए ?

इस शंका से कि कहीं वह झूठी जाति न बतावे, मैंने पूछा—तुम्हीं क्यों नहीं बताते ? क्या अपनी जाति बताने में कोई अड़चन है ?

उसने गम्भीर होकर कहा—डरिये न बाबूजी मैं अपनी जाति को आप के दो आने पैसे के लिये छिपा कर आप का धर्म नहीं लूँगा ? मैं रैदास हूँ चलिए आप तो खद्दर जिसपर गाँधी टोपी पहने हैं ?

मेरे हृदय में एक चोट लगी—गहरी, मार्मिक, और दर्द भरी। मन ने कहा, चलो इसी पर बैठ रहो। संस्कृति ने रोका नहीं। विवेक ने ऊबकर कहा—फिर दलितोद्धार का ढंग क्यों रचते हो ? मैंने इन आन्तरिक झगड़ों की उपेक्षा करते हुए चिन्तित, उदासीन और गिरे स्वर में कहा—भाई जाना साथ है।—और आगे बढ़ा।

सामने एक मरी-सी घोड़ी इक्के में जुती हुई ऊँघ रही थी—मुँह पर असंख्य मक्खियाँ भिनक रही थीं। कभी कभी उनके दंश से गत निद्रा हो वह कान फटफटा कर मस्तक हिला देती थी। इक्कावान भी अपनी किसमत की प्रतीक्षा से ऊब कर विश्रामार्थ आँखें बन्द करने की चेष्टा कर रहा था, किन्तु जीवन की प्रधान संचालिका आशा उसे कब सोने देती। मेरी जूती की आहट पर उसकी आँखें खुल गईं। मैं घोड़ी को निर्बल देख दूसरे इक्के की खोज में आगे बढ़ ही रहा था कि इक्केवान ने आँख और मुँह सम्भवतः एक साथ ही खोलते हुए पुकारा—बाबूजी आइये। इसके साथ ही चाबुक हाथ में लिये हुए वह इक्के से कूद पड़ा। सामने आया, अंगोछा देह कन्धे पर था। छः पैसे तय हुए। लेकिन अभी जाति का प्रश्न बाकी ही था।

मैंने पूछा—कौन जाति हो ?

उसने कहा—हिन्दू।

मैंने दुहराया कौन जाति ?

उसने दबी जबान से कहा—'रैदास, बाबूजी।' मैं अब तक पूड़ी का दोना इक्के पर रख चुका था। स्यात् अब से कम किराए की माँग ने ही जाति के प्रश्न उठने के पूर्व ही उसे वहाँ रखने के लिये मुझे प्रलोभित किया था। मैं इस उत्तर को सुन कर सहम गया, किन्तु संसार के समस्त निन्द्यतम कार्यों के कारण लोभ ने मेरे कानों में फुसफुसाकर कहा—'अब तो रख चुके छू गया अब इसे हटाने से ही क्या लाभ ! दूसरा इक्का लेने से भी तो यह अछूतपना नष्ट नहीं होने का।' बात थी भी सही। इक्केवाले ने ताड़ लिया। आत्म दुविधा का प्रकट होना ही तो विपक्षी को प्रोत्साहन देना है। उसने अवसर देखकर कहा—हुजूर छः पैसे माँगता हूँ। दूसरे पाँच आने से कम में नहीं जायँगे खाना तो छू ही गया। इसी इक्के पर चले चलिये। मुझ गरीब को भी रोटी की हो जायगी।

यह कह कर उसने रास पर झटका दिया, पीठ पर चाबुक सटकाया, मुख से टिक टिक का उच्चारण किया। घोड़ी की निद्रा टूटी, अँगड़ाई के पूर्व ही कई चाबुक रसीद हो चुके थे। उसे बलात् पाँव उठाने पड़े और मुझे भी कूद कर इक्के पर बैठना पड़ा। पावकदमी, दुलकी, फिर पुइया फिर सरपट—इक्का दौड़ पड़ा। मैं भी क्रमशः इसी वेग के साथ अपने विचारों के साथ चलने ही वाला था कि विवेक ने मेरी इस क्षुद्र और लोभी प्रकृति पर हँस कर व्यंग उड़ाया। मैं सहम गया। आगे का विचार रुका और निर्बलता सामने नाचने लगी। किसी ने भीतर से धीर और घृणा व्यंजक स्वर में कहा—यदि यही करना था, तो पहले ही करते। यह न तो दलितोद्धार का भाव है, और न कट्टरपंथी की श्रद्धा ही, चौदह पैसे के लिये इतनी बड़ी सैद्धान्तिक बातों को इस तरह बेच देना, तुम ऐसे अछूतोद्धार कमेटी के सभापति को शोभा नहीं देता।

मैं लज्जा, ग्लानि, पश्चात्ताप के ताप कुण्ड में जलने लगा। इक्के की चाल अब तक धीमी पड़ गई थी, मेरे हृदय की गति भी अब धीमी हो गई। मार्ग में कितने मकान धीरे धीरे सामने आये, अपना रूप दिखा चित्र पट ऐसे लोप हो गये, किन्तु मेरी आँखों के परदों पर उनके आवागमन का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। मैं चुप था। इक्का धीमी चाल चला जा रहा था, सहसा विचार शृंखला टूटी। घर पर के आये हुए मेहमानों का स्मरण हुआ, घड़ी देखी बारह बज चुके थे, चिन्तित होकर कहा—अरे भाई। हाँके चलो इस चाल से कब तक पहुँचोगे। इक्केवाले की मानों नींद टूटी उसने एक तीखे स्वर से घोड़ी को गाली दी। उसके बाप दादे बेटी-बहन कोई नहीं बची। पीठ पर दो-एक चाबुकें भी रसीद की घोड़ी बेचारी की भी मानो निद्रा टूटी। दुलकी से पोइया दौड़ने लगी। इक्केवाला शाबास की आवाज के साथ रास खींचते हुए सम्हल कर बैठ गया। मैंने आन्तरिक व्यथा से ऊब कर मन बहलाने के लिए पूछा—आज कितने पैसे मिले इक्केवाले ! इक्केवाले ने दीर्घ निःश्वास के साथ कहा—आपही बोहनी करते हैं बाबूजी।

मैंने सदय होकर पूछा—घर पर कितने आदमी हो ?

उसने घोड़ी की पीठ पर चाबुक घुमाते हुए उत्तर दिया—मैं, घर-वाली तीन बच्चे एक बीमार माँ और अन्धा बाप।

मैंने पुनः पूछा—कुछ खेती भी होती है ?

उसने मेरी ओर सतृष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—इसी एक इक्के का सहारा है मालिक।

मैंने सहानुभूति दर्शाते हुए पूछा—तब इससे गुजर कैसे होती होगी ?

इक्केवाले ने आँखों में आँसू भर कर कहा—बाबूजी गुजर कैसे होता है यह राम जानते हैं—अगर हाथ चलते होते, तो मैं छः पैसे पर पूरा इक्का बोझ से अदना कैसे ले जाता ? क्या करूँ, अगर यह भी नहीं लेता तो बच्चों को आज भूखों ही सोना पड़ता !

मैं चुप हो गया हृदय सहानुभूति और दया के भावों से आर्द्र हो गया। आँखों में कुछ जल सा संचित हो गया मनमें सोचा—'क्या दुनियाके सभी प्राणी कभी एक समान सुखी हो सकते हैं ?' इन गरीबों को भर पेट अन्न कभी मिल सकेगा ?—उन्नत देशों में भी तो गरीबों और अमीरों का प्रश्न है। भीतर से बुद्धि ने उत्तर दिया, शायद नहीं। सुधार होगा, साधारण दशा सुधरेगी, किन्तु अमीर-गरीब बड़े-छोटे रहेंगे, सदैव से रहे हैं। कोई भी समाज शास्त्र ऐसा नहीं, जो इस प्रश्न को सफल

(शेषांश अगले पृष्ठ के नीचे)

घरेलू काम-काज की बातें

लेखिका—श्रीमती मंगलादेवी त्रिपाठी

काँच को कागज की तरह किसी भी शक्ल में काटना हो, तो एक तेज कैंची को और काँच को पानी के अन्दर ले जाय और वहीं कैंची से काँच को काटे। काँच और कैंची का कोई भी भाग पानी के ऊपर हवा में न रहे।

• • •

घर में काम आनेवाली सिलाई की मशीन की सुई काम लेते लेते यदि कुछ मोटी हो गई हो या उसकी धार बिगड़ गई हो तो थोड़ी देर तक सरेस कागज के टुकड़े को घीकर बाद में एक दियासलाई जलाकर सुई की नोक पर आँच दिखावे सुई की नोक पहले से बहुत बारीक और तेज हो जायगी।

• • •

मौसम खतम होने पर कपड़ों को जब रखा जाय तो बजाय फिनाइल की गोलियों के उनके बीच बीच में नीम की सूखी पत्तियाँ रखना कहीं उपयोगी और किफायत की बात होगी।

• • •

खिड़कियों के शीशों को धोने के लिये थोड़े से पानी में जरा सा निशास्ता घोलकर इन पर लगा दो सूखने पर उसे फलालैन मुलायम कपड़े से रगड़ कर पोंछ दो। इससे ये खूब साफ हो जायँगे और चमकने लगेंगे।

• • •

कच्चे प्याज के कतरे करके ऊपर से एक-दो चम्मच चीनी डालने से जो प्याज का रस तैयार होता है उसके सेवन से हैजा में लाभ होता है। प्याज में बहुतेरे गुण हैं यह गरम, चरपरा, पिच्छिल, स्निग्ध, स्वादिष्ट, भारी वीर्य वर्द्धक मधाजनक स्वर को उत्तम करने वाला, कफ, ज्वर शूल, गुल्म इत्यादि नाशक, रक्त पित्त को कुपित करने वाला अत्यन्त निद्राकारक और शरीर में फैली सर्व प्रकार की वात-व्याधि नाशक है। इसके रस में कीटाणु नाशक शक्ति है, क्योंकि बिना पकाये प्याज में विटामिन नामक जीवाणु रहते हैं। यह अत्यन्त उत्तेजना वर्द्धक व कामोद्दीपक है, पर विद्यार्थियों ब्रह्मचारियों व विधवाओं को इसका सेवन न करना चाहिये।

• • •

स्नान का पानी किये हुए नहानघरों के चौकठे मक्खियों और धूल आदि से काले पड़ जाते हैं उन्हें साफ करने के लिये (१) शराब दो हिस्सा, पानी एक हिस्सा अमोनिया (Amma 1a wat 1) पाँच बूँद मिलाकर एक ब्रश से धीरे धीरे साफ करे और बाद में साफ पानी से धो धूप में सुखा ले (२) लहसन (O 101) के टुकड़े कर चौकठे पर मले। (३) लिकर पोटाश (L q1or Po a sae) एक भाग, पानी पाँच भाग मिलाकर चौखटा साफ करने से साफ हो जाता है।

• • •

कसौंदी नामक झाड़—जिसके पत्ते और डार लाली लिए हुए हरे, फूल पीला, फल छीमी (फली) के समान चिपटा, करीब करीब पाँच इन्च लंबा तथा पकने पर बीज काला होता है—के पत्तों से विष दूर होता है फलों से बाघ डरते हैं, फूलों से रतौंधी जाती है और जड़ से साँप डरते हैं।

• • •

ऊँट की हड्डी जिस मकान में मंगलवार को रख दी जाती है उस मकान में दीमक नहीं रहते। (२) चने के भूसे को गारे में मिलाकर मकान में लगा देने से दीमक नहीं रहेंगे।

• • •

चूहों के मारने की साधारण युक्ति यह है कि शक्कर के साथ संखिया और आटा तथा भूसा मिला खेत में सब जगह थोड़ा थोड़ा रख देने से चूहे निकल कर इसको खाते हैं और मर जाते हैं। (२) पहले खेत के सब छेदों को मिट्टी से बन्द कर दे। दूसरे दिन जिस छेद में चूहे हों वह खुला मिलता है। एक हंडी के पेंदे में रुपए के बराबर आग लगाने के लिए छेद करे और उसमें पुआल भर कर चूहे के बिल पर औंधा दे। आग लगा कर अच्छी तरह फूँके ताकि विषैला धुआँ चूहे के बिल में भली भाँति प्रवेश करे। इस युक्ति से चूहे हंडी के पास ही आकर मर जाते हैं। फिर उन्हें खोद कर निकाल डाले।

• • •

रात में जब सोने में मनुष्य दाँत किटकिटाए तो उसी वक्त शुद्ध बालू उसके मुँह में डाल देना चाहिए। यह उपाय कई दिन करने से दाँत किटकिटाना बन्द हो जाता है। यह रोग पेट में कीड़े होने से होता है। कृमि रोग की दवा करने से दाँत किटकिटाना बन्द हो जाता है।

• • •

बीर बहूटी को सन्निपात रोग में पान के अन्दर रत्ती भर रख कर खिलाने से बहुत लाभ होता है। बालकों को सर्दी हो जाने पर बारीक पीस कर हाथ पैर के नाखूनों में लगाने और जरा-सा माता के दूध में पिलाने से लाभ होता है।

• • •

उषाकाल में उठकर २ तोला गौ के घी में १ माशा श्वेत मिर्च का चूर्ण मिलाकर खा लेवें। कुछ काल तक इसका प्रयोग करने से हकलाना दूर हो जाता है (२) दाँतों को मिला कर बातचीत करने अर्थात् बातचीत करते समय दाँत न खोले तो, इसके कुछ समय के अभ्यास से हकलापन जाता रहेगा और बोली अच्छी हो जायगी।

• • •

अतीस की कली (असली) ऽ।, मोथा ऽ, असली दूधबच ऽ।, गिलोय हरी ऽ।, पीपल छोटी ऽ।, मुलैठी ऽ, काकड़ासिंघी ऽ।

सबको अधकुट कर रख ले। छोटे बच्चे जो माँ का दूध पीते हैं, उन्हें ३ माशा दवा २ तोला पानी में औटा कर ६ माशा रह जाने पर छान और ३ माशा शहद मिला कर पिलावे। बड़े बच्चों को ६ माशा दवा ५ तोला पानी में औटा कर १। तोला रह जाने पर छानकर पिलानी चाहिए। या कुल अधकुटी दवा को १२ सेर पानी में रख खूब औटावे और जब ३ सेर रहे, तब छान ले। उसमें ३ सेर मिश्री डाल कर चाशनी एकतार की शरबत-जैसी करके उतार ले। यह घूँट' दूध पीने वाले बच्चों को ३ मा० से ६ मा० तक और जो दूध नहीं पीते, अन्न खाते हैं उन्हें ६ माशा से १ तोला तक चटाना चाहिए। दुधमुँहे बच्चों को माँ के दूध में या थोड़ा गरम पानी में मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे ज्वर, खाँसी, हरे पीले दस्त, दाँतों के निकलते समय की पीड़ा आदि निश्चय दूर होंगे और नित्य सेवन करने से रोग होने की आशंका नहीं रहती।

(११वें पृष्ठ का शेषांश)

रूप से हल कर सके मेरी विचार धारा स्वत रुक गई, दीर्घ निःश्वास के साथ मुँह से निकला—तो क्या इसी से कर्म सिद्धान्त को मानना पड़ेगा? बीच ही में एक्केवान ने विचार शृंखला को तोड़ते हुए पूछा—बाबूजी कहाँ उतरियेगा?

मैंने चौंक कर कहा—क्या अस्सी पहुँच गया?

उसने दुहराया—जी हाँ।

मैंने कहा—यहीं सामने के मोड़ से घूम चलो। एक्केवान ने एक्का घुमाया।

मैंने पूछा—एक्केवान! तुम्हारे घर का खर्च कितने रुपये में चलता होगा?

उसने कहा—बाबूजी! कुछ लेखा तो है नहीं बाबू जब बीस रुपये पर नौकर थे तब हम बहुत सुखपूर्वक रहते थे अब तो वे अन्धे हो गए हैं।

एक्के से उतर कर मैंने कहा—भाई इस पूजा की पिटारी कोठे में रख दो।

एक्केवान ने मुझे आश्चर्य देखते हुए कहा—बाबूजी मैं चमार हूँ।

मैंने कहा—हिन्दू हो न! रामकृष्ण को पूजते हो न?

उसने कहा—हाँ मालिक।

मैंने कहा—ठीक है, रख आओ।

बैठक खाने में पहुँच २०) के नोट पर छ पैसे रखकर उसकी ओर बढ़ाते हुए मैं बोला—इसे ले लो—उसने छः पैसे उठा लिए।

मैंने कहा—यह भी ले लो।

उसने कहा—मालिक यह किस लिए?

मैंने कहा—यह तुम्हारा अगले मास का वेतन है। आज से तुम भोजन बनाने के लिए मेरे यहाँ नौकर हुए।

मित्र ने कहा—यह क्या करते हो?

मैंने कहा—जन्म संस्कार का प्रायश्चित्त।

आस्ट्रिया में नाजियों का दमन

लेखक—श्रीयुत मुकुन्दलाल श्रीवास्तव

आस्ट्रिया में नाजी (नात्सी) लोगों का उपद्रव शान्त होने के कोई लक्षण अभी तक दिखाई नहीं दे रहे हैं। वहाँ के प्रधान मंत्री डॉक्टर डॉलफस ने उनका दमन करने का प्रयत्न करने में यथा शक्ति कोई कसर बाकी नहीं रहने दी, फिर भी आज छः सात महीने की अनवरत चेष्टा के बाद भी नाजियों का प्रभाव किसी तरह कम नहीं किया जा सका है। वे अब भी उनकी नाक में दम किये हुए हैं। अभी उस दिन खबर आई थी, कि बहुत ज्यादा परेशान होकर और जर्मन नाजियों को आस्ट्रियन नाजियों की सहायता करने से रोकने में अपने को असमर्थ पाकर अब डॉलफस महाशय राष्ट्र संघ से भी फरियाद करने वाले हैं। संघ इस मामले में किस तरह हस्तक्षेप करेगा और उसके बीच बिचाव का कोई असर जर्मनी पर पड़ेगा या नहीं, कहना कठिन ही है।

नाजियों का जोर

आस्ट्रिया में नाजियों का जोर इस तरह बढ़ते जाने का एक बड़ा कारण वहाँ की आर्थिक स्थिति है। यद्यपि डॉक्टर डॉलफस की सरकार देश की आर्थिक विपत्ति दूर करने की ओर बराबर ध्यान देती रही है, फिर भी लोगों का कष्ट अभी तक प्रायः ज्यों का-त्यों बना हुआ है। शीत ऋतु का प्रारम्भ होने के पहले बृटिश पार्लिया-मेंट के एक लिबरल सदस्य श्री रावर्ट बर्नेज आस्ट्रिया गये थे, उन्होंने कहा है कि 'मैंने अपने जीवन में इतने अधिक लोगों को भूख से छटपटाते, कभी नहीं देखा था, जितने मुझे वियेना की सड़कों पर दिखाई दिये।'

नाजी-दल में प्रायः वे नवयुवक ही शामिल हैं, जो बेकारी में दिन काट रहे हैं और जिन्हें अपना भविष्य अन्धकारमय दिखाई देता है। हिटलर के कार्यों को वे बड़ी आशा भरी दृष्टि से देखते हैं क्योंकि उसने जर्मन-नव युवक की बेकारी की समस्या बहुत कुछ हल कर दी है। और जो लोग अभी तक बेकार हैं, उनके हृदय से भी निराशा का भाव बिलकुल दूर कर दिया है। आस्ट्रिया के बहुसंख्यक युवकों की दशा बहुत ही शोचनीय हो गई है, विशेषकर मध्यवर्गीय समाज के युवकों की। बृटिश पार्लियामेंट के उक्त सदस्यों ने एक स्थान पर लिखा है कि 'इङ्गलैण्ड में जो नवयुवक बैंकों या अन्य दफ्तरों में काम करते हैं, वे वियेना में प्रायः सड़कों पर अखबार बेचते हुए नजर आते हैं' इससे वहाँ के युवकों की स्थिति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

इसी तरह आर्थिक मंदी से प्रेरित होकर बहुत से आस्ट्रियन व्यापारी भी नाजियों का समर्थन करते रहे हैं। वे जर्मनी के साथ निःशुल्क व्यापार करने के लिये उत्सुक हैं। जर्मनी के बाजारों में अपने माल की खपत बढ़ाकर यथेष्ट लाभ उठा सकने का लोभ वे संवरण नहीं कर सकते। टाइरोल तथा अन्य सीमावर्ती स्थानों के बहुत से किसान और होटलवाले भी जो पहले उदासीन से थे, अब डालफस से असन्तुष्ट होकर नाजियों के समर्थक बन गये हैं। इसका कारण यह है कि नाजियों के प्रति डालफस की नीति से चिढ़कर हिटलर ने वायु परिवर्तन आदि के लिये जर्मन यात्रियों का उक्त स्थानों को जाना रोक दिया है, जिससे उन्हें बड़ी हानि हो रही है।

यूरोप में स्विटजरलैण्ड के बाद कदाचित् दूसरा नम्बर आस्ट्रिया का ही है, जहाँ पहाड़ों, नदियों आदि के समीप प्राकृतिक सौन्दर्य के एक से एक बढ़कर मनोरम दृश्य विद्यमान हैं। विशेषकर जर्मनी के यात्री प्रतिवर्ष बहुत बड़ी संख्या में वहाँ जाया करते थे। इन्सब्रुक, साल्जबर्ग तथा नदियों और झीलों के तटवर्ती सैकड़ों अन्य नगरों एवं गाँवों की उन्नति इन यात्रियों की आमद रफ्त पर अवलम्बित है। हिटलर की आज्ञा के कारण जर्मन यात्रियों का आना बन्द हो जाने से उनकी स्थिति बड़ी दयनीय हो गई है अतः वहाँ के अधिकांश निवासी शीघ्र से शीघ्र जर्मनी के साथ सुलह होजाने के पक्षपाती हैं।

इन्हीं सब कारणों से प्रधान मंत्री की निष्ठुर दमननीति के होते हुए भी नाजी दलवालों का जोर घटने के बजाय बराबर बढ़ता ही रहा है, उन्होंने बन्दूकों और बमों आदि का जो संग्रह कर रखा है, उसकी वजह से देश भर में खूब उपद्रव मचा हुआ है। उनकी ज्यादतियों के समाचार, जो महीने डेढ़ महीने तक बन्द से हो गये थे, जनवरी के दूसरे सप्ताह से फिर आने लगे हैं। उन्होंने सरकार के बहुत से कर्मचारियों पर अपनी धाक जमा ली है और हजारों पुलिसवालों तथा सैनिकों की भी सहानुभूति प्राप्त करली है। उनके प्रभाव में आकर अनेक जजों तक ने नाजी अभियुक्तों का विचार करने में पक्षपात किया है।

नाजी दलवालों की इस प्रबलता तथा उत्पात मचाने की प्रवृत्ति के कारण ही आज सारे देश में अशान्ति फैल रही है। ज्यों ज्यों अधिक सख्ती के साथ दमन किया जा रहा है, त्यों त्यों उपद्रवों की संख्या भी बढ़ रही है मालूम नहीं, इसका अन्त कब होता है।

डॉलफस का अधिनायकत्व

इस परिस्थिति का सामना करने के लिए प्रधान मंत्री श्री डॉलफस ने सारे अधिकार अपने हाथ में ले लिये हैं। पार्लियामेण्ट का नाम भी इस समय नहीं सुनाई पड़ रहा है। नाजी दल वालों तथा उनके समर्थकों ने इस बात की बड़ी कोशिश की थी कि वर्तमान पार्लियामेण्ट भंग करदी जाय और उसके लिए प्रतिनिधियों का नया चुनाव हो किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। डालफस को भय था कि नये निर्वाचन के परिणाम स्वरूप नाजियों का प्रभाव पार्लियामेण्ट में और भी अधिक बढ़ सकता है इसी से उन्होंने उसे भंग करने की सलाह नहीं मानी। जो हो, इस समय पार्लियामेण्ट स्थगित ही हो गई है और डालफस स्पष्ट रूप से वहाँ के अधिनायक बन गये हैं।

डॉलफस को नाजियों का दमन करने में अभी तक पर्याप्त सफलता न मिलने का एक कारण साम्यवादी दल की उदासीनता थी। इस दल के अनुयायियों को डॉलफस की नीति पसन्द नहीं है, किन्तु नाजियों का प्रभाव बढ़ता देख कर अब वे भी सावधान हो गये हैं और उदासीन भाव का परित्याग कर, इच्छा न होते हुए भी डालफस का समर्थन करने लगे हैं। कारण यह है कि हिटलर की अपेक्षा वे देश के लिए डॉलफस को ही अधिक अच्छा समझते हैं।

साम्यवादियों का सहयोग पाकर प्रधान मंत्री की हिम्मत बढ़ गई है और अब वे अपने को अधिक निरापद समझने लगे हैं। उन्होंने नाजी आन्दोलन को नेस्त नाबूद कर देने के लिये बीड़ा उठा लिया है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये वे विविध उपायों का अवलम्बन ले रहे हैं। नाजियों के संघटन को तो उन्होंने बहुत पहलेही गैर कानूनी घोषित कर दिया था और अब उन्होंने यह आदेश निकाला है कि सेना, पुलिस तथा सिविल सर्विस के जिस आदमी पर नाजी विचार रखने का सन्देह किया जा सकेगा, वह तुरन्त नौकरी से अलग कर दिया जायगा। कहा जाता है कि सेना तथा पुलिस विभाग के प्रधान नायक के पद पर श्री फे के नियुक्त किये जाने से इन अफसरों का मिजाज ठिकाने आ जायगा, जो निरंकुश होते जा रहे थे।

डाक्टर डालफस ने अर्द्धसैनिक आस्ट्रियन 'तूफानी पलटनों' का प्रधान नायकत्व स्वयं अपने हाथ में ले लिया है। नाजी दल के प्रायः सभी बड़े बड़े नेता गिरफ्तार कर लिये गये हैं। इनके सिवा और भी बहुत से लोग पकड़ कर कैद कर लिये गये हैं। नाजियों का प्रदर्शन रोकने और उन्हें किसी तरह का उत्पात न करने के लिये पुलिस का कड़ा से कड़ा इन्तजाम किया गया है। इतना होते हुए भी स्थिति सुधार की कोई आशा अभी नहीं दिखाई देती।

आगे क्या होगा

प्रधान मंत्री की दमन नीति का अन्तिम परिणाम क्या होगा, इस सम्बन्ध में किसी तरह की भविष्य वाणी करना सम्भव नहीं। हो सकता है कि निष्ठुर उपायों की सहायता से नाजियों का आन्दोलन कुछ समय के लिए दब जाय किन्तु यह स्पष्ट ही है कि जब तक नवयुवकों की आर्थिक स्थिति सुधारने और असन्तोष के अन्य कारणों को दूर करने की भरपूर कोशिश नहीं की जाती, तब तक केवल दमन से—चाहे वह कितनाही कठोर क्यों न हो—कोई लाभ नहीं हो सकता बल्कि उसके कारण स्थिति और भी खराब होजाने की सम्भावना है।

आस्ट्रिया की आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए जर्मनी के साथ उसका सहयोग नितान्त आवश्यक है किन्तु आस्ट्रियन सरकार की वर्तमान नीति के कारण फिलहाल इसकी कोई आशा नहीं दिखाई देती। उधर जर्मनी भी अपनी कार्रवाइयों से बाज नहीं आ रहा है। यद्यपि हिटलर ने गत ३० जनवरी को अपने भाषण में कहा है कि हम आस्ट्रिया के मामलों में टाँग अड़ाना नहीं चाहते और हम मेल की सच्ची नीति पर चलने का यत्न कर रहे हैं, फिर भी उनके कार्यों से स्पष्ट है कि वे आस्ट्रिया पर दबाव डालकर और वहाँ के नाजियों की गुप्त रूप से सहायता कर उसे जर्मनी के सामने झुकने के लिए विवश करना चाहते हैं।

अभी हाल में ही आस्ट्रियन सर

(शेषांश १५वें पृष्ठ के नीचे)

क्या करें ?

लेखक—श्रीयुत वैद्यनाथसिंह

सत्य ही सृष्टि का उद्गम स्थान है, सृष्टि ही दुनिया है। जबतक इस दुनिया अथवा सृष्टि का अस्तित्व है, उसके बीज रूप सत्य का आभास मिलता ही है। कैसे ? मान लिया, मैंने एक पुत्र-रत्न उत्पन्न किया। अब यद्यपि मेरी मृत्यु हो जाती है, फिर भी उस बालक की उत्पत्ति का कारण सर्वथा वही रहता है, जो मेरे निधन के पूर्व था। सिर्फ, साकार (स्थूलकाय) की जगह निर्विकार (तात्विक वस्तु) हो गया। वस्तुत', सत्य और सृष्टि एक दूसरे से अत्यन्त सन्नद्ध, ओत प्रोत हैं। सत्य के अभाव में सृष्टि बे नींव रहती है, पर सत्य तो स्वय आदि-रहित, अखिल परमेश्वर ही है। इस अवस्था में मनुष्य का अवतीर्ण होना ही उसे अपने कर्तव्य सत्य की ओर इङ्गित करता है। और सत्य तो आत्मा द्वारा प्रेरित कर्तव्य ही है। 'क्या करें ?' सत्य का ही प्रश्नवाची शब्द है। शिशु के विनोद पूर्ण कल्लोल में भी सत्य की आभा मिलती है। मनुष्य-जीवन में प्रतियोगिता बाहुल्य—आवश्यकतानुसार अन्त प्रेरित कार्यानुशीलन, सब सत्य ही के नाम पर होते हैं। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है, कि देश काल और अवस्थानुसार उसका आरोप होता है, और तदनुसार क्रिया होती है, अर्थात्—'क्या करें ?' समयानुकूल परिवर्तित होता रहता है।

हम, पाठकों का ध्यान उस भारत व्यापी भूकम्प की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जो गत पन्द्रह जनवरी १९३४ के तृतीय पहर हुआ—और 'जागरण' के विद्वान् सम्पादक के कथनानुसार जो कहीं कहीं अदृश्य अठखेलियाँ करता, कहीं भौंहें उठाता, व्यंग हास्य छेड़ता, जैसे कोई अखंड ताण्डवकारी नटराज हो उसने बिहार में साक्षात् ताण्डव ही कर दिखाया। इसमें न्यूनाधिक्य नहीं क्योंकि जब वह नैपाल की तराई (उत्तरी बिहार) से प्रादुर्भूत हुआ, तो बिहार का अन्य दूरवर्ती स्थानों से विशेष क्षति ग्रस्त होना स्वाभाविक ही है। ताण्डव का वह वेग प्रारम्भ होना—विस्फोट से उत्पन्न हुआ, आगे चल कर बहुत कुछ मन्द पड़ गया था। बिहारान्तर्गत, मुंगेर, मुजफ्फरपुर, जमालपुर, चम्पारन, सीतामढ़ी, दलसिंहसराय, दरभंगा आदि आदि स्थानों में भीषण चक्र चला। जिसके जिस उपजाऊ, कलाप्रिय क्षेत्र के वशीभूत हो लोगों ने इसका नाम बिहार रखा था, प्रकृति का वह लुभावना हिस्सा—चतुर्थांश को छोड़—बिल्कुल रेतीला हो गया, अथवा जल-मग्न हो गया। बचे हिस्से के भी उदर विदीर्ण हो गये हैं। जिन्हें यह कड़वी घूँट पीने का अवसर मिला होगा, अवश्य उनका मालिन्य उनका हृदय जन्य ताप, उतर गया होगा, और वे अपने इस अवसर प्राप्त कर्तव्य की ओर सचेत हो गये होंगे। जिन्हें यह दृश्य आँखों देखने के नौबत आई होगी, उनकी आँखें मनुष्योचित कर्तव्य अश्रु से अवश्य डब डबा गई होंगी, और इस समय 'क्या करें ?' का प्रौढ क्षेत्र उनके सामने आगया होगा। ऐश्वर्य में पले दूरस्थ लोग पराई पीर क्या जाने ? अखबारी ब्यौरा तो स्वप्न की तरह उनके शून्य मस्तिष्क मे प्रवेश करता होगा और दूसरे ही क्षण विलीन हो जाता होगा। 'फिर क्या करें ?' के महत्व पूर्ण प्रश्न से वे इस समय प्राय वंचित ही होंगे। एक बात और है, आँखों देखे दृश्य के मार्जन पर ही मनुष्य अपने प्रयत्न का यथासाध्य परिश्रम पाता है, पराये मुख से सुने ब्यौरे पर तो वह बहुधा अपना माथा ही खुजलाता है। इन लाइनों के लेखक ने स्वय पचीसों मील देहातों की पैदल यात्रा कर उनकी बर्बादी अपनी आँखों देखी है। उनका यथेष्ट वर्णन तो इसकी लेखनी से सर्वथा बाहर है, फिर भी वर्णन मात्र ही से इस समय इसका कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। उसका यथेष्ट वर्णन तो यह अपने सुख के दिनों में करेगा, क्योंकि उस समय अतीत की दुखदाई स्मृति का स्मरण कर, वह एक अपूर्व सुख का अनुभव करेगा। इस समय भड़की आग बुझाना ही इसे पहले आता है। और इस विषम घड़ी में, जब बिहार के कोने कोने से कातर स्वर उठ रहे हैं, सिर्फ जनता से अपील की इच्छा से ही यह इन लाइनों को लिख रहा है। बर्बादी का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि एक अच्छी भारी पुस्तक बन सकती है। उत्तर बिहार की उपजाऊ भूमिमें दस दस मील तक सिर्फ पानी ही पानी छलछला रहा है। हजार हजार एकड़ जमीन बालुओं से ऐसी भर गई है, कि देहात की जगह मरुस्थल का भ्रम होता है। बेदर्द आँखें भी उन दुर्दशा प्राप्त स्थानों को देख कर आहें भरने लगती हैं। जमीन फट फट कर इस प्रकार भग्न हो गई है कि उसका उपज के योग्य बनाना मुश्किल ही जान पड़ता है। एक एक दरार दो दो हाथ की चौड़ाई से आध-आध मील तक चली गई हैं, जिनकी गहराई भी मनुष्य भर से कम नहीं। स्थान स्थान पर बालुओं का ढेर लग गया है। ग्राम के सभी कूएँ प्रायः नष्ट हो गये हैं अथवा बालू से बेतरह भर गये हैं, इसलिए ग्रामीणों को मीलों तक पानी की तलाश करनी पड़ती है। घर नष्ट होने के साथ परिवार-नष्ट होना, और फसल के बर्बादी, किसानों का नग्न चित्र आँखों के सामने खड़ा करते हैं। घर गिर गये, हाथ में एक छदाम भी नहीं कि कहीं फूँस की झोपड़ी बना कर दिन बसर करें। घनी पत्तियों वाले वृक्षों के नीचे बैठ बैठ कर, इस हड्डी को कँपाने वाली शीत की रात में, अन्न वस्त्र बिना बेचारे किसान वर्षों की एक रात बिताते, असहाय तड़प रहे हैं। परिवार के विछोह से बचा खुचा धैर्य भी जाता रहता है। बेचारा करें तो क्या ? दिन भर कठिन परिश्रम करके भी जो एक शाम खाकर दूसरी शाम के लिए फिटफिटाता रहता है, आँखों देखते उसकी सारी फसल—बूढ़े का सहारा—नष्ट हो गई, उसके सामने उसका परिवार रख लुट गया। अब रहने को एक बीता घर नहीं तो ओढने को शरीर पर एक चिथरा तक नहीं, न खाने के लिए एक चारा ही है। धैर्य दिलाने वाला उनका परिवार और उनकी फसल भी तो अब नहीं। बेचारे का बोझ नहीं बदलता, यह परमेश्वर की निष्ठुरता है ! देश की इस विकट परिस्थिति में, जब कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा है, इन सङ्कटग्रस्त किसानों के कातर चीत्कारों पर कौन ऐसा बेरहम दिल होगा, जो मसोस नहीं जाता ? उनके असमर्थ—पशु से भी शून्य—जीवन पर फूट फूट कर रो नहीं उठता ? बेचारे किसानों के इस सङ्कट पर 'क्या करें ?' प्रश्न आप से आप हल हो जाना चाहिए था। फिर भी हमारे देशवासी अपने अपने पेशे में इस प्रकार लिप्त हैं कि उन्हें अपने कर्तव्या कर्तव्य का भी कुछ ज्ञान नहीं बच रहा है। सिर्फ उनकी बुद्धि को इस प्रकार च्युत कर रखा है, कि वे अपने ऐशोआराम के आगे, अपने कर्तव्य कर्म की भी अवहेलना कर बैठते हैं, और ऐसा करके भी वे अपने बड़प्पन की डींग हाँकने में तनिक भी नहीं शर्माते।

मनुष्य-मनुष्य में हृदय हृदय का सम्बन्ध है। एक की उत्पत्ति का कारण ही दूसरे की उत्पत्ति का कारण है। वह हृदय जो किसी की रुलाई पर भींग नहीं उठता, किसी की प्रार्थना पर रहम नहीं खाता, अपनी आवश्यकता को दूसरे की आवश्यकता नहीं समझता, वह हृदय, हृदय नहीं ; निरा पत्थर है—पत्थर से भी गया-बीता है। पत्थर भी तो स्वजातीय स्वभाव गुण रखता है। हमारा मनुष्य समाज ही सबसे गया बीता है। दावा तो इसका सबसे ऊपर है, पर कर्म की ओर से तो ऐसा बेसुध मालूम पड़ता है कि पशुओं को भी बुरी दशा पर रहम आता होगा। विधि ने भी इसको सर्वोपरि करके अपने कर्तव्य की इति समझली। उसको क्या मालूम था कि मेरी यह उज्ज्वल सृष्टि, जिसके अन्दर मैंने अपना ही अंश—आत्मा—रख छोड़ा है, आगे चलकर इतना बेरहम, इतना कर्तव्य च्युत हो जायगा। वह तो आदि युग के ऋषियों पर ही फूला बैठा था, पर इस अभागे ने तो उसकी उस सफलता पर भी पानी फेर दिया, धवल की जगह काली स्याही पोत दी।

इसका यह अर्थ नहीं कि सभी अपने कर्तव्य से च्युत हो गये हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जिनको अपना कर्तव्य ही प्रिय है, पर वे हैं कितने ? उँगलियों पर गिनने लायक भी तो नहीं। कुछ ऐसे भी हैं, जिनको कर्तव्य के लिये चाहे कुछ भी निजी अनुभव न हो, देखा देखी से, अथवा नाम ही के ख्याल से, कर्तव्य-क्षेत्र में कूदते दृष्टिगोचर होते हैं, पर अपनी अपरिपक्व योग्यता के कारण वे मुँह की खाते हैं। उनके सभी कार्यों में अज्ञान का पुट रहता है, जो उनके कार्य को विस्तृत नहीं होने देता और सफलता की जगह पूरी असफलता अनुभव करने को मिलती है।

कहने को तो इस प्रकार बहुत सी रिलीफ सोसाइटियाँ बन गई हैं, जो विपद् ग्रस्त स्थानों में खेमा डाल, पीड़ितों के सहायता के उद्योग कर रही हैं। पर उनकी असफलता का भी यही मुख्य कारण है कि उनमें कार्यारंभ की योग्यता का सर्वथा अभाव है, यह कोई गल्प नहीं, मुजफ्फरपुर का आँखों देखा ब्योरा है। बेचारे मदद पाने वाले को तो कोई मदद मिलती नहीं, पर जो बात बनाने में पटु हैं, जिन में अपना दुखड़ा व्यक्त करने के शक्ति प्रौढ़ है, वही तो इस रिलीफ के हकदार होते हैं। विपरीत, जो वास्तव में दुखिया हैं, या जिनमें अपना दुखड़ा रोने की आदत बहुत कम है, उनकी मदद की बात तक सोसाइटियों के आगे आने भी नहीं पाती। तड़प-तड़प कर अपना प्राण विसर्जन करते हैं। उनकी देख रेख करने वाला वहाँ उनका कोई नहीं, हालाँकि कार्य कर्ताओं की कोई कमी नहीं, कमी है व्यवस्था की, योग्यता पूर्वक कार्य सम्पादन करने की। हम दर्जनों ऐसे पीड़ितों के मुख से रिलीफ का दुरुपयोग सुन सुन कर काठ हो रहे थे। एक बेचारे का दुखड़ा उसके ही मुख से सुना, जिसको एक भी अव-लम्ब न था, जिस पर किसी भी रिलीफ वालों ने अपनी निगाह न दौड़ाई थी। मुजफ्फरपुर में बहुत सी रिलीफ सोसाइटियाँ आई हुई हैं ; पर उनसे पीड़ितों का हित बहुत कम होता है। हाँ, राजेन्द्रबाबू की देख रेख में जो सोसाइटी पटने में तैयार हुई है, उसकी मातहत रहकर मुजफ्फरपुर की केन्द्रीय समिति राम-

राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता में अच्छा काम कर रही है ; पर उसको भी जो सफलता मिलनी चाहिये अभी तक नहीं मिल पाई है। कारण, फण्ड के अभाव के साथ साथ व्यवस्था का भी कुछ अभाव खटकता है। यही हालत मुंगेर आदि जगहों की भी है। वहाँ भी कलकत्ता, कानपुर की बहुत-सी सोसाइटियाँ आई हुई हैं, पर सफलता यदि मिलती भी है, तो राजेन्द्र बाबू वाली समितियों को ही। इसका कारण प्रत्यक्ष है, एक तो उन सोसाइटियों में काम करने की योग्यता का अभाव है, दूसरे बिहार के शहरों की स्थिति से पूरे वाकिफ नहीं। सिर्फ चीजों के ढेर से काम नहीं चलता, इसलिए बाहर या भीतर की सब सोसाइटियाँ राजेन्द्र बाबू की समिति के द्वारा कार्यारम्भ करें, तो सफलता की पूरी आशा हो सकती है, क्योंकि एक तो राजेन्द्र बाबू ही इसके व्यवस्थापक हैं, दूसरे उनकी समितियों के कारिन्दे भी चुन चुन कर लिये गये हैं और बिहार के भिन्न भिन्न स्थानों अव स्थाओं से परिचित भी हैं, इसलिए ऊपर वाला तरीका ही यथेष्ट है। नहीं तो सफलता की जगह असफलता ही अनुभव करने को मिलेगी। माल भी नष्ट हुआ, और पीड़ितों का हित-साधन भी न हो सका, तो बेकार है यह सब आयोजन।

यह तो हुई शहर की बात। देहात के लिये, जहाँ की क्षति शहर से कम नहीं, कौन क्या कर रहे हैं? इसमें सन्देह नहीं कि शहर की क्षति रोमाञ्चकारी है। कोठे अटारी धूल में मिल गये हैं, हजारों की जानें गई हैं, पर साथ-साथ देहात स्थित किसानों की क्षति भी उनसे किसी अंश में कम नहीं। फिर, कितने देहात के लिए कमर कसते हैं? शहर में तो सरकार, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपैलिटी की ओर से कुछ दिलासा भी मिलती है, अधमुए किसानों को धैर्य दिलाने वाला कोई नहीं, उनके कौन है? हम यह नहीं कहते कि शहर को रिलीफ न पहुँचे, पर साथ साथ देहात पर दृष्टिपात करना भी हमारा अनिवार्य कर्तव्य है। उन्हीं पर हम शहर वाले भी निर्भर हैं। उन्हीं के प्रसाद से हम शहर को अट्टालिकाओं से सजाते हैं, मोटर हरहराते हैं, पर आज जो वे वीरान हो गये हैं, तो उनकी देख रेख करने वाला कोई नहीं। हम जब भूखों मरते हैं, तो देहात वाले ही हमें शरण देते हैं, पर आज उनकी आपत्ति पर हम आँख मूँद रहे हैं। कैसा बीभत्स आचार है! राजेन्द्र बाबू वाली समिति भी इस कार्य में बहुत पीछे है; पर अब वह धीरे धीरे उस ओर बढ़ रही है। आशा है, कुछ कर दे।

ऊपर हमने मनुष्य हृदय की जो भर्त्सना की है, वह फिर भी शुरू करते हैं। माना, कि इन भूकप पीड़ितों की सहायतार्थ बहुत सी कमीटियाँ बन गई हैं, पर विपद् के अन्दाज से वह कितनी हैं? नहीं के बराबर ही जनाब! ऐसी स्थिति में, जब सारा-का-सारा बिहार उजाड़ हो गया है, मर्द-बच्चे सभी को मदद करनी चाहिए थी। खैर, राजेन्द्रबाबू की घोषणा के अनुसार कार्यकर्त्ताओं की बिहार में कमी नहीं है, पर क्या बिहार के धनामानी शहरों के बरबाद हो जाने पर वहाँ चीजों की भी आवश्यकता नहीं है? रुपये, कम्बल, टेन्ट, आदि वस्तु अधिक-से अधिक तायदाद में आ जानी चाहिए। सुनते हैं, जापान में १९२३ में इससे कहीं प्रलयकारी भूकंप हुआ था, पर जरा उसके रिलीफ फंड का तो ख्याल कीजिए। १० करोड़ के लगभग रुपये खर्च किये गये थे। हमारे यहाँ इतने धनीमानी व्यक्तियों के रहते, अभी तक बहुत कम रकम एकत्र हो सकी है, हालाँकि विध्वंस, जापान वाले भूकम्प से कुछ ही कम है कुछ लोगों की राय में तो उससे ज्यादा भी है। इतना लम्बा चौड़ा देश और उसने क्या किया? ऐसी समृद्धिशाली सरकार और उसने क्या किया?

सरकार के सम्बन्ध में हमारा कुछ कहना यहाँ पर अनुपयुक्त होगा, क्योंकि हमारी सरकार, हम प्रजाओं के कहने पर थोड़े ही चलती है, जो भाता है, करती है। फिर बेकार कलम घिसने से क्या फायदा? देश वासियों से अपील करना तो एक भारतीय किसान की हैसियत से हमारा परम कर्तव्य है। हम बार-बार अपने धनीमानी भाइयों से प्रार्थना करते हैं कि उपर्युक्त कमी की पूर्ति का यत्न यथाशक्ति शीघ्र करने का उद्योग करें, और इस प्रकार अपने उज्ज्वल मनुष्य हृदय के परिचय दें।

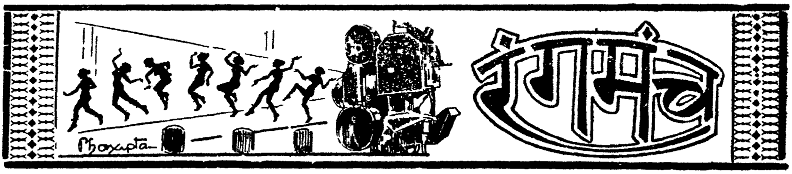
जिन्हें कुछ भी गम होगा, उन्हें अवश्य 'क्या करें?' का उत्तर सीधे इन शब्दों में मिल जायगा—दौड़ो, पीड़ितों की मदद करो, मदद!

(११वें पृष्ठ का शेषांश)

कार ने नाजी आन्दोलन को जर्मनी से प्रेरणा और सहारा मिलने के विषय में अपनी शिकायत नोटों के साथ जर्मन सरकार के पास भेजी थी, किन्तु जैसा कि पहले से ही अनुमान किया गया था, जर्मन सरकार ने अपने जवाब में उसकी प्रत्येक शिकायत को गलत बताया है। उसने आस्ट्रिया को यह भी लिखा है कि यह मामला अन्तर्राष्ट्रिय पचायत में देने लायक नहीं है और न इस रीति से इसका निपटारा हो सकेगा।

जर्मनी के इस उत्तर से आस्ट्रियन सरकार और भी चिढ़ गई है। गत १ फरवरी को वहाँ के 'मन्त्रि-मण्डल ने सर्व सम्मति से उस मार्ग पर चलते रहने का निश्चय किया है, जिसके लिये परिस्थिति ने उसे बाध्य कर दिया है।' इसका मतलब यह है कि नाजियों के खिलाफ अब और भी कड़ी कार्रवाई की जायगी। अतः अभी कुछ समय तक आस्ट्रिया में शान्ति स्थापित होने की कोई सम्भावना नहीं मालूम होती। वहाँ के प्रधान मन्त्री जो अपनी दृढ़ता के कारण 'छोटे नैपोलियन' कहे जाते हैं, इस नीति में सफल होंगे ऐसी आशा करने के कोई लक्षण नहीं दिखाई देते।

इधर डॉक्टर डॉलफस अन्य राष्ट्रों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न भी करते रहे हैं। हाल में ही समाचार आया है कि इटली ने उनकी सहायता करने का आश्वासन दिया है। सम्भव है, इससे स्थिति कुछ सुधर जाय; क्योंकि जर्मनी यदि किसी देश की सलाह मान सकता है, तो वह इटली ही है।



सूर्य-कुमारी

लेखक—श्रीयुत 'चन्द्रेश'

भारतवर्ष में आजकल चित्रपट कम्पनियाँ वर्षा ऋतु में नवीन हरे-हरे पौधों की नाईं उठ रही हैं। जिस पौधे की देख रेख होने से जड़ जम गई, वह वर्षा ऋतु के प्रस्थान होने पर भी जीवित रहता है। यदि जाड़े में वह पौधा सुश्रूषा करने से उन्नतिशील मार्ग पर लग गया, तो ग्रीष्म ऋतु के कटुर प्रहारों का भय नहीं रहता। कुछ चित्रपट-कम्पनियाँ भी अचिरजीवि वर्षा-ऋतु के पौधों की तरह उठ रही हैं, और कुछ-कुछ अपने पात चिकने बतलाकर होनहार होने का सबूत भी दे रहा हैं।

नवजात विष्णुटोन कम्पनी किस कक्षा में रखी जाय, यह हम निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते। किन्तु हाँ, हम उसको आशा करते हैं कि वह चिरंजीवि रहे। इस नवजात पौधे की पहली पत्ती 'सूर्य-कुमारी' है। प्लॉट पौराणिक होने पर भी आधुनिक सामाजिक कुरीतियों का पूरा पुट देकर सामाजिक कथानक के रंग में रँगा गया है, विशेष कर स्त्री-जाति के लिये यह चित्र प्रभावशाली है।

कथानक के लेखक मि० नटवर श्याम हैं। संवाद और उनका अभाव कथानक को जोरदार, भावमय और अलंकृत बना देते हैं। इसमें हास्यरस, वीररस, करुणारस और शृंगाररस का योग्य मात्राओं में समावेश है। कथानक के हिन्दी अनुवाद का सौभाग्य श्रीयुत छबीलदासजी 'मधुर' को प्राप्त हुआ। बहुधा हमारे चित्रपट के कथानक गुजराती, मराठी, बंगाली या अंग्रेजी में लिखे जाते हैं, उनका अनुवाद हिन्दी में कराया जाता है। यह तो मानी हुई बात है कि मौलिक लेखक भी अपनी कृति को अन्य भाषा में अनुवादित करे तो भी मौलिक कृति का रस, और माधुर्य की रक्षा नहीं कर सकता। फिर अन्य लोगों के अनुवाद में मौलिक सुन्दरता रहती है या नहीं, इसका अनुभव पाठकगण कर सकते हैं। 'सूर्य कुमारी' का हिन्दी में अनुवाद सन्तोषजनक है, इस हिन्दी कृति में भी भाव, तुकबन्दी, साहित्यिकता कूट-कूट कर भरी है कोई भी अनुमान नहीं कर सकता है कि यह अनुवादित कथानक का चित्रपट है। इस विशेषता का श्रेय 'मधुरजी' की साहित्य शक्ति को है या 'श्यामजी' को इसका हम निर्णय नहीं कर सकते हैं। अन्य सिनेमा-कम्पनियों से हमारा अनुरोध है कि 'सूर्य कुमारी' के कथानक की विशेषता का अनुकरण करें।

अभिनय

पात्रों का चुनाव संतोषजनक नहीं है। जितनी परवाह प्लॉट तैयार करने में की गई, उतनी ही लापरवाही पात्र चुनाव में दिखाई गई है। तपती (नायिका) की भूमिका अलकनन्दा के सिर मढ़ दी जाती है। श्रीमती अलकनन्दा में नायिका का कोई भी गुण दृष्टिगोचर नहीं होता है। केवल आप का गाना और नृत्य ठीक है, किंतु ये दो गुण नायिका चुनने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। नायिका का अभिनय विशेष भाव पूर्ण होना चाहिये। इनके चेहरे पर भाव-प्रदर्शन मानों होता ही नहीं। माधव से प्रथम प्रेम-मिलन के भाव का अभाव, कारागृह में और जंगल में पति वियोग और पति-सहयोग के दुःख और सुख के विरुद्ध मालूम होती हैं। अन्त में प्रेम विजय की पताका भी आप के नेत्रों में नहीं फहराती। इसका कारण शायद यही है कि श्री अलकनन्दा को ऐसी भावमयी भूमिका का सौभाग्य पहिले ही प्राप्त हुआ है। यदि हमारा अनुमान ठीक है, तो हम उनसे भविष्य में अच्छी आशायें कर सकते हैं।

सिद्धेश्वरी का कार्य अन्त में कुछ सन्तोष-जनक होता है। प्रभादेवी गान के सिवाय अभिनय क्षेत्र में ठीक हैं। स्त्री-पात्रों में श्रीमती तारा का अभिनय अपने क्षेत्र में प्रशंसनीय रहा। आपके शृंगारमय भावप्रदर्शन स्वाभाविक और मर्यादा में रहने से कलामय हैं। सामान्य तौर पर आपने अपनी भूमिका को पूर्ण सफल किया।

पुरुष पात्रों में चुनाव सन्तोषजनक नहीं रहा। चित्र के पूर्वार्द्ध में नायक मि० शंकर राव खातु का अभिनय बिलकुल ठण्ढा रहता है, जब वीर रस का अभिनय आता है तब वे ठीक रहते हैं और करुणा में भी प्रशंसनीय कार्य कर जाते हैं, किन्तु आप के चेहरे पर संवरण राजा का वह अलौकिक धैर्य, वीरत्व और त्याग नहीं चमकता है।

वसतक महाशय का हास्यरस-अभिनय खूब हँसोड़ा है। मर्यादित अभिनय, तुकबन्दी के साथ दर्शकों के हृदय को गद्‌गद् कर देता है। उनकी सफल मशहूर है। इस तुकबन्दी के कारण मन चाहता है कि वसतक महाशय (काशीनाथ) पर से दूर न हो। मि० भट्टाचार्य सूर्य की भूमिका अच्छे ढंग से करते हैं, उनके कदम-कदम पर, सूर्य की क्रोधाग्नि झलकती है।

पात्र चुनाव ठीक न रहा, नायक और नायिका के चुनाव ने कला-अनभिज्ञता का पूरा सबूत दिया है। 'सूर्य-कुमारी' के विज्ञापन पढ़ने से हमको आशा थी कि प्रसिद्ध लेखक, कलाचतुर डाइरेक्टर, संगीत प्रवीण याज्ञिक महाशय 'सूर्य कुमारी' को एक प्रथम श्रेणी का चित्र बनाएँगे, किन्तु हमारी आशायें पूर्णतया फलीभूत न हुईं।

संगीत और उपकरण

(Setting)

आदि से अन्त तक गाने सरल, भाव पूर्ण, जमती हुई चाल और कवि चातुर्य से भरे गये हैं, परन्तु कवि के प्रति पूरा न्याय करने वाले पात्र न मिले। वैसे तो श्रीमती अलकनन्दा और सिद्धेश्वरी का पार्ट असंतोष-जनक नहीं है तथापि हम यह न कहेंगे कि जैसा चाहिये था वैसा है। पुरुष-पात्रों में वसतक से मामूली गायक के सिवाय दूसरा गायक नहीं है। नायक महाशय कभी कभी प्रयत्न करते हैं, किन्तु साँस भर जाता है।

चित्र का सेटिंग सुन्दर, स्वाभाविक और कला-दृष्टि बिन्दु से प्रशंसनीय है। पृथ्वी के दृश्य और आकाश के दृश्यों में अन्तर बड़ी सावधानी से रखा गया है। तात्पर्य यह कि नृत्यशाला, प्राचीन नृत्य, ऊँचे पर्वत से गिरता हुआ निर्झर और उसका कर्णप्रिय कलरव, राजोद्यान, सरोवर, घने बन और संवरण फाँसी-यंत्र इत्यादि दृश्य संचालक की कलामयी कल्पना का काफी सबूत देते हैं।

चिट्ठी-पत्री

वैवाहिक कुरीतियाँ दूर कीजिए

देशी नरेशों से अग्रवाल-महासभा की अपील

अग्रवाल महासभा की ओर से देशी नरेशों के नाम निम्नलिखित आशय के पत्र भेजे गये हैं—

अग्रवाल महासभा के आदेशानुसार मैं आपका ध्यान वर्तमान वैवाहिक कुरीतियों —विशेष कर बाल विवाह और अनमेल विवाह—की ओर आकृष्ट करते हुए यह निवेदन करना चाहता हूँ कि आप तथा राज्य की धारा सभा इन बुराइयों पर ध्यान दें और बृटिश भारत में प्रचलित शारदा कानून की भाँति कोई आवश्यक कानून बनाकर इन्हें रोकने का प्रयत्न करें।

इन कुरीतियों से जो सामाजिक और शारीरिक क्षति हो रही है, उस पर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। देश का प्रत्येक हित चिन्तक इन बुराइयों से भली भाँति परिचित है। ये कुरीतियाँ, अनेक ऐसी बुराइयों की मूल कारण हैं जो समाज की सजीवना शक्ति का ह्रास कर रही हैं। मैं यहाँ पर यह भी निवेदन कर देना चाहता हूँ कि बड़ौदा मैसोर, इन्दौर आदि उन्नत राज्यों ने समाज से इन बुराइयों को दूर करने लिए प्रभावशाली कानून बनाये हैं।

मुझे आशा है कि आपका उन्नत राज्य भी समय की भावना और आवश्यकता के अनुरूप कार्य करने में किसी से पीछे न रहेगा।

निवेदक

रतनचन्द अग्रवाल

स० मंत्री

'संजय' का विशेषांक

समस्त हिन्दू जनता को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आगामी २१ फरवरी सन् १९३४ ई० को 'संजय' का सचित्र होली अंक २० × ३० के अठपेजी साइज पर प्रकाशित होगा। इस अंक का मूल्य छ आना निर्धारित किया गया है। उन नवीन ग्राहकों को यह अङ्क बिना मूल्य भेंट किया जायगा जो उपरोक्त तिथि से प्रथम वार्षिक चन्दा दो रुपया मनीआर्डर द्वारा भेज कर 'संजय' के स्थाई ग्राहक बन जायँगे।

देवियों, विद्यार्थियों, अनाथों किसानों, हरिजनों, अध्यापकों पुस्तकालयों और वाचनालयों को 'संजय' एक रुपया मनीआर्डर द्वारा भेजने पर वर्ष भर तक भेजा जायगा। होली अंक के लिये चार आना अधिक भेजना चाहिये। वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

देश, जाति और धर्म पर बलिदान होनेवाला 'संजय' अपनी विशेषताओं के लिये स्वतः प्रमाण है। जिसने एक बार अवलोकन किया उसने ही इसे अपनाया है।

निवेदक—मैनेजर, 'संजय' देहली।

शोक प्रकाश

हम मुँगेर युवक समाज मुँगेर युवक संघ के प्राण असहायों के आश्रयदाता और पुरानी रूढ़ियों को जड़ से उखाड़ कर नवनिर्माणित साँचे में ढालने वाले युवक श्री रामकुमारलाल अग्रवाल, जो कि भूकम्प के प्रकोप में पड़कर मृत्यु के मुख में पड़े, श्री नागेश्वर मिश्र 'कान्त' की पूज्या माँ धर्मपत्नी और प्रिय भतीजे जो भूडोल के शिकार हुए और सार्वजनिक कार्य के प्रबल स्तम्भ श्री केशवदेव खेमका, कावर मदनलाल खेमका, श्री शिवनन्दनप्रसाद तथा श्री रघुनन्दनप्रसाद, उनकी भाभी, स्त्री, बहन और बूआ जो कि भूचाल काल की ग्रास हुई, सब की आत्मा को स्वर्ग में चिर शान्ति पाने के हेतु ईश प्रार्थना, इन लोगों के आहत परिवार को सुस्वस्थ हो जाने की शुभ कामना और कुटुम्ब परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रगट करते हैं। ईश्वर उन लोगों को सद्गति और आर्त्तित प्राणियों को सन्तोष, धैर्य और सहायता प्रदान करे।

मन्त्री—सोशियलिस्ट पार्टी, मुंगेर।

प्रदीप

आगामी होली के अवसर पर 'प्रदीप' नामक सचित्र साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ होगा, पत्र का लक्ष्य समाज-सुधार होगा। विद्वान् लेखकों से सविनय तथा सानुरोध प्रार्थना है कि वे अपनी गद्यपद्यात्मक रचनाओं द्वारा पत्र को सहायता प्रदान करने की कृपा करें। लेखादि निम्न पते पर आना चाहिये।

प० लक्ष्मीनारायण पाठक, बी० ए०

नयाटोला स्ट्रीट, बरेली यू० पी०

'अभ्युदय'

साप्ताहिक 'अभ्युदय' जो गत भारतीय स्वतंत्रता के महायुद्ध में सरकार द्वारा प्रेस पर ताला लगा दिये जाने के कारण बन्द हो गया था, आगामी १९ फरवरी ३४ से स्वनाम धन्य पं० वेंकटेशनारायणजी तिवारी के सम्पादकत्व में पुनः प्रकाशित होगा।

मैनेजर—'अभ्युदय', प्रयाग

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन दिल्ली स्वागत-समिति की

विज्ञप्ति नं० ८

२३ वें अ० भा० हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के शुभवसर पर होने वाले कवि-सम्मेलन के लिये उपसमिति ने निम्नांकित समस्याएँ व विषय निर्धारित किये हैं। आशा है कि देश के समस्त सुकवि अपनी अपनी रचनायें साथ लेकर इस ऐतिहासिक महानगरी में पधारने की कृपा करेंगे। यदि कारण वश जो कवि महोदय उपस्थित न हो सकें, वे अपनी कविता रचनायें तारीख १५ मार्च सन् ३४ ई० तक कार्यालय में भेज देने की कृपा करें। हम उन महानुभावों के बड़े ही कृतज्ञ होंगे, जो अपने परिचित सुकवियों के पते कार्यालय में भिजवाने की कृपा करेंगे। ताकि उन्हें निमन्त्रण पत्र भेजे जा सकें।

समस्याएँ

(१) कासी में। (२) प्रकाशक है। (३) मानौ सीक चन्द्र पै मलिन्दन के छौना है। (४) दिन फेर अछूतन के फिरिहैं।

स्वतंत्र विषय

(१) रामनवमी (२) इच्छानुसार

विनीत—विश्वम्भरसहाय 'प्रेमी' संयोजक, कवि सम्मेलन।

---

२३ वें अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, दिल्ली स्वागत-समिति की

सूचना

स्वागत समिति के उपदेशक श्री प० चन्द्रशेखरजी शास्त्री भारत में प्रचारार्थ भ्रमण कर रहे हैं। आशा है जहाँ वे पहुँचेंगे, वहाँ के हिन्दी हितैषी सज्जन उन्हें पूर्णरूपेण सहायता प्रदान करेंगे। वे किसी प्रकार की आर्थिक सहायता न लेंगे।

विनीत—पुत्तूलाल वर्मा, प्रधान मंत्री।

हरिण और सर्दी

सर्दी के मौसिम में जब हरिण पहाड़ों से बाहर निकल कर घूमने लगते हैं, तब समझ लेना चाहिये कि अब सख्त ठण्ढ पड़ने वाली है, क्योंकि हरिण का यह आगमन ठण्ढी हवा के चलने का पूर्व प्रमाण माना जाता है। वायु-विद्या में पारगत् भविष्य वेत्ताओं का कथन है कि जब हरिण पहाड़ों से निकल कर घूमने लगें, तो समझना चाहिये कि अब खूब सख्त सर्दी पड़ने वाली है। नवम्बर के आरम्भ में हरिण केवल पहाड़ों से ही दूर नहीं होते, वरन् एक बार तो एक सुन्दर हरिण खाने की तलाश करता हुआ अपने प्राकृतिक स्थान से बहुत ही दूर चला गया था। एक रोज वह ग्लासगो के मुहल्लों के आस-पास चक्कर करता दीख पड़ा था। उस समय वहाँ के अपरिचित वातावरण को देखकर वह घबड़ा गया था और अपने परिचित स्थान पर लौटने की उसने बहुत चेष्टा की थी। घबड़ाहट में तेजी से भागने पर वह एक मनुष्य के तीर का निशाना बन गया था। सन् १९२८ के शीत काल में जब खूब बर्फ पड़ा था, तब हरिण अपने प्राकृतिक निवास-स्थानों से बहुत दूर भटकते देखे गए थे। प्रकृति, सर्दी की सूचना मनुष्यों की अपेक्षा हरिणों को जल्दी देता है।

५० नौकरी करने वाला अन्धा

५० वर्ष की उम्र का मि० पेरेश नामक एक अन्धा गृहस्थ है। सोलिसटर के आफिस में क्लर्क की नौकरी करने से लेकर बडन पॉवेल के दक्षिण अफ्रिका के पुलिस विभाग में नौकरी करते समय तक वह कुल पचास प्रकार की नौकरियाँ कर चुका है। आज-कल वह खेती तथा गाय-घोड़ों का व्यापार करता है। अपना मकान बनते वक्त उसने भी उसे बनाने में सहायता दी थी। उसे बाजा बजाना आता है और टाइप राइटर पर भी वह काम कर सकता है।

एक ही मिनट में

क्या आप जानते हैं, एक ही मिनट में दुनिया मे कैसी-कैसी घटनाएँ हो जाती हैं? कितने-कितने परिवर्तन हो जाते हैं? इस बीसवीं सदी के युग में इतनी शीघ्रता से घटनाएँ घटित होती हैं कि उनके विषय में आप विचार तक नहीं कर सकते। एक मिनट में—केवल एक ही मिनट में—९० बालक इस पृथ्वी पर जन्म धारण करते हैं, ७६ मनुष्य इस संसार से विदा होते हैं। एक मिनट मे बृटिश टापुओं, मुहल्लों और सड़कों पर दुर्घटना होने से एक मनुष्य आहत होता है। एक ही मिनट में इस सुधरी हुई दुनिया मे २० पुरुष विवाहित होते है, एक का सम्बन्ध-विच्छेद होता है, देश शिक्षा के लिए ६५ पौंड खर्च करता है और आप मानें चाहे न मानें, परन्तु यह बात बिल्कुल सही है कि एक ही मिनट में चूहे ९९ पौंड की हानि कर देते हैं। प्रत्येक मिनट इस देश में ८३३३३३ कप काफी का उपयोग होता है और ६०००० आलू खाए जाते हैं। हाल ही में एक हवाई जहाज पेरिस से पश्चिम अफ्रीका प्रति मिनट २। माल की तेजी से उड़ा था। बृटेन का कोयले का केवल एक बन्दर दुनिया के तमाम भागों में भेजे जाने वाले १७ टन से अधिक कोयले जहाज में केवल ही एक मिनट मे भर देता है।

२४ घण्टे में १४० मील दौड़ने वाला मनुष्य

मध्यकालीन युग में टर्की के सम्राट् तेज दौड़ने वाले आदमियों को अपने यहाँ रखते थे। वे दौड़ने वाले दौड़ने में कुशल होते थे और सैकड़ों मील लगातार दौड़ सकते थे। दौड़ते दौड़ते उनके पैर की एड़ियाँ इतनी खराब हो जाती थीं कि उनमें नाल लगाने की जरूरत पड़ती था। दौड़ते समय वे लोग मुँह मे चाँदी की गोलियाँ रखते थे और उन्हें चूसते जाते थे। रास्ते मे वे लोग 'रास्ता छोड़ो' आदि चिल्लाते जाते थे। इस प्रकार के एक दौड़ने वाले ने २४ घण्टे मे १४० मील का रास्ता तय किया था।

ऊँटों की कुश्ती

मुलतान में गत सोमवार को ऊँटों की कुश्ती के १० प्रयोग किए गये थे। जिसमें ऊँटों ने अपने दाँतों और पैरों का स्वतन्त्रता से उपयोग किया था। अनेक ऊँट खून से लथपथ हो गए थे, जान पड़ता है कि ऊँट बड़े अच्छे मल्लयुद्ध करने वाले होते हैं। इनकी कुश्ती देखने के लिए बड़े बड़े पहलवान भी उपस्थित हुए थे। यह कुश्ती करीब ३५ मिनट तक हुई थी। सब मिलाकर दो घण्टे का प्रोग्राम था। आखिरी कुश्ती के समय एक ऊँट लोगों के झुण्ड की ओर दौड़ पड़ा था। घबड़ाहट में लोग इधर-उधर भागने लगे थे। कुश्ती के परिणाम स्वरूप अनेक लोग आपस में लड़ पड़े थे। निर्णायकों के अमुक ऊँट के जीतने की घोषणा करने पर विपक्ष के ऊँट के ड्राइवर ने निर्णायकों के निर्णय के विरुद्ध चैलेञ्ज दिया था। परिणाम स्वरूप लड़ाई हो रही थी, परन्तु पुलिस ने लड़ाई शान्त कर दी थी। मैच फिर से हुआ और उसके अनुसार इनाम की घोषणा की गई थी।

मूल्यवान हीरे की यात्रा

दक्षिण अफ्रीका के हीरे की खान मे से एक बड़ा हीरा प्राप्त हुआ था। उसका मूल्य और वजन आजतक मिले हुए हीरों में सबसे अधिक था। उसकी दुनिया भर में प्रशंसा हुई। अन्त में उसके स्वामी को यह चिन्ता हुई कि इसे इग्लैण्ड किस प्रकार भेजा जाय, क्योंकि यह भय स्वाभाविक हो था कि कहीं कोई इसकी चोरी न कर ले। या लूटकर न ले जाय। स्टीमर में किसी के साथ भेजें, तो ले जाने वाले का खून होने का भी भय था। अन्त में उसे ले जाने की जंगी तैयारी की गई। लोहे की मजबूत तिजोरी हीरे के लिए तैयार की गई और हथियार बन्द पुलिस के साथ तिजोरी स्टीमर पर चढ़ाकर सीधे इग्लैण्ड पहुँचा दी गई। इस जंगी तैयारी और हीरे के प्रवास की बातें अखबारों में छपा करती थीं। उसके पहरेदार भी रात दिन चिन्ता और जागरण में प्रवास कर रहे थे। अन्त मे तिजोरी इग्लैण्ड पहुँची और पंच के समक्ष खोली गई तो उसके अन्दर से केवल एक पाउण्ड ही निकला, जिसमें हीरा न था। सब लोग दंग रह गए। तिजोरी की खाल पुनः देखी गई। अनेक लोग भयभीत भी हुए। इतने में डाक से एक पारसल आया, उसे खोलने पर उसमें से वही मूल्यवान हीरा निकला। हीरे के मालिक ने चोर-डाकुओं का ध्यान तिजोरी की ओर आकृष्ट करके इस मार्ग से हीरा इग्लैण्ड पहुँचा दिया।



चाँद—(विशेषांक) प्रयाग का यह सचित्र मासिक गत बारह वर्षों से जनता की जो अभिनंदनीय सेवा कर रहा है, यह सब जानते हैं। जिस निर्भीकता से वह अपने ध्येय पर अटल रहा है; सत्य और प्रेम की प्रणाली को जिस सुन्दरता से इसने निबाहा है, विपत्तियों के बादल मँडराते रहने पर भी जिस कर्त्तव्यनिष्ठा का इसने आदर्श उपस्थित किया है, वह प्रशसनीय और ग्राह्य है। नवम्बर १९३३ का अंक इसका 'नववर्षांक' के नाम से निकला है। लगभग सभी प्रतिष्ठित लेखक लेखिकाओं की रचनाएं इस अंक में हैं। आरम्भ में ही श्री 'प्रसाद' जी की 'स्वर्ण-संसार' शीर्षक कविता है, जो पाठकों के हृदय में घर कर लेती है। एक एक लाइन पढ़ पढ़ कर झूम उठने लायक है। श्री प्रेमचन्दजी की कहानी 'दिल की रानी' भी अपने ढंग की बे-जोड़ चीज़ है। श्री विनोद-शंकर व्यास, श्री धनीराम 'प्रेम', श्री जनार्दनप्रसाद 'द्विज', श्री वीरेश्वर-सिंह की कहानियाँ भी सुन्दर हैं। कविताओं का चयन भी सुन्दर हुआ है। कई महत्त्व पूर्ण सारगर्भित लेख हैं। 'सिनेमा' पर 'प्रेम' जी का लेख है, जिसमें कोई नवीनता नहीं है। अस्तु, कई सुन्दर-सुन्दर चित्रों से सुशोभित यह अंक पठनीय है, मनन योग्य है। मूल्य इस अंक का १।।) है

सहेली—(विशेषांक) यह पत्रिका विशेषकर महिलाओं के लिये है, और प्रयाग से प्रति माह प्रकाशित होता है। नवम्बर में इसका भी विशेषांक निकला है, जो सब दृष्टियों से सुन्दर है। आरम्भ में श्रीमती सरोजिनी नायडू का संदेश है। लेखिकाओं में श्री उमा नेहरू, श्री तोरन देवी शुक्ल 'लली' श्री सुभद्राकुमारी चौहान, तेजरानी पाठक, रामेश्वरी देवी गोयल, महादेवी वर्मा, सावित्री देवी, हीरादेवी 'चकोरी', शान्ति-मालवीय, शकुन्तला श्रीवास्तव, शशिकला वाजपेयी, शान्तिलता माथुर आदि की रचनायें सुन्दर हैं। इसी प्रकार लेखकों में सर्व श्री मोहनलाल नेहरू, नर्मदाप्रसाद खरे, सत्यजीवन वर्मा, रामकुमार वर्मा, विश्वनाथ शास्त्री गोविन्ददासजी, रमेशप्रसाद श्रीवास्तव, देवीदत्त शुक्ल, श्रीनाथसिंह आदि की रचनायें अच्छी हैं और मनन करने योग्य हैं, कई सुन्दर चित्र हैं। आवरण पृष्ठ पर श्री स्वरूपरानी नेहरू का भव्य चित्र है। अंक बहुत सुन्दर निकला है, इसमें सन्देह नहीं। छपाई सफाई बहुत अच्छी! सजा-वट मनोहर है, हम इस पत्र के सचालकों को हृदय से बधाई देते हैं। इस अंक का मूल्य ।।) है।

आत्मोत्सर्ग—लेखक, श्री सियारामशरण गुप्त, प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी। पृष्ठ-सख्या १०० मूल्य ।।=)

श्री गणेशशंकरजी विद्यार्थी वंश के उन कतिपय रत्नों में थे, जिनका नाम भारत का बच्चा-बच्चा जानता है और अब तो मर कर वे और भी अमर हो गये हैं। उनका जीवन देश के लिये था और उनकी मृत्यु भी पर-सेवा में ही हुई। श्री सियारामशरणजी ने उन्हीं महात्मा की आदर्श मृत्यु का चित्रण किया है, जो सब कृतियों से खरा उतरा है। कानपुर के गत हिन्दू-मुसलिम दंगे में विद्यार्थीजी ने अपने जीवन की परवाह न करके, हिन्दू-मुसलमानों को एक-दूसरे का सिर तोड़ने से बचाया और उसी पावन कार्य में वे मारे गये। 'गुप्त' जी ने ऐसा रोमांचकारी चित्र खींचा है, कि कहीं कहीं तो आँखों से आँसू बह चलता है, हृदय भर आता है। भीतर विद्यार्थीजी का वही भव्य चित्र दिया हुआ है, खद्दर का कुर्ता-टोपी और आँखों पर चश्मा चढ़ा हुआ। पुस्तक पढ़ने योग्य है।



सन् १९१७ में, बम्बई के श्री एल० आर० बोमनजी ने होमरूल लीग को १ लाख का दान दिया था, अब किसी कारण ठीक सात वर्ष बाद उन्होंने रुपये की वापसी के लिए २,९४००० का दावा दायर कर दिया है। अपन राम की राय में अगर यह मंत्र सिद्ध होगया, तो देश को धनी समाज को ७ साल में सवा दो गुना दाम और बातेमें नाम भी पैदा करने का एक बहुत आसान काम मिल जायगा।

❀ ● ❀

अपन राम की राय में तो बोमनजी साहब को भारत के धनी-समाज की ओर से सब प्रकार की सहायता मिलनी चाहिए। सबसे अच्छा तो यह हो, कि कुछ पागा पण्डितों से एक कामना पूर्ति यज्ञ करा डाला जाय, इससे पुण्य भी होगा और फल भी मिलेगा।

❀ ❀ ●

मथुरा के क्लाथ प्रिंटिंग मर्चेन्ट एसोसियेशन ने निश्चय किया है कि अपने धर्मादा फण्ड में से ३००० रुपये के लड्डू और कचौरी बनवाए जाकर बटाये जायँ और ब्राह्मण-भोज भी दिया जाय। इस पर मथुरा के कुछ दिल जले लोग एसोसियेशन पर बेतरह बिगड़े हैं। भला पूछो, धर्मादे को रुपयो यों धरम के कारज में नाँय लगायो जायगो, तो भगवानजी महाराज अप्रसन्न नाँय है जागे?

● ❀ ●

मालूम नहीं की नौकरशाही काका कालेलकर पर इतनी प्रसन्न क्यों है कि बार बार गिरफ्तार करके उन्हें छोड़ देती है। अगर काका साहब ने कोई मंत्र सिद्ध कर लिया हो तो कृपया वे यू० पी० की ओर भी जरा सा फूँक दें।

❀ ❀ ❀

दक्षिण भारत के प्रजातन्त्र दल की ओर से आवेदन किया गया था कि जयकर साहब उसका नेतृत्व स्वीकार कर लें, पर सुना है जयकर साहब ने गोलमेज में शामिल होने वालों के निन्दकों के इस आवेदन को ठुकरा दिया। बहुत ही चोखा काम किया जयकर साहब ने। वर्ना, गोलमेज के निन्दकों से मिलकर वो सरकार को वे क्या मुँह दिखाते।

❀ ❀ ❀

श्री 'बेढब' जी बनारसी ने 'भारत' में एक लेख छपवाया है, जिसका शीर्षक है—'प्रेम की चोट।' पढ़ने से मालूम हुआ कि बेढबजी आपको बड़ी गहरी चोट लगी है। प्रेम की चोट का इलाज करने वाले काशी में एक ही डाक्टर हैं और वे गोवर्द्धन सराय में रहते हैं। श्री कृष्णदेवप्रसादजी भी अपनी 'प्रेम पीड़ा' का इलाज वहीं कर चुके हैं, यकीन न हो, तो श्री 'प्रसाद' जी से पूछ लीजिए।

गंगा-सम्पादक श्री रामगोविन्दजी त्रिवेदी ने पत्रों में एक लेख छपवाया है, जिसका शीर्षक है—'जापान ने क्या किया?' इसमें आपने बतलाया है कि जब जापान में भूकम्प आया था तो वहाँ के सम्राट् ने अपने पाकेट से १ करोड़ का दान दिया था और जापान सरकार ने ३॥ करोड़ रुपयों की सहायता की थी, पर बिहार के भूकम्प पर हमारे भारत सम्राट् ने १०० पौंड का दान दिया, और सरकार क्या देगी अभी तक पता नहीं! इस पर आप टिप्पणी भी करते हैं कि फर्क केवल इतनाही है कि जापानी सरकार और सम्राट् सब स्वदेशी और स्वजातीय थे भारतीय सरकार और सम्राट् विदेशी हैं। अरे भाई, जब यह भेद जानते हो, तो फिर व्यर्थ ही टेंटें क्या करते हो?

❀ ● ❀

हमारे एक मित्र का कथन है कि 'देशी नरेश-रक्षा बिल में भी सरकार ने अपने देश के पत्रकारों के पाकेट गरम करने का क्या अच्छा मार्ग निकाल दिया है कि वाह! बेचारे गरीब भारतवासी पत्रकार भी कभी कभी कुछ पा जाया करते थे, पर इस कानून ने तो उनका बधिया ही बैठा दी। अब विदेशी पत्रकारों की मौज है वे जिसे चाहें कोसें और लूटें खसोटें और अपनी प्यारी सरकार को धन्यवाद दें।' क्या भाई साहब, है इसमें कुछ तथ्य?

❀ ❀ ❀

हिन्दी मिलाप के सम्पादकजी ने 'भूकम्प के लाभ' पर एक बड़ा ही सुन्दर और विचार-पूर्ण लेख लिख डाला है। हमारी समझ में अगर आजकल नरेश ऐसे अनोखे और विचार पूर्ण सूझों के लिए भी साढ़े पचास सौ का पुरस्कार रख देते, तो मिलाप सम्पादक श्री खुशहाल चन्दजी को अवश्य ही प्रथम श्रेणी में पुरस्कार प्राप्त होता।

❀ ❀ ❀

मिलाप सम्पादक श्रीखुशहालचन्दजी खुरसन्द ने अपनी राय शीर्षक में भूकम्प से पाँच लाभ बतलाये हैं। पहला लाभ आप की राय में यह हुआ कि बेकारी का प्रश्न हल हो गया। हजारों नहीं लाखों बेकार जरूर काम में लग जायगे और फिर मकान बनने शुरू होंगे, तब मामारों और मजूरों के साथ ही साथ मुंशियों क्लार्कों और मुनीबों और ओवरसियर आदि इसी तरह का काम करने वालों की जरूरत होगी। भारत सरकार वर्षों से सोचती थी और उसे बेकारी हटाने का कोई मार्ग नहीं सूझता था। प्रकृति ने दो ही मिनट में इस विकट समस्या को सुलझा दिया।' अपन राम की राय में अगर सरकार बिहार में प्रकृति देवी का कोई आलीशान मन्दिर बनवा दे, तो शायद प्रकृति देवी यहीं बस जायँ और फिर कभी कैसा कष्ट का सामना ही न करना पड़े।

जागरण के ग्राहकों को नवीन उपहार!

जो सज्जन इस मास के अन्दर तुरन्त ही ३॥) भेजकर, जागरण के ग्राहक बन जायँगे उन्हें नीचे लिखी ५) की पुस्तकें केवल २॥) लेकर ही दी जायँगी

गरम तलवार (वीर-रस पूर्ण सुन्दर उपन्यास)	१।)	रसरंग (नौ रसों की नौ सुन्दर कहानियाँ)	॥।)
अवतार (बहुत ही सुन्दर प्रेम उपन्यास)	॥)	फाँसी (श्री जैनेन्द्रकुमारजी की सुन्दर कहानियाँ)	॥।)
पंचलोक (बहुत ही सुन्दर पाँच कहानियाँ)	॥)	लोकवृत्ति (बहुत ही सुन्दर मौलिक उपन्यास)	१।)

मैनेजर—'जागरण', सरस्वती-प्रेस, काशी

दूसरा लाभ तो आपने और भी सुन्दर बताया है। आप लिखते हैं—दूसरा लाभ इससे भी बड़ा और वह यह है कि 'अमीरों, धनियों पूँजीपतियों, उच्च अट्टालिका में रहने वालों और राजमद में चूर रहने वालों को इस पार्थिव स्वर्ग और ऐश्वर्य की निस्सारता को समझने का अवसर मिला है। निमेष-मात्र में करोड़पति खाक में मिल जाते हैं और विशाल साम्राज्य नष्ट हो जाते हैं। दिमाग मे जो आसमानी बू आ जाती है, वह निकल जाती है।' अगर कोई डॉक्टर हमारे देश के राजे महाराजे और हमारी सरकार के दिमाग की परीक्षा करे, तो यह बात साबित हो जाय।

❀ ❀ ❀

तीसरा लाभ तो आपने और भी सुन्दर बतलाया है। आप लिखते हैं—'भारत में दिनों दिन नास्तिकता फैलती जा रही थी। साम्यवादी युवकों ने ईश्वर के विरुद्ध भारी आन्दोलन उठा रखा था, उसने उन्हें बता दिया कि मैं पूँजीपतियों का ही पक्षपाती नहीं हूँ। भूचाल के कारण यदि किसी का लाभ रहा है, तो वह मजूर ही हैं। ऊँचे महल गिरा दिये हैं, पर मजूर की फूस की झोपड़ी को जरा हानि न पहुँची।' यह तो इतने सुन्दर विचार हैं कि ईश्वर की इस कार्रवाई पर सहसा प्रसन्नता पैदा हो जाती है! कितना भला है वह ईश्वर, कि गरीबों की झोपड़ियों को तो रहने दिया और उनकी जमीन, उनके पशु, और उनकी खेती को चौपट कर दिया!

चौथा लाभ भी जरा देखिये। आप लिखते हैं—'पुराने सड़े गले मकान गिर पड़े हैं। पता नहीं उनमें कितनी भयंकर बीमारियों के कीटाणु जमा पड़े होंगे। उन्हे गिराना किसीके वश में नहीं था। सरकार या म्यूनिसिपैलिटियाँ गिरातीं, तो विरोध होता। अब स्वय सफाई होगई।' विनाशक सफाई हो गई, और ऐसी होगई कि अब शत वर्ष पर्यन्त भी ऐसी गन्दगी न होगी। काशी की म्यूनिसिपैलिटी या इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट भी अगर भूकम्प के देवता को मना ले, तो काशी की सफाई में बड़ी आसानी हो जाय!

❀ ❀ ❀

पाँचवाँ लाभ जो आपने बतलाया है, वह यह है कि 'सरकार और कांग्रेस में मिलाप हो गया है (!) कई साल से चेष्टा हो रही थी कि सरकार कांग्रेस की कोई बात सुने, पर सरकार सीधे मुंह बात ही न करती थी, पर अब दोनों पारस्परिक सहयोग से काम कर रहे हैं।' सचमुच खुरशंदश्री, आप के 'मिलाप' में अवश्य सरकार और कांग्रेस का मिलाप हो गया और अब स्वराज्य भी आप की गोद में रखा है! अगर अपने राम की राय में आप दो-चार ऐसे ही सुन्दर विचार-पूर्ण लेख लिख डालें, तो झख मार कर नोबलवाला पुरस्कार आपके पल्ले बँध जायगा!

—विचित्रानन्द

सहकारी सम्पादक—श्री प्रवासीलालवर्मा, मालवीय-द्वारा सरस्वती-प्रेस, काशी से मुद्रित और प्रकाशित।

जागरण

THE JAGARAN | सम्पादक—प्रेमचन्द | Illustrated Weekly

वर्ष २ | काशी, मि० चैत्र कृष्ण १२ सोमवार, सं० १९९० वि० : ता० १२ फरवरी सन् १९३४ ई० | अंक २९

स्वर्गीय श्री भारतेन्दुजी



आगामी वर्ष सन् १९३५ की ६ जनवरी आपके स्वर्गवास की ५०वीं तिथि होगी। केवल ९ मास शेष हैं। हिन्दी संसार को अभी से ध्यान देना चाहिए और भारतेन्दु अर्द्धशताब्दी उत्सव की तैयारी अभी से कर देनी चाहिए। विशेष पृष्ठ ५ पर।

अवगुण्ठन

छिपा कर रूप राशि अनमोल,
मृदुल निज अंचल में सुकुमार।
कर दिया क्यों नयनों की ओट,
रूप वह, क्रीड़ा के अवतार।
पान कर मृदुल माधुरी मंजु,
सखे! करते हो मधुर विहार।
कपोलों का कर मृदु स्पर्श,
कर रहे हो सुमधुर मनुहार।
चन्द्र पर कृष्ण घटा की भाँति,
अहो फैलाकर निज विस्तार।
कर दिया आच्छादित मुखचन्द्र,
नव वधू के हे प्रिय शृङ्गार।

कुमारी राजराजेश्वरी देवी 'नलिनी'

जागरण

मि० फाल्गुन बदी १२ सोमवार, सं० १९९० वि०

बजेट-१९३४

नई राजनीति में बजट का वही स्थान है, जो जीवन में विवाह का और मरण में श्राद्ध का। इसी धुरी पर सारी मशीनरी चलती है। विवाह में आतशबाजियाँ भी होंगी, लेकर भी बनेंगे, दावतें भी होंगी, नाच भी होगा, घर में रुपये हों या न हों। और कोई सहारा न हो तो महाजन तो है ही। श्राद्ध में भी बरतन, कपड़े, चारपाई, हाथी, घोड़, और शाक जुटाके सभी कुछ चाहिये। दुखी यजमान के पास है, या नहीं, इससे प्रयोजन नहीं। महापात्र स्वर्ग द्वार का रक्षक है। जब तक उसे खूब सन्तुष्ट न कर दिया जायगा, मृतात्मा प्रेत योनि में ही चक्कर काटती रहेगी। बजट में भी खर्च पहले रख लिया जाता है और तब उसे पूरा करने के लिये आमदनी का प्रबन्ध किया जाता है। आमदनी देखकर खर्च करना साधारण गृहस्थों का काम है। राजनीति में खर्च का तखमीना करके आमदनी का जुगाड़ किया जाता है। अगर आमदनी काफी नहीं है, तो कोई बात नहीं। प्रजा पर नए कर लगाए जा सकते हैं। प्रजा झक मारेगी और देगी। और कर भी होते हैं परोक्ष। चीनी पर कर बढ़ गया। चीनी अभी से मँहगी हो गई। आप खुद चीनी खाना छोड़ सकते हैं, लेकिन आप के घर में बच्चे हैं। वे शक्कर के बगैर एक दिन भी तो नहीं रह सकते। सबेरे उन्हें दूध के लिये शक्कर चाहिये, हलुवे के लिये शक्कर चाहिये। आप मँहगी चीनी लेने के लिये मजबूर हैं। अगर आपको चीनिया बेगम का सदव्यसन है, तो बिना चाय के आप को रात भर नींद न आएगी। और ब्रह्मभोज के लिये भी तो वही चीनी आवश्यक है, नहीं पितरों की मुक्ति कैसे होगी? दियासलाई पर भी कर बढ़ गया। बस दूकानदारों ने उसकी कीमत दूनी कर दी। धेले की चीज पैसे की हो गई। कर लगा २० फी सदी, दाम बढ़ गया १०० फी सदी। अमीरों के लिये कोई बात नहीं। जहाँ दो आने की सलाइयाँ जला डालते थे, वहाँ चार आने की सही। गरीबों की मरन है। खर्च में किसी तरह कमी नहीं हो सकती। फौज पर पचास करोड़ खर्च होता है। उसमें एक पाई भी कमी नहीं हो सकती। फौज की सैनिक शक्ति कम हो जायगी। पुलिस के खर्च में तो किफायत हो ही नहीं सकती। जनता की आमदनी आधी हो गई। सरकार का खर्च ज्यों-का त्यों है। इसका अर्थ इसके सिवा और क्या है कि पहले से कंगाल जनता अब और भी कष्ट झेले, और भी दाने को तरसे। उसके जीवन का उद्देश्य ही इसके सिवा और क्या है कि अपने हाकिमों की जेबें भरे। हाकिम तो हाकिम ठहरा। वह तो आराम से रहेगा, सरकार भी नीति और व्यवस्था की रक्षा करेगी। प्रजा को कष्ट होता है, तो हो। उसको सुनता ही कौन है। जमींदार उसका दुश्मन, साहूकार उसका दुश्मन, अहलकार उसका दुश्मन, फिर ऐसे अभागों पर सरकार ही क्यों दया करने लगी। चीनी पर कर बढ़ा लेकिन किसान को क्या फायदा हुआ। मिल मालिक अपनी चीनी मँहगी बेंचकर कमी पूरी कर लेगा। किसान कहीं का न रहा। सरकार अगर मिलों का नफा घटाना चाहती थी, तो उसे ऊख का निर्ख भी तय कर देना था और उस का दाम भी। मिल वाले तो मूछों पर ताव दे रहे हैं, पिट गए बेचारे गरीब गृहस्थ। सरकार का बस चलता, तो उसने अपने नमकख्वारों के वेतन का ५ फी सदी कटौता भी पूरी कर दी होती। बहती गंगा में हाथ धोना था, न जाने क्यों चूक गई। दस पाँच लाख रुपये क्या जनता से और न वसूल हो जाते। नमकख्वारों की दुआएँ मिल जातीं। क्या इन्सानियत और शराफत है कि प्रजा की आमदनी तो आधी रह गई पर सरकार के कर्मचारी ५ फी सैकड़ की कमी भी नहीं सह सकते।

और कहा जाता है, बजट बनाना बड़े दिमाग का काम है, और बजेट को बराबर कर देना अर्थनीति का एक चमत्कार है। हमें तो इसमें आश्चर्य कोई बात ही नहीं नजर आती। आमदनी खर्च के तखमीने से जहाँ कम हुई, चट से एक नया कर लगा दिया। इसमें रखा ही क्या है? अर्थनीति की सफलता बजट के बराबर करने में नहीं है, प्रजा की दशा के सुधार में है। उसके कष्टों को कम करने के लिये क्या किया जा रहा है? क्या यही नीति है कि ८ सेर गेहूँ या ४ सेर गुड़ के निर्ख पर जो लगान लिया जाता था, वही १६ सेर गेहूँ और १२ सेर गुड़ के निर्ख पर भी लिया जाय? सरकार क्यों नहीं सोचती कि उस वक्त का एक रुपया आज के कै रुपयों के बराबर है मगर वह क्यों इस झंझट में पड़े। मन भर का गेहूँ बिके तब भी किसान खेत जोतेगा और सरकार को तब भी लगान देगा। बला से वह भूखों मरेगा, नंगा रहेगा, उसके बच्चे दाने दाने को तरसेंगे। उसमें कष्ट सहने की अपार शक्ति है। वह भाग्यवादी है। और केवल जबान से नहीं, अन्तःकरण से। उसका भाग्यवाद सरकार का सबसे बड़ा टैक्स कलेक्टर है। वह अपने मरते हुए बालक के लिये एक पैसे की दवा भी नहीं खरीद सकता। जाड़े में ठिठुरता रहे, एक कम्बल नहीं ले सकता, लेकिन लगान के रुपए सौ जतन से छिपाए रहता है, ताकि जमींदार की गाली और डंडे न खाने पड़ें। आराजी से बेदखल न होना पड़े। जहाँ ऐसी जनता हो, वहाँ बजट को बराबर करना क्या मुश्किल है; मगर असेम्बली में भी और कौंसिलों में भी अर्थ विभाग के अध्यक्ष को उनकी कल्पनातीत सफलता पर खूब-खूब बधाइयाँ दी गईं और खूब खूब कसीदे पढ़े गए। और यह उस वक्त तक होता रहेगा, जब तक इन सभाओं में काँग्रेस का बहुमत न होगा।

सर मानिकजी दादाभाई की क़दरदानी

हिज एक्सलेंसी वायसराय को काउँसिल आफ स्टेट के प्रेसीडेंट सर मानिकजी दादाभाई ने उस दिन एक पार्टी में जो खुशनूदी की सनद प्रदान की उसकी शायद वायसराय को बिलकुल जरूरत न थी और न उससे वायसराय को कोई खास आनन्द मिला होगा, चाहे सर दादाभाई फूले न समाए हों। स्वामी अपने नौकर के मुँह से अपनी तारीफ सुनकर बहुत प्रसन्न नहीं होता और अगर वह प्रसन्न भी हो, क्योंकि आदमी को अपने कुत्ते का दुम हिलाना भी अच्छा ही लगता है, पर स्वामी के मुख पर उसकी बड़ाई करना सेवक को शोभा नहीं देता। हम आप से पूछते हैं भारत में ऐसी कौनसी बगावत फैली थी, जिसे वायसराय ने आकर शान्त कर दिया। भारत की दुखी आत्मा एक ऐसी व्यवस्था के लिये फरियाद कर रही थी, जिसमें उसकी भी कुछ आवाज हो, वह ऐसे प्रतिनिधि शासन के लिये सवाल का हाथ फैला रहा था, जिसमें उसकी दशा इतनी नगण्य न हो, वह राष्ट्रों की सभा में वही स्थान प्राप्त करना चाहती थी, जो अन्य राष्ट्रों को प्राप्त हैं, वह अपने लिये भी आत्मोन्नति की वही सुविधाएँ चाहती थी जो अन्य सभी राष्ट्रों को मिली हुई हैं, वह केवल अपने शासकों से यह सिद्धान्त मनवाना चाहती थी कि हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिये है, वह केवल देश की आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था को इस तरह सुधारना चाहता थी कि धन का यह प्रभुत्व दूर हो जाय और भारत और ब्रिटेन में शासक और शासित का सम्बन्ध न रहकर मैत्री का सम्बन्ध स्थापित हो जाय। किसी वायसराय की तारीफ इसमें थी कि वह भारत को उसके लक्ष्य के समीप पहुँचा देता। दमन से उसका मुँह बन्द कर देना, तो कोई बड़ी तारीफ की बात न थी और एक दरिद्र, निरस्त्र निरीह प्रजा को कुचल डालने में क्या गौरव है, यह हम नहीं समझ पाते। नमकहलाली बहुत अच्छी चीज है, बेशक, लेकिन औचित्य को क्यों भूलो!

जेल के नियमों में सुधार

बाबू शिवप्रसाद गुप्त देश के उन सर्वमान्य पुरुषों में हैं, जिन्होंने लक्ष्मी पुत्र होकर भी राष्ट्र के लिए बड़े-से बड़े त्याग किया है आप ने हाल में 'जेल के नियमों में सुधार' नाम का एक पैम्फलेट प्रकाशित कराकर जनता का ध्यान उन बुराइयों का ओर खींचा है, जो हमारे जेलों के लिए कलंक है, और कुछ ऐसी योजनाएँ पेश की हैं जिनसे जेलों की दशा बहुत कुछ सुधर सकती है। संसार के प्राय सभी देशों में यह सिद्धान्त मान लिया गया है कि जेल मनुष्य की दुर्बलताओं के सुधारने का एक साधन मात्र है, जिसमें एक नियतकाल तक रहने के बाद आदमी समाज का उपयोगी अंग बन सके, इसी सिद्धान्त के अनुसार जेलों के प्रबन्ध में भी इसलाह कर दी गई है। भारत में अभी तक जेल मनुष्य को कष्ट देने का स्थान समझा जाता है, और इसी दृष्टि से कैदियों के साथ पशुवत व्यवहार किया जाता है। बात बात पर गाली और मार, जरा जरा से कसूर पर लम्बी बेड़ी और काल कोठरी, खराब-से-खराब खाना, जलील से-ज-

ओल कपड़ा, यह हमारे जेलों की विशेषताएँ हैं। गुप्तजी का प्रस्ताव है कि जेलों को कारखाना समझा जाय और कैदियों को कुछ हुनर सिखाये जायँ और उनके काम की मजदूरी दी जाया करे। खाने का खर्च निकालकर जो बचे वह कैदी को अपनी इच्छानुसार खर्च करने का अधिकार रहे। आपने खाने, कपड़े, बरतन, शिक्षा, मनोरञ्जन, व्यायाम आदि के विषय में ऐसे प्रस्ताव किए हैं, जो थोड़े से ज्यादा खर्च से जेलों की काया पलट कर सकते हैं। गुप्तजी को कई बार, जेल-यात्रा का गौरव प्राप्त हो चुका है, और उन्होंने जो आयोजनाएँ पेश की हैं, वे उनके प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित हैं। और यदि गवर्नमेंट का दृष्टिकोण बदल जाय, तो और सारी बातें बड़ी आसानी से पैदा हो जायँगी।

बेकारी कैसे दूर हो

देश के सामने इस समय सबसे भीषण समस्या बेकारी है, विशेष करके शिक्षित वर्ग के। वायसराय साहब ने हाल में युनिवर्सिटी सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए इस विषय में जो विचार प्रकट किया, उससे आशा होती है कि शायद सरकार कोई क्रियात्मक आयोजन करे। आपने कहा, कितने ही होनहार छात्र तरह तरह के कष्ट झेलकर ऊँची-से-ऊँची परिक्षाएँ पास करते हैं, पर अपनी योग्यता का कोई उपयोग न पाकर निराश हो जाते हैं, और अक्सर बहक जाते हैं। युक्तप्रान्त की सरकार ने कुछ दिन हुए बेकारी के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक कमेटी बनाई थी, उसकी रिपोर्ट भी प्रकाशित हो गई है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इस समस्या की ओर से हमारे हुक्काम गाफिल हैं, लेकिन हो यह रहा है कि रोज कर्मचारियों को छाँट कर अलग किया जा रहा है। हजारों आदमी इस तरह बेकार हो गए। उधर नई नई कलें निकलती आरही हैं, जिनसे आदमियों का काम बड़ी किफायत से मशीनों द्वारा हो जाता है। अगर कहा जाय कि ऐसी मशीनें देश में आने ही न पावें तो दूसरे मुल्क वाले अपनी चीजें यहाँ भर देंगे और हम उनसे मुकाबला न कर सकेंगे। फिर सरकारी नौकरी के वेतन इतने ऊँचे रखे गए हैं कि युवकों को कम आमदनी की जगह जँचती ही नहीं। सभी नौकरियों पर टूटते हैं। फिर बेकारी कैसे दूर हो। उद्योग धन्धे खोलिए, लेकिन यहाँ भी बाहर की चीजों से मुकाबला है। फिर वही संरक्षण का प्रश्न आता है। माल की खपत नहीं होती और पूँजी भी गायब हो जाती है। इस बेकारी का एक ही इलाज है और वह स्वराज्य है। तभी नए नए उद्योग धन्धे खोले जा सकते हैं, वैज्ञानिक उपायों से पैदावार बढ़ाई जा सकती है, जहाजी कम्पनियाँ खोली जा सकती हैं। वर्तमान परिस्थिति में तो बेकारी का कोई इलाज नहीं नजर आता।

बिहार की परिस्थिति

समाचार पत्रों में यह पढ़कर हमें खेद हुआ था कि बिहार में अब तक देहातों की तरफ़ ध्यान नहीं दिया गया और सभी सहायक और सेवा-समितियाँ नगरों ही तक सीमित हैं। लेकिन, बिहार सेंट्रल रिलीफ़ कमेटी की ताजा रिपोर्ट देखने से मालूम होता है कि पहले चाहे ऐसी अवस्था रही हो, पर अब देहातों में भी मदद पहुँचाई जा रही है। तात्कालिक आवश्यकताएँ तो पूरी होती जाती हैं; लेकिन नई नई समस्याएँ खड़ी होती जाती हैं। उनमें सबसे विषम समस्या है बालू से पटी हुई जमीन को साफ करना, जानवरों के लिये चारे का प्रबन्ध करना और बाढ़ उसे रोकने का कोई उपाय निकालना। एक बीघा जमीन की सफाई में औसतन १०) खर्च होते हैं। अनुमान किया गया है कि २० लाख एकड़ जमीन खराब हो गई है। उसकी सफाई के लिये कितना धन दरकार होगा, इसका तखमीना किया जा सकता है। कई गाँवों में चारे की कमी से जानवर मरे जा रहे हैं, और अब किसानों ने निश्चय किया है कि उन्हें ऊख काटकर खिलाई जाय। शक्कर की मीलों के विध्वस हो जाने से ऊख का अब कोई ग्राहक नहीं रह गया और जो दो चार मिलें बाक़ी हैं, वह कौड़ियों के मोल ऊख लेना चाहती हैं। सरकार किसानों को बेलन मुहय्या करने का प्रबन्ध कर रही है, लेकिन भय है कि जब तक बेलन आए ऊख सूख न जाय। उधर बीमारियों के फैलने का भय भी हो रहा है। मालूम नहीं बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने आत्मनिर्भरता के लिये जो अपील की थी, उसका क्या असर हुआ, पर हमारा ख्याल है, जब तक सरकार कौड़ियों की तरह रुपये खर्च करने का प्रबन्ध न करेगी, बिहार का उद्धार होना मुश्किल है। दो चार महीने अन्न वस्त्र देने का प्रश्न होता तो वह चन्दों से पूरा हो जाता, लेकिन यहाँ तो चार पाँच जिलों के पुनर्निर्माण का प्रश्न है, दस-बीस लाख से हल नहीं हो सकता।

आल इंडिया स्वदेशी संघ

गत दिसम्बर में बंबई में आल-इंडिया स्वदेशी कार्य-कर्ताओं की जो सभा हुई था, उसमें स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार के लिये कई प्रस्तावों के साथ एक प्रस्ताव इस आशय का भी स्वीकृत हुआ कि स्वदेशी व्यवसाइयों ने संरक्षणों और जनता की स्वदेशी भावनाओं के बल पर खराब चीजें मँहगे दामों बेचकर जनता की जो लूट मचा रक्खी है, उसकी निन्दा की जाय और व्यवसायियों से अपील की जाय कि वे संरक्षणों के लाभ में गाहकों को भी शरीक करें, अर्थात् सस्ता माल बेचें। इसके साथ ही मजूरों के साथ उचित व्यवहार करें।

अब तक स्वदेशी संघ के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं है कि वह स्वदेशी व्यवसायियों की आमदनी और खर्च की जाँच कर सके तब तक यह व्यवसायी यों ही अंधेर मचाते रहेंगे। जिसे देखिए संरक्षण का लूट मचा रहा है। इसका यह आशय कदापि नहीं हो सकता कि हमारे यहाँ मजूरी की दर ज्यादा है या कच्चा माल मँहगा है। फिर संरक्षण क्यों?

'भारतेन्दु'—अर्द्धशताब्दी

लेखक—श्रीयुत शिवपूजनसहाय

आधुनिक हिन्दी-साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की पचासवीं निधन तिथि आगामी माघ की छठी जनवरी (१९३५) को पड़ेगी। सन् १८८५ की छठी जनवरी को उनका स्वर्गवास हुआ था। पचास वर्ष पूरे होने में सिर्फ नव महीने की देर है। भारतेन्दुजी के समान अमर साहित्य विधाता की अर्द्धशताब्दी मनाने का आयोजन करने के लिए नव महीने सिर्फ नव दिन के बराबर हैं। काम बहुत ही बड़ा है और समय बहुत ही कम। यदि इन नव महीनों का प्रत्येक दिन भली भाँति काम में लाया जाय, तो सम्भव है कि भारतेन्दुजी की अमर कीर्ति और प्रतिष्ठा के अनुकूल अर्द्धशताब्दी का महोत्सव सम्पन्न हो।

हिन्दी संसार में अभी तक इस बात की कोई चर्चा नहीं छिड़ी है। काशी से ही इस शुभ चर्चा का श्रीगणेश होना चाहिए। अर्द्धशताब्दी-महोत्सव का प्रधान केन्द्र काशी ही हो सकती है। भारतेन्दुजी पर समस्त हिन्दी-संसार का समान अधिकार है, किन्तु उन पर काशी की ममता सबसे अधिक है। काशी ही उनकी जन्मभूमि और कर्मभूमि है। उनकी साहित्य सेवा के गौरव का सेहरा काशी ही के सिर पर बँधा है। काशी वासियों को यदि सचमुच उनपर गर्व है, तो वे अपने गर्व को सार्थक कर दिखावें। काशी में उनका परिवार बड़ा उज्ज्वल है, उसमें उच्च शिक्षा प्राप्त कई होनहार और उत्साही युवक हैं, जिनमें साहित्यानुराग की भी कमी नहीं है। उन लोगों का एकदम चुप रहना शोभा नहीं देता।

भारतेन्दुजी के दौहित्र बाबू ब्रजरत्नदासजी, बी० ए०, एल्-एल्० बी० हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखक हैं। फारसी और इतिहास के वह मर्मज्ञ विद्वान् हैं। वकालत का पेशा अच्छी तरह चलाते हुए भी साहित्यसेवा के महत्वपूर्ण कार्य करते ही रहते हैं। सुना है कि उन्होंने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के सामने एक प्रस्ताव रखा है, उसमें भारतेन्दुजी की समस्त रचनाओं को सुसम्पादित ग्रन्थावली का सुसज्जित रूप देने की योजना उपस्थित की गई है। यह भी सुनने में आया है कि 'सभा' के जीवन सर्वस्व श्रीमान् बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने इस प्रस्ताव को बहुत पसन्द किया है। यदि यह बात सच है, और इसके सच होने में किसी प्रकार का सन्देह भी नहीं होता, तो आशा की उज्ज्वल किरणें स्पष्ट दीख रही हैं।

काशी-नागरी प्रचारिणी सभा हिंदी की सबसे बड़ी संस्था है। पुरानी, प्रतिष्ठित और प्रभावशालिनी है। सजीव, सम्पन्न और समर्थ भी है। उसके सिवा काशी में ऐसी कोई साहित्यिक संस्था नहीं, जो अर्द्धशताब्दी-महोत्सव को विधिवत् सम्पन्न कर सके। काशी में एक-से एक धुरन्धर साहित्यसेवी हैं, वे बड़े यशस्वी और लोकप्रिय भी हैं, पर साहित्य सेवियों की अपील पर जनता विशेष ध्यान न देगी। ऐसे महान् कार्यों में 'सभा' सरीखी संस्था को ही अग्रसर होना चाहिए। सभा को देश-भर से सहायता मिल सकती है। काशी के नागरिकों पर भी केवल सभा का ही प्रभाव पड़ सकता है। काशी के निवासी इस काम में अनेक प्रकार से सभा की सहायता कर सकते हैं। काशी वासियों की ओर से सभा को हर तरह का आश्वासन और सहयोग मिलना चाहिए। समय निकला जा रहा है, चुप बैठे रहने से काशी ही की भद्द होगी।

इस दिशा में पत्रकारों का भी कुछ कर्त्तव्य है। पत्रसम्पादकों की कृपा से ही इस काम के योग्य क्षेत्र तैयार हो सकता है। सरस्वती, माधुरी, चाँद, विशाल भारत, विश्वमित्र, भारती, गंगा, वीणा, सुधा, प्रताप, कर्मवीर, अभ्युदय, स्वराज्य, आर्यमित्र, चित्रपट, आज, अर्जुन, भारत, हिन्दी मिलाप, नवयुग, राष्ट्रबन्धु, स्वाधीन भारत आदि प्रमुख पत्र पत्रिकाओं के सुयोग्य सम्पादकों को शीघ्र ही भारतेन्दु-अर्द्धशताब्दी का आन्दोलन उठाना चाहिए। अजमेर में श्रीमद्दयानन्द अर्द्धशताब्दी मनाने के लिए आर्यसमाजी भाइयों ने महीनों पहले से पत्रपत्रिकाओं में आन्दोलन मचा रखा था, इसी लिए वह महोत्सव बड़ी सफलता से सम्पन्न भी हुआ। कलकत्ते में श्रीराममोहनशताब्दी मनाने के लिए बंगाली भाइयों ने भी वैसा ही किया था। राममोहन शताब्दी कितने समारोह और उत्साह से मनाई गई, यह बतलाने के लिए एक वृहत् स्वतंत्र लेख की आवश्यकता है। यहाँ इन महोत्सवों के संकेत का अभिप्राय स्पष्ट है।

हिन्दी के लेखकों और कवियों को भी इधर ध्यान देना चाहिए। पत्र सम्पादकों को उन्हीं से उत्तेजना मिलेगी। हिन्दी पर भारतेन्दुजी ने सर्वस्व निछावर कर दिया था। यदि हम उनकी पचासवीं शताब्दी धूमधाम से न मना सके, तो अगले पचास वर्षों तक पछताना पड़ेगा। हिन्दी की लाज रखने का सवाल पेश है, हम यदि समय रहते चेत गये, तो राष्ट्रभाषा की ओर अन्यप्रान्तीय भाषाओं के साहित्यसेवी बड़े सम्मान की दृष्टि डालेंगे। गुजराती भाषा के साहित्यानुरागियों ने विराट् आयोजन के साथ 'नर्मद' शताब्दी मनाकर जो आदर्श उपस्थित किया है, उससे क्या हम कुछ भी शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते? हमें भी अपने सर्वमान्य साहित्य विधाता का—उपयुक्त अवसर पर—उचित सम्मान करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

भारतेन्दु अर्द्धशताब्दी का महोत्सव देश भर में मनाया जाना चाहिए। सब स्थानों की हिन्दी सम्बन्धिनी संस्थाएँ इसके लिए स्वयं भी तैयारी करें और काशी-नागरी प्रचारिणी सभा को भी अपने सहयोग एवं साहाय्य से उत्साहित करने में प्रवृत्त हों। चूँकि अखिल भारतीय महोत्सव का मुख्य केन्द्र काशी में ही होना चाहिए—और वही शोभाप्रद भी है इसलिए समस्त हिन्दी-संसार की सहानुभूति एवं सहायता का प्रधान केन्द्र भी वही रहे, तभी वास्तविक सफलता प्राप्त होगी। यदि सब लोग इस महोत्सव की आवश्यकता समझते हों, तो शीघ्र ही साहित्य संसार में आन्दोलन मचाना शुरू करें। जिसको जो स्कीम सूझ पड़े, पत्रों में शीघ्र प्रकाशित कर दे। साहित्यिक संस्थाएँ भी आर्यसमाज की संस्थाओं का उच्च आदर्श सामने रख लें। श्रीमद्दयानन्द-अर्द्धशताब्दी में देश विदेश की आर्य-संस्थाओं ने खूब श्रद्धांजलि भेजी थी। सामूहिक सहयोग से बड़े-बड़े काम भी आसानी से सिद्ध हो जाते हैं। प्रवासी हिन्दी प्रेमियों में भी यह सन्देश पहुँचाना चाहिए।

वीर पूजा (Hero worship) का भाव ही किसी जाति के जीवन का चिह्न है। किसी को यह कहने का अवसर न मिलना चाहिए कि हम हिन्दीभाषाभाषियों में वीर पूजा का भाव नहीं है। यदि हम भारतेन्दुजी को साहित्य-क्षेत्र का उद्भट महारथी मानते हैं, तो हमें उनके प्रति अपने कर्तव्य का भी पालन करना चाहिए। विश्वास है कि हिन्दी संसार सजग होकर इस महोत्सव को सफलता के लिए प्रयत्न करेगा। ऐसा तो कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता कि भारतेन्दु अर्द्धशताब्दी का महोत्सव मनाया जाय या नहीं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा जब सम्पूर्ण भारतेन्दु ग्रंथावली निकालने का विचार कर रही है, तब इस बात पर भी अवश्य ही विचार कर रही होगी कि सभा की ओर से सार्वदेशिक महोत्सव का भी आयोजन किया जाय, किन्तु सभा के इस सदुद्योग में समस्त हिन्दी जगत की श्रद्धा और शक्ति का कुछ अंश अर्पित होना चाहिए। शुभस्य शीघ्रम्!

पी० ई० एन० ❋

एक अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य-संस्था

[पी० ई० एन० क्या है, उसका कार्य और उद्देश्य क्या है, यह इस लेख से प्रकट होगा। हम श्री किशनसिंह चावड़ा के कृतज्ञ हैं, कि उन्होंने हिन्दी संसार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है।—सम्पादक-जागरण]

गत वर्ष हमारे देश में साहित्य की दृष्टि से एक महत्त्व की बात हुई है और वह है—साहित्यिकों की विश्व विख्यात राष्ट्रीय संस्था पी० ई० एन० की स्थापना। यह संस्था, संसार के विख्यात कवि, सम्पादक, नाटककार उपन्यासकार, लेखक और समालोचकों का एक संघटन है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्कार समन्वय की दृष्टि से, इस महत्त्वपूर्ण संस्था का केन्द्र भारतवर्ष में स्थापन करने के लिये बम्बई की श्रीमती सोफिया वाडिया वास्तव में धन्यवाद की पात्रा हैं। पी० ई० एन० के इस भारतीय केन्द्र का सभापतित्व कविवर श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वीकार किया है। श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री रामानन्द चटर्जी और सर आराधा कृष्ण उपसभापति बने हैं।

पी० ई० एन० की स्थापना लन्दन में सन् १९२१ के अक्टूबर मास में, मिसेज डॉसन स्कॉट ने की थी, और आज संसार के ३७ देशों में पचास से अधिक इसके केन्द्र स्थापित हो गये हैं। विश्व विख्यात अंग्रेज साहित्यकार, नोबल पुरस्कार के पाने वाले श्री जॉन गाल्सवर्दी ने सर्व प्रथम इसका सभापति बनकर प्रारम्भ से ही इस संस्था की प्रतिष्ठा और प्रतिभा को विशेषता प्रदान कर दी थी और आज उनकी मृत्यु के बाद भी, इंगलैण्ड के अर्वाचीन श्रेष्ठ और समर्थ साहित्यकार श्री एच० जी० वेल्स ने इस संस्था का सभापतित्व स्वीकार किया है। जॉन गाल्सवर्दी ने अपनी मृत्यु के पूर्व नोबल प्राइज के ९००० पौंड यानी सवा लाख रुपया, पी० ई० एन० को भेंट कर देने की इच्छा प्रकट की थी, और इसके लिये उन्होंने एक दान पत्र भी बनाया था पर हस्ताक्षर करने के पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई। किन्तु, उनके कुटुम्बियों ने, वह रकम पी० ई० एन० को देने की योग्य व्यवस्था करके स्वर्गीय गाल्सवर्दी की अन्तिम इच्छा की पूर्ति कर दी।

पी० ई० एन० का राजनीति से जरा भी सरोकार नहीं है, वह केवल एक मात्र साहित्यिकों की ही संस्था है। किसी भी एक केन्द्र का सभासद प्रत्येक केन्द्र का सभासद माना जाता है। कारण, कि इस सरलता से विभिन्न देशों के साहित्यकारों को यह लाभ होता है, कि जब वे विविध देशों का भ्रमण पर्यटन करते हैं, तो जहाँ जहाँ पी० ई० एन० का केन्द्र होता है, वहाँ वहाँ किसी प्रकार के कष्ट या मनोवेदना के बिना, संस्कार और साहित्य पर दिल खोलकर परस्पर वार्तालाप हो सकता है और इस प्रकार अनेक भ्रम और अज्ञान दूर होने का अवसर मिलता है। पी० ई० एन० का अन्तर्राष्ट्रीय वार्षिक सम्मेलन प्रतिवर्ष विभिन्न देशों में होता है और और वहाँ सर्जनात्मक दृष्टि से साहित्य की चर्चा की जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्कार समन्वय और परिचय के लिये सम्भव और सहृदय प्रयत्न किये जाते हैं। ऐसे वार्षिक सम्मेलन अभी तक न्यूयार्क, पेरिस, बर्लिन, ब्रसेल्स, ओस्लो, वियेना, वारसो, हेग, बुडापेस्ट और गत वर्ष युगोस्लाविया में हुए हैं। भारतीय केन्द्र के स्थापित हो जाने पर अब भारत को भी अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार संसार के साहित्य और संस्कारिता में भारतवर्ष ने अपना प्रतिनिधित्व सन्निविष्ट कर लिया है। आज अँगुलियों पर गिने जाने लायक साहित्यिकों को ही दुनिया जानती है और भारत के भिन्न भिन्न प्रान्त उसकी संस्कारिता के जो भिन्न भिन्न रूप बना रहे हैं, उनसे तो दुनिया बिल्कुल ही अपरिचित है। हमारे देश के विभिन्न प्रान्तों में पिछले दस पन्द्रह वर्षों से, जो प्रगतिशील और प्रयोगशील सृजन प्रवाह वहन हो रहा है और उन सब विविध प्रवाहों में से भारतीय संस्कृति का जो विशिष्ट और नूतन रूप घटित हो रहा है, दुनिया को उसका ज्ञान कराने की अनिवार्य आवश्यकता है, अर्थात्—'भारतवर्ष गुलाम देश है और वहाँ साहित्य, कला या संस्कार जैसी वस्तु बहुत ही कम है।'—इस भ्रममूलक धारणा को नष्ट करके भारतीय संस्कारिता का उज्ज्वल और मौलिक रूप प्रकट करने का अवसर क्यों कर जाने देना चाहिये। पी० ई० एन० का भारतीय केन्द्र इस आवश्यकता और कमी की पूर्ति के लिये ही स्थापित किया गया है।

पी० ई० एन० का सामान्य उद्देश्य, ब्रसेल्स वाले अधिवेशन में बेलजीयन, अंग्रेज फ्रेंच और जर्मन प्रतिनिधियों ने निम्न लिखित प्रस्तावों के द्वारा प्रकट किया था और वह सर्वानुमति से स्वीकृत हुआ था—

१—साहित्य, मूल में चाहे राष्ट्रीय हो, पर वह स्थूल सीमा वाला नहीं मालूम होता। राजनीतिक और अन्तर्राष्ट्रीय उथल-पुथल के समय भी वह प्रजा की सामान्य सम्पत्ति की तरह ही होना चाहिए।

२—सभी संयोगों में, और खास कर युद्ध के समय, कला के साधन, मानव जाति की पैतृक सम्पत्ति और वंशपरंपरागत स्वत्व की तरह, राष्ट्रीय और राजनीतिक आवेश से बिल्कुल मुक्त और अक्षुण्ण रहना चाहिए।

३—पी० ई० एन० के सदस्य अपनी सारी चिन्तना और शक्ति जन समाज का सच्चा ज्ञान और परस्पर का सम्मान सुरक्षित रखने और बढ़ाने में व्यय करेंगे।

जर्मनी की नवीन राजनीतिक परिस्थिति के कारण केवल ज्यू लोगों को ही कष्ट नहीं सहन करना पड़ा, बल्कि आइन्स्टीन जैसे विश्वविख्यात विचारक और फाइट वामर, लुडवीग, मान, रेमार्क टोलर और वेरटेल जैसे प्रसिद्ध लेखकों को भी पाशविक व्यवहार का भोग बनना पड़ा है, इसके लिये पी० ई० एन० के अमेरिकन केंद्र का निम्न लिखित विशेष प्रस्ताव सर्वानुमति से पास करके जर्मनी भेजा गया था—

'मनुष्य की आत्मा को पतित करने वाला सोवीयनीज्म आज संसार में पुनः दिखाई दे रहा है, जो अपने ही भाइयों को हैरान और परीशान कर डालता है और उनकी उदारता, कुलीनता और बुद्धि को लूट लेता है। मानवता को अज्ञान, वैर, ईर्ष्या और भय का आखेट होने से बचा कर आत्मिक स्वाधीनता की रक्षा करना कलाकारों का मुख्य कर्तव्य है, इस लिये हम पी० ई० एन० अमेरिकन केन्द्र के सदस्य गण, संसार के प्रत्येक पी० ई० एन० के केन्द्रों को आह्वान करते हैं कि उन्होंने इस संस्था को जिन मूल सिद्धान्तों पर स्थापित किया है, उन्हें वे फिर से जगत् के प्रांगण में प्रकट करें और सन् १९२७ ई० में ब्रुसेल्स में हुए पंचम अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन में अंग्रेज, फ्रेंच, जर्मन और बेल्जियन प्रतिनिधियों-द्वारा प्रस्तावित और सर्व सम्मति से स्वीकृत तीनों प्रस्तावों की फिर से आवृत्ति करके उन पर जनता और उनके प्रत्येक नेताओं का ध्यान आकर्षित करें।

हम अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् को आग्रह पूर्वक सूचित कर देना चाहते हैं, कि स्वतन्त्र पी० ई० एन० केन्द्रों को, जो जनता और जातियों के बीच सच्ची सहानुभूति और सद्भाव बढ़ाने के लिये स्थापित हुये हैं, उन्हें सोवीयनीज्म, जाति विद्वेष और राजनीतिक मनोवेदना के नाम पर होने वाले अत्याचारों का बचाव करने के अस्त्रों की तरह काम में लाने से रोकना चाहिये।'

इसके सिवा गत बार पी० ई० एन० के वार्षिक सम्मेलन के सभापति पद से श्री एच० जी० वेल्स ने, जर्मनी के उन पाशविक और असंस्कृत व्यवहार के विरुद्ध जो आवाज उठाई थी, उसका बड़ा ही सुन्दर प्रभाव हुआ था।

भारतीय केन्द्र के संचालकों की यह अभिलाषा है, कि भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के साहित्य सृजन को, उसके वास्तविक रूप और मूल्य में, विश्व साहित्य में रखकर, फैले हुये भ्रमों और मनोवेदनाओं को दूर कर। इससे हमारे देश में भी जो कुछ ऐसी बुराई होगी, वह भी अपने आप धुल जायगी। इस कार्य को सरलता से करने के लिये, इस केन्द्र के मुखपत्र के रूप में सामयिक पत्र प्रकाशित करने और विभिन्न प्रान्तों में एक-एक उपकेन्द्र स्थापित करने की, इसके कार्य-वाहकों की बड़ी इच्छा है। ऐसे सामयिक पत्र का प्रथम अंक सन् १९३४ ई० के प्रारम्भ में ही प्रकाशित करने की धारणा है। प्रथमांक में लन्दन के मुख्य कार्य वाहकों के सन्देश, भारतीय केन्द्र के सभापति श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर और अन्य कार्यकर्ताओं के विचार और एक के बाद एक प्रान्तीय संस्कार प्रवाह का परिचय और विकास प्रकाशित करने की योजना है। यह योजना भी की गई है कि यह पत्र भारतीय केन्द्र के सदस्यों को मुफ्त में दिया जाय। इस प्रकार प्रान्तों का परस्पर परिचय और सहयोग सजीव, ताजा और भ्रम रहित रहेगा और इन सब का समग्र और सजीव प्रवाह इस केन्द्र द्वारा वाचा और स्वरूप धारण करेगा। इस प्रकार यह पत्र भारतीय संस्कार का प्रतिनिधि बन कर अन्तर्राष्ट्रीय जीवन विचार और संस्कार समन्वय में अपना मूल्यवान जीवन अर्पण करेगा, इसलिये यह कार्य प्रत्येक प्रान्त का सक्रिय सहयोग और सहृदय साहाय्य चाहता है और यह सब इस केन्द्र के विकास, विस्तार और चिरजीविता के लिये अनिवार्य हैं। हिन्दी-साहित्यकारों को इस काम के लिये हृदय से सहायता करनी चाहिये। इसके लिये मैं आग्रह पूर्वक विनय करता हूँ और मुझे आशा है, कि मेरी प्रार्थना अरण्यरोदन के समान न होगी।❋

❋ P अर्थात् Play wrights और Poets E अर्थात् Editors और Essayists और N अर्थात् Novelists,

❋ अधिक जानकारी के लिये—'मंत्री P E N India Centre हॉलकेस्ट, पेडर रोड, बम्बई, ६' को लिखना चाहिए।

स्पृश्यास्पृश्य तथा देव - दर्शन - मीमांसा

लेखक—स्वामी रामचरणशरण

खान-पान सम्बन्धी बातों को लीजिए—मिष्टान्न वा पक्वान्न बेचने वाले दूकानदार 'हलवाई'—लोगों के हाथों को, सभी वर्णोपवर्णों—जिन में अस्पृश्य माने जाने वाले न केवल हिन्दू ही, प्रत्युत यवन, क्रिश्चियन, प्रभृति सभी जाति के बन्धु मिठाई-आदि पदार्थ क्रय करते समय दिन भर छूते रहते हैं और उनके छुए-हुए हाथों से खरीदी हुईं मिठाई लेकर उच्च-वर्णों के प्रायः हिन्दू-आर्य रात्रिंदिवा रसना-तर्पण करते रहते हैं, उन्हें, उस मिठाई से मनस्तृप्ति करते कभी भी यह ध्यान नहीं आता कि 'हमने हलवाई के हाथों मिठाई खाने के रूप में सभी यवन, क्रिश्चियन आदि बन्धुओं के कर-कमलों की छूई हुई मिठाई खाई है और हमें इसके उपलक्ष्य में किसी रूप में प्रायश्चित्त करना चाहिए।' वर्तमान युग में 'चाह' और 'सोडा' कैसी अहर्निश उपयोग की वस्तु है, यह बात ज्ञाताओं से छपी हुई नहीं। प्यालियों में चाह और बोतलों मे सजल-सोडा कौन पूरित करता है; किस-किस जाति के स्त्री-पुरुष—सदाचारी और दुराचारी, रोगी और नीरोगी, यवन और क्रिश्चियन, द्विज और दलित—किस बेतकल्लुफी से दुर्गन्ध और सुगन्ध वाले मुखारविन्दों में लगाकर, उन प्यालियों और बोतलों के मुखों को अपने-अपने लालाद्रव से समार्द्रित करते हैं, सर्वोच्छिष्टीकृत महाप्रशुद्ध जल-स्थाली (टब) में डुबो कर फिर उन्हीं में पेय-पदार्थ भर कर सभ्यजनों के समक्ष रख देते हैं; ये बातें आज परदे में नहीं हैं। आज दिगन्त-कीर्ति वाचाल पण्डित-मण्डली स्वयं उक्त-चीजों का सेवन करते कुछ सोचे! अभी भी कुछ धर्म-स्तम्भ पण्डित-प्रवर उक्त वस्तुओं को छोड़े हुए हैं, पर कहीं उनके कन्हैया-से कुँवर स्कूलों और कॉलेजो की कन्दराओं से निकलते-घुसते, मन-चुराने वाली बस्तियों में घूमते-फिरते, उपरिनिर्दिष्ट चीजों पर छापा मारते रहते हैं और ज्ञात होने पर भी अपने लाल मरालों को किसी पातक से—किसी भी दोष-दूषण से—पातकी वा दोषी नहीं करार देते। इन सब की परिधि पार करने पर एक धाम और है, जिसमें छूत-छात के भूत-प्रेतों की आसानी से अन्त्येष्टि हो जाती है और सोचने वाले के स्वान्त मे आगे को राई-रत्ती शंका नहीं रहती, जहाँ गए बिना सुख-शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती और न मनुष्य इच्छा रखता हुआ भी जिसके बिना मोक्ष-पद पा सकता है, जिसके बिना—अखिल बात तो यह है, कि—मनुष्य की गति हो नहीं सकती। बताएँ—वह धाम कौन है? वह है—'हस्पताल'। हस्पताल में कर्मचारी किस-किस जाति के होते हैं; वहाँ के तरल पेय-पदार्थों में किन-किन लोगों के हाथ लगे होते हैं, क्या ये भी लिख कर ही बताने की बातें हैं? रोगी बन कर जाने वालों की महा-दीन और सतृष्ण आँखें हस्पताल के प्रत्येक कर्मचारी को 'अतिशयेन महान्' किंवा 'महत्तर' ही देखती हैं और केवल-मात्र देखतीं ही नहीं, प्रत्युत उनसे साहाय्य भिक्षा माँगती हैं। इतना होने पर भी तमाशा यह है, कि हम हस्पताल से बाहर निकल कर, किसी गरीब के पास खड़े होकर, बिना उसकी जन्म-जाति पूछे, उससे बातें करनी पसन्द नहीं करते! ऐसे स्थानों पर पहुँच कर, स्वास्थ्य-लाभ करने के पश्चात् प्रायश्चित्त की बात याद आती है या नहीं, यह हमें विदित नहीं।

पवित्रता को ध्यान में रख कर, यदि देखा जाय, तो नल-जल, चमड़ा है। धर्म भी नल के भीतर कसा लगता है। कच्चे-चर्म का जल निस्संकोच आज सब कामों में आता है। आज, यह हिन्दू-संस्कृति को, धर्म-कर्म को, आचार-विचार को—किसी को भी—लेश-भर बिगाड़ देने में समर्थ नहीं। काश्मीर और सिन्ध प्रदेश के ब्राह्मणादि-जातियों के लोग प्रायः यवनों के हाथ का जल-ग्रहण करते हैं। राजस्थान के अन्तर्गत जोधपुर, बीकानेर और शेखावाटी आदि कई भू-क्षेत्रों में वीर बहादुर राजपूतों (क्षत्रियो) के यहाँ पानी भरने वाले प्राय. मुसल्मान-बन्धु ही रखे जाते हैं। खास कर बीकानेर-राजधानी (शहर) में तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि उच्चात्युच्च-वर्णों के हिन्दू बन्धु मुसलमान-भाई से ही पानी की पखाल अपने जल-घटों में खाली करा कर, उस पखाल-जल से जीवन-यात्रा चालू रखते हैं। अनेक राजपूतो के यहाँ पाचक (बावर्ची) का काम भी यवन-बान्धव ही करते हैं। यहाँ यह बता देना अनुचित न होगा कि यवन-लोग अपने धर्म-शास्त्र की आज्ञानुसार कठिन-पुरीष आने पर गुद-प्रक्षालन नहीं भी करते हैं। ऐसा करना उनके यहाँ कोई भ्रष्टाचार में दाखिल नहीं। 'न नीचो यवनात्परः'—ऐसा कुढंग अलाप अलापने वाले शास्त्र-गर्वित धर्माचार्यों की विशाल-बुद्धि उक्त परिस्थिति के सम्बन्ध में व्यवस्था-निश्चय करने को विन्ध्य की किस गुहा में जा कर अचल हो गई, यह विदित नहीं। हाँ, देहात के कूप-तालाब-बाव्यादि जलाशयों से कौन-कौन लोग जल-ग्रहण करने के अधिकारी हैं, इस प्रकार की जब चर्चा चलने लगती है तब अगम व्यंगों की गहन-गुहाओं से निकल निकल कर अपनी-अपनी व्यवस्था-पत्री लिये, टिड्डी-दल के समान व्यवस्थापक दल दसों-दिशाओं को आ घेरता है! 'धर्म ध्वजित्व' होना इसका नाम है!! यदि कोई अप्रसन्न न हो, तो मैं यह कहने की धृष्टता करूँ कि आधुनिक सनातनधर्मियों की सभ्यता का यह नमूना है!!!

नेपाल, मिथिला (बिहार), बंगाल, आसाम, ब्रह्मा, उत्कल, मद्रास, सिन्ध, पंजाब और काश्मीर प्रदेशों में ब्राह्मण-लोग पर्याप्त-मात्रा में 'न मांस भक्षणे दोषो, न मद्ये, न च' इस शास्त्रीय आज्ञानुसार सब ही निषिद्ध, और घृणित पदार्थ खाते-पीते हैं। 'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः' 'गुरु' कहला कर, ऐसा दुष्कर-कर्म ब्राह्मण करते हैं, और ब्राह्मण भी 'अपठित' नहीं; पठित और प्रकाण्ड-पण्डित, जो मद्य-मांसाहार की उपयोगिता और निर्दोषिता में सैकड़ों संस्कृत-वचन बोलने को—उस के मण्डन में अनेक प्रमाण देने को—हर समय तैयार हैं। एक ओर, दुर्बल-बन्धुओं को इस कारण 'अस्पृश्य' बतलाया जाता है कि वे मृत-जीव का मांस खाते हैं। दूसरी ओर वही शास्त्री-आचार्य महोदय मृतक-मांस न खा कर, जीवित-जानवर वध करने में नहीं चूकते। यह तो हुई खाने-पीने के सम्बन्ध की बात। 'मल शुद्ध करना' भी अस्पृश्यों के अस्पृश्य होने का कारण बताया जाता है। इस सम्बन्ध में शास्त्री और धर्माचार्य महोदय पहले अपने घरों की प्रबन्ध-व्यवस्था देखें। उनकी कुल-देवियाँ बाल-बच्चो की, रोगी-जनों की, टट्टी स्वयं हाथों उठा कर फेंकती हैं। घर के आँगन के सारे मल को मार्जनी लगा कर साफ करती हैं, घर की नालियाँ स्वयं धो कर शुद्ध करती हैं और वेही शुद्ध होकर, उनके भोजन-सम्पादन में लग जाती हैं, पूजा पात्र शुद्ध करती हैं। यदि वे एक दिन उनकी सेवा-सपर्या से न-कार कर दें, तो महाराज के सारे मजे मिट्टी में मिल जायँ। इसी मल शुद्धि के काम को, धर्माचार्यों की धर्मचरियाँ घड़ी-घड़ी और प्रहर-प्रहर मे करती हुई महाराज की दृष्टि में शुद्ध रहती हैं। बाल बच्चेदार घरों मे घड़ी-घड़ी और प्रहर-प्रहर में माताएँ मल उठा-उठा कर फेंकती रहती हैं, और सदा-सर्वदा शुद्ध समझी जाती हैं, अस्पृश्या नहीं गिनी जातीं। उसी (मल-शोधन) के कर्म से निवृत्त होकर, हरिजन यदि त्रिलोक-पावनी भगवती भागीरथी में भी स्नान करले, तो धर्माचार्यों की दृष्टि में वह शुद्ध नहीं हो सकता! देव-पूजन तो अलग रहा, देव-दर्शन करने-योग्य भी नहीं हो सकता! कितना आश्चर्य है? कितने शोक की बात है?

हरिद्वार, प्रयाग प्रभृति बड़े-बड़े कुम्भ मेलों पर बड़े-बड़े साधु-सन्त-महन्त अपनी ठाकुर-मूर्तियों को बटुआ और बकसा में बन्द करके ले जाते हैं। वहाँ आम सड़कों पर सिंहासनों में विराजे रखते हैं। ब्राह्मण से लेकर, यवन-क्रिश्चियन पर्यंत, सभी राही लोगों की चरणदासियों (जूतियों) की अपवित्र-रज उड़ कर, क्या वहाँ उन प्रतिमाओं तक नहीं पहुँचती है और क्या उस उपानद्धूलि से भगवान् की प्रतिमाएँ अणु-भर भी अपवित्र नहीं होतीं? देशी-राज्यो में और अनेक तीर्थ-देशों में बड़ी पुष्कल जागीर वाले और आमदनी वाले ऐसे हरि मन्दिर अभी भी विद्यमान हैं, जहाँ गो-मांस-भक्षिका यवनी वेश्याएँ और उनके साथ मद्यप, मांसादि, व्यभिचारी, वेश्यागामी, चोर तथा अनेक भाँति के कलुषित पुरुष खास निज-मन्दिर तक पहुँचते हैं, अनेक लम्पट-पुरुष दर्शन-काल में दर्शनार्थ आई हुई स्त्रियो के साथ कुसम्बन्ध डालने की चेष्टाएँ करने को मन्दिर में पहुँचते हैं, मन्दिर में अनेक अशुद्ध पदार्थ (जैसे मोमबत्ती और बिजली की वह बत्तियाँ जिनका कनेक्शन रईसो की टट्टियों तक से होता है) खास निज-मन्दिर तक पहुँचे रहते हैं। परन्तु इन किसी से भी देव-मन्दिर अपवित्र नहीं होता। (क्रमशः)

बेकारी का प्रसार

लेखक—श्रीयुत यज्ञदत्त शुक्ल, बी॰ ए॰

हाँ, तो बेकार और उद्यमहीन मनुष्यों का भी कोई त्राता होना चाहिए। धन्य हैं वे देश, जहाँ कुछ न-कुछ इनकी रक्षा का प्रबन्ध किया जाता है। वास्तव में इनके पालन-पोषण का या इन्हें काम में लगाने का उत्तरदायित्व सम्पूर्ण समाज पर है। अतएव, सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए, जिसमें जीवन यात्रा का साधारण कष्ट किसी को न हो। पाश्चात्य देशों में बेकारों का कष्ट निवारण करने के हेतु तीन प्रकार के उपायों का अवलम्ब साधारणतया लिया जाता है। इनका सम्बन्ध बीमा कम्पनियों से है, जो बेकारी की हालत में मजदूरों को या अन्य मनुष्यों को जो काम नहीं प्राप्त कर सकते, कुछ निश्चित वृत्ति प्रदान करती है। वे उपाय ये हैं—(१) काम करने वाले मजदूर और उनके मालिक चन्दा करके फण्ड इकट्ठा करते हैं। इस प्रकार से एकत्र की हुई रकम से बेकारों की जीविका का प्रबन्ध किया जाता है। (२) सरकार स्वयं सर्व साधारण जनता पर टैक्स या कर लगा कर उनका पोषण करती है (३) बीमा-कम्पनियाँ सरकार से कर्ज लेकर किसी प्रकार बेकारों की सहायता करती हैं। इन उपायों में से पहले और तीसरे उपाय प्रायः सफल नहीं होते। परिणाम यह होता है कि सारा बोझ सरकार पर पड़ता है। सरकार भी अपनी कर्तव्य-बुद्धि से प्रेरित होकर उनको आश्रय देती है। प्रत्येक मनुष्य को काम दिलाना एक विकट प्रश्न है। सरकार इसका प्रबन्ध कहाँ तक कर सकती है। फिर उन लोगों को किसी काम में नियुक्त करने पर, मजदूरी देने में सरकार का खर्च अधिक होता है, क्योंकि बेकारी की दशा में उन्हें जो कुछ भी मिल जाता है, उसी से सन्तोष हो जाता है। इसी से यूरोप के कुछ देशों की सरकारें काम देने के बजाय बेकारों को एक निश्चित रकम देना अधिक पसन्द करती हैं, इस तरह विदेशी सरकारों के बजट में कुछ किफायत हो जाती है, अन्यथा काम देने पर खर्च अधिक होने से बजट की दुर्दशा होने की सम्भावना रहती है। इस आर्थिक संकट के समय में किस देश की सरकार ऐसी मूर्ख है, जो अपने बजट में बचत दिखाने का प्रयत्न न करती हो। बेकारों को थोड़ा-बहुत मिल जाने से सान्त्वना हो जाती है और वे किसी प्रकार का ऊधम नहीं मचा सकते। उनकी रोक-थाम हो जाती है और सरकार को उनसे विशेष भय नहीं रहता। इधर कुछ काल से, अमरिका ने बेकारों को यथाशक्ति काम और दाम दोनों देने की योजना की है। प्रेसीडेंट रुजवेल्ट इस विषय में बड़ी दिलचस्पी से कार्य कर रहे हैं। उन्होंने अपने देश में अगणित स्कीमें फैला रखी हैं। अभी हाल में उन्होंने जहाजों के निर्माण करने का एक वृहत आयोजन शुरू किया है। अमेरिका के पास जहाज कम हैं, अतः वह अपने जहाजी बेड़े की शक्ति को अन्य देशों की अपेक्षा अधिक नहीं, तो कमजोर भी नहीं रखना चाहता। लाखों मनुष्यों की रोटी इस कार्य में लग जायगी।

वर्तमान भीषण बेकारी के कारण बहुत बताये जाते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्र के ज्ञाताओं की, इस सम्बन्ध में अनेक सम्मतियाँ हैं। उनमें से अधिकांश का कथन है कि संसार की आर्थिक पद्धति ही दोषपूर्ण है। वह स्वार्थ की कालिमा से पूर्णतया कलुषित हो गई है। अपने-अपने देश की चिन्ता तो सबको है, परन्तु अपनी चीजों को बेचने के लिए वे दूसरे देशों में बाजार बनाना चाहते हैं। राष्ट्रीय संकीर्णता उधर अलग जोर पकड़ रही है। राजनीतिक सरहद्दियों के कारण व्यावसायिक कार्यों में अनेक बाधाएँ पहुँच रही हैं। शंका, भय और अविश्वास बढ़ते जाते हैं। ऐसी स्थिति में संसार भर के मनुष्यों में पारस्परिक-प्रेम और सहयोग की स्थापना किसी महान् शक्ति की प्रेरणा से हो सकती है। व्यवसाय की गति मन्द न पड़े तो क्या हो! खींचातानी में होता ही क्या है! जिस प्रकार एक साधारण कुटुम्ब में अनैक्य हो जाने से लोग दुखित हो जाते हैं, दाने-दाने को तरसने लगते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रों में प्रतिद्वन्द्विता और शत्रुता के भावों के उदय होने से, सारे संसार में खलबली मच जाती है। आजकल सर्वत्र संघर्ष के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। कोई किसी का सुनता नहीं। अपनी धुन में सब मस्त हैं। राष्ट्र संघ की कितनी ही बैठकें हो चुकीं। कितने ही बार निरस्त्रीकरण सम्मेलन भी हुए, परन्तु परिणाम?

बहुत से लोग शायद सोचते होंगे कि वर्तमान आर्थिक संकट अपने आप दूर हो जायगा। भाव-बिक्री बदला ही करती है। परन्तु इस मन्दी या व्यावसायिक शैथिल्य के अन्त की प्रतीक्षा करते-करते हम लोगों की आँखें थक गईं। जब अवस्था बिल्कुल असहनीय हो गई, तब अमेरिका आदि देशों ने नवीन योजनाओं का प्रारम्भ किया। सफलता या असफलता तो भविष्य के गर्भ में है, परन्तु प्रयत्न करना मनुष्य के अधीन है। अमेरिका की क्रियाशीलता, आशावाद, और अदम्य उत्साह अनुकरणीय हैं। मनुष्य-मात्र के आनन्द की वृद्धि करना प्रधान लक्ष्य होना चाहिए। मजदूरों और उनके मालिकों में सहकारिता की आवश्यकता है। सभ्य कहलाने वाले देशों को शासित देशों के प्रति सहानुभूति और शुभैषणा के भावों को कार्य रूप में प्रकट करना चाहिए। बेकारों के कष्टनिवारण का उत्तरदायित्व जनता और सरकार दोनों पर है। यदि इन दोनों शक्तियों के सहयोग से आयोजन किया जाय, तो बेकारी का अन्त शीघ्र हो सकता है।

जो लोग औद्योगिक कार्यालयों में काम करते-करते पक्के हो गये हैं, उन्हें बेकारी का भय कम है। इसी तरह सार्वजनिक कल्याण के हेतु जिन कार्यालयों का संचालन निरन्तर होता रहता है, उनमें भी काम करने वाले बेकार नहीं होते। डाकखाना, रेल, तार और जहाज इत्यादि के उदाहरण स्पष्ट हैं, परन्तु उन लोगों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है, जिन्हें कुछ दिन काम मिलता है और कुछ दिन बेकार रहना पड़ता है। ऐसे लोगों की योग्यता नष्ट हो जाती है। एक काम को वे अच्छी तरह सीख नहीं पाते कि उन्हें उसे छोड़ना पड़ता है। बेकारी की हालत में मनुष्य का स्वास्थ्य गिर जाता है। चित्त उदासीन रहता है। आत्म सम्मान की मर्यादा के बंधन शिथिल होने लगते हैं। भारत ऐसे देश में, पढ़े-लिखे ग्रेजुएट जो अपने विद्यार्थी-जीवन में डिप्टीकलेक्टरी के स्वप्न देखा करते हैं, बूटों पर पालिश करते नजर आने लगे हैं। इन उद्यम-हीन नवयुवकों के पेट की ज्वाला जब शान्त नहीं होगी, तो वे सभी कुछ कर सकेंगे। वास्तव में कोई भी कार्य, जिसमें नैतिक पतन का भय नहीं है, करने में कोई हर्ज नहीं है। हाँ, यह जरूर है कि उनकी जीवनचर्या औरों से कुछ निम्नकोटि की हो जाती है। इसका तो इलाज ही नहीं है। यहाँ तो भाग्य का दोष आ जाता है। क्या भाग्य की रेखा को मिटाने में मनुष्य समर्थ हो सकता है? यदि कोई व्यक्ति इसके उत्तर में 'हाँ' कहे तो निस्सन्देह उसे हम वीर और साहसी पुरुष कहेंगे। वस्तुतः भाग्यवादियों के कारण संसार का एकीकरण होना कठिन हो रहा है, और बिना विश्व-ऐक्य के स्वार्थपरायणता नष्ट नहीं हो सकती। जिनेवा की राष्ट्रसंघ ऐसी संस्थायें विश्वप्रेम और ऐक्य का प्रचार करने के लिये बहुत प्रयत्न कर रही हैं, किन्तु साफल्य की प्राप्ति नहीं होती। इससे प्रकट है कि राष्ट्रसंघ में कुछ त्रुटियाँ हैं, जिनसे उसकी उद्देश्य-सिद्धि में रुकावट हो रही है। पर, इधर ग्रेट ब्रिटेन के साइमन साहब उसमें सुधार करने का विचार कर रहे हैं। यदि उसमें यथेष्ट सुधार हो जाय और वास्तविक कार्यकारिणी शक्ति का संचार हो जाय, तो निस्सन्देह उसके द्वारा संसार में सुख समृद्धि का प्रचार हो सकता है।

प्रकाशकों की धोखा-धड़ी

लेखक—मंत्री, प्रजाबन्धु-पुस्तकालय, चौबेपुर (कानपुर)

कुछ वर्ष पहले की बात है, कलकत्ता के पुस्तक-प्रकाशकों में परस्पर बड़ी निन्दनीय स्पर्धा चलती थी। एक प्रकाशक यदि कोई पुस्तक प्रकाशित कर रहा है, तो उसको हानि पहुँचाने के लिए दूसरा प्रकाशक भी वही पुस्तक उसी नाम से या उसी विषय की रातो-रात प्रेसों में काम करा कर उसके प्रकाशित करने के पहले ही प्रकाशित कर देता था। कलकत्ता से प्रकाशित प्रायः सभी पौराणिक उपाख्यान इसके प्रमाण स्वरूप आज भी देखे जा सकते हैं। जो दूसरे की बुराई चाहता है, उसके लिए भी बुराई स्वयं ही तैयार हो जाती है। फल स्वरूप इस प्रकार प्रकाशक कलकत्ता से बहुत शीघ्र उठ गए और अपने साथ कई प्राचीन प्रकाशकों को भी काफी धक्का पहुँचा गए।

धीरे धीरे यह लहर प्रयाग पहुँची। वहाँ भी प्राचीन प्रकाशकों को हानि पहुँचाने के लिए उनकी पुस्तकों की नकलें होने लगीं। वहाँ तो एक मजेदार बात यह भी देखने को आई कि नकल करने वालों ने असली नाम वाले लेखक के ही नाम के व्यक्ति को ढूँढ निकाला और उसी के नाम से अथवा उसी से नकल करा कर प्रायः वही पुस्तकें प्रकाशित करने लगे।

प्रयाग की यह लहर बाद में केन्द्रित होकर वहाँ के दारागंज मुहल्ले में जा पहुँची। वहाँ इसने जो पारस्परिक-स्पर्धा का रूप धारण किया, वह और भी विचित्र है। दारागंज मुहल्ले में जितने घर हैं, प्राय सभी प्रकाशक हैं। सारे प्रयाग में भी जितने प्रकाशक नहीं हैं, उतने अकेले दारागंज मुहल्ले में मौजूद हैं। लेखक, कवि, प्रोफेसर, हेडमास्टर, मास्टर, वैद्य, सम्पादक, जेनरल मर्चेन्ट, क्लर्क सभी श्रेणी के प्रकाशक हैं, यहाँ तक कि मियाँ पोस्ट मास्टर और बीबी प्रकाशक है, पर इनमें दो-चार को छोड़ किसी से हिन्दी साहित्य का कुछ भी भला नहीं हो रहा है—सब आपस के लतिहाव ही में लगे रहते हैं। जिनसे वास्तव मे कुछ हिन्दी साहित्य का लाभ हो रहा था, वे भी इस दलदल में गोते लगा रहे हैं। जिस किसी शहर में जाइए, वहाँ इन दारागंजी प्रकाशकों की शिकायतें सुन लीजिए। इनके आगे अच्छे-अच्छे पुस्तक प्रकाशकों की कुछ चलने ही नहीं पाती। ६०-६०, ७० ७० फी सदी कमीशन पुस्तकों पर दे-दे कर इन लोगों ने प्रकाशन-जगत् के रिकार्ड को बीट डाउन करने का उसी प्रकार बीड़ा उठाया है, जिस प्रकार दुलारी माधुरी पत्रिकाओं के रिकार्ड को मात करने का दम भरती थी।

दारागंज के एक आदर्श प्रकाशक की निम्न लिखित कुछ पुस्तकें मेरे पुस्तकालय मे अभी हाल ही मे खरीद कर आईं। पुस्तकें देखने पर ये पुस्तकें वहीं के अच्छे प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित उसी विषय की पुस्तकों के प्रचार में केवल बाधा पहुँचाने वाली ही मुझे जँचीं। उपयोगिता की दृष्टि से इनका मूल्य कुछ भी नहीं है। जैसे—

प्राणायाम रहस्य	के मुकाबले	प्राणायाम तत्व
ब्रह्मचर्य ही जीवन है	,, ,,	ब्रह्मचर्य जीवन
जल चिकित्सा	,, ,,	प्राकृतिक चिकित्सा
गार्हस्थ्य शास्त्र	,, ,,	गृहस्थ-जीवन
आरोग्य और आहार / भोजन और स्वास्थ्य	,, ,,	भोजन ही अमृत है
हम सौ वर्ष कैसे जीवें	,, ,,	पूर्ण आरोग्य युक्त सौ वर्ष से अधिक जीने के सुगम उपाय अर्थात् दीर्घ जीवन की कुञ्जी इत्यादि, पर इनके मैटर मे जमीन आसमान का फर्क है।

खैर, ये बातें तो प्रकाशकों को परस्पर मात करने वाली थीं, जिससे जनता को विशेष नहीं अखरती थीं। पर अब इन लोगों ने इस पारस्परिक-स्पर्धा को पार कर एक कदम और आगे बढ़ाई है। इससे पाठकों को भी भारी हानि पहुँचती है। उक्त ग्रन्थमाला की दो पुस्तकें—स्वास्थ्य के प्राकृतिक साधन तथा दीर्घ जीवन की कुञ्जी, मेरे सामने पढ़ने को आईं। एक को पढ़ कर समाप्त करने पर दूसरी में हाथ लगाया। दो-चार पृष्ठ उलट कर जो पढ़ना प्रारंभ किया, तो पहली पुस्तक की ही सारी बातें मिलने लगीं। बड़ा आश्चर्य हुआ। दोनों पुस्तकें निकाल कर मिलान किया, टाइटिल, नाम सब भिन्न, विषय सूची में भी भिन्नता लाने की चेष्टा की गई है, पर मैटर प्रारम्भ से अन्त तक लाइन-टु-लाइन दोनों का एक ही है। देख कर दंग रह गया। इस ग्रन्थमाला के सञ्चालक, जो कि हिन्दी के एक भूषण स्वरूप हैं, का हिन्दी पुस्तक-पाठकों के प्रति इस प्रकार की धोखा-धड़ी का रहस्य मेरी समझ मे न आया। एक ही पुस्तक का मैटर दो नामों से देकर भोले-भाले पाठकों को दोनों हाथ लूटना, मेरी समझ से इसी को कहा जा सकता है।

एक तो वैसे ही हिन्दी साहित्य की उन्नति नहीं हो रही है, ऊपर से इस प्रकार की स्वार्थ पूर्ण-घातक नीति और भी कोढ़ में खाज की तरह है। विश्वास है, दारागंजी ही नहीं, बल्कि हिन्दी संसार के सभी पुस्तक-प्रकाशक इस नीति को—भेड़ियाधसानी-स्पर्धा को, सदैव के लिये दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार की उन्नति

लेखक—श्रीयुत हरिहर शर्मा

दक्षिण भारत मे हिन्दी प्रचार का कार्य सन् १९१८ में पू० महात्मा गांधीजी के द्वारा आरम्भ किया गया। इस समय यह कार्य दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के द्वारा चलाया जा रहा है। सभा के अध्यक्ष महात्मा गांधी और उपाध्यक्ष के० नागेश्वररावजी हैं।

यह आन्दोलन बड़ी ही प्रशंसनीय उन्नति कर रहा है। आसानी से इसका अनुमान किया जा सकता है, कि इस समय दक्षिण भारत में ४०,००० विद्यार्थी हिन्दी भाषा के अध्ययन में लगे हुये हैं। इनमें अधिकांश स्कूल व कॉलेज के विद्यार्थी हैं। अभी तक अनुमानतः ६,००,००० लोगों ने हिन्दी सीखना शुरू किया है, ३५००० परीक्षार्थी सभा की परीक्षाओं में बैठे हैं और इस साल के परीक्षार्थियों की संख्या ही १०००० है।

सभा ने हिन्दी विद्यार्थियों के उपयोग के लिये ६५ तरह की पुस्तकों की ७,००,००० प्रतियाँ अपने प्रेस में छपाई हैं। इन पुस्तकों में अँग्रेजी व दक्षिण भारतीय भाषाओं में स्वबोधिनियाँ, रीडरें, कोष आदि भी हैं।

अब तक करीब ६०० प्रचारक तैयार किये गये हैं और १००० केन्द्रों मे कार्य हुआ है। इस समय दक्षिण के आन्ध्र, तमिल, केरल, कर्नाटक प्रान्तों के ४५० केन्द्रों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। प्रारम्भिक शिक्षा की पाठशालाओं के अलावा हिन्दी का उच्च साहित्य पढ़ाने के लिये चारों प्रान्तों में सभा ने चार हिन्दी महा-विद्यालय खोल रखे हैं। इसके अतिरिक्त प्रचारक शिक्षण देने के लिये मद्रास में एक हिन्दी प्रचारक महा-विद्यालय भी चला जा रहा है।

हिन्दी के लिये जनता मे प्रेम दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है। इससे कई केन्द्र स्वावलम्बी भी बन रहे हैं। हिन्दी के प्रति देवियों का उत्साह बहुत प्रशंसनीय है। देहात की जनता भी अधिक दिलचस्पी दिखा रही हैं। दक्षिण के अब तक करीब ५० हाईस्कूलों में और कुछ कॉलिजों मे हिन्दी को प्रवेश कराने का सभा सफल प्रयत्न कर सकी है। दक्षिण भारत के चारों विश्व विद्यालयों मे भी इंटर व बी० ए० के वर्गों में भी हिन्दी पढ़ने की सुविधा हो गई है।

इन सब प्रवृत्तियों के अलावा सभा 'हिन्दी प्रचारक' नामक एक मासिक पत्र भी चलाती है, जिसमें उत्तर तथा दक्षिण भारत के लेखकों के लेख हिन्दी मे छपते हैं।

सभा अपनी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने वालों को प्रमाण-पत्र देती है और राष्ट्र भाषा विशारद नामक साहित्यिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाला को राष्ट्र भाषा विशारद नामक उपाधि भी देता है। इस परीक्षा की उन्नति से दक्षिण भारतियों में दिन दिन बढ़ने वाली साहित्यक रुचि का प्रमाण मिलता है। सभा के अब तक तीन समावर्तन समारम्भ हुए इन अवसरों पर क्रमश श्री काका कालेलकर, प्रो० शुक्ल्री तथा पं० रामनरेश त्रिपाठीजी के अभिभाषण हुए। तीसरा समावर्तन समारंभ पूज्य महात्माजी की अध्यक्षता मे हुआ।

यह निर्विवाद है कि जब तक एक भाषा के द्वारा उत्तर तथा दक्षिण के प्रान्त निकट न लाये जाँय, तब तक हिन्दी आन्दोलन सफल नहीं कहा जा सकता। उत्तर भारत मे दक्षिण भारत हिन्दी प्रेमियों का एक दल भेजने की आयोजना इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये है। हमारा विश्वास है कि उत्तर भारत के हिन्दी प्रेमी इस दल के कार्य को सफल बनाने के लिये हर तरह की सहायता पहुँचायेंगे।

दक्षिण भारतीय हिन्दी-भाषा-यात्रीदल

लेखक—श्रीयुत देवदास गांधी

यह तो अब समस्त हिन्दी प्रेमियों को मालूम हो गया है कि दक्षिण भारत के हजारों घरों में भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी का पढ़ना व पढ़ाना रोजमर्रा का काम हो गया है। इस कार्य को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये मद्रास शहर में केन्द्रिक संस्था "दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा" गत १५ वर्षों से हिन्दी प्रचार का विशेष रूप से प्रयत्न कर रही है। इस संस्था ने सैकड़ों हिन्दी-अध्यापकों को तैयार करके सैकड़ों केन्द्रों में हिन्दी प्रचार करने के लिए भेजा है। सभा का कार्य-क्षेत्र सारे दक्षिण भारत आन्ध्र, तमिल, केरल, कर्नाटक और मैसोर, कोचीन, ट्रावनकोर आदि देशी रियासतों में आक की तरह फैला हुआ है। प्रत्येक हिन्दी-हितैषी हिन्दी प्रचार की प्रगति सुनकर हर्ष से फूला न समा सकेगा। आज दक्षिण भारत के हर एक शहर में 'खादी भण्डार' की तरह, एक हिन्दी-प्रचार-कार्यालय भी मौजूद है। इस समय आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्नाटक के उन उन प्रदेशों में जहाँ सभा काम कर रही है, सैकड़ों पुरुष और महिलाएँ शुद्ध हिन्दी बोलती और लिखती हैं।

दक्षिण भारत में जो सामूहिक रूप से हिन्दी प्रचार का अच्छा कार्य हुआ है, उसका उत्तरी भारत के हिन्दी प्रेमियों को पूरा पूरा परिचय देने के लिए तथा हिन्दी भाषा की आवश्यकता और महत्त्व पर सार्वजनिक ध्यान आकर्षित करने के हेतु, यह निश्चय हुआ है कि दक्षिण भारत से शिष्टजनों का एक हिन्दी भाषा यात्रीदल उत्तर भारत भेजा जाय। इस दल में दो तीन भद्र महिलाएँ भी होंगी। यह दल पूना, बम्बई, बड़ोदा, अहमदाबाद, भावनगर, अजमेर, जयपुर, दिल्ली, मथुरा, आगरा, अलीगढ़, कानपुर, लखनऊ, अयोध्या, प्रयाग, काशी, गया, शान्ति निकेतन, कलकत्ता, जबलपुर, नागपुर, वर्धा—इन स्थानों की यात्रा करेगा। सुविधा के अनुसार दिल्ली से यह दल शायद देहरादून, हरिद्वार तथा मसूरी जायगा। इन जगहों में, प्रत्येक स्थान पर कम-से कम दो दिन का मुकाम किया जायगा। कुछ स्थानों में तीन चार दिन भी ठहरेगा। दिल्ली तथा बनारस में यह यात्री दल बीस बीस दिन ठहरेगा। दल के कार्यक्रम, समय विभाग आदि की सूचना निश्चित समय से पहले ही जाया करेगी। मेरे लिखने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि इस हितकारी कार्य में आपसे सहयोग की प्रार्थना करूँ। यात्रा के रेल किराये का खर्च सर प्रभाशङ्करपट्टणी ने दिया है। आपने यात्रा के हेतु को बहुत ही पसंद किया है।

इस दल के अधिकांश सदस्य ऐसे होंगे, जो अपने जीवन में पहले पहल उत्तर भारत आ रहे होंगे। मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि ये यात्री जहाँ-जहाँ जाएँ, हम इनका अच्छा स्वागत-सत्कार करें। बड़ा अनुग्रह हो, यदि आप अपने यहाँ एक छोटी सी स्वागत कारिणी-समिति बनालें, जो इस दल का उचित स्वागत करे और यात्रियों के आराम का प्रबन्ध करे। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि इस दल की यात्रा सर्वत्र बहुत ही सर्वप्रिय और सफल होगी। बड़े नगरों की स्कूल-कॉलेज इत्यादि सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएँ इन यात्रियों को अपना अतिथि बना सकें, तो अत्युत्तम होगा। दल की महिलाओं को ठहराने आदि का प्रबन्ध किसी भी शिक्षा संस्था में करना लाभप्रद होगा।

दक्षिण भारत के इन यात्रियों की भोजन समस्या आपको कुछ हिचकिचाहट में अवश्य डाल देगी। पर साधारण अनुरोध यही है कि उनको वही भोजन दिया जाय, जो आपके यहाँ आमतौर पर बनता हो। मैं सिर्फ इस बात पर आपका ध्यान आकर्षित करूँगा कि उनको दोनों मुख्य भोजनों के समय दही और भात अवश्य दिया जाना चाहिये। साथ ही दूसरी बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि दक्षिण भारतीय लोग गरिष्ठ मिठाई ज्यादा पसन्द नहीं करते।

सर्वसाधारण से यात्री दल का परिचय कराने के लिए सार्वजनिक सभाएँ की जा सकती हैं। इन सभाओं में हिन्दी भाषा यात्री दल के सदस्य हिन्दी ही में भाषण करेंगे। शायद यह भी अच्छा हो कि स्थानीय अनुकूलता के अनुसार विशिष्ट महिलाओं व पुरुषों की छोटी छोटी सभाएँ भी यात्री दल के साथ परिचय करने के उद्देश्य से बुलाई जाएँ। इनमें दल के कुछ व्यक्ति साहित्यिक या सामयिक विषयों पर स्वलिखित निबन्ध पढ़कर सुनाएँगे। वाद विवाद की सभाओं में भी ये लोग शरीक हो सकेंगे। यह भली भाँति आशा की जाती है कि उत्तर भारत की सरकारी, गैरसरकारी और राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाएँ हर तरह से इसमें भाग लेकर अपनी अभिरुचि व उत्साह प्रदर्शित करेंगी। आपके नगर के प्रसिद्ध दर्शनीय स्थानों को भी ये यात्री अवश्य देखना चाहेंगे।

बच्चों का पालन-पोषण

लेखक—श्रीयुत जागेश्वर दयाल

बच्चों में हम जितने दोष देखते हैं, उनमें से अधिकांश उनके पालन-पोषण की त्रुटियों के कारण उत्पन्न हो जाते हैं। बच्चों की पालन-पोषण की वर्तमान प्रणाली के कोष में त्याग, आत्म-संयम जैसे शब्दों का कहीं भी पता नहीं चलता। आजकल उनका स्थान नजाकत, शौक़ीनी और चालाकी (धूर्तता) ने अपहरण कर लिया है। हमारा दृष्टिकोण ऐसा हो गया है, कि हम यह समझते हैं, कि आवश्यकतायें जितनी बढ़ाई जायँ, उतना ही अच्छा है। हम बच्चों को आत्म-संयम, त्याग, इन्द्रिय निग्रह की शिक्षा नहीं देते, बल्कि उन्हें नाजुक, शौकीन, काहिल, मेहनत से घृणा करने वाला बनने की शिक्षा देते हैं। इस बात को एक सुन्दर कहानी द्वारा टॉलस्टाय ने समझाने का प्रयत्न किया है। वह पाठकों के लाभार्थ नीचे दी जाती है—

एक समय दो स्त्रियाँ थीं। उनमें से एक ने दूसरी का अपमान किया। अपमानित स्त्री ने उससे बदला लेने की ठानी। उसने अवसर पाकर उसके इकलौते बच्चे को चुरा लिया और एक जादूगरनी के पास जा कर यह कहा, कि कोई ऐसी तरकीब उसे बतला दे, कि वह उस चुराये हुए बच्चे द्वारा उसकी माता से उस अपमान का बदला ले सके। जादूगरनी ने उस बच्चे को अमुक स्थान पर पहुँचाने के लिये कहा और यह विश्वास दिलाया कि वह इस भाँति अपने शत्रु से अच्छी प्रकार बदला ले सकेगी। स्त्री यह सुन कर प्रसन्न हो गई। वह वहाँ गई, लेकिन देखती क्या है, कि उस बच्चे को एक सन्तान-हीन धनी आदमी ने गोद ले लिया। यह देख वह औरत उस जादूगरनी के पास फिर आई और उसे बहुत भला-बुरा कहा। जादूगरनी केवल हँस दी और कहा कि जरा धीरज धरो घबड़ाने की क्या बात है। वह बच्चा धनी पिता के यहाँ बहुत लाड़ प्यार से पलता रहा। नाज व नजाकत और ऐशो-आराम के चक्कर के कारण वह धीरे-धीरे चरित्र हीन हो गया। उसकी शारीरिक व मानसिक शक्तियाँ प्रतिदिन क्षीण होती चली गईं। वह कभी-कभी अपने चरित्र के सुधारने की ओर ध्यान देता था, किन्तु व्यसन और आलस्य से दूषित उसके जर्जर शरीर में इतनी शक्ति ही बाकी न थी। वह दिन-प्रति-दिन गिरता गया, उसकी शराब की मात्रा बढ़ती गई, वह अपने को भूल गया, निन्दनीय पापों का अपराधी हुआ और अन्त में पागल होकर उसने आत्म हत्या कर ली।

इस भाँति वह स्त्री दूसरी स्त्री से उस बच्चे द्वारा अपने अपमान का बदला ले सकी।

बस आजकल की शिक्षा का यही नग्न स्वरूप है। बच्चे जब उच्च आदर्शों से बिल्कुल अनभिज्ञ होते हैं, उस समय उन्हें नजाकत और शौकीनी से रहना सिखलाया जाता है। इसके फल-स्वरूप उनमें आत्म-संयम और इन्द्रियों को वश में रखने की आदत बिल्कुल नहीं पड़ती। वे मेहनत से घृणा करने लगते हैं और अपना काम स्वयं करने में उन्हें शर्म आती है। काहिली का माद्दा उनमें बहुत बढ़ जाता है और अपने माता पिता की गाढ़ी कमाई के धन को बर्बाद करने में उन्हें कुछ भी महसूस नहीं होता।

हम इस बात का कभी ध्यान नहीं करते कि बच्चे को आत्मसंयम आदि गुणों की भी आवश्यकता है। हमारा एकमात्र विचार बस यही रहता है कि उसे कोई तकलीफ न हो, वह शानो-शौकत के साथ रहे, अपने साथियों से इस बात में पीछे न रहे।

क्या यही पालन पोषण है?

कार्यक्रम के अनुसार यह यात्रीदल मद्रास से २५ फरवरी को रवाना होकर २६ ता० को प्रातःकाल पूना पहुँचेगा, जहाँ उसका पहला मुकाम होगा। पूरा कार्य-क्रम समाचार पत्रों में प्रकट होगा। यात्री दल के अग्रणी श्रीयुत सत्यनारायणजी प्रत्येक नगर के साथ पत्रव्यवहार करेंगे। यह महाशय आन्ध्रदेशवासी हैं और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान मन्त्री हैं।

मेरे इस विचार से आप अवश्य सहमत होंगे कि हर तरह से ऐसी कोशिश की जानी चाहिये कि दक्षिणापथ का यह हिन्दी भाषा भाषी यात्रीदल उत्तरभारत से अपने साथ मधुर-से मधुर संस्मरणों को लेता हुआ वापस लौटे।

आशा है कि निम्नलिखित पते पर शीघ्र ही उत्तर देकर आप मुझे अनुगृहीत करेंगे।

भूकम्प से हमारी हानियाँ

लेखक—श्रीयुत छविनाथ पाण्डेय, बी० ए०, एल-एल० बी०

भूकम्प आया और चला गया। क्षण भर में ही उसने एक प्रलय दृश्य उपस्थित कर दिया। बिहार की शस्य श्यामला भूमि वीरान हो गई। वैशाली और मिथिला के सुखद और सुन्दर प्रदेश उजड़ गये। चारों ओर हा हा कार मच गया। सभी ने एक स्वर में चिल्लाकर कहा—उजड़ गया बिहार!

सचमुच बिहार उजड़ गया। संसार की कोई भी शक्ति इस उजड़े बिहार का पुनर्निर्माण नहीं कर सकती। जो कहावतों में सुना करते थे, वही इस भूचाल ने कर दिखाया। क्या से क्या हो गया। यह क्षति कैसे पूरी की जायगी? बिहार हर तरह खोखला हो गया। उसका यह खोखलापन किस तरह भरा जायगा। सिवा उस परमेश्वर—के जिसकी लीला से यह काण्ड उपस्थित हुआ है—दूसरा इसे कौन सम्हाल सकता है।

इस भूकम्प से जो हानियाँ हुई हैं, उनकी गिनती कहाँ तक कराई जाय। यदि कोई इतने ही से सन्तोष करले कि 'उजड़ गया बिहार!' तो काम चल सकता है। अन्यथा इन क्षतियों का न तो अन्दाजा ही लगाया जा सकता है और न उनकी गिनती ही हो सकती है। इस भूकम्प ने बिहारियों का सर्वस्व छीन लिया। जान, माल, धाम, धरा सब कुछ क्षण भर में स्वाहा हो गया। शहर क शहर बरबाद हो गये। भूकम्प के पाँचवें दिन मैं पं० जवाहिरलालजी नेहरू के साथ मुजफ्फरपुर के भग्नावशेष का निरीक्षण कर रहा था। पुरानी बाजार की दर्दनाक हालत देखकर पण्डितजी के मुँह से सहसा निकल पड़ा था—ओह! दो सौ वर्षों का बसाया शहर दो मिनट अठारह सेकण्ड में इस तरह बरबाद हो गया! इन शब्दों में कितनी करुणा थी, कितना दर्द था!

दो सौ वर्षों के अनवरत परिश्रम के बाद हम जिस दशा को पहुँचे थे, उसका पलक गिरते अन्त हो गया। उस अवस्था पर हम पुन किस प्रकार पहुँचेंगे? किसमें सामर्थ्य है, किसके पास वह अतुल सम्पत्ति राशि है कि वह पुनः उच्च और विशाल भवनों का निर्माण कर सकेगा।

हम आज साहसहीन हो गये हैं, सामर्थ्यहीन हो गये हैं, साधन हीन हो गये हैं, हर तरह से त्रस्त पीड़ित और लाचार हैं। हम कभी भी इस क्षति की पूर्ति करने में समर्थ हो सकेंगे, या नहीं, हमारी कल्पना के बाहर है।

इस भूचाल से हमारी सबसे बड़ी क्षति यह है कि हममें साहस नहीं रह गया है, हम हिम्मत हार गये हैं, हममें से विश्वास लुप्त हो गया है। जिस धरती को हम एकदम ठोस समझते थे, वह हमे एकदम पोली प्रतीत हो रही है। हमारा दिल हिल गया है। हममें साहस नहीं है। हम यदि किसी प्रकार शक्ति संग्रह करने का मन करते भी हैं, तो दूसरे ही दिन भूचाल का एक हलका धक्का लगता है। और हमारे दिल से साहस को भी ठग ले जाता है। इस भूकम्प ने लोगों के दिल और दिमाग को इस तरह दहला दिया है कि उसका प्रभाव चौबीसों घण्टे सब के पलकों पर नाचा करता है। लोग इतने ज्यादा भयभीत हो गये हैं कि प्रतिक्षण फिर उसी भूकम्प की पुनरावृत्ति की कल्पना किया करते हैं। काम धन्धे की चर्चा कौन करे, लोगों का निश्चिन्त होकर खाना पीना और सोना हराम हो गया है। लेकिन उन लोगों को भी अपने पक्के मकानों में सोने का साहस नहीं हुआ है, जिनके मकानों को जरा भी आँच नहीं आई है, जिनका एक कंगूरा भी नहीं हिला है। गहरी इस बरसात मे मैंने उन्हे उन्हीं झोपड़ियों में सिकुड़कर बैठे और भीग कर रात बिताते देखा है। सामने सुन्दर और दिव्य भवन खड़ा है। वे उसकी ओर ललचाई आँखों से देख रहे हैं, पर उसमे उन्हे प्रवेश करने का साहस नही हो रहा है, मानों उसमें उनकी मृत्युरेखा अङ्कित है और उसमें प्रवेश करते ही वे सदा के लिये सो जायँगे। कुछ लोग यदि साहस करके दिन को मकानों में खाना पीना करते भी हैं, तो रात को झोपड़ियों में ही रहते हैं। भूकम्प की विभीषिका का यह चित्र है। लोग यहाँ बुरी तरह त्रस्त हैं। मुजफ्फरपुर में मैंने इस पर टीका करते हुए अपने एक मित्र से कुछ कहा, तो उन्होंने करुण शब्दों मे उत्तर दिया—'भाई, तुम १२ जनवरी को मुजफ्फरपुर मे नहीं थे, इसलिए तुम अनुमान ही नहीं कर सकते कि लोगों को यहाँ कैसा सदमा पहुँचा है। और उससे लोगों की मानसिक दशा कैसी हो गई है। सच बात है, भयानक शेर के मुँह में पड़कर भी जो किसी तरह बच कर निकल आता है, वही उसकी विभीषिका का अन्दाजा लगा सकता है। दूसरे उस वेदना को क्या जाने? विश्वास एकदम उठ गया है। निराशा ने अटल डेरा जमा लिया है। सहसा विश्वास, आशा और भरोसा सभी ने एकबारगी साथ छोड़ दिया है। यह होना स्वाभाविक है। जिस बात की कभी कल्पना तक नहीं कर सकते थे, वही प्रत्यक्ष हो गई। आँखों के सामने धरती फट गई और उसमें से पानी तथा बालू की धारा बह निकली। जिस धरती पर खड़े थे, वही मुँह बाकर निगलने के लिए तैयार हो गई। बिना बरसात के भयानक बाढ़ आ गई। प्रलय का भीषण दृश्य उपस्थित हो गया। क्षण भर में सारा कारबार उलट गया। जिसे हम ठोस समझते थे, उसी का अब विश्वास नहीं। वह गया तो हम ढाढ़स किससे बाँधें। निराशा और अविश्वास के गहन जंगल में हम फँस गये हैं। जहाँ से निकलने का रास्ता नहीं दिखाई देता।

अब संहार की तो चर्चा ही व्यर्थ है, क्योंकि जो चले गये, सदा के लिए एक अमिट दाग दिल पर दे गये। जिस तरह अब हमें हमारे बनवारी और धर्मनारायण बाबू नहीं मिल सकते, उसी तरह हजारों परिवार अपने प्रियजनों के वियोग में जब तक जियेंगे, रोयेंगे। पर सबसे अधिक रोना तो उन लोगों के लिए है, जो इस समय जिन्दे हैं। इस समय विपत्ति के जो काले बादल सिरपर मडरा रहे हैं, उन्हें देखते हुए तो यही कहना पड़ता है कि जो चले गये, वेही सुखी हैं। अभागे तो वे हैं, जो जीवित बचे हुए हैं। यदि एक और कम्पन हो जाता और हम बचे खुचों को भी उठा ले गया होता, तो इस तरह तड़प-तड़प कर सहने की बारी नहीं आती, इस तरह भिक्षुक की भाँति दूसरों की दानशीलता पर नहीं रहना पड़ता, देश विदेश से आए हुए जूठ वस्त्रों की ओर लालायित नेत्रों से देखने की शर्म न सहना पड़ती। यदि वह क्षणिक दुर्घटना होती, तो मूक हृदय कलेजे पर वज्र रख कर उसे बरदाश्त कर लिये होता। जो गये उनके लिये चार बूँद आँसू बहा कर दिल को ढाढ़स देने का यत्न किया गया होता; पर इस दो मिनिट ने जो महानाश का रास्ता तैयार कर दिया है, उसका शमन किस तरह किया जाय। माल गया, जान गयी, पर जो बचे हैं, उनकी रक्षा का साधन भी चला गया। कुएँ सूख गए। जैसा-तैसा पानी लोग पाते हैं, परिणाम-स्वरूप मलेरिया, इन्फ्लुएन्जा और चेचक का प्रकोप बढ़ रहा है। साधारण अवस्था में भी देहात के लोग इन बीमारियों का उपयुक्त प्रबन्ध नहीं कर पाते थे और अगणित लोग इसके शिकार हो रहे थे। आज इस असाधारण अवस्था में उन बेचारों की क्या हालत होगी। अब अधिकांश गावों में आधे से ज्यादा घर गिर गये हैं। लोग अभी तक पेड़ों के नीचे अपनी टूटी फूटी झोपड़ियों में पड़े हैं और शीत से अपनी रक्षा करने का उनके पास पर्याप्त साधन भी नहीं है। चेचक छूत की बीमारी है। इस समय तो जहाँ एक परिवार नैसर्गिक लज्जा का परित्याग कर स्त्री-पुरुष सभी एकही झोपड़ी में गुजर कर रहे हैं, वहाँ एक के आक्रान्त होने पर सारे परिवार को चेचक के शिकार होने की पूरी आशंका है।

माल की हानि का तो अनुभव करना ही व्यर्थ है। यदि कुछ ऐसे हैं, जिनके पास कुछ बचा है, तो बहुत से ऐसे हैं, जिनका सर्वस्व स्वाहा हो गया है। शहरों में ऐसे बहुत से खानदान बरबाद हो गये हैं। मध्यम श्रेणी के कितने ऐसे लोग थे, जिनकी जीविका का एकमात्र साधन उनकी छोटी सी दूकान थी। ५-६ सौ की पूँजी लगाकर बेचारे दिन भर का मिहनत मजूरी करके अन्न-वस्त्र भर के लिये कमा लेते थे और उसी से अपनी गुजर करते थे। दूकान गिरगई, माल तहस नहस हो गया। जीविका का जरिया मिट्टी में मिल गया। न रहने का ठौर है न अन्न वस्त्र का साधन। यदि ये बच गये हैं, तो जी कर क्या करेंगे। इनके लिये तो मृत्यु ही अच्छी थी। इस समय कुछ उदार दानी, गुरुरूर से इनकी सहायता कर रहे हैं, पर यह कितने दिन तक। इनका तो भविष्य ही सूना है। जिस दिन सहायता बन्द हो जायगी, उसके दूसरे ही दिन, इनके सामने चूहे दण्ड पेलने लगेंगे। महीना दो महीना कोई पेट भलेही चला दे, पर इन्हें जीविका देने की उदारता कौन दिखलावेगा। इसी तरह अनेक ऐसी विधवाएँ हैं, जिनकी जीविका का एकमात्र साधन मकानों का भाड़ा था। न उनके पास कोई दूसरी जीविका थी और न अन्य सहारा था। उसी मकान के भाड़े से रोटी चलती थी। मकान धराशायी हो गया। ईंटें अलग अलग छितरा गईं। निवास स्थान खण्डहर हो गया, किरायेदारों ने झोपड़ियों की शरण ली। इन लोगों की यही पूंजी थी, जो मिट्टी मे मिल गई। इनका अब क्या होगा? इनकी जीविका कहाँ से चलेगी। इनमें सामर्थ्य नहीं है कि अपने पराक्रम से वे फिर मकान खड़ा करलें। ज्यादा से ज्यादा सहायता तो इन्हें मिल सकती है, कि इनके रहने के लिए कोई दानी सज्जन एक-दो झोपड़ियाँ बना दे; पर उस तरह का मकान तो कोई नहीं बनवा देगा, जिससे इन्हें जीविका के योग्य किराया आने लगे। आखिर इनका क्या होगा और यदि ये जीवित बचे रहे, तो अपना गुजर

कहाँ से करेंगे ? इस तरह के विरले उदाहरण नहीं हैं। मैंने अनुसन्धान किया है और मैं जानता हूँ कि इस तरह के बहुत से लोग हैं। अनेक तो ऐसे हैं जिनका नाम हम प्रतिष्ठा से लेते हैं। इस विपत्ति में भी अपनी परवा न कर पीड़ितों की सेवा कर रहे हैं। यदि उनका नाम ले लिया जाय, तो लोग चौंक उठेंगे। यह समस्या जितनी विकट है, उतनी भयानक भी। ऐसे अनेक कुटुम्ब हैं, जिनका समय कभी अच्छा था। बाप-दादों ने मकान बनवा दिये थे, उसी में रहते थे और किसी तरह काम-धन्धा कर अपनी प्रतिष्ठा को ढाके हुए थे। उनके वे मकान ढह गये। वर्तमान आमदनी पेट पालने के लिए भी पर्याप्त नहीं है। प्रतिष्ठा के ख्याल से वे अपनी हालत प्रकट नहीं होने देंगे। किराये के मकान मिल नहीं सकते। झोपड़ियों में सदा रहना कठिन है। उन लोगों के सामने भयानक समस्या है। वे अपने गिरे मकानों का साफ तक नहीं करवा सकते। फिर नया मकान तो दूर की बात है। यदि कहीं से किसी को रुपये मिल भी गये, तो छोटा मोटा मकान बनवाने के लिए जगह कहाँ से आवेगी, क्योंकि पुरानी बस्ती की जगह तो फट कर इस प्रकार चिथड़ चिथड़ हो गई है, कि वहाँ मकान ही नहीं बन सकते।

देहातों की चर्चा करते तो आँखों में आँसू भर आते हैं। मनुष्य का हृदय जितना कोमल है, उतना ही कठोर भी है। 'वज्रादपि कठोराणि' यदि कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं, यही कारण है, कि देहातों का हालत अपनी आँखों देख कर भी मनुष्य जीवित रहता है। अन्यथा कलेजा फट जाना चाहिए और उसे वहीं मर जाना चाहिए। किसान खतम हो गये, उनके जीने का कोई साधन नहीं रह गया। उनके सर्वस्व पर पानी फिर गया। लोग कहते हैं, सरकार को 'अकाल' घोषित कर देना चाहिए, अब मन्त्री साहब कहते हैं 'अकाल' कहाँ है ? सचमुच उनके लिये अकाल नहीं है क्योंकि इस नरककाल को दूर सरकार अपना खजाना भरेगी ही और मिनिस्टर साहब की कोठी में प्रतिमास चार हजार की थैली पहुँच ही जाया करेगी। उन्हें भी सदा हरियाली ही सूझेगी। वे तो उस अन्धे की भाँति हैं, जिसकी आँख सावन की हरियाली देखकर गायब हुई थी। हाँ, जिन्हें देखने को आँखें भगवान् ने दी हैं, वह दुखियों की यह हालत देखकर काँप सकता है, कि वहाँ तो सदा के लिये अकाल ने डेरा डाल दिया है। उनकी जीविका का एकमात्र साधन उनका खेत बर्बाद हो गया है, कहीं उनमें लम्बी चौड़ी दरारें पड़ गई हैं, कहीं वह धँस कर झील हो गया है और कहीं उसमें बालू का ढेर लग गया है। जो लोग बिहार के किसानों की दशा से पूर्णतया अवगत हैं, वे भली भाँति जानते हैं कि बिहार के अधिकांश किसानों के पास थोड़े खेत होते हैं। विरले ही किसान होंगे जिनके पास आठ दस बीघा काश्तकारी होगी, नहीं तो ज्यादा को दो चार बीघा ही है। उसी की आमदनी से उन्हें मालगुजारी, सेठ महाजन, भोजन वस्त्र, ब्याह शादी जन्म श्राद्ध सभी सुफल करना पड़ता है।

बिहार के किसानों के पैदाइश का ज्यादा हिस्सा खलिहान ही से किस प्रकार महाजन की बखार में चला जाता है, यह भी किसी से छिपा नहीं है। मालगुजारी किस दुर्दशा से वह देता है, यह सभी जानते हैं। इस विपत्ति पर यहाँ महा विपत्ति ! उन खेतों में अब पैदाइश की बहुत ही कम आशा है। यदि आधे नहीं तो ४० प्रति सैकड़ा खेतों का यही हालत है। यदि प्रत्येक किसान का ६ प्रति सैकड़ बचा होता, तो भी एक तसल्ली की बात थी पर जिन किसानों का सब कुछ खत्म हो गया है, उनका क्या होगा। मुजफ्फरपुर और मोतीहारी के बहुत से गाँवों को मैंने अपनी आँखों जाकर देखा है, वहाँ गाँव के गाँव बालू बुर्ज हो गये हैं। गाँव भर में १० २० बीघा खेत शायद ऐसे होंगे, जिनमें एक फुट से कम बालू हो, बालू भी रंग बिरंगी है। कहीं काला और कहीं कहीं सफेद भी है। कहीं मोटा है तो कहीं पतला। एक अच्छे वैज्ञानिक का कहना है कि इस बालू में कोई फसल नहीं पैदा होगी, यह बालू ऐसा है कि बीज अंकुरित नहीं हो सकता। वास्तविकता को तो भविष्य ही बतायेगा। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि जमीन दलदल हो गई है। बालू सूख नहीं रहा है। प्रति दिन धरती में कम्पन हुआ करता है, जिससे फिर पानी भी आया करता है जमीन ऊपर से सूखी दीखता है, उस पर जाकर दो मिनट खड़ा हो जाइये, पर से जमीन को कचर दीजिये, भीतर से पानी निकल पड़ेगा। जमीन का हालत एकदम अनिश्चित हो गई है। मुजफ्फरपुर के एक सदर थाने के गाँव में बिहार सेण्ट्रल रिलीफ सोसायटी की ओर से बालू साफ कराने का काम शुरू करने गया था। वहाँ मैंने देखा कि जिस खेत को किसान एकदम सूखा समझ कर जोतने के लिए हल ले गया, उसमें हल चलते ही पानी बुलबुलाने लगा। जिन गृहस्थों के समूचे खेतों की यह हालत हो गई है, उनका क्या होगा, उनकी जीविका का क्या प्रबन्ध किया जायगा ? जमींदार हत्यारा मालगुजारी तहसील करने के लिए आज भी छाती पर सवार है। मोह से किसान जमीन छोड़ेगा नहीं, उस बालू के ढेर की उससे मालगुजारी ली जायगी। जिस सरकार ने अबकी मँहगी में इजाफा कर मालगुजारी बढ़ा दी, वह सरकार आज उस खेत के बालू से पट जाने पर उसकी मालगुजारी घटा देने का भी सत्कार्य करेगी ? कदापि नहीं, क्योंकि यह उसकी कानूनी सीमा के बाहर होगा। जमींदारों को वह नाखुश करना नहीं चाहेगी। किसान की बरबादी में यह तो भविष्य की बात है। पर इस समय देहातों की दर्दनाक हालत देखकर रुलाई आती है। मैं मुजफ्फरपुर जिले के दो तीन स्थानों का वर्णन करता हूँ। बेलसंड का पश्चिमी भाग, कटरा थाना और सदर थाना का उत्तरी भाग तथा मीनापुर थाना इस साल कार्तिक सुदी षष्ठी तक बाढ़ से आक्रान्त था। धान की फसल यहाँ एक दम नहीं हुई। रबी की अच्छी आशा थी, इसी उम्मीद पर महाजन भी उन्हें कर्ज दिये जा रहा था और उसी कर्ज से वे अपना पेट पाल रहे थे। भूचाल के कारण जो भयानक बाढ़ आई, उससे रबी की फसल एकदम नष्ट हो गई। इस साल अब किसी फसल की उन्हें आशा नहीं रही। सबको अपनी अपनी चिन्ता पड़ गई है। महाजनों ने कर्ज देना बन्द कर दिया है। इन गाँवों में लोग भूखों मर रहे हैं। बि० से० री० कमेटी तथा अन्य कमेटियाँ इनकी सहायता कर रही हैं पर वह नहीं के बराबर है, क्योंकि उनकी दरिद्रता इतनी व्यापक है और सहायता का साधन इतना परिमित है कि लाख दान करने पर भी उन्हें भूखों मरने से बचाना कठिन है।

बिहार की दरिद्रता प्रसिद्ध है। यहाँ के अधिकांश किसान दरिद्र हैं। बहुत कम तादाद ऐसे किसानों की है, जिन्हें साल में ३६५ दिन दोनों शाम भर पेट भात या रोटी मिलती हो, नहीं तो अधिकांश एक शाम भात खा कर और एक शाम शकरकन्द खा कर और कहीं दोनों शाम शकरकन्द खा कर ही यह चार महीना काटते हैं। इस भूकम्प ने उनकी विपत्तियाँ और भी संगीन बना दी। शकरकन्द बालू के नीचे दब गया या पानी में डूबकर सड़ गया, अब वे किस प्रकार क्या खा कर अपनी रक्षा करेंगे ?

यह तो वर्तमान दुःख है और कुछ ही फी सदी लोग इसके शिकार हैं। भारी दुःख तो आगे आने वाला है। जिसका अनुमान कर आगे भी काँप उठता है। अभी तक तो कतिपय किसानों के घर में थोड़ा-बहुत धान है, जिस पर वे अपनी गुजर कर रहे हैं। लेकिन बैसाख के बाद जब वह धान भी खतम हो जायगा, तब क्या होगा ? जहाँ इस समय हर गाँव में ३५ फी सदी उपवास करना पड़ता है, वहाँ गाँव के गाँव भूखों मरने लगेंगे। वह अवस्था कैसी भयानक होगी इसका अनुमान कर ही दिल दहल जाता है। पर सब से बड़ी समस्या तो उनके रहने की है। इस भूकम्प ने प्रकृति की व्यवस्था ही पलट दी है। झील और नाले फट कर समतल हो गये। समभूमि झील में परिणत हो गई, नदी नालों के बहाव का मार्ग पलट गया। इन सबों ने मिलकर देहातों में एक नई विपत्ति उपस्थित कर दी है। इस समय कई एक गाँवों की हालत यही है। गाँव एक तरह का टापू बन गया है। उसके इर्द गिर्द भी झील सी हो गई है। उसमें पानी भरा है। महीना भर से ऊपर हो गया पर आज भी उस गाँवों में के कई मकान पानी में ही हैं। मुजफ्फरपुर के, मीनापुर और कटरा थाना के पहले गाँव की यही हालत है। बरसात में तो उनकी विपत्ति और भी बढ़ जायगी। हर एक गाँव में ९० फीसदी कुएँ खराब हो गये हैं। जिन गाँवों में भूकम्प का प्रकोप न्यूनतम हुआ है, वहाँ भी कुएँ तो खराब हो ही गये हैं। उनमें बालू भर गया है, वे फट गये हैं, और कहीं कहीं तो समूचे जगत को उखाड़ कर फेंक दिया गया है। बिहार सेण्ट्रल तथा अन्य रीलीफ कमेटियों द्वारा कुएँ साफ करवाये गये हैं और कर भी रहे हैं पर सफलता बहुत ही कम मिल रही है। कुआँ दो हफ्ते से ज्यादा नहीं ठहर रहा है। अधिकांश में पुनः बालू भर रहा है। कितनों का जल सूखा जा रहा है। अभी जाड़ा है, गर्मी के दिन आ रहे हैं, उस समय पानी की समस्या बड़ी जटिल हो जायगा। नहीं कहा जा सकता, यदि साफ कराने पर भी कुओं से पानी पर्याप्त नहीं मिला अथवा पानी नहीं ठहर सका, तो रीलीफ कमेटियों से अन्न मिलने पर भी पानी के बिना लोग कैसे जियेंगे क्योंकि रिलीफ कमेटियों के पास जो पैसे हैं उससे वे बहुत कम थोड़ी सहायता पहुँचा सकती हैं।

पशुओं को चारे का अलग कष्ट है। एक तो धान हुआ ही नहीं, जो थोड़ा बहुत हुआ, उसका पुआल कुछ बह गया, कुछ पानी में सड़ कर तहस नहस हो गया। गृह विहीन होने पर लोगों ने आग जला कर तापने और बिछान के काम में कुछ को इस्तमाल किया, इस तरह पुआल सफा हो गया। चारे के अभाव में कितने ही स्थानों में पशु मरने लगे हैं। इस महा विपत्ति का बेचारे किसान किस तरह सामना करें।

इस दुख का अन्त नहीं है। इसलिये कहाँ तक रोया जाय। देहातों की समस्या पर जितना ही विचार किया जाय, उतनी ही ज्यादा संगीन दिखाई देती है और सहायता के साधन उतने ही अपर्याप्त हैं। सिवा भगवान् का स्मरण करने के और कोई सुगम रास्ता इस विपत्ति-सागर से पार होने का नहीं दीखता है।

होली और स्त्री-समाज

लेखिका—श्रीमती मंगलादेवी त्रिपाठी

होली के साथ स्त्रियों का सम्बन्ध प्रारम्भ ही से लगा हुआ है। होली की प्रथा के सम्बन्ध में जितने इतिहास व किम्वदन्ती कथाएँ सुनी जाती हैं, उन सब में स्त्री ही मुख्य पात्र दिखाई देते हैं। शुद्ध और प्रेमपूर्ण होली तो बिना स्त्रियों के हो ही नहीं सकती। श्रीराधाजी और श्रीकृष्ण की होली खेलने का वर्णन कवियों ने जो किया है उसमें भी कितना आनन्द भरा हुआ है। 'खेलिबे को फागु देव नारी सी उतरि आईं फिर ये देव नारायें होली खेलने में 'बाल भरी आनन्द हो कर एक ओर सुन्दरी सखान सँग श्याम लसैं, एक ओर ग्वालन पै प्यारे नन्दवारे हैं' और फिर 'ता दिन पै वारी है दुलारी फाग हो रहा।' कहने का अभिप्राय यह है कि स्त्री पुरुष प्रेम पूर्वक आनन्द के साथ मिलकर होली का त्योहार सदा से मनाते आए हैं।

परन्तु आज वह स्वर्गीय प्रेममयी होली कहीं स्वप्न में भी नहीं दिखाई पड़ती। आज होली के दिन पुरुष जाति स्त्रियों का जो तिरस्कार करती है उसे देखकर सभ्य संसार के आगे देश का माथा झुक जाता है और राष्ट्र का हृदय शर्म से पानी हो जाता है। उस दिन पुरुषजाति के सभी आचार, व्यवहार मदान्धता, विलासिता और उन्मत्तता एवं अनौचित्य की छाप लग जाती है। पुरुष जाति होली के नाम पर सभ्यता, शिष्टता और मनुष्योचित लज्जा को होलिका के साथ जला कर फाल्गुण में भैरवी चक्र स्थापित कर देते हैं। पुरुष जाति के यह सब कारनामे आज कल की समाज में फागुन में बाबा देवर लागे इत्यादि कहावतों के रूप में उनके दुराचार को प्रकट करते हैं। ललनाओं के प्रति होली के दिन का मनुष्यों का कुत्सित व्यवहार उनके सामाजिक जीवन के अधःपतन की अन्तिम सीमा सूचित करता है।

संसार की सभी सभ्य जातियों में विशेष उत्सवों के समय पर कुछ न कुछ उच्छृंखलता पाई जाती है, परन्तु भारतीय पुरुषों के समान पशुत्व को अपना कर मनुष्यत्व को कोई तिलांजलि नहीं दे देता। पशुता और आत्मविस्मृति की भी कोई सीमा होती है। मनुष्य कितना ही विलासप्रिय क्यों न हो जाय, परन्तु वह अपनी माँ, बहनों को भद्दे से भद्दे और अश्लील से अश्लील शब्दों में खुल्लमखुल्ला उन्मत्त हो गर्दभ स्वर से गाली नहीं बक सकता। पर भारतीय उस दिन आर्य महिलाओं को लांछित करने में कुछ उठा नहीं रखते। सच कहती हूँ पशु भी अपने स्त्री समाज के साथ ऐसा बर्ताव नहीं कर सकता। होली के दिन भारतीय पुरुष सामाजिक नियमों को तोड़ते हैं और अपने कलुषित हृदयों के गुब्बार निकाल कर, अपनी उच्छृंखलता चरितार्थ करते हैं। सदाचार को तिलांजलि दे कर, दुराचार को अपनाते हैं और कुवासनाओं की झंडा फहराते हैं।

होली के दिन पुरुष समाज गन्दे कुरुचिपूर्ण स्वांग भर मानवता का दिवाला निकालते हैं। उस दिन पुरुष समाज इतना पतित हो जाता है कि अपनी माता, चाची, बहन, भौजाई साली सरहज, पत्नी अल्प वयस्क युवतियां, कन्याओं मित्र की स्त्री और पड़ोस की अन्य स्त्रियों पर आवाजें कसते हैं। स्त्रियों के सामने अमूल्य रत्नों से भरे अपने साहित्य भंडार का दिवाला निकालते हैं—उस दिन गाने के लिए कोई गाना न मिलने के कारण। क्योंकि श्रृंगार रस के गान प्रेमियों को सूरदास का काव्य सुन पान रुचता ही नहीं, फाग कबीर, धमार रसिया आदि मन को अपवित्र करनेवाले हृदय में मलिनता लानेवाले, निन्दित फूहड़ गान गला फाड़ फाड़ कर गाते हैं, बाल युवा वृद्ध सभी श्रेणी के पुरुष खुरफात एवं अश्लील गान गाते हुए बाजारों में होकर निकलते हैं, और डफ बजा कर उछल-कूद करते मटकते, नाचते गंदी गंदी चेष्टाएँ करते आपे से बाहर हो जाते हैं, अपनी पवित्र वाणी में गुसाइयों एवं स्त्री पुरुषों की सम्बन्ध सूचक रंग रेलियों का घृणित नग्न वर्णन करते हैं। जिसे देख किसी भी पुरुष कहलाने वाले मनुष्य का मस्तक लज्जा से नीचे हो जाता है और सुनकर कानों के कड़े आप ही आप झड़ जाते हैं। उस दिन स्त्रियों का मार्ग निकलना बन्द हो जाता है, जहाँ किसी पुरुष ने किसी स्त्री को देख पाया कि अश्लील गालियाँ बकना शुरू किया। लड़कों तथा युवकों की तो कौन कहे, अस्सी-अस्सी वर्ष के बाबा भी इस समय बेकाबू हो जाते हैं और महा अश्लील कबीरें गाने लगते हैं।

भौजाइयों या साली सरहजों अथवा इस प्रकार की अन्य रिश्ते वाली स्त्रियों से हँसी मजाक करना और जब मुहल्ले या भले घर की स्त्रियाँ रास्ते से निकलती हों, तब गन्दे गन्दे शब्द कहना बहुत बुरी बात है। इस से समाज में कुरुचि और कुसंस्कार पैदा होता है। खास कर स्त्रियों और बच्चों पर इसका बुरा परिणाम पड़ता है। छोटी-छोटी बालिकाओं के अपार के मस्तक पर बड़ा कुत्सित प्रभाव पड़ता है। बचपन से ही उनमें कुरुचि का संस्कार बढ़ता है। बच्चे जब अपने पिता चाचा भाई आदि को गालियाँ देते हुए देखते हैं और सुनते हैं, तो वे समझते हैं कि यह भी कोई अच्छी बात होगी। बस वे अपने बड़ों की नकल करने लगते हैं और इन बुरे ऐबों से उनमें पढ़ने लिखने आदि अच्छी बातों से घृणा पैदा हो जाती है, कुवासनाओं की ओर उनकी अभिरुचि बढ़ने लगती है। इस प्रकार बचपन में ऐसी आदत पड़ जाने से वे ही फिर दुश्चरित्र बन जाते हैं। न मालूम अपने से छोटे और बड़ों के सामने पुरुष लोग होली के दिन भद्दी गालियाँ गाने का साहस ही कैसे कर लेते हैं। छोटे-छोटे बच्चों के सामने पिता को और बड़े-बूढ़े के सामने लड़कों को अश्लील बातें कहते हुए लज्जा आनी चाहिये। छोटे बड़े का लिहाज होना भी चाहिये। इन पुरुषों में होली खेलने की आड़ में प्रायः व्यभिचार को उत्तेजना मिलती है।

अस्तु प्रत्येक समाज हितैषी सज्जन का यह कर्तव्य है, कि वह अपने घर से इस गन्दगी को दूर करे। अपनी गृह देवियों को होली की वास्तविकता बतला कर, उन्हें कुपथ से बचावे। स्त्रियों को समझावे कि वे सदैव विचार करें, कि हमारे पुत्र प्रहलाद की तरह तेजस्वी, बलवान गुणवान हों, तभी हमारा सन्तानवती होना सफल होगा। इस प्रकार स्त्रियों के सुधारने के साथ साथ पुरुषों को भी चाहिये कि मूर्ख स्त्रियों के रंग डालने या छेड़ छाड़ करने पर स्वयं अपने पर काबू रखें और स्वयं उस गन्दगी में शामिल न हों। इसके सिवा सब प्रकार की स्त्रियों को माँ बहनों के समान देखकर उनके प्रति अपशब्द-गन्दे वाक्य आदि न बोलकर उन्हें पूज्य दृष्टि से देखे जायँ। इस सुधार के लिये जो कुछ भी प्रयत्न हो सके, किये जायँ।

शाम का 'प्रोग्राम' बन ही रहा था कि एक आदमी ने हठात् प्रवेश करके कहा—आज तो रावण वध है न! लेकिन ठाकुर साहब तो आज ९ महीने से बीमार पड़े हैं, रावण बनेगा कौन?

मुखिया ने चिन्तातुर होकर कहा—हाँ, प्रश्न तो विचारणीय है। बैठे ४० बरस हो गए, हर साल ठाकुर साहब बना करते थे, कभी नागा न पड़ा, मगर अबकी बीमारी ने लाचार कर दिया। और फिर पार्ट किससे याद होगा?

भानू बोला—पार्ट तो मान लो किसी को याद भी हो, मगर वह डीलडौल कहाँ?

इतने में पीछे से कोई बोल उठा—ठाकुर मंगलसिंह को क्यों नहीं बना देते? डीलडौल भी खूब है और लीला देखते देखते पार्ट भी थोड़ा बहुत याद ही होगा।

मंगलसिंह बुलवाए गए। मुसकुराकर बोले—अरे! क्यों बुढ़ौती में जलील करते हो!

लोगों ने कहा—वाह! आपने भी खूब कहा। राम जी का काम है और फिर वक्त के वक्त किसको पकड़ें?

ठाकुर साहब चारपाई पर पड़े करवटें बदल रहे थे—आज तो रावण वध है शायद! क्या जरूर है? लेकिन अबकी यह लीला होगी कैसे? करेगा कौन? आह! कमजोर बहुत हूँ, नहीं तो एक बार तो हिम्मत करता।

इतने में बहुत से लोग भीतर आए। राम राम करके बैठ गये। मुखिया बोला—ठाकुर दादा! अबकी तो तुम बीमार पड़ गए। नहीं तो यह सब झंझट क्यों होता? जरा अपनी पोशाक दे दो, तो आज का काम चल जाय।

ठाकुर

लेखक—श्रीयुत बलदेवप्रसाद मिश्र

ठाकुर सहारा लेकर उठ बैठे। तेवरों में बल पड़ गए। तीखे स्वर में कहा—कौन बनेगा?

मंगलसिंह लजाकर बोले—भैया अबकी तो इन लोगों ने मुझे जोता है।

ठाकुर के माथे पर सिकुड़ने पड़ गईं। मुँह नीचा कर गम्भीर भाव से बोले—हूँ!

थोड़ी देर सन्नाटा रहा। मुखिया ने फिर धीरे से कहा—तो दादा! जरा दे दो।

ठाकुर ने मुँह ऊपर उठाया। बोले—अब की लीला बन्द कर दो या दो चार दिन बाद मैं अच्छा हो जाऊँ, तब करना।

लेकिन मुखिया की आँखों ने बताया कि दोनों ही बातें असम्भव हैं और पीछे कोई धीरे से हँस पड़ा। मुखिया ने आँखें तरेर कर उधर देखा और तब फिर ठाकुर से पोशाक माँगी।

ठाकुर ने क्रुद्ध होकर कहा—तो जाओ, नहीं मिलेगी।

मुखिया ने नरम होकर कहा—दादा! लड़के की हँसी पर ध्यान न दो। पोशाक दे दो जरा!

ठाकुर ने चिल्ला कर कहा—नहीं नहीं, सब लोग चले जाओ! किसी के बाप का है! क्यों दूँ?

लोग धीरे धीरे उठे और कमरे के बाहर हो गए।

उनके जाते ही ठाकुर जैसे थक कर चारपाई पर गिर पड़े और आँसू निकलने लगे। सोचने लगे—बाहर दुनिया! ४० बरस से बिना नागा मैं रावण-वध वाले दिन रावण बनता रहा। जरूरी-से-जरूरी काम छोड़ दिये। इसके पीछे कितने नुकसान सहे! स्त्री बीमार थी, लेकिन मैं गया और मेरे आने के पहले ही वह मर चुकी थी! हाय बेचारी की अन्तिम अभिलाषा भी पूरी न कर सका!

और आज! क्यों कोई वे बातें याद करने लगा? मुखिया ही को देखो। जरा सा कहना न माना और मंगलसिंह का मैंने क्या बिगाड़ा था—अगर यह तैयार न हो जाता, तो देखता कौन कर लेता?

ठाकुर की इच्छा हुई कि वह दौड़े और दिखावे कि मंगलसिंह उसके सामने कुछ नहीं है, पर उठ न सका। बस पड़ा पड़ा रोने लगा।

—अरे मंगल! निर्दयी! तुझे जरा भी तरस न आया! मेरी बुढ़ौती का भी ख्याल न किया!

सहसा उसका ध्यान लीला की ओर गया। वह व्यग्र हो उठा।—अब रावण गढ़ से निकलता होगा! अकड़ता और बफ़रता हुआ।

ठाकुर अकड़ता हुआ उठा। फुर्ती से एक गठरी खोली। रावण वाली पोशाक निकाली। सब कपड़े झाड़े और झट से पहन लिए। हाथ में धनुष-बाण लिया और पैंतरे से टहलने लगा।

अब रावण निकल चुका होगा! लड़ाई छिड़ गई होगी। रावण बाण मारता होगा यों और सन-सन करते हुए तीर सामने की दीवाल से टकरा कर गिरने लगे। ठाकुर दौड़-दौड़ कर उन्हें उठाता था और फिर छोड़ता था। कभी-कभी अपने किसी अंग को जरा सिकोड़ कर तुच्छता से उसको ओर देखता था जैसे उसके भी तीर लग रहे हों।

सहसा एक ओर की आवाज उसके कानों तक आई। वह ठिठक गया। उसे याद आया, कि ऐसी तीसरी आवाज के साथ ही रावण-वध होता है।

वह और भी फुर्ती से पैंतरे बदलने लगा। फिर आवाज आई। वह खड़ा हो गया। पैंतरा ठीक करके तीर तानी। सारा शरीर अकड़ रहा था। अब उसने साँस रोक लिया। आँखों में जरा लालिमा आई और वह खड़ा था। तीसरी आवाज कान में पड़ते ही कान तक खिंचा हुआ तीर 'सरसे' छूटा और दीवाल से टकरा कर, दो टुकड़े होकर गिर पड़ा। इधर ठाकुर के हाथ झुके, आँखें झपीं, पैर लड़खड़ाये और वह गिर पड़ा।

× × ×

लीला खतम होने पर कुछ लोग उसे चिढ़ाने के लिये वहाँ का समाचार देने उसके पास गये। देखा—ठाकुर पड़ा है। दोनों पैर कमान से जरा ऊपर उठे हुए हैं, हाथ में धनुष है और जान निकल चुकी है।

: प्रगतिशील जर्मनी का सिंहावलोकन :

लेखक—श्रीयुत कामेश्वर शर्मा, 'कमल' साहित्य भूषण

पूर्व पश्चिम रेखा के ऊपर एक और रेखा खींचने से प्रशिया के भी दो भाग हो जाते हैं। इन दो भागों के नाम पूर्व एल्बा और पश्चिम एल्बा रखे जाते हैं। पहले भाग में हेनोवर, हेसी-नोसा, राइनलैंड और वेस्टफालिया प्रान्त आते हैं, और दूसरे भाग में खेती के लिए उपयोगी प्रशिया का नीचे का भाग और मेकलेनबर्ग इन दो प्रान्तों का समावेश होता है। एल्ब नदी के पूर्व के इस भाग को जर्मन राष्ट्र का धान्यकोठार कहें, तो उपयुक्त होगा, क्योंकि एक वर्ष में जितना गेहूँ और राई (Rye नामक धान्य है) खर्च होता है, उसका दो तृतीयांश इस प्रान्त में उत्पन्न होता है।

उत्तर जर्मनी में (हम्बर्ग और ब्रेमेन इन दो प्रान्तों को छोड़कर) कान्जरवेटिव लोगों का बल अधिक है। जर्मनी का इतिहास मुख्यतया इस पक्ष के लोगों के मतानुसार ही सिद्ध हुआ है, इतना ही नहीं परन्तु हाल में जो व्यवस्था प्रच लित है, वह भी इन लोगों के अनुकूल है।

प्रशिया की सम्पत्ति अपूर्व है, सुधारों में भी वह आगे बढ़ा हुआ है, राज्य व्यवस्था भी वहाँ ठीक है, और सैनिक पद्धति नमूनेदार है परन्तु राजकाय बातों में प्रशिया अभी तक पीछे पड़ी हुई है। इसके विपरीत दक्षिण जर्मनी की छोटी छोटी संस्थाएँ इस सम्बन्ध में आगे बढ़ी हुई हैं।

उत्तर जर्मनी और दक्षिण जर्मनी में करीब पचास वर्ष से लोकमत के अनुकूल राज्य व्यवस्था है परन्तु इन दोनों प्रदेशों में जो भिन्नता थी, वह अभी तक चली आती है। लगभग साठ वर्ष से प्रशिया में पार्लमेंट सभा है परन्तु उसे प्रजा ने अपनी सामर्थ्य से प्राप्त नहीं की है। राजा ने खुशी से स्वयं प्रजा को यह हक दिये हैं। इन हकों से संतोष मानना और राजा की इच्छा के विरुद्ध कुछ न करना, यह प्रशियन राजनीति का मुख्य तत्व है। राजा से लड़ने के लिये प्रजा के पास पर्याप्त सहाय नहीं है क्योंकि जिन लोगों का राज्य दर्बार में मान है, वह कान्जरवेटिव पक्ष के हैं, और वह हमेशा राजा के पक्ष में रहते हैं। मात्र दक्षिण में इससे भिन्न स्थिति है। वहाँ आरम्भ से ही लिबरल पक्ष की सत्ता विशेष है। राजा की सत्ता अंकुशित हो, प्रजा के हाथ में आवे यही उनका ध्येय है और उसको साध्य करने के मार्ग ढूंढ रहे हैं।

उत्तर और दक्षिण की संस्कृति में भी भेद है। उत्तर के लोग हृदय से कठोर, रूक्ष स्वभाव और बे शरम हैं। इससे भिन्न दक्षिण के लोगों में सुजनता भरी हुई है, और उनका स्वभाव आनन्दी, और दिलवर है। उनकी रहने की पद्धति आडम्बर युक्त अथवा ठाट-बाट वाली नहीं है, वह अपना जीवन आनन्द और सुख से व्यतीत करते हैं।

ऐल्ब नदी के पश्चिम का भाग जर्मनी के सुप्रसिद्ध उद्योग धन्धों का मुख्य स्थल है, परन्तु ऐल्ब नदी के पूर्व का भाग देखिये तो केवल प्रशिया को ही नहीं, परन्तु समस्त जर्मन देश की धान्य भूमि है। वहाँ कारखाने इत्यादि कुछ नहीं हैं। वहाँ धान्य के सिवाय 'बीट' नाम की कद पकती है और उसमें से खाँड तैयार होती है। पूर्व भाग में और पश्चिम भाग में धार्मिक दृष्टि से कोई विशेष सम्बन्ध अथवा भेद नहीं है। चारों तरफ प्रोटेस्टेन्ट और केथोलिक समाज बटे हुए हैं। प्रशिया में रोमन केथोलिकों की संख्या इतनी अधिक है कि जर्मनी की समस्त जन संख्या के एक तृतीयांश केथोलिक यहां हैं। प्रशियन राज्य की सम्पत्तिक दृष्टि से जो भिन्नता है, उसका असर वहाँ के बड़े बड़ शहरों के जन समाज पर पड़ा है। पूर्व भाग में जन-संख्या थोड़ी है, और गाँव तथा शहर एक दूसरे से दूरी पर बसे हुए हैं। प्रशिया में एक लाख की जन संख्या वाले २८ बड़ शहर हैं इनमें से बहुत से नगरों की जन-संख्या एक लाख से भी अधिक है।

इसमें से ९ पश्चिम भाग में, ४ पूर्व भाग में है और शेष कुछ उत्तर में और कुछ दक्षिण में तथा कुछ बरलिन के आस-पास मध्य भाग हैं। पूर्व भाग में उद्योग कम है, और इस कारण से वहाँ की जन-संख्या थोड़ी है। पश्चिम में लोह और कोयले की बहुत खानें हैं। उन खानों में काम करने के लिये बहुत से मजदूर पूर्व से पश्चिम को आते हैं। यह क्रम गत पचास वर्ष से इसी प्रकार से चल रहा है। बड़-बड़ कारखानों में और खानों में काम करने से बहुत मजदूरी मिलने के कारण मजूर वर्ग में लालच बहुत बढ़ गया है, और इससे पूर्व की खेती को बड़ा नुकसान होने लगा है।

पूर्व और पश्चिम में एक महत्व का भेद यह है कि पूर्व की खेती का क्षेत्र बहुत बड़ प्रमाण में है, और पश्चिम में थोड़ो-बहुत जो कुछ है, वह बहुत थोड़े प्रमाण में फैली हुई है। जमीन की व्यवस्था की पद्धति भी भिन्न भिन्न है। हमारे हिन्दुस्तान में जिस प्रकार से बड़े बड़े जमींदार हैं, वैसे ही पूर्व भाग में हैं और वह स्वतंत्र हैं। इस कारण से प्रशियन राज्य के इस भाग को नागरित्व के जितने अधिकार मिलना चाहिए थे, उतने नहीं मिले, इतना ही नहीं परन्तु स्थानिक स्वराज्य के हक भी बहुत संकुचित हैं। इस भाग में 'फ्यूडल सिस्टम' की ढंग का एक सिस्टम है, जिसे 'मेनोरियल सिस्टम' संज्ञा दी गई है। इस पद्धति के अस्तित्व में होने से बड़े बड़े जमादार अपने से छोटे जमींदारों तथा प्रजा के ऊपर बड़ा अत्याचार करते हैं। इस स्थिति को सुधारने के लिये स्टान नाम के गृहस्थ ने बड़ा प्रयत्न किया था। इस गृहस्थ ने, बड़े बड़े श्रीमन्त अपने हाथ के नीचे के लोगों के साथ किस प्रकार का गुलामी का बर्ताव रखते हैं इसको जन-समाज की दृष्टि के समक्ष रखने के लिये बड़-बड़ लेख लिखे थे। स्टोन के इस प्रयत्न से सरकार का ध्यान इसके तरफ बहुत शीघ्र गया और इस पद्धति को बन्द करने लिये प्रशियन पार्लमेंट ने कई कानून पास किये। ये

क़ानूनें जब से अमल होने लगे, तब से इन लोगों की गुलामगीरी छूटी है, स्वातंत्र सुख का थोड़ा थोड़ा अनुभव उन लोगों को होने लगा है ; परन्तु इतने से नागरिकता के सर्व हक़ उनको पर्याप्त नहीं हुए हैं।

पूर्व प्रशिया में पुरानी पद्धति अभी तक जारी है। वहाँ के जागीरदारों को अपनी जागीरों में दिवानी, मुल्की और फौजदारी अधिकार प्राप्त हैं। इस स्थिति को सुधारने के लिये एक पार्लमेन्ट के समक्ष एक बिल रखा गया था ; परन्तु इन लोगों ने उसको पास नहीं होने दिया। सं० १८९२ में जैसे तैसे एक क़ानून पास हुआ ; परन्तु उससे भी प्रजा को सच्चा स्थानिक-स्वराज्य नहीं मिला।

प्रशियन राज्य के पूर्व भाग के सांपत्तिक और सामाजिक स्थिति में पीछे रहने के और भी कई कारण हैं। यहाँ एक ही मालिक के पास हजारो एकड़ जमीन रहने से वहाँ के लोगों में जगत् से पीछे रहने की प्रवृत्ति विशेष मालूम होती है, और इससे बहुत हानि उठाते हैं। जमीन के मालिक और उसके जोतने वाले शहरों से दूर रहने के कारण शहर निवासियों की सामाजिक, सांपत्तिक, औद्योगिक और राजकीय प्रगति किस प्रकार से होती है, इसकी तरफ उनका लक्ष नहीं जाता। जागीरदार समझते हैं कि उनके हाथ में सत्ता है, उनकी इच्छा और आज्ञा के विरुद्ध उनके नीचे मनुष्य किसी दशा में भी नहीं जा सकते, इतना ही नहीं, परन्तु किसी बात में चूँ भी नहीं कर सकते। इस प्रकार से सत्ता के नीचे दबे हुए लोगों की यदि सामाजिक उन्नति न हो और बुद्धि विकास न करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

ऐल्ब और विश्चुला नदी के बीच का प्रदेश बहुत दिनों तक स्लाव जाति के हाथ में था, उस काल में वहाँ के लोगों की स्थिति अच्छी थी। परन्तु जब से जर्मन लोगों की सत्ता में यह प्रदेश गया है, तब से जो अवनति आरम्भ हुई है वह अभी तक लेश मात्र भी नहीं बदलती है। वहाँ की जमीन को फलद्रूप बनाने के लिये प्रशियन सरकार ने अनेक प्रयत्न किये हैं ; परन्तु अभी तक कोई इष्ट फल नहीं मिला।

राजकीय सबब में जर्मनी का दक्षिण भाग उत्तर भाग की अपेक्षा अधिक बढ़ा चढ़ा है। जर्मनी के कान्सरवेटिव सुधार के पूर्ण द्वेषी हैं, और चलती हुई गाड़ी को रोकने का गुण उनमें विशेष है। इस स्वभाव के व्यक्ति जितने प्रशिया के पूर्व भाग में हैं, उतने जर्मनी के अन्य किसी भाग में क्या समस्त यूरोप में भी नहीं मिलेंगे।

पार्लमेन्ट की बहुत सी स्थान इन नवाबों ने हस्तगत कर रखे हैं। शिक्षा के सम्बन्ध में भी यह लोग अधिक उदारता नहीं दिखलाते। प्रशिया में शिक्षा की व्यवस्था जितनी उत्तम है, उतनी किसी अन्य देश में नहीं, ऐसा उनका विचार है। प्रशिया में जो शिक्षण उत्तम गिना जाता है, वह अन्य देशों में कम मिलता है ; परन्तु यह होते हुए भी ग्राम्य शालाओं के शिक्षण कार्य में अब भी बहुत कमी है, और वहाँ जो शिक्षा दी जाती है, वह उच्च कोटि की नहीं होती। विद्यार्थियों की संख्या के प्रमाण में शिक्षकों का अभाव, होशियार परन्तु थोड़ा वेतन पाने वाले शिक्षक, खर्च में कंजूसी करने वाले व्यवस्थापक, और द्रव्य के अभाव से प्रयोग शालाओं का अभाव ; इन सब कारणों के कारण विद्यार्थियों को अल्प शिक्षा मिले यह स्वाभाविक है। इसके लिये प्रशियन सरकार दोषी नहीं ठहराई जा सकती। इस स्थिति को सुधारने के लिये सरकार हर प्रकार के उपायों की योजना करती है, परन्तु लोक प्रतिनिधि की तरफ से जितनी उन्हें चाहिये, उतनी सहायता नहीं मिलती, इससे वह उपाय फल दाता नहीं होते। ऐल्ब नदी के पूर्व भाग से जो प्रजा के प्रतिनिधि आते हैं, वह अपनी पुराण प्रियता छोड़कर, सरकार के प्रयत्न को उत्कृष्ट बनाने की इच्छा करें, तो देखते देखते यह स्थिति नष्ट हो सकती है।

(क्रमशः)

विदेश - वार्त्ता

मध्ययूरोप की अशान्ति

लेखक—श्रीयुत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री डाक्टर एंजलबर्ट डालफस को फासिस्ट शासन प्रणाली का अनुसरण करते देखकर, वहाँ के साम्यवादी एक लाखों ने असन्तुष्ट होकर जो विद्रोह कर दिया था, उसके समाचार पाठकों ने यथा समय दैनिक पत्रों में पढ़े ही होंगे, विद्रोहियों की तैयारी का अनुमान लगाकर और उनके प्रति फ्रांस, बृटेन, रूसआदि के साम्यवादियों को भी सहानुभूति प्रकट करते देखकर ऐसा नहीं प्रतीत होता था, कि आस्ट्रिया की सरकार इतने कम समय के भीतर ही उन्हें कुचल डालेगी, पर हुआ यही। हाइमवेह्र दल की सहायता से, जो फासिस्ट प्रणाली का समर्थक है, डालफस को साम्यवादियों का दमन करने में विशेष कठिनाई नहीं हुई।

जर्मन आक्रमण का भय

डाक्टर डालफस और उनके मित्र हाइमवेह्र दल के एक प्रमुख नेता, मेजर के विद्रोही साम्यवादियों को वश में करने के बाद अभी अच्छी तरह साँस भी नहीं लेने पाये थे, कि उनके सामने जर्मन आक्रमण का भय उपस्थित हो गया। आस्ट्रिया के नाजियों का दमन करने में भी डालफस की सरकार ने कोई कोशिस बाकी नहीं रखी थी, किन्तु उन्हें जर्मन नाजियों द्वारा गुप्त रूप से सहायता मिलती रहने के कारण यह नीति सफल नहीं हो सकी। आस्ट्रिया की ओर से जर्मनी की इस ऐसा हरकत का विरोध भी किया गया और यह स्पष्ट कह दिया गया, कि जर्मनी यदि आस्ट्रियन नाजियों को प्रोत्साहन देने की नीति का परित्याग नहीं करता, तो मामला राष्ट्र संघ के सम्मुख उपस्थित किया जायगा, किन्तु जर्मनीने आस्ट्रिया के विरोध की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

इस बीच में डाक्टर डालफस को साम्यवादियों का संघटन नष्ट करने में तत्पर देखकर, जर्मनी ने ख्याल किया कि सम्भवतः अब वे नाजियों के साथ सुलह कर लेंगे, किन्तु उसे शीघ्र ही विदित हो गया, कि ऐसी आशा करना व्यर्थ है। अब उसने फिर आस्ट्रिया के नाजियों को उकसाना शुरू किया। उनके एक बड़े नेता श्री हैबिक्त ने जो कुछ समय से जर्मनी के म्यूनिच शहर में रहते हैं, अन्तिम सूचना के तौर पर एक पत्र आस्ट्रियन सरकार के पास भेजा। इसमें स्पष्ट रूप से यह चुनौती दी गई थी, कि एक सप्ताह के भीतर सरकार नाजियों से मेल कर ले, और उनसे सहयोग करना स्वीकार करे, नहीं तो परिणाम अच्छा न होगा।

इसी समय आस्ट्रिया की सीमा पर जर्मन सेनाएँ भी इकट्ठी होने लगीं, जिससे आस्ट्रिया ही नहीं फ्रांस और इटली भी चौकन्ने हो गये। २५ फरवरी को इटली ने अर्द्ध सरकारी तौर पर घोषणा करदी कि हमने आस्ट्रिया की स्वाधीनता की रक्षा करने का निश्चय कर लिया है और आवश्यकता हुई तो इसके लिये शस्त्र भी ग्रहण करेंगे। इसी तरह लघुराष्ट्र मण्डल के देशों में भी खलबली मच गई।

आस्ट्रिया ने परिस्थिति का सामना करने के लिये तुरन्त अपनी फौजें उत्तर की ओर रवाना कर दीं और चिन्तित भाव से हैबिक्त द्वारा दी गई अवधि की समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगा। जर्मनी की नीयत का ख्याल कर विजयी राष्ट्रों ने आस्ट्रिया को अपनी सेना बढ़ाने की अनुमति पहले ही दे दी थी, किन्तु जितनी सेना तैयार रखने की इजाजत उसे दी गई थी, उससे सन्तुष्ट न हो कर अनियमित रूप से वह और भी अधिक बड़ी सेना प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता रहा है। गत १ मार्च के तार से स्पष्ट है कि सेंट जर्मेन की सन्धि के अनुसार उसे जितनी सेना रखने का अधिकार है, उसकी अपेक्षा चौगुनी अर्थात् लगभग एक लाख बीस हजार सेना इस समय उसके पास है।

अन्य राष्ट्रों का रुख

इस मामले में बृटेन, फ्रांस, तथा युद्ध के बाद बने नये राष्ट्र अपना रुख पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं। वे आस्ट्रिया को जर्मनी से अलग रखना चाहते हैं, क्योंकि उनका स्वार्थ इसी में है। उन्हें इस बात का भय बना हुआ है कि यदि आस्ट्रिया पर भी जर्मनी का प्रभाव स्थापित हो गया, तो फिर उसकी शक्ति बहुत बढ़ जायगी और वह पुनः पड़ोसी राज्यों के लिये खतरनाक हो जायगा। इसी से मित्र राष्ट्र शुरू से ही इस बात का प्रयत्न करते रहे हैं कि दोनों में परस्पर घनिष्ठता स्थापित न होने पावे। आर्थिक संकट के समय उन्होंने बहुत सा रुपया कर्ज देकर आस्ट्रिया की सहायता भी की, जिससे वह इनके एहसान से दब गया और उसे लाचार होकर इनका रुख देखकर चलना पड़ा।

मित्र राष्ट्रों ने और भी कई उपायों का सहारा लेकर आस्ट्रिया को जर्मनी के विरुद्ध भड़काने की कोशिस की। उनकी ओर से जर्मनी के खिलाफ गुप्त रूप से प्रचार कार्य भी किया गया, किन्तु इसपर भी जब वहाँ नाजियों का प्रभाव बढ़ता गया, तब उन्होंने डालफस की सरकार को नाजियों का दमन करने में बढ़ावा देना शुरू किया। बृटेन तथा फ्रांस ने स्पष्ट रूप से आस्ट्रिया के प्रति सहानुभूति प्रकट की और डाक्टर डालफस की नीति का समर्थन किया। इस सम्बन्ध में बृटिश परराष्ट्र मंत्री सरजान साइमन ने कुछ दिन पहले कहा था कि बृटिश सरकार आस्ट्रिया की स्वतन्त्रता अक्षुण्ण बनाये रखने के पक्ष में है और इस उद्देश्य की रक्षा के लिए वह अपना प्रभाव अवश्य काम में लावेगी।

आस्ट्रियन साम्यवादियों के निष्ठुर दमन से अवश्य ही बृटेन और फ्रांस को थोड़ा बहुत दुख हुआ होगा, क्योंकि उससे वैध शासन का अन्त और फासिस्टी शासन का प्रभाव बढ़ाने की सम्भावना उपस्थित हो गई है। फिर भी उन्होंने इसका विरोध नहीं किया। सम्भव है, उन्होंने यह ख्याल किया हो कि साम्यवादियों का दमन हो जाने से डालफस की शक्ति बढ़ जायगी और वे नाजियों का प्रभाव नष्ट करने में अधिक दृढ़ता के साथ अग्रसर हो सकेंगे। किन्तु अब उनकी आँखें खुल गई होंगी। हाइमवेह्र-दल के नेता प्रिन्स स्टारहेम्बर्ग को आस्ट्रिया में भी फासिस्ट शासन प्रणाली जारी करने की आवश्यकता पर जोर देते देखकर और इटली आस्ट्रिया तथा हंगरी का नया गुट बन जाने की सम्भावना से फ्रान्स की तो नींद ही हराम हो गई होगी, क्योंकि जर्मनी की तरह वह इटली की भी प्रभाववृद्धि को अपने लिए खतरनाक समझता है।

आगे क्या होगा ?

श्री हैबिक्त द्वारा दी गई अवधि की समाप्ति पर जिस भयकर विप्लव के उठने की सम्भावना समझी जाती थी, वह फिलहाल टलगई है। कहा गया है कि हिटलर और हैबिक्त में कुछ मत भेद उत्पन्न हो गया है और नाजी नेता आस्ट्रियन सरकार को दी गई मोहलत का समय और बढ़ा देने का विचार कर रहे हैं। इसी से पहले दी गई अवधि समाप्त होने पर कुछ आतशबाजी छोड़ने तथा दो चार धुएँ के बम फेंकने के सिवा नाजियों की ओर से और कोई उपद्रव नहीं किया गया।

हमारा तो ख्याल है, कि यह सब बहाने बाजी है। हिटलर फ्रांस की नाराजी का भलेही ख्याल न करें, वे इतने नासमझ नहीं, कि उतावली में आकर कोई ऐसा काम कर बैठें, जिससे जर्मनी और इटली में अनबन हो जाय। जर्मनी के प्रति इटली का रुख अभी तक बहुत कुछ सहानुभूति पूर्ण रहा है, अतः हर हिटलर भरसक इस बात की चेष्टा करेंगे, कि मुसोलिनी उनसे रुष्ट होकर उनके विरोधी न बन जावें, इस समय जर्मनी की जो हालत है, उसे देखते हुये यही प्रतीत होता है, कि वह इटली के सदृश मध्य तथा दक्षिण यूरोप के शक्तिशाली राज्य से शत्रुता मोल लेने की मूर्खता कदापि न करेगा। उसे पहले की ही तरह अप्रत्यक्ष रूप से आस्ट्रिया के नाजियों की सहायता कर तथा वहाँ अपने पक्ष की बातों का प्रचार कर अपनी तसल्ली कर लेनी होगी।

रही इटली की बात, सो इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन ही है। सम्भव है, आस्ट्रिया और हंगरी को अपने प्रभाव में लाकर और उनके साथ आर्थिक समझौता कर वह अपना एक नया गुट बनाने में सफल हो जावें, किन्तु यह प्रायः निश्चित मालूम होता है, कि आस्ट्रिया में राजतन्त्र स्थापित कराने और हैप्सबर्ग वंश के आर्कड्यूक ओटो को पुनः गद्दी दिलाने की उसकी चेष्टा सफल नहीं हो सकती। फ्रांस तथा जेकोस्लोवेकिया इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से अपना विरोध प्रकट कर चुके हैं। जो हो, इटली का बदला हुआ रुख मध्ययूरोप में शीघ्र ही कोई नया रंग लायगा, इसमें सन्देह नहीं।

भारतीय किसानों का कृषि संबंधी प्राकृतिक भौगोलिक ज्ञान

लेखक—श्रीयुत ठाकुर राजेश्वरीप्रसादसिंह

(गतांक से आगे)

'अगम बुद्धी बानियाँ, पच्छिम बुद्धी जाट।
तुरत बुद्धी तोरकाँ, ब्राह्मण सठ्यम पाठ॥'

बनियाँ बात को आगे (अगम) सोचता है अर्थात् दूरदर्शी होता है—झट हानि लाभ को समझ लेता है और जाट बहुत ही कमअक्ल होते हैं, उन्हें बातें हो जाने पर सुझाई देती हैं। तुर्क तुरन्त समझ लेता है और सोच लेता है, लेकिन ब्राह्मण बड़े ही भेदुर स्वभाव के होते हैं अर्थात् भोले भाले होते हैं जो चाहे उन्हें बेवकूफ बना दे, ठग ले, उन्हें पता नहीं लग सकता।

'जगल जाट न छेड़िये, हाट बैठि के राढ।
रंघड़ कबहुँ न छेड़िये, जब तब करै बिगाड़॥'

सुनसान जगह अर्थात् जंगल में जाट को नहीं छेड़ना चाहिए, नहीं तो वहाँ कोई मददगार नहीं मिलेगा, वह मार डालेगा। हाट (बाजार) में बनिये से सौदा लेते समय बहस तथा झगड़ा कभी नहीं करना चाहिए, वर्ना अपना कसर सौदे में निकाल लेगा। रँघड़ (एक प्रकार की जाति) को कभी नहीं छेड़ना चाहिए, क्योंकि उसका कोई ठिकाना नहीं कि कब विनाश कर डालेगा।

'जेठ बीती पैहल पड़वा जे आषो बर हरे।
आसाढ़ सावन काढ़ कोरो भादों में बिरखा करे॥'

ज्येष्ठ मास बीतने पर असाढ़ के पहले दिन यदि बादल गरजे, तो समझना चाहिए कि असाढ़ तथा श्रावण मास बीतने पर भादों मास में वर्षा होगी।

'तीतर पखा बादली, विधवा काजल रेख।
वा बरसै वा घर करै इसमें मीन न मेख॥'

तीतर के पंख की तरह यदि बादल हो और यदि विधवा काजल लगाती हो, तो समझना चाहिए कि पहला अवश्य बरसेगा और दूसरी अवश्य पति करेगी।

'सावन पहली सुदन्नू जब बादल घन बीज।
ताता राखो बैठिया सूँबे राखो बीज॥'

श्रावण से पहले असाढ़ सुदी नवमी को यदि बदली घिरे और बिजली चमके तो समझना चाहिए कि अवश्य वर्षा होगी। बैल और बीज तैयार रखना चाहिए।

'आसाढ़ सुद अष्टमी, नहिं बादल नहिं बीज।
हल फाड़ो ईंधन करो, ऊभा चाबो बीज॥'

यदि असाढ़ बदी अष्टमी को न तो बादल दिखाई दे, न बिजली चमके, तो समझना चाहिए कि पानी नहीं बरसेगा। हल को फाड़ ईंधन के काम में लाना चाहिए, बेकाम है। अकाल पड़ेगा। बीज खा डालो।

परभाते गह डँबरा, साँझे सीरो बाव।
डक कहे हे भड्डली, काला तना सभाव॥

यदि सुबह बादल आकाश में छा जाय और शाम को ठंडी हवा चले, तो अकाल पड़ेगा—वर्षा न होगी।

'बाव के सूतै सूतै बाँव।
काहे के बैद बसावे गाँव॥

भोजन करने के बाद पेशाब करना चाहिए और थोड़े समय के लिए बाएँ करवट सो जाना चाहिए। जो यह काम करता रहता है, उसे वैद्य की आवश्यकता नहीं पड़ती, इससे गाँव में बसान की भी जरूरत नहीं होती।

सावन साग न भादों दही। क्वार दूध न कातिक मही
अगहन जीरा पूस के धान। माघ कठाका फागुन चना॥
चैत के गुड़ बैसाख के तेल जेठ के पंथ असाढ़ के बेल।

श्रावण में साग, भादों में दही क्वार (आश्विन) में दूध, कार्तिक में माठा, अगहन में जीरा, पूस में धनियाँ, माघ में उपवास, फागुन में चना, चैत में गुड़, वैशाख में तेल, जेठ में राह चलना तथा असाढ़ में बेल (श्रीफल) आदि सेवन करना एकदम मना है, इनसे बड़ा नुकसान पहुँचता है। (क्रमशः)

काशी म्युनिसिपल बोर्ड

शिक्षा-विभाग की ज्यादती

, २४ फरवरी से लेकर २६ तक काशी म्यूनिसिपल बोर्ड के शिक्षा विभाग का वार्षिकोत्सव था। कहाँ पिछले बोर्ड के समय का श्री रामेश्वरसहाय के युग का सुन्दर राष्ट्रीय भव्य उत्सव और कहाँ सरकारी वातावरण में, दम घुटता सा कृत्रिम और खोखला उत्सव ! सबसे मार्के की बात यह थी, कि उत्सव के समय इतनी बद इन्तजामी थी, कि किसी का इनाम किसी को और किसी का किसी गैर को मिल गया। मास्टरों के चेहरे और पोशाक से न तो कोई राष्ट्रीयता टपकती थी और न पिछले दिनों के समान पोशाक की 'यूनिफार्मिटी' थी। उत्सव के बाद एक बात और भी मार्के की हुई। म्युनिसिपैल्टी का टाट वगैर जो समान था, वह ढोकर मास्टर लोग समाज खींचते सड़क पर दिखलाई पड़ रहे थे।

पर, उत्सव के समय जो मास्टर सबसे अधिक मिहनत कर रहे थे, तथा उद्योग विभाग की सफलता दिखलाने की जी तोड़ कोशिश कर रहे थे और इस बात की चेष्टा में थे, कि उद्योग का शिक्षा की सरकारी बोर्ड के सामने जो लीला व्यक्त हुई है, वह छिपी रहे, उन्हें पुन होलिकादहन की सन्ध्या को बड़ा अच्छा पुरस्कार मिला—वे तीन महीने की नोटिस पा गये—निकाल दिये गये। यह कितना हृदय हीनता है, कि सात अभागे मास्टरों का त्योहार चौपट कर दिया गया। अगर नोटिस को वार्षिकोत्सव में छिपाया गया, तो तीन दिन और छिप सकती थी, क्या हमारे पद को अपना पद न मानने वाले शिक्षाध्यक्ष तथा मि० लिंडसे की यह निहायत बेरहमी नहीं है ? जो मास्टर हटाये गये हैं, उनमें एक टेलर मास्टर, एक कारपेंटर, एक प्रेस शिक्षक, एक चर्खा मास्टर, एक कर्घा मास्टर इत्यादि हैं और इनको हटाने का कारण 'मितव्ययिता' बतलाया है, ठीक है, सरकारी शिक्षा में क्लर्की पढ़ाई जाती है इसलिये नये शिक्षाध्यक्ष क्लर्क बनावेंगे या पुराने शिक्षाध्यक्ष का इस नीति को जारी रखेंगे कि लड़कों को उद्योग शिक्षा पहले दी जावे।

लड़कों को कवायद या कसरत सिखलाने के हम भी पक्षपाती हैं, पर दिन के तीन घण्टे उसमें लगा देना और चर्खा, करघा, दर्जी, बढ़ई की शिक्षा को व्यर्थ समझना घोर अज्ञान है और काशीवासी ही ऐसी खराब शिक्षा को चालू रहने दे सकते हैं, बिना कोई एतराज किये।

कभी फिर काशी की शिक्षा का ठीक प्रबन्ध होगा या नहीं, यह समझ में नहीं आता !!

(सम्वाददाता द्वारा)

दी न्यू इन्श्योरेन्स लिमिटेड, काशी

हमें यह जानकर बड़ा ही सन्तोष हुआ कि काशी की इस एकमात्र तथा सर्वांग राष्ट्रीय बीमा कम्पनी ने अपने शैशव काल के पाँच महीने में ही आठ लाख का काम कर लिया। कम्पनी की स्वीकृत पूँजी दस लाख की थी जिसमें से तीन लाख चालू की गयी और जनता के अत्यधिक विश्वास के कारण वह एक लाख अधिक प्राप्त हो गया तथा बहुतों को निराश करना पड़ा। कम्पनी ने निश्चय किया है कि अपने मूल लाभ का ९० प्रतिशत तक बोनस बाँट देगा और ऐसी दशा में बहुत काफी बोनस मिलने की आशा दीख पड़ती है। वर्तमान प्रगति से तो यही अनुमान होता है कि कम्पनी एक साल के भीतर जितना काम कर लेगी, वह बीमा जगत् में इतिहास बना देगा।

कम्पनी के संघटनकर्ता युक्तप्रान्त, बंगाल, पंजाब इत्यादि के हर कोने में फैल गये हैं। हमारे प्रान्त के कुछ कार्यकर्त्ताओं के नाम तो विशेष उल्लेखनीय हैं—बलिया में श्री हरिवंशसिंह तथा रामऔतारलाल, गाजीपुर में श्रीकृष्ण प्रसाद वर्म्मा, जौनपुर में श्री गजराजसिंह, वैदिक पुस्तकालय, जौनपुर, आजमगढ़ में श्री वृन्दावन मिश्र (अचराई कला) लखनऊ में श्री देवदत्त वाजपेयी (गणेशगंज, इटावा में श्री स्वराज्यप्रकाश (पसारी टोला), वृन्दावन मथुरा में प्रो० कृष्णचन्द्र (चेयरमैन, वृन्दावन म्युनिसिपैल्टी आगरा में श्री गोपालनारायण शिरोमणि (रावतपाड़ा) बदाऊँ में चौधरी बदनसिंह, बरेली में सरदार सन्तसिंह (पक्का बाजार, इलाहाबाद में श्री केशवदेव मालवीय (लोहवतिया बाग) फैजाबाद, बनारस में श्री रामेश्वरसहायसिन्हा (हीरापुरा, बनारस), तथा मैनपुरी में श्री जैनप्रकाश जैन, (मुरावली) इत्यादि।

कम्पनी की प्रगति अद्भुत, कार्यकर्त्ताओं की गुट भी अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा श्रीयुत बिड़ला की अध्यक्षता तथा प० गोविन्द मालवीय के संचालन और मि० एल० एस० कपिल ऐसे सुयोग्य व्यवस्थापक की व्यवस्था में प्रगति की पूर्ण आशा है तथा हम उसकी पूर्ण सफलता चाहते हैं।

(सम्वाददाता-द्वारा)

स्वदेशी बीमा कम्पनी

बरेली के श्री ए० बी० एल० गुप्त बी० ए० जो कि ओरिएन्टल कम्पनी के आर्गेनाइजर थे, अब स्वदेशी बीमा कम्पनी लिमिटेड आगरा के एजन्सी मैनेजर हो गये हैं। श्री गुप्त इस प्रान्त के इन्शोरेन्स के काम करने वालों में प्रमुख हैं। ओरिएन्टल कम्पनी में केवल १४ मास ही एजन्ट की हैसियत से काम करने के बाद आप उस कम्पनी के आर्गेनाइजर बना दिये गये थे और इस पद पर भी आपने अत्यन्त योग्यता से काम किया था। (प्राप्त)

---

२३ वाँ अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन दिल्ली स्वागत समिति की

विज्ञप्ति न० १४

१—श्रीमान महामहोपाध्याय प० गिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी जयपुर ने दर्शन परिषद् का सभापतित्व कृपापूर्वक स्वीकार कर लिया है। दर्शन प्रेमियों को अधिवेशन में सम्मिलित होकर भाग लेना चाहिए।

२—स्वागत समिति ने प्रतिनिधियों के लिये भोजन और ठहरने आदि की समुचित व्यवस्था की है। सबको आराम पहुचाने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है। भोजन का न्यूनतम मूल्य लिया जायगा।

३—स्वागत-समिति को यह जान कर दुःख हुआ है कि कुछ स्वार्थी समाचार-पत्रों ने समिति को बदनाम करने के इरादे से मनमानी बातें प्रकाशित की हैं। यथा—

१—स्वागत समिति में भंगी, चमार आदिकों की संख्या भरी हुई है।

२—भोजन प्रबन्ध में हरिजनों से सम्बन्ध रखने वाली स्त्रियों की प्रधानता है।

यह दोनों ही बातें सरासर झूठी हैं और किसी स्वार्थ साधन के लिये प्रकाशित की गई हैं। —रामगोपाल प्रकाशन मंत्री

बिन ब्याहे वरों का विवरण

कान्यकुब्ज समाज के अविवाहित वरों की जानकारी प्राप्त करने के लिये सभा एक विवरण संग्रह कर उचित व्यवस्था करना चाहती इसलिये हम समस्त कान्यकुब्ज बन्धुओं से सादर और आग्रह के साथ प्रार्थना करते हैं कि अपने अपने निवास एवं निकटवर्ती स्थानों के विवाह योग्य लड़कों का विवरण तथा प्राप्त हो सकने वाली जन्म पत्री शीघ्र से शीघ्र सभा में भेजने की कृपा करें। प्रत्येक जन्म पत्री की पीठ पर या अलग लड़के का पूर्ण विस्तृत विवरण इस प्रकार अंकित रहना चाहिए—

१ लड़के का नाम २ अवस्था ३ कुमार या विधुर ४ कहाँ तक शिक्षा पाई है ५ शारीरिक स्वास्थ्य, रंग, कद आदि कैसे हैं ६ परिवार में कौन कौन हैं ७ व्यवसाय क्या करता हैं ८ संरक्षक या पिता का परिचय, नाम आदि ९ आस्पद १० गोत्र ११ आर्थिक अवस्था कैसी, क्या है १२ विचार कैसा है, सनातनी, आर्य, सुधार या प्राचीन १३ विवाह कब तक करना चाहते हैं, किसी विशेष अवधि के बाद या सुविधानुसार जब कभी १४ पूरा पता।

यह विवरण तथा जन्म पत्रियाँ सभा में सुरक्षित रख भरसक सदैव अप-टू डेट रखने की व्यवस्था की जायगी। इस विवरण से समाज के कन्या परिवार वाले सज्जनों के उस निरर्थक परिश्रम की बचत हो सकती है, जो उन्हें वर ढूँढ़ने में महीनों दूर दूर भटकने में उठाना पड़ता है। अस्तु, आशा है सभी कान्यकुब्ज बन्धु उक्त आशय का सच्चा और पूरा विवरण सभा में भेज कर समाज के एक विशेष भाग को अपने इस काम से सहायता पहुँचा कर पुण्य के भागी बनेंगे।

—प्रभुनारायण त्रिपाठी, 'सुशील'

मंत्री, श्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण सभा, चौबेपुर (कानपुर)

गाजीपुर समाचार

गाजीपुर में श्री गजानन्द मारवाड़ी के प्रयत्न से बिहार पीड़ितों के लिये काफी चन्दा किया गया और अब तक १००० रुपये से अधिक भेजा जा चुका है। अब एक हजार मन बाँस भेजने का प्रबन्ध हो रहा है।

२५ फरवरी की सन्ध्या को स्थानीय टाउनहाल में एक बड़ी सभा में दो उपयोगी प्रस्ताव पास हुए, एक में सरकार से अनुरोध किया गया, कि बाहर को ट्रेडमार्क बनाने का जो प्रस्ताव असेम्बली में पास हुआ है, उसे शीघ्रही युक्त प्रान्त में चालू करे, दूसरे में शिष्टतापूर्वक तथा बिहारी भाइयों की विपत्ति का स्मरण रखते हुए होली मनाने का आग्रह किया गया।

सभा में श्री गजानन्दजी, श्री कृष्णप्रसाद वर्मा, श्री परिपूर्णानन्द आदि उपस्थित थे। (सम्वाददाता द्वारा)

विचित्र-जगत्

अपने ही दंश से सर्प की मृत्यु

अनेक सर्प ऐसे होते हैं, जो अपने खुद के ही दंश से मर जाते हैं। सामान्य रूप से हमारे समझने के अनुसार, सब सर्प अपने या अपनी दूसरी जाति के सर्पों के विष के प्रभाव से मुक्त नहीं होते। इस विषय का एक उदाहरण प्रो० एल० डी०-वुस्टर ने 'सायन्स' में दिया है। उसमें लिखा गया है कि केनसा स्टेट कॉलेज की एक लेबोरेटरी में एक जवान साँप की उसके पिंजरे में के अन्य साँपों के साथ लड़ाई हो गई थी, उस समय भूल से अचानक उस साँप ने खुद अपने को ही डँस लिया परिणाम स्वरूप उसकी रग-रग में विष ने प्रवेश कर लिया और कुछ ही घण्टों में उसकी मृत्यु हो गई।

बूढ़ों को विवाह का शौक

इंग्लैण्ड और वेल्स में केवल १९३२ में ही अस्सी वर्ष से भी अधिक उम्र के ८६ मनुष्य विवाहित हुए थे। उस वर्ष की रजिस्ट्रार जनरल की जो रिपोर्ट हाल में ही प्रकाशित हुई है, उससे उपर्युक्त बात प्रकट हुई है। उन ८६ मनुष्यों में से पाँच तो जिन्दगी में पहली ही बार विवाहित हुए और उसी वर्ष ८० वर्ष से अधिक उम्र की १० स्त्रियाँ विवाहित हुईं। उनमें दो का विवाह जीवन में पहला बार हुआ। एक वर्ष में कुल ४०७१८४ विवाह हुए थे, उनमें ४६९ मनुष्य ७५ से लेकर ५७ की आयु के थे।

काँपने वाली मस्जिद

अपर सिंध में लकड़ी और कच्ची ईंटों की बनी हुई एक काँपती हुई मस्जिद बड़ी सनसनी फैला रही है। उसकी चोटी पर ईंटों के खम्भे में जड़ी हुई चार लोहे की छड़ें हैं, उन पर एक छोटा मिट्टी का बनाया हुआ गुम्बज है। सन् १९३३ में ये चारों छड़ें, पकड़ रखने पर भी इस प्रकार हिलती थीं, मानों उन्हें कोई हिला रहा हो। लगभग १२ महीने हुए, मस्जिद का इस प्रकार काँपना बन्द हो गया था; परन्तु बिहार के भूकम्प के पश्चात् मस्जिद की वे छड़ें पुनः काँपने लगी हैं। लोगों में बड़ा आतंक फैला हुआ है।

खूनी पतिंगा!

संसार में बड़ी-बड़ी विचित्र घटनाएँ घटित होती हैं। इटली के नेपल्स नगर में एक राजकुमारी अपने कमरे में सो रही थी। सामने एक भरा हुआ रिवाल्वर पड़ा था। उसके पास एक मोमबत्ती जल रही थी। एक पतिंगा चारों ओर चक्कर काट रहा था। अचानक वह उस रिवाल्वर पर गया। रिवाल्वर का घोड़ा छूटने से गोली राजकुमारी को लगी और उसका प्राणान्त हो गया।

जब मुरदा लॉटरी जीतता है!

फ्रान्स के ट्रेटीमोन्टी गाँव के चार्ल्स गुस्टोटी को मृत्यु के बाद उसके पहने हुए कपड़ों सहित कब्र में गाड़ दिया गया। थोड़े समय पश्चात् फ्रान्स की नशनल लॉटरी ने जब चार्ल्स के टिकट के लिए एक लाख फ्रैंक अर्थात् १२००० पौंड का इनाम घोषित किया, तब उसके सम्बन्धी इनाम प्राप्त करने के लिए टिकिट की खोज करने लगे, परन्तु उन्हें मालूम हुआ कि टिकिट चार्ल्स के पहने हुए कोट के जेब में ही रह गए थे। उन्होंने वहाँ के मेयर को अर्जी दी कि चार्ल्स की कब्र खोद कर उसके जेब में से टिकिट निकालने की इजाजत दी जाय, कारण कि इनाम मिलने पर चार्ल्स का एक लाख फ्रैंक खर्च करके धूमधाम से पुन. दफनाएँगे। मेयर बड़े विचार में पड़ा है। कब्र में सोये हुए मनुष्य की शान्ति भंग की जा सकती है? इस प्रश्न को उसका मस्तिष्क हल नहीं कर पा रहा है।

बिल्लियों की संख्या मनुष्यों से अधिक

इस्तम्बुल में बिल्लियों ने बहुत ही उपद्रव मचा रखा है। वहाँ मनुष्यों की अपेक्षा बिल्लियों की बस्ती अधिक हो गई है। एक कुत्ते के मुकाबले में लगभग २० बिल्लियों का लश्कर तैयार हो जाने के कारण बेचारे कुत्ते भी लाचार हो गए हैं। असंख्य बिल्लियों को मार डालने पर भी उनकी संख्या घट नहीं रही है।



पण्डित किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री बड़े भारी खोजानन्द हैं। आखिर खोज-खाजकर पण्डित वेंकटरमणनारायण तिवारी को पकड़ ही लिया। तिवारीजी भी जानबूझकर अपने को पकड़वाते हैं। भला सेंध पर कोई बिरहा गाता है?

❀ ❀ ❀

वाजपेयीजी ने दैनिक 'भारत' द्वारा तिवारीजी पर पौराणिक पन्थ की बौछारों से बड़ा भारी हड़कम्प डाला। अच्छा होता अगर वे मासिक 'सरस्वती' द्वारा यही काम करते। तब 'सरस्वती' के हजारों पाठक अपनी आँखों की धूल धोकर उनको बहुत असीसते।

❀ ❀ ❀

तिवारीजी के क्रान्तिकारी विचारों से ब्रजभाषाप्रेमियों और श्रीराधाकृष्णानुरागियों में बड़ा भारी भूकम्प आ गया है। प० बनारसीदासजी चतुर्वेदी को इस साहित्यिक भूडोल में भी प० श्रीराम शर्मा का उपयोग करना चाहिये—और बाबू ब्रजमोहन वर्मा को ऐसे साहित्यिक भूचालों के इतिहास का अनुसन्धान भी।

❀ ❀ ❀

'सरस्वती' के सहारे खड़ी बोली खड़ा हुई है और 'विशालभारत' के सहारे ब्रजभाषा। 'सरस्वती' कहती है कि ब्रजभाषा बुढ़िया कुट्टनी है और खड़ी बोली साध्वी क्योंकि कुट्टनी ने बहुत घर घाले हैं और साध्वी ने संयम सिखाया है। 'विशालभारत' कहता है कि ब्रजभाषा पचकन्या है और खड़ी बोली गणिका क्योंकि पचकन्या केवल भाग्यवानों के काम आती है और गणिका सर्वसाधारण की चीज है। किसकी परिभाषा ठीक है?

❀ ❀ ❀

तिवारीजी को एक ऐसा साहित्यिक न्यायालय स्थापित करना चाहिये, जिसमें ब्रजभाषा के उन सब मठेश महन्तों को पकड़ पकड़कर दण्ड दिया जाय, जो सदियों से गद्दीधर और छत्रधर बने बैठे हैं। किन्तु उस न्यायालय में वकालत करने के लिये वाजपेयीजी को पूरी स्वतन्त्रता भी मिलनी चाहिये।

❀ ❀ ❀

उस न्यायालय में दो चीफ जज रहें—घनानन्द के विशेषज्ञ डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी और संक्षिप्त सूरसागर के सम्पादक डाक्टर बेनीप्रसाद। सेशन जज रहें प० कृष्णबिहारी मिश्र। ऐडिशनल जज हों श्री वियोगी हरि। सदराला अव्वल रहें 'सुकवि' सम्पादक प० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और सदराला दोयम बनाये जायँ प० रामनरेश त्रिपाठी। मुन्सिफी दी जाय प० जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी' और श्री दुलारेलाल भार्गव को। कोर्ट पुलिस इन्स्पेक्टर नियुक्त हों प० अनूप शर्मा और महाफिजदफ्तर या हेडमुनसरिम प० मातादीन शुक्ल 'माधुरी' सम्पादक। जूरियों और असेसरों में प० बनारसीदास चतुर्वेदी और प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का रहना जरूरी है।

❀ ❀ ❀

उस साहित्यिक न्यायालय के लिये एक साहित्यिक कारागार की भी आवश्यकता होगी। उसका निर्माण करायें प० कृष्णकान्तजी मालवीय, 'जल का सुधा'धरा' उनकी तन्दुरुस्ती अच्छा रखेगा। जलर बनाये जायँ प० शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' और जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट प० कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' 'बाणी' सम्पादक। कविवर 'हरिऔध' जी और 'रसाल' जी निरीक्षक नियुक्त किये जायँ। वार्डरों के मेठ बनाये जायँ प० भगीरथप्रसाद दीक्षित।

❀ ❀ ❀

जो लोग श्रीराधाजी को जगदम्बा और आदिशक्ति मानते थे, वे तिवारीजी के क्रान्तिकारी लेखों को पढ़कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। केवल वाजपेयी जी ही ऐसे नजर आ रहे हैं, जो मोर्चे पर डटने को कटिबद्ध हैं। जान पड़ता है कि ब्रजभाषा निपूती और ब्रजमण्डल ऊसर हो गया। श्रीराधाकृष्ण के उपासक लोग बगलें झाँक रहे हैं!

❀ ❀ ❀

तिवारीजी ने दो चार ही झटके में मैदान साफ कर दिया। उनके गर्जन तर्जन ने ऐसा हड़कम्प डाल दिया है, कि सूरदास के उद्भट समालोचक भी त्राहि त्राहि की माला जप रहे हैं। महाभारत की लड़ाई में घटोत्कच ने ऐसा ही हड़कम्प मचाया था—सबकी बुद्धि को साँसत में डाल दिया था।

❀ ❀ ❀

इस साल भूकम्प ने हिन्दी संसार की होली फीकी कर दी। हिन्दी पत्रों के होलिकांकों में लखनऊ के 'कान्यकुब्ज' और आगरे के 'आगरा पञ्च' का अच्छा रंग रहा। दोनों ने भूकम्प को भुलाकर जिन्दगी की बहार लूट ली। 'कान्यकुब्ज' ने अपने समाज की कमचिरियों को खूब चहेटा है। 'आगरा पञ्च' ने भी अपने नगर की देवियों पर लूटकर कुमकुमे के हाथ चलाये हैं। दोनों के हौसले देखकर डाह पैदा होती है।

❀ ❀ ❀

अलीगढ़ के 'सत्संग' का होलिकाङ्क सबसे सुन्दर! निकाल अलबत्ता आदर्श होलिकाङ्क है। महात्मा गान्धी को 'हरिजनाचार्य' की उपाधि दी गई है। सनातन धर्म सम्बन्धी कुछ लेख इतने अच्छे हैं कि शुरू की चार पंक्तियाँ पढ़कर ही जी भर आता है, आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं होती। हाँ, 'सत्संग' के अगले विशेषांक का विज्ञापन पूरा पढ़ने योग्य है। उस विशेषांक का नाम होगा 'स्वामी लालनाथांक'! उसके कुछ लेखों के शीर्षक देखिये—'स्वामी लालनाथ जी का सचित्र परिचय और उनके जत्थे के दौरे का विवरण, जय लालनाथ (एक महत्वपूर्ण कविता) क्या गान्धी हिन्दू हैं?' इत्यादि। अब इसके बाद शायद वर्णाश्रम स्वराज्य सघांक निकलेगा।

❀ ❀ ❀

कलकत्ते से पहले एक 'तूफ़ान' नाम का अच्छा साप्ताहिक निकला ही था, अब इधर एक 'न्यू तूफ़ान' निकला है। अभी तक किसी हिन्दी पत्र के नाम में अङ्गरेजी शब्द की गन्ध नहीं थी इसमें कुछ सफेदी का संसर्ग मालूम होता है। इसको हिन्दी में भी साहबी ठाट है और इसके होलिकाङ्क में भी अङ्गरेजियत की बू है। इसके सम्पादक आगोपाल डागा ने इसकी भाषा को भीषण भूकम्प से डगमगा दिया है। हिन्दी में पहले हास्यरस के सम्राट थे जी० पी० श्रीवास्तव, पर इसने एक नया हास्यरससम्राट उत्पन्न किया है जिनका नाम है—ज० पी० श्रीवास्तव। इस नई उपज पर बार बार बधाई!

❀ ❀ ❀

तिवरा पीपीगंज (गोरखपुर) से निकलने वाले नवीन साप्ताहिक 'वीर-सतान' ने प० बनारसीदासजी चतुर्वेदी को सभापति बनाकर काशी में कबीरचौरा पर बड़ा बढ़िया वसन्तोत्सव मनाया है। उसमें हिन्दी कवियों को बड़े अच्छे ढंग से जुटाया है। सब के सब ऐसे आ जुटे हैं कि देखते ही बनता है।

'कीरस्तान' को इसी तरह भेक जुटाना चाहिये।

❀ ❀ ❀

कानपुर के 'वर्त्तमान' ने होली में खिताबों की खैरात खूब बाँटी है। हिज हाइनेस महाराज 'मनसुखा' की तरह मुक्तहस्त कोई नजर नहीं आता। उपाधि वितरण में उनका हस्तकौशल देखकर दंग रह जाना पड़ता है। सचमुच [वे] बड़े सिद्धहस्त हैं।

❀ ❀ ❀

काशी के साहित्यसेवियों की होली बिल्कुल फीकी रही, क्योंकि श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी फागुन भर बनारस से बाहर कहीं गायब रहे। श्रीविनोदशंकर व्यास तो रनवास ही में रहते हैं, कोई पहुँच ही नहीं पाता।

❀ ❀ ❀

हाँ, इलाहाबादी 'मदारी' ने होली में 'मतवाला' की गुपचुप खूब बटोरी। जान पड़ता है, श्रीशान्तिप्रिय द्विवेदी वहीं पहुँचे थे। आज-कल वे इसी तरह घूम फिरकर अच्छी कमाई कर रहे हैं।

❀ ❀ ❀

'मदारी' मियाँ को चन्द्रलोक के जगद्गुरु से सावधान रहना चाहिये, नहीं तो 'चाँद' का चकचौंधा खिलौना दिखाकर जगद्गुरुजी सिखाई-पढ़ाई बँदरिया को बहका ले जायँगे।

❀ ❀ ❀

भूकम्प पीड़ितों के लिये हमारी सरकार बहुत ही चिन्तित है। आसमान में उड़-उड़कर उनकी दुर्दशा देख रही है। आशा है, कि वायसराय फण्ड के रुपये उनपर हवाई जहाज से ही बरसाये जायँगे।

❀ ❀ ❀

भूकम्प में बहुतेरे बिहारी लेखकों के मकान चौपट हो गये—किसी का गिर गया, किसी का फट गया, किसी का बेकार खड़ा है। हिन्दी संसार उनकी खोज-खबर लेगा या नहीं?

❀ ❀ ❀

भूकम्प पीड़ित स्थानों को देखने के लिये महात्मागाँधी का प्रोग्राम प्रकाशित होते ही बड़े लाट साहब का प्रोग्राम भी प्रकाशित हो गया। राजा और प्रजा दोनों के बड़े लाट दो महीने बाद कर्तव्यक्षेत्र में लौटे। अहोभाग्यमहोभाग्यम् !!!

—विजयानन्द

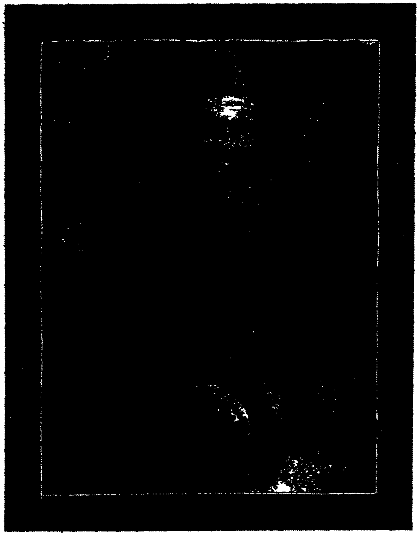
सहकारी सम्पादक—श्री ...प्रसादजी, मालवीय-द्वारा सरस्वती-प्रेस, काशी से मुद्रित और प्रकाशित।

जागरण

THE JAGARAN — सम्पादक—प्रेमचन्द — Illustrated Weekly

वर्ष २ | काशी, मि० फाल्गुन शुक्ल ६ सोमवार, सं० १९९० वि० : ता० १९ फरवरी सन् १९३४ ई० | अंक २७

बिहार-रत्न बाबू राजेन्द्रप्रसादजी



आपको आशंका है कि सम्भवतः शीघ्र ही बिहार को अकाल का सामना करना पड़े। अगर ऐसा हुआ, तो २५ लाख व्यक्ति की क्षुधा शान्ति के लिए लगभग १। लाख रुपया रोजाना खर्च करने के लिए तैयार रहना होगा।

भूकम्प

वसुधा उद्गार प्रकृति का यह निष्ठुर व्यवहार,
अहो मृत्यु का नग्न नृत्य, यह कैसा हाहाकार।

किसी निठुर का भीषण-रव से बार बार आह्वान,
अहो अतिथि की सेवा में मृदु प्राणों का बलिदान।

जीवन का है यही मूल्य, यह क्षणभंगुर संसार,
दो दिन के ही लिये पथिक! जग का रसमय व्यापार।

दृश्य प्रलय का है इसकी किस विप्लव से तुलना है,
अब तो स्मृति में प्राणों का प्राणों में ही घुलना है।

अखिल विश्व का दिल हिलकर यह कैसा भीषण नर्तन,
कितनी पीड़ा का समूह है वसुधा का परिवर्तन।

वह प्रभात वह मधु पराग वह मकरानिल अपना था,
कौन जानता था क्षण भर के जीवन का सपना था।

मधुर-मंजरी मय रसाल, तुमपर पवि का गिर जाना,
ऐ तारकमय दिव्य गगन तेरा घन से घिर जाना।

ऐ मेरे उपवन धोखे से पतझड़ का आ जाना,
अहो विपिन के तरु तरु पर, दावानल का छा जाना।

ऐ संसृति के हेर फेर, तूने घर घर बिलखाया,
वसुधा के क्षण कम्पन में, मेरा सर्वस्व लुटाया।

श्रीश्यामनारायण पाण्डेय 'साहित्यरत्न'

बिना जलाये ... के लिए
लिए जयपुर की सुवर्ण मिश्रित

मकरध्वज वटी

सर्वोत्तम दवा है, इसके सेवन से मंदाग्नि, धातुक्षीणता, रक्त की कमी व ज्ञानतंतुओं की दुर्बलता दूर होकर आरोग्य और उत्साह प्राप्त होता है, हरेक वैद्य इसको काम में लेते हैं, एक तोले की शीशी का मूल्य रु० ४) इसके सिवाय और भी हरेक प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियाँ तैयार मिलती हैं, सूचीपत्र मुफ्त मँगाकर देखें।

पता—श्री सिंघ आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रधान कार्यालय बालकवाडा कर्नाटी
शाखा—३०५ कालवा देवी बम्बई

मोजे की मशीनें बिकाऊ हैं

हेरिसन पेटन की मोजा बुनने की दो मशीनें बिकाऊ हैं। मशीनें बिलकुल नई हैं, और पूरे सामान के साथ हैं। एक मशीन १२० सुइयों की और दूसरी १४४ सुइयों की है।

स्वदेशी मोजा फैक्टरी,
शान्ति-निकेतन, डंडाक-उज्जैन

सी० आई०।

उस्तरे को विदा करो

हमारे लोमनाशक से अन्न-भर बाल नहीं पैदा होते। मूल्य १) तीन लेने से डाक खर्च माफ।

शर्मा एण्ड कं०,
नं० ५, पो० कमलक—यू० पी०

१००) इनाम

जिस काम को आप लाखों रुपये खर्च करके भी नहीं कर सकते हैं, उसे इस मंत्र को सिर्फ ७ बार जपकर ही कर सकते हैं। किसी यंत्र या साधना की आवश्यकता नहीं, यह मंत्र सिद्ध कर भेजा जाता है। आप जिसे चाहते हैं, चाहे वह कैसा ही कठोर हृदय अभिमानी क्यों न हो इसे अपने के साथ आपसे मिलने के लिये लालायित होगा और सदा वह आपके साथ रहना पसंद करेगा। इस मंत्र से आत्मोन्नति होता है। नौकरी जल्द मिलती है, नौकरी वालों को तरक्की मिलती है, मामले मुकदमे में जीत होती है। यह मंत्र वशीकरण है। व्यापार में लाभ तथा परीक्षा में पास कराता है। बेफायदा साबित करने पर १००) इनाम। मूल्य २॥) डाक खर्च माफ।

पता—सिद्ध मंत्र आश्रम,
नं० ४४ पो० कतरासगढ़ (गया)

सेकेन्डहेंड टाइपराइटर चाहिये

हमें एक सेकेन्डहेंड अँग्रेजी टाइपराइटर की ज़रूरत है। जिनके पास हो, वे कृपया छपाई का नमूना भेजें और मूल्य लिखने की कृपा करें। यह भी लिखें कि कितने समय उसका व्यवहार हुआ है।

श्री सदाशिव,
C/o आगरा ऑफिस, काशी



भारत भैषज्य भंडार
१०८, नं० कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता।
से लीजिये।

धातु पौष्टिक चूर्ण

इस चूर्णके प्रतापसे तीन ही दिन में धातुका गिरना बन्द हो जाता है, पतली धातुको एकदम गाढ़ा बना देता है। गर्मी और सूजाकको जड़से नष्ट कर देता है। धातुक्षीणता स्वप्न-दोष और हस्तमैथुनसे उत्पन्न कमज़ोरी, नपुंसकता, मनमें विकार उत्पन्न होते ही वीर्यपात होना आदि दोष नष्ट होकर साफ दस्त आता है और खूब भूख लगती है। यह चूर्ण स्त्रियोंके श्वेत प्रदरादि रोगोंको दूर कर उन्हें गर्भ धारण करनेके योग्य बना देता है। एक डब्बेकी कीमत ५) रुपया। डाक महसूल ।।।) आना



वर-चाहिए

एक [illegible] राजपूत कन्या के लिए, जिसकी अवस्था १२ वर्ष की है, वर की आवश्यकता है। कन्या पढ़ी-लिखी और सुलक्षण एवं गृह-कार्य में कुशल है। वर सुशिक्षित मैट्रिक पास तथा कुलीन हो की अवस्था २५ वर्ष से अधिक न हो। अधिक जानकारी पत्र द्वारा कीजिए।

हरिसिंह राठ०,
[illegible] पोस्ट [illegible], डंडाक-उज्जैन।

काशी नेपाली खपरे

की
प्राचीन [illegible] और प्रसिद्ध [illegible]
[illegible] एक बार अवश्य मँगाइये।

पता—[illegible] बलदेव दास
नेपाली खपरा, बनारस सिटी।

गृहस्थों के लिए उपयोगी अनमोल पुस्तक

स्त्री-रोग-विज्ञानम्

इस पुस्तक में प्रत्येक स्त्री-रोगों का वर्णन, निदान तथा उसके दूर करने की औषधि विस्तृत रूप से लिखी गई है। स्त्रियों के लिए यह पुस्तक अमूल्य निधि है। अपने शरीर के प्रत्येक अङ्गों तथा रोग आदि से अनभिज्ञ रहने के कारण स्त्रियों को अनेक प्रकार की मुसीबतें उठानी पड़ती हैं तथा उचित चिकित्सा न हो सकने के कारण वे घुल-घुलकर अपने प्राण गँवाती हैं। इसकी एक प्रति घर में रहने पर आपको डॉक्टर-वैद्यों की मिन्नतें न करनी होंगी। स्त्रियाँ अपनी औषधि स्वयं तैयार कर लेंगी। देखते देखते इसकी ४,००० प्रतियाँ समाप्त हो चुकी हैं। तीसरा संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। ५० चित्रों से विभूषित, तिरंगे प्रोटेक्टिङ्ग कवर तथा समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३), स्थायी ग्राहकों से २।) मात्र!

पता—'हंस' कार्यालय, सरस्वती-प्रेस, काशी।

सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक डॉ० धनीराम प्रेम की नूतन रचना

वल्लरी

जिनकी कहानियों को पढ़ने के लिए 'चाँद' के पाठक उत्सुक रहते हैं, जिनकी पहली ही कहानी 'वेश्या' ने कहानी-संसार में हलचल मचा दी थी, वल्लरी उन्हीं की ग्यारह सरस सुन्दर कहानियों का संग्रह है। इसकी 'वेश्या' कहानी में जहाँ आप करुणा की आहें सिसकियों से तड़प उठेंगे, 'कहानी-लेखक' में हास्य और कौतूहल का सामञ्जस्य देखकर उछल पड़ जायेंगे, वहीं 'वेश्या का हृदय' और 'वह मुस्कराना' में अन्तर के भाव-[illegible]ओं का चित्र देखकर आपको चकित रह जाना पड़ेगा। आदि से अन्त तक एक भावुक हृदय की कवित्वमय वेदना का मनोहर चित्र आपको दिखलाई पड़ेगा। केवल थोड़ी-सी प्रतियाँ शेष हैं। शीघ्र ही अपनी कापी मँगा लीजिए। मूल्य केवल २॥)

पता—'हंस' कार्यालय, सरस्वती-प्रेस, काशी

सस्ता साहित्य-मंडल की नवीन पुस्तकें

एशिया की क्रान्ति	मू० १।।।)
गांधी विचार दोहन	मू० ।।।)

पता—सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी

व्यापार का साधन क्या है?

विज्ञापन!

और वह इस स्थान पर ।।।) में ही छपता है।

मैनेजर—सरस्वती-प्रेस, काशी

जागरण

मि० फाल्गुन बदी ६ सोमवार, सं० १९९० वि०

क्या होने वाला है ?

१५ जनवरी को भूकम्प का जो सिलसिला शुरू हुआ था, वह आज एक महीना हो जाने पर भी बदस्तूर जारी है। आये दिन कम्पन होते रहते हैं। यहाँ तक कि १२ फरवरी को भी जोर का धक्का हुआ। जो कुछ बचा खुचा था, वह भी स्वाहा होता जा रहा है। दैत्यराज तो अपना जोर दिखा चुके, अब उनके सामन्तों की बारी है। हम सैकड़ों मील के फासले पर बैठे हुए वहाँ के समाचार सुन सुनकर काँप उठते हैं, तो जो लोग इन मुसीबतों को झेल रहे हैं, उनके मन की क्या दशा होगी। इतना अवकाश भी तो मिले कि लोग भविष्य के विषय में कुछ सोच सकें। जब नंगी तलवार सिर पर लटक रही हो—यह खटका लगा हो कि न जाने कब भूकम्प का धक्का हवा के झोंके की तरह आ जाय—तो मन पर एक अन्धकारमय निराशा का आ जाना स्वाभाविक है। घर के आदमी गए, घर गया, जायदाद गई, उस पर अपनी जान का भरोसा भी नहीं। फिर कहाँ से वह उत्साह आए, जो रेत में बेल उपजाने का साहस करता है। यही प्रश्न विकराल रूप धारण किए सामने खड़ा रहता होगा—क्या होने वाला है? माया का प्रबल बंधन भी ऐसी दशा में शिथिल हो जाय, तो क्या आश्चर्य है। माया को अपना स्वप्न साम्राज्य रचने के लिये भी तो कोई आधार चाहिए, चाहे वह कितना ही असार क्यों न हो। भूकम्प ने तो माया को भी परास्त कर दिया।

और तरह तरह की अफवाहें इस आतंक को और भी बढ़ाती रहती हैं। एक वैज्ञानिक का अनुमान है कि बिहार में किसी ज्वालामुखी के फटने की आशङ्का है। एक दूसरा दल कहता है कि उत्तरी बिहार भूकम्प के मार्ग में आ गया, और इस तरह की दुर्घटनाएँ वहाँ उसी तरह आती रहेंगी जैसे जापान में आती रहती हैं।

मगर मानव जीवन का इतिहास प्रकृति पर विजय पाने की एक लंबी कथा के सिवा और क्या है। संसार में कैसी-कैसी प्रलयकारी बाधाएँ नहीं आईं। लेकिन, मनुष्य जाति आज भी प्रकृति के सामने उसका सामना करने को तैयार है। कहते हैं १७२७ में बिहार में इससे भी भयंकर भूकम्प आया था, जिसमें तीन लाख से ज्यादा जानें गई थीं। जापान में १९२७ में जो भूकम्प आया था, उसमें कई लाख आदमी मर गए थे, लेकिन जापान आज संसार का शक्तिशाली राष्ट्र है, उस भूकम्प का वहाँ कोई चिन्ह भी नहीं रहा। हाँ, जरूरत इस बात की है कि राष्ट्र एक दिल होकर पीड़ितों की सहायता करने पर तुल जाय। बिहार हमारा समरक्षेत्र है। मुजफ्फरपुर और मोतिहारी और मुंगेर और सीतामढ़ी वह मोर्चे हैं, जहाँ प्रकृति की शक्तियाँ गोले बरसा रही हैं। क्या हम अपने वीर सैनिकों को शत्रु के गोलों के शिकार होते देख कर भी शान्त बैठ रहेंगे। युद्ध में लड़ने वाले थोड़े होते हैं, लेकिन उनकी पुश्त पर सारा राष्ट्र होता है। यूरोपीय महायुद्ध में ५० लाख आदमी मरे थे, और अरबों की हानि हुई थी। मुंगेर और मोतिहारी से कहीं विशाल नगर भूमिस्थ हो गए थे, पर राष्ट्रों की संयुक्त शक्ति ने उन खंडहरों को फिर गुलजार कर दिया। वहाँ आदमी का आदमी से मुकाबिला था। यहाँ आदमी का प्रकृति से मुकाबिला है, और आदमी ने सदैव प्रकृति पर विजय पाई है। अबकी भी उसकी विजय होगी। शर्त यही है कि राष्ट्र अपने सैनिकों की मदद के लिये हर तरह का त्याग करने को तैयार हो जाय, और जब हम राष्ट्र शब्द का प्रयोग करते हैं, तो हमारा आशय केवल जनता नहीं होता, बल्कि उसमें हम सरकार को भी शामिल करते हैं, जो राष्ट्र का सबसे समर्थ अङ्ग है। इस पचास लाख चन्दों से उजड़ा हुआ बिहार आबाद नहीं हो सकता। सरकार ने एक एक लड़ाई के लिये करोड़ों कर्ज लिए हैं, क्या इस अवसर पर वह दस बीस करोड़ रुपये कर्ज नहीं ले सकती? जर्मनों से लड़ने के लिये भारत ने एक अरब इकट्ठा कर दिया था। क्या वही भारत एक सम्पूर्ण प्रान्त की रक्षा के लिये उसकी चौथाई रकम भी जमा नहीं कर सकता? यूरोपीय युद्ध में भारत से १० लाख सिपाही तोपों के ईंधन बनने के लिये भरती किए गए थे। क्या बिहार की आबादी के लिये इससे दुगुने आदमी नहीं भरती किये जा सकते? बिहार के एक प्रोफेसर साहब का प्रस्ताव है कि पीड़ित क्षेत्र में काम करने के लिए मजदूरों से सरकारी तौर पर बेगार ली जानी चाहिए। देश में बेकारी बढ़ रही है। अगर सरकार अन्य प्रान्तों में मजदूरों की भरती जारी कर दे, तो हमें विश्वास है कि आदमियों का तोड़ा न रहेगा। बिहार के एक मिनिस्टर साहब ही ने यह प्रस्ताव किया है कि सरकारी नौकरों को अपनी आमदनी का दो फी सदी कई महीनों के लिये खुशी से देना चाहिए। सरकारी नौकरों से ज्यादा खुशहाल इस समय समाज का और कोई अङ्ग नहीं है। १००) से ऊपर के वेतन भोगी अहलकार अगर अपनी आमदनी का दस फी सदी भी एक साल तक देते रहें, तो उन्हें कोई कष्ट न होगा, और कष्ट हो भी तो उसे सहना उनका कर्तव्य है। जब एक पूरा प्रान्त विपत्ति ग्रस्त हो रहा है, तो क्या वे उसके उद्धार के लिए थोड़ी सी तकलीफ भी नहीं उठा सकते।

इस वक्त तक कुल मिला कर उद्धार-कार्य के लिए लगभग २५ लाख का चन्दा जमा हुआ है, लेकिन जैसा श्री श्रीप्रकाशजी ने सहयोगी 'आज' में लिखा है, बिहार को तत्काल लगभग ५ करोड़ धन की जरूरत है। अभी तक केवल इसका आठवाँ भाग वसूल हुआ है। और अभी तक सरकार ने इस आघात की भावणता नहीं पहचानी है। इसमें सन्देह नहीं कि सरकारी मशीनरी को चलते देर लगती है, मगर एक महीना निकल जाने पर भी अभी तक इसका निश्चय नहीं किया जा सका कि क्या क्या करना है। इस मौके पर तो सरकारी और गैर सरकारी का भेद मिट जाना चाहिए और क्या ही अच्छा हो कि दोनों ही फंड मिला दिए जायँ और अन्य संस्थायें जो रिलीफ के काम में लगी हुई हैं ममत्व और वाह वाही के ध्यान को छोड़कर सहयोग कर सकें। मालगुजारी और लगान तो बिल्कुल मुआफ हो जाना चाहिए। बिहार की सरकार मकानों की तामीर के लिए कर्ज देने का एक कानून बना रही है। इस दफ्तरी और जाब्ते की कार्रवाइयों में व्यर्थ ही समय नष्ट होगा। लेकिन जैसी परिस्थिति है, उसमें तत्काल किसी बड़े परिवर्तन की आशा नहीं की जा सकती। हाँ, अगर सरकारी रिलीफ में कुछ इस तरह का समझौता हो जाय कि भोजन और वस्त्र तो दोनों फण्डों से दिया जाय, और कुओं की खुदाई, खेतों से बालू की सफाई, और मकानों की मरम्मत और बनवाई और दूकानदारों और काश्तकारों को अपना धन्धा फिर से चलाने के लिए धन की व्यवस्था सरकारी तौर पर की जाय। भोजन वस्त्र और आहतों के सेवा शुश्रूषा तो पुण्यार्थ ही होगा। दूसरे काम तो सरकारी कर्ज की मदद से ही होंगे। हमें यह जानकर हर्ष हुआ कि महात्मा गान्धी स्वयं बिहार आ रहे हैं, और आशा है कि उनकी उपस्थिति से बहुत सी समस्याएँ आसानी से सुलझ जायँगी।

रूस और जापान में तनाव

रूस और जापान में मनोमालिन्य तो पहले ही से था, अब ऐसा जान पड़ता है, बारूद में फलीता लगाने की देर है। रूस का फौजी देवता लाल लाल आँखों से घूर रहा है, जापान केवल शब्दों में अपने पराक्रम का परिचय नहीं देना चाहता। वह अभी तक यही कहे जाता है कि हमें तो दादा चुप चाप पड़ा रहने दो, हम किसी से रार मोल नहीं लेना चाहते। मगर तैयारियाँ दोनों ओर से हो रही हैं। जापान साम्राज्यवाद की धुन में मस्त है। सोवियट शासन का पड़ोस उसे खटक रहा है। चीन में कई प्रान्तों में सोवियट शासन स्थापित हो गया है, और जापान में भी भीतर ही भीतर आग सुलग रही है। जैसा एम ट्राट्स्की ने जापानी परिस्थिति का दिग्दर्शन करते हुए लिखा था, जापान ज्वालामुखी के मुख पर बैठा हुआ है, और उसका साम्राज्य सोवियट शासन के बगल में फल फूल नहीं सकता। जापान इतना तो जानता है कि आज का रूस जार के जमाने का रूस नहीं है, और इधर उसने चीन पर आघात कर के संसार की सहानुभूति भी खो दी है, पर रूस की गरज का उस पर कुछ असर होता नहीं मालूम होता। उधर अमेरिका भी जापान से बिगड़ा बैठा है, और इधर रूस और अमेरिका जो एक तरह का समझौता हुआ है, उससे यह निश्चय है कि अगर रूस और जापान में संघर्ष हुआ, तो अमेरिका भी रूस का साथ देगा। जापान बलवान सही, पर इन दो महान शक्तियों के सामने वह टिक सकेगा, इसमें सन्देह है। कहीं उसकी भी वही दशा न हो, जो १९१४ में जर्मनी की हुई। सभी बड़े राष्ट्र उसके दुश्मन हो गये। जापान भी कुछ उसी नीति पर चल रहा है और हमें आश्चर्य न होगा अगर लड़ाई के अवसर पर वह रूस के

साथ अमेरिका और दो एक यूरोपीय राष्ट्रों को भी अपने सामने खड़ा देखे। और क्या उस वक्त चीन अपना पुराना वैर न चुकावेगा ? फिर पूर्व में जापान ही एक ऐसी शक्ति है, जो यूरोप की बड़ी बड़ी सल्तनतों से बराबरी कर सकती है, और जिसकी व्यवसायिक उन्नति ने सारे संसार को चकित कर दिया है। पश्चिम उसके प्रभुत्व को मिटाने के लिए अपने भेदों को भूल जाय, तो आश्चर्य नहीं। जापान के लिये किसी तरफ से भी सहायता मिलने की सम्भावना नहीं है। अगर खुदा न ख्वास्ता यह लड़ाई हुई, तो जापान को ऐसी क्षति पहुँचेगी कि वह बरसों तक न संभल सकेगा। फायदा शायद यह हो कि—एक साम्राज्यवादी शासन नष्ट होकर, उसकी जगह सोवियट शासन स्थापित हो जाय।

जाति-भेद को मिटाने की एक आयोजना

बम्बई के मि० बी० जादव ने वर्तमान भेद भाव को मिटाने के लिए यह प्रस्ताव किया है कि सभी हिन्दू उपजातियों को ब्राह्मण कहा जाय और हिन्दू शब्द को उड़ा दिया जाय, जिससे भेद भाव का बोध होता है। प्रस्ताव बड़े मजे का है। हम उस दिन को भारत के इतिहास में मुबारक समझेंगे जब हरिजन भी ब्राह्मण कहलायेंगे। मगर मि० जादव का प्रस्ताव चले या न चले (चलने की दूर भविष्य में भी आशा नहीं) लेकिन हवा का रुख कह रहा है कि दस बीस साल में वह सारी जातियाँ जिन्हें शूद्र कहा जाता है ब्राह्मण नहीं तो क्षत्री अवश्य बन चुकी होंगी। और क्षत्री से ब्राह्मण बनना केवल एक कदम और उछलने का काम है। सरकार भेद भाव मिटाने में सहायता क्या देगा, उसे तो इसके स्थायी रखने में जैसे कोई विशेष आनन्द आता है। स्कूल में लड़के का नाम लिखाने जायँ, तुरत उसकी जात लिखाना पड़गी। जहाँ हिन्दू नाम आया, वहाँ उसकी जाति अनिवार्य रूप से आ जाना है। जन गणना में तो हमारे बड़े बड़े सिविलियन समाज शास्त्र के पण्डित जातियों में नई नई खोज कर के और लुका छिपी जातियों का आविष्कार करके अपना नाम अमर कर रहे हैं। हिन्दू खुद जाति भेद का जितना भक्त है, सरकार इस बात में उससे कोस भर और आगे बढ़ी हुई है। और हमारा तो कहना ही क्या, हम तो पहले कायस्थ या ब्राह्मण या वैश्य हैं, पीछे आदमी। किसी से मिलते ही हम पहला सवाल यही करते हैं कि आप कौन साहब हैं। ग्रामीणों में भी यही प्रश्न पूछा जाता है—कौन ठाकुर ? अगर वह अपना सजाति हुआ, तो उसके लिये चिलम भी है, तमाखू भी है, वरना उसमें हमें कोई दिलचस्पी नहीं रहती। और हम कितने गर्व से अपने को शर्मा, वर्मा, तिवारी, चतुर्वेदी लिखते हैं कि क्या पूछना ? यह इसके सिवा क्या है कि भेद भाव हमारे रक्त में सन गया है और हम में जो पक्के राष्ट्रवादी हैं वे भी अपनी साम्प्रदायिकता का बिगुल बजाकर फूले नहीं समाते, वरना इसकी जरूरत ही क्या है कि हम अपने को चतुर्वेदी या त्रिवेदी कहें। खासकर उस दशा में कि हमने वेद की सूरत भी नहीं देखी और इसमें भी सन्देह है कि हमारे पूर्वजों ने भी कभी वेदों के दर्शन किये थे।

साम्प्रदायिकता और स्वार्थ

इस संघर्ष के युग में हर किसी को गिरोहबन्दी की सूझती है। जो गिरोह बना सकता है, वह जीवन के हर एक विभाग में सफल है, जो नहीं बना सकता, उसकी कहीं पूछ नहीं—कहीं मान नहीं। हम अपने स्वार्थ के लिये अपने जात और अपने प्रान्त की दुहाई देते हैं। अगर हम बंगाली हैं, और हम ने दवाओं की दूकान खोली है, तो हम हरेक बंगाली से आशा रखते हैं कि वह हमारा ग्राहक हो जाय, हम बंगालियों को देख कर उनसे अपनापन का नाता जोड़ते हैं और अपने स्वार्थ के लिये प्रांतीय भावना की शरण लेते हैं। अगर हम हिन्दू हैं और हमने स्वदेशी कपड़ों की दूकान खोली है, तो हम अपने हिन्दुत्व का शोर मचाते हैं और हिन्दुओं की साम्प्रदायिकता को जगा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। अगर इस में सफलता न मिली, तो अपना जाति विशेष की हाँक लगाते हैं। इस तरह प्रांतीयता और साम्प्रदायिकता की जड़ भी कितनी ही अन्य बुराइयों की भाँति हमारी आर्थिक परिस्थिति से पोषक रस खींच कर फलती फूलती रहती है। हम अपने ग्राहकों को विशेष सुविधा देकर अपना ग्राहक नहीं बनाते, सम्भव है उस में हमारी हानि हो, इसलिये जातीय भेद की पूँछ पकड़ कर वैतरणी के पार पहुँच जाते हैं।

स्वामी-सत्यदेव पाठशाला—

पाठकों को यह जान कर हर्ष होगा कि हिन्दी के विख्यात लेखक और राष्ट्रीय कार्यकर्ता स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक ने काशी को अपने कार्यक्षेत्र का केन्द्र बनाया है और अब यहीं निवास करेंगे। आप अपने लेखों से हिन्दी की सेवा तो करते ही रहेंगे, अब आपने एक पाठशाला भी स्थापित कर दी है। काशी ऐसे विद्यालय के लिये उपयुक्त स्थान है, क्योंकि यह हमेशा से विद्या का केन्द्र रहा है। इस विद्यालय में वह सभी विषय पढ़ाए जायँगे, जो मनुष्य को स्वावलम्बी, स्वतन्त्र विचार, कर्मयोगी, उदार और विचारशील बनाते हैं। स्वामीजी ने दुनिया देखी है, और राष्ट्रों के उत्थान और पतन का अध्ययन किया है। वह झूठे वैराग्य के उपासक नहीं हैं, जो जीवन को अनित्य और संसार को दुख का मूल समझता है। उन्होंने संसार के मुख्य धर्मों का तुलनात्मक विवेचन किया है। अतएव, आप की अध्यक्षता में किस ढंग की शिक्षा मिलेगी इसका अनुमान किया जा सकता है। यहाँ यूरोप का इतिहास, पाश्चात्य शिक्षा के विकास का इतिहास, पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का विचारपूर्ण अध्ययन, आदि विषयों पर क्या ध्यान दिए जायँगे ? काशी में यह पाठशाला अपने ढंग की अद्वितीय होगी, जिसमें पूर्व और पश्चिम की सभी अच्छी-अच्छी बातों का सामंजस्य होगा। हम नहीं कह सकते, काशी जैसे कट्टर पंथी स्थान में ऐसी पाठशाला कहाँतक सफल होगी पर काशी जहाँ प्राचीन है, वहाँ उस ने सदैव नए प्रकाश का स्वागत किया है और हम आशा करते हैं कि स्वामी जी अपने शुभ-उद्देश्य में सफल होंगे।

स्वदेशी बीमा कम्पनी लि० आगरा

स्वदेशी बीमा कम्पनी आगरा की द्वितीय वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित हो गई। इस वर्ष इस कम्पनी का काम मुख्यतः संयुक्तप्रांत में सीमित रहा। साधारण विभाग में इस वर्ष २० लाख से ज्यादा का काम हुआ, पिछले साल केवल ११ लाख का काम हुआ था। इस प्रान्त में लगभग सौ बीमा कम्पनियाँ काम कर रही हैं। दो को छोड़ कर और किसी कम्पनी ने इतना नया काम इस सूबे में नहीं किया। इससे प्रकट होता है कि इस कम्पनी पर पबलिक को कितना विश्वास हो गया है। इस वर्ष कम्पनी की कुल आय १ लाख १ हजार से कुछ ऊपर था। क्लेम केवल पाँच बीमादारों के हुए, जो ४ हजार से कुछ कम हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि कम्पनी कितने पक्के नियमों पर काम कर रही है। हमें रिपोर्ट में यह देखकर हर्ष हुआ कि कम्पनी ने वारिसों को अपने रुपए प्राप्त करने में हर प्रकार की सहायता दी और शीघ्र ही भुगतान कर दिया। इस वर्ष कम्पनी ने ७ हजार के हिस्से बेचे। उसके हिस्से अब २) प्रति हिस्सा प्रीमियम पर बिक रहे हैं। हमें आशा है, कम्पनी इस वर्ष हिस्से बेचने की ओर ज्यादा ध्यान देगी, जिससे उसकी उपयोगिता का क्षेत्र बढ़ेगा।

पंडित जवाहरलाल की गिरफ्तारी

इस अवसर पर जब कि पण्डित जवाहरलालजी बिहार के उद्धार कार्य में अपना लहू पसीना एक कर रहे थे, सरकार ने उन्हें गिरफ्तार करके अपनी उदारता का परिचय नहीं दिया। हम इसके लिये तैयार तो थे ही, सरकार ने कोई असाधारण बात नहीं की, लेकिन यह समझते थे कि यह सरकार भी उस काम की कुछ कद्र करेगी, जो पण्डितजी इस समय कर रहे थे, लेकिन, मालूम हुआ कि सरकार किसी तरह का सहयोग हमसे नहीं करना चाहती—

सैयाद की मर्ज़ी है कि अब गुल को हवस में,
नाले न करे मुर्गे गिरफ्तार कफस में।

: प्रगतिशील जर्मनी का सिंहावलोकन :

लेखक—श्रीयुत कामेश्वर शर्मा, 'कमल'

हम यदि गत पचास वर्ष के पूर्व की जर्मनी की स्थिति पर दृष्टि-पात करें, तो हमें प्रतीत होगा कि इस देश के जन समाज का विचार प्रवाह बहुत सकुचित था। वह स्वदेश, स्वभाषा, स्वधर्म, अपना आचार विचार और अपने तत्वज्ञान के चिन्तन में लीन हो गये थे। 'स्व' और 'हमारा' इसके सिवाय अन्य किसी विषय का उनकी बुद्धि को परिचय नहीं था। अन्त के पचास वर्षों में यह स्थिति बिल्कुल पलट गई है, आजकल के जर्मनों में ऐसी भावना उत्पन्न हुई है कि हमारे देश के बाहर पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग है, उस भाग में प्रवेशकर अपने देश के व्यापार को बढ़ाकर, अपने देश को धनी बनाना चाहिये, इतना ही नहीं परन्तु अन्य साधनों की सहायता से दूसरे देशों में अपना राजकीय महत्त्व भी बढ़ाना चाहिए। इस भावना को अनुलक्ष कर उन्होंने सतत उद्योग भी आरम्भ किया है। पूर्व की सकुचित वृत्ति को त्याग करने से उनके विचारों को नवीन मार्ग मिला है। प्रत्येक जर्मन के हृदय में यह भाव है—समस्त जगत में जर्मन नाम अमर करना, जगत के अधिकांश हिस्से पर अपनी सत्ता चलाना, विद्या के बल से विविध प्रकार की कला साध्य कर, नवीन नवीन शास्त्रीय आविष्कारों से स्वदेश को सर्व साधन-सम्पन्न बनाना।

इस विचार क्रान्ति के होने के कारणों पर विचार करने पर सौ वर्ष पहले के कॅन्ट, फीस्टे, गेटी और शेलर यह चार ग्रन्थकार हमारी दृष्टि के सामने आ खड़े होते हैं। इन चार ग्रन्थकारों ने अपनी लेखनी के बल से जर्मन लोगों में नवीन चैतन्य उत्पन्न कर दिया था। नेपोलियन के तड़ाके सपाटे से जर्मन निस्तेज होकर नादान बन गये थे। उनके इस नादानपन को नष्ट कर उनमें नवीन बल और वीरश्री उत्पन्न करने का श्रेय उपरोक्त ग्रन्थकारों को ही है। स्वदेश के अभ्युदयार्थ देश के प्रत्येक मनुष्य को आत्म-समर्पण करना चाहिये, यह तत्व समाज के हृदय में स्थिर हो गये और इससे नेपोलियन द्वारा छिन्न भिन्न की हुई स्थिति, धीरे धीरे अपने मूल स्थान पर आने लगी। लोगों के शरीर में शौर्य की नयी वायु विहार करने लगी और इसके थोड़े ही दिन पश्चात होने वाले युद्ध में वह विजय सपादन कर सके। इन ग्रन्थकारों ने इतना ही कार्य नहीं किया शौर्य के साथ विद्या की अभिरुचि भी उन्होंने जन समाज में जागृत की। यह अभिरुचि इसके पीछे इतनी उन्नत हुई कि आज जर्मनी विद्या का निवास-स्थान है। उन्नीसवी सदी के आरम्भ के पचास वर्षों का इतिहास देखने से मालूम होता है कि आध्यात्मिक विचारों में वहाँ की प्रजा मग्न हो गई थी। इसी शताब्दी के उत्तरार्ध का इतिहास अवलोकन किया जाय, तो इससे बिल्कुल उलटी स्थिति दृष्टिगोचर होती है। काल्पनिक सृष्टि नष्ट हो गई और उसके स्थान पर ईश्वर स्थापित दृश्य सृष्टि आ बैठी और मनुष्य जाति के सुख के लिये उत्पन्न की हुई अखिल वस्तु क्या है और उसके गुण कर्म क्या हैं, इनकी खोज में उनके विचारों का प्रवाह बढ़ा। इन विचारों का बहुत थोड़े समय में विकाश हुआ। सौ वर्ष तक जर्मनी ने भावनाधीन होकर कल्पना सृष्टि में महान् वैभव प्राप्त किया था परन्तु इससे उसको आर्थिक लाभ का बिल्कुल भी दर्शन नहीं हुआ था। आज उन्होंने आर्थिक लाभ प्राप्त कर लिया है और जिस सृष्टि को जड़ चक्षु से देखते हैं, उस सृष्टि पर—काल्पनिक सृष्टि पर नहीं—सत्ता प्राप्त करना यह ध्येय उन्होंने अपने नेत्रों के सामने कर रखा है। सौ वर्ष के पहले जर्मनी की स्थिति कैसी थी, इसका वर्णन एक जर्मन ग्रंथकार ने किया है। वह लिखता है कि 'पूर्वकाल में जर्मन रंक थे। जगत में अन्य मनुष्य उनका तिरस्कार करते थे और समय आने पर उन्हें लूट भी लेते थे। लोग उनके साथ गुलामी व्यवहार रखते थे और प्रसग वशात् उन्हें कत्ल तक कर डालते थे। आत्म संरक्षणार्थ वह शत्रु के सामने खड़े होते थे, परन्तु शत्रु उन्हें किस तरह छलते हैं और सताते हैं, इसके कारण की उन्होंने कभी खोज नहीं की। अन्य राष्ट्र जगत की संपत्ति आपस में बाँट लेते हैं, और जर्मनी का नाम नहीं लेते, इस प्रकार के विचारों ने उनके मन को स्पर्श तक नहीं किया था। उदर निर्वाह के लिये आवश्यक उद्योग कर बाकी समय अपने घर में शान्ति पूर्वक बैठकर ग्रन्थकारों, कवियों और तत्ववेत्ताओं के सहवास में काटना, उनके साथ आनन्द में रहना अथवा उनके साथ शोक समुद्र में डूब कर अश्रुपात करना, उनका नित्य का कार्य क्रम था। यह लोग तत्वज्ञान में लीन होने पर अपने शरीर भोजनादिक की भी सुध भूल जाते थे। मनोराज्य में प्रवेश होने पर जगत में चारों तरफ क्या हो रहा है इसका उनको लेशमात्र भी भान न रहता था।' इस प्रकार से उनकी स्थिति वर्णन कर वही ग्रंथकार कहता है—'पर अब यह सब बदल गया है। निरुपयोगी तत्वज्ञान को अलग रख कर हम अब युवा बने हैं। हमारा हित किन बातों में है, यह हम अच्छी तरह समझने लगे हैं और अब नवीन उद्योगों में प्रवृत्त हुए हैं। अब हम-ऐसे पक्के निश्चय पर आगये हैं कि चाहे जितने संकट आवें, तो भी उन्हें कुछ न गिनते हुए हम अपने अन्तिम ध्येय को प्राप्त करेंगे।'

जर्मन स्वभाव से बहुत उत्साही, उद्योग प्रिय और बुद्धिमान हैं जगत के अन्य भागों में आधिभौतिक सुधार होते हुए भी वह पीछे रह जायँ, यह सम्भव नहीं। उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ में ही कल्पना-सृष्टि से छूटकर वह बाह्य सृष्टि में अधिक लक्ष्य देने लगे थे। सन् १८७० ई० में फ्रेञ्चों के साथ जर्मनों का युद्ध हुआ और उसमें जर्मनों की विजय हुई। यह विजय ही उनके अभ्युदय का मुख्य कारण भूत हुई। तब से उन्होंने नये नये शास्त्रीय आविष्कार कर व्यापार में एक एक पैर आगे बढ़ाना आरम्भ किया। आज उनका सब जगत् के साथ इतना व्यापार बढ़ गया है, कि उसको देखकर मनुष्य आश्चर्य से चकित रह जाता है। 'जहाँ व्यापार वहाँ लक्ष्मी'—इस न्याय से जर्मन राष्ट्र सुसम्पन्न बना है। बहुत से इतिहास कारों का मत है कि यदि सन् १८७० ई० का युद्ध न हुआ होता, तो जर्मनी को वर्तमान स्थिति प्राप्त करने के लिये अभी अनेक वर्ष तक राह जोहना पड़ता।

इस युद्ध में जर्मनी का प्रदेश बढ़ा। जीते हुए राष्ट्रों की तरफ से बहुत से धन युद्ध के खर्च के निमित्त दण्ड में मिले परन्तु इससे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि जर्मन प्रजा के विचारों में महान् क्रान्ति हुई।

जर्मनी में हाल में जो शिक्षा दी जाती है, वह इस बात का प्रमाण है। जिस प्रकार की शिक्षा से विद्यार्थियों के हृदय भौतिक विषयों पर आसक्त हों ऐसी शिक्षा स्कूलों और कॉलेजों में देने के लिये जर्मनी का शिक्षा विभाग विशेष ध्यान देता है। इस शिक्षा पद्धति का अनुसरण पहले पहल जर्मनी ने ही किया है, और अन्य राष्ट्रों में पहले यह नहीं दी जाती थी, यह हमारा कहना नहीं है। शिक्षा की यह प्रवृत्ति थोड़े बहुत प्रमाण में सब जगह थी, परन्तु जर्मनी में आजकल वह जितनी स्पष्ट हो रही है, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं मालूम होती। नवीन शिक्षा का स्वरूप निश्चय होने पर जीम्नेशिया (Gymnasia) नाम की मध्यम श्रेणि की पाठशालाओं पर हुआ। इन पाठशालाओं की उन्नति रुक गई और नवीन पाठशालायें स्थापित होने लगीं, और उनकी संख्या दिन प्रति दिन बढ़ने लगी। बहुत से प्रशियन प्रोफेसर कहते हैं, कि प्रशियन सरकार व्यवहारोपयोगी शास्त्रों की शिक्षा देने वाली पाठशालाओं में खुले हाथ धन खर्च करता है और तत्वज्ञान की शिक्षा देने वाली संस्थाओं को नाम मात्र की सहायता मिलती है। इस सम्बन्ध में एक ग्रंथकार कहता है—'सृष्टि विज्ञान और औद्योगिक शिक्षा की तरफ विशेष लक्ष्य देने से मानस शास्त्र और कला की तरफ लोगों का ध्यान नहीं रहता। कोई भी आधुनिक जर्मन व्यवसायी की तरफ देखो, तो बाह्य सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करने की उसे बड़ी इच्छा होगी। आत्म ज्ञान सम्पादन कर आत्म सुख प्राप्त करने वाले बहुत ही थोड़े मिलते हैं। उद्योग, व्यापार और ऐहिक सम्पत्ति में हमने उच्च पद प्राप्त किया है परन्तु यह सृष्टि कब निर्माण हुई, इसका कौन कर्ता है इसमें क्या क्या गूढ़ तत्त्व हैं और इन तत्त्वों का सत्य रहस्य क्या है, ऐसे विचार करने वाले और ऐसे विचारों द्वारा आनन्द का उपभोग करने वाले गृहस्थ जर्मनी में बहुत ही थोड़े हैं, यह कितने आश्चर्य की बात है?'

(क्रमशः)

जापान के प्रलयंकर भूकम्प की वीरगाथा

लेखक—श्रीयुत डा० हेमचन्द्र जोशी, डी० लिट्०

बिहार के भूकम्प ने हम सब को कम्पायमान कर दिया है। बिहार के ध्वंस ने हमारे सामने महाकाल का निष्ठुर और नग्न रूप रख दिया है। हम समझ गये हैं कि काल के सामने महाशक्तिशालियों को भी माथा नवाना पड़ता है। अधिकांश पाठक यह समझे बैठे होंगे कि विश्व ब्रह्माण्ड में चैतन्य जीवन का राज है, सर्वत्र प्राण ने अप्राण को दबा रखा है, पर सत्य ठीक इसके विपरीत है; अब तक जो सितारे या लोक गिने जा सके हैं, उनकी संख्या तीन अरब तक पहुँचती है। इनमें कुछ इतनी दूर भी हैं कि उनकी रोशनी हमारी पृथ्वी तक पहुँचते पहुँचते प्राय एक लाख वर्ष लगा देती है। इस दूरी का अन्दाजा इससे लग सकता है, कि एक सेकण्ड में रोशनी प्रायः पौने दो लाख मील दौड़ती है। पता चला है कि इन असंख्य लोकों में महामृत्यु का अखण्ड राज है। बकौल जेम्स जीन्स के पृथ्वी-लोक के अतिरिक्त अन्यत्र ऐसी 'जलवायु' है कि या तो जीवन वहाँ ठिठुर कर मर जाय या वहाँ कि धधकती आग मे वह भाप बन जाय। केवल हमारे लोक में प्राण पनप सकता है, पर यहाँ 'मृत्युर्धावित पञ्चम' मौत प्राणियों का पीछा कर रही है। भारत में लड़ाई के बुखार ने साठ लाख आदमियों को कुछ ही महीनों में प्राणहीन कर दिया। बिहार में धन हानि जितनी हुई हो जन हानि इतनी न हुई। यदि भारत समर्थ होता तो बिहार की हानि को शीघ्र पूरा कर लेता। मृत्यु की छत्र छाया से पल-भर विलग न होने पर भी हमारी पृथ्वी में प्राण अपने प्राणों की रक्षा के लिए खूब जूझ रहा है। हक्सले ने ठीक ही कहा है—'मनुष्य प्रकृति की विद्रोही सन्तान है।' हमारे सामने जापान का एक ऐसा उदाहरण है, जो इस तथ्य की पुष्टि करता है।

पहली सितम्बर १९२३ को जापान में कुछ मिनटों के भीतर महाकाल ने ऐसा छापा मारा कि मृत्यु की घोर कृष्णवर्ण छाया ने जीवित मनुष्य के प्राणों में भी अपना राज कर लिया। पिता पुत्र को छोड़ भागा, पति पत्नी को। महाकाल के इस ताण्डव-नृत्य के सामने जो मरे उनकी तो मुक्ति हो गई; पर जो बचे उनके रोम रोम में मौत का जलजला उलग होकर नाचने लगा। मौत का वह भीषण रूप—जिसकी असंख्य रक्तवर्ण अग्नि बरसाने वाली आँखें, प्राणियों को चूर चूर करने के लिये अनगिनत कराल और खूँख्वार दन्त तथा पैने नख, विकराल सर्व-ग्रासी मुँह और जलन्धर के रोगी का 'खाऊँ-खाऊँ' करने वाला सर्वशोषी जठर—देखकर सबके प्राण चीख उठे—'भगवन्! यह रूप मेरे प्राणों ने युग युगान्तर से नहीं था, शरीर का रोम-रोम में हर्षण हो रहा है और आत्मा असीम यन्त्रणा से छटपट-छटपट कर रही है।'

अनेक बाहूदर वक्त्रनेत्रम्,
पश्यामि त्वां सर्वतोनन्त रूपम्।

महाकाल के जो घोर अन्धकार मय काले बादल उमड़-घुमड़ कर सबके सिर पर गरजने लगे, तो पोम्पिआइ का सा भगदड़ का दृश्य उपस्थित हुआ।

पुत्र बोला—प्यारे पिता! यदि तुम तेजी से नहीं भाग सकते, तो मुझे तुम्हें काल के पास ही छोड़ जाना पड़ेगा। दोनों न मरेंगे।

बाप बोला—बेटा जाओ और बाप को छोड़ अपने प्राण बचाओ।

'पर मैं भूखा मरने को थोड़े ही जान बचाऊँगा। ला अपने हाथ की थैली।'—इस पर उसने झपट्टा मारा और रुपयों की थैली लूट ली।

'पापी तेरा नाश जाये। अपने बाप को लूट कर जीना चाहता है। उसका कौर मुँह से निकालकर खाता है।'

'इस सर्वनाश की घड़ी में मुझे कुछ नहीं सूझता, सब अन्धकार है, पापी मर!'

जापानी पिता पुत्रों की ऐसी ही दशा हुई और प्रेम, स्नेह, सम्बन्ध आदि मौत के सामने लोप हो गये।

पहले भूकम्प आया, फिर टोकियो और योकोहामा की अट्टालिकायें आग से भली भाँति भस्म हो गयीं। थोड़े समय के भीतर तीन लाख आदमी हताहत हुए और प्राय दस अरब रुपये की सम्पत्ति खाक में मिल गई। प्रकृति ने अपने पागल पन के महायज्ञ में आधा टोकियो होम दिया। बाईस लाख की जन संख्या में ५८,१०४ मर गये, साढ़े दस हजार का पता हो गये, ७,८७६ के प्राण संकट में पड़ गये और साढ़े अठारह हजार मनुष्य घायल हुए। योकोहामा का हाल सुनिए—साढ़े चार लाख की आबादी में २१,३४४ मर गये, दो हजार गुम हो गये, तीन हजार के प्राण संकट में पड़ गये और सात हजार घायल हुए। और लीजिये—टोकियो में तेरह लाख आदमियों के घर ध्वस हो गए, सवा दो लाख मनुष्यों के घरों में दरारें पड़ गईं। योकोहामा में शायद ही कोई बचा, जिसका घर साबित रहा था। हम इन दोनों नगरों का ही वर्णन इसलिये कर रहे हैं कि ये शहर जापान के व्यापार के कारण अत्यन्त सम्पन्न हैं। टोकियो का व्यापारी मुहल्ला मैदान हो गया। वहाँ १००० विदेशी ही हताहत हुए। कई बड़े-बड़े नेता और व्यापारी मर गये। गैस के नल फूट गये, बिजली के तार छिन्न भिन्न हो गये, वाटरवर्क्स ध्वस हो गये, सच तो यह है कि नगर का सारा कारबार चौपट हो गया। यही दशा योकोहामा की हुई। देहातों का हाल अवर्णनीय है।

टोकियो में दमकलवालों ने अपने प्राणों की आहुति देकर भी नाना स्थानों को आग बुझाई; पर जब सारा विशाल नगर धाँय-धाँय करने लगा और आग की लपटें आकाश से बातें करने लगीं, तो उसके सामने उनका क्या बस चलता। मनुष्य ने अपनी तुच्छता और काल के सामने अपनी लाचारी समझकर सर्वनाश का वरण किया। लेकिन 'प्रकृति की विद्रोही सन्तान' यह मनुष्य यों ही हार नहीं मानता—दिनको यह 'लकाकाण्ड' हुआ और शाम को केवल टोकियो में साढ़े पन्द्रह लाख ऐसे आदमी बाहर मैदानों में आये, जिनके पास सिर छिपाने को ठौर नहीं था। ऐसे संकट के समय स्वतन्त्र जापान की राष्ट्रीय सरकार ने प्रजा की रक्षा करना अपना प्रथम धर्म समझा।

अपनी जाति की सहायता के लिए सबसे पहले जापान के सम्राट् और उनके परिवार वाले आगे कूदे। सम्राट् ने एक फरमान निकाला कि प्रजा इस महान् विपत्ति के समय धीरज न खोये और धन्य है वह प्रजावत्सल सम्राट् कि उसने अपने प्राइवेट खर्च में से निकालकर सवा करोड़ रुपये इस संकट की सहायता के लिये दिये। वहाँ की सरकार ने भूकम्प पीड़ितों को सहायता करने में क्षण भर की देरी न की और कृती जापानी जाति कभी हार न मानने वाली चीटियों की भाँति सम्राट्, साम्राज्ञी तथा सरकार से प्रोत्साहन मिलने पर अपने पुनरुद्धार में जुट गई। रेलवे लाइन और जलसेना के जहाज मुफ्त में इनकी सहायता का सामान इधर उधर ले जाने लगे, भूकम्प-पीड़ित स्थानों में गल्ले का सरकारी दूकानें खुल गयीं। जो अभागे निराश्रय बन गये थे, उन्हे बिना मूल्य भोजन और कपड़े दिये गये। स्वयं सरकार ने दो दिन के भीतर गृहहीनों के लिये कच्ची बैरिकें बनवा दीं। पहली रात को ये लोग उन सरकारी इमारतों में रखे गये, जो गिरने से बच गयी थीं। तत्काल 'डोजुन-काइ' की स्थापना की गई, जिसने रोगियों और अन्नहीनों के लिए मकानों का प्रबन्ध किया। 'योकुफू-काइ' समिति ने साठ बरस से ऊपर के बूढ़ों और उनकी सहायता की, जो भूचाल के कारण बेकार और असहाय बन बैठे थे।

संसार भर से जापान को जो सहायता गई उसे देख अचरज में डूबना पड़ता है। नाना देशों से जापान को प्राय अढ़ाई करोड़ रुपया पहुँचा। केवल भारत ने चार लाख रुपया भेजा था। जो विदेशी व्यापारी जापान में थे, उन्होंने भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए प्राय ४५ लाख रुपया दिया। जापानियों ने तो छ करोड़ रुपया चन्दे में एकत्र किया। तुरत काम होने के कारण कुछ दिन बाद ही फिर जीवन पूर्ववत् चलने लगा और कृती तथा उद्योगी जापानी जाति ने अपनी सरकार की मदद एवं प्रोत्साहन से अपने देश को पहले से भी उन्नत कर दिया। टोकियो की जन संख्या उस समय साढ़े बाईस लाख थी। भूकम्प के बाद सिर्फ सवा पन्द्रह लाख रह गयी। १९३२ में वह बढ़कर प्रायः तिरपन लाख हो गई। जगत् के इतिहास में ऐसी उन्नति का दूसरा दृष्टान्त नहीं मिलता। सच है—जापानी जानते हैं कि वीरों का विक्रम वैज्ञानिक भीत पर खड़ा होकर काम करने लगे तो असम्भव को सम्भव कर दिखाता है। उन्होंने फिर से टोकियो और योकोहामा को बसाना आरम्भ किया। सात वर्ष के भीतर इन ध्वस्त विध्वस्त नगरों को नये रूप और प्राण मिल गये। इस कार्य में दस अरब रुपये व्यय हुए। विशेष ऋण लिये गये। इस समय टोकियो संसार का आदर्श नगर है। इसकी सड़कें अपना सानी नहीं रखतीं; भवन ऐसे उत्तम, भूकम्प प्रूफ और आग से न जलनेवाले बनाये गये हैं कि गोरे भी देखकर हाथ मलते हैं। स्त्रियों के विश्राम भवन, सरकारी भोजनालय, सस्ते भाड़े के सुन्दर मकान, ऋणदान-समितियाँ तथा सार्वजनिक स्नानागार बनवाने में ही इस नगर ने प्राय चालीस करोड़ रुपया लगा दिया। स्कूल और पाठशालाओं के भवन निर्माण करने में एक टोकियो में प्रायः पचीस करोड़ रुपया लगा। इस प्रकार कृती जापानी जाति ने अपने को फिर ऊँचा उठा लिया और आज जापानी अपना सिर ऊँचा करके सारे जगत् में अपना प्रताप और यश फैला रहे हैं। जापान से भारत को अनेक शिक्षायें ग्रहण करनी हैं। भूकम्प के कारण जो महान् संकट हमारे सामने उपस्थित हुआ है, उसका निवारण भी हम जापान का उदाहरण पकड़कर कर सकते हैं। आवश्यकता है सच्चे कर्मियों की जो विदेशियों के भरोसे न बैठकर अपने कृतित्व का सहारा लें। तेजस्विनाव-धीतमस्तु।

(विश्वमित्र से)

साम्प्रदायिकता का विष

लेखक—श्रीयुत उदयशंकर भट्ट, शास्त्री

आज संसार के समझदार लोग विश्व-बन्धुत्व, विश्व-प्रेम एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की दुहाई देते आ रहे हैं। जिस अकली शान्ति का राग आर्यों ने अलापा, बौद्धों ने गाया, यूरोप के मध्य युग के रोमन कैथोलिक, प्रॉटेस्टेन्ट लोगों ने जिसका अनुगमन करके संसार को सुख शान्ति देने की घोषणा की उसकी तह में भी साम्प्रदायिकता की बू थी। पहले धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से साम्प्रदायिकता थी, अपने अपने सिद्धान्तों, धर्म के आचारों के लिये सिर फुटौवल हुई, वीभत्स हत्या कायड हुए, पर आज उस साम्प्रदायिकता ने आर्थिक परिस्थितियों की परवशता में राजनैतिक रूप धारण किया। यह साम्प्रदायिकता और रूपों, परिवर्तनों से अधिक भयंकर रूप धारण करके संसार के सामने नग्न रूप में आ रही है। यह इतनी भीषण, इतनी हाहाकार-मयी और इतनी कुत्सित है कि इसमें विश्व को और विशेष कर भारत को कहाँ शान्ति प्राप्त होगी, इसके सम्बन्ध में अभी तो विचार भी नहीं किया जा सकता। यदि पहली साम्प्रदायिकता धार्मिक आचार्यों, धर्मगुरुओं समाज के पचों में थी, तो आज इस युग में साम्प्रदायिकता पाँच साल के बच्चे, साधारण काम करने वालों से लेकर समाज के प्रतिनिधियों तक में पाई जाती है। कोई बात हुई नहीं कि अभी यह हमारा हिन्दू भाई है, यह हमारा मुसलमान भाई है, इसकी मदद अवश्य करनी चाहिये—कह कर गुणों, और अवस्थाओं का गला घोंटा जाता है। ऐसे लोग छोटी सी बात पर भीषण रक्तपात के लिये उतारू हो जाते हैं। दीन के नाम पर, धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर साम्प्रदायिकता का नग्न नृत्य देखने में आ रहा है। मामूली नौकरी से लेकर बड़े-बड़े ओहदों तक साधारण दूकानदारी से लेकर बड़े-बड़े कारखानों तक दूर इसे घसीट लाया जाता है। 'यह मुसलमान इक्केवाला है, हम इसके इक्के में नहीं बैठेंगे। वह हिन्दू बजाज है, हमारा फर्ज है कि मुसलमान बजाज से कपड़े खरीदें।' आदि बातें कहकर छोटी-छोटी बातों में उठते-बैठते साम्प्रदायिकता का रूप दे बैठते हैं। यह है हमारी अवस्था। मैं जिस प्रदेश में बैठ कर यह लेख लिख रहा हूँ, वह पंजाब, साम्प्रदायिकता का गढ़ कहा जाता है, परन्तु दूसरे प्रान्तों में भी यह कुछ कम नहीं है, वहाँ भी लोगों की रगों में साम्प्रदायिकता कूट-कूट कर भरी हुई है। अभी उस दिन की बात है, मैं लखनऊ से आ रहा था। मेरे कम्पार्टमेंट में एक गाँव का रहने वाला मुसलमान बैठा था। कुछ और मुसलमान सज्जन भी थे। क्षुधा की मार कि उस ग्रामीण ने किसी स्टेशन पर—मुझे ध्यान नहीं—एक हिन्दू खोंमचे वाले से पूड़ियाँ खरीदीं। इस पर उन मुसलमानों में से एक नव वयस्क कह उठा—अरे मियाँ! क्या नानबाई मर गये, मुसलमान से क्यों नहीं खरीदते? तुम्हें शर्म नहीं आती। इस पर उसके दूसरे साथी ने कहा—नासमझ आदमी है।

मैंने उनसे पूछा—जनाब यह तो बताइये, इसने हिन्दू-खोमचे वाले से पूड़ियाँ खरीद कर क्या गुनाह किया? इस बात पर दोनों एक दूसरे की तरफ देखकर बोले—साहब, आप क्या जानें यह मजहब का मामला है। मैंने कहा—ठीक है, आज से दस साल पहले जब आप भी हिन्दू दूकानदारों से खरीद कर मिठाइयाँ खाते थे, तब मजहब कहाँ गया था? सारांश यह कि हमलोगों में साम्प्रदायिकता बड़े विकराल रूप से प्रवेश कर गई है। कहना न होगा कि हिन्दुओं में तो यह साम्प्रदायिकता इतनी विकट है कि उसका रूप देखकर समझदार और निष्पक्षपाती लोग थर्रा जाते हैं। ब्राह्मण अब्राह्मण, कायस्थ-वैश्य अग्रवाल और धूसर वैश्य आदि में परस्पर बात बात में जातीय साम्प्रदायिकता प्रविष्ट हो गई है। दिन पर दिन हमारी आउट लुक बड़ी संकुचित और क्षुद्र बनती जा रही है। यदि आज अग्रवालों का डेपूटेशन गवर्नर से मिलने जा रहा है, तो कल ब्राह्मणों का। और वहाँ प्रार्थना यह की जाती है कि हमारा प्रतिनिधित्व अमुक विभागों में बहुत कम है। मैं मानता हूँ, इस दोष के भागी केवल हमीं नहीं हैं, हमें जिधर नचाया जाता है, उधर ही हम नाचते हैं। इसके सूत्रधार और भी हैं किन्तु खेद तो यह है कि हम, इस साम्प्रदायिकता के रंग में अपने सिवाय संसार में किसी और का भी अस्तित्व है, यह नहीं देख पाते। हमारा सारा विज्ञान, कला कौशल, पाण्डित्य इसी उधेड़बुन में समाप्त होता है कि किसी तरह हमारी जाति को ही अधिक से अधिक लाभ पहुँचे। उन्हें यह मालूम नहीं कि एक जाति के समुन्नत होने पर भी देश को वास्तविक सुख नहीं मिल सकता। हमारे जीवन में इस पिशाचिनी साम्प्रदायिकता का रूप इससे भयंकर और क्या हो सकता है कि भूकम्प-पीड़ित, विपत्तिग्रस्त बिहार प्रान्त को सहायता पहुँचाते समय भी हिन्दू और मुसलमानों का ध्यान रखा जाता है। हिन्दू महासभा की सरकार से इस शिकायत में तथ्यांश प्रतीत होता है कि वहाँ सहायता देने के समय केवल मुसलमान परिवारों को ही सहायता दी जा रही है। क्या इस तुच्छ सहायता से बिहार के उन मुसलमानों का कुछ बन जायगा?

इस साम्प्रदायिकता में सबसे बड़ा दोष हमारे नेताओं का है। दूसरा धर्म का। नेता भी धर्म की आड़ में—जिसका उद्देश्य संसार में सच्ची शान्ति फैलाना है—अपना उल्लू सीधा करते हैं। शायद इनकी चाँदी भी इसमें है, परन्तु मनुष्यता के प्रति कितनी बड़ी हत्या है, इसका इन भलेमानसों को ज्ञान नहीं। धर्म का क्या रूप है, इसका ज्ञान भी जनसाधारण को नहीं है, किन्तु उसके बाह्यांगों पर मारकाट शुरू करने में एक बच्चा भी अपने को असली धर्मात्मा और धर्म का अवतार समझ बैठता है। अछूतों की समस्या भी इस साम्प्रदायिकता का ही एक अंग है। हिन्दू धर्म के जिस विशाल शरीर में सीथियन, हूण समा गये। आज जिनके अस्तित्व का भी पता नहीं है, वे ही—धर्म के अंग—हिन्दुओं की एक जाति के प्रति इतने अनुदार हैं। जिस धर्म ने चीटियों को पालने का उपदेश दिया, जिसने नीच जाति के भंगी चमारों को संसार का सबसे बड़ा धर्मात्मा सिद्ध किया, आज वही धर्म अपने अंग को ईश्वर दर्शन का भी निषेध करता है। मुसलमान, ईसाई चाहते हैं कि संसार के सभी लोग उनकी मस्जिदों, गिरजाघरों के भक्त बन जायँ, परन्तु एक हम हैं, जो अपने आदमियों को भी अपने मन्दिरों में घुसने नहीं देना चाहते। उस पर तुर्रा यह है कि हम, सम्पूर्ण संसार में पहले सनातनधर्म का प्रचार था, 'इस बात की घोषणा बड़े जोरों से करते हैं। आज भी पुराणों से यह सिद्ध करते हुए नहीं हिचकिचाते कि कण्वऋषि अपने एक हजार शिष्यों के साथ भारतवर्ष के बाहर प्रचार करने गये और उन्होंने दूर देशों में सनातनधर्म का प्रचार किया, परन्तु क्या आज हम कण्वऋषि या व्यास मुनि के उन्हीं नियमों का पालन कर रहे हैं, जिनके लिये वे ऋषि मुनि भारत के इतर देशों की खाक छानते फिरे? अस्तु, भारत के लोगों में जहाँ सामाजिक, जातीय और धार्मिक रूप से साम्प्रदायिकता है, वहाँ उनमें प्रान्तीय साम्प्रदायिकता भी कम नहीं है। इस बात में बंगाली सबसे बढ़ चढ़ कर हैं। मद्रासी, मरहठों में इस विष का पूर्ण प्रभाव है। प्रत्येक शहर में काली-बाड़ी, प्रत्येक नगर में मद्रास-लॉज और महाराष्ट्र समाज है। नौकरी के समय के अतिरिक्त इन लोगों का उठना बैठना अपने समाज में होता है। और इसमें विशेष रूप से जो चर्चा होती है, उसका सार है—हमारा प्रान्त, हमारा आचार, हमारी रहन सहन सब प्रान्तों से श्रेष्ठ है।' इससे हमारे विचारों में विशालता आने के बजाय संकीर्णता और अपने मुँह मियाँ मिट्ठूपन ही अधिक रहता है। इससे मेरा यह आशय कदापि नहीं कि सब बंगाली, मद्रासी और महाराष्ट्र ऐसे ही संकुचित विचारों के हैं। नहीं, उनमें बड़े विशाल हृदय वाले भी हैं किन्तु समाज, लॉज और बाड़ी में अधिकतर सब इसी विचार के आदमी हैं। मुझे कई ऐसे दूसरे प्रान्त के आदमियों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो अपनी भाषा के सामने हिन्दी को हेय समझते हैं। उनकी समझ में सिवाय अंग्रेजी और उनकी भाषा के कोई भाषा सर्वसाधारण में प्रचार-योग्य और बात चीत के लायक नहीं है। दो भिन्न प्रान्तीय सज्जन विचार विनिमय के लिये अब भी अंग्रेजी को प्रमुखता देते देखे गये हैं और जब उन्हें अनिवार्य रूप से हिन्दी बोलनी आ पड़े, तो वे ऐसी टूटी फूटी गोरेशाही हिन्दी बोलेंगे कि मानों ये अभी यूरोप से आ रहे हैं। राष्ट्रीयता के पक्षपाती ये प्रान्त परस्पर विद्वेषी 'हम चुनी दीगरे नेस्त' के पूरे अनुयायी हैं। ऐसी दशा में हम परस्पर कौन सा सुधार कर सकते हैं, हमने कितनी राजनैतिक उन्नति की है यह गणना ही क्या है? मेरी स्पष्ट धारणा है कि पठित समाज प्रान्तीयता, जातीयता, धार्मिक उन्माद के रूप में इस विषैली साम्प्रदायिकता का जितना पुजारी है, उतना और कोई नहीं। इस का कारण यही है कि अंग्रेजी पठित-समाज के लोग इंग्लिश एटीकेट के पूर्ण पक्षपाती हो कर भी साम्प्रदायिकता के शिकार बन रहे हैं। यदि एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाने आने के साधनों के होते हुए भी हम में वही प्रान्तीयता का भाव काम करता है, तो कदाचित् स्वराज्य से पूर्व जातीय युद्धों के साथ प्रान्तीय युद्ध भी होंगे।

दुर्दशा-ग्रस्त बिहार के ग्राम

लेखक—श्रीयुत भीष्म आर्य

गत १५ जनवरी का दोपहर भला किसे न याद होगा। वह दिन हम नवयुवकों के जीवन में एक नई चीज था। उस दिन की घटना के स्मरण-मात्र से ही हृदय कम्पित हो जाता है। उस दिन के सवा दो बजे के समय ने बड़े-से बड़े नास्तिक को भी आस्तिक बनाकर ही छोड़ा, बड़े-बड़े धन्नासेठों को, जिन्हें इस बात का घमण्ड था कि वे अपने धन के बल पर सब पर विजयी हो जायँगे, रास्ते का भिखारी बनाकर ही छोड़ा, उस समय ने सारे विश्व को ज्ञात करा दिया कि ईश्वर क्षण-भर में किस प्रकार प्रलय करता है, उसकी इस विचित्र लीला से बड़े-बड़े वैज्ञानिक और बड़े-बड़े विद्वान चकित हो गए। उस सवा दो बजे ने वही चीजें हमारे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित कर दिया, जिन्हें हम कहानियों में पढ़ा करते थे। हमने रामायण में पढ़ा था 'सीता ने पृथ्वी से प्रार्थना की कि वह फट जाय और सीता उसी में समा जाय और ऐसा हुआ भी' वही कहानी सीतामढ़ी में सत्य होकर ही रही। ईश्वर के इस प्रलयकारी नृत्य से उत्तरी बिहार को विशेष क्षति पहुँची। मुंगेर, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, सीतामढ़ी और भागलपुर तो एक प्रकार से नष्ट ही हो गए। अब वे नगर पहचाने नहीं जाते, हजारों घायल हुए, हजारों मरे, लाखों गृह अन्न और वस्त्र हीन हो गए। सारे देश में सहायता की अपील की जाने लगी, देश के बड़े-बड़े नेता अपने-अपने दामन फैलाकर भीख माँगने के लिए निकल पड़े। सैकड़ों सेवा-संस्थाओं की ओर से स्वयंसेवकगण सेवा के लिए भेजे जाने लगे। उन्हीं स्वयंसेवकों में से मैं भी एक था, जो काशी-नागरिक मंडल की ओर स सेवा के लिए भेजा गया था। मैंने जो कुछ भी देखा, उसका विस्तृत वर्णन करना तो असंभव है, फिर भी मैं यथा साध्य वहाँ की अवस्था 'जागरण' के पाठकों के सम्मुख रखने की चेष्टा करूँगा।

काशी से पटने तक

हम २४ जनवरी को राजघाट स्टेशन से लगभग १० बजे पटने के लिए रवाना हुए, रास्ते में जगह-जगह मकान गिरे हुए नजर आते थे। ज्योंही बिहार की सीमा में पहुँचे, त्योंही हमें वहाँ की अवस्था का अनुभव होने लगा। प्राय सभी मकान गिरे हुए थे, जो बचे भो, वे इस बुरी तरह से फट गए थे, जिन मे रहना बहुत खतरनाक था। पटना शहर को अब पहचानना कठिन हो गया है, पटने के स्टेशन का कुछ अंश गिर पड़ा है और बाकी फट गया है। पटने का चौक जो बहुत रात गए तक गुलजार रहा करता था, अब शाम होते ही सुनसान हो जाता है। पटने के सभी मकान फट गए हैं, सैकड़ों गिर भी गए, लोग मैदानों में फूस की झोपड़ी डालकर रहते हैं, क्या अमीर क्या गरीब। सभी को अभी तक इस बात की आशंका बनी हुई है कि फिर किसी समय भूकम्प हो सकता है और फिर से वही प्रलयकारी दृश्य सामने उपस्थित हो सकता है। लोगों का जीवन बिल्कुल अनिश्चित-सा है। अखबारों में जो यह प्रकाशित हुआ था कि पटने में गंगानदी कहीं सूख गई थीं और स्टीमर बालू में फँस गया था, जाँच करने पर बिल्कुल निराधार पाया गया। लोगों का कहना है पटने की सीमा के अन्दर ऐसी कोई घटना नहीं घटी थी। हाँ जमीन कहीं कहीं फट गई है और थोड़ा बहुत बालू और पानी भी निकला है, पटन की कचहरी का कुछ हिस्सा फट गया है, उसी कचहरी के हाते में एक मन्दिर है, जो बुरी तरह फट गया है, किसी भी समय उसे गिर पड़ने की आशंका की जाती है। हमलोग पटने से स्टीमर द्वारा नदी पार कर पहलेजाघाट पहुँचे, वहाँ से छोटी लाइन द्वारा मुजफ्फरपुर के लिए रवाना हुए।

पहलेजाघाट से मुजफ्फरपुर तक

रास्ते में हमने सोनपुर में सोन नदी का मजबूत पुल कई जगह चटखा हुआ पाया। आगे चलकर गुरौल स्टेशन से हमें भूकम्प के दया-रहित करतूत दिखाई पड़ने लगे। गुरौल और करहती स्टेशन के बीच कुलंजी गाँव बिल्कुल ऊसर जमीन हो गया—सारा खेत बालू, पानी, और गन्धक से भरगया है। कुरहनो में कई मकान गिरगये हैं, जिनमें एक पुरुष और एक सात वर्ष की बालिका मरी है। रेलवे लाइन के समीप की जमीन २-२ फीट ऊपर उठ गई है। खेतों में तथा रास्ते में पानी फौव्वारे के रूप में निकले हैं जिनमें सारे गाँव-के-गाँव नष्ट हो गये हैं। खेतों में पानी एक मनुष्य की ऊँचाई तक था। तुर्की का कबीर मठ पूर्ण रूपेण ध्वस्त हो गया है, तुर्की स्टेशन का प्लेटफार्म भी बुरी तरह फट गया है। ट्रेन यहाँ पर २ और १ मील की घण्टे की रफ्तार से चलती है, क्योंकि लाइनें बिल्कुल नष्ट हो गई हैं।

मुजफ्फरपुर

मुजफ्फरपुर नगर अब एक प्रकार से रहा ही नहीं। सारे मकान गिर गए हैं, जो थोड़े से बचे भी हैं वे रहने योग्य नहीं हैं, क्योंकि वे भी बुरी तरह से फट गये हैं। गान्धी आश्रम (चर्खासंघ) के किसी भी भवन को किसी भी प्रकार की हानि नहीं हुई। मुजफ्फरपुर के पुरानी बाजार में दुर्गन्धि के कारण जाने का साहस नहीं होता। पुरानी बाजार मे एक मकान गिर जाने से १४ आदमियों की मृत्यु हुई, जिनमें ७ की लाशें मिलीं और ७ लापता हैं। एक मकान के गिर जान से उसमें रहने वाले सभी की मृत्यु हो गई। उसी मकान में एक सजा-सजाया पलँग उसी तरह पड़ाहुआ है, जिससे मालूम होता है कि उस मकान का कोई व्यक्ति सोने की तैयारी में था, इतने में ही भूकम्प शुरू हो गया। हम लोगों ने वह कुआँ भी देखा, जिसके विषय मे लोगों का कहना है कि भूकम्प के समय पानी उस कुएँ से १६ फीट ऊँचा फौव्वारे की तरह करीब ½ घंटे तक निकलता रहा, जिससे बहुत दूरतक ७ फीट की ऊँचाई का पानी हो गया। वहाँ की सड़कें अब भी गीली हैं और कहीं-कहीं दलदल है। उस कुएँ में बालू के अतिरिक्त अब और कुछ भी नहीं रह गया। सारा शहर ईंटों का ढेर हो गया है केवल शहर में ४ हजार से अधिक मौतें हुई हैं।

मुजफ्फरपुर से सीतामढ़ी

मुजफ्फरपुर से सीतामढ़ी ३७ मील है। सड़क के दोनों ओर खेतों में बालू और पानी भरा है। कहीं-कहीं सड़कें ३-४ फीट तक पानी में डूबी हुई हैं। पुल बिल्कुल नष्ट हो गए हैं, लोगो को कई मील तक किश्तियों पर चलना पड़ता है। रूपहाँ के शूगर फैक्टरी का कुछ अंश गिर पड़ा है, जिसमें ६ आदमी मरे हैं, करीब १०-१५ घायल भी हुए हैं। सीतामढ़ी की शूगर फैक्टरी बिल्कुल नष्ट हो गई है, इसमें करीब ७५ आदमी मरे और १५० आदमी घायल हुए हैं। फैक्टरी के चारों ओर पानी ही-पानी है। सीतामढ़ी मे लखनदेई नदी पर का रेलवे पुल बिल्कुल चकना-चूर हो गया है। रेलवे लाइन एक मनुष्य के इतना ऊँचा जमीन से उठ गई है। प्राय: सभी मकान जमीन मे धँस गए हैं और टेढ़े हो गये हैं। कई सौ मकानों का पता भी नही चलता, सारे शहर में दरारें हो गई हैं। दरारें कहीं-कहीं कई मनुष्य के बराबर गहरी हैं। सड़कों पर कई फीट बालू पड़ा हुआ है, जिससे गाड़ियों के चलने में बड़ी कठिनता होती है। यहाँ सब-डिविजन भर में २००० मौतें हुई हैं।

पिपरी थाना

सीतामढ़ी से २२ मील चलकर हम लोग २८ जनवरी को रात के नव बजे यहाँ पहुँचे। रास्ते के गाँवों की अवस्था बहुत ही कारुणिक है, खेतों में बालू चार चार फीट ऊँचा पड़ा हुआ है। खेत सड़को के बराबर हो गए हैं, कहीं-कहीं खेत सड़कों से ऊँचे भी उठ गए हैं। यहाँ की अवस्था और भी शोचनीय है ९५ प्रतिशत खेत बालू और पानी मे हैं। पीने के जल का प्रबन्ध है ही नहीं। प्राय: सभी कूओं में बालू भरे हैं। लोग गन्धक का मिला हुआ पानी पी रहे हैं। भोजन, वस्त्र और झोपड़ियों की अत्यन्त आवश्यकता है। बिहार के ग्रामों में कम-से-कम १ वर्ष के लिए भोजन, वस्त्र, और झोपड़ी के प्रबन्ध करने की अत्यन्त आवश्यकता है, वर्ना दो-एक मास के बाद भारी अकाल पड़ने की पूरी सम्भावना है, जिसमें मनुष्य मनुष्य को खायेंगे। आशा है, संसार भर के सहृदय लोग इस ओर अति शीघ्र ध्यान देंगे। मनुष्यता के नाते यदि अपने दु:खित बन्धुओं की इतनी भी सहायता नहीं की गई, तो फिर हम संसार में किस दिन के लिए जी रहे हैं।

दक्षिण भारत में क़हवा

लेखक—श्रीयुत विद्याभास्कर

उत्तर भारत में हमें बहुत अधिक ऐसे लोग मिलेंगे, जिन्होंने कभी क़हवे (Coffee) का नाम भी न सुना होगा; पर हमारे देश के सुदूर दक्षिण मद्रास-प्रान्त में ऐसा घर 'अभागा' ही होगा, जहाँ काफ़ी नहीं पी जाती। काफ़ी, काफ़ी महँगी चीज़ है, इसलिए हमें अवश्य ही ऐसे लोगों से उसके सेवन की आशा रखनी चाहिए, जो अपने सीमित समाज में कुछ प्रतिष्ठित समझे जाते हैं। गरीब लोग निश्चय ही काफ़ी नहीं पीते, इसलिए वे अभागे हैं और अप्रतिष्ठित होने का तो यह प्रमाण ही है। समाज में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए और स्थापित प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए काफ़ी-पान आवश्यक समझा जाता है। इस अन्धविश्वास ने और इस थोथी प्रतिष्ठा के मायावी जाल ने अवश्य ही सैकड़ों सम्पन्न कुटुम्बों को अपने फन्दे में डालकर सर्वनाश की ओर खींच लिया होगा—यह बात सहज ही अनुमान की जा सकती है। सन्तोष की बात है कि महात्मा गांधी के सादगी सम्बन्धी उपदेशों के कारण, और बहुत अधिक अंश में वर्तमान आर्थिक सङ्कट से विवश होकर बहुत से लोगों ने इस विनाशकारी नशे को दूर कर दिया है, पर अभी यह इतनी अधिक मात्रा में प्रचलित है कि दक्षिण-भारत को इसे एकदम दूर करने में कई साल लग जाएँगे।

यदि इस समय मद्रास प्रान्त में काफ़ी-पान कम करने का श्रेय महात्मा गान्धी को है, तो हम यह कहना चाहते हैं कि मद्रास-प्रान्त से काफ़ी को एकदम दूर करने के लिए, महात्मा गान्धी से भी अधिक प्रभावशाली और उनसे कहीं अधिक सादगी के उपदेश देने वाले और कई महात्माओं के उपदेशों की आवश्यकता है और यदि दुर्भाग्य-वश यह श्रेय वर्तमान विश्वव्यापी आर्थिक सङ्कट को प्राप्त है, तो हमें दुःख है कि हम उसे बने रहने की सलाह नहीं दे सकते।

इतना तो स्पष्ट है कि काफ़ी विदेशी चीज़ है। कहते हैं, यह अरब में सबसे पहले पाई गई थी। बाद में यह सारे यूरोप और अमेरिका में फैल गई, और अब तो इसने भारत में भी अपना पैर पसारा है। आश्चर्य की बात है कि विदेशी क़हवा बहुत थोड़े से समय में सारे दक्षिण भारत में फैल गया, यहाँ तक कि क़हवा अब गाँव-गाँव में पिया जाने लगा। दस वर्ष पहले इसका इतना प्रचार नहीं था। शहरों में कहवा, विरले घरों, में पिया जाता रहा होगा, पर आज की तरह देहातों में भी पहुँचकर भोले-भाले गरीब देहातियों का गला अवश्य ही नहीं घोटा था। आज मद्रास-प्रान्त में शायद ही कोई गाँव आप ऐसा पाएँगे, जहाँ आपको काफ़ी न मिले।

भारत में काफ़ी के बहुत से बाग हैं। कुर्ग, मैसूर और सिलोन में इसकी खूब ही खेती होती है। भारत में जिस प्रकार चाय के लिए आसाम के बाग मशहूर हैं, उसी प्रकार काफ़ी के लिए कुर्ग के बाग। लंका में भी काफ़ी के बहुत से बाग हैं। विदेश में—दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया और अफ्रिका में तो इसकी खूब ही खेती होती है।

काफ़ी का सूखा बीज होता है, जिसे भून कर और कूट कर पीने के काम में लाया जाता है। यह बीज किशमिश के इतना बड़ा होता है—ठोस और सूखा। इसे कड़ाही में डालकर खूब भूनते हैं। अन्त में जब वह एकदम काला हो जाता है और जलने के करीब पहुँचता है तब उसे चूल्हे पर से उतार लेते हैं। इसको एक खास मशीन होती है, जिसमें यह कूटा जाता है। जिनके यहाँ यह मशीन नहीं होती, वे पत्थर पर ही कूट लेते हैं। बुकनी बना लेने पर यह सुर्घनी के रंग का हो जाता है। अन्त में चाय बनाने की क्रिया ही काम में लाई जाती है। अर्थात् गरम पानी में थोड़ी देर छोड़ रखने के बाद छानकर दूध मिलाते हैं। हाँ, चीनी अवश्य डाली जानी चाहिये जितनी चाय में पड़ती है, उससे अधिक। काफ़ी चाय के रंग की होती है, पर चाय से कुछ गाढ़ी। जितनी गाढ़ी होती है, उतनी ही अधिक पसन्द की जाती है।

मद्रास शहर में चले आइए, आपको एक छोटी गली भी ऐसी नहीं मिलेगी, जहाँ कम-से-कम दो चार काफ़ी क्लब न हों। काशी की पानों की दूकानें भी इनके सामने मात हैं। मद्रास में कहवा घरों का काफ़ी क्लब ही कहते हैं। वहाँ आप जायँगे, तो आप को कुछ खाद्य पदार्थों के साथ काफ़ी मिलेगी। विदेशी लोग, जिनके यहाँ से काफ़ी आई है, इसे पावरोटी या बिस्कुट के साथ पीते हैं। मद्रासी लोग काफ़ी को अपने यहाँ के कुछ नमकीन खाद्य पदार्थों के साथ पीते हैं। उत्तर भारत के लोग यदि इसे एक बार भी पिएँगे, तो 'कड़वी' 'जली हुई' इत्यादि कहेंगे। वास्तव में कड़वी भी है और जली हुई भी, पर जब आप इसके अभ्यस्त हो जायँगे, तो आप को यह अमृत से भी अधिक अच्छी लगेगी।

अतिथि-सत्कार के लिये मद्रास में काफ़ी एक परमावश्यक वस्तु है। जो अपने यहाँ आये हुए परिचित, रिश्तेदार और मित्र को काफ़ी न पिला सका, वह असामाजिक ही समझा जायगा। ऐसे लोग जिनके यहाँ काफ़ी नहीं पी जाती, काफ़ी की बुकनी की हुई डब्बे तैयार रखते हैं। ऐसे बुकनी के डब्बे मद्रास में बहुत बिकते हैं। उन लोगों को ऐसे डब्बे अवश्य रखने चाहिये, जो नित्य प्रति काफ़ी नहीं पीते। न मालूम कब कोई परिचित आ जाय, जिसे काफ़ी पिलानी पड़े। जो यह भी नहीं कर सकते, वे तत्काल पड़ोस से काफ़ी-पाउडर ले लेते हैं। मद्रास शहर में आपके दस परिचित मित्र हैं, और उनसे आपको एक ही दिन में मिलना है, तो आपका सत्कार कम-से कम आठ मित्रों के यहाँ काफ़ी से ही किया जायगा। कुछ लोग सुबह-शाम दोनों समय काफ़ी पीते हैं, पर ऐसे लोगों की संख्या कम है। अधिकतर लोग प्रातःकाल ही काफ़ी पान करते हैं।

केवल मद्रास शहर में ही काफ़ी-क्लबों का बाहुल्य नहीं है। छोटे-छोटे शहरों, कस्बों और बस्तियों तक में इनकी भरमार है। काफ़ी-क्लब खोलना और उसे चलाना दक्षिण भारत का एक बहुत बड़ा व्यवसाय है। आजकल के कितने ही बेकार युवक ग्रेजुएटों ने भी इस व्यवसाय में हाथ लगाना शुरू कर दिया है। इस सम्बन्ध में एक बड़ी मजेदार बात जान लेने की यह है कि काफ़ी क्लब वाले समाज में अप्रतिष्ठित-से समझे जाते हैं। इसका कारण केवल यह है कि बचपन से ही इस व्यवसाय में लग जाने के कारण, ये लोग बिलकुल निरक्षर होते हैं। कोई भी सम्मानित व्यक्ति अपनी पुत्री का ब्याह ऐसे लड़के से करने में हिचकेगा, जो काफ़ी-क्लब में नौकर हो अथवा खुद का क्लब चला रहा हो, पर इन कहवा-घर वालों के पास यथेष्ट धन है, इसलिये अब वे कुछ-कुछ प्रतिष्ठित समझे जाने लगे हैं। अब बेटी व्यवहार में लोगों को उतनी हिचक नहीं रह गई है।

उपनयन-संस्कार और विवाह इत्यादि विशेष अवसरों पर काफ़ी एक एक बहुत ही आवश्यक चीज़ है। सुबह टिफिन के लिए काफ़ी नहीं आई, अथवा काफ़ी आने में देर होने लगी, बारात वाले लौट जाने की धमकियाँ देने लगे। काफ़ी ठीक नहीं बनी, दूध अथवा चीनी कम है, बारात वाले रुक नहीं सकते। इतनी बड़ी बेइज़्ज़ती सहने के लिए बारात-वाले तैयार नहीं हैं। कम काफ़ी आने की शिकायत तो अवश्य ही की जायगी। बारातवालों के लिये चाहे अधिक से-अधिक काफ़ी क्यों न आवे, कम अवश्य हो जायगी, क्योंकि पियक्कड़ लोग जहाँ मुफ्त की प्राप्ति होती है, एक की जगह दो गिलास अवश्य चढ़ा जायँगे। मद्रासी लोग उस विवाह को विवाह कहने के लिए तैयार ही नहीं होंगे, जिसमें लड़की वालों ने काफ़ी नहीं पिलाई (ऐसा बहुत कम ही होता है) अथवा अच्छी काफ़ी नहीं पिलाई। अच्छी काफ़ी से हमारा मतलब अवश्य ही ऐसे काफ़ी से है, जो अधिक-से-अधिक कीमत लगाकर खरीदी गई हो, जो खूब गाढ़ी बनी हो, और जिसमें अधिक-से-अधिक दूध और चीनी हो।

खद्दर पहनो और देश के दुख-दारिद्र्य को दूर भगाओ।

मानसिक स्वभाव और उसकी शक्ति

लेखक—श्रीयुत विद्यारत्न पं० कमलकुमार जैन, शास्त्री

मन जीवन का मुखिया है। वही वाह्य स्थितियों को उत्पन्न करता है, उनको स्वरूप देता है, और उनके परिणामों का स्वागत करता है, भोग भोगता है। इसमें पदार्थों का वास्तविक स्वरूप समझने की और स्वरूप समझने में भ्रम करने की दोनों प्रकार की शक्तियाँ हैं।

मन भाग्य-रूपी कपड़े को बनाने वाला एक होशियार जुलाहा है। विचार धागे हैं, भले और बुरे काम ताना-बाना हैं, और मन-रूपी साँचे पर बना हुआ स्वभाव वस्त्र है। मन अपनी ही बनाई हुई पोशाक को आप पहनता है।

मन की समग्र शक्तियों पर आत्मा का, मनुष्य का, पूर्णाधिकार है। और इसलिये प्रत्येक बात मनुष्य की इच्छानुसार होती है। मनुष्य अनुभव से ही प्रत्येक बात सीखता है। वह अपनी अनुभव प्राप्ति की चाल को, तेज कर सकता है, धीमी कर सकता है, और सर्वथा रोक भी सकता है।

उसको किसी बात के लिए किसी ने जबर्दस्ती बाँध नहीं रखा है, परन्तु उसने बहुत से काम करने के लिए अपने आप को स्वयमेव बाँध रखा है और बंधन उसने ही बाँधे हैं। इसलिए जिस समय वह चाहे, उन्हें तोड़कर स्वतंत्र भी हो सकता है। यह बात मनुष्य के अधिकार में है कि वह अपनी इच्छानुसार पवित्र या अपवित्र, उत्तम या अधम और ज्ञानी या मूर्ख बने। वह अभ्यास से अपने स्वभावों को बना सकता है और अभ्यास से ही उनको मिटा भी सकता है। (चाहे वे स्वभाव भले हों या बुरे) दोनों तरह के स्वभावों का बिगाड़ना और बनाना मनुष्य के ही हाथ की बात है। वह अपने आपको भ्रांतियों के चक्कर में डालकर सच्चे पथ को त्याग सकता है, और फिर वह जब चाहे, तब ही क्रमशः उन भ्रांतियों का नाश कर सर्वथा सत्य के प्रकाश में भी आ सकता है। मनुष्य की भावनाएँ अनन्त हैं—मनुष्य पूर्ण स्वाधीन है।

आत्मा में—मनुष्य में—यह शक्ति है कि वह अपनी स्थितियों को उत्पन्न कर सकता है और जिस स्थिति में रहना चाहे, उसे वह पसन्द कर सकता है। इसमें प्रत्येक स्थिति को बदलने या छोड़ देने की अपूर्व शक्ति है। इस शक्ति को वह जैसे जैसे स्थितियों का ज्ञान प्राप्त करता जाता है, वैसे ही वैसे आवर्तित—दोहराई हुई अभिलाषा—पसंदगी और पूर्ण अनुभव के द्वारा काम में लाता जाता है।

विचारों की आन्तरिक-क्रियायें जीवन और चरित्र रूपी द्रव्य जमा करती हैं। मनुष्य इन क्रियाओं का अपनी इच्छा से, कोशिश से सुधार कर सकता है। ये मनुष्य के (माइंड) बुद्धि में ही रहते हैं। यद्यपि इनका संबंध सीधा वाह्य पदार्थों से है, परन्तु इनका वस्तुतः अस्तित्व उनमें नहीं है। अन्तरंग वाह्य वस्तुओं को बनाता है और उसमें शक्ति डालता है, परन्तु वाह्य वस्तुएँ अन्तरंग में कभी ऐसा नहीं कर सकतीं। वाह्य पदार्थों में वासनाओं को उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है, परन्तु उनकी उत्पत्ति का कारण मन की खुमारी-इच्छा है। जीवन में कष्ट डालने या विषाद उत्पन्न करने की वाह्य पदार्थों में शक्ति नहीं है। दुःख या रंज अशिक्षित मन की बेध्यानी से, जो उन पदार्थों की ओर होती है—होता है। मन, जो कि पवित्र, शिक्षित और बुद्धिमत्ता रूपी दुर्ग में सुरक्षित है, उन तमाम विषय वासनाओं और इच्छाओं को, जिनका कि विपत्ति के नष्ट होते ही मनुष्य को पूर्ण ज्ञान, प्रकाश शक्ति और शान्ति मिल जाते हैं।

दूसरों को बुरा बताने से और वाह्य दशाओं को, वस्तुओं को, सारे पापों का कारण बताकर, उन्हें धिक्कारने से, संसार में दुःख और अशान्ति की अभिवृद्धि होती है। (यदि कोई समझता हो कि ऐसा करने से संसार का दुःख कम होता है, तो उसकी भूल है!) वाह्य स्थिति अन्तर की परिछाया, प्रतिबिम्ब, असर, परिणाम है। जब हृदय पवित्र होता है, तो सारे वाह्य पदार्थ भी उसके लिये पवित्र ही होते हैं।

उन्नति और जीवन अन्तरंग से बाहर आते हैं, और पतन व मृत्यु बाहर से अन्तरंग में आते हैं, यही प्रकृति का नियम है। सब तरह की उन्नतियाँ अंतरंग से होने लगती हैं, और सब तरह की सफाइयाँ भी अन्तरंग से ही होती हैं। मनुष्य, जो दूसरों से—वाह्य पदार्थों से—झगड़ना छोड़ देता है और अपनी शक्ति को, अपना मन सुधारने में, उसे नवीन और उत्तम विचारों से उन्नत बनाने में लगाता है। अपनी शक्ति को बचा लेता है, इतना ही नहीं; वरन् वह उसको बढ़ा भी लेता है। जितने अंशों में मनुष्य अपने मन को सन्मार्ग पर चलाने में, मन को उचिततानुसार आचरण-कर्त्ता बनाने में फलीभूत होता है, उतने ही अंशों में वह दूसरे मनुष्यों को भी अपने उत्तम विचारों से और अपनी उदारता से कल्याण-कारक स्थिति में ले जाने के योग्य होता है। दूसरों पर हुकूमत करने अथवा खुद भूले रह कर दूसरों के पथ-प्रदर्शक बनने से कभी किसी को ज्ञान और शान्ति प्राप्त नहीं होती। जो ज्ञान और शान्ति का इच्छुक है, उसे चाहिये कि वह अपने मन को प्राकृतिक नियमानुसार चलाने का प्रयत्न करे और उसे भलाई के, पवित्रता के उस मार्ग पर ले जाय, जो उत्कृष्ट और अचल है।

मनुष्य का 'जीवन उसके आत्मा और मन से ही बनने लगता है। मन उसके विचारों और कार्यों का समूह है। मनुष्य में यह शक्ति है, कि वह अपने मन को अपनी इच्छानुसार बदल दे और इस शक्ति से ही वह अपने सारे जीवन को भी बदल सकता है। अब हम इस बात का विचार करेंगे कि जीवन का परिवर्तन कैसे किया जा सकता है?

नर्स

लेखक—श्रीयुत केशवप्रसाद वर्मा

विमला को अभी तक याद है, उन दिनों वह सात वर्ष की थी, जब उसका प्रिय भाई लापता हो गया था। हैजे की बीमारी से माता पिता तो उसे पाँच वर्ष की आयु में ही इस दुःखपूर्ण विशाल संसार में छोड़ गये थे। विमला का आठ वर्षीय भाई ही उसका एकमात्र साथी रह गया था।

दोनों भाई-बहन साथ ही-साथ एक पुराने टूटे झोपड़े में गाँव के पूर्वीय छोर पर रहते थे। भाई—हीरालाल—तो दिन भर खेतों में दो आने रोज पर काम करता और विमला जमींदार साहब के यहाँ गोबर पाथकर कुछ अनाज ले ही आती थी।

सूर्य निकलने के पहले दोनों सोकर उठ जाते और रात्रि में शीघ्र ही सो जाते। थके माँदे तो रहते ही थे, नींद शीघ्र आ जाती।

इस तरह कुछ दिन बीत गये। हीरालाल दस वर्ष का हो गया था। उसे खेतों के काम में मन न लगता। लोगों से वह शहर की प्रशंसा सुना करता था। बहुत दिनों से उसकी इच्छा शहर देखने का थी, पर विमला की चिन्ता उसे जाने न देती।

एक दिन जमींदारिनजी से आकर कहने लगा—माँ जी, मैं चार रोज के लिये शहर जाता हूँ। तब तक विमला आपके घर रहेगी। यहीं काम करेगी और रहेगी।

हीरालाल से जमींदारिनजी की सहानुभूति थी ही, उन्होंने कहा—कोई परवाह नहीं, जाओ।

जाते समय हीरालाल विमला को समझा गया—रोओ मत। मैं वहाँ से अच्छी अच्छी चीज लाऊँगा। चार दिन में चला आऊँगा।

आँसू पोंछते पोंछते विमला ने कहा—जरूर आ जाना भैया।

उसके बाद न जाने कितने चार दिन आये और गये, पर हीरालाल न आया।

• • •

क्रिश्चियन धर्म फैलानेवालों का एक मिशन उस गाँव में भी आया था। लाखों लालच, दाँव पेंच दिखाये पर गाँववालों पर दाल न गली—कोई ईसाई न बना।

आखिर विमला को साथ लेकर वे चले आये। बिलासपुर में मिस्टर वाटर फॉल के कोई संतान न थी। उनकी धर्मपत्नी विमला के सारल्य स्वभाव पर मुग्ध हो गई। उन्होंने उसे पालने और शिक्षित बनाने का भार ले लिया।

यहाँ आकर विमला को एक नवीन सुख का अनुभव हुआ। मिसेज व मिस्टर वाटरफॉल उससे माता पिता का सा बर्ताव करने लगे। उसे अच्छे कपड़े मिलने लगे, अच्छा भोजन मिलने लगा।

पर, भाई हीरालाल की याद उसे बहुधा आती और वह एकान्त में रोया करती।

उसका नाम एक प्रायमरी कन्याशाला में लिखा दिया गया। वह पढ़ने लगी, पढ़ने में बड़ी तेज निकली। ग्यारह वर्ष की अवस्था में उसने प्रायमरी पास कर ली।

मिडिल स्कूल की परीक्षा समाप्त करने पर वह जबलपुर एल्गिन अस्पताल में नर्स का काम सीखने के लिए भेज दी गई।

वहाँ काम सीख लेने पर वह विक्टोरिया अस्पताल में नर्स बनाई गयी। उन दिनों उसकी उम्र सत्तरह वर्ष की थी।

विमला इधर हीरालाल को भूल सी गई। उसने सोच लिया कि हीरालाल भी स्वर्गलोक सिधार गया। संसार में अपने आप को वह अकेली ही समझती थी। ठीक भी था, मिस्टर वाटरफॉल के अतिरिक्त उसका और था ही कौन, जिसे वह अपना समझती?

• • •

उन दिनों वह जीवन के वसन्त काल में थी—यौवन छलक रहा था। उसका शरीर इतना कोमल और नाजुक था, इतना सुन्दर और पवित्र था, कि संसार उसके रहने योग्य स्थान मालूम न होता था।

पर, वह खिन्न रहती। उसका प्रसन्न, खिला गुलाब सा मुँह उदासीनता की छाया से मुरझाया-सा रहता। वह स्वयं इसका कारण नहीं जानती थी।

न जाने कितनों ने उसपर अपना प्रेम दर्शाया, कितनों ने मूल्यवान भेंटों द्वारा उसे आकर्षित करना चाहा, कितनों ने उसके सौंदर्य का बयान करने में अपना सारा ज्ञान समाप्त कर दिया। कम्पाउण्डरों ने तरह तरह से उसे लालच, झिड़क आदि दिखा दिखाकर फँसाना चाहा। स्वयं डॉक्टर साहब उससे गोल गोल बातें करके उसे फुसलाना चाहते थे।

वह इतनी बड़ी हो गई थी, उसे इतना ज्ञान हो गया था, कि इन सब की बातों को समझ सके, पर उनसे घृणा-सी करती। किसी पर उसका विश्वास न था। वह मन ही मन कहती—जब संसार में माता पिता मेरे न हुए भाई ने मेरा साथ छोड़ दिया, तो ये लोग क्या साथ देंगे? मतलब निकलते तक ही पूछेंगे—बाद में कौन मेरा होगा?

वह किसी से न ज्यादा बोलती न हँसती। सबेरे सात बजे से शाम के सात बजे तक ड्यूटी पर डटी रहती। मरीजों की सेवा करने में ही उसे विशेष आनन्द आता। वह सोचा करती—न जाने किस पाप का यह दण्ड है कि आज मैं अकेली हूँ। क्यों न दीन-दुखियों की सेवा करके पुण्य कमाऊँ? संसार में अकेली आई—अकेली जाऊँगी।

अस्पताल के सभी मरीज उसके प्रिय व्यवहार पर प्रसन्न रहते। भगवान से उसके लिये मंगल कामना प्रकट करते। सभी उसके उदार हृदय, करुण वार्तालाप और स्नेहपूर्ण चिकित्सा के कारण उसके कृतज्ञ से हो गये थे।

• • •

एक दिन जब वह अस्पताल आई 'प्राइवेट वार्ड' में उसे एक नवयुवक मिला। वह अपने बिस्तर पर अचेत पड़ा था।

विशाल मस्तिष्क, सुडौल बदन और स्वच्छ कपड़ों को ही देखकर विमला ने पता लगा लिया कि रोगी कोई भद्र युवक है। उसे देखकर न जाने क्यों वह आप ही आप उसकी ओर आकर्षित हो गई।

युवक के मस्तिष्क पर उसने हाथ रखा। युवक ने आँखें खोल दीं। पास ही कुर्सी सरकाकर बैठते हुए विमला बोली—कहो कैसी तबीयत है?

'अभी दर्द है।'

'कोई चिन्ता नहीं, शीघ्र आराम हो जायगा। चुप चाप लेटे रहो।'

युवक ने फिर आँखें बन्द कर लीं, वह चली गई।

• • •

युवक की छाती पर चोट थी। किसी ने छुरी भोंक दी थी। बड़ा गहरा घाव था।

विमला बड़े प्रेम से पट्टी बाँधती और मलहम लगाया करती। दर्द के कारण जब युवक कराहता या चिल्लाता, वह रो पड़ती। घण्टों उसके पास बैठ कर उसकी सुश्रूषा करती।

विमला स्वयं इसका कारण न समझती थी कि क्यों वह इस युवक से इतना स्नेह करती थी। उसने इसे मन का विकार समझा। पर, इतने से उसे शान्ति न मिलती थी।

कुछ दिनों के पश्चात् युवक कुछ स्वस्थ प्रतीत होने लगा, पर अन्दर ही अन्दर घाव पक रहा था।

विमला ने धीरे धीरे युवक से पूछ लिया कि वह कहाँ रहता है, क्या करता है और उसे चोट कैसे आई? युवक वहीं सेना विभाग में कर्मचारी था। एक दिन वह अपने घोड़े पर घूमने निकला। वन में पहुँच गया।

बाजना-मठ के आगे उसे किसी स्त्री के रोने की आवाज आई। पास में जाकर उसने देखा, एक हिन्दू अबला को चार मुसलमान गुण्डे तंग कर रहे हैं। मारे क्रोध के उसका खून खौल उठा। हंटर निकाल कर वह उन्हें पीटने लगा, पर भागते भागते एक ने छुरी फेंक कर मारी। छुरी उसके हृदय के पास आ लगी, वह गिर पड़ा।

उसके बाद जब उसे होश आया, उसने सामने विमला को देखा।

विमला का परिचय लेना युवक ने मूर्खता समझी। वह इतना ही जानना काफी समझता था कि वह नर्स है। उसने उसका नाम तक न पूछा। 'नर्स' कह कर ही उसे पुकारता था।

सन्ध्या को ड्यूटी पूरी करने के दो घण्टे बाद विमला घर गई। उस समय युवक प्रसन्न था।

रात को ग्यारह बजे के लगभग उसका दर्द बढ़ा। असहनीय दर्द था। घाव अन्दर ही अन्दर पककर दिल पर असर कर रहा था। पीप आने लगा था, उसे प्रतीत हुआ मानो अब वह जीवित न रह सकेगा।

दिल को दबाकर वह उठ बैठा। एक पत्र लिखने लगा। उसे लिखकर सिरहाने रख दिया और फिर लेट रहा।

इस समय तक उसकी बुरी हालत थी। रात की ड्यूटी पर जो अंग्रेज नर्स

(शेषांश १२वें पृष्ठ के नीचे)

एक और महान् त्याग

त्रिवेंद्रम में उस दिन एक १७ वर्ष की लड़की गांधीजी का दर्शन करने आई थी। वह गांधीजी के सामने आकर जब खड़ी हो गई, तो उन्होंने उससे पूछा—तुम कौन हो ?

'एक छोटी-सी लड़की'—उसने जवाब दिया।

'पर, एक छोटी-सी लड़की का इन गहनों से क्या प्रयोजन है ?'—गांधीजी उसके शरीर पर बहुत से जेवर देख चुके थे।

'क्योंकि मैं चाहती हूँ, कि ऐसी ही छोटी-सी लड़की बनी रहूँ'—मीनाक्षी ने जवाब दिया।

'तब तो तुम्हे गहने नहीं पहनने चाहिएँ।'—फिर गांधीजी ने कौमुदी के आभूषण-सन्यास की कहानी कह सुनाई—'देखो, वह बेचारी कौमुदी तो १६ ही बरस की है। तुम तो उससे एक बरस बड़ी हो। तो भी उसने तमाम गहने उतारकर मुझे दे दिये।'

मीनाक्षी की आँखें चमक उठीं। उसने कहा—तो मैं भी अपने सारे आभूषण उतार कर दे देना चाहती हूँ।

'तुमने अपने माता पिता की आज्ञा ले ली है न ?'

आज्ञा तो मिल ही जायगी।'

'मैं जानता हूँ, कि मलाबार की लड़कियाँ स्वतंत्र प्रकृति की तो होती ही हैं।'

तो क्या ये गहने मैं आपको देदूँ ?'

'हाँ, हरिजनों को देदो।'

'मेरा भी यही मतलब है।'

'अगर तुम मुझे एक सच्चा हरिजन समझती हो, तो लाओ, मुझे ये गहने दे दो और अगर मैं तुम्हारी दृष्टि में एक पाखण्डी हूँ, तो फिर मुझे ये गहने मत दो। मैं तो सभी लड़कियों को गहने उतार देने के लिए ललचाया करता हूँ। मैं जानता हूँ, कि लड़कियों के लिए यह त्याग कितना कठिन है। हमारे समाज में आज अनेक प्रकार के टीमटाम के फैशन देखने में आते हैं, पर मैं तो उसी को सुन्दर कहता हूँ, जो सुन्दर काम करता है।'

'और अगर मैं अपने आप को ही देदूँ तो ?'

'हाँ, हाँ, तुम्हारी बहन तो है ही, अब तुम भी मेरे पास रह सकती हो।'

'तो तय रहा।'

'तब भी मैं तुम्हे सोचने-समझने के लिए एक रात का समय देता हूँ।'

दूसरे दिन सबेरे जब मैंने मीनाक्षी बहन को देखा, तो मैं उसे आसानी से नहीं पहचान सका। उसके शरीर पर एक भी गहना न था। मैंने उससे पूछा—आखिर, तुम्हारे उन सब गहनों का क्या हुआ ?

'मैंने सारे आभूषण दे दिये हैं।'

'क्या गांधीजी को ?'

'नहीं यह तो मैं नहीं कर सकी। मेरे पिता पर बहुत-सा ऋण है, और इसी से मैं अपने जेवर न दे सकी, पर मैंने यह निश्चय कर लिया है, कि अब कभी जेवर न पहनूँगी।'

'तुम्हारे इस निश्चय पर तुम्हारे माता पिता को तो कोई आपत्ति नहीं है ? वे सहमत हैं न ?'

'हाँ पिताजी तो सहमत हैं, पर माँ को राजी करना कठिन मालूम देता है।'

इसके बाद मीनाक्षी अपने माता पिता के साथ गांधीजी के पास आई और हरिजन कार्य के लिए उन्हें अपनी एक सोने की चूड़ी और गले का हार ये दो चीजें उतार कर देदीं। गांधीजी को कर्जे की बात मालूम हो चुकी थी, उन्होंने उसके पिता से कहा—आप मुझे ये चीजें न दें। मीनाक्षी के गहनों से जितना कर्ज चुक सके आप चुका दें। मेरी मीनाक्षी लड़की फिर कभी आपसे जेवर न माँगेगी।

मीनाक्षी के गालों पर आँसुओं की धार बहने लगी। उसके अनुपम भावोद्रेक का वर्णन करूँ तो किन शब्दों में करूँ। मीनाक्षी आजीवन आभूषण न छूने की प्रतिज्ञा कर चुकी थी। उस समय वहाँ जैसे कंचन बरस रहा था।

गांधीजी ने अब उसकी माता से पूछा—अपनी बेटी के इस अद्भुत त्याग पर आशीर्वाद देने में आपको क्या आपत्ति है ?

'अभी इसका विवाह करना है न'—माँ ने जवाब दिया—'और हमारे लिए ऐसे वर का तलाशना बड़ा कठिन हो जायगा, जो इसे बिना आभूषणों के ही अंगीकार करले।'

'खैर इसकी आप लोग चिन्ता न करें।'—गांधीजी ने मीनाक्षी के आँसू पोंछते हुए कहा—'जब समय आयेगा, तब एक नहीं ऐसे पचास वर मैं मीनाक्षी का पाणिग्रहण करने के लिए ढूँढ दूँगा—फिर उनमें से आप चाहे जिसको चुन लेना।'

माँ ने अब मीनाक्षी को आशीर्वाद दे दिया। उस समय का वह बड़ा ही हृदयस्पर्शी दृश्य था। ईश्वर करे, कौमुदी और मीनाक्षी का यह आदर्श त्याग प्रकाश-रूप होकर उस अज्ञानान्धकार के हटाने में हमारा सहायक हो, जो अस्पृश्यता-जैसे महान् पाप को अस्तित्व बनाये हुए हैं।

'हरिजन-सेवक'

(११वें पृष्ठ का शेषांश)

थी, उसका पता न था। शायद वह अपने प्रेमी डॉक्टर के साथ अमन चैन कर रही थी।

थोड़ी देर के पश्चात् युवक अचेत हो गया।

• • •

प्रातःकाल जब विमला आई, तब बड़ी बड़ी उमंगों के साथ आई। उसने सोचा था कि अपने हृदय के अन्दर का गुप्त प्रेम आज वह उस पर प्रकट कर ही देगी। आज अपने प्रेमी से जिसकी सेवा उसने तन मन से की थी, पुरस्कार स्वरूप प्रेम भेंट ले ही लेगी।

पर, कब किसके अरमान परमात्मा ने सरलता से पूरे किये हैं ? जब विमला को पता लगा कि युवक परलोक वासी हो गया, तो उसका हृदय ऐंठ गया। चारों ओर अन्धेरा छा गया। वह बेहोश सी हो गिर पड़ी।

थोड़ी देर में उठी। उसे पत्र दीख पड़ा। काँपते हाथों से उसने पढ़ना प्रारम्भ किया—

रात्रि के ३-८ बजे

प्रिय नर्स,

मैं इस संसार में बड़ा दुःखी था और दुःख भरे हृदय के साथ मर भी रहा हूँ। जीवन में दुःख के सिवा मुझे सुख तो मिला ही नहीं।

पर, मैं जानता हूँ कि मुझे यह दुःख क्यों सहना पड़ा। मैंने अपनी बहन के साथ विश्वासघात किया था। ओह, न जाने आजकल वह कहाँ होगी ? उसकी क्या दशा होगी ?

मैं बिलासपुर जिले के एक पुटपुरा नामक गाँव का निवासी था। माता पिता तो पहले ही परलोक सिधार चुके थे। अपनी बहन के साथ रहता था।

एक दिन उस अबोध बालिका को इस भयंकर संसार में अकेली छोड़ मैं बिलासपुर चला आया। वहाँ से सेना में भर्ती होकर यहाँ आया। यहाँ कुछ दो वर्षों में मैं कैप्टिन बना दिया गया। अंग्रेजी इसी अरसे में सीख ली।

पर, अफसोस मैंने अपनी बहन की कुछ भी खबर न ली, आज मर रहा हूँ—जानता हूँ, उसी पाप का परिणाम है। मैं तुम्हारी दया का बड़ा आभारी हूँ, नर्स! भगवान तुम्हें अपार सुख दे।

मेरी एक प्रार्थना तुमसे है। मेरे दो हजार रुपये इम्पीरियल बैंक में जमा हैं। मेरा पत्र ले जाकर तुम रुपये निकाल लेना और मेरी बहन विमला का पता लगाकर उसे दे देना।

तुम्हारी कृपा के लिए तुम्हें फिर अनेकानेक धन्यवाद। मेरी बहन से मेरी ओर से माफी भी माँग लेना नर्स! वह मुझे क्षमा कर देगी, ऐसी आशा है। उन रुपयों से तुम एक अनाथालय खुलवा देना। मेरी बहन ही उसकी संरक्षिका रहेगी।

तुम्हारा कृतज्ञ,

हीरालाल

न जाने अंतिम पंक्तियाँ विमला ने पढ़ीं या न पढ़ीं, पर जब उसे होश आया, तो वह भी एक रोग शैया पर पड़ी थी।

विदेश - वार्त्ता

निरस्त्रीकरण और बृटेन

लेखक—श्रीयुत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

निरस्त्रीकरण के सम्बन्ध में बृटिश सरकार की ओर से अभी हाल में ही एक वक्तव्य निकला था। गत १९ फरवरी को इसी सम्बन्ध में बृटिश पार्लियामेण्ट में वाद विवाद भी हुआ था। इस वाद विवाद का अंतिम उत्तर देते हुए, अनुदार दल के नेता श्री बाल्डविन ने साफ साफ कह दिया कि निरस्त्रीकरण के लिए बृटिश सरकार का यह अन्तिम प्रयत्न है और यदि इसमें सफलता न मिली, तो बृटेन का 'कर्तव्य होगा कि वह भी अपने को शस्त्रों के सम्बन्ध में दूसरे सब राष्ट्रों के मुकाबले का बनावे।'

बृटिश योजना की विशेषता

गत ७ नवम्बर को अर्थात् ठीक तीन महीने पहले पार्लियामेण्ट में इस विषय पर जो बहस हुई थी, उसमें और हाल की बहस में एक बड़ा अन्तर यह है कि उस समय बृटिश परराष्ट्र मन्त्री सर जॉन साइमन ने संघ से पृथक् होजाने की घोषणा करने के कारण जर्मनी को दोषी ठहराया था और इस बार उन्होंने उसका समर्थन करते हुए, यह कहा कि 'जर्मनी की समानता की माँग का विरोध नहीं किया जा सकता और न किया जाना चाहिए क्योंकि ऐसे एक विशाल देश या महान् जाति को दबा रखने का प्रयत्न करने से विश्व शान्ति स्थापित होने की बहुत कम संभावना रह जायगी।'

जर्मनी के अधिकारों की माँग को इतने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करने का साहस दिखलाने के कारण सर जॉन साइमन अवश्य ही प्रशंसा के पात्र हैं किन्तु परिस्थिति पर किञ्चित् ध्यान पूर्वक विचार करने से पता चल जायगा कि बृटिश पर-राष्ट्रमन्त्री ने न्याय की भावना से प्रेरित होकर ऐसा नहीं किया है। वे तथा उनके मित्रगण अब यह खूब समझ गये हैं कि हिटलर द्वारा शासित जर्मनी, इतना शक्तिशाली हो गया है कि संसार के देशों की इच्छा अनिच्छा की परवाह न कर, अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने का उपाय करने में जुट जाय। इसी से बृटिश योजना में साफ-साफ कहा गया है कि बृटिश सरकार यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य है कि एक देश को, जो अस्त्र शस्त्र रखने की अनुमति दी गई हो, उससे किसी अन्य राष्ट्र को अनिश्चित काल तक वञ्चित रखना संभव नहीं।

योजना में इस बात पर जोर दिया गया है कि, जो राष्ट्र अस्त्र शस्त्रों से बहुत ज्यादा लदे हुए हैं, उन्हें आपस में समझौता कर खास खास युद्धोपकरणों का धीरे धीरे परित्याग कर देना चाहिये और यह भी निश्चय कर लेना चाहिए, कि वर्तमान अस्त्र-शस्त्रों में दस वर्ष तक कोई वृद्धि न की जाय।

राष्ट्रों की सुरक्षा के लिए कोई खतरा न रहे, इस दृष्टि से योजना में दो बातें सुझाई गई हैं—एक तो यह कि योजना को स्वीकार कर, जो लोग उस पर हस्ताक्षर करें, उन्हें हर तरह से इस बात की कोशिश करनी चाहिए कि कोई उसकी अवहेलना न करने पावे दूसरी यह कि राष्ट्रों के बीच परस्पर अनाक्रमण की सन्धियाँ की जायँ, जैसा कि जर्मनी के प्रधान मन्त्री ने प्रस्ताव किया है।

समानाधिकार के सिद्धान्त की चर्चा करते हुए, वक्तव्य में इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया है कि जर्मनी स्वेच्छा से आक्रमणकारी अस्त्र शस्त्रों का परित्याग करने को तैयार है अतः यदि अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित बड़े बड़े राष्ट्र भी ऐसा करने को उद्यत हो जायँ तो निरस्त्रीकरण में बड़ी सहायता मिले। इसके बाद किन किन शस्त्रास्त्रों का किस किस तरह कम करना चाहिए, इसका उल्लेख किया गया है। एक मार्के की बात यह है कि समझौते की एक जरूरी शर्त यह रखी गई है कि जर्मनी पुनः जेनेवा के सम्मेलनों तथा राष्ट्रसंघ में सम्मिलित हो जाय।

इस प्रकार बृटिश योजना की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यही है कि उसमें जर्मनी की माँग का समर्थन कर आंशिक निरस्त्रीकरण का उपाय सुझाया गया है। यद्यपि इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं, जैसा कि स्वयं बृटिश आलोचकों द्वारा कही गई बातों से स्पष्ट है, फिर भी इस से बृटेन की नेकनीयती का थोड़ा बहुत परिचय अवश्य मिलता है, और इसी दृष्टि से यह प्रशंसनीय है।

त्रुटियाँ क्या हैं ?

बृटिश योजना की सबसे बड़ी त्रुटि कदाचित् यह है कि उसमें विषाक्त गैसों का प्रयोग बन्द करने या हवाई जहाजों द्वारा असैनिक जनता पर बम वर्षा करना, रोकने के लिए कुछ भी नहीं कहा गया है। आधुनिक युद्ध में, ये दोनों ही जन संहार के अत्यन्त प्रभावशाली और सबसे भयानक साधन हैं। विषाक्त गैस फैला कर कुछ मिनटों के भीतर ही हजारों के प्राण लिये जा सकते हैं। इसी तरह आकाश से बम गिराकर अनायास ही धन जन को अपार क्षति पहुँचाई जा सकती है। अतः लड़ने के इन बर्बरोचित साधनों का निषेध करना, तो सबसे पहले आवश्यक है किन्तु इनकी कोई चर्चा तक नहीं की गई है।

इसी तरह जंगी हवाई जहाजों की संख्या घटाने पर भी उसमें काफी जोर नहीं दिया गया है। आजकल अस्त्र शस्त्र बढ़ाने के लिए चारों ओर जो प्रतिद्वन्द्विता हो रही है, उसकी मुख्य विशेषता यही है कि लड़ाई के काम आने वाले हवाई जहाज तैयार करने की ज्यादा फिक्र की जा रही है। स्वयं बृटेन पर भी आज यही धुन सवार है। संभव है, इनकी संख्या तुरन्त घटा देने का प्रस्ताव न करने का कारण यही हो। योजना के अनुसार जंगी वायुयानों की संख्या का नियन्त्रण करने के लिए दो वर्ष तक, तो एक उँगली भी न उठाई जायगी! इसके बाद उनकी मनाही के सम्बन्ध में कोई समझौता हो गया, तो अच्छा ही है, अन्यथा जो सीमा बाँध दी जाय, उस तक संख्या घटाने के लिए बाद के आठ वर्षों में प्रयत्न किया जायगा।

इसके सिवा, योजना में किये गये प्रस्तावों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि उनका वास्तविक उद्देश्य निरस्त्रीकरण की समस्या का समाधान करने का नहीं वरन् अस्त्र शस्त्र सम्बन्धी अंधाधुंध दौड़ का नियमन करना भर है, जिससे यूरोप में युद्ध की आग तुरन्त न भड़कने पावे और उसकी सम्भावना कम से कम कुछ समय के लिए अवश्य टल जावे।

हृदयपरिवर्तन की आवश्यकता

निरस्त्रीकरण की सफलता के लिये इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता हृदय परिवर्तन की है। केवल योजनाएँ बनाने और उनपर हस्ताक्षर कर देने से काम नहीं चल सकता। अतीत काल का अनुभव हमें बतलाता है कि किसी भी युद्धोन्मुख राष्ट्र के लिये शान्ति सम्बन्धी समझौते की अवहेलना करना बिल्कुल आसान है। शान्ति की अभिलाषा जब तक सच्चे हृदय से नहीं निकलती और प्रत्येक राष्ट्र अपने पड़ोसियों के हित का तथा उनकी आवश्यकताओं का भी ख्याल नहीं करता, तब तक कागज में लिखे हुए निरस्त्रीकरण सम्बन्धी बड़े से बड़े समझौते भी अशान्ति की संभावना दूर करने में असमर्थ ही प्रमाणित होंगे।

हृदय परिवर्तन होने पर निरस्त्रीकरण की अनेक कठिनाइयाँ अनायास ही दूर हो सकती हैं और सन्धियों के दुहराने का प्रश्न भी सन्तोष जनक रूप से हल किया जा सकता है। दूसरे की भूमि हड़प लेने तथा कमजोर राष्ट्रों के दबाये रखने की भावना को हृदय से निकाले बिना स्थायी शान्ति की आशा करना ही व्यर्थ है। यदि इतनी बात फ्रान्स तथा उसके पिछलग्गे राष्ट्रों की समझ में आ जाय, तो वर्सेलज आदि की सन्धियों में उचित संशोधन कराना कठिन नहीं है। अन्यथा युद्ध अनिवार्य है, इन सन्धियों में जो मनमानी शर्तें रखी गई हैं, उनसे पराजित देशों को कभी सन्तोष नहीं हो सकता। यदि शान्तिपूर्वक प्रयत्न करने से काम न चला, तो एक न एक दिन उन्हें युद्ध का सहारा लेने का निश्चय करना ही पड़ेगा।

यही कारण है कि पहले की अन्य योजनाओं से बृटेन की यह योजना कुछ अधिक अच्छी होते हुए भी हमें उससे कोई आशा नहीं होती। आजकल प्रत्येक देश में अन्तर्राष्ट्रीयता के स्थान में संकुचित राष्ट्रवाद की जो लहर फैल रही है, उसे देखते हुए शान्तिभंग की आशंका को हृदय से निकालना संभव नहीं प्रतीत होता। इसी से अभी उस दिन एक पत्र प्रतिनिधि से बातें करते हुए धर्माधीश्वर पोप ने भी इस सम्बन्ध में बड़े ही निराशाजनक विचार प्रकट किये हैं। वर्तमान परिस्थिति पर दुःख प्रकट करते हुए आपने साफ साफ कह दिया है कि यदि युद्ध हुआ, तो इस बार ईसाई-सभ्यता का ध्वंस हुए बिना न रहेगा, किन्तु स्वार्थोन्मत्त ईसाई राष्ट्रों को आपकी इस चेतावनी की ओर ध्यान देने की फुरसत ही कहाँ है ?

जीवन्मुक्त महात्मा श्री तैलंग स्वामी का तत्त्वोपदेश

लेखक—श्रीयुत अजितनाथ भट्टाचार्य, बी० ए०, एल-एल० बी०

(गतांक से आगे)

शि०—कौन वस्तु दान करने से बढ़ती है ?

गु०—विद्या।

शि०—कौन वस्तु दिन-दिन घटती है ?

गु०—आयु।

शि०—चिरस्थायी क्या है ?

गु०—काल।

शि०—किसको डरना चाहिये ?

गु०—लोकापवाद को।

शि०—वास्तव में मित्र कौन है ?

गु०—जो विपत्ति में सहाय होता है।

शि०—पिता-माता कौन हैं ?

गु०—पालन करने वाला।

शि०—क्या जानने पर और कुछ जानने की आवश्यकता नहीं रहती है ?

गु०—पूर्णज्ञान-स्वरूप ब्रह्म।

शि०—दुर्लभ क्या है ?

गु०—सत-गुरु और आत्मज्ञान।

शि०—मित्र, पर शत्रु कौन हैं ?

गु०—पुत्र, कन्याँ इत्यादि।

शि०—चञ्चल क्या है ?

गु०—मन, धन, यौवन और आयु।

शि०—उत्तम दान क्या है ?

गु०—तत्वज्ञान।

शि०—क्या काम न करना चाहिये ?

गु०—पाप कर्म।

शि०—क्या कार्य हृदय से करना चाहिये ?

गु०—ईश्वर की उपासना।

शि०—कौन कर्म अच्छा है ?

गु०—जो ईश्वर की प्रीति-जनक है।

शि०—किसमें यत्न न करना चाहिये ?

गु०—संसार में।

शि०—दिन-रात किस बात की चिन्ता करनी चाहिये ?

गु०—यह कि संसार मिथ्या और आत्मसत्य है।

शि०—ईश्वर है या नहीं, कैसे जानेंगे ?

गु०—तुम स्वयं हो या नहीं, यह कैसे जानते हो।

शि०—जिसका आकार नहीं है, उसे कैसे जाना जा सकता है ?

गु०—जीवन, मन, बुद्धि इत्यादि है या नहीं, कैसे जाना जाता है।

शि०—मेरा जीवन है, अपनी इच्छानुसार सब कुछ कर सकता हूँ, इसीलिए अपने को जानता हूँ।

गु०—जो मनुष्य अपने का जानता है, वह ईश्वर को भी जानता है।

शि०—जो वस्तु दिखाई नहीं पड़ती है, उसमें सहज ही में विश्वास नहीं होता है।

गु०—वायु, गन्ध इनका कोई आकार नहीं है, किस ज्ञान से तुम उनका अनुभव करते हो ?

शि०—वायु, गन्ध विद्यमान है, इसका विश्वास उनके कार्य से होता है।

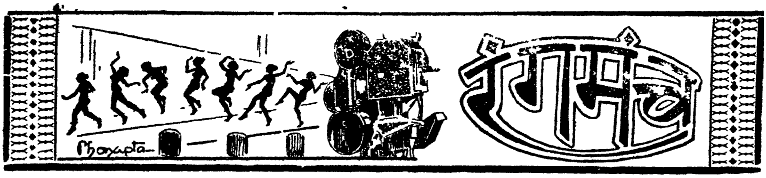
गु०—क्या तुम और वायु दोनों ईश्वर के कार्य नहीं हो ? अब विचार करो, ईश्वर है या नहीं।

शि०—मैंने माना कि ईश्वर है, उसकी उपासना अथवा भक्ति क्यों करें ?

गु०—तुम अपने सन्तान को स्नेह (प्यार) क्यों करते हो, और अपने पिता माता की क्यो भक्ति करते हो ?

शि०—स्नेह निम्नगामी (नीचे जाने वाला) है और भक्ति ऊर्ध्वगामी (ऊपर जाने वाली) है।

गु०—इसीलिये ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। आँख मिली है, देखने की शक्ति कहाँ से मिली। देखने का वस्तु यदि न मिलती, तो आँख किस काम आती ? अपने प्रपितामह (परदादा) को तुमने नहीं देखा है, वह थे, यह किस ज्ञान से तुम जानते हो ? आकार के न होते हुए भी वस्तु का अस्तित्व रहता है, यह निश्चय है।



श्रीमान् प्रेमचन्दजी से भेंट : चित्रपटों के सम्बन्ध में उनके विचार

(गुजराती 'चित्रपट'-सम्पादक द्वारा प्रेषित)

अनुवादक—श्रीयुत वीरेन्द्र वर्मा, मालवीय

हिन्दी-भाषा के सुप्रसिद्ध उपन्यास-सम्राट् श्रीमान् प्रेमचन्दजी गत रविवार को बम्बई आये थे। उनकी श्रेष्ठ कृति 'सेवासदन" को स्थानीय महालक्ष्मी सीनेटोन कम्पनी स्क्रीन पर आरम्भ करने वाली है, उसके विषय में सलाह और सूचनाएँ लेने के लिये कम्पनी ने श्री प्रेमचन्दजी को निमंत्रित किया था।

इस अवसर से लाभ उठाकर हमने भी उनका इंटरव्यू श्री नानु भाई बी वकील के निवास स्थल पर लिया था। इस इंटरव्यू के समय हमने श्री प्रेमचन्दजी से कई प्रश्न किये थे। और श्री प्रेमचन्दजी को उनका प्रथक-प्रथक उत्तर देने का कष्ट दिया था।

उन प्रश्नोत्तरों को हम यहाँ नीचे उद्धृत करते हैं—

'चित्रपट-कला के विषय में आपके क्या विचार हैं ?'

'इस विषय में मैं कोई विशेष अभ्यास नहीं रखता, किन्तु मेरा व्यक्तिगत विचार तो यह है कि चित्रपट कला में कला का तो अभी नाम भी नहीं दिखलाई पड़ रहा है। कलापूर्ण अथवा कला की छटा द्वारा जनता को मुग्ध कर देनेवाले वे जोड़ चित्रपट तो अभी बने ही कहाँ हैं ? अधिकांश में ऐतिहासिक और पौराणिक चित्रपट ही बना करते हैं। कला तो दूर रहा, किन्तु चित्रपटों में साहित्य की छाया भी तो नहीं दिखलाई पड़ती। साहित्यक दृष्टि से सर्वोपरि कहे जा सकें, ऐसे चित्रपट कहीं कोई बनाता है ? और इस कमी अथवा त्रुटि का कारण यह है कि साहित्यकारों को आज के फिल्म-उत्पादकों पर विश्वास ही नहीं है। कारण यह है कि कथानक चाहे जितना सुन्दर हो, सभाषण में चाहे जितना साहित्य का पुट हो, किन्तु यदि पात्र आउर एकटिंग अथवा अनेक त्रुटियों से युक्त अभिनय करें, तो उस कथानक का सम्पूर्ण सत्व नष्ट हो जायगा। डाइरेक्टर चाहे ज्ञान के भंडार हों, कला के अवतार हो, तथा साहित्य के सिरजनहार हों, किन्तु वे मूल कथानक में अपनी कला का समावेश करेंगे, तो कथानक की भावना और कल्पना हवा में अवश्य उड़ जायगी। ऐक्टरों और डाइरेक्टरों की इस प्रकार की गड़बड़ से ही फ़िल्म उत्पादकों को उत्तम कथानक नहीं मिलते। और इसका कारण जो मैंने कहा, वही है। यदि साहित्यकारों को यह विश्वास न हो कि उनकी कृतियों के साथ न्याय किया जायगा, तो साहित्यकार कभी भी अपनी कृतियाँ उन्हें न देंगे। और जब तक उत्तम कथानकों का अभाव रहेगा, तबतक चित्रपटों में कला अथवा साहित्य का पुट

नहीं हो सकता, यह स्पष्ट है। मैं तो ऐसी स्थिति देखना चाहता हूँ कि यह कला सुशिक्षित मनुष्यों के हाथ में आजाय, सुशिक्षित मनुष्यों के अतिरिक्त कला अथवा साहित्य की आशा रखना मूर्खता है।'

'हमारे चित्रपटों में इस समय पाश्चात्य चित्रपटो का अनुकरण हो रहा है, अत. यह अनुकरण-प्रवृत्ति हितावह है या हानि-कर?'

'यदि हेतु अच्छा हो, तो अनुकरण कुछ हानिकर नहीं है! किन्तु अनुकरण के पीछे रुपये कमान का हेतु न होना चाहिये। अमेरिकन चित्रपटो मे हमारे समाज के योग्य बहुत कुछ अनुकरण करने के लिये होता है। समाज-सुधार के विचार से यह अनुकरण हो तभी चित्रपट की खूबी है! अनुकरण वृत्ति के साथ हेतु और भावना भी उच्च होनी चाहिये!'

'हमारे चित्र-पटों में कौन और कितने चित्रपट अच्छे हैं, यह आप कह सकेंगे?'

'मैं बहुत-ही निम्न कोटि के चित्रपट देख रहा हूँ। चित्रपट देखने का मुझे शौक नहीं, इस लिये नहीं, किन्तु कभी-कभी कोई चित्रपट देखने लायक भी आते हैं। 'चरार्इ दास' 'पूरण भक्त' 'खुदा की शान' जैसे चित्रपट मैंने देखे हैं और वे मुझे बहुत पसन्द आये हैं। 'पूरण भक्त' के लिये बहुत-सा सरस लोक कथाएँ सुनने मे आती हैं, किन्तु इस चित्रपट ने मुझे कुछ अधिक आकर्षित नहीं किया, हाँ उसमे कला है यह तो मुझे स्वीकार करना ही चाहिये।

'सेवा सदन के विषय में आप क्या कहना चाहते हैं? आप के इस सुप्रसिद्ध कथानक को भावना के अनुरूप चित्रपट, यह कंपनी बना सकेगी? मिस जुबेदा और मा० मोहन आपके कथानक के अनुकूल हैं?'

'यह कहा नहीं जा सकता! जुबेदाबानु सुशिक्षित अभिनेत्री हैं, यदि वे अपना भूमिका का अभ्यास करे, तो सम्भव है 'सकसेस' हो भी जायं! मोहन भी काम कर जाय, ऐसा शिक्षित लड़का है। फिर जो भी हो जाय वही ठीक!'

इसके पश्चात् श्रीप्रेमचन्द्रजी ने जनरल व्यूज व्यक्त करते हुए समझाया कि सिनेमा की कला द्वारा समाज का हित-साधना की जा सकती है! किन्तु यह कला दुधारी तलवार-जैसी है, यह बहुत सावधानी से चलाई जानी चाहिये। सिनेमा की कला-द्वारा समाज का सुधार हो सकता है, किन्तु इसी कला से समाज की हानि भी की जा सकती है, कहने का तात्पर्य यह है, यह कला होनी चाहिये। और उसका सदुपयोग ही होना चाहिये, सदुपयोग का अर्थ यह है कि यह कला सुशिक्षित व्यक्तियों के हाथ में होनी चाहिए और उसमें अच्छे साहित्यकार और सुशिक्षित कलाकारों का सहयोग होना आवश्यक है।

इंटरव्यू समाप्त हुआ। लगभग दो घण्टों के पश्चात् श्रीमान् प्रेमचन्दजी से हमने विदा माँगली—

चिट्ठी-पत्री

काशी-सेवा-समिति तथा बिहार

श्री सम्पूर्णानन्दजी का नेतृत्व

भूकम्प से बिहार की दुर्दशा के समय काशी की प्रतिष्ठित संस्था काशी सेवा समिति भी पीछे नहीं रही और उसने बड़ी तत्परता से बिहार की सेवा किया है। पं० मदनमोहन मालवीय की सलाह के अनुसार सेवा समिति ने तुरत एक भूकम्प उपसमिति बनाया, जिसके संयोजक श्री सम्पूर्णानन्दजी बनाये गये तथा श्री सम्पूर्णानन्दजी, श्री रामेश्वर सहाय सिन्हा और अन्य उत्साही कार्यकर्त्ताओं का एक जत्था लेकर तुरत मुंगेर के लिये रवाना हो गये। वहाँ समिति की ओर से हजारों मन गल्ला, पचासों गाँठ कपड़ा और हजारों रुपये बाँटे गये हैं। डा० जेठली की अध्यक्षता में सेवासमिति का मुंगेर का अस्पताल बहुत लोकप्रिय हो गया है। समिति की रिपोर्ट से पता चलता है कि मुंगेर में श्री सम्पूर्णानन्दजी के नेतृत्व में बड़ा सुन्दर कार्य हो रहा है।

दूसरा जत्था बनारस बैंक के मैनेजर श्री अमरनाथ की अध्यक्षता में सीतामढ़ी गया और वहाँ उसने ग्रामों में बड़ा काम किया है। समिति अब तक ७००० रुपये से अधिक बिहार भेज चुकी है और आशा है कि उसकी ओर से श्री सम्पूर्णानन्दजी सेन्ट्रल कमेटी के सदस्य होंगे। सेवा समिति ने भूकम्प ग्रस्त काशी वासियों की सहायता के लिये एक नगर उपसमिति भी बना दी है जिसके संयोजक श्री ठाकुरदास वकील हैं।

—एक संवाददाता

भूकम्प के समय मुंगेर में

मैं ता० २२-१२-३३ को पटना रवाना हुआ था और वहाँ कुछ दिन रह कर ता० ११-१-३४ को मुंगेर पहुँचा। ता० १५-१-३४ को भूकम्प हुआ। उस वक्त मैं मुंगेर में था, लेकिन संयोग-वश बाल-बाल बच गया। वहाँ का हाल लिखते हुए कलेजा मुँह को आता है। बदन थर्रा उठता है। मुंगेर के लिये प्रलय काल था। दो बजे दिन को मैं कचहरी की तरफ जाने को तैयार हुआ कि एक मरतबा बड़े जोरों की आवाज हुई। मैंने समझा हवाई जहाज आता होगा, लेकिन फौरन ही जमीन काँपने लगी। मैं समझ गया कि जमीन हिलती है। फौरन जो औरतें वहाँ थीं, सबको मकान के बाहर कर दिया और दो बच्चों को लेकर बाहर निकला, तो देखा कि मकान झूला झूल रहा है। चार ही कदम बाहर मैदान में गया होगा कि मकान फौरन गिर गया। जिधर देखता था धड़ाधड़ मकान गिर रहे थे। एक मिनट के अन्दर सारे शहर का नाश हो गया। मीलों वीरान हो गया। रुदन की आवाज सुनकर दिल दहल गया। अजीब हालत थी। जो कुछ मैंने आँखों देखा वह मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं देखा था। जब जमीन का हिलना बन्द हो गया तब मैं बाजार की तरफ गया। सभी मकान गिर गये थे और गिरे हुए मकानों से निकालो-निकालो की आवाज आ रही थी। मुझसे जहाँ तक हो सका निकालना शुरू किया और मैंने अपने हाथों से २२ आदमियों को निकाला जो कि बहुत घायल थे। कई रोज तक भूखा ही रहा। तार और डाक के बन्द हो जाने की वजह से घर या मित्रों को खत या तार भी न भेज सका, जिससे तमाम लोग चिन्तित हो गये। और शहर में सब लोग समझ गये कि मैं भी भूकम्प का शिकार हुआ। मुंगेर से मैं शम्भुपुरा रेल द्वारा आया और वहाँ से मोटर द्वारा बरबिघा और बिहार होता हुआ पटना आया। मार्ग में कोई ऐसा ग्राम नहीं मिला जहाँ भूकम्प से मकान बच गये हों। कस्बा बिहार में मालूम हुआ कि वहाँ दबकर कुल २०-२२ आदमी मरे थे और घायलों की संख्या ठीक ठीक मालूम नहीं हुई। फिर भी सब डिविजन में कई सौ घायल हुए थे। ता० ३१-१-३४ को गाजीपुर पहुँचा। शहर के लोग मुझसे मिलने को आते थे, तो मालूम होता था कि मैं फिर से जिन्दा होकर आया हूँ। अबकी मार्के की बात यह है कि मैं दी न्यू इन्श्योरेन्स लिमिटेड जिन्दगी बीमा कम्पनी का हृदय से कृतज्ञ हूँ। कम्पनी ने दो पत्र, एक हमारे मित्र गजानन्दजी को और दूसरा हमारी पत्नी को लिखा था। वह सराहनीय हैं। मैं दावे के साथ कहता

हूँ, ऐसी बीमे की कम्पनी दुनिया के अन्दर नहीं है। रुपया देने के वक्त कम्पना आनाकानी करती है, परन्तु दी न्यू इन्श्योरन्स ने रुपया देने के लिये हमारी पत्नी को ढाढ़स दिया था। इस ख़त को मैं आपने के लिये भेज रहा हूँ। इससे आम जनता को लाभ होगा। मैं कम्पनी का सिर्फ १००० रुपये का बीमेदार हूँ और अभी मैं सिर्फ तिमाही क़िस्त चुकाया हूँ। हमारे लिखने का मतलब यह है कि भारतवर्ष में अभी लोग यह नहीं जानते हैं कि कैसे कम्पनियों में बीमा कराना चाहिये। मैं समझता हूँ कि कम्पनी वही अच्छी है, जो कोई बात होने पर फौरन परिवार का इमदाद करे।

अभी ठीक तरह से मालूम भी नहीं हुआ था कि मैं मृत्यु का शिकार हुआ हूँ कि कम्पनी ने खुद ही हमारी स्त्री को मदद करने को लिखा। यह मामूली बात नहीं है। इसलिये मैं आम जनता से जोरदार शब्दों में अपील करता हूँ कि दी न्यू इन्श्योरन्स लिमिटेड कम्पना एक बहुत अच्छी कम्पनी है और सेवा करना इसका सिद्धान्त है। लोगों को चाहिये कि अपना बीमा बिना किसी हिचकिचाहट के करावें। उन्हें अवश्य लाभ होगा। जब मैं पटना से आ रहा था तो मैंने एक विचित्र बात देखी। जो नदियाँ सूखी थीं उनमे काफी पानी हो गया था।

आपका

ह० कृष्णप्रसाद वर्मा

नवाबगंज, गाज़ीपुर।

'राजपाल'

धार्मिक, सामाजिक तथा सुधारक मासिक पत्र

यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है कि आर्य साहित्य को प्रकाशित कर शहीद राजपालजी ने जो आर्य समाज की सेवा की है, वह अन्य ने नहीं की, और अन्त को साहित्य की सेवा ही करते-करते बलि वेदी की भेंट हो गए। महाशयजी की अनुपस्थिति में भी हम आर्य-साहित्य की सेवा बदस्तूर कर रहे हैं। और जब तक पाठक हमारा इसी प्रकार साथ देते रहेंगे, सेवा करते रहेंगे।

उस शहीद की स्मृति को स्थायी रखने तथा उनके अधूरे छोड़े हुए कार्य को पूरा करने के लिए 'राजपाल' नामक मासिक पत्र लाहौर से निकालने का निर्णय किया है। इसका प्रथम अंक शहीद की पाँचवीं बरसी के दिन, १२ मार्च १९३४ को प्रकाशित होगा। आर्य सामाजिक क्षेत्र में अपने ढंग का यह प्रथम पत्र होगा। पाठकगण का कर्त्तव्य है कि इसके ग्राहक बन हमारा उत्साह बढ़ावें।

क्योंकि इसका प्रथम अंक महाशयजी का स्मृति चिन्ह होगा। इसलिए इसमें उनके जीवन-विषय की विशेष घटनाओं का समावेश रहेगा। जो सज्जन २८ फरवरी १९३४ से पूर्व इसके ग्राहक बन जायँगे, उनको शहीद का तिरंगा चित्र १९३४-३५ के कलेंडर सहित भेंट किया जायगा। इसका वार्षिक चन्दा १) होगा, जो मनीआर्डर द्वारा भेजना आवश्यक है।

भवदीय,

भीमसेन वर्मा, प्रबन्धकर्त्ता।

---

२३ वाँ अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, दिल्ली

स्वागत-समिति की विज्ञप्ति नं० ६

प्रस्ताव भेजिये

१—अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ साथ साहित्य, इतिहास दर्शन और विज्ञान परिषदें भी होंगी, इन परिषदों में अपने-अपने विषय पर प्रस्ताव भी रखे जायँगे। अत: समस्त हिन्दी-हितैषियों से प्रार्थना है कि इन विषयों के सामयिक और उपयोगी प्रस्ताव २५ फरवरी तक भेजकर परिषदों को सफल बनाने में हमारा हाथ बँटाने की कृपा करें।

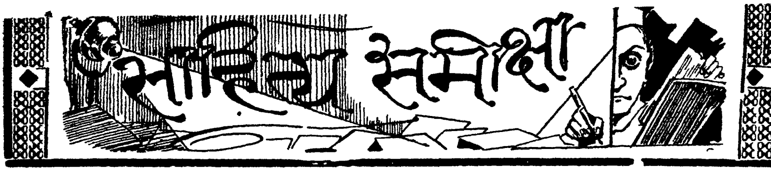
—विनीत

जैनेन्द्रकुमार संयोजक साहित्य-परिषद्
रामसिंह, एम० ए० ,, इतिहास ,,
सुधाकर, एम० ए० ,, दर्शन ,,
रामदेव, एम० ए० ,, विज्ञान ,,

२—सम्मेलन के अवसर पर होने वाली साहित्यिक प्रदर्शनी में हिन्दी के प्राचीन और नवीन अच्छे अच्छे कवियों के चित्रों को भी प्रदर्शित करने की आयोजना की गई है, अत: प्रत्येक हिन्दी-हितैषी से अनुरोध है, कि उनके पास कवियों के जितने भी चित्र हों, उनको कार्यालय में भेजने की कृपा करें। उनके चित्र यहाँ सुरक्षित रहेंगे व प्रदर्शनी समाप्त होते ही सुरक्षित रूप से उनके पास भिजवा दिये जायँगे।

विनीत—

चन्द्रशेखर शास्त्री संयोजक प्रदर्शनी



जयन्त (नाटक)—लेखक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी ; प्रकाशक, हिन्दी मन्दिर, प्रयाग। पहला संस्करण, दाम बारह आने, पृष्ठ संख्या ८+१२०, छपाई सफाई सुन्दर।

इस समय जहाँ हिन्दी साहित्य के अन्य अंगों की पूर्ति की ओर लोग अग्रसर हो रहे हैं, वहीं अभी नाटकों का कम ख्याल रखा जा रहा है, पर वस्तुत साहित्य में नाटकों का स्थान है बहुत ऊँचा। सभी सम्पन्न साहित्यों में नाटकों का कोष भरा पुरा रहता है। इसलिये इसकी उपेक्षा कभी भी नहीं की जा सकती। हिन्दी में मौलिक नाटकों का बड़ा अभाव है, इसी उपालम्भ से प्रेरित होकर त्रिपाठीजी ने प्रस्तुत पुस्तक की रचना की है। अभी तक त्रिपाठीजी नाटककार के रूप में नहीं आये थे, पर इस तीन अंकों वाले नाटक को देखने से जान पड़ता है उनमें नाटक लिखने की भी पर्याप्त क्षमता है। रङ्गमञ्च के लिहाज से इस नाटक में कतिपय त्रुटियाँ रह गई हैं, प्रथम और द्वितीय अङ्क के कई दृश्यों में परदा बदलने के पूर्व ही स्थान परिवर्तन करा दिया है, इससे रंगाध्यक्ष को दृश्य लगाने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी। दो स्थानों पर उपन्यासों की भाँति समय का लम्बा गैप (Gap) भी है, जो नाटकों के लिये वाञ्छनीय नहीं। द्वितीय अंक के द्वितीय दृश्य में जो 'दस वर्ष बाद' लिखा है वह बड़ा भ्रामक है, पता नहीं चलता कि पहले दृश्य अथवा अंक किसकी घटना घटने के दस वर्ष बाद। अन्तिम अंक पूर्व अङ्कों के अपेक्षाकृत छोटा होने के बजाय बड़ा है, किन्तु इन साधारण त्रुटियों के होते हुए भी नाटक बहुत ही सुन्दर है। गरीबों पर अमीरों के अत्याचार का नग्नचित्र बड़ा ही रोमाञ्चकारी है। कथावस्तु कल्पित और सामाजिक है। जयन्त, कुसुम, कल्याणी और मनोहर लाल का चरित्र बड़ी खूबी से अङ्कित किया गया है। जयन्त के जीवन पर देवदत्त और उसके गुरु के भावों की बड़ी सुन्दर एवं मिश्रित छाप है। कल्याणी का चरित्र बिल्कुल देवी सा है। नाटक सुखान्त और आदर्शवाद का नमूना है। भाषा सरल और मँजी हुई है। स्थान स्थान पर सूक्तियाँ और भावात्मक वाक्य भी हैं। गाने भी कम तथा अवसर के उपयुक्त रखे गये हैं। दूसरा अङ्क बहुत ही सुन्दर है, इसमें कुसुम और जयन्त के विचार तथा जयन्त का भाषण सुन्दर है। घटनाओं का तारतम्य इस प्रकार है कि रोचकता नष्ट होने की सम्भावना नहीं है। कॉमिक सीन का पुट यदि इकार कुछ कुछ खटकने लगता है गोकि व्यापार हीन दृश्य नाममात्र को हैं। दूसरे अंक के प्रथम दृश्य से कुसुम का आश्रम से विदा होना, जान पड़ता है कालिदास की शकुन्तला को ही उतार लाता है।

अन्त में यही कहना पड़ता है कि प्रस्तुत नाटक पाँच दिन में लिखा गया होकर भी (जैसा त्रिपाठीजी ने स्वयं लिखा है) साहित्य और सर्वसाधारण दोनों ही की दृष्टि से अच्छा बन पड़ा है। मंच पर बड़ी सफलता के साथ अभिनीत हो सकता है।

—के० पी० 'अशोक'

राष्ट्र-बन्धु—सम्पादक, श्री विश्वनाथसिंह, प्रकाशक, राष्ट्र-बन्धु कार्यालय, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य १२), एक अंक का मूल्य दो पैसे। डबल डिमाई साइज के ८ पृष्ठ। छपाई सफाई अच्छा।

अभी गत मास से ही यह पत्र प्रकाशित होने लगा है। बंगाल के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता स्वर्गीय सेनगुप्त के संस्मरणार्थ इसका प्रकाशन हुआ है। जो स्तुत्य है। पत्र राष्ट्रीय विचारों का पोषक और उदार नीति का है। अभी तक के अङ्कों के अवलोकन से यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि यह एक होनहार पत्र है। समाचारों का संकलन अच्छे ढंग से किया जाता है। सम्पादकीय विचार भी अच्छे होते हैं। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध एडवान्स के सहयोग के कारण इस पत्र को खास सुविधा प्राप्त हो गई और यही कारण है कि इतना सस्ता और अच्छा वृहत् पत्र हिन्दी में निकल सका है। दैनिक समाचार पत्र पढ़ने वाले हिन्दी पाठक इससे लाभ उठा सकते हैं। हमारी अभिलाषा है, कि पत्र चिरायु हो और अधिकाधिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो।

शिक्षक-बन्धु—सम्पादक, श्री जगनसिंह सेंगर प्रकाशक, स्टेण्डर्ड प्रेस, अलीगढ़। वार्षिक मूल्य १।) एक अङ्क के ≈), साइज डिमाई अठ पेजी और पृष्ठ संख्या ३२। मिडिल स्कूल परीक्षा बोर्ड अलीगढ़ का यह मासिक मुख-पत्र है। नाम से तो ज्ञात होता है कि यह शिक्षक वर्ग के काम का है पर सामग्री सभी प्रकार की इसमें रहती है। हमारा ख्याल है, अपने नाम के अनुसार ही यह पत्र अपने ध्येय पर चले, तो अधिक अच्छा हो। अध्यापक और विद्यार्थी इससे लाभ उठा सकते हैं।

व्यापार-सन्देश—सम्पादक, श्री रामलाल अवस्थी, प्रकाशक, व्यापार-सन्देश कार्यालय, कानपुर। वार्षिक मूल्य २) एक अङ्क के ≈), साइज डबल क्राउन ८ पेजी, पृष्ठ संख्या २४

इसी जनवरी मास से यह पत्र प्रकाशित होने लगा है। व्यापार, उद्योग और अर्थ सम्बन्धी विविध लेखों से विभूषित है। यदि यह पत्र इसी ढंग से प्रकाशित होता रहा, तो बेकार जनता को और साधारण व्यापारी वर्ग को यह लाभ पहुँचा सकता है। हम इसकी उन्नति चाहते हैं।

विचित्र-जगत्

७०० मील पैदल यात्रा करने वाला लँगड़ा !

कुछ ही समय हुआ, एक २३ वर्ष का लँगड़ा युवक लकड़ी की घोड़ी के सहारे सात सौ मील की यात्रा करके, अपनी रोजी के लिए ईस्ट लन्दन पहुँचा है। किसी दुर्घटना के कारण वह अपना समूचा पैर खो बैठा था। केपटाउन में गुजर होना मुश्किल जानकर, उसने अपना सामान पीठ पर लाद कर लकड़ी की घोड़ी के सहारे ईस्ट लन्दन की ओर प्रयाण किया था। इतना रास्ता तय करने में उसे ढाई मास लग गया। उसका कहना है कि मुझे रास्ते में जो भी लोग मिलते थे, वे मेरे प्रति बड़ी ही सहानुभूति और प्रेम दिखलाते थे। वे मुझे खाने के लिए भोजन और सोने के लिए स्थान दे देते थे; पर मुझे गाड़ी में कभी कोई नहीं बैठाता था। संभवत यह सोचकर कि मैं बहुत दूर नहीं जाऊँगा। उसने ईस्ट लन्दन में दूकान खोली है और उसका काम भला-भाँति चलता है।

मृत्यु के पूर्व सूचना !

पबना की खबर है कि जोरपुकरीया गाँव के भगवानचन्द्र हलदर नामक एक ईमानदार और भोले भाले वृद्ध की वहाँ सहसा मृत्यु हो गई थी। मरने से थोड़े पहले वृद्ध भगवानचन्द्र ४०० गज दूरी पर स्थित खेत मे दैनिक कृत्य से निवृत्त होने गया था। लौटते समय तालाब में हाथ-पैर धोकर वह घर आया और अपने बेटे बेटियो को बुलाकर कहने लगा कि आज शाम तक मैं मर जाऊँगा। इसके बाद उसने उन लोगों को कई आवश्यक बातें समझाईं। और उन लोगो के आगे उसे तुलसी की क्यारी के पास लेजाकर, उसके कान में ईश्वर के नाम लेने की इच्छा प्रकट की। इसके बाद आधे घण्टे मे वह मर गया। मरते समय तक उसके होश-हवास दुरुस्त थे।

बिजली की मदद से खेती

वैज्ञानिकों का कहना है कि बिजली के प्रयोग से फसल शीघ्र तैयार होती है और खेती अच्छी होती है। पश्चिमीय देशो में बिजली का उपयोग किया जाता है, परन्तु हिन्दुस्तान में इसका उपयोग करना असंभव है। कारण कि एक एकड़ जमीन में बिजली का प्रयोग करने से २०० पौण्ड अर्थात् ३००० रु० खर्च होता है। बिजली के प्रवाह से बीज जमीन से मजबूती के साथ चिपक जाते हैं, जिससे फसल जल्द और अच्छी तैयार होती है।

प्रतिमास ५० रु० कमानें वाला भिखारी

हैदराबाद मे डेढ़ फुट लम्बा एक मुस्लिम भिखारी है, जिसकी आमदनी ५० रु० मासिक के करीब है। उसकी उम्र ३१ वर्ष की है। उसका नाम खैरबख्श है। वह अपने भाई के साथ रहता है, जो उसे सवेरे ८ बजे एक कोने पर बैठा जाता है और रात को ९ बजे ले जाता है। उसको साधारण भूख लगती है, परन्तु वह अपने आप चल-फिर नहीं सकता। उसे उठाकर ले आना पड़ता है।

मृत्यु के पश्चात् जीवन

इतिहास कहता है कि गुजरात का राजा जयशिखर लड़ते लड़ते मर गया, किन्तु उसका धड़ कुछ समय तक लड़ता रहा।

डा० सर्जे वारोनोफ लिखते हैं कि मनुष्य मर जाता है, तब भी उसका मस्तिष्क कई मिनटों तक जीवित रहता है। इतने समय में मनुष्य को बड़ा दु:ख होता है। सम्भव है, हिन्दुओ में मृत्यु के पश्चात् ठण्ढे जल से शव को स्नान कराने की प्रथा इसी धारणा के कारण हुई हो।

पूँछ वाले मनुष्य

कौन कहता है कि पूँछ वाले मनुष्य दुनिया में नहीं है? सूडान के पीछे वाले शीरान प्रदेश म इन लोगों की ३० से लेकर ४०००० तक की बस्ती है। उन लोगों को २-३ इंच लम्बी पूँछ होती है। वे मनुष्य का मांस खाते हैं और सूर्य, चन्द्र, अग्नि, सर्प आदि की पूजा करते हैं।

जापान मे नग्नवाद

यूरोप की तरह चीन और जापान में भी नग्न सम्प्रदाय ने जोर पकड़ा है। चीन में इस सम्प्रदाय का श्रीगणेश हांग-कांग से हुआ था। इस सम्प्रदाय के अनेक व्यक्तियों ने इसके लिये बहुत-सी जमीन खरीदी थी। और वहीं नग्न विहार किया करते थे, थोड़े समय पश्चात् इस सम्प्रदाय की एक शाखा शांगहाई में स्थापित हुई परन्तु वहाँ की म्युनिसिपैलिटी ने दबाव डालकर, उसे बन्द करा दिया। अब शांगहाई के पास कियांगरू-प्रान्त में एक नवीन शाखा खुली है। वहाँ शहर में भी नि:संकोच नग्न सम्प्रदाय चल रहा है और वह भी धर्म के नाम पर! उन लोगो की धारणा है कि नग्न शरीर से ईश्वर-स्तुति करने से हम अमर हो जायँगे।



अब हिन्दी-कविता पर प्रति वर्ष दो हजार का देव-पुरस्कार दिया जाया करेगा। यदि आगामी वर्ष ब्रजभाषा की पारी पड़ी, तब तो शायद ओरछा-नरेश को वीरसिंह को निर्वासित कर देव-सरीखे लोगों के रस-कलस से छकने का अच्छा मौका मिल जायगा।

❀ ❀ ❀

उस रोज बाबू श्यामसुन्दरदास 'जायसी' पढ़ा रहे थे। एकाएक 'खूसट' शब्द आ पड़ा। बाबू साहब ने अर्थ तो बतला दिया, पर शुद्ध रूप पूछा गया, तो दूसरे रोज डिक्शनरी कन्सल्ट करके बतलाया—'कौशिक'। किन्तु विद्यार्थीगण यह नहीं समझ पाते कि कौशिक और खूसट मे कैसा सम्बन्ध है? क्या 'चाँद' वाले दुबे विजयानन्दजी प० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक से पूछ कर इस बात पर कुछ प्रकाश डालेंगे?

❀ ❀ ❀

'गिरीश' जी का पहला 'प्रेम-पत्र' मिले बहुत दिन हो चुके, उनके प्रेमीजन अगले पत्र की प्रतीक्षा में तड़प रहे होंगे, पर गिरीशजी तो एक दम मौन साधे हुए हैं। आखिर दिल को तसल्ली कैसे हो? कहा जाता है—'पाती आधी मिलन है' किन्तु यहाँ तो उसका भी हार्ट फेल हो रहा है।

❀ ❀ ❀

एक 'विलक्षण' बुद्धि वाले के हृदय में ऐसी ज्वाला उठी थी कि छाया-वादी छोकड़ों की काली करतूत लिखने पर ही आमादा हो गये थे, लेकिन मियाँ खैरातीखाँ ने उन्हे कुछ खुदा की राह पर दे दिलाकर ठढा कर दिया है। जान पड़ता है, लेखक महोदय अवश्य टकापथी समुदाय के होंगे, जो दान लेकर ध्येय बदल दिया।

❀ ❀ ❀

इस वर्ष हिन्दू यूनिवर्सिटी के बी० ए० के छात्रों को बिदाई के अवसर पर छात्राओं की ओर से उपाधियों से भी विभूषित किया गया था। सबसे आश्चर्यजनक उपाधि मिली रायबहादुर बाबू श्याम-सुन्दरदास के सुपुत्र को। वह थी—Door keeper of the ladies common-room अर्थात—कञ्चुकी। सचमुच बड़े अचरज की बात है, कहाँ बाबू साहब, कहाँ उनके घर ऐसा काम!

❀ ❀ ❀

विगत भूकम्प के अवसर पर कितनो ही के प्राण संकट में पड़ गये थे, पर हमारे साहित्यिकों को उसमें भी साहित्य ही दिखलाई पड़ा—एक सज्जन ने घर की छत पर से बेनीमाधव के धरहरों को हिलते देखा, तो अपने घर वालो से पूछने लगे—ये धरहरे लड़ने क्यों जा रहे हैं? दूसरे सज्जन रास्ते मे जाते समय बगल के मकान को हिलता देखकर इसी विचार में पड़गये कि शायद यह मकान गिराया जा रहा है! तीसरे सज्जन सो रहे थे, पलग काँपने लगा, तो आँख बन्द किये-ही-किये चिल्लाने लगे—अरे! अभी क्यों जगाने आगई, चार तो बजने दो।

—एकलव्य

आज कल हिन्दी के दैनिकों में सबसे सुन्दर 'भारतमित्र' ही निकल रहा है। क्यो न हो, आखिर पोगापंथियो का प्यारा, दुलारा, आँखों का तारा, सहारा, सब कुछ तो है!

❀ ❀ ❀

यही कारण है कि उसकी भाषा, उसके भाव, उसकी चाल-ढाल, उसकी वेष-भूषा सभी निराली है।

❀ ❀ ❀

उसकी चाल ऐसी है, जैसे—मुफ्त का माल खाकर तोदूमल शर्मा अपनी तोंद पर हाथ फेरते, डकराते हुए चलते हों!

❀ ❀ ❀

उसकी भूषा भी आजकल बड़ी विचित्र और खास प्रकार की है। जैसे—तिलकधारी पोंगाराम शास्त्री जूट का जामा पहने हुए हों!

❀ ❀ ❀

उसकी सुन्दर भाषा का भी आस्वादन कर लीजिए। ता० १४ के १३९ वें अक मे प्रथम पृष्ठ के द्वितीय कालम में सुन्दर भाषा में समाचार छपा है। अक्षरशः ज्यों का-त्यो देखिए—

'काश्मीर में मार्शल ला?

मजिस्ट्रेट का हत्या का धमकी!

सभा भाषण पर रोकथाम!

श्रीनगर १३ फरवरी। काश्मीर के जिला मजिस्ट्रेट ने कम्यूनिक निकालकर जनता को सूचित किया है कि लागतार मना करने पर भी कुछ राज्य में आशा का और जनता में उत्तेजना फैलाने वाज नही आते अगर इस-रह का नाजायद कार्यवाई बन्द न कर दी जायगा, तो शहर में फौजी शासन जारी कर दिया जायगा।'

अपने राम की राय है कि अगर धर्मधुरीण 'भारतमित्र' जी की इस उन्नति पर भारतधर्म महामण्डल उसे 'बागालार-प्राप्त' की पदवी प्रदान करे, तो उसकी गुण-ग्राहकता का बहुत ही सुन्दर परिचय इस समय सनातनी संसार को मिल जाय।

❀ ❀ ❀

दिल्ली एसेम्बली में उसदिन जब बिहार-भूकम्प-सम्बन्धी प्रस्ताव पर बहस होने वाली थी, तो उस समय सभी दलों के १७ सदस्य आराम कुर्सियों पर पैर फैलाये सो रहे थे। कितना उत्तम उदाहरण है, सदस्यों की तत्परता और देश-हितैषणा का?

❀ ❀ ❀

दिल्ली की मुसलमानों की एक सभा में भोज के अवसर पर हि० हा० सर आगाखाँ का स्वागत हुआ और सर अब्दुर्रहीम ने सर आगाखाँ की राष्ट्रीयता और जनहितकारिता की तारीफ कर डाली और उनके द्वारा हिन्दू तथा मुसलिमानों को समान रूप से लाभ उठाने की भी सिफारिश की है, पर सर अब्दुर्रहीम को मालूम नहीं कि हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान सर आगाखाँ साहब के विशुद्ध रूप को बहुत पहले से ही जानते हैं। और यही कारण है कि वे अपने मुख्य कार्य क्षेत्र गुजरात में काफी नाम पैदा कर चुके हैं। अभी अभी बम्बई और दिल्ली में भी उनका जो सम्मान हुआ था, वह किसी से छिपा नहीं है, सर साहब!

❀ ❀ ❀

जागरण के ८ जनवरी वाले अंक में, पोंगा-पंथियों पर जो कोड़ा फटकारा गया था, उससे बेचारे 'पण्डितप्र' जी भी बुरी तरह घायल हुए हैं। आप कराहते हुए कहते हैं—'ऐसी जाति तथा ऐसी जाति का साक्षात मूर्तिमान स्वरूप हिंदू समाज 'जागरण' के दोष देने से थोड़े ही कलंकित होगा। बेशक पोंगा प्रवर, वह काहे को कलंकित होगा?। वह तो कलंक को एक चुस्की में ही सुड़क जाता है!

❀ ❀ ❀

आगे आप कहते हैं—'सूर्य के ऊपर कीचड़ फेंकने से सूर्य में कालिमा कभी न आवेगी।' सच है, सोलहो आना सच है! कीचड़ से कालिमा तो कभी नहीं आती, हाँ, गंदगी जरूर आती है, सो देख लीजिए अपने 'सूर्य' को, भुनामाले की गलियों में, बेचारा कैसा मरा नजर आता है कि लोग दूर ही से घृणा करते हैं।

❀ ❀ ❀

भारत की लक्ष्मी अब विदेश का प्रस्थान कर रही है! क्या कोई ज्योतिषराज बताने की कृपा करेंगे कि अब यह लौटेगी, कि नहीं?

❀ ❀ ❀

और अगर न लौटेगी, तो भारत के वणिक्-समाज, खासकर मारवाड़ी-समाज, की क्या दशा होगी?

❀ ❀ ❀

उर्दू की साप्ताहिक पत्रिका 'रियासत' ने अपने नये अंक में चित्रावली प्रकाशित की है, जिसमें एक ओर सरक्षण चाहने वाले देशी नरेशों के चित्र हैं और दूसरी ओर उनके अत्याचार पीड़ितों का दिग्दर्शन कराया गया है, जिसमें किसी का सिर फटा है, कोई खाट से बँधा सिहर रहा है, कुछ बालक मृतावस्था में पड़े हैं। सो, इससे क्या होता है जनाब, यह जन्म-मरण तो दुनिया के दैनिक कार्य हैं। जो जन्मा है, सो मरेगा ही। अगर रियासतों में कुछ लोग कुत्ते की मौत मार दिये जाते हैं, तो इसमें कौन बुरी बात है! इस भव से तो शीघ्र ही छुटकारा मिल जाता है।

❀ ❀ ❀

ईस्ट इण्डीज में भी जोर का भूकम्प आया है। अभी पूरे समाचार तो नहीं मिले, पर कम्प जोर का बताया जाता है। किन्तु फिर भी भारत के बिहार को इतिहास में अमर हो जाने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह उसे शायद न प्राप्त होगा।

❀ ❀ ❀

भूकम्प पीड़ित बिहार की सहायता के लिए २५ करोड़ का कर्ज लेने का, भी सरकार पर दबाव डाला जा रहा है। बाप रे बाप! यह क्या आफत है बेचारी गरीब पर। अरे जरा तो तरस खाओ बेचारी पर! वह जो चंदा इकट्ठा करने और बिना मनीआर्डर-कमीशन लिये रुपया पहुँचा देने की व्यवस्था कर रही है, यही क्या कम है! कुछ तो विचार करो भले मानसो!

—विचित्रानन्द।

सहकारी सम्पादक—श्री प्रवासीलालवर्मा, मालवीय-द्वारा सरस्वती-प्रेस, काशी से मुद्रित और प्रकाशित।

जागरण

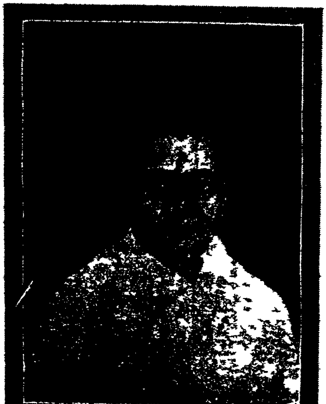
THE JAGARAN

सम्पादक—प्रेमचन्द

Illustrated Weekly

वर्ष २ | काशी, वि० फाल्गुन शुक्ल १२ सोमवार, सं० १९९० वि० : ता० २६ फरवरी सन् १९३४ ई० | अंक २८

श्री सुभाषचन्द्र बोस



आपने राष्ट्रीय कार्य का एक नया कार्यक्रम तैयार किया और बताया है कि हम लोगों को विदेशों के कार्यक्रम का अध्ययन करके, उनसे सबक सीखना चाहिए और उनके अच्छे कार्यक्रमों को अपनाना चाहिए।

टीस

सीखा क्षुद्र निशा से मैंने
सिसक सिसक कर रोना,
तारक चय ने हृदय खोल
दिखलाया रौरव - कोना।
राका के उस धवल-देश में
व्यथा - परी का नर्तन,
मधुर मिलन-स्मृतियाँ उसका
हँसता था चल-परिवर्तन।
जीवन के गम्भीर उदधि से
मुक्ता था कब पाना ?
'प्रणय-तरी पर बैठा था,
भँवरों से ही उलझाना !
भाग्य मुकुल मुकुलित होने
में प्रलय-घड़ी की देरी,
सम्भव है ? क्या आओगे
प्रिय, पीड़ा हरने मेरी ?

श्री सीताराम 'प्रभास'

जागरण

मि० फाल्गुन बदी १२ सोमवार, सं० १९९० वि०

यू० पी० काउंसिल में कृषकों पर अन्याय

यू० पी० काउंसिल की इस बैठक में होम मेम्बर सर जगदीशप्रसाद ने एक कानून का मसविदा पेश किया था, जिसके अनुसार काश्तकारों से बकाया लगान पर १२ सैकड़े ब्याज के बदले ६) सैकड़े ब्याज की व्यवस्था की गई थी। यह भी किया गया था कि बकाया लगान की हालत में काश्तकारों को ४ साल तक बेदखल न किया जाय। इस मसविदे का श्री रामकृष्णपालसिंह और श्री उपाध्याय ने समर्थन किया। मगर जमींदारों को भला कैसे सब्र होता। चारो तरफ से ६) फी सदी पर विरोध किया गया और ९) फी सदी पर समझौता हुआ। ४ साल की जगह २ साल की मुद्दत रखी गई। यह है हमारे काउंसिलों में किसानों के प्रतिनिधि न रहने का फल। जमींदार साहबान हर मौके पर अपने को किसानों का प्रतिनिधि बताया करते हैं। सरकार भी उन्हें किसानों का स्वाभाविक नेता कहती है, लेकिन जब कोई ऐसा अवसर आता है, कि जमींदारों से किसानों को कुछ रिआयत दिलाई जाय, तो ये स्वाभाविक नेता रस्सी तुड़ाने लगते हैं। ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि जमींदार समुदाय ने कभी किसानों के प्रति न्याय के बर्ताव का समर्थन किया हो। उस पर ये चाहते हैं कि जनता उनका आदर करे, और उनका यश गाए। ऐसी ही हरकतों से जमींदार लोग अपनी जड़ खोद रहे हैं और जनता में उनका जो कुछ रहा सहा प्रभाव है, उसे भी खोए देते हैं। मि० उपाध्याय ने यही बात जब खोलकर कह दी, तो सारे जमींदार तिल्ला उठे, जिनमें नवाब, होम मेम्बर साहब भी थे। कहा गया कि इस कानून के जन्मदाता मो० फसीहुद्दीन साहब हैं, जो खुद जमींदार हैं और जिन्होंने ३ फी सदी सूद की व्यवस्था की थी। बेशक ऐसे जमींदार हैं, जिनमें किसानों के प्रति सहानुभूति है लेकिन उसी तरह जैसे हाउस आफ लार्ड्स में भी दो-एक मेम्बर ऐसे हैं, जिनको भारत पर दया आती है। लेकिन इन बेचारों की नक्कारखाने में सुनता कौन है। वहाँ तो बहुमत जमींदारों का है और सरकार सदैव उनकी रक्षा करती रहती है। किसानों की गरीबी पर किसी को तरस नहीं आता। हमें जमींदारों से शिकायत नहीं। उनसे जनता ने किसी तरह की आशा रखना छोड़ दिया है। हमें शिकायत सरकार से है, जो किसानों की दशा से भली भाँति वाकिफ होकर भी और यह जानते हुए भी कि इस मन्दी में जितनी तबाही उन पर आई है, उतनी समाज के और किसी अंग पर नहीं आई, हमेशा जमींदारों का ही पक्ष लेती है। जो किसान बड़ी मुश्किल से लगान दे पाता है, यहाँ तक कि जमींदारों के कथनानुसार हर साल ५० फी सदी लगान बाकी रह जाता है, वह सूद कहाँ से दे सकता है। जमींदार उस पर योंही बकाया नहीं छोड़ देते। मार धाड़, कुर्की सरसरी सब कुछ कर के तब चुप होते हैं। जब इतने पर भी काश्तकार लगान पूरा नहीं अदा कर सकता, तो वह ९ फी सदी सूद कहाँ से देगा। रिआयत ही करनी हो, तो ऐसी रिआयत करो कि उसका कुछ महत्व हो। इन भले आदमियों को यह नहीं सूझता कि उन्हें ४५ फी सदी का जो नफा होता है, वह तो माले मुफ्त ही है। वह कोई परिश्रम नहीं करते, पसीना नहीं बहाते, केवल दो चार शहने रखकर रुपए वसूल कर लेते हैं और बैठे मौज उड़ाते हैं। उनके मुकाबले में किसानों की क्या दशा है? एक लाख किसानों को खड़ा कर दीजिए। शायद ही किसी की देह पर साबित कपड़े निकलें। जमींदारों पर भी कर्ज है, हम मानते हैं, लेकिन यह कर्ज इसलिए है कि वह आमदनी से ज्यादा खर्च करते हैं। काश्तकार इस लिए तबाह हैं कि उसको खेती में न काफी उपज है, न जिस का अच्छा दाम है और उस पर एक न एक दैवी बाधा सदैव उसके पीछे पड़ी रहती है। मगर यहाँ तो अपना पेट भरना चाहिए, कोई भूखा मरता हो, तो मरे। फिर भी यह शिकायत कि जनता पर जमींदारों का प्रभाव नहीं है।

निरक्षरता की दुहाई

हमारे किसानों की निरक्षरता की दुहाई देना एक फेशन-सा हो गया है लेकिन किसान निरक्षर होकर भी बहुत से साक्षरों से ज्यादा चतुर हैं। साक्षरता अच्छी चीज है और उससे जीवन की कुछ समस्याएँ हल होजाती हैं लेकिन यह समझना कि किसान निरामूल हैं उसके साथ अन्याय करना है। वह परोपकारी है, त्यागी हैं, परिश्रमी हैं, किफायती है, दूरदर्शी हैं, हिम्मत का पूरा है नीयत का साफ है, दिल का दयालु है बात का सच्चा है, धर्मात्मा है, नशा नहीं करता, और क्या चाहिए। कितने साक्षर हैं, जिनमें ये गुण पाए जायँ। हमारा तजरबा तो यह है कि साक्षर होकर आदमी काइयाँ, बदनीयत, कानूनी और आलसी हो जाता है। किसान इसलिये तबाह नहीं है कि वह साक्षर नहीं है, बल्कि इस लिए कि जिन दशाओं में उसे जीवन का निर्वाह करना पड़ता है उनमें बड़े से-बड़ा विद्वान भी सफल नहीं हो सकता। उसमें सबसे बड़ी कमी संगठन की है जिसके कारण जमींदार साहूकार अहलकार सभी उस पर आतंक जमाते हैं। लेकिन अगर कोई उनमें संगठन करना चाहे, जिसमें वे इन भेड़ियों के नख और पंजे से बचें, तो उसपर तुरत राजद्रोह का और हिज मैजस्टी की प्रजा में विद्वेष पैदा करने का इल-जाम लग जायगा और उसे जेल की हवा खानी पड़ेगी। किसान लाख साक्षर होजाय, जब तक वह संगठित नहीं होता, जब तक उसे अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं होता, तब तक वह इन समुदायों का मुकाबला नहीं कर सकता, उसका जीवन कभी सुखी न होगा। उसके पास चार पैसे देख कर जमींदार और अहलकार सभी की राल टपकने लगती है और एक न एक युक्ति निकाल कर उसकी कमर खाली कर दी जाती है। अगर राजद्रोह का हौवा न खड़ा कर दिया गया होता, तो राष्ट्रीय सेवक किसानों में बहुत कुछ संगठन कर चुके होते। मगर यहाँ तो यह नीति है कि प्रजा की राजनैतिक चेतना न जागने पावे, नहीं वह अपने हकों पर अड़ना सीख जायँगी। इस लिये उनके संगठन का कार्य पब्लिसिटी विभाग के सिपुर्द कर दिया गया है, जो बड़ बड़ कस्बों में जाकर अंग्रेजी राज्य के कवित्त सुना आते हैं। एक ओर जनता को नशे की बुराइयों का उपदेश दिया जाता है, दूसरी ओर ऐसी व्यवस्था की जाती है कि लोग ज्यादे से ज्यादे नशे का सेवन करें, जिसमें सरकार की आमदनी में कमी न होने पावे। इस नीति का जबतक प्राधान्य है, साक्षरता से कोई उपकार नहीं हो सकता। जो विद्वान हैं उन्हें तो हम दूसरों को नोचते-खसोटते ही देखते हैं, यहाँ तक कि मन में सन्देह होने लगता है कि क्या यह वही विद्या है, जिसकी इतनी महिमा गाई गई है। अगर सरकार को जनता के हित की सच्ची लगन हो जाय, तो वह जादू का लालटेनों से, उपदेशों से, सिनेमा चित्रों से थोड़े दिनों में आरोग्य और अच्छी खेती के तरीकों का प्रचार कर सकता है। जिस किसान के द्वार पर खड़ होने को जगह नहीं, वह ताजी हवा कहाँ से लावे, जिसके भोजनों का ठिकाना नहीं, वह अच्छी खाद कहाँ से लावे। हम तो कहेंगे कि देहात वालों का निरक्षरता ही उनकी रक्षा कर रही है, नहीं उनमें भी वही पाखंड, वही विलास, वही स्वार्थपरता आ जाती जो आज के विद्वानों की विशेषता है। जो हमारे किसानों को निरक्षर कह कर उन पर दया करते हैं उन्हें इन निरक्षर महात्माओं से बहुत सीखने को मिल सकता है। आज ८० फी सदी साक्षर बेकार बैठे अपनी साक्षरता के नाम को रो रहे हैं। ऐसी साक्षरता किसानों के लिये घातक होगी। उनमें सब से बड़ी जरूरत संगठन की है, जिसमें वे इतनी आसानी से दूसरों के शिकार न बनाये जा सकें और यह संगठन करना राजद्रोह है।

भारतीय कला की आत्मा

हिज एक्सेलेन्सी सर माल्कम हेली ने लखनऊ स्कूल आफ आर्ट की वार्षिक प्रदर्शनी के अवसर पर भारतीय कला की बड़ी सुन्दर विवेचना की। आप ने फरमाया कि प्राचीन भारतीय कला कुछ धार्मिक, पौराणिक और दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति थी, जो विशेष रूप से भारतीय थे।

होली की छुट्टी

आगामी सप्ताह होली की छुट्टी के कारण प्रेस बन्द रहेगा; इसलिए अगले सप्ताह का 'जागरण' ता० ५ मार्च को न प्रकाशित होकर १२ तारीख को प्रकाशित होगा।

आपके विचार में वही भारत की जातीय कला की आत्मा थी। बेशक थी। मगर उस धर्मांधता के युग में संसार की किस जाति की कला इससे भिन्न थी? फिर जब संसार में कहीं कला का यह नया रूप न था, तो भारत में क्यों होता। यहाँ भी कलाकारों ने अपनी बुद्धि कृष्ण की रास लीलाओं और देवताओं के पौराणिक गाथाओं के चित्रित करने में लगाई, उसी तरह जैसे बौद्ध कलाकारों ने कई सदियों पहले बुद्ध जीवन को चित्रित करने में लगायी थी या जैसे बाद का इटाली के महान चित्रकारों और मूर्तिकारों ने ईसा और अन्य धर्म सम्बन्धी विषयों में खर्च की। भारत की आत्मा ही कलाकार की आत्मा है और वह अब सदियों की धार्मिक और साम्प्रदायिक गुलामी से मुक्त होकर, ज्यादा स्वाधीन-क्षेत्र में आना चाहती है, और वही कलाकार आज का राष्ट्रीय कलाकार होगा, जो इस भावना को रंगों और पत्थरों में दरसाए। देवी देवता और राजा रानी के चित्र अब केवल प्रशंसा के लिए रह गए हैं, राष्ट्रीय भावना को उनसे कोई आशा नहीं मिलती। आज भी हमारे यहाँ ऐसे आलोचकों की कमी नहीं है, जो कृष्ण का दधि लीला के चित्र देखकर गद्‌गद् हो जाते हैं और उनकी प्रशंसा में पोथियाँ निर्माण कर डालते हैं। लेकिन ऐसे चित्रों में गौरव या आनन्द का अनुभव करने वाले वही सुखी और सुस्त जीव हैं, जो आज के वास्तविक जीवन में नहीं पड़ और न परिस्थितियों के कारण पड़ सकते हैं।

देव मंदिर और भूकम्प

हमें नैपाल के एक प्रधान व्यक्ति से यह सुनकर अत्यन्त संतोष और गर्व हुआ कि जहाँ काठमाण्डू पट्टन और अन्य स्थानों में बहुत से मकान गिर गए, वहाँ देवमंदिर एक भी नहीं गिरा और इस पर उन महोदय ने श्रद्धा विहीन लोगों को दिखाया है कि देवताओं में कितनी बड़ी शक्ति है। क्यों न होगी? यह भूकम्प असल में उनके लिये तो आया ही न था। देवता और ईश्वर तो एक प्रकार से नातेदार हैं। कोई ईश्वर का भाई है, कोई साला, कोई बहनोई। नातेदार की रक्षा तो सभी करते हैं। इसमें नई बात क्या हुई। भूकम्प तो आया था उन लोगों को दण्ड देने के लिए, जो महात्मा गांधी के मत से अछूतों पर अन्याय करते हैं, पोंगा पंथियों के मत से अछूतों के लिए मंदिर खुलवाते हैं, अहलकारों के मत से जो रिश्वत नहीं देते, मुल्लाओं के मत से जो दाढ़ी नहीं रखते। मगर ऐसा मालूम होता है कि देवताओं में भी दो दल हो गए हैं क्योंकि जहाँ नेपाल के देव मंदिरों में एक को भी आँच नहीं आई, वहाँ बिहार में कितने ही देवालय लोप हो गए और मसजिदों का निशान मिट गया। ऐसा मालूम होता है कि स्वाधीन नेपाल के देवताओं में कुछ अधिक शक्ति होगी। पराधीन भारत के देवता भी तो आखिर दुर्बल ही होंगे।

हमें तो यह देख का दुःख होता है, कि अच्छे खासे समझदार लोग इस तरह का वर्णन करते हैं। संसार में आदिकाल से भय का राज्य रहा है, समाज में भी धर्म में भी। चोरी मत करो नहीं राजा दंड देगा। पाप मत करो, नहीं ईश्वर दण्ड देगा। इस प्रकार ईश्वर की कल्पना भी एक बहुत बड़े तेजस्वी और भयंकर राजा की थी। यह कभी नहीं कहा गया कि चोरी मत करो, इससे तुम्हारे भाई को कष्ट होगा, या पाप मत करो, इससे तुम्हारे समाज को कष्ट होगा। हमारे नीतिकारों ने इस मानवी भावना का आधार न लेकर, भय का आधार लिया और ऐसा स्वाभाविक भी था। जंगली दशा में मनुष्य को प्रकृति का रौद्ररूप ही अधिक दिखाई देता था और लोग अपने पास की बहुमूल्य चीजें उसे भेंट देकर, उसका क्रोध शान्त करते थे। क्रोध शान्त होता था या नहीं लेकिन कम से कम उन जंगलियों को यह सन्तोष हो जाता था कि हमसे जो कुछ हो सकता था, वह हमने कष्ट निवारण के लिये कर दिया। और वह भय भावना आज तक हमारे दिलों पर छाया है। यह उसी भावना का प्रताप है कि हमें नरक का भय दिखा कर आज करोड़ों पाखंडी हमें उल्लू बना रहे हैं। शासन मनुष्य कृत वस्तु है। मनुष्य भय पर अपना अस्तित्व जमाए, तो हम उसे क्षम्य समझते हैं लेकिन सर्वशक्तिमान् ईश्वर को भी भय का ही सहारा लेना पड़, जब वह अपने प्रेम का अखंड विस्तार दिखा सकता है यह उस ईश्वर के लिये गौरव की बात नहीं हो सकती। कहते हैं, ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। तो फिर उसकी इच्छा के बिना आज हजारों बरस से हिन्दू समाज ने हरिजनों पर अत्याचार क्यों किया? ईश्वर यह सब अन्धेर देखकर भी चुप क्यों बैठ रहा? क्यों नहीं उसने अपने प्रेम की ज्योति से सबको वशीभूत कर लिया? कहा यह है कि कोप आना चाहिए था, केवल अन्याय पर, मगर उसमें पिस गए हरि जन भी। कई दार्शनिकों का मत है कि ब्रह्माण्ड केवल 'चित' है। हो सकता है। बालू का कण भी परमाणु है, लेकिन बालू का कण चाहे कि हिमालय को हिला दे, तो उस कण की भोर कल्पना है। फिर जब हमारी बुद्धि इतनी परिमित है, तो यही क्यों नहीं कहते कि दादा ईश्वर की लीला ईश्वर जानें। हम इस विषय में कुछ नहीं जानते।

आकस्मिक प्रकोप बिल

बिहार में आकस्मि बिल पास होगया। इसके अनुसार बिहार सरकार भूकम्प पीड़ितों को बराय नाम सूद पर कर्ज देगा और १०, १५ वर्ष में किस्त वार वसूल करेगा। ऐसे कानून की इस वक्त बड़ी जरूरत थी और यदि यहाँ भी वही ढपढ़ धोंधो न हुआ जो सरकारी कामों में हमेशा हुआ करता है, तो इससे प्रजा का बड़ा उपकार होगा। यह एक काम बिहार सरकार ने ऐसा किया है, जिसकी जितनी तारीफ की जाय कम है। विलम्ब के लिए हम सरकार को दोषी नहीं ठह राते। सरकारी कामों में कुछ न कुछ विलम्ब हो ही जाता है। खटकती है, यह बात कि यह कर्ज उन्हीं लोगों को दिया जायगा, जो जायदाद वाले हैं। यहाँ भी आगई, वही जाय दाद वालों पर व। हम पूछते हैं, जिनका दूकान सारा लेई पूँजी लेकर जमीन में धँस गई या जिस जिस मकानदार के सारे मकान जमींदोज होगए या जिस किसान के खेतों में पानी भर गया, वे गरीब किस जायदाद के बल पर कर्ज लेंगे। और जिनके पास जायदाद है, उन्हें कर्ज देने वाली एक सरकार ही थोड़ी ही है। उन्हें तो बैंकों और महाजनों के द्वार खुले हैं और सम्भव है, इस परिस्थिति में उन्हें ५, ६ फी सदी सूद पर कर्ज मिल जाय। रोना तो उन्हीं बेचारों का है, जो जायदाद वाले थे मगर अब फाके मस्त हैं। उनके लिए सरकार क्या कर रही है? हम तो समझते हैं, सरकार को बिहार चेम्बर आफ कामर्स की इस सलाह पर विचार करना चाहिए, कि सहकारी समितियों और प्राइवेट बैंकों से सरकार अपनी जिम्मेदारी पर कर्ज दिलवाए। आप खाने के लिए तो कर्ज दे नहीं रहे हैं, कि कोई खाकर रफू-चक्कर हो जायगा। आप तो दे रहे हैं, मकान बनाने के लिये। क्या कर्जदार मकान सिर पर लेकर भाग जायगा। वह भाग भी जाय, तो मकान तो रहेगा। उसे बेच कर रुपए वसूल किए जा सकते हैं। जो कुछ भी हो, अगर सरकार ने केवल जायदाद वालों तक इस कानून को सीमित रखा, तो इससे वास्तविक लाभ बहुत कम होगा।

रूस का नैतिक उत्थान

रूस को बदनाम करने वाले अंग्रेजी अखबारों में बराबर यही लिखा जाता है कि रूस में विवाह प्रथा प्राय उठ सी गई है, पारिवारिक संगठन नष्ट हो गया है, स्त्री-पुरुष स्वेच्छा से सहवास करते हैं, आदि। लेकिन इधर दो एक भारतीय सज्जनों ने वहाँ का जो आँखो देखा वृत्तान्त लिखा है, उससे तो मालूम होता है कि रूस ने और किसी विभाग में चाहे प्रगति की हो या नहीं लेकिन नैतिक दृष्टि से तो वह पश्चिम की अन्य सभी उन्नत जातियों से आगे निकल गया है। वहाँ बाजारों में वेश्याएँ अपने शिकार की तलाश में चक्कर लगाती नहीं नजर आतीं, न होटलों और कहवा खानों में औरतों के नंगे चित्र ही लटकते नजर आते हैं, जैसा यूरोप और अमेरिका के प्राय सभी देशों में देखा जाता है। यही नहीं, सुजाक और उपदंश आदि बीमारियाँ जो यूरोप में दिन दिन बढ़ रही है, रूस में बहुत कम हो गई हैं और वहाँ के डाक्टरों को आशा है कि कुछ दिनों में यह फिरंगी बीमारियाँ नेस्त-नाबूद हो जायँगी। वेश्यावृत्ति का मूल कारण आर्थिक संकट है, जो बाद को मानसिक दुर्बलता का रूप धारण कर लेता है। जहाँ धन थोड़े से आदमियों के हाथ में है, वहाँ लाज़िमि है कि धनवान लोग अपनी विलासिता को तृप्त करने के लिये प्रलोभनों से काम लें। उसी से बीमारियाँ भी फैलती हैं। जब किसी के पास इतना धन ही न रहे कि वह उसे विलासिता में उड़ा सके, तो वेश्यावृत्ति आप ही आप लुप्त हो जायगी। फिर जब स्त्रियों के लिये जीवन के किसी विभाग में कोई रुकावट नहीं, तो वे क्यों इस अपमानजनक वृत्ति का आश्रय लें। धन के लिये रूप को बेचना कोई स्त्री पसन्द नहीं करती। वह तो प्रेम के लिये ही आत्म समर्पण करना चाहती है। यदि वह परिश्रम से अपने जीवन को सुखी बना सकती है, तो वह यह घृणित आश्रय कभी न लेगी।

: — प्रगतिशील जर्मनी का सिंहावलोकन :

लेखक—श्रीयुत कामेश्वर शर्मा, 'कमल' साहित्य भूषण

जर्मनों का ऐसा विचार है कि राज-सेवा—नौकरी—की अपेक्षा व्यापार में आर्थिक लाभ बहुत मिलता है। इस विचार का असर छोटी और बड़ी पदवी के राज कर्मचारियों पर भी समान पड़ा है।

देश की सच्ची बुद्धिमत्ता देखना हो, तो हमको भिन्न भिन्न कंपनियों, कारखानों, या बैंकों की तरफ नजर डालनी चाहिए। यदि आप इसका कारण ढूँढने का प्रयत्न करें, तो आपको मालूम होगा कि, व्यापारादि धन्धों में जितना द्रव्य प्राप्त होता है, उतना वेतन रूप में सरकार अपने नौकरों को देने में समर्थ नहीं है। राज सेवा में होशियार मनुष्य रहें, इस आशय से बड़ी पदवी, खिताबों अथवा स्वर्णपदकों का लालच लोगों को बतलाया जाता है। परन्तु इन पदवियों अथवा पदकों से उनके जेब गरम नहीं होते। पहले जो मनुष्य कोई बड़ अधिकार वाला था, वह आज किसी कम्पनी का मैनेजिंग डायरेक्टर दिखलाई देता है। कोई ट्राम्बे कंपनी का कार्यभारी है, तो कोई लोहे के कारखाने का मैनेजर है।

वर्तमान काल में अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा उच्च स्थिति पर पहुँचने की जर्मनों की इच्छा का मुख्य कारण अंग्रेज यह बतलाते हैं कि वहाँ के औद्योगिक धंधा करने वालों ने, और अन्य व्यापारियों ने जगत् का व्यापार अपने कब्जे में कर लिया है, परन्तु इस विषय पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने वाले देखेंगे कि जर्मनी के इस नवीन तेज का प्रभाव अन्य अनेक बातों पर भी पड़ा है, इसके चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं।

शरीर में जोश होना ही सच्चा पुरुषार्थ है, यह विचार जर्मनों में विशेष मान्य होता जाता है, यह भी उन चिन्हों में से एक चिन्ह है। गई शताब्दि के उत्तरार्ध के आरम्भ में प्रशिया ने तीन युद्धों में विजय प्राप्त की उसका यह परिणाम है।

आधिभौतिक सामर्थ्य का इतना पूजन करने से, सरकार की सत्ता भी बढ़ने लगी है, इसलिये हर एक बात में प्रजा को सरकार के सामने जाना पड़ता है। सरकार पर जितना अधिक आधार है, उतनी ही सरकार की सत्ता की भी वृद्धि होती जाती है। इसका दृष्टान्त यदि किसी को देखना हो, तो उसे जर्मनी की प्रचण्ड सैन्य के प्रति नजर डालनी चाहिए। सर्वत्र यही बात प्रसिद्ध है कि जर्मन सैन्य ही जर्मन राष्ट्र है। अजित स्थल सेना को दरियाई बल देना चाहिए, ऐसी पुकार जो हर जगह सुनाई देती है, उसका मूल जर्मनी की सामर्थ्य बढ़ाने की इच्छा में है। इतना लश्करी सामर्थ्य बढ़ाते हुए भी बहुत से जर्मन ग्रन्थकार यह प्रतिपादन करते हैं, कि हमारा राष्ट्र जितना शांतिप्रिय है, उतना कोई राष्ट्र नहीं, इसलिये अन्य राष्ट्रों को लेशमात्र भी भय रखने का कारण नहीं! राज्य में प्रचण्ड सैन्य होनी चाहिए इसी इच्छा से हमने यह बढ़ाया है, वह कुछ अन्य राष्ट्रों के साथ उपयोग करने के हेतु से नहीं है, इस प्रकार के विचार इन ग्रन्थकारों ने अपनी पुस्तकों में भरे हैं।

जर्मनी ने शिल्प में भी बहुत उन्नति की है। जर्मनी के उत्तर देश के शहरों को देखकर तो मन आश्चर्य-चकित हो जाता है। बर्लिन के हाल में बने हुए पुलों, अन्य सरकारी इमारतों, अथवा गिर्जाघरों की बनावट कितनी विशाल है? इन मकानों की विशालता को देखकर उनके मालिकों की श्रीमताई लक्ष में आती है।

जर्मन राष्ट्र की उन्नति सर्वांग हुई है और भविष्य में इससे भी अधिक होगी इसमें कोई सन्देह नहीं। जगत् के अधिकांश भाग पर सत्ता स्थापित करने की इच्छा उनके हृदय में उत्पन्न हुई है, व्यापारादि में वह अन्य प्रजाओं से आगे बढ़े हैं, अन्य राष्ट्र सिर न उठावें, इस इच्छा से सैनिक बल बढ़ाने का उन्होंने अति प्रयत्न किया है और समुद्र पर अपनी सर्वोपरि सत्ता हो, इस उद्देश्य से समुद्र की तरफ आशा पूर्वक दृष्टि किये बैठे हैं, यह सब सर्वांग सुधार के लक्षण नहीं हैं, ऐसा कौन कह सकता है। आधुनिक जर्मनी को गौरवोन्माद की हवा लग गई है और उसकी धुन में वह अन्य राष्ट्रों का उत्कर्ष सहन नहीं कर सकता। परोत्कर्षा आधुनिक जर्मनी का मुख्य सूत्र है।

शारीरिक और भौतिक सामर्थ्य जर्मनों के पास है, परन्तु इसके साथ लोगों के मन को विशेष सुसंस्कृत बनाने का अथवा उनकी नीति और बुद्धि को विकसित करने का सामर्थ्य जितना उस देश में होना चाहिए, उतना नहीं है। यह दोनों प्रकार के सामर्थ्य एक स्वरूप नहीं हैं। शारीरिक सामर्थ्य को जब तक बुद्धि-सामर्थ्य का सहारा नहीं मिलता, वह अधिक समय तक नहीं टिक सकता। अब भविष्य में शारीरिक उन्नति के साथ-साथ मानसिक उन्नति करने में वह प्रयत्न करेंगे अथवा नहीं, यह कालान्तर में निश्चय होगा।

पंच महाभूतों पर, सामर्थ्य पर, स्वसत्ता प्राप्त करने का सामर्थ्य जितना जर्मनों में है, उतना अन्य किसी में नहीं। उनके कार्य करने की प्रणाली आदर्श है। जर्मनी का तैयार किया हुआ यंत्र साहित्य सर्वोत्कृष्ट होता है। इतना ही नहीं, परन्तु उससे जो काम होता है, वह उत्तम प्रकार का होता है, यह निर्विवाद है। जर्मनी के स्कूलों और कॉलेजों से महान् पंडित निकलते हैं, औद्योगिक पाठशालाओं से यान्त्रिक, ज्ञान प्राप्त किये हुए और यन्त्रों को चलाने वाले मनुष्य तैयार होते हैं, परन्तु विद्यार्थियों में कोई सद्गुण उत्पन्न करने में इन विद्यालयों का बिलकुल उपयोग नहीं होता। वहाँ ऐसे बहुत से सुशिक्षित मनुष्य हैं, जो कहते हैं कि इस त्रुटि के लिये देश की प्रचलित राज्य व्यवस्था ही जवाबदेह है। उनके हाथ में सत्ता न होने से स्वस्थान पर ही गड़गड़ाहट कर चुप बैठ जाने के सिवाय वह कुछ नहीं कर सकते।

जर्मनी में बहुत से अनुकरणीय गुण हैं, परन्तु उनसे एक मोटी भूल हुई है। इसका कारण यह है कि वे अपने पूर्व के राष्ट्रीय आदर्शों को तिलाञ्जलि देकर, ऐहिक संपत्ति के पीछे पड़े हैं। ऐहिक संपत्ति का पूजन कभी न कभी अवश्य कम होगा और सात्विक वृत्ति का उदय होकर राजसी वृत्ति का नाश होगा। कितने ही वर्ष पीछे यह सुपरिणाम होने की प्रबल आशा है। जर्मन-राष्ट्र अभी सुधार की दृष्टि से बाल्यावस्था में है। जब बाल्यावस्था की उच्छृंखलता नष्ट होगी और बुद्धि को स्थिरता मिलेगी और जब पूर्ण और गंभीर विचार करने का सामर्थ्य उनमें होगा, उस समय जर्मनी सर्व प्रकार से आदर्श राष्ट्र बनेगा, यह आशा रखना अनुपयुक्त नहीं।

उद्योगानुसार जर्मनी के तीन विभाग

'जर्मनी'—इस एक शब्द में २६ विभिन्न प्रान्तों का समावेश है और इन प्रान्तों में विभिन्न लोग रहते हैं। इन प्रान्तों में भूगोल की दृष्टि से बड़ा अन्तर है। उनका राजकीय इतिहास भिन्न भिन्न स्वरूप का है, और उनका रहन सहन तथा ज्ञान सम्पादन करने का मार्ग भी भिन्न भिन्न प्रकार का है।

अपने विचार के अनुसार हम जर्मनी के तीन भाग करते हैं, लॉरेन बेडन, बवेरिया और सॉक्सेन। इन प्रान्तों की सरहद से पश्चिम की तरफ एक रेखा खींचो। इस रेखा से जर्मनी के—उत्तर जर्मनी और दक्षिण जर्मनी—दो भाग हो जाते हैं। फ्रांस और बेलजियम के निकट राइन प्रान्त से पूर्व की तरफ रशियन पोलैंड की सरहद तक सब प्रशिया प्रान्त है। इसके सिवाय मक्लेम्बर्ग, ओल्डेनबर्ग, और ब्रन्सविक, इतना प्रदेश उत्तर जर्मनी में आता है। आल्सास, लॉरेन और सॉक्सेन के तीनों राज्य, बेवेरिया, व्यूर्टेम्बर्ग और ग्रेंडडची आफ बेडन इतना प्रदेश दक्षिण जर्मनी में आता है।

(क्रमशः)

दुर्दशाग्रस्त बिहार : एक करुण दृश्य !

लेखक—श्रीयुत अमरनाथ, बी० ए०

काशी सेवा समिति की आज्ञा से एक दल भूकम्प पीड़ितों के सहायतार्थ २४ जनवरी १९३४ को मुजफ्फरपुर के लिये रवाना हुआ। समिति का आदेश था कि मुजफ्फरपुर सेंट्रल रिलीफ कमेटी से परामर्श करके कार्य क्षेत्र निश्चय किया जाय। दल के साथ साथ कम्पाउन्डर मय सब सामान के व करीब २८ गाँठ हर प्रकार के कपड़े, जिनमें अच्छी अवस्था के पुराने कपड़े जो दान में मिले थे, वे भी थे व करीब १६००) नकद था।

सीधी लाइन खराब होने के कारण भटनी सोनपुर होकर आना पड़ा। २६ तारीख को सुबह ७ बजे दल मुजफ्फरपुर पहुँच गया। रास्ते में रेल वालों ने अत्यन्त सहानुभूति दिखाई और कुल माल बिना कोई महसूल के पहुँच गया। कुल्ल भाइयों ने हर जगह माल उठाकर रख दिया और कुछ भी पैसे नहीं लिये, जो सराहनीय कार्य है। रेल कर्मचारी देशी अथवा विदेशी हर जगह 'G od Luck' देते गये। रास्ते में सब स्टेशन वीरान पड़े थे और जो कोई भी उस तरफ का मिलता था, बड़ा ही हृदय विदारक हाल कहता था।

कुछ सामान स्टेशन पर छोड़कर कम्पनी बाग जिसमें सब रिलीफ समिति के डेरे पड़े थे, पहुँचे। वहाँ सबने यही कहा कि सीतामढ़ी जाने के लिये कोई तैयार नहीं हो रहा है, सब यहीं काम करना चाहते हैं। हम लोगों ने बिना कुछ विचार किये कूँच बोल दी। वे लोग भी इस फक्कड़ पार्टी से बड़े प्रसन्न हुए। करीब २३ घंटे बैलगाड़ी, एक्का वगैरह ठीक करने में लगे। इसी बीच में मुजफ्फरपुर की दुर्दशा देखी। शहर खंडहर हो गया है। लाशें निकल रही हैं। कूएँ भठ गये हैं। जल का ठिकाना नहीं है। शीत अलग मार रही है, पर शाबाश बिहारी भाइयों को, इस खंड प्रलय में भी जो बचे हैं, उनके चेहरे दृढ़ हैं। खैर, हम लोग करीब १२ बजे चल पड़े। ३७ मील रास्ता तै करना था। मालूम था कि रास्ते में जलकष्ट है, कोई छाया नहीं है, पुल टूट गया है, पृथ्वी जलमय व बालूमय हो गई है, सड़क धँस गई है या उठ गई है। धर्मपुर ९ मील तक दोनों तरफ बालूमय व जलमय नजारा देखते हुए, तै किया। बाद उसके पुल ३ मील तक टूट गये हैं। नाव पर, बैल गाड़ी पर से असबाब लादते हलते-डोलते किसी तरह रामपुर हरीगाँव जो १२ मील पर है, रात को ९ बजे तक पहुँचे। वसुन्धरा के पवित्र वक्षस्थल पर नील आकाश के नीचे भगवान के भरोसे डेरा डाल दिया। सबेरा भी हो गया। वहाँ प्रात काल २६ तारीख को एक लारी मिली। पैदल, बैलगाड़ी पर, लारी पर महा भयानक दृश्य देखते हुए करीब ५ बजे सायंकाल सीतामढ़ी पहुँचे। लखनदेई के उस पार शहर है। पुल नदी में विराजमान है। किसी तरह बाँस बाँध कर आने जाने का रास्ता हुआ है। नदी भठ कर ऊपर तक आ गई है। रेल का पुल भी वहीं शोभा दे रहा है। लाइनें उखड़ गई हैं। वहाँ के S D O. बँगले के हाते में पहली रात मड़ई व पेड़ के नीचे बिताई। ओस बड़ी जबरदस्त पड़ती है। पेड़ के नीचे रात को सियार बोलते हुए मुँह तक आ गये। उन्होंने समझा मुरदे हैं। वस्तुत श्मशान है। सीतामढ़ी के करीब २००० मकान गिर गये। चारो ओर खंडहर है। राजा व रंक फूस की मड़ई में फटे पुराने टाट के नीचे पड़े हैं। सारी धरती धँस गई है और नित्य हलके धक्के लगते हैं। भग्नावस्था में देश भाइयों को इस कठिन तुषार में देखकर कौन ऐसा पाषाण हृदय है, जो रो न देगा। हम बड़े अभागे हैं। हे भगवान् हमने क्या पाप किया है कि यह यन्त्रणा दे रहे हो। क्यों नहीं महा प्रलय कर देते, जिससे कोई किसी के लिये रोने वाला न रह जाय। घर गया, जन गए, सर गया, सामान गया, गाय गई गोरू गये, जो बच गये उनके पास न पहनने का कपड़ा है, न रहने को स्थान है, न खाने का सामान है और न पीने को पानी है। खंड प्रलय है, इसीलिए और दुःख है। अस्तु और क्या लिखें। लेखनी रुकती है। शरीर की एक-एक तन्त्री रोती है। यह समय तो ऐसा है कि सब कुछ होम कर देना चाहिए। श्री राहुल सांकृत्यायन एक दिन पहले पहुँच गये थे। उनसे मिले। सीतामढ़ी टाउन व थाने में काम करने की ठहरी। उन्होंने जो सूची बनाई थी हमको देदी और नित्य मदद करते थे। शहर में करीब १४ सभ्य कुटुम्बों को जो इज्जतवश घर में फाँके कर रहे थे, चुन चुन कर मदद पहुँचाई। इनमें एकाध कुटुम्ब तो कई रोज से फाँके कर रहे थे और हमारे बार बार कहने पर भी इनकार करते थे। बड़ी मुश्किल से उन्होंने सहायता स्वीकार की। उनकी कपड़े तथा धन से हमने यथाशक्ति सहायता की, उनके नाम धाम सीतामढ़ी की शाखा के पास हैं। करीब ३० कुटुम्बों को हम नित्य भोजन की सहायता करते थे और दवा दारू की सहायता हमने कस्बे में करीब ५० कुटुम्बों की की। वस्त्र की सहायता तो हमने कस्बे में प्राय १००० व्यक्तियों की की है। घर बनवाने के लिए लगभग ५० व्यक्तियों को सामान दिया है।

गाँवों में हमने हर प्रकार की सहायता पहुँचाई। १ भवदेपुर, २ राजा पट्टी, ३ पीपरारी, ४ कपरौलीपुर, ५ कुआरी, ६ रजीतपुर (१४ टोले सब दूर दूर काफी बड़े हैं) २१ शिवहर, २२ विकसल, २३ सैदपुर, २४ हरिरामपुर, २५ खनवा, २६ धरमपुर आदि गाँवों में हमने कपड़े इस प्रकार बाँटे हैं कि शायद ही कोई गरीब व्यक्ति छूटा होगा। विशेषकर रजीतपुर के तमाम टोलों में तो ९० फी सदी व्यक्ति नये कपड़े पा गये होंगे। इसी गाँव में हमने ४५ व्यक्तियों को घर बनवाने को धन से सहायता की है। अन्य गाँवों में भी हमने झोपड़ी बनवाने के लिये रुपये बाँटे हैं। दवा आदि की भी सहायता दी है। इसका विस्तृत विवरण नाम धाम के साथ सीतामढ़ी की शाखा को दे चुके हैं। सब मिला कर हमने कपड़े की सहायता गावों में ४००० व्यक्तियों की की होगी तथा झोपड़ी बनवाने के लिये लगभग २५० आदमियों को रुपये दिये हैं।

शहर तथा गावों को मिलाकर लगभग हमने ५००० व्यक्तियों की यथाशक्ति सहायता की है, जो प्रायः नगण्य है। वहाँ लगातार सब्यठित कार्य की अत्यन्त आवश्यकता है, जिसकी अभी तक तो कमी है।

अस्तु २ फरवरी तक कार्य करके ३ ता० को दोपहर को काशी पहुँचे। मन बिल्कुल थक गया। ऐसी भीषण दुर्दशा अपनी जिन्दगी में कभी नहीं देखी, सो ऐसे समय तो केवल यही मुँह से निकलता है कि जिसने यह दुःख दिया है, वही इसे निवारण करेगा। हम लोग तो निमित्त मात्र हैं। सर जानते हैं दीनानाथ ! दीनों पर दया करो।

न डरें

हम पुलिस से न डरें। पर पुलिस का सम्मान करें। पुलिस व्यवस्था के लिये है, डराने के लिये नहीं। जो पुलिस की व्यवस्था का सम्मान करता है, उसे डर होता ही नहीं। जो व्यवस्था को तोड़ता है, उसी को डरना पड़ता है।

हम शिक्षक से न डरें। शिक्षक का सम्मान करें। शिक्षक सिखाने के लिये है, सजा करने के लिये नहीं। जो पढ़ना चाहता है उसे सजा का डर नहीं होता। जिसे पढ़ना नहीं है, उसी को शिक्षक भयावना होगा।

हम राजा से न डरें। राजा का सम्मान करें। राजा राज्य चलाने के लिये है। दण्ड देने के लिये नहीं। जो अच्छे राज्य का सम्मान करता है, उसके लिये दण्ड होता ही नहीं। जो राम राज्य का द्रोह करता है, वह दण्ड का पात्र है।

हम धर्माचार्य से न डरें। हम उसका आदर करें। आचार्य आचार सिखाने के लिये हैं। दम्भ फैलाने को नहीं। जो सदाचारी है, उसके सामने आचार्य का दम्भ टिकता नहीं।

हम परमेश्वर से भी न डरें। परमेश्वर की हम पूजा करें। परमेश्वर प्रेम करने के लिये है। नरक में डालने के लिये नहीं। जो प्रभु की इच्छा के अनुसार चलता है, वह नरक से निर्भय है।

हम पुलिस से, शिक्षक से, आचार्य से, या परमेश्वर से न डरें। बल्कि अपने अन्दर व्यवस्था, अभ्यास सदाचार, और प्रेम पैदा करें।

लेखक—आचार्य गिरजाशंकर बधेका, बी० ए०, एल-एल० बी०

अनुवादक—काशीनाथ त्रिवेदी, बी० ए०

स्पृश्यास्पृश्य तथा देव - दर्शन - मीमांसा

लेखक—स्वामी रामचरणशरण

संसार परिवर्तनशील है। इस विचित्र जगत् में, परमदेव परमात्मा के अतिरिक्त, किसी के अस्तित्व की अक्षुण्ण स्थिति सदैव न रह सकी और न रह सकती है। यही बात, प्रकृति की नैसर्गिक प्रगति इस संसार की महत्ता, परिवर्तन शीलता तथा विचित्रता आदि गुणों की परिचायिका है। इस सब भूमि—शिरोभूषा—भारत भूमि पर बड़े बड़े राजा महाराजा, सार्वभौम-सम्राट्, आचार्य, चक्रवर्ति, ऋषि-महर्षि योगी मुनि अपने आपको 'जगदीश्वर' वा 'सर्वेश्वर' कहने कहाने वाले दम्भी दैत्य तथा समस्त संसार का एकमात्र प्रभुत्वाभिमान रखनेवाले दुष्ट दानव एवं देव द्रोही राक्षस आ आ कर चले गये। अपने अपने समय का कला-कौशल दिखा दिखा कर एवं संसार की परिवर्तन शीलता का परिचय दे दे कर, इस विशाल नाट्य शाला से चलते बने। न कोई चिरजीवि हो सका न किसी की हस्ती चिरस्थायिनी हो सकी और न किसी का चक्रवर्ति राज्य या साम्राज्य ही सदा सर्वदा के लिये स्थिर रह सका न रह सकता है। यही तो इस संसार का नैसर्गिक अटल नियम है। इसी के साक्षी स्वरूप अन्यान्य देशों के अतिरिक्त सर्वभूमि शिरोभूषण भव्य भारत के भूतकालिक ऐतिहासिक ग्रन्थागार भरे पड़े हैं।

उन्हीं भारतीय प्राचीन इतिहासों से यह भी परिज्ञात होता है कि—भारतवर्षीय सुरम्य भूतल पर भ्रमण करने वाली प्रजाओं में प्रथम से ही दल बन्दियाँ होती चली आ रही हैं। एक दल दूसरे दल को अपने पैरों तले सर्वांश में कुचल डालने की यथेष्ट कुचेष्टायें करता रहा है। एक विवेक विहीन उद्दण्ड दल, दूसरे दल को पद दलित करने की दुर्भावना के साथ नितान्त निन्दनीय तन-तोड़ प्रयत्न करता आया है। एक सबल समुदाय नश्वर निरंकुशता के साथ दीन और निर्बल समुदाय के ऊपर अपना दानवशाही राज्य जमाने के लिये घृणित-से घृणित क्रूर व्यवहार करता चला आया है। एक निर्बल दल पर सबल समुदाय का जैसा दृष्टि कोण रहा करता है ठीक तदनुरूप, निर्बल और सबल दोनों दलों की दशा होती आ रही है। उन दोनों दलों में से एक का 'देव-दल' और दूसरे का दानव दल' किंवा राक्षस-समुदाय' ऐसा नामकरण प्राचीन ऐतिहासिकों ने किया है। देव दल स्वभावतः सदा से ही शान्त दान्त, सुशील तथा तपस्वी रहने के कारण कृश काय होता आया है और दैत्य दल ठीक उसके विपरीत अर्थात् दुष्ट, दुःशील, कपटी छली, अहंकारी, क्रूर, कामी, क्रोधी लोभी, मदान्ध, मोहान्ध, धनान्ध और प्रबल होता आया है समयानुसार दुर्बल देव-दल की रक्षा सबपोषी सर्वेशरण सर्वान्तर्यामी, विराट् ब्रह्माण्ड के एकमात्र नियन्ता, सर्वेश्वरापर पर्याय श्रीराम—'श्रीकृष्ण' आदि वपु धर भगवान किया करते हैं। जब जब आद्य सत्य सनातन विशुद्ध वैदिक धर्म रवि कलुषितान्त करण वाले विधर्मी स्वार्थियों की स्वार्थान्धता के गहनान्धकार से छिप जाता, विधर्मी वावदूकों एवं धर्म द्रोही दुर्जनों के द्वारा अधम वृद्धि होने के कारण धर्म प्राण सज्जन, प्रजा का भाग्याकाश सर्वथा अनिष्टान्धकाराच्छन्न हो जाता है अधम अभिमानी असुरों द्वारा धर्म की क्षति तथा अधर्म की भारी भयंकर अभिवृद्धि हो जाती है, तब-तब दुर्जन-दानव विनाशार्थ सज्जन सुर-संरक्षणार्थ तथा कुमार्ग गत प्रजा वर्ग के सन्मार्ग सदर्शनार्थ ही तो काष्ठ में अग्नि, तिलों में तैल तथा दुग्ध में घृत की भाँति व्यापक एवं निराकार रहते हुए भी अनन्य नैष्ठिक भक्तों के भक्ति-भाव से भरित, आकर्षण से आकर्षित होकर, अनन्त कल्याण गुणाकर करुणा वरुणालय ईश्वर का इस धरा धाम पर साकाररूपेण आविर्भाव हुआ करता है। भुवन भावन भगवान ने स्वयं श्रीमुख से कहा है—

> 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्
> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
> धर्म-संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।

भक्त प्रवर श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने लिखा है—

> जब जब होय धर्म की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
> तब तब प्रभु धरि विविध-शरीरा। हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।'

आज पुनः भारत में विप्लव मचा हुआ है। निर्बल-सबल दल के बीच बुरी तरह युद्ध छिड़ा हुआ है। आज भी—पूर्ववत्—निर्बल समुदाय को पद दलित करने के लिए सबल दल की ओर से निर्निमेष क्रूरतापूर्ण कोशिशें हो रही हैं और इसी हेतु आज निर्बल दल की दयनीय दशा हो गई है इस अवस्था में एक ओर दाम्भिक बल का घमण्ड है और दूसरी ओर देवाधिदेव श्रीविष्णुदेव की कृपा कटाक्ष का बल है। द्रौपदी और गजराज की भाँति जिस दीन दुखी और असहाय जन का रक्षक कोई न हो उसकी रक्षा दयार्णव भगवान श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कौन कर सकता है?

अनेक वर्षों से जिस कराल कलि काल के कुञ्जर सम महोन्मत कुकलङ्क की कलुषित कालिमा से कलङ्कित होने के हेतु प्रायः भारतवर्षीय कला कौशल-सूर्य अस्ताचल को प्रगाढ़ प्रेमालिङ्गन करने की कामना से प्रस्थान कर चुका था और इसी हेतु भारत भाग्योद्यानीय सुन्दर सरोवर का प्रफुल्लित सौरभ सम्पन्न सरोज वन सम्पुटित हो गया था उसी कलङ्क कालिमा को धोने की कामना से आज भगीरथ से भावुकों द्वारा अत्यन्त तत्परता के साथ भगवती भागीरथी का पुनीत प्रवाह प्रवाहित किया जा रहा है और वह है भारत भूतल पर की केवल नाममात्र की जातीय अस्पृश्यता किंवा छूआ छूत भूत को सदा के लिए भस्मीभूत करने वाला द्रुत गति से किया जाने वाला आन्दोलन! निश्चय यह आन्दोलन उसी अनन्त कलाधारी सर्व कल्याणकारी क्रूर कंसादिहारी श्रीमाधव मुरारी की अनन्त विभूति धारिता और अनन्त शक्ति शालिता का चरु चमत्कार है!

यद्यपि भारतवर्षीयों (हिन्दुओं) के अन्दर कोई वर्ण 'अस्पृश्य' नहीं है और न कोई ऐसा आचार विचार प्रचलित ही है, जिसका सम्बन्ध व्यष्टि या समष्टि के स्वास्थ्य संरक्षण से न हो, तथापि एक सबल समूह ने दैवो दुर्बल घातक' के अनुसार निर्बल दल को कुचलने, पैरों तले रौंदने की कुकामना से अस्पृश्यता का महामूल मिथ्या-आतङ्क फैला रखा है। अपने जयचन्दी जाल में भोले भारतीयों को फँसाने के लिए तुमुल कोलाहल मचा रखा है। जिधर देखिए, उधर ही—

> 'कुचे कुचह दर नगरे मिकालू हैशे दवेऽ प्रकृतौ पिशाच।
> शास्त्र शिकोटा लिखने च कोठा सोंटा सुनो यच प किंतु सम्य॥

इस उक्ति के ढंग के ढोंगियों का मचाया हुआ जोरदार घोर घन भेदी हल्ला हो रहा है। सच पूछिए तो—

> नाऽकब्बरो वा न सिकन्दरो वा न बब्बरो वा न अ०रंगिरो वा।
> न वा हुमायूँ करते थे हल्ला यथा तथा य अधुना मचाते॥ अस्तु।

अस्पृश्यता और अछूत समस्या पर तो इतना हो हल्ला है। अब जरा दूसरी तरफ भी दृष्टिपात कीजिए। आज असंख्य-जन रेल और जहाज के द्वारा यात्रा करते हैं। इन्हीं—रेलगाड़ी और जहाज—में मध्य में बैठे हुओं के खाना पखाना, स्नान ध्यान आदि सारे कृत्य होते हैं। हलवा पूड़ी आदि पदार्थों का आस्वादन और निगलन वहीं निस्संकोच किया जाता है। यदि उस समय यवन ईसाई आदि बन्धुओं के स्कन्ध से स्कन्ध मिला भी रहे, तो यह बात दर गुजर करने योग्य हो जाती है। रेल गाड़ी थोड़ी देर स्टेशन पर खड़ी होती है, प्लेटफार्म पर के नल के पास प्रत्येक जाति के यात्री अपने अपने लोटे गिलास और यवनी बधने (मिट्टी के लोटे) लिए जरा भी धैर्य से खड़े नहीं रहते—प्रत्युत् नले के तले त्वरा से जल लेने के अर्थ उन हिन्दुओ यवनों और ईसाइयों के जल पात्रों (मिट्टी के बधनों और लोटे गिलासों) का धड़ाधड़ द्वन्द्व-सम्मेलन कराने लगते हैं। उन पात्रों में भोजनोपरान्त के उच्छिष्ट और उत्सर्ग (पाखाना गए हुए) के अस्पृश्य पात्र भी होते हैं। यदि दो पंक्तियों में मैं यह और बता दूँ तो कुछ अपराध नहीं है कि यवन लोग जिस लोटे आदि पात्र से पाखाना जा कर, गुद प्रक्षालन करते हैं, उसको बाद में वे माँजने के आदी नहीं हैं।' नल के तले भी हिन्दू जनों के लोटों से यवनों का भड़ाभड़ टकराने वाला लोटा उसी प्रकार का होता है। सब कुछ देखते हैं, सब कुछ समझते हैं, परन्तु ऐसा करनेवालों को कोई पण्डित पुङ्गव प्रायश्चित्त करने को विवश नहीं करता। मोटर लॉरी, ट्राम और अन्य किराए की गाड़ियों पर सभी वर्ण के लोग बाँह से बाँह मिला कर बैठते हैं, परन्तु उसका प्रायश्चित्त करने का किसी को स्मरण नहीं आता और न कोई अपने आप को अपवित्र ही मानता है। (क्रमशः)

बेकारी का प्रसार

लेखक—श्रीयुत यज्ञदत्त शुक्ल, बी० ए०

यों तो कुछ-न-कुछ बेकारी संसार में सदैव रहती है। सब लोग काम-काजी नहीं हो सकते। मानव-समाज का कुछ अंश आलसी अयोग्य या उद्यमहीन रहता ही है। कर्मण्यता और अकर्मण्यता का युग्म है। एक जमाना था, जब प्राय: कुटुम्ब में एक कमाने वाला होता था और वही सारे कुटुम्ब का पालन-पोषण करता था, परन्तु अब वह बात नहीं है। अब तो प्रत्येक व्यक्ति के सामने जीविका का भयंकर प्रश्न उपस्थित होता है। यदि सौभाग्य से कोई मनुष्य नौकरी-चाकरी या रोजगार में लगा हुआ है, तो उसे अपने लड़कों को किसी उद्योग में लगाने की फ़िक्र रहती है। वास्तव में यह प्रश्न जीवन-मरण का प्रश्न है। बेकारी की ध्वनि चारों तरफ़ सुनाई पड़ती है, किन्तु उसे दूर करने का क्या इलाज हो रहा है? क्या कारण है कि भिन्न-भिन्न देशों में न्यूनाधिक मात्रा में बेकारी का बोझा दिन प्रति दिन भारी होता जा रहा है?

गत महायुद्ध के पहले उतनी बेकारी नहीं थी, जितनी उसके पश्चात् हुई। ग्रेट ब्रिटेन आदि कुछ यूरोपीय देशों में सन् १८५० और १९१४ के बीच में, बेकारों की संख्या सुख-समृद्धि के समय में २ प्रतिशत, और आर्थिक संकट-काल में अधिक-से-अधिक १२ प्रतिशत हो जाया करती थी। २ प्रतिशत या उससे कुछ अधिक काम न करने वालों की संख्या का होना चिन्ता-जनक नहीं था। परन्तु, जब किसी देश में यह संख्या ५ प्रतिशत के ऊपर बराबर रहने लगे, तो स्थिति अवश्य शोचनीय हो जाती है, और तभी उसके दूरी-करण के उपाय ढूँढे जाते हैं।

राष्ट्र संघ से प्रकाशित रिपोर्टों के अनुसार, जनवरी १९३२ में, १ करोड़ ३० लाख जन उन देशों में बेकार थे, जिनके अंक सुविधानुसार प्राप्त हो सके थे। इनमें से ६० लाख से अधिक जर्मनी में थे, ३० लाख के करीब ग्रेट ब्रिटेन में, और १० लाख से अधिक इटली में थे। संयुक्त प्रदेश (अमेरिका) के अंक तो इसमें शामिल ही नहीं हैं। वहाँ ८० लाख से लेकर १ करोड़ और उससे भी अधिक लोग बेकार हो गए थे। उपर्युक्त गणना बिलकुल ठीक न समझनी चाहिए, क्योंकि बहुत से अंक अधूरी जाँच-पड़ताल के आधार पर केवल अनुमान कर लिये गये हैं। कुछ भी हो, इस हिसाब से यह पता लगता था कि १९३२ के प्रारम्भ में यूरोप और अमेरिका के बेकारों की संख्या तीन वर्ष पहले के अंकों के योग से भी चौगुनी हो गई थी।

इन अंकों में इतना बड़ा अन्तर हो जाना कोई साधारण घटना नहीं थी। महायुद्ध के पश्चात् १९१९ और १९२० में बड़ी चहल-पहल थी। व्यापार भी खूब चला। समस्त राष्ट्र अपनी आर्थिक कमी की पूर्ति करने में लग गये, क्योंकि युद्ध में असंख्य धन और जन का नाश हो गया था। युद्ध में नष्ट हुए यन्त्रों और कार्यालयों के स्थान में नवीन यन्त्रों और कार्यालयों का निर्माण होने लगा था। चीजों की माँग भी खूब हो रही थी। जिधर देखो उधर काम-ही-काम था, किन्तु क्रियाशीलता का यह जमाना शीघ्र ही समाप्त हो गया। बात यह हुई कि माँगने वाले माँगते तो थे, परन्तु उनके पास दाम नहीं थे। उधर कारखानों में काफ़ी से अधिक चीजें बन गई थीं। परिणामतः उन चीजों की कीमतें गिर गईं और मन्दी का समय आ गया। १९२४ में गिरे हुए देश फिर उठ कर खड़े होने का उपक्रम करने लगे। नवीन यन्त्रों का निर्माण अधिक जोरों से जारी हो गया। नई-नई तरकीबें भिड़ाई गईं, जिनसे माल अधिक पैदा होने लगा और काम करने वाले मजदूरों की संख्या भी घट गई। सारांश यह कि मशीन का पूर्ण आधिपत्य हो गया। जर्मनी अपनी पूर्व शक्ति को प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। यही नहीं, बल्कि यूरोप के अन्य देश और अमेरिका भी मशीनों द्वारा नवीन उत्पादन कार्य में संलग्न हो गये। फलतः अगणित मजदूर बेकार हो गये, कृषकों में कार्यालयों की बनी हुई चीजों के खरीदने की शक्ति नहीं रही, और वैज्ञानिक ढंग से कृषि करने के कारण करोड़ों मन नाज का ढेर लग गया। विनिमय के सुवर्ण माध्यम को बनाये रखने में ग्रेटब्रिटेन को बड़ी कठिनाइयाँ मालूम पड़ने लगीं, क्योंकि संसार की आर्थिक स्थिति युद्ध के बाद बिलकुल बदल गई। जब अमेरिका (संयुक्त प्रदेश) ऐसे धन-संपन्न और असीम आशा-वादी देश में भी व्यवसायिक क्षेत्र में अकस्मात् उलट-फेर हो गया तो और देशों की गिनती ही क्या। सन् १९२९ के अन्त में अमेरिका पर आर्थिक वज्रपात हुआ, बैंकों की दशा बिगड़ गई, चीजों का मूल्य गिर गया, मनुष्य बेकार हो गये, और १९३० के मध्य में वह समृद्धि शाली देश घोर मन्दी के गड्ढे में गिर पड़ा। इसका परिणाम सारे संसार पर पड़ा। विश्वव्यापी हाहाकार मच गया। यूरोपीय देश अपनी-अपनी खैर मनाने लगे। व्यापार की रक्षा के लिये आयात वस्तुओं पर कर वृद्धि शुरू हो गई। मिलों और कारखानों का बना हुआ माल, आवश्यकता से अधिक होने के कारण, व्यर्थ जमा होने लगा।

जैसा अन्यत्र कहा जा चुका है, यन्त्रों का आधिक्य होने से हाथ से काम करने वाले श्रमिकों की संख्या बहुत घटा दी गई। नये-नये यन्त्रों की तेजी के साथ जो काम नहीं कर सकता था, वह निकाल दिया गया, इस प्रकार की नवनिर्मित मशीनों का प्रयोग करने के लिये नवयुवकों की ही माँग होने लगी। चालीस वर्ष से ऊपर की अवस्था का मनुष्य कार्यालयों में काम करने में असमर्थ पाया गया, क्योंकि वह नई मशीनों का साथ नहीं दे सकता था। उदाहरणार्थ, फोर्ड साहब के मोटर सम्बन्धी कारखानों में साधारण मजदूर काम नहीं कर सकता था। उसको बहुत परिश्रम करना पड़ता है, क्योंकि यदि वह मशीन की निर्माण शक्ति का पूर्णतया प्रयोग नहीं कर सकता, तो सब काम बिगड़ जाता है। इसीलिये फोर्ड साहब कुछ अधिक मजदूरी देकर बलवान और योग्य व्यक्तियों से काम लेते हैं, परन्तु वास्तव में उनके कारखाने में काम करने वाले व्यक्ति पर शारीरिक परिश्रम का इतना भार पड़ता है कि उसके सामने मजदूरी में जो कुछ भी वृद्धि की जाती है, वह प्रायः नगण्य होती है। जब तक उस मजदूर में काम करने की यथेष्ट शक्ति रहती है, तब तक तो वह बेचारा किसी तरह काम करता रहता है; किन्तु जहाँ वह पुराना और वृद्ध हो चला, वहाँ उसे बेकारी की समस्या सताने लगती है। इस प्रकार के वृद्धों की संख्या जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन में बहुत है और वहाँ की सरकारों ने उनके पोषण का भरसक प्रयत्न किया है। वृद्धों की बेकारी का तो हाल यह है। नवयुवकों में से उनकी संख्या अधिक रहती है, जिनको कोई मुस्तकिल काम नहीं मिलता। एक काम के समाप्त होते ही दूसरे की चिन्ता उन्हें हो जाती है। वे बराबर जीवन पर्यन्त काम की खोज में रहा करते हैं। एक जगह से दूसरी जगह मारे-मारे फिरते हैं। इनकी दशा बिलकुल ढुलकते हुए रोड़ों के सदृश है, जो कहीं स्थिर रूप से नहीं टिक सकते। सच पूछिये तो इनका जीवन अनिश्चित और नीरस हो जाता है। इधर व्यावसायिक प्रतिद्वंद्विता के कारण सभी देशों ने मजदूरी घटाने का भारी प्रयास किया और पूँजीपतियों तथा कार्यालयों के स्वामियों की प्रवृत्ति लड़कों को नौकर रखने की ओर अधिक हो गई, क्योंकि उनको मजदूरी कम देना पड़ती है, परन्तु जब वे पूर्णतया युवा हो जाते हैं, तब वे छुड़ा दिये जाते हैं और इतने दिनों में वे जो कुछ सीखते हैं वह सब मिट्टी हो जाता है।

सौभाग्य से, इन बेकारों के पोषण का प्रबन्ध यूरोपीय देशों की सरकारें अधिकतर करती हैं। इसके अतिरिक्त बेकारी दूर करने के लिए वहाँ लोकोपयोगी संस्थायें हैं। अनेक बीमा-कम्पनियाँ हैं, जो विशेषतया बेकारी के सम्बन्ध में काम किया करती हैं। इन कम्पनियों की पूँजी का भार मिलों के स्वामी और काम में लगे हुए मजदूरों पर रहता है, जो अपने बेकार देश-भाइयों की ओर सहानुभूति और दया का हाथ बढ़ाते हैं। क्या इस प्रकार की योजनाएँ भारतवर्ष में भी सम्भव हैं? भारत की स्थिति उन देशों से सर्वथा भिन्न है और यहाँ के बेकार भी दूसरे प्रकार के हैं क्योंकि पाश्चात्य ढंग के यंत्रालयों का प्रचार इस देश में अभी अच्छी तरह नहीं हो पाया, अतएव हम संसार के उन देशों का जिक्र कर रहे हैं, जिनको आधुनिक सभ्यता की चाट लगी हुई है।

(क्रमशः)

रंगभूमि की सूक्तियाँ

(द्वितीय भाग)

लेखक—श्रीयुत ब्रजबिहारीलाल गौड़

'कर्मचारी सब कुछ कर सकते हैं, पर भक्ति पर उनका वश नहीं होता।'

'सौंदर्य की सबसे मनोहर, सबसे मधुर छवि वह है, जब वह सजल शोक से आर्द्र होता है।'

'शोक की सीमा कंठावरोध है, पर शुष्क और दाह युक्त, आनन्द की सीमा भी कंठावरोध है, पर आर्द्र और शीतल।'

'शान्त विचार के लिये एकाग्रता उतनी ही आवश्यक है, जितनी ध्यान के लिये।'

'संगीत में कल्पना चित्रमय हो जाती है।'

'शोकाभिनय में भी बहुधा यथार्थ शोक की वेदना होने लगती है।'

'अश्रु-प्रवाह तर्क और शब्द योजना के लिये निकलने का कोई मार्ग नहीं छोड़ता'

'युवती का हृदय बालक के समान होता है। उस जिस बात के लिये मना करो, उसी तरफ लपकेगा।'

'प्रेम एक भावनागत विषय है, भावना ही से उसका पोषण होता है, भावना ही से वह जीवित रहता है। और भावना ही से लुप्त हो जाता है।'

'मन एक भीरु शत्रु है, जो सदैव पीठ के पीछे से वार करता है।'

'विचारोत्कर्ष ही सौंदर्य का वास्तविक शृंगार है।'

'निराशा में प्रतीक्षा अन्धे की लाठी है।'

'तोप के सामने खड़ा सिपाही भी बिच्छू को देखकर सशंक हो जाता है। जोखिम के समय पद-सम्मान का विचार नहीं रहता।'

'दुरावेश में सौजन्य का नाश हो जाता है।'

'जो प्राणी शक्ति का संचार होते ही उन्मत्त हो जाय, उसका अशक्त, दलित रहना ही अच्छा।'

'अधिकार पाते ही मनुष्य का रूपान्तर हो जाता है।'

'प्रेम की भाँति मान भी अनिच्छा ही से उत्पन्न होता है।'

'सौंदर्य-प्रतिमा मोहित नहीं करती, वशीभूत कर लेता है।'

'सम्मिलन प्रेम को सजग कर देता है।'

'प्रेम के विषय मे नारियाँ आदर्श और त्याग का विचार नहीं करतीं।'

'मनुष्य-मात्र को, जीव-मात्र को, प्रेम की लालसा रहती है। भोगलिप्सी प्राणियों में यह वासना का प्रकट रूप है, सरल हृदय, दीन प्राणियों में शान्ति-भोग का।'

'लोगों को किसी विषय पर बहुत दिनों तक आलोचना करते रहने की आदत नहीं होती।'

'कुतूहल का परिष्कृत रूप ही आदर है।'

'पर निंदा का मनुष्य की जिह्वा पर कभी इतना प्रभुत्व नहीं होता, जितना संयम पुरुषों के सम्मुख।'

'क्रोध के आवेश में अपनी नेकियाँ बहुत याद आती हैं।'

'युवती सुन्दरियों के प्रति उदारता का कोई महत्व नहीं रहता।'

'अमीरों के हाथ में अत्याचार का यन्त्र है।'

'आदर्शवादी सदैव आनन्द के स्वप्न ही देखा करता है, उसे आनन्द की प्राप्ति नहीं होती।'

'क्रोध अत्यन्त कठोर होता है। वह देखना चाहता है कि मेरा एक-एक वाक्य निशाने पर बैठता है या नहीं, वह मौन को सहन नहीं कर सकता।'

'बहुत सराहने से भी आदमी का मन बिगड़ जाता है।'

'प्रेम में प्रतिकार नहीं होता।'

'रिआयत राजनीति में पराजय का सूचक है।'

'उदासीनता बहुधा अपराध से भी भयंकर होती है।'

'मानव-स्वभाव अब भी वही है, जो सृष्टि के आदि में था।'

'हमारी पवित्र कामनाएँ, हमारी निर्मल सेवाएँ, हमारी शुभ कल्पनाएँ विपत्ति ही की भूमि में अंकुरित और पल्लवित होती हैं।'

'प्रेम जितना ही आदर्शवादी होता है, उतनाही क्षमाशील भी।'

'विश्वास विष से कम घातक नहीं होता।'

'पाप को क्षमा करना, पाप करना है।'

'जब तक जनता स्वयं अपनी रक्षा करना न सीखेगी, ईश्वर भी उसे अत्याचार से नहीं बचा सकता।'

'जब तक हमें मरना न आएगा, जीना भी न आएगा।'

'राजनीति भी संसार की उन महत्त्वपूर्ण वस्तुओं में है, जो विश्लेषण और विवेचन की आँच नहीं सह सकतीं।'

'सर्वोत्तम राजनीति राजनीति का अंत है।'

'परवशता और आज्ञाकारिता मे सीमाओं का अन्तर है।'

'उन्नत हृदयों में सौंदर्य उपासना-भाव को जाग्रत कर देता है, वासनाएँ विभ्रांत हो जाती हैं।'

'सत्य के मित्र कम होते हैं।'

'विशेषज्ञों में एक संकीर्णता होती है, जो उनकी दृष्टि को सीमित रखती है।'

'सहज बुद्धि अगर सूक्ष्मदर्शी नहीं होती, तो संकुचित भी नहीं होती।'

'जीवित राष्ट्र ही गुणियों का आदर करना जानते हैं।'

'कवि अपने अन्तर-तम भावों को व्यक्त नहीं कर सकता। वाणी में इतनी सामर्थ्य कहाँ।'

'ऐश्वर्य अपने को बड़ी मुश्किल से भूलता है।'

'जनता क्रोध में अपने को भूल जाती है, मौत पर हँसती है।'

'संयमशील पुरुष बड़ी मुश्किल से फिसलते हैं, मगर जब एक बार फिसल गए, तो किसी तरह नहीं सँभल सकते।'

'रुग्णावस्था में हमारा मन स्नेहापेक्षी हो जाता है।'

'निज शोक मर्मान्तक होता है, जाति शोक निराशाजनक।'

'जिस काम के लिए परदे की जरूरत है, चाहे उसका उद्देश्य कितना ही पवित्र क्यों न हो, वह अपमानजनक है।'

'प्रेम को विलास कल्पना ही से विशेष रुचि होती है, वह दुःख और दरिद्रता के स्वप्न नहीं देखता।'

'अन्याय पूर्ण शासन शासन नहीं, युद्ध है।'

'क्रोध में विचार-पट बन्द हो जाता है।'

'नीतिज्ञ के लिए अपना लक्ष्य ही सब कुछ है।'

'वीरों की मृत्यु पर आँसू नहीं बहाए जाते; उत्सव के राग गाए जाते हैं।'

'दिव्य मृत्यु दिव्य जीवन से कहीं उत्तम है।'

'दिव्य जीवन में कलुषित मृत्यु की शंका रहती है, दिव्य मृत्यु मे यह संशय कहाँ।'

'कोई जीवन दिव्य नहीं, जब तक उसका अन्त भी दिव्य न हो।'

'चित्त की शान्ति ही वास्तविक सौंदर्य है।'

'शिक्षा धूर्तों की भ्रष्टा है, प्रकृति सत्-पुरुषों की।'

'जिसका कोई नहीं होता, उसके सब होते हैं।'

'अपमान आग्नेय वस्तु है।'

श्री दादाजी के आदेश

लेखक—श्रीयुत सरयू पण्डा गौड़

श्री-श्री १०८ सर्व गुण गरिष्ठ सकल कल्याण कारी—
श्रीमान् सम्पादकजी महाराजाधिराज—!
श्री चरणे समीपेषु,
साष्टाङ्ग-दण्डौ !!

हजूर !

क्वचिद् आपने हमारे दादा गुरु, श्रीमान् महामहोपाध्याय, विद्या बहादुर, साहित्य-गज, शास्त्र-निष्णात् आदि के अनेकानेक सुन्दर, सुयोग्य उपाधियों से अलंकृत, सुसज्जित, महामहिम श्री मतिभ्रम शर्मा का शुभनाम न सुना होगा। आपकी विद्वता, सुज्ञता और सुयोग्यता, एवम् अध्ययन के विषय में यही कहना अलम् होगा कि आपने पढ़ते-पढ़ते अपना माथा खराब कर दिया, शरीर गला दिया, संसार को भुला दिया। इतना पढ़े पढ़े कि चन्द जाहिलों ने आपका नाम ही मतिभ्रम रख दिया, किन्तु परन्तु, वस्तुत: श्रीमान दादा गुरुजी मतिभ्रम थे—? इसका प्रमाण तो कोई देता नहीं। हाँ, मेरे ग्राम में, ग्राम के पाँच कोसी-छै कोसी में, उनके प्रबल पाण्डित्य के निस्बत हर खासो-आम में काफ़ी, हद से ज्यादा, शुहरत है, उनकी पण्डिताई की बड़ाई हर शख्स की जुबान पर आज भी नक़्श है। कहते हैं वीर और स्फूर्तिवान तो ऐसे थे, कि बस एक ही छलांग में ढ़ाई हाथ के ऊँचे-चौड़े टीले बेसाख्ता फाँद जाते थे। पाचन शक्ति का यह हाल था, कि डबल एक बाल्टी निछक्की दुधिया भंग एक ही साँस मे उदरस्थ कर लेते थे। पठन-पाठन की पारंगता इस डिग्री पर थी, कि बाबा शंठ नारायेण की कथा का पत्रा जहाँ हाथ में उठाये कि अथ से इति पर पहुँचना तो चन्द लेहजे की बात थी। दारोगा सप्त सती (दुर्गा सप्तसती) जैसी बीसियों मोटी पोथियों का पाठ घंटे में चार दफ़ा कर जाना उनके लिये उसी प्रकार आसान था, जैसे मक्खन की गोलियाँ गले के नीचे उतार जाना। उनकी घोर सुयोग्यता के विषय में विरोध करना व्यर्थ ही है, उनकी प्रशंसा में, गुणा-कीर्त्तन म, माधुरी, सुधा, चाँद के विशेषांकों से भी दुगुने-तिगुने-चौगुने और द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ से भी सात गुने मोटे-स्थूल अंक निकाले जा सकते हैं।

मैं आपको उनके कतिपय आदेश सुनाऊँ। यद्यपि मुझे इसकी अपनी कोई खास ख्वाहिश न थी, पर यह उन्हीं स्वर्गीय दादा श्री० की आज्ञा-पालन है।

एक दिन ज्येष्ठ में सन्ध्या समय जब कि स्निग्ध समीरण, सुरभित सुमनों की भीनी-भीनी सुरभि ले ले कर उदार दाता की तरह, कृपालु सहृदया नायिका की भाँति लोगों में वितरित कर रहा था, उस समय श्री० दादाजी ग्राम से दूर, बहुत दूर, एक घनी रसाल वाटिका में हरी-भरी दूब पर गमछा बिछाये, आसन जमाये बैठे थे, उनके सम्मुख थी उनकी जीवन-संगिनी परम सौख्य प्रदायिनी भंग से भरा एक बाल्टी—! मैं सेवा जिज्ञासु भाव से करबद्ध हो बैठा था, दादाजी आँखें मूँद कर किसी अनन्त आनन्द की धारणा ध्यान में समाधिस्थ-से हो गये थे। मैं अपना अंगीकृत कर्म—भंग फेंटन—कर रहा था, ताकि दूध चीनी, भंग-ठंढई सब एक में मिल जाय, न्याय और ईमान की तरह, धर्म और सचाई के तुल्य, अमेरिका और इंगलैण्ड की भाँति, रूस और जापान की नाईं। जिस प्रकार तपोनिष्ठ बाबा विश्वामित्र इन्द्र-सभा की परी, 'मेनका जान', के पगों के पायल की मधुर ध्वनि, श्रवणकर डिग गये, अनन्त की याद में, उनकी टोह में दौड़ती हुई और सरपट—? विचार-धारा कामिनी के कान्त कलेवर के लहँगों के घेरे में घुस कर खिलखिलाने लगी, उसी प्रकार भंग-फेंटन को सुखद श्रुति-सुधा-ध्वनि, मधुर मिष्ट सुगन्ध ने दादाजी की मोह निद्रा भंग कर दी, वे हड़बड़ा कर उठे, कि कहीं गीदड़ों ने इस निछक्की दुधिया भंग में अपन थुथना तो नहीं डुबो दी, पर मुझे देखकर परम पुलकित हो बोले—कौन? बेटा भकोलू! खूब फेंट दे बेटा—!

'अहा, कैसी मधुर सुगन्ध उड़ रही है, जी चाहे बाल्टी ही पेट में धर लूँ।'—दादाजी भंग की सुगन्ध से गद्‌गद् हो गये। बड़ी भावुकता पूर्वक भाव-विभोर हो बोले—बेटा वत्स! पुत्र भकोलू! सच पूछो तो भगवान शिव ने संसारियों को विजया-सा पुण्यपावन प्रसाद प्रदान कर चिर ऋणि बना लिया है, जिन्होंने मनुष्य चोला धारण कर भंग नहीं पी, उन्होंने इस प्रसन्न-वदना देव विमोही पृथ्वी का सुख कुछ भी नहीं जाना, उनके जीवन वन्य-कुसुम का तरह अकारथ हो गये। बेटा, इस दिव्य दृष्टि दायिनी, सदैव प्रफुल्ल कारिणी और आठो याम क्षुधा प्रदायिनी, भगवती, शिव-प्रिया भंग भवानी का सेवन जिन्होंने न किया, 'वे मृत्यलोके भू-भार हैता मनुष्य रूपेण मृगश्चा श्चरंति' हैं। भा० बाबा शंठ नारायेणजी की कथा में लिखा है कि वह आम्र फूल जो सुन्दर आकर्षक होने पर भी बदबूदार और पिल्लुओं से भरा था, इस अधम ने अपने पूर्व जन्म में न तो स्वयं 'शिव सञ्जीविनी' का सेवन किया और न अन्यों को कराया। इसी महापाप के प्रायश्चित स्वरूप इस अधम की ऐसी अधोगत दशा थी। दारोगा सप्तसती में भी इसका उल्लेख है—चण्ड-मुण्ड या शुम्भ-निशुम्भ क्यों मारे गये—? उसरे भंग की जगह शराब पीते थे, यदि एक मटर या सरसो के बराबर भी नियम पूर्वक भंगाराधन किया करते तो काली, दुर्गा, चण्डी क्या? सत्रह काली, महाकाली, हाहाकाली उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकतीं। व्यास देव भंग की ही तरंग में वेद लिख गये और तो और स्वयं सजीव प्रत्यक्ष प्रमाण मैं तुम्हारे सम्मुख साढ़े छै फीट लम्बा आदमी मुस्तैद हूँ। है कोई मेरे जोड़ का दिग्गज दुनिया में—इस हेतु बेटा! नर नारी, चर-अचर, जीव-जन्तु सब को भंग का सेवन उत्तम है, कल्याणकारी है। दादाजी का यह कथन मिथ्या है—? संसार भला ही कहे; पर मैं तो गले पर तलवार रख देने पर भी न कहूँगा। उनकी बातें मेरे लिये सत्य नहीं, महासत्य हैं। उन्होंने मुझसे कहा था—

बेटा, भकोलनाथ! जब इस धरती पर कलियुग चारो पाँव खड़ा हो जायगा, तो अजीब-अजीब लोग, विचित्र विचित्र वस्तुएँ उत्पन्न होंगी। उस समय 'सम्पादक' 'लेखक' 'नेता' आदि नामधारी जीव इस पृथ्वी पर आविर्भूत होंगे। 'सम्पादक' नामधारी जीव एक विचित्र-सचित्र ही महापुरुष होंगे। इनकी छाती पर चार लम्बे-लम्बे पाए वाली चौकी (दादाजी की मन्शा टेबुल से है।) सदैव रखी रहेगी और चार ही टाँग की केवल मात्र बैठने भर के स्थान वाली खाट पर वे बैठेंगे या झख मारेंगे अथवा गाहे-बगाहे एक खर्राटा ले भी लेंगे। इनके राजत्व काल में श्वेत-पत्रों की बर्बादी होगी, लोहे की कोई नोकदार चीज एक लकड़ी खंड में ठुकी रहेगी, उसी में कालिख पोतकर वे कागजों को पोतते रहेंगे। इनकी दौड़, इनकी बहादुरी, सब उन्हीं कागजों पर ही प्रकट होगी, न वे भंग पी कर पचा सकेंगे, न कोस दश एक सक दौड़ लगा सकेगें। इनकी आँखें चार होंगी, दो हमारी तरह सिर के नीचे होगीं और दो पीठ पर, जिससे आगे-पीछे सबको देखेंगे। इनकी प्रकृति कुछ अजीब होंगी—ऊपर से बड़े सहृदय पर भीतर से बड़े भयानक। वाणी बड़ी सुमिष्ट, पर कर्तव्य बड़ा ही खूँख्वार। विचार बड़े उदार, पर आचरण घोर संकीर्ण, बोलने-लिखने में बड़े फूर्रफूर्र! चलते फिरते बेहद टिल-टिल!! ये जीव 'परोपदेशे कुशल बहुतेरे' का बाना धारण कर अपना राज चलावेंगे, पर साथ ही बेटा इनसे बड़ा खबरदार हुशियार रहना, क्योंकि इनमें छोटी-सी कलम की करामात से मनुष्य ही नहीं, ईश्वर तक की अस्तित्व को हड़प कर डालने की अपार शक्ति सन्निहित होगी। राज्य-का-राज्य देश-का-देश उनकी उङ्गली भर कलम की नोक से चौपट-चापट हो जायगा।

और बेटा, एकबात तुम्हें और चेताए देता हूँ। न कहीं काम मिले, चोरी कर जेल चले जाना, उठाईगिरी करना, पाकिटें मारना, न हो इतनी हिम्मत, तो चौक पर चूरन बेचना, नीलाम वालों की दलाली करना, पर बेटा भूलकर भी लेखक न बनना, न होना। लेख-जीवी 'अन्धी गैया-धर्म रखवार होंगे' इन्हें कोई दमड़ी सेर भी न पूछेगा। ये बेचारे बेहद पिल-पिल, मायूम-सूरत और बछिया के ताऊ होंगे। पर, बेटा क्या बताऊँ कलि-प्रभाव, इतनी छीछालेदर होने पर भी सभी लेखक ही बनने को दीवाने होंगे। सम्पादक इनके देवता, प्रकाशक इनके आराध्य, और समालोचक इनके परम पूज्य होंगे। ये बेचारे सबकी नाज-बरदारी, तीमारदारी में कलपते-कनपते दिन बिता देंगे, पर इनका 'दिन' न लौटेगा, न लौटेगा।

सो सम्पादकजी महाराज! मेरे वन्दनीय दादाजी तो इस समय नन्दन-कानन में दुधिया छानते होंगे; पर उनकी वाणी आज सोलह आने चौसठ्ठ पाई महा सत्य हो रही है और उनका वह आदेशानुसार, आजकल 'टीसन' पर मुसाफ़िरों को 'खेमटे' सुना-सुना कर कुछ माँग खाता है। कहिए कैसा रोज़गार है मेरा!

आपका—

भकोलूनाथ

पादरी की निःस्वार्थता

लेखक—श्रीयुत बनवारीलाल, बी० ए०

डॉक्टर जोन ने शराब का प्याला पादरी मैथ्यू की ओर बढ़ाते हुए कहा—पादरी साहब, एक प्याला और लीजिए, अभी से तृप्त हो गये क्या ?

परन्तु मैथ्यू उस समय दरवाजे की ओर देख रहा था। अकारणही उसका दिल किसी आने वाली आपत्ति के विचार से घबरा रहा था, इसलिए वह कोई उत्तर न दे सका।

डॉक्टर जोन ने इञ्जीनियर विल्सन को सम्बोधन करके कहा—देखा इञ्जीनियर साहब, पादरी साहब क्या विचार रहे हैं। यह भी कोई जीवन है, कि जब देखो खुदा के विचार में मग्न, ससार से विरक्त और सरमन देने को उद्यत ! अरे भाई, जब ससार में आये हैं, तो क्यों न मौजें उड़ायें। जब खुदा के सामने जायँगे, तो देखा जायगा।

विल्सन ने उसका अनुमोदन करते हुए कहा—हाँ, ठीक है, खुदा के सामने जाने में भी अभी कौनसी जल्दी है, मरगे तो जायँगे।'

'और मरने मे अभी देर है'—जोन ने नशे में आकर कहा।

उसी समय एक नौकर ने हाँफते हुए अन्दर आकर कहा—साहब भागो, बगावत, भागो—।

जोन ने शराबका प्याला उठाते हुए कहा—क्या बकते हो, अभी लग जायँगी, तो होश आजायगा।

नौकर ने पाछे हटते हुए कहा—तो साहब एक दो घटे में पता चल जायगा—।

मैथ्यू ने घबरा कर कहा—सुनो, यह फायरों की आवाजें कहाँ से आरही हैं।

'छावनी से'—नौकर ने कहा। इस पर जोन और विल्सन ने कान लगाकर सुना तो ठाक उधर से ही फायरों की आवाजें आ रही थीं। उनकी आँखों के सामने मृत्यु का भयानक चित्र खिंच गया, और सारा नशा काफूर की भाँति उड़ गया, जीवन का अन्त पास ही दीख पड़ा, मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

मैथ्यू ने मुस्कराकर कहा—क्यों साहब, घबराते क्यों हो, अभी तो मत्यु दूर ह।

जोन बोला—अब बातचीत या हँसी का समय नहीं है, क्या आपको मृत्यु का भय नहीं है, जो आप मुस्करा रहे हैं।

'मुझे तो बहुत भय है, परन्तु '

'परन्तु क्या'

'परन्तु मुझ ऐसे को कौन मारेगा, मैं किसी को दु ख नहीं देता, लोगों का भला करता हूँ, उनको परमात्मा के पास ले जाकर उनके पापों से छुटकारा दिलाने का प्रयत्न करता हूँ, लोगों से मेरी शत्रुता नहीं।'

'और मैं लोगों के शारीरक रोग हरता हूँ '

अब तो नौकर से रहा न गया, उसने कहा—समय आ रहा है, सँभल सकते हो, तो सँभल जाओ मैं जाता हूँ।

तीनों आदमी फिर निराश हो गए, उनके बनाये हुए दुर्ग की दीवारें टूट गईं, या यह समझो कि उन रेत की दीवारों को नौकर की शब्द रूपी तरगें बहा कर अपने साथ ले गईं।

इतने में कुछ दूर पर बड़ा भारी शोर सुनाई दिया, और भयानक आवाजें साफ सुनाई देने लगीं। वे थोड़ी देर चुप रहे, फिर एकाएक जोन और विल्सन ने अपनी बन्दूकें उठा लीं, और मैथ्यू से कहा—

'शीघ्र, मैथ्यू शीघ्र भागो और अपनी जान बचाने के लिए सिर पर पैर रखकर भागो अभी समय है।'

सायकाल की धुँधली रोशनी में तीनों ने एक पुराने मन्दिर में पनाह ली, मन्दिर की दीवारें पुरानी होने के कारण फट गई थी और वर्षों से वहाँ झाड़ू न दिये जाने के कारण मानो कूड़ा करकट जमा हो गया था, दीवारों की मूर्तियों और चित्रों पर धूल जम गई थी, और उनमें एक दो स्थानो पर बड़े बड़े सूराख हो गये थे, ये इस समय रोशनदानों का काम देत थे।

विल्सन ने बन्दूक उधर करते हुए कहा—अच्छा स्थान है, बन्दूक का नाली गुजर सकती है और हम शत्रु से लड़ सकते हैं।

जोन ने कहा—मैं तो थक गया हूँ, थकान और भूख के कारण मेरे अङ्ग शिथिल हो रहे हैं, मुझे नींद सता रही है।

विल्सन ने कहा—तुम दोनो सो जाओ, मैं जाग कर पहरा दूँगा।

मैथ्यू और जोन ने दीवार से पीठ लगा ली, जोन ने बन्दूक को अपने पास रखी, और विल्सन एक सूराख में से बाहर की ओर देखने लगा।

कुछ दूर ग्राम में धूआँ उठ रहा था, विल्सन ललचाई हुई आँखो से उधर देखने लगा। सामने से चाँद निकल रहा था, और जगत् पर अपना प्रकाश फैला रहा था, और अपनी ठडी किरणो से चारो ओर सुख और शाति फेंका रहा था, परन्तु उसक दिल में ऐसे समय में भी भय और निराशा का अधिकार था। उसने दिल में कहा, शायद अब घर देखना नसीब हो या न हो। परन्तु, घर म रखा हा क्या है मैं और जोन दोनो क्वाँर हैं, माँ बाप का पता नहीं कि कौन और कहाँ हैं, फिर भी जीवन कितना प्रिय और सुन्दर है, इसमें कितना आकर्षण है माना हम इससे एक जजीर से बँध हुए हैं। इसके आगे स्वर्ग तुच्छ है, मुक्ति तुच्छ है और मैथ्यू जैसे पादरिया के प्रलोभन तुच्छ हैं। यदि इस में आज जैसी घटनायें न हो, तो ससार एक सुख का सागर हो, सुन्दर अनुपम गीत हो और हमारा जीवन कभी न खतम होने वाला खुशी हो। परन्तु, यह नहीं है, अभी हम खुश थे और अब जान बचा कर भाग रहे हैं और हसरत भरी नजरो स लोगों के रसोई के धूयें को देख रहे हैं।

एकाएक उसे प्रतीत हुआ, कि समीप ही कोलाहल मच रहा है और पकड़ो पकड़ो का कई आवाजें एक साथ आ रही हैं उसके विचारों का तार टूट गया और ससार की जो सुन्दर और सुखमय तस्वीर वह बना रहा था, आँखों से हट गई, उसने घबरा कर जान को हिलाया, मैथ्यू को पुकारा। वे दोनों उठ बैठे।

सामने चाँद का श्वेत रोशनी में उन्होंने देखा, कि कुछ लोग 'पकड़ो पकड़ो' का शोर मचाते हुए उनका आर बढ़ रहे हैं।

जोन ने बन्दूक उठाई, निशाना ठीक किया परन्तु उसी समय मैथ्यू ने उसका हाथ पकड़ लिया और धारे से कहा—बन्दूक मत चलाओ, यह ठीक नहीं है।

जोन ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा—क्या ठीक नहीं है ?

'किसी की हत्या करना।'

'तो क्या तुम्हे अपना जीवन प्रिय नहीं है।'

'यदि अपना जीवन प्रिय न होता, तो क्यों भागता। यदि यह जीवन प्रिय न होता, तो इसे मारने से भी न रोकता। जोन, मैं सच कहता हूँ, कि मैं मरना नहीं चाहता परन्तु किसी की हत्या करना तो दूर, हत्या होती देखना भी नहीं चाहता।'

एकदम, तड़ाक की आवाज आई और उसके साथ ही—'हाय मैं ! मर गया।'

तीनों ने बाहर झाँक कर देखा, तो विल्सन की गोली से एक छोटे से कद का लड़का मरा हुआ नजर आया, कई लड़के भाग रहे थे, जोन ने फिर बन्दूक उठाई और एक भागता हुआ लड़का और चित्त हो गया। जोन और विल्सन ने हँस कर एक दूसरे को बधाई दी और मैथ्यू सिर पकड़ कर बैठ गया। उसने कहा—तुम दोनों राक्षस प्रकृति वाले हो, तुम्हारे अन्दर रत्ती भर भी दया का भाव नहीं है।

'दया, दया तुम्हारे जैसे पादरियों या निर्बलों के लिए ही बनी है, हमारे दिल इससे शून्य हैं, परन्तु पादरी साहब सारा ससार ही दया-हीन है, जगत् में प्रत्येक मनुष्य दूसरे के खून का प्यासा है और उसे खाने के लिये तैयार है। इस जगत् में उन्नति वही करता है, जो दया से दूर हो, हिंसक वृत्ति वाला हो, परल दर्जे का स्वार्थी हो, सब जगत् को अपने आगे तुच्छ समझता हो। सुनो, पादरी साहब उन्नति का मार्ग लोगों की लाशों पर से हो कर जाता है, इसमें दया के लिये काई स्थान नहीं है ।'

मैथ्यू ने कहा—जान, बस करो, इस सरमन को बन्द करो, मैं इसे नहीं सुन सकता, मेरा हृदय काँपता है।

'नहीं पादरी साहब, घबराओ नहीं, उन्नति, मैं सच कहता हूँ, वही कर सकता है, जो सुनता हुआ बहरा बन जाय, देखता हुआ अन्धा बन जाय, जो लोगों की चिल्लाहट, बच्चों की पुकार, न सुन सके, जो लोगों की भलाई से दूर भागता हो, जिसका दिल पत्थर की भाँति कठोर हो, ताकि लोगों की आहों से पिघल न जाय '

'बस जोन, बस'—मैथ्यू ने फिर कहा। जोन बोला—नहीं मैथ्यू, उन्नति यही है, मैं यदि लोगो पर दया करता, तो भूखों मरता।

विल्सन अभी तक इस वाद विवाद को शांति से सुन रहा था, परन्तु उसने अब दोनों को सम्बोधन करके कहा—यह शास्त्रार्थ का समय नहीं है, शत्रु के आने से पहले भागने का यत्न करो।

तीनों आदमी भागने के प्रश्न पर विचार ही कर रहे थे, कि उन्होंने कोई दो सौ गज की दूरी से कुछ सुना—तीनों ने कान उधर लगा दिये और सूराखों में से बाहर देखा, तो उस ओर चार पाँच मनुष्य बड़ी निडरता से बढ़ रहे थे, जब वे कुछ समीप आ गये, तो उन्होंने हैरान होकर देखा, कि दो आगे के आदमी श्वेत वस्त्रों में कुछ उठाये हुऐ हैं।

भय और विस्मय से तीनों आदमी पत्थर की मूर्तियाँ बन गये, आँखें बिना झपके उस ओर देख रही थीं, परन्तु मुँह पर ताले लग गये थे।

आने वालों में से एक ने पास आकर कहा—तुम कोई भी हो, तुमने दो भोले भाले बच्चों का खून किया है, हम केवल अपराधी को दण्ड देंगे।

ये शब्द सुनते ही उन में फिर से जान आ गई और वे एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

बाहर से वह आदमी फिर बोला—तो क्या अपराधी को हमें न दोगे ?

जोन ने बन्दूक का रुख उधर किया परन्तु आने वाले ने भयानक हँसी हँसकर कहा—बन्दूक से कुछ न बनेगा, यदि तुम यह चेष्टा करोगे, तो दूसरे ही क्षण तोप का ग्रास बन जाओगे।

तोप का नाम सुनते ही बन्दूक जोन के हाथों से गिर पड़ी और वे फिर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

विल्सन ने धीरे से कहा—यदि यह अपराध एक आदमी अपने जिम्मे ले ले, तो बाकी दो की जान बच सकती है।

'परन्तु यह अपराध अपने ऊपर कौन ले'—मैथ्यू ने कहा। भोला-भाला मैथ्यू यह कह कर चुप हो रहा।

जोन और विल्सन ने परस्पर कुछ इशारे किये और मैथ्यू से कहा—चलो, अपने आप को उनके हवाले करदें।

तीनो आदमी बाहर निकले और आगे आगे चल पड़े। मैथ्यू ने छोटी-छोटी लाशों को देखकर कहा—क्या महापाप हो गया, इन लोगो ने हमारा क्या बिगाड़ा था, धिक्कार है इन दोनो के जीवन पर !

कोई आधा मील पहुँच कर वे एक मैदान में पहुँचे, वहाँ बागियो का सरदार एक चटाई पर बैठा हुआ था, मुख पर गम्भीरता और शान्ति था, उसने इन तीनो को देखा और कहा—सच बताओ, इन दो बच्चो का हत्या किसने की है, निरापराधी बच जायँगे और अपराधी को तोप से उड़ा दिया जायगा।

सब के सब चुप हो गये, बागियो का सरदार उनके उत्तर का प्रतीक्षा कर रहा था और दिल ही दिल में कुछ सोच रहा था।

सरदार ने कहा—तो तीनो अपराधी हैं, तीनो को तोप से उड़ा दिया जायगा।

विल्सन रुकते रुकते कहा—दया करो, हमें आध घण्टा विचार कर लेने दो।

तीनो आदमी सरदार की आज्ञा पर कुछ परे हट गये तीनो के चेहरे उतरे हुए थे, श्वास दीर्घ चल रहा था और दिलो पर निराशा का अधिकार था।

विल्सन ने आँसू भर कर कहा—तुम दोनों जानते हो, कि मेरी माता अति वृद्धा है, उसका मैं ही एकमात्र सहारा हूँ, मेरे ही आश्रय पर वह वृद्धा जीवन के दिन काट रही है, मेरे ऊपर अपराध का भार न देना, मैं निर्बल हूँ, यह भार नहीं उठा सकता—।

मैथ्यू ने कहा—अपराध तो तुमने किया है।

'नहीं, मैथ्यू, दया करो, तुम दयावान हो, खुदावन्द यीशु के अनुयाई हो, वह प्रसन्नता से सूली पर चढ़ गया ताकि जगत के प्राणिमात्र के पापों का प्रायश्चित हो जाय, मेरे ऊपर दया करो, मेरी वृद्धा विधवा माता पर दया करो और हमारा आशीर्वाद लो, खुदावन्द यीशु तुम्हारी सहायता करें और इन लोगों को सुमति दे।'

मैथ्यू कुछ कहने को था, कि जोन ने कहा—मैथ्यू ठीक है विल्सन अपनी वृद्धा माता का एक सहारा है और तुम जानते हो कि मेरा विवाह अभी-अभी हुआ है, इस अवस्था में उसका क्या होगा। मैथ्यू, मेरी भी सहायता करो और हम दो जीवो के प्राण बचाने का पुण्य लो, यह जीवन क्षण भङ्गुर है, इसे ऐसे शुभ काम पर दे डालो। चार जीवों की भलाई पर इसका बलिदान बड़ा नहीं है।

मैथ्यू दिल में सोचने लगा—यह दोनों निठुर मुझे बलिदान करने को उद्यत हैं। झूठ बोल रहे हैं, न विल्सन की माँ है, न जोन की स्त्री, परन्तु इन्हें जीवन का लोभ है, प्राण प्यारे हैं और मोह का पाश पड़ा हुआ है। जिसकी थोड़ी देर पहले हँसी उड़ा रहे थे, उसी के नाम की अब दुहाई दे रहे हैं। यह झूठे हैं, दम्भी पाखण्डी हैं, निर्दय हैं, किसी के शुभ चिन्तक नहीं हैं, तथापि मेरा कर्त्तव्य स्पष्ट है। मुझे अपना धर्म मालूम है। यीशु की मृत्यु का चित्र स्मरण आता है, जब वह जगत के पापो के बदले सूली पर चढ़ गया था, तो क्या मैं उसका अनुयायी होते हुए, इनका जीवन नहीं बचा सकता ?

अन्तरात्मा ने झट उत्तर दिया—क्यो नहीं, निश्चय तुम बचा सकते हो।

मैथ्यू ने फिर विचार किया, और कहा—अच्छा, मैं आज आत्म बलिदान करके इनको दिखा दूँगा, कि इस जगत में दया को स्थान है, और इसका स्थान सबसे ऊँचा है। दूसरे के लिये त्याग करने का सौभाग्य किसी ही को मिलता है, नीच स्वार्थी लोग यह सुन कर हँसते हैं, परन्तु त्यागी की खुशी कौन जान सकता है, इस आनन्द को न धनवान और न राजा प्राप्त कर सकते हैं। सम्भव है, मेरा त्याग किसी की आँखें खोल दे। मैं आज खुदा के पुत्र का अनुकरण करूँगा।

तब तीनो की सलाह ठीक हो गई। और सरदार के पास पहुँच गये। इस समय विल्सन और जोन प्रसन्न थे और मन ही मन में मैथ्यू की अज्ञानता पर हँस रहे थे।

मैथ्यू ने सरदार के समीप जाकर कहा—यह हत्याकांड मेरा ही किया हुआ है।

'तुम ठीक कहते हो ?'

'बिल्कुल ठीक।'

सरदार ने ध्यान देकर उनको देखा। दो आदमी राक्षसी भाव से प्रसन्न थे और एक आदमी के चेहरे पर मरने का आनन्द था। उसने धीरे से कहा—इस मनुष्य को उधर ले जाओ और तोप से उड़ा दो।

सरदार ने जाते हुए मैथ्यू की ओर देखा। वह गर्व से सिर उन्नत किये मृत्यु के बाहुपाश में जा रहा था। उसकी चाल में धैर्य था, दिल में जोश था और आँखो में प्रकाश। सरदार ने उसके साथ के सिपाही को बुला कर कुछ कहा—और मैथ्यू उसके साथ चल पड़ा।

तब सरदार ने विल्सन और जोन से कहा—जाओ, तुम मुक्त हो।

दोनों के मुख मण्डल पर एक अकथनीय आभा खेल रही थी, दोनों अपनी जीत के विचार में पागल हो रहे थे और अपनी नीति का धन्यवाद कर रहे थे, उन्होंने जाते हुए मैथ्यू की ओर देखा भी नहीं था। तमाम आशाएँ, जो उन्हें छोड़कर भाग गई थीं, पुन मन में आगईं, जीवन फिर सुन्दर जान पड़ा।

मैथ्यू जब कोई सौ गज जा चुका, तो सिपाही ने कहा—जाओ, तुम मुक्त हो।

मैथ्यू जो तोप के गोले की प्रतीक्षा में था, इन शब्दों का विश्वास न कर सका, उसने कहा—क्या मैं वास्तव में मुक्त हूँ।

सिपाही ने इसका उत्तर न दिया, परन्तु यही कहा—वह देखो।

अकस्मात सामने विद्युत सी चमकी, फिर ऊँचा शब्द हुआ और इसके अनन्तर सन्नाटा छा गया। रात्रि जैसी शान्त पहले थी, ऐसी ही अब थी—मैथ्यू उधर भागा और थोड़ा दूर पर जाकर देखा, तो जोन और विल्सन की अधजली लाशें पड़ी थीं।

(१३वें पृष्ठ का शेषांश)

बेंतें मारती हैं यहाँ तक मारती हैं कि चमारों के बदन पर सूजन आ जाती है। नेजा उखड़ जाने के बाद उनको गुड़ दिया जाता है।

इस के बाद चैत बदी १३ को सरकारी स्नान होता है। इस दिन महाराज की सवारी मय लवाजिमे के लगती है। जगह जगह जल भरवा दिये जाते हैं। महाराज के हाथ में हाथी पर फव्वारा रहता है, जिस में नीचे से कई लोग पानी (रंगदार) पहुँचाते रहते हैं। महाराज उस फव्वारे से बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं तक स्त्री-पुरुषों की खबर लेते हैं। सारे मकान बाज़ार, भीतें मकानें, खिड़कियाँ, दरवाजे रंगदार बन जाते हैं। हाथी पर कई रंग की गुलाल की थैलियाँ भरी रहती हैं और हाथी ही पर से महाराज गुलाल गोटे और गुलाल फेंकते हैं। गुलाल गोटों के अन्दर रुपया या अठन्नी होती है। यह 'हाथियों की होली' कहलाती है। इसी तरह 'घोड़ों की होली' होती है। बाद को दरीखाना होता है—नजरें होती हैं। इस के बाद होली का त्योहार खत्म माना जाता है।

राजपूताने की कुछ रियासतों में होली

लेखक—श्रीयुत कृष्णगोपाल माथुर

राजपूताने में झालावाड़, कोटा, बूँदी, करौली या इनके आसपास की छोटी-बड़ी रियासतों में प्रायः एक ही प्रकार से होली का त्योहार मनाया जाता है। अपशब्दों का बकना और लज्जाजनक प्रदर्शन भी होते रहते हैं। हाँ, यह खुशी की बात है कि किन्हीं-किन्हीं रियासतों में ऐसे रिवाज हुक्मन् उठवा दिये गए हैं। जैसे, झालावाड़ में बड़े भारी आकार के 'सिन्धी साहाब' का पुतला बनाया जाता था, और लज्जाजनक तरीक़े से इसको बाजार के ऐसे स्थान पर रक्खा जाता था, जहाँ स्त्री-पुरुषों का आमद रफ़्त ज़्यादा होता था। शर्म के मारे भली स्त्रियाँ उधर होकर निकलती न थीं। स्व० महाराज भवानीसिंहजी ने यह रिवाज क़तई बन्द करवा दिया। इसके ख़िलाफ़ नगर निवासियों ने सत्याग्रह किया और उस साल होली का त्योहार कोई नहीं मनाया। बेवक़ूफ़ी थी, मगर महाराज ने कुछ परवाह नहीं की। इसी तरह दूसरी रियासतों में भी बहुत कुछ सुधार होने की गुञ्जायश है। अस्तु।

आज हम 'जागरण' के प्रेमी पाठकों को यह बताना चाहते हैं कि इन रियासतों में और इनकी सीमा से मिली हुई दूसरी रियासतों के परगनों में किस-किस प्रकार से होली का त्योहार मनाया जाता है।

यहाँ पर महासुदी पूर्णिमा को, बाज़ारों में और गलियों में जहाँ-जहाँ होली जलाने के स्थान हैं, वहाँ-वहाँ होली की लकड़ी गाड़ दी जाती है, जिसे 'होली का डाँडा' कहते हैं। इस डाँडे के सिरे पर लाल रंग के कपड़े की झंडी बाँध दी जाती है। इसके गड़ जाने के बाद प्राय सभी मांगलिक कार्य रोक दिये जाते हैं, जैसे स्त्री का प्रथम-बार सुसराल में जाना आना, कोई उत्सव या शुभ कार्य का आरंभ।

डाँडे के जन्म-दिन से ही बालकगण उसकी रक्षा करने में मुस्तैद रहते हैं। उनके खेलने का यह एक प्रकार से खासा ज़रिया हो जाता है। इन्हें 'होली का घेरिया' के नाम से पुकारते हैं। ये प्रायः रात को झुंड-के-झुंड बना कर डफ बजाते और गाते हुए गली-गली और मुहल्ले-मुहल्ले में घूमते हैं। जब रात ज़्यादा चली जाती है, तब वे चोरी का काम करते हैं। ऐसी चोरी नहीं, कि जिस में पुलिस फ़ौरन् ही गिरफ़्तार करले और कबूल कराने के लिए कोड़े लगावे। नहीं, वे तो सिर्फ़ यह करते हैं कि जहाँ कहीं छाना-लकड़ी पाते हैं, उन्हें चुपके से ले जाकर 'होली के डाँडे' के आसपास इकट्ठा रख देते हैं। लावारिस घरों के किवाड़, लकड़ियाँ काम में आने वाली लकड़ियाँ, पाटिए, बाँस के बने हुए डाले-डलियाँ या और भी इस प्रकार की चीजें जहाँ कहीं पाते हैं, वहीं से लाकर डाँडे के पास रख देते हैं। जब उन चीजों के मालिकों को मालूम होता है, तो वे 'घेरियों' को बहुत भद्दी गालियाँ देते हैं और बुरी तरह से कुढ़ते हैं। उनकी गालियाँ देना और कुढ़ना देख कर मुहल्ले के बहुत से स्त्री-पुरुष और बाल बच्चे इकट्ठे हो जाते हैं। सभी हँसते हैं। 'घेरये' भी बुरा नहीं मानते, वे भी हँसते हैं। अव्वल तो यह पता नहीं लगता कि 'घेरियों' में कौन-कौन आदमी, बालक, नौजवान थे। यदि मालूम भी हो जाता है, तब भी कोई दाद फरियाद न सुनी जाती। पुलिस भी इसमें दस्तंदाज़ी नहीं करती। मालिक जब अपनी चीजों को अपने मुकाम पर नहीं पाता है और होली की भेंट देखता है, तभी वह अपने जी में (होली की तरह!) जलता है, और 'घेरियों' को भली कटी सुनाता है, परन्तु इसके सिवाय वह घेरियों का कुछ नहीं कर सकता। यह भी उसे अधिकार नहीं है कि होली पर चढ़ी हुई भेंट को—अपनी चीजों को—उठा लावे। यदि ऐसा करे, तो लोग उसे बहुत ही भला-बुरा कहते हैं। इसलिये शर्म के मारे वह अपनी कोई चीज नहीं लाता और मन-मसोस कर रह जाता है। चाहे उसके काम ही की लकड़ी हो—उसके बिना उसका कल ही काम अटकता है—तो भी उसे उठाकर लाने की हिम्मत उसको नहीं होती। इसके सिवा, ऐसा करना वह अपशकुन भी समझता है।

इस तरह सारे फाल्गुन के महीने में घेरिये लोग ऐसा खेल किया करते हैं। इनमें बालक और नौजवान लड़के तो ज़्यादा होते ही हैं, पर थोड़े वयस्क आदमी भी शामिल हो जाते हैं, तेली, धाकड़, तम्बोली, काछी, माली आदि जातियों के वे ही लोग इसमें शामिल होते हैं, जो अशिक्षित होते हैं। ये गालियाँ भी बकते हैं।

आख़िर, फाल्गुन सुदी पूर्णिमा को ज्योतिषीजी के बताये समय पर होली जला दी जाती है। होली क्या जलती है—अड़ोस-पड़ोस के लोगों के छाना लकड़ी आदि का ढेर जला दिया जाता है। अगर कमी रहती है तो लकड़ी ख़रीद कर भी उसमें डाल दी जाती है।

इधर होली जली कि उसकी अग्नि मँगा कर भले घरों में होली जलाई जाती है। इन घरों की स्त्रियाँ कोई १०।१५ रोज़ पहले से इस काम के लिये गोबर के गहने बनाती हैं। जैसे—नथ, बेसर, गहने का हार वगैरः—वगैरः। इनके सिवाय गोबर की टिकियाँ बना कर उनके बीच में छेद कर देती हैं। बहुत सी टिकियाँ बनाई जाती हैं, इनको 'बड़कुल्या' कहते हैं। होली जलाते वक्त इन सब को इकट्ठा करके मय जेवर के जलाया जाता है। बीच में लकड़ी की डंडा खड़ी कर दी जाती है। इसे 'खाँडा' कहते हैं। 'खाँडा' खाती बनाकर लाता है। बदले में उसको अनादि देते हैं। जब होली जलते-जलते 'खाँडा' जलने लगता है, तब जलने के पहले निकाल लिया जाता है, और उसे प्रह्लाद के रूप में मानते हैं।

इस तरह होली जल जाती है, मगर 'घेरियों' का काम समाप्त नहीं होता वे दूसरे दिन 'धुलेडी' मनाते हैं, यानी शहर भर में धूल उछालते फिरते हैं और डफ बजाते, गाते फिरते हैं। बाज़ लोग ऐसा करते हैं कि उनके आलस्य के कारण जो साल भर तक उनके यहाँ कूड़ा-कर्कट इकट्ठा होता रहता है, उसे इस दिन निकालकर सड़क पर डाल देते हैं, ताकि मुफ़्तही में भंगी को साफ़ करना पड़े। सुबह से लगाकर १।२ बजे तक घेरिया लोग यह काम करते रहते हैं। जब तक वे फिरते रहते हैं, तब तक सब लोग अपने-अपने घरों में से बाहर नहीं निकलते—इस डर से कि शायद कोई घेरिया हम पर धूल डाल देगा। इस तरह यदि कोई घेरिया किसी पर धूल डाल भी दे, तो उसकी कोई सुनवाई नहीं होती। २ बजे के बाद सब घेरिये लोग तालाबों पर स्नान करने जाते हैं। इधर सड़कों का धूला और कूड़ाकर्कट भंगी लोग साफ़ करते हैं।

इसके बाद चैत्र बदी ५ को प्रजा का न्हान होता है। इस दिन शहर में जगह-जगह पानी के कड़ाह भरे जाते हैं। सुनार, लोधा, काछी, माली, ब्राह्मण, तेली, तम्बोली, गूजर, मीना, धोबी, चमार, बलाई, भंगी, धाकड़, दर्जी, बनिये, इन जातियों की स्त्रियाँ अपने-अपने कड़ाहों के पास डंडे या कोड़े लेकर खड़ी हो जाती हैं। उन्हीं की जाति के लोग उनसे न्हान खेलते हैं। जो आदमी कड़ाह में से 'डोलची' भर कर स्त्री पर डालना चाहता है, उस पर लकड़ी या कोड़े की मार बड़े ज़ोर के साथ पड़ती है। लोग डर के मारे दूर खड़े रहते हैं, पर हिम्मत कर कर के झपाटे के साथ कड़ाह के पास जाते हैं और मार खाते खाते 'डोलची' में पानी भर कर स्त्रियों को मारते हैं। इस तरह पुरुषों पर डंडों की मार और स्त्रियों पर डोलची के पानी की फटकार पड़ती जाती है। यह खेल बड़ा आनन्द-वर्धक होता है। इसमें स्त्री और पुरुष की हिम्मत देखी जाती है—देखते हैं कि किसमें कितना साहस है। बहुत-से दर्शक लोग इकट्ठे हो जाते हैं और यह तमाशा देख-देख कर खुश होते हैं। राजपूत, कायस्थ या पढ़े लिखे अहलकारान गुलाल से होली खेलते हैं।

इसी दिन निज़ामत या कचहरी के सामने 'नेज़ा' गाड़ा जाता है, यानी इमली के पेड़ की एक शाखा जमीन में गहरी गाड़ दी जाती है। चमारों को बुलाकर उनको शराब पिलाई जाती है, शायद चमारिनें भी पीती हैं। जब नशा आ जाता है, तब चमार लोग उस शाखा को उखाड़ने के लिये पूरी ताक़त लगाते हैं, उस वक्त चमारिनें चमारों को ज़ोर-ज़ोर से

(शेषांश १२वें पृष्ठ के नीचे)

भारतीय किसानों का कृषि संबंधी प्राकृतिक भौगोलिक ज्ञान

लेखक—श्रीयुत् ठाकुर राजेश्वरीप्रसादसिंह

'चमकी भली न चैत की बूठो भलो न जेठ।
रूठो भलो न राजवी, तूठो भलो न सेठ॥'

चैत के महीने में बिजली का चमकना असगत है और ज्येष्ठ मास में वर्षा का होना ठीक नहीं है, यदि इन महीनों में वर्षा होगी तो वर्षा ऋतु की वर्षा मारी जायगी, ये बातें उतना ही हानिकारक हैं जितनी राजवी (राजा) का रूठना (बिगड़ना) और सेठ जो मालदार होते हैं, समय समय पर रुपया दे, लोगों की मदद करते हैं, उनका (तूठो) दिवाला हो जाना।

'उत्तम खेती मध्यम बान। निकृष्ट सेवा, भीख निदान॥'

मानव-समाज में सबसे उत्तम कार्य खेती करना, उसके बाद व्यवसाय है। इन दोनों से बुरी नौकरी या चाकरी और सबसे खराब भिक्षा माँगना है।

'मसकट खटिया दुलकन घोर। करकस तिरिया विपति कै ओर॥'

छोटी चारपाई—जिसपर सोने पर पैर बाहर निकला रहे—और घोड़े की दुलकी चाल जिस प्रकार दुखदाई होती है उसी प्रकार करकसा अर्थात् झगड़ालू स्त्री कृषक के जीवन को दुखी बना देती है—कृषी का जीवन सर्वदा वादाविवाद में बीतेगा, घर गृहस्थी का कोई काम सुचारु रूप में नहीं चलेगा।

'गरजै सो बरसै नहीं, बरसे घोर अँधार।'

जो बादल गरजता है, वह बरसता नहीं और जो घन घोर गर्जना नहीं करता, वह इतना बरसता है कि उस बारिश से अन्धेरा छा जाता है।

'करिया बादर जिय डेरवावै। धुँधला धुमला धार परावै॥
साँझ मेघ ज्यों लाली छावै। भूरा हो, त्यों बरखा जावै॥'

काला बादल केवल भयानक ही होता है, उससे वर्षा अधिक नहीं होती। जो बादल धुँधला होता है, उससे काफी वर्षा होती है। यदि वर्षा ऋतु में साय काल में भूरा बादल हो और उसमें लाली छाई हो, तो समझना चाहिए कि अब वर्षा नहीं होगी।

'दुपहरिया ज्यों मेघ घिराई। बिनु बरसे वह नाहीं जाई॥
उमडि घुमडि जल को बरसावैं। कबहूँ महि पर पाथर नावैं॥'

यदि मध्याह्न के समय बादल आकाश में छा जाय, तो समझना चाहिये कि वर्षा अवश्य होगी और खूब होगी—कभी-कभी पत्थर भी गिर जाता है।

'ऊठे ही पीरो होय, ऊठे ही सासुरो। आथूनो हो खेत, चवै नहि आसुरो॥
भैसडक्या हूँ चारि, दुजै पारडी। इतरो दे करतार, फेर कहि चावणो॥'

पीरो (नैयहर) तथा सासुर (ससुराल) पास-ही-पास हो, जिससे खबर मिलती रहे। खेत आथूनो (पश्चिम में) हो अर्थात् गाँव के पश्चिम की तरफ हो तो एक गृहस्त के लिये बहुत अच्छा है। इससे खेत पर सुबह जाते समय और शाम को लौटते समय सूर्य पीठ पीछे पड़ेंगे, आँख पर रोशनी नहीं पड़ेगी। जिस किसान के घर में चार-पाँच भैंसें दूध देने वाली हो उससे बढ़ कर सुखमय जीवन और किसी का नहीं हो सकता।

'हर बिगहा में कुनिहा माळ। जितना लरछा होला बाळ॥
'रामू' कहत सुनो हे भाई। बिगहा पीछे दर मन आई॥'

धान के एक बाल में जितना लरछा होता है, उसी से हर बीघा पीछे धान का दर कूता (अन्दाजा लगाया) जाता है।

(क्रमशः)

विदेश-वार्त्ता

अन्तर्राष्ट्रीय सेना

अनुवादक—श्रीयुत 'म'

इधर कुछ समय से प्रायः सभी देशों के अनेक राजनीतिज्ञों के मन में यह बात उठती रही है कि राष्ट्रसंघ के जिम्मे एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना भी रखी जाय, तो अच्छा हो, जो संसार में शान्ति स्थापित करने के लिए पुलिस का काम दे सके। इसका उद्देश्य उस परिस्थिति का सामना करना है, जिसके कारण राष्ट्रों में युद्ध छिड़ने की संभावना उपस्थित हो जाती है।

एक नयी बात

इसमें सन्देह नहीं कि इस तरह की अन्तर्राष्ट्रीय सेना का विचार जिसमें जल-सेना, स्थल-सेना तथा हवाई-सेना ये तीनो शामिल हो—एक बिल्कुल नयी बात है। यही कारण है कि कुछ विशेष मनोवृत्तिवाले मनुष्यो को यह जँच नही सकती। इस तरह की योजना पर भली-भाँति विचार भी नहीं किया गया है, व्यवहार की बात तो दूर ही है। कम से कम सैनिक विषयो के विशेषज्ञो ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया है, यद्यपि यह विषय ऐसा है, जो इतना उपेक्षणीय नहीं समझा जाना चाहिए। जिन्हें यह योजना नयी होने पर भी विचारणीय प्रतीत हो, वे यदि फ्रांस की विदेशी सेना की ओर जिसे लोगों ने व्यर्थ ही बदनाम कर रखा है, ध्यान देने की कृपा करें, तो अच्छा हो।

इस सेना से निकले हुए कुछ लोगों ने पुस्तकें लिखकर ऐसी भ्रमात्मक बातें फैला दी हैं, जिनसे बहुतों की यह धारणा हो गई है कि विभिन्न राष्ट्रो के नागरिको से बनी हुई सेना शांति और मेल के साथ काम नहीं कर सकती। उदाहरणार्थ यह मान लिया गया है कि जर्मन अफसर के अधीन कोई अंग्रेज, इटेलियन 'फासिस्ट' के अधीन रूसी 'श्रमजीवी' अथवा उत्तर आयरलैण्ड वाले के अधीन फ्रीस्टेट का नागरिक ठीक से काम नहीं कर सकता; क्योंकि ऐसा होने से राष्ट्रीय, राजनीतिक तथा धार्मिक झगड़ों से उत्पन्न अन्याय एव द्वेष बुद्धि दृष्टिगोचर हुए बिना नहीं रह सकती। 'विदेशी सेना' इस बात का प्रमाण है कि यह धारणा गलत है। पुराने शत्रु यदि नये और सामान्य उद्देश्य से सम्बद्ध हो जावें, तो साथ-साथ मिलकर शान्तिपूर्वक काम कर सकते हैं।

इस सेना के सम्बन्ध में फ्रांस को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा है, वे सम्भवतः राष्ट्र संघ के सामने भी यदि उसे अन्तर्राष्ट्रीय सेना की जिम्मेदारी सौंपी जाय, तो किसी न-किसी रूप में उपस्थित होंगी; अत 'विदेशी सेना' के तरीकों की जानकारी हासिल करने से विशेष लाभ होगा और भावी अन्तर्राष्ट्रीय सेना के सम्बन्ध में जो कठिनाइयाँ हैं, उन्हें दूर करनेमें सहायता मिलेगी।

फ्रांस की विदेशी सेना

विदेशी सेना में एक घुड़सवार पलटन और पाँच पलटनें पैदल सिपाहियोंकी हैं। इसके साथ गोला-बारूद समेत मोटर गाड़ियाँ, कमसरियत विभाग, इञ्जीनियर, डॉक्टर आदि सब कुछ रहता है। हाँ, इसके पास अपने निजी हवाई जहाज नहीं हैं। इसका कारण सम्भवतः यह है कि हवाई जहाजो की सहायता से भगोड़ो का कार्य अधिक सरल हो जाता है और यदि उनकी इच्छा सेना का परित्यागकर भाग जाने की हुई, तो उन्हें अनायास ही मौका मिलजाता है। फिर भी फ्रांसीसी हवाई जहाजों के बेड़े का एक निश्चित भाग खासतौर से इस सेना के जिम्मे कर दिया गया है, किन्तु इसके सञ्चालक प्रायः सभी फ्रांसीसी ही हैं।

यह सेना सब तरह से परिपूर्ण और स्वावलम्बिनी है। साधारणतः बाहर वालो को यह बात नहीं मालूम कि विदेशी सेनामें युवको के लिये जीवन यापन का बढ़िया साधन प्राप्त हो सकता है। केवल १५ वर्ष काम करने पर ही उन्हें जीवन भर अच्छी पेनशन मिलती रहती है। इसके सिवा उन्हें व्यापारादि की अच्छी से अच्छी शिक्षा अनायास ही प्राप्त हो जाती है। भरती होने के समय कोई नवयुवक भले ही कुछ न जानता हो, किन्तु नौकरी का समय पूरा होते होते तक, वह एक कुशल विद्युत सञ्चालक, मुनीम, लोहार, बढ़ई, सन्दूक बनाने वाला, ऋतु विशेषज्ञ, पत्थर के दाँत बनाने वाला या रसायनज्ञ आदि बन जा सकता है। पढ़े-लिखे आदमी के लिए तो, जो काम करने या जिम्मेदारी ग्रहण करने से जी नहीं चुराता, इस सेना में प्रविष्ट होकर उन्नति करने की और भी अधिक गुंजाइश है।

भिन्न राष्ट्रीयता बाधक नहीं

इस सेना में संसार के प्रायः सभी जातियों या राष्ट्रों के लोग शामिल हैं। एक पलटन की परेड के समय लेखक ने देखा कि उसके अफसरों में एक एस्किमो, एक इटैलियन, एक अंग्रेज, एक जूलू, और एक चीनी था। उनका नायक ईराक देश का रहने वाला था।

विभिन्न राष्ट्रों या जातियो के लोगों के इस सम्मिश्रण से उनके जीवन पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि यह कहना चाहिये कि बृटिश पलटन की अपेक्षा इस सेना के सैनिको में बहुत कम झगड़े हुआ करते हैं और छोटे-छोटे अफसर उस तरह अपना रुआब गाँठने की चेष्टा भी नहीं करते। इसके कारण की व्याख्या न कर लेखक केवल इतना ही कहना चाहता है कि जब भिन्न भिन्न राष्ट्रों के नागरिक किसी सामान्य उद्देश्य से परस्पर सम्बद्ध हो जाते हैं, तो उनका राष्ट्रीय एव राजनीतिक द्वेष भाव अपने आप दूर हो जाता है।

फ्रान्स की विदेशी सेना का यह वर्णन पढ़कर बहुत से पाठको को आश्चर्य होगा। सर्व साधारण के मन में, जो यह विश्वास जम गया है कि उक्त सेना पृथ्वी पर नरक तुल्य है, उसका अधिकतर दोष हमारे दैनिक पत्रों को है। सच्ची बात जानने अथवा किसी तरह की छानबीन करने का प्रयत्न किये बिना ही सर्वथा निराधार तथा मनमानी बातें प्रकाशित की जाती हैं और लोग उन्हें 'दिव्य सन्देश' की तरह सत्य समझ लेते हैं! इस सेना से जो निकल भागता है, वह कायर न समझा जाकर साहसी वीर समझा जाता है और उसकी प्रशंसा की जाती है। वह इस सेना के विरुद्ध जो अंड-बंड बातें कह देता है, उन पर विश्वास कर बहुत से लोग इसके सम्बन्ध में मिथ्या धारणा बना लेते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय सेना ऐसी ही हो

यह समझने के लिए कोई कारण नहीं कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनाये रखने के लिए जो सेना रखी जाय, वह भी फ्रान्स की विदेशी सेना की ही तरह क्यो न सफल होगी। इस विचार के समर्थकों की सबसे बड़ी कठिनाई कदाचित् यह भय है कि राष्ट्रीय तथा जातिगत पक्षपात की संभावना के कारण इस तरह की सेना का नैतिक अधःपतन हुए बिना नहीं रह सकता, किन्तु यह आशंका बिल्कुल निराधार है।

फ्रांस की विदेशी सेना के सघटन या सचालनादि की आलोचना करना, इस लेख का उद्देश्य नहीं है। हम केवल यही बतलाना चाहते हैं और पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं, कि फ्रांस के पास अपने निजी उपयोग के लिये ऐसी सेना मौजूद है, जो सब तरह के अस्त्र शस्त्रो से लैस है, जिसे बिल्कुल आधुनिक ढंग की युद्ध-शिक्षा दी गई है और जिसके सैनिक संसार के भिन्न भिन्न देशो से लिये गये हैं। अनुभव से यह प्रमाणित हो गया है, कि ये लोग बिना किसी तरह के वैमनस्य के परस्पर मिलकर काम कर सकते हैं।

भाषा की समस्या हल करने के लिये यह उपाय किया गया है, कि सैनिक शिक्षा देते समय प्रतिदिन फ्रांसीसी भाषा भी सिखाई जाती है और कवायद के समय तथा भोजनशाला में अनिवार्य रूप से फ्रांसीसी भाषा में ही बोलने पर जोर दिया जाता है। इस तरीके से औसत बुद्धि का कोई भी आदमी साधारणतया चार महीने में फ्रांसीसी भाषा सीख लेता है।

ऐसी अवस्था में यह निश्चित है कि राष्ट्रसंघ के लिये भी ऐसी सेना का संघटन करना और उसे अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित कर अपनी देख-रेख में रखना असम्भव नहीं है। संघ के प्रधान न्यायालय की दृष्टि में जब आवश्यकता हो या वांछनीय समझा जाय, तब किसी भी राष्ट्र के विरुद्ध निष्पक्ष भाव से इसका प्रयोग किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में यह आपत्ति पेश करना व्यर्थ है, कि इससे समस्त देश एक तरह के सुपर अधिराज्य के अधीन हो जायँगे। प्रधान न्यायालय में न तो कुछ व्यक्तियों का प्राधान्य है और न उसकी प्रवृत्ति आगाखाजी की तरह (!!) अपने भक्तो की अधीनता चाहने की ही है। जो हो, राष्ट्रसंघ का संघटन ही ऐसा है कि वह न तो इस समय अधिराज्य कहा जा सकता है और न भविष्य में ही उसके ऐसा बनने की सम्भावना है।

फ्रान्स की उक्त सेना इस समय अल्जीरिया, ट्यूनिशिया, सहारा, मोरक्को, सीरिया, इण्डोचाइना तथा टानकिन में काम कर रही है। यदि फ्रान्स इस तरह की अन्तर्राष्ट्रीय सेना संसार के भिन्न भिन्न भागो में रख सकता है, तो कोई कारण नहीं कि राष्ट्रसंघ भी ऐसा न कर सके।

—'दि स्पेक्टेटर' से

मालव प्रांत की होली

लेखक—श्रीयुत गणेशदत्त शर्मा, गौड़, 'इन्द्र'

यद्यपि होली का त्योहार भारतवर्ष में हिन्दूमात्र मानता है, तथापि उसके मनाने में प्रान्त के अनुसार कुछ भेद उत्पन्न हो गए हैं। हमारे मालव-प्रान्त में इस त्यौहार को मनाने का जो तरीका है, उसे हम यहाँ लिखते हैं।

वैसे तो बसन्त पञ्चमी से ही होली का आरम्भ माना जाता है, परन्तु फाल्गुनी पौर्णिमा के दिन वह उत्सव अपना असली रूप धारण करलेता है। बसन्त पञ्चमी के दिन कई लोग आम्र मञ्जरी अपने घर लाते हैं और वंश-परम्परा के अनुसार उत्सव मनाते हैं। यह उत्सव सामूहिक नहीं मनाया जाता, कौटुम्बिक होता है। यह ऋतुराज के स्वागत का दिन है। आम्र मञ्जरी के सेवन का आयुर्वेदीय ग्रथों में उल्लेख है। आम्र-मञ्जरी के विधिपूर्वक सेवन करने से स्वर शुद्ध और मधुर होता है, चर्म रोग दूर होते हैं, शारीरिक विष नष्ट होता है। कुछ लोग कहते हैं कि आम्र मञ्जरी का रस हथेली में मलकर सुखा लिया जाय और उसे फिर से धोया न जाय—इस प्रकार पाँच-सात बार कर लेने से हथेलियों में वह शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिससे विषधर जन्तु के काटे हुए स्थान पर हाथ फेर देने से विष दूर हो जायगा। इत्यादि—

माघी पौर्णिमा के दिन शुभ वेला में होली का चिन्ह स्थापित कर दिया जाता है, जिसे 'डाँडा रोपना' कहते हैं। यह 'डाँडा' ग्राम की प्राचीन प्रथा के अनुसार वृक्ष विशेष की शाखा होती है, जो तीन से पाँच-छः हाथ तक लम्बी होती है। पलाश, सेमल, गूलर, खैर, इतनजोत, एरण्ड आदि वृक्षों के दण्ड अधिकांश काम में लाये जाते हैं। यह दण्ड गाम-बलाई लाता है, और नम्बरदार अथवा पटेल की उपस्थिति में पाँच-सात आदमी मिलकर उसे जमीन में गाड़ कर खड़ा कर देते हैं। इसके बाद फागुन की पूनम तक सिर्फ यही होता रहता है कि उस डाँडे पर यदि मिले, तो लकड़ी, कण्डे-कचरा और कूड़ा वगैर डालते रहते हैं। होली जलने के कुछ दिन पूर्व प्रत्येक घरों में गोबर की ढालें, तलवारें और 'बरगूला' स्त्रियाँ बनाने लगती हैं। इन्हें सुतली में पिरो-पिरो कर माला-सी बना लेती हैं। पूनम के दिन होली के डाँडे की पूजा करके ये मालाएँ उस पर चढ़ाती हैं। पूनम के दिन शुभ चौघड़िया देखकर नम्बरदार पटेल की देख रेख में या गाँव के मुखियों की उपस्थिति में होली का पूजन कर उसमें अग्नि लगा दी जाती है। डाँडा उखाड़ लिया जाता है, क्योंकि उसे प्रह्लाद माना जाता है। आग लगने के बाद से लोग होली में जलाने के लिये इधर-उधर से चोरी कर लकड़, कण्डे वगैर वस्तुयें ला-ला कर उसमें डालने लगते हैं। उपयोगी वस्तुयें, जैसे—मकान के किवाड़, गाड़ी, इमारती लकड़ी, फर्नीचर वगैरः जो कुछ यार लोगों के हाथ पड़ जाता है, होली की आग में डालकर बड़े ही खुश होते हैं। लोग उन्हें गालियाँ देते हैं, झगड़े होते हैं, मार-कूट भी हो जाती है, परन्तु लोग इस उद्दण्डता से बाज नहीं आते; बल्कि अधिक उद्दंड बन जाते हैं। इसकी ओट में अपनी दुश्मनी निकालते हैं।

होली में आग लगाते ही लोग ऊमी सेंकते हैं। (ऊमी गेहूँ-जौ की बालों को कहते हैं) उन्हें खाते हैं। नारियल फोड़ कर प्रसाद बाँटते हैं और अपने-अपने घर होली की आग ले जाते हैं। होली की आग में नमक भूनकर पशुओं को देते हैं। लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से ढोरों में रोग नहीं होता। कुछ लोग डफ और झाँझें लेकर होली के आस-पास गीत गाने लगते हैं। अधिकांश गीत भद्दे बेहूदे और फाशगालियों से भरे होते हैं। इस दिन होली जलते ही इस प्रकार का हुल्लड़ देखकर ऐसा मालूम होने लगता है, मानो उद्दण्डता का समुद्र उमड़ पड़ा हो।

सुबह के वक्त स्त्रियाँ अपने घर का कचरा-कूड़ा लेकर होली में डाल जाती हैं उनका विश्वास है कि इससे दरिद्र दूर हो जाता है। द्वितीया 'जमरा' नामक एक रीति होती है। गाँव-बलाई की स्त्री को आँखों पर लाल कपड़े की पट्टी बाँधकर उसके हाथ में मूसल देकर जहाँ होली जली होती है, खड़ाकर दी जाती है, फिर प्रत्येक की आती

है और उसके सिरपर रोटी, नमक, मिर्च वगैरः रखकर ऊपर से पानी डाल देती है। इससे उसे बड़ा ही कष्ट होता है। आँख, नाक, कान में नमक मिर्च का पानी घुसता है, बदन भीग जाने पर उसे ठण्ढ मालूम होने लगती है, परन्तु निर्दयता पूर्वक यह प्रथा मनाई जाती है। कहीं कहीं उस औरत से गन्दी मजाकें और अपमान करने वाले कृत्य भी करते हैं। बलाई महासभा ने इसका विरोध किया था और उसे कुछ सफलता भी मिली है।

प्रतिपदा को गाँव में झण्डे लगा दिये जाते हैं। ये झण्डे कलँगी तुर्रा के होते हैं। तुर्रे के झण्डे का रङ्ग भगवाँ और कलँगी का हरा होता है। कलँगी तुर्रे की अलग-अलग पार्टियाँ बन जाती हैं। कलँगी वाले तुर्रे को और तुर्रे वाले कलँगी को हराने की कोशिश करते हैं। डफ के साथ ख्याल वगैरः कविताएँ गाई जाती हैं। इनमें गन्दगी नहीं होती; काव्य उपदेश-मय होता है। जो इस गाने में हार जाय वही हारा समझा जाता है। अब इस प्रथा का लोप-सा होने लगा है। इस प्रकार १२ दिन तक चलता है। चैत्र कृष्ण ५ अर्थात् रंग-पंचमी तक होली का ज़ोर रहता है। बाजार बन्द रहते हैं, लोग यथा स्थान बैठकर हुल्लड़ करते दिखाई पड़ते हैं। छोटे छोटे बालक तासे बजाते हैं और आने जाने वाले लोगों पर धूल और पानी फेंकते हैं, किन्तु अब शिक्षा के साथ ही ये बातें भी कम होती जा रही हैं।

जिस प्रकार किसी की मृत्यु के बाद १२ दिन तक सूतक मनाया जाता है, उसी प्रकार १२ दिन तक होली का हुल्लड़ मचाकर तेरहवें दिन सब लोग मिलकर होली खेलते हैं और इस त्योहार का विसर्जन कर देते हैं, भुने हुए चने वगैरः बाँटते हैं। ओसवाल जाति के लोग 'सूकड़ा' (सेव चने वगैरः) बाँट कर इस उत्सव-यज्ञ की पूर्णाहुति करते हैं। इस त्योहार में उन लोगों के यहाँ अवश्य जाते हैं, जिनके यहाँ मृत्यु हुई हो या बालक उत्पन्न हुआ हो। जिसके घर मौत हुई हो, उस पर रंग डालकर उसे शोक-निवारण सूचक वाक्य कहते हैं और अपने साथ ले लेते हैं। जिसके घर बच्चा पैदा हुआ हो, उसे भंग ठण्डाई अथवा पार्टी करने को विवश करते हैं। कम-से-कम एक नारियल तो ले ही लेते हैं।

होली के दिनों में भंग और शराब की भरमार रहती है। वे लोग भी जो कभी भंग नहीं पीते, इन दिनों पीने में कोई पाप नहीं समझते, बल्कि अपना गौरव समझते हैं। जिन जातियों में शराब की प्रथा है, वे भरपेट शराब पीकर उन्मत्त हो जाते हैं।

कई शहरों में 'गेर' बड़े जोश के साथ निकलती है। ढोल, डफ, झाँझ वगैरः बजाते हुए निकलने को 'गेर' कहते हैं। आगे-आगे ढोल बजता है और लोग लट्ठ, तलवार, छुरे इत्यादि लिए हुए रास्तों में झूमते और गर्जन तर्जन, प्रदर्शन करते उन्हें घुमाते हुए निकलते हैं। बड़ा ही वीर-रस प्रदर्शक दृश्य उपस्थित होता है। इस प्रकार की गेरें अलग-अलग मोहल्लों की या जत्थों की एक के बाद एक निकलती रहती हैं।

इस प्रकार मालव प्रान्त में फाल्गुन पौर्णिमा से लगाकर चैत्र कृष्ण १४ तक पन्द्रह दिन होलिकोत्सव मनाया जाता है।

सबसे छोटा हवाई जहाज़

दुनिया मे सबसे छोटा हवाई जहाज़ जर्मनी में बना है। उसका वज़न ११५ पौण्ड है। उसका मूल्य २०० पौण्ड अर्थात् लगभग ३००० रु० है। इस वायुयान के पंखे की रचना इतनी विचित्र है कि उसे सरलता से घुमाया जा सकता है। ६ मिनट में यह वायुयान ३२५० फ़ीट ऊँचा उड़ सकता है। एक घण्टे तक उसे उड़ाने का खर्च लगभग दो रु० होता है। राम्समुसेन नामक एक जर्मन सज्जन ने इसका आविष्कार किया है, छोटा और हलका होने के कारण यह वायुयान मोटर की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है। इसकी गति एक घण्टे में ८० मील की है। इसके अन्दर ७० सेर की जिन्सें ले जाई जा सकती हैं। इस तरह के अनेक विमान वहाँ तैयार किये जाने वाले हैं। इसलिये युवकों को इसका उपयोग करने की शिक्षा दी जा रही है।

इटली में ज्वालामुखी

इटली मे इस समय ऐसे तीन ज्वालामुखी पर्वत हैं, जिनमें से बोरिक एसिड नामक पदार्थ निकलता है। इनके सिवा एक चौथा ज्वालामुखी और है। पहले तीन ज्वालामुखियों में के पहले में से २३००००, दूसरे में से १७००० और तीसरे में से १००००० किलोग्राम (एक किलोग्राम अर्थात् लगभग २॥ सेर) बोरिक एसिड निकलता है; परन्तु इस चौथे ज्वालामुखी में से १०००००० किलोग्राम बोरिक एसिड निकलता है। पहले तीन ज्वालामुखी शान्त हुए जान पड़ते, परन्तु यह चौथा ज्वालामुखी प्रज्वलित जान पड़ता है।

दो सिर वाली मुर्गी

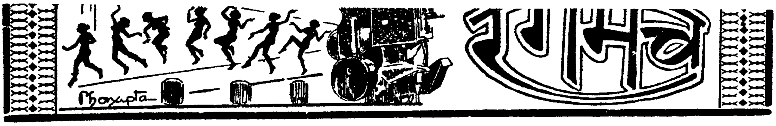
लन्दन के एक बगीचे में एक विचित्र मुर्गी रहती है। यह मुर्गी विचित्र इसलिये है कि उसके एक के बदले दो सिर हैं और दो चोंच भी हैं। दोनों चोंचों से वह खा सकती है। यह घटना डा० नवल के 'दीनबन्धु' नामक पत्र में प्रकाशित हुई है।

१३ का अपशकुन

अंग्रेज़ों में १३ का अंक अच्छा नहीं माना जाता, बल्कि इसे अपशकुन माना जाता है। केवल हिन्दुस्तान के लोग ही वहमी होते हों, सो बात नहीं है, वहम का कोई-न-कोई प्रकार सर्वत्र है। एक बार केन्सिंग्टन की विवाह दर्ज करने वाली कचहरी में उपस्थित होते ही एक महिला बोल उठी—इस कमरे में १३ सज्जन उपस्थित हैं, इस कारण मैं विवाह करने से इनकार करती हूँ। कोई चौदहवाँ पुरुष आए, तब शादी हो। कचहरी के बाहर सख्त सरदी पड़ रही थी। बर्फ भी गिर रहा था। रास्ते पर कोई आ-जा नहीं रहा था। विवाह दर्ज करने वाला अधिकारी बाहर सड़क पर गया और सबसे पहले उसे जो मनुष्य मिला, उसे उसने तेरह का अपशकुन दूर करने के लिए चौदहवाँ स्थान प्राप्त करने की आज्ञा दी। १४ वें पुरुष के आते ही उक्त महिला का विवाह सम्पन्न हुआ।

एक नवीन और विचित्र धातु

मनुष्यों की संहार-क्रिया को किस प्रकार अधिक-से-अधिक भयंकर बनाया जा सकता है, इसके लिए सारा संसार प्रयत्नशील रहता है। हाल ही में इस संहार-क्रिया को उत्तेजन देनेवाली एक नए प्रकार की धातु का बृटेन में आविष्कार हुआ है। कहा जाता है कि उसके उपयोग से युद्ध का रूप एक दम बदला जा सकेगा। यह धातु क्रोमियम, फ़ौलाद और एल्यूमिनियम के मिश्रण से तैयार हुई है। इस धातु का विशेष गुण यह है कि वह वज़न में एल्यूमिनियम से हलकी है, परन्तु फ़ौलाद से अधिक मज़बूत है। उसकी चमक नष्ट नहीं होती। इस धातु से बने हुए वायुयान दूसरे वायुयानों के समान आकार और वज़न के होते हुए भी उनकी अपेक्षा ९० मील अधिक तेज़ी से विचरण कर सकते हैं। इन वायुयानों में चाहे जितनी उथल पुथल हो, चाहे जितने धक्के लगें, उनके भीतरी यन्त्रों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँच सकेगी। इस धातु की बनी हुई गोलियाँ, मज़बूत 'टैंकों' को भी तोड़ सकती हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि भावी युद्ध मनुष्यों का अधिक संहार करने वाला होगा, परन्तु यदि इस धातु का उपयोग दूसरे प्रकार से किया जाय, तो हानि के बदले लोगों का कल्याण हो सकता है। भयंकर शस्त्रादि न बनाये जाकर यदि इस धातु की दूसरी चीज़ें बनाई जायँ, तो हानि के बदले बहुत लाभ होगा। यदि किसी जहाज पर इस धातु का आवरण चढ़ा दिया जाय, तो वह कभी डूब न सके। पत्थर फोड़ने के, लकड़ी चीरने के साधन इस धातु से बनाए जायँ, तो उनमें धार करने की ज़रूरत ही न रहे। इस धातु के वायुयान बनाने के बदले यदि मोटर और साइकिल बनाई जायँ, तो वे कितनी उपयोगी हों! यदि इस धातु को एक दूसरे ही स्वरूप में बाज़ार में लाया जाय, तो और भी अधिक मज़ा आवे। हजामत बनाने के ब्लेड और उस्तुरे इस धातु से बनाये जायँ, तो हमेशा नये ब्लेड ख़रीदने की ज़रूरत ही न हो और न उनमें धार करने की ज़रूरत रहे।



सैरन्ध्री

लेखक—श्रीयुत लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु' बी॰ ए॰

'सैरध्रो' हिन्दी क्या, हिन्दुस्तान का सबसे पहला रंगीन चित्रपट है। अभी हाल में ही यह जर्मनी से रँग कर आया है। इसकी रँगाई में कितना धन व्यय हुआ, इसकी चर्चा करने का यह स्थल नहीं है। हम यहाँ संक्षेप में उसके अभिनय कौशल तथा रंगीन दृश्यों की समीक्षा करेंगे। हिन्दी के लिये यह यद्यपि बहुत हर्ष की बात नहीं है कि अब तक जितने अच्छे सवाक् चित्रपट हिन्दी में बने हैं, उनके अभिनेता अधिकांश मराठे, गुजराती या बंगाली ही हैं। राष्ट्र भाषा के विचार से यह भले ही समुचित हो, किंतु हिन्दी भाषा भाषी जनता के लिये लज्जा की बात है। सैरध्री के अभिनेता भी मराठे ही हैं। हिन्दी उच्चारण में कोई विशेष मार्के की बात नहीं। इसका कथानक महाभारत के विराट् पर्व से लिया गया है, किंतु इसमें बहुत काट-छाँट की गई है। प्रस्तुत कथानक से हमें महाभारत का कथानक ही, सिनेमा के ख्याल से भी अच्छा जँचा। फिर भी सैरध्री के कथानक को बिलकुल खराब हम नहीं कह सकते। उसमें भी कुछ नवीनता है। अभिनय की दृष्टि से यदि विचार किया जाय, तो इसमें केवल सैरध्री का अभिनय करने वाली मिस लीला का ही पार्ट अच्छा है। अन्तिम दृश्य का पार्ट जब विराट् नगर की महारानी सुदेष्णा ने सैरध्री को जबर्दस्ती कीचक के पास मदिरा लाने के बहाने भेजा है, बड़ा ही मर्मस्पर्शी हुआ है। अभिनय की कला यहीं उत्कर्ष पर पहुँचा है। अन्य अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों के पार्ट साधारण हैं। आरम्भ में मिस लीला के पार्ट में भी कुछ विशेष चमत्कार नहीं है, किन्तु पीछे उसका पार्ट बहुत ही हृदय ग्राहक हो गया है। भगवान की प्रार्थना के समय तो आँखों में आँसू भर आते हैं—इस चित्रपट में सबसे खास बात है, इसका रंगीन दृश्य। रंगीन दृश्यों के बनवाने में जितना धन व्यय हुआ है, उतना सुन्दर यह नहीं बन सका है। इसके कई कारण हैं। रंग की कूची बड़ी गहरी पड़ी है, दृश्य स्पष्ट नहीं हो सके हैं, सबके चेहरे धुँधले हो गये हैं। अभिनय में चेहरे पर सिकुड़न की जो विशेषता दिखाई जाती है, वह नष्ट हो गई है। बहुतों को सूरतें तो रेड इंडियनों की तरह लाल हो गई हैं। आरम्भ में चित्र-योल्यास का जो दृश्य दिखाया गया है, वह रंगों के कारण ऐसा मालूम होता है, जैसे सूर्यास्त के बाद चित्र लिये गये हों। कहीं कहीं दृश्य स्पष्ट भी हैं, किन्तु वैसे बहुत कम स्थल हैं। गालों की ललाई के लिये जो रंग भरा गया है, वह भी बहुत अधिक मालूम होता है, जर्मन चित्रकारों ने अपने देश के स्टैण्डर्ड से ही काम लिया है।

चिट्ठी-पत्री

मासिक विश्वमित्र का 'प्रलय-अंक'

'मासिक विश्वमित्र' का आगामी अङ्क 'प्रलय अंक' होगा। पृथ्वी के इतिहास में समय-समय पर प्राकृतिक अथवा दैवी प्रलय ज्वालाओं तथा मानवी संहार-लीलाओं की जो लोमहर्षक और विभीषिकापूर्ण दुर्घटनायें घटी हैं, उनका इस अङ्क मे आश्चर्यजनक विवरण रहेगा। प्रलय तथा सहार सम्बन्धी बहुरगे और सादे चित्रो की भरमार रहेगी। प्रत्येक लेख में नवीनता और विशेषता रहेगी। इतना होने पर भी सर्व साधारण के लिये मूल्य ॥=) ही रहेगा। यह अंक सर्वथा संग्रहणीय होगा।

भवदीय,
व्यवस्थापक

पद्मसिंह दिवस

आगामी ७ अप्रैल सन् १९३४ ई० को स्व० प० पद्मसिंहजी शर्मा की स्मृति में कर्मयोग-कार्यालय, लखनऊ की ओर से पद्मसिंह दिवस मनाने की योजना की गई है। इसी अवसर पर सायकाल ७ बजे से हिंदुस्तानी बुकडिपो चारबाग, ए० पी० सेन रोड और लाटूश रोड के मिलान पर लखनऊ में श्रीयुत सनेहीजी के सभापतित्व में एक विराट् कवि-सम्मेलन भी होगा, जिसमें युक्तप्रान्त के प्राय सभी प्रमुख कवि पधारेंगे। सूचना मिलने पर बाहर से आए हुए सज्जनों के सत्कार के लिए उचित प्रबंध किया जायगा।

आशा है, पधार कर सम्मेलन की शोभा को बढावेंगे।

—मदनेश शुक्ल, स्वागताध्यक्ष

हरिजनों के सुधार और उद्धार का एकमात्र

अचूक मार्ग

माननीय सज्जनो!

काशी ही में नहीं, समस्त देश में अछूत कही जाने वाली जातियाँ प्राय: सार्वजनिक बस्तियो से अलग और दूर टोलियों में बसी हुई पाई जाती हैं। यह लोग कब से ऐसी दशा में अलग पड़े हैं, इसका पता लगना कठिन है, परन्तु सवर्ण जातियों का इन लोगों से किसी प्रकार का कोई सामाजिक सम्बन्ध दृष्टिगोचर नहीं होता, इससे जान पड़ता है कि यह अलगाव दीर्घकालीन है। यही अलगाव इनकी समस्त बुराइयो तथा अछूतपन का मुख्य कारण है। इनके सुधार के पुण्य कार्य में जो महानुभाव अपना अमूल्य समय लगा रहे हैं, उन्होंने इस मुख्य कारण का अवश्य अनुभव किया होगा। अलग और सवर्णों से असम्बन्धित रहते-रहते वास्तव में इन लोगों में ऐसी गंदगी फैल गई है कि चित्त को ग्लानि होती है। आचार-विचार में तो इतना अन्तर हो गया है कि इनकी सृष्टि ही अलग प्रतीत होती है। ऐसा कोई दुर्गुण न होगा, जो इन लोगों मे न पाया जाता हो।

जिस अकथनीय दशा में यह भारत के लाल अपना कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उसे देख कर कौन ऐसा देश-भक्त होगा, जिसके आँखों से आँसू न निकल पड़े। इन लोगों की अल्प कमाई निर्वाह के लिये भी पर्याप्त नहीं होती। तिस पर मद्यपान और अगणित कुरीतियों का लम्बा खर्च किसी प्रकार नहीं चल सकता। इसका परिणाम यह हुआ है कि निर्दय काबुलियों ने इन्हे अपने जाल में फाँसा, जिनके कर्जे का सूद दुअन्नी और चवन्नी रुपये महीने की दर से इन बेचारों को विवश होकर देना पड़ रहा है। ऐसी असाधारण अवस्था में 'भारत काह न करै कुकरमू' के अनुसार जो भी कुकर्म यह लोग न करते हों, सो थोड़ा है। इसके अतिरिक्त आप जानते हैं कि ईसाइयों ने अपना प्रचार कार्य सवर्णों से हटा कर अछूतों में आरम्भ कर दिया है और इन्हें अकेला पाकर ईसाई बनाने की चेष्टा भरपूर कर रहे हैं। यदि आप अपनी बस्तियों में शीघ्रातिशीघ्र इन्हे स्थान नहीं देते, तो याद रखिये १० ही २० वर्षों में आप इन सात करोड़ हिन्दू भाइयों से हाथ धो बैठेंगे।

अत: यदि आपके हृदय में इन दीन-दुखियो का कुछ दर्द है, तो इन्हें शरण मे लीजिये, और धन तथा भूमि से हमारी सहायता कीजिये। आप का यह दान इनके लिये शहर के विभिन्न मुहल्लो में मकान बनाने में व्यय होगा। इससे आप का सब तरह लाभ-ही-लाभ है और इनके लिये तो यह उपाय कल्याण का सर्वोत्तम स्रोत है, क्योंकि इनके दुर्गुण सवर्ण भाइयों की सुसंगति से ही मिट सकते हैं अन्यथा नहीं।

निवेदक—

गौरीशंकरप्रसाद एडवोकेट, प्रधान।
गोविन्दप्रसाद, मन्त्री।
हरिजन-सुधार-समिति, आर्य-समाज, काशी।



उस रोज गुप्तनजी को त्रिवेणी तट पर देखकर 'मदारी' मियाँ को बड़ा अचरज हुआ। मगर भई ! इसमें अजरज की बात ही क्या है ? कवि हैं, Inspiration (स्फूर्ति) के लिये पहुँच गये होंगे। सिर्फ उजली उजली बनारसी गंगा से तिरंगी त्रिवेणी जरूर ही ज्यादा मजेदार होगी।

❀ ❀ ❀

बात भी ठीक ही है, काशी में तो गुप्तनजी की कल्पना सुप्त सी हो गई थी, पर जान पड़ता है 'टूर' (Tour) ने आप का बड़ा उपकार किया है ! देखिये न आप की ही बदौलत 'आवरू संगीत' से 'सरस्वती' की गोदी भर गई है। कोई माने या न माने, हम तो यही कहेंगे, आपका संगीत 'पन्तजी के 'सुख दुख' वाले गीत-शिशु से ज्यादा नहीं तो कम भी नहीं है। बड़े बड़े कलाकारों के समान जोड़ का तोड़ प्रसव कर देना, क्या आप जैसे विधुर के लिये कम सफलता की बात है ?

❀ ❀ ❀

मासिक 'विश्वमित्र' ने हाल में ही 'नारी जागरण अंक' निकालकर स्त्रियों को जगाया था, पर पता चला है, अब 'प्रलय अंक' निकाल कर पूरा प्रलय ही मचाना चाहता है। सुना था, वह तो विश्व का मित्र है, फिर यह संहारक नीति क्यों ? कोमल-कोमल कामिनियों के हाथ में मशाल देकर बेचारे ब्रज भाषा के कवियों को जीवित भी नहीं रहने देना चाहता क्या ?

❀ ❀ ❀

१६ फरवरी की 'सुधा' में श्री दुलारेलाल भार्गव ने किसी 'सुलोचना' की मनमोहन छवि पर अपनी दोहावली न्यौछावर कर दी है पर उस सुन्दरी का नाम लिया तक नहीं। आखिर यह चतुराई क्यों ? हम तो जानते ही हैं कि आपका विधुर-व्रत अभी भंग हो ही नहीं सकता !

❀ ❀ ❀

जिसे अपने नाम के साथ बड़े बड़े शब्दों की ख्वाहिश हो, उसे चाहिए कि जल्दी से जल्दी गंगा पुस्तक माला से अपनी कोई पुस्तक निकलवा ले। फिर क्या है ? अगले महीने से 'महा' की 'सुधा' प्याली उसे कमरज मिलेगा।

❀ ❀ ❀

'आजकाल 'बिसाल भारत अखार' चौबेजी चुप काहे हउअन हो ?'

'भइ मर्दवा ! जनतअ नाहीं, आजकाल बनारसी ठग—सिव सिव—'उग्गार' बम्बई से एकठे 'हिन्दिया' निकालै जात हउअन न।'

'तो एमें का ?'

'अरे यार ! पुरानी बात तो तू कुछ जनतै नाहीं हउअ।'

'अच्छा, अब बताव पहले। त पुरानी अदावत निकालै खातिर सब ताकत एक जगहें करत हउअन, काहे ?'

'हाँ उतौ हइए हौ, ओक साथे साथ खाली 'हिन्दिया' नामो से तो ओन्ह चिढ़ हौ न।'

'ई कैसे मालूम ?'

'अरे जनतअ नाहीं, कोरा भारतै होवे से ता 'लाडर' क नद दुलारे 'भारत में ई मुहँतोड़ उठाय देहले रहलन, अउर बिसाल के संगे होये से 'बिसालभारत' के कबूतर क अण्डा के मातिन सेवै लें।'

'अरे गुरु ! ऐसन न कहअ, मुहँतोड़ फिर न उठै। हम लोगन कहवाँ जाब।'

'जय संकर' क कहअ संकर के 'परसाद' से हमार कासी सबसे न्यारी हौ। हमैं तो तनिकौ डरे नाहीं।'

'तब तौ ठीक हौ, कहेदअ बम्बई कलकत्ता के, आवअ हम लोगन पाव स अमाय लेई।'

—एकलव्य

सम्पादक-लेखक सम्वाद

सम्पादक ऋषि से विनत, लेखक-मुनि कर जोड़।
सबमिलकर पूँछत भये भाखा पद्य निचोड़ ॥

लेखक उवाच—

सम्पादक सुरवरन में आप सबै सिर मोर,
अन्धकार में फिरत है, हम सब जन जस चोर
कृपया आज दिखायदो ज्ञान रश्मि की कोर,
भाषा कविता वाद को, खड़ी पड़ी की डोर।

तत—

गणपत सुरसत को मना, प्रिय प्रयाग में न्हाय।
सम्पादक सब मुनिन को कहत भये समुझाय ॥

सम्पादक उवाच !

ध्यान लगा कर वत्स मम सुनो महाखल बैन,
लचका मटका कर कमर, और नचा कर नैन।
मोसम या जग में कहूँ, नहीं और है अन्य,
सब लेखक, कवि कुल सभी कहते तुम हो धन्य।
भाइ द्विवेदीजी सदा, भाई रत्नाकर दास,
भाई गणेशजी भी सदा, रखते थे मम आस।

❀ ❀ ❀

जो मेरे संग आ गये, किया काव्य का दान,
सुकवि वे कहला गये, उनको है कुछ ज्ञान।
बनाना हमसे सीखा है !
गुप्त मैथिलीशरण को, कविता खड़ा बताय,
ज्ञान मार्ग समझादिया, रूखी दी समुझाय।
लगाया धन्दे से इनको !
गिरिधर शर्मा गुजराती में गुर्वी काव्य लिखेंगे,
सूरदास के भक्त गणों में माथुर मित्र बनेंगे।
मार्ग हमने बतलाया है !
काव्य क्षेत्र में कविता का हल हमनें प्रथम चलाया,
ज्ञानाकर तरुणों के सिर में गुप्त रूप उपजाया।
हमीं को धरणीधर मानों !

पन्त, प्रसाद, निराला तो सब वाद मवाद बने हैं,
कल के बच्चे हैं, क्या जान, ये तो आज बने हैं।
वाद के कर्ता ब्रह्मा हमी हैं!
सम्पादक सब जगत के, हैं मेरे ही छात्र,
पूछो भाई गाम्धि से मैं कैसा हूँ पात्र।
आद्य सम्पादक हूँ मैं ही मात्र!
भाषा भारत की सभी लगभग मेरी ज्ञात,
पर मैं पर्दे में रहा जग मुझसे अज्ञात।
सकल शास्त्र कण्ठ धान!
अंग्रेजी में नहीं और है मुझसा कोई अन्य,
बचा न कोई पत्र है पढ़ा न होय अधन्य।
भाई चिन्तामणि से पूछो!
नाटक काव्य साहित्य रचना सकल मराठी पत्र,
देखे, पढ़े, भाव हड़पे हैं, यत्र तत्र सर्वत्र।
भाई केलकर से पूछो!
राजा बाबू-नेता-नेती, तरुण और सुकुमार,
भाई मित्र पुत्र प्यारे हैं, भारत भर परिवार।
माल मौरूसी मेरा है!
गद्य पद्य में धाक बनी है, मेरा ही है राज,
छन्द शास्त्र ग्रामर की मैंने रखी हुई है लाज।
कलेवर तमोगलित मम है!
कविता में रक्खा क्या हैगा, रचो शब्द के जाल,
तरुणों! तत्क्षण बैठा दूँगा उन्नत तरु की डाल।
हाथ में सब कुछ मेरे है!
कितने ही कोमल बालों को मैंने खूब बढ़ाया,
अपने संग खिलाया खाया, और काव्य सिखलाया।
जगत में वे सब फैले हैं!
भाषा क्या, दासी है मेरी, मैं उसका आचार्य,
जाल पसारा मैंने उसका, जाने आर्य अनार्य।
पूछ लो यू० पी०, सी० पी० में!
लेखकगण भाई तरुणों तुम, कोमल कुसुम कली हो,
यमुना तट मैं कान्ह बनूँ, तुम ब्रज की लली गली हो।
रास का रस भर भर पीवें!
भाई मेरे तरुण तपस्वी, तुम्हीं राष्ट्र आधार,
लड़ो पड़ो के वाद स्वाद का, करो न तुम व्यापार।
नाम न लो बस काम करो तुम रचना धुआँधार,
अपनी सेवाओं से रच दो, माँ के हिय का हार।
अहम् त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्ष मिथ्या मिमाशुक,
प्यारे, कविता क्यारी के बानी भाषा की हो कूक।
मेरी वाणी तो दुर्बल है और हुई है मूक,
अब तो मेरे जीवन वन की तुम्हीं काकली-कूक।
बात बस सोलह आने है!

—'शाह मदार'

❀ ❀ ❀

राष्ट्र-पति अणे साहब ने जेल से निकलते ही कहा है कि यदि मैं वायसराय होता, तो सभी उच्च अधिकारियों की एक सप्ताह की चतुर्थांश तनख्वाह काट कर भूकम्प पीड़ितों को बाँट देता। और जनाब अगर मैं वायसराय होता, तो भूकम्प से गिरे हुए मकानों के मलबों में से लाखों रुपये की रकम, सरकारी नौकरों की जेबों में और करोड़ों रुपये की रकम सरकारी खजाने में पहुँचा देता।

❀ ❀ ❀

सुना जाता है कि वायसराय फंड का चन्दा, भूकम्प पीड़ितों को कर्ज के रूप में दिया जायगा। परन्तु, प्रश्न यह है कि उस कर्ज की रकम लौटाने पर उन रुपयों का क्या होगा? होगा क्या, उन रुपयों से नई दिल्ली की तरह नया कलकत्ता बसा दिया जायगा। जिसकी नींव हमारे वर्तमान लाट महोदय के करकमलों द्वारा डलवाई जायगी।

❀ ❀ ❀

उस दिन के 'आज' में 'आज' सम्पादक ने अपने सम्पादकीय स्तम्भ में भूकम्प से मरे तथा पीड़ित हुए लोगों के शोक में कोई उत्सव या खुशी न मनाने की राय दी है, और हमारे काशीराज ने भी अबकी बार होली का उत्सव न करने का निश्चय किया है, परन्तु अपनी राय में तो इस साल, दूने उत्साह से होली मनानी चाहिए, क्योंकि विगत १५ जनवरी के दिन के दो बजे के लगभग ४ मिनट तक सभी काशी वासियों की ऊर्ध्वश्वास चली है, और भयंकर भैरवीयातना का दृश्य उपस्थित होकर नई जिन्दगी हुई है। इसलिये भैया, जिये सो खेले फाग।

—परलू पाँड़े

❀ ❀ ❀

बुरा हो इन सुधारवादियों का! जिनके मारे बेचारे वर्णाश्रम स्वराज्य संघ वालों को शाखा में शाखा जोड़ कर प्रस्ताव पास करना पड़ रहा है। यदि अपने राम की बात किसी को झूठी मालूम हो तो बम्बई में होने वाले गत दिसम्बर मास के अखिल भारत वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के अधिवेशन के कार्यक्रम की रिपोर्ट देखें। सौतिया डाह इसी को कहते हैं।

❀ ❀ ❀

कहने को तो अखिल भारतवर्ष का अधिवेशन था, किन्तु उपस्थिति अँगुलियों पर गिनने भर को थी। कुछ मनचले यारों को वहाँ पहुँचने के लिए लार टपक रही थी, लेकिन लाचार थे, उसमें लगे हुए १४४ दफा से, यानी उसमें उसी आदमी को प्रवेश करने का आर्डर था, जिसको कोई वर्णाश्रम स्वराज्य संघ का सदस्य अनुमोदन कर दे कि यह भी हमारी ही तरह सनातनधर्म पालन करता है, तिस पर भी सरकसों की तरह ५) रुपया से लेकर ॥) तक का टिकट लेने पर। जिससे मनचले यारों की आशाओं पर पानी फिर गया।

❀ ❀ ❀

एक मसल है कि बार-बार कूदने से भी लोमड़ी जब अंगूर न पा सकी, तो कहने लगी कि जाने दो यह तो खट्टा है। ठीक यही हाल यारों का है, ये सब-के-सब बाहर शोर मचाने लगे कि सनातनधर्म वाले तो धर्म बेचते हैं। अरे यारो, तुम्हें तो तमाशा लगा है, इधर दादा सनातनधर्म की लुटिया डूब रही है, जब उसे बचाने के लिए गुप-चुप अन्दर सलाह करते हो, तो क्यों उछल कूद मचाते हो। अपने राम की राय में वर्णाश्रम स्वराज्य संघ वालों को चाहिए कि अब आगे से अपना अधिवेशन किसी शहर या नगर में न कर के हिमालय के किसी कन्दरा में करें, जहाँ ये शैतानी पट्ठे न पहुँच सकें। न रहेगा बाँस और न बाजेगी बाँसुरी।

❀ ❀ ❀

कौन कहता है कि महात्मा गान्धी देश हितैषी हैं। अछूतों के लिए भले ही हितैषी हों, लेकिन दादा सनातनधर्म के लिये तो घोर द्रोही हैं, तभी तो बम्बई के वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के महा अधिवेशन में एक उपदेशक महाशय पर इसलिये बुरी तरह फटकार पड़ी की उन्होंने अछूत मन्दिर प्रवेश निषिद्ध बिल पेश करते हुए गान्धी को महात्मा गान्धी कह दिया था। अपने राम की राय में तो यह छोटी सी चेतावनी है, अगर बुड्ढ बाबा अब भी अपनी चाल नहीं छोड़ेंगे और अछूतोद्धार करते ही रहेंगे, तो गान्धी को भी अलग करके केवल मोहनलाल करमचन्द के नाम से पुकारे जायँगे।

—'बटोही'

एक अंक का एक आना

जागरण

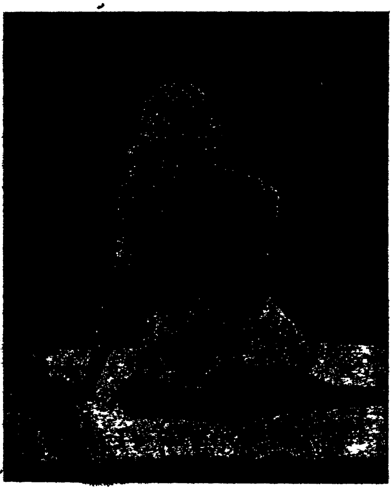
THE JAGARAN

सम्पादक—प्रेमचन्द

Illustrated Weekly

वर्ष २ | काशी, मि० चैत्र शुक्ल ४ सोमवार, सं० १९९१ वि०। ता० १९ मार्च सन् १९३४ ई० | अंक ३०

महात्मा गांधी



आज-कल आप बिहार का निरीक्षण कर रहे हैं

बरबाद बिहार की पुकार

मदद को दौड़ो, अहल वालो,
बिहारी भाई तड़प रहे हैं,
जनक दुलारी के देश वाले—
बिलख रहे हैं, बिलख रहे हैं।
गरज के, जब धरती डोल उट्ठी,
अचल हिमाचल भी काँप उट्ठा,
ग्रहों का ऐसा कुयोग आया—
गृहों ही में लोग खप रहे हैं।
कहीं है बालू, कहीं है गन्धक,
कभी है वर्षा, कभी है अन्धड़,
फिर उसपै रोग और अकाल आया,
न जिसके कारण पनप रहे हैं।
हुए हैं आकोन लखपती तक,
लगोटियाँ हैं, न रोटियाँ हैं,
बचा खुचा जो है खँडहरों में,
उचक्के उसको हड़प रहे हैं।
पुकार राजेन्द्र की यही है,
यही महात्माजी कह रहे हैं—
'तुम उनकी झोली में भीख डालो,
जो आज हरिनाम जप रहे हैं।'

—राधेश्याम कथावाचक कविरत्न

जागरण

मि० चैत सुदी ४ सोमवार, सं० १९९० वि०

हिन्दू-समाज के वीभत्स दृश्य—(१)

लाश की दुर्गति

समाज में कुछ बुराइयाँ ऐसी हैं जिनके सुधार के लिये शास्त्रों के प्रमाण खोजने पड़ते हैं, कुछ ऐसी हैं जिनके लिये कानून में संशोधन कराने की ज़रूरत है। यह दोनों ही बातें कष्ट साध्य हैं, लेकिन कुछ ऐसी बुराइयाँ भी हैं, जिनके सुधार के लिये न शास्त्रीय प्रमाणों की ज़रूरत है, न कानून की; केवल समाज में एक प्रकार के सद्भाव और सुरुचि की, और हिन्दू लाशों की दुर्गति उन्हीं में एक है। ऐसा जान पड़ता है कि किसी हिन्दू के मरते ही उसके सगे-सम्बन्धियों को उसके देह-मात्र की ममता नहीं रह जाती, फटपट बाँस का ठाठ बना, शव को उसी के कफ़न से बाँध, लोग किसी नदी या तालाब की ओर भाग चलते हैं। अगर किसी अमीर की लाश है, तो ज़रूर रेशमी या शाल का कफ़न है, ग़रीब की है, तो मामूली मैला कुचैला, और कंगाल है, तो चिथड़े ही उस के कफ़न के लिये काफ़ी हैं। अगर बाँस का ठाठ और रस्सियों का बन्धन मज़बूत रहना चाहिए। और लाश को ऊपर लोग कितनी लापरवाही दिखाते हैं कि उसके झोंके से लाश लटक [illegible] जाती, हाथ लटकती और पाँव लटकती चलती है, अगर इतनी मज़बूती से बँधी न हो तो शायद ही नीचे गिर पड़े। लाश को रास्ते-भर में देर तक न रखना चाहिए, लेकिन यह क्या कि जिसको जीते इतना प्यार करते थे मरने के बाद उसके साथ ज़रा भी मुरौवत, ज़रा भी सौजन्य नहीं दिखा सकते। क्या वह स्वार्थ का ही सम्बन्ध था? और अब उस सम्बन्ध को निबाहने की कोई ज़रूरत नहीं रही? कहा तो जाता है कि मरने पर भी आत्मा देह के पास मँडराती रहती है; लेकिन स्वार्थी हिन्दू समाज इसकी बिलकुल परवाह नहीं करता।

और रास्ते में 'राम नाम सत्य है' का यह घोष मानो है कि [illegible] न पूछिये। [illegible] मुर्दे का काम हुआ तो [illegible] और [illegible] है। [illegible] है कि [illegible] लाश की [illegible] रता की याद दिला दी जाय—यह आदमी मर गया, इसी तरह एक दिन तुम भी, और तुम्हारे अपने भी राम नाम सत्य हो जाएँगे। मृत्यु एक ऐसा कठोर सत्य है जिसको बार बार याद दिलाने की ज़रूरत नहीं। सब जानते हैं हम एक दिन मरेंगे। हिन्दू समाज में मौत का भय और भी अधिक है। अगर कोई मौत को भूल गया है तो वह बड़ा भाग्यवान है। क्यों शोर मचा कर उसको मौत की याद दिला रहे हो। इस शोर-गुल से हमारी धार्मिकता का नहीं हमारी हृदय शून्यता का बोध होता है। वह समय इतना गम्भीर और वह दृश्य इतनी मर्मस्पर्शी होती है कि चित्त को कम से कम कुछ देर के लिये अन्तर्मुखी हो जाना चाहिए। शोक गहरा होने पर मूक हो जाता है। जिस समय मूक वेदना और गहरे आत्म चिन्तन और मृतात्मा के प्रति सच्ची शुभ कामना और मृत्यु के रोब और आतङ्क तथा अनन्त की कल्पना से हमारे मन को द्रवीभूत हो जाना चाहिए हम इस तरह भागते और चिल्लाते हैं, मानों हमें शोक कम और स्वार्थ मय भय अधिक है। ईसाइयों और मुसलमानों को देखिए। उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया कितनी शांत, गम्भीर कोमल और सौजन्य पूर्ण होती है। बाँस की टिकठी की जगह या तो लकड़ी का ताबूत होता है या पलंग। शव उस पर बहुत प्यारे से लिटा दिया जाता है और ताबूत के आगे चाले सिर झुकाए, बहुत आहिस्ता-आहिस्ता कब्रिस्तान की तरफ़ जाते हैं। मातम करने वाले या उसी [illegible] के जनाजे के पीछे-पीछे चलते हैं। इस दृश्य का देखने वालों पर इतना असर होता है कि राह चलते लोग [illegible] ठिठक जाते हैं। मृत प्राणी के प्रति इन लोगों का यह सम्मान और स्नेह देखकर चित्त [illegible] होता है। उसके विपरीत, हिन्दू [illegible] की [illegible] देख [illegible] है कि उसे [illegible] जा सकते हैं।

[illegible] तो हुई रास्ते की [illegible]। [illegible] का दृश्य तो और भी [illegible] होता है। [illegible] की [illegible] चिता, शव का उस पर लिटाया जाना, वह आग का लगना, वह चिरौंच वह बैल चिढ़ाने लोगों का डंडे लिये चिता की लकड़ियों का उकसाना और शव को उलटना-पलटना, वह कपाल क्रिया, वह आँतों का फूटकर बाहर निकलना—इतना रोमांचकारी दृश्य है कि जो उसके अभ्यस्त नहीं हैं, उन्हें कई दिन तक ग्लानि होती रहती है। इससे बढ़कर शव की क्या दुर्दशा हो सकती है? यह दृश्य देखकर साधारण आदमी मृत्यु से भयभीत हो उठे तो क्या आश्चर्य है। अगर मृत्यु नए जन्म का द्वार है, तो इतना असुन्दर, इतना असामञ्जस्य क्यों? मृत्यु को इतने नग्न, इतने वीभत्स रूप में दिखाकर हम अपनी आत्मा को दुर्बल करते हैं। क्यों शव दाह का कोई ऐसा विधान नहीं सोचा जाता जिससे मृत्यु हमारे सामने इतने भयानक रूप में न आवे, हम उसका पैशाचिक ताण्डव न देखकर उसका शांत वैभव देख सकें। अपने ही प्यारों को आँखों के सामने इस दशा में देखकर चित्त में विराग और जीवन से उदासीनता उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

जिस माता के स्तन से हम पले, जिन अङ्गों के स्पर्श में हमने अपार सुख का अनुभव किया, जिस बालक को हमने गोद में खेलाया और जिन मित्रों के गले लिपट कर हमने सुख के दिन काटे उन्हीं को यों जलते, चिटकते, फटते देखना, हृदय को कोमल भावनाओं से शून्य कर देता है, और शायद यही कारण है कि जीवन में हमारी चाहे जितनी दुर्दशा हो, कितना ही अपमान सहना पड़े, हम सब कुछ 'शीर मादर' की तरह पी जाते हैं। क्या अपने प्रिय जनों की दुर्दशा करना भी शास्त्रों में लिखा हुआ है? क्यों ऐसी वीभत्स लीला देखकर भी हममें उसके प्रति घृणा नहीं उत्पन्न होती? रिवाज शास्त्रों से भी ज़्यादा दीर्घायु होते हैं यह सत्य है लेकिन यह भी सत्य है कि समय के प्रवाह के सामने रिवाजों को हमेशा परास्त होना पड़ा है और कोई वजह नहीं है कि इस विषय में भी सुधार न किया जाय। यूरोप में भी कभी कभी शव-दाह की क्रिया होती है लेकिन यन्त्रों की मदद से यह लीला इतनी जल्द और इतने परिष्कृत रूप से समाप्त हो जाती है कि आदमी की सारी देह भी क्षण मात्र में अदृश्य हो जाती है।

इस दुर्दशा के बाद तब आत्मा को शान्ति का आयोजन शुरू होता है और तेरहवें दिन ब्रह्मभोज से उसकी समाप्ति होती है। धर्म के नाम पर कैसे-कैसे पाखण्ड किए जाते हैं, वह मिले दान और वह महापात्रों के झगड़े और वह [illegible] [illegible] का मुर्दों पर टूट पड़ना—देखकर इतनी—ऐसी बीभत्स हिन्दू संस्कृति की कुत्सामय कल्पना देती है। जीवन मरण, रहन-सहन, रस्म-रिवाज से ही हमारी संस्कृति का बोध होता है। अन्य धर्म या जाति वाले हमारे पुराण ग्रन्थों और उपनिषदों को पढ़ने नहीं आते। वे तो हमारे रहन-सहन को देखकर हमारे विषय में धारणा बना करते हैं। शायद मृत दाह की दुर्गति देखकर ही ज्ञानियों और संन्यासियों का रिवाज पड़ा होगा। इस समय जो प्रथा प्रचलित है, उसमें सुधार और सुरुचि की बड़ी गुंजाइश है।

रूस में धर्म विरोधी आन्दोलन

रूस में इन दिनों ईश्वर द्रोही सोवियट सरकार ने फिर लोगों के ईश्वर के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया है। इधर उसके अधिकारवादी नेताओं के कुछ सुस्ती आ चली थी, जिसका नतीजा यह हुआ कि जो गिरजे बन्द कर दिए गए थे वह फिर खुल गए और जनता में धर्म चर्चा फिर चल गई। दुनिया के इस पर चाहे जितना खुश होवें, मगर हम तो यही कहेंगे कि इसकी ज़िम्मेदारी नास्तिक सरकार पर नहीं उन धर्मोपजीवियों पर है, जिन्होंने धर्म के नाम पर नाना प्रकार के पाखण्ड फैला रखे हैं। ईश्वर मन की एक अवस्था है। उसके लिये मन्दिरों, मसजिदों या गिरजा घरों की ज़रूरत नहीं। वह घट-घट व्यापी है, एक-एक अणु में उसका ज्योति है। वह मनुष्य की कमाई पर चैन करने वाला नहीं कि उसे इसकी चिन्ता हो कि लोग उससे विमुख न हो जायँ। जो लोग ईश्वर भक्ति की धुन में बड़े-बड़े महल बनवाते हैं कि ईश्वर इसमें रहेगा, वे असीम को चारदीवारी में बन्द करके व्यापक ईश्वर का अपमान करते हैं और जो लोग उसकी प्रतिमा बनाकर उसका शृङ्गार करते हैं, भोग लगाते हैं, उसका विवाह करते हैं और उसके नाम की माला जपते हैं वे तो ईश्वर को खिलौना बनाकर ऐसा पाप करते हैं जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। ईश्वर की उपासना का केवल एक मार्ग है, और वह है मन, वचन और कर्म की शुद्धता, अगर ईश्वर इस शुद्धता की प्राप्ति में सहायक है, तो शौक से उसका ध्यान कीजिये, लेकिन उसके नाम पर जो हरेक धर्म में स्वाँग हो रहा है, उसको जब तक किसी तरह ईश्वर द्रोह नहीं बल्कि ईश्वर की सबसे बड़ी सेवा है। और सोवियट सरकार इसी पाखण्ड का अन्त करना चाहती है। सर्वशक्तिमान ईश्वर के

आदमी क्या द्रोह करेगा ? गंगा को इसकी क्या परवाह कि कोई उसे फूल चढ़ाता है या थूके। वह दोनो ही को समान रूप से बहा ले जाती है।

जमीदारोंने फिर मुँह की खाई

यू० पी० कौंसिल में अवध के एक ताल्लुकेदार साहब ने यह प्रस्ताव किया कि उन्हें असामियों से ल गान वसूल करने के लिए ज्यादा सख्ती से काम लेने का अख्तियार दिया जाय। खुद तो ये लोग रोया करते हैं कि सरकार उनसे बड़ी सख्ती से मालगुजारी वसूल क ती है लेकिन खुद जिस बात से उन्हे शिकायत है वही अधिकार दूसरों पर प्राप्त करना चाहते हैं। शुक्र है, कि गवर्नमेंट ने इस प्रस्ताव को नामजूर किया नहीं, नहीं तो गजब ही हो जाता। जमीदार लोग भूल जाते हैं कि किसानों पर वे जितनी सख्ती करते हैं, अगर उसका शताश भी सरकार उन पर कर तो वह जमींदारी छोड़ कर भाग खड़े हों। सरकार ज्यादा से ज्यादा हिरासत में ले लेती है, वहाँ तो किसानों पर डण्डे भी पड़ते हैं, उन्हें धूप में भी खड़ा किया जाता है, मुर्गा भी बनाया जाता है। अब और आप क्या यह अख्तियार चाहते हैं कि असामी से लगान न वसूल हो तो उसे पीस कर पी जाँय ? किसान से अगर लगान नहीं वसूल होता तो इसलिए कि वह द नहीं सकता। उस पर तरह तरह की दैवी आफतें आती रहती हैं, जिससे उसका कोई काबू नहीं चलता। उस गरीब को तो आने रोज की मजूरी भी नहीं पड़ती। जमींदार अगर लगान नहीं दे सकता तो इसलिए कि वह ऐश आराम में अपना आमदनी से ज्यादा खर्च कर देता है। और फिर उसे तो जो कुछ मिलता है वह माले मुफ्त है। हाँ, जिन बेचारे जमींदारों ने गाढ़ी कमाई के पैसे से जमींदारी खरीदी है, उनकी दशा शोचनीय है। ब्याज देख रहे थे बेशी लगान करके घर भर लेने का, कहाँ अब रुपए का सूद भी नहीं निकल रहा है, मगर लगान, न सही सीर, सायर तो है, नजराना तो है, चौथा तो है, बेगार तो है। और अगर उसने गलती की तो उसका फल भोगे। बैंकों और मिलों में भी तो कभी कभी रुपए डूब जाते हैं। सरकार के इस जवाब से जमींदारों की आँखें अगर अब तक नहीं खुली थीं तो अब खुल गई होंगी। इन्हें समय की गति पहचाननी चाहिए और अपने ही हाथों अपने पाँव में कुल्हाड़ी न मारनी चाहिए, क्योंकि वह दिन बहुत दूर नहीं है, जब किसान के हाथ में कुछ शक्ति होगी और उस की भी कुछ आवाज होगी।

चर्चिल पार्टी की नई चाल

चर्चिल पार्टी ने अपने दो प्रतिनिधियो को इसलिए भारत भेजा है कि वे यहाँ आने वाले विधानो के विषय में जन मत का ठीक ठीक पता लगाकर उस पार्टी के अंग्रेजी समाचार पत्रो को नया नया मसाला दें। कई महीने पहले इण्डियन डेलेगेशन आया था। शायद यह उसका जवाब है। डेलेगेशन ने भारतवासियो में मिलकर भारत के दृष्टिकोण को समझने की चेष्टा की थी। यह दोनों सज्जन, जिनमें एक साहब बम्बई के गवनर रह चुके हैं शायद तस्वीर का दूसरा रुख दिखाने का चेष्टा करेंगे। भारत में आज भी ऐसे जीव पड़े हुए हैं, जो राजा और ईश्वर को एक समझते हैं, और प्रजा को राजा के काम में दखल देने का कोई हक हा नहीं देना चाहते। फिर ऐसे गोरे हुक्काम की भी कमी नहीं है, जिन्हें श्वेत पत्र के नाम से ही ज्वर चढ़ आता है। हालाँ कि जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है उसने श्वेत पत्र का मलियामेट कर दिया और उसका आना न आना बराबर समझता है। वह कि बहुमत तो उन्हीं राजनीतिज्ञों का है, जिनकी धारणा है कि तब भारत और भी पराधीन हो जायगा, मगर ये दोनों महानुभाव इस मुर्दे को मारने के लिये राजाओं, खुशामदियों और अफसरो की रायें संग्रह करके अंग्रेजी अखबारों में छपवायेंगे। यह है राजनीति!

होम मेम्बर साहब की शीरीं बयानी

यू० पी० सरकार के होम मेम्बर कुँअर जगदीशप्रसाद साहब ने तो पुलिस को अल्लामियाँ की गाय ही बना कर खड़ा कर दिया, मानो पुलिस विभाग का सारा दृष्टिकोण बदल गया है और अब वह अपने को प्रजा का सेवक समझती है। सेठजी और मुनीमजी में बड़ा फर्क होता है। सेठजी तो साक्षात् करुण के अवतार हैं, लेकिन मुनीमजी के खजाने में कुछ है ही नहीं तो बेचारे सेठ जी क्या करें। बड़ लोगों का यही धर्म है। वे दिल मे समझते हैं कि जब असामी जमा खर्च है, तो जितने उदार चाहो बन जाओ, न्याय और सेवा की जितनी दुहाई दे सको दो, सत्य तो जो है, वह है ही। हमारा तो ख्याल है अगर यहाँ की पुलिस सुधर जाय तो जनता को तीन चौथाई स्वराज्य मिल जाय। पुलिस ने हमेशा जनता पर आतंक जमाया है और आज भी जमा रही है। रिशवत फौजदारी और अदालत में भी है, और काफी है लेकिन यहाँ तो खुदा की पनाह! कोई वारदात भर होनी चाहिए, बस फिर क्या पूछना, पाँचो घी में हैं। मोहल्ले या हलके में कोई खून हो जाय, कोई डाका पड़ जाय, बस, थैलियाँ चढ़ने लगती हैं। रिपोर्ट की लिखाई तो मानो सरकारी टैक्स है, देना ही पड़ेगा। पुलिस के चक्कर में पड़कर शायद ही कोई बच सके। होम मेम्बर साहब अगर पुलिस को उसी आदर्श पर ला सकें जिसका आपने अपने भाषण में जिक्र किया और पुलिस कर्मचारियों के दिलों में यह बात जमादें कि तुम प्रजा के स्वामी नहीं सेवक हो, तुम्हारा काम प्रजा पर शासन करना और उसे लूटना नहीं, बल्कि उसकी रक्षा करना है तो वे अपना नाम अमर कर जाँय।

काशी में मन्दिर प्रवेश बिल का समर्थन

वर्णाश्रम स्वराज्य संघ को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि काशी जैसे सनातनी केन्द्र में भी हरिजनो के मन्दिर प्रवेश बिल का विजय हुई। उस दिन दीवानी बार एसोसियेशन में इस प्रश्न पर दो घंटे तक विचार हुआ। और यद्यपि एसोसियेशन में विरोधियों की संख्या काफी थी लेकिन कई ब्राह्मण सज्जनों ने बिल के पक्ष में राय देकर विरोधियों को पस्त कर दिया। केवल २२ राएँ विरोध में आईं और पक्ष में ३७। काशी का यह निर्णय साफ बतला रहा है कि शिक्षित वर्ग इस बिल का समर्थक है। विरोधियों में थोड़े से कट्टरपंथी पोप रह गये हैं, या भीख माँगने वाले पंडित, या केवल वह लोग जो इस विरोध से भी कुछ दकियानूसी, धर्माभिमानी सेठ साहूकारों को उल्लू बना सकते हैं।

अमेरिका की अर्थनीति

लेखक--श्रीयुत गुरुनाथ शर्मा

परिवर्तन प्रकृति का एक अटल नियम है, और उसके दो रूप हैं—एक उत्थान, दूसरा पतन। कौन ऐसा है, जो इस बात का ठेका ले कि कब उत्थान होगा और कब पतन। परिवर्तन समय के अधीन है। उत्थान हो अथवा पतन, आदमी को प्रयत्न में संलग्न होना ही पड़ता है। यही पुरुषार्थ है। यह सिद्धान्त सब के साथ भी लागू है। देश या राष्ट्र के अगुआओं को भी अपने को पुरुषार्थी समझ कर प्रयत्न करना पड़ता है।

भूकम्प के आगे किसी की नहीं चलती। सबको उसके सामने सिर झुकाना पड़ता है। हाँ, कभी कोई गाँव, या शहर या देश उससे बच भी सकता है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वह देश गाँव या शहर बलवान है और इसी से बच सका। यह भी समय का प्रभाव है। जब गत महासमर हुआ था, तब उसमें कई राष्ट्र खप गये। कई ऊँचे से नीचे गिरे—राजा रंक हो गये पर अमेरिका और जापान आर्थिक दृष्टि से ऊँचे उठ गये। दोनो देशो ने युद्ध के कारण बहुत लाभ उठाया। अमेरिका सबसे अधिक लाभान्वित हुआ। उसे बहुत ही थोड़ी जल और थल सेना की हानि उठानी पड़ी। युद्ध के समय दूसरे देशो को अमेरिका हा ने खाने की चीजें और अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। सब चीजें कर्ज पर दी गईं। धन भी उधार दिया। युद्ध के समय दूसरे देशों के यन्त्र यन्त्रालयादि बन्द थे। वे किसी तरह की चीज तैयार न करा सके और सब तरह की चीजो के लिए अमेरिका की ओर ताकने लगे। ऐसी दशा में अमेरिका केवल दस लाख के करीब सेना भेजकर घर पर चैन की बंशी बजाने लगा। जब सारे यूरप को सब तरह की चीजें भेजने की जिम्मेदारी अमेरिका पर पड़ी, तब उसके यन्त्रों को रात दिन काम करना पड़ा और उसने बेहद लाभ उठाया। यूरप का सारा सोना अमेरिका की तरफ बह आया। सब देश अमेरिका के ऋणी हो गये। यहाँ तक कि इस दशा से अमेरिका कुबेर का खजाना हो गया। पहले इंगलैंड संसार का सबसे धनी देश था। सारे संसार का व्यापार केन्द्र भी वही था। उसकी विनिमय कल्पना के द्वारा संसार का व्यापार चलता था। उसके बैंकों में सोने का ढेर लगा रहता था पर चार साल के समय ने काया पलट कर दी। उस समय से अमेरिका का नसीब चमका। वह संसार का सिरमौर बन गया। जिस तरह एक कवि ने कहा है कि 'सर्वे काञ्चनमाश्रयन्ति' उसी तरह काञ्चन से पूर्ण अमेरिका क्या नहीं कर सकता था? अपार धनराशि के कारण अमेरिका में उद्योग धन्धे खूब चमके, रोज एक नये धन्धे का प्रादुर्भाव हुआ। नये नये सिंडिकेट बने। आविष्कार का काम जोरों से हुआ, आशय कि सब तरफ से उन्नति हुई। अब अमेरिका को यह दुराशा उत्पन्न हुई कि वह सारे संसार को अगस्त्य की भाँति आचमन करले। इसी भाव से देश और देश के बाहर भी वह अपना कार्य तन्त्र साधन करने लगा। अमेरिका की लम्बाई चौड़ाई अधिक है। वहाँ खुली जमीन ज्यादा है। आबादी बहुत कम है। जमीन बहुत है पर किसान बहुत थोड़े हैं। यन्त्रों के बल से उसने उपज का कार्य शुरू किया। थोड़े ही वर्षों में सब तरह के अनाजों की अथाह उत्पत्ति कर ली। इस तरह की उन्नति से पूँजीपतियों के पेट फूल गये। अपने देश में उनको नया काम न दीख पड़ा। वे फौरन दूसरे देशो पर बाज की भाँति झपटने लगे। लोगों को कर्ज दिया और कई प्रकार के नये नये कारबार करने लगे। ऐसा कोई देश न रहा, जो अमेरिका-वासियों का दास न बन गया हो, इससे ऐसी परिस्थिति आ उपस्थित हुई और खयाल होने लगा कि शायद संसार की सारी भूमि अमेरिका के अधीन हो जायगी। इंगलैंड अमेरिका को सूद के रूप में लाखों पौंड देता है। जर्मनी भी उस से कर्ज लेता है। फ्रांस की तो बात ही क्या कहें। जिस कारण सब देश मिलकर जर्मनी पर टूट पड़े, उसी कारण से अमेरिका के आर्थिक बल ने इंगलैंड जैसे धनी देश को भी अपना दास बना लिया। अमेरिका का ऋणी होकर इंगलैंड ने अपने आत्मगौरव और स्वातन्त्र्य को खो दिया। यूरप से उसकी धाक उठ गई और उसका वहाँ का कारोबार ऐसे लुप्त हो गया, जैसे—बिना तेल के दिया बुझ जाता है। जर्मनी का सिक्का कागज के बराबर भी न रह गया। इंगलैंड का पौंड अमेरिका के डालर के सामने पादाक्रान्त हो गया। युद्ध के पूर्व जो अमेरिका अधोलोक था, वह युद्ध के बाद ऊर्ध्वलोक हो गया। यूरप पाताल लोक में चला गया। यह सब केवल १४ साल में हुआ—अर्थात् १९३२ तक।

एक उक्ति है कि उन्नति पतन का कारण है। उसी के अनुसार अमेरिका का पुनः पतन प्रारम्भ हुआ। जादूगर के खेल की तरह एक झोंक में अमेरिका की परिस्थिति बदल गई। अमेरिका का ऐश्वर्य भाप की तरह उड़ गया। एक अर्थशास्त्रज्ञ भी कह सकते हैं कि भस्मासुर का अमेरिका पर हाथ गया है। अमेरिका का व्यापार अब मारवाड़ी और काबुलियों का सा है, जिनको कागजों के हैंडनोट और दस्तावेजों के सिवा और कुछ नहीं नजर आता। अमेरिका का ऐश्वर्य अब कागजों और फैक्टरियों पर है। पर, समय पर काम आने को एक पैसा भी नहीं। आज वह चाहें, तो रुपये में चार आने भी हाथ में नहीं आ सकते। इस में कोई संदेह नहीं कि अमेरिका में आज अपार सामग्री है पर उससे क्या फायदा जब उसकी निकासी ही नहीं होती। ऐसा हो गया है कि खाना है, पर खाने को हाथ नहीं है। आँखें हैं पर दृष्टिशक्ति नहीं है। अमेरिका इस फेर में पड़ गया कि—हमारा माल बराबर बाहर जायगा। दस साल में यूरप के देश फिर जाग्रत हो गये। हाथ पैरों में बल आ गया। अब वे यन्त्रों के द्वारा खेती अधिक करते हैं। अमेरिका की पूँजी उनको एक तरह सहायक हो गई। अब वे क्यों अमेरिका का माल खरीदें। रूस भी जग उठा और उसने अपने गेहूँ से संसार को पाट दिया। अब अमेरिका के ऐश्वर्य का शिखर टूट गया। अमेरिका की फैक्टरियाँ अब एक तरह बन्द हैं। रूई और गेहूँ का ठीक दाम नहीं आरहा है, अत अमेरिका की रूई और गेहूँ कोठरियो में सड़ रहे हैं। कीड़ो का आहार बन गये हैं। सिंडिकेट घाटा खाकर बैठ गये। सिंडिकेटो में पूँजी लगाने वाले बैंक भी साथ ही साथ पैर पसार कर बैठ गये हैं। किसानो को परिश्रम का फल नहीं मिल रहा है। विद्यार्थियो में शुल्क देने की शक्ति नहीं है। खेती और व्यापार बंद होने के कारण डिपाजिटर्स अपने धन के लिये बैंको पर धावा करने लगे। पर बैंक रुपया कहाँ से दें? एक व्यापार का दूसरे व्यापार से सम्बन्ध होता है अत सब व्यापार ताशो के मकान की तरह एक हवा के झोंके से गिर गये व्यापार और खेती के बंद हो जाने से बेकारी बढ़ गई। बेकार लोग क्रान्ति मचाने लगे। यह अपूर्व परिवर्तन है। फैक्टरियाँ हैं पर खाना नहीं। सोना है पर किस काम का। अर्थ शास्त्रज्ञ अनेक हैं पर यह समस्या उनसे हल नहीं हो रही है। ऐसी दशा में राजनीतिज्ञ क्या कर सकते हैं। खाद्य तथा व्यापार की अन्य वस्तु के बढ़ाने से क्या लाभ। या तो उनकी निकासी का प्रबन्ध हो या उनकी उत्पत्ति घटाई जाय। खरीदने वाला तो कोई है नहीं अतएव निकासी कैसे हो? उत्पत्ति घटाएँ, तो बेकारी और बढ़ेगा। तब क्या करें? यह निश्चय हुआ कि उपज में से कुछ नष्ट की जाय। फला फूली खेती को नष्ट करने का अर्थ क्या है? प्रश्न हो सकता है कि नष्ट करने के बजाय उसे गरीबो में क्यो न बाँट दिया जाय? पर इससे दाम और घटेगा।

इस प्रकार जब गेहूँ वगैरह का दर न बढ़ा, तो यह निश्चय किया गया कि वस्तुओ का उत्पत्ति परिमाण निश्चित कर देना चाहिए पर जब रूस के गेहूँ कम दाम पर मिलते हैं तब केवल एक देश के यह निर्णय करने से क्या होगा? अन्तर्राष्ट्र संघ की बैठक हुई और उसमें यह निर्णय हुआ कि अमुक देश को रूई और गेहूँ इतना ही पैदा करना चाहिए। इस निर्णय से राष्ट्र संघ ने समझा कि विदेशों की प्रतिद्वन्द्विता मिटेगी और दाम बढ़ेगा। पर रूस ने ऐसे निर्णय को मानने से इकार कर दिया। इसके अनेक कारण हैं।

अनेक प्रयत्न हुए पर अमेरिका उस बैल की तरह, जो थक जाने पर उठ नहीं सकता, बैठ गया पर पश्चिमीय लोगों में निराशा नहीं होती। वे बड़े जिद्दी और साहसी होते हैं। संकट के दिनों में उनकी कार्यदक्षता प्रबल रूप में देख पड़ती है। यही उनका सौभाग्य है और वह समय पर सहायक होता है। वे भारतीयों और भारत सरकार की तरह अधिक संकट में साहसहीन और भीरु होकर बेदात

(शेषांश ९वें पृष्ठ के नीचे

: प्रगतिशील जर्मनी का सिंहावलोकन :

लेखक—श्रीयुत कामेश्वर शर्मा, 'कमल' साहित्य-भूषण

(गतांक से आगे)

अभी तक किये हुए विवेचन से पाठकों को कदाचित यह विचार उत्पन्न हुआ होगा कि पूर्व प्रुसिया के सर्व धनाढ्य जमींदार सुधारों के विरुद्ध हैं, परन्तु यह बात नहीं है, वहाँ भी अब ऐसे आदमी हैं कि जिन्हें वर्तमान सुधार उपस्थित करने के सब मार्ग पसन्द हैं। खेती की तथा उसके साथ खेती करने वालों की स्थिति सुधरे इस हेतु से शास्त्रीय पद्धति से खेती करने के वह सर्वथा अनुकूल हैं। ऐसे मनुष्यों की संख्या बढ़कर उनका वजन चारो तरफ पड़ा, तो पूर्व प्रुसिया अवश्य सुस्थिति प्राप्त करेगा। यह कालान्तर में अवश्य होगा ऐसा सबका विश्वास है। जमींदारों को अपने प्रदेश में जो राजकीय हक हैं, वह पहले नष्ट होना चाहिए। ऐसा होने पर जमींदारों को और उनके खेती करने वालों को समान अधिकार प्राप्त होंगे। अपार सम्पत्ति, विशिष्ट स्वरूप के राजकीय अधिकार और लोगों से हुकूमत से बर्ताव करने की आदत, यह तीन बड़े दोष वहाँ के जमींदारों में उत्पन्न हुए हैं। इस दोष को दूर कर, राजकीय बातों में और लोगों से जब वह समानता का बर्ताव करना आरम्भ कर देंगे, तब उनकी आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति सुधरने में अधिक समय नहीं लगेगा।

जर्मनी का औद्योगिक युग

सम्पत्ति के जिस प्रकार से वृद्धावस्था में सुखावस्था प्राप्त की थी, उसी प्रकार उन्नीसवीं शताब्दि में जर्मनों के मन में साहस उदय हुआ है। युवावस्था का उत्साह और आवेश उनके व्यवहार में प्रकाश होता है। पड़ोसी राष्ट्रों के विषय में जो उनका भय था, वह नाश होकर उनके हृदय में बड़ा पुरुषार्थ उत्पन्न हुआ है। बालक की चेष्टाओं पर वृद्ध जिस प्रकार से आनन्द भरी दृष्टि से देखते हैं, उसी प्रकार से पड़ोस के वृद्ध राष्ट्रों ने किया। जर्मनी को युद्ध न बड़ी हानि पहुँची थी। विभिन्न देशों के प्रसिद्ध होकर अनुभव युवक अकाल मृत्यु के मुख में पड़े थे, इससे जर्मनी की चारों तरफ से दुर्दशा हो रही थी। फ्रान्स के युद्ध होने के सात-आठ वर्ष पहले जर्मनी को आस्ट्रिया के साथ रणक्षेत्र में उतरना पड़ा था। इस लड़ाई की तैयारी जर्मनी ने बराबर जारी रखी, और उसका जोश के साथ बहुत उपयोग हुआ। फ्रान्स का युद्ध जर्मनी के आस्ट्रिया के साथ लड़ना पड़ता था, परन्तु युद्ध में विजय-श्री ने जर्मन वीरों के गले में माला पहनाई। इस विजय से गर्वित न होकर, उन्होंने अपने पराक्रम का उपयोग कर, उद्योगभूमि में विजय श्री प्राप्त करने के लिए कायिक, वाचिक और मानसिक प्रयत्न करने लगे। लोगों का वह धन जो कि अभी तक जमीन के अन्दर गड़ा था निकलने लगा। इस धन के व्यापार से बड़े-बड़े कारखाने बने और धनिकों को पहले से अधिक लाभ होने लगा। विशेष साहसी और उद्यमी काम करने का लोगों को साहस बढ़ा, और जो गाँव तथा शहर अभी तक अँधेरे में पड़ हुए थे प्रकाश में आने लगे, और वहाँ की सम्पत्ति और जन-संख्या थोड़े काल में बढ़ती हुई नदी के समान बढ़ने लगी। केवल बर्लिन का ही उदाहरण लीजिये तो मालूम होगा कि सन् १८०५ में वहाँ की जन-संख्या एक लाख साठ हजार थी, वह ई० सन् १९०५ में बीस लाख चालीस हजार हो गई। जन संख्या की बाढ़, उद्योग धन्धे में आगे बढ़े हुए प्रान्तों में अधिक रही है। जन संख्या की रिपोर्टों से विदित होता है कि कृषि प्रधान प्रान्तों की अपेक्षा व्यापारी प्रान्तों की जन-संख्या अनेक गुनी बढ़ी है।

जर्मनी में औद्योगिक युग का प्रारम्भ हुआ, तब से कोयला, लोहा और अन्य खनिज पदार्थों की उत्पत्ति अति अधिक प्रमाण में होने लगी है। जर्मन कारखानों में जितना कोयला खर्च होता है वह जर्मनी ही का होता है। जर्मनी को ९० लाख टन कोयला इंग्लैंड से लाना पड़ता है। इंग्लैंड की तरफ मुँह न ताकना पड़े इसका भी प्रयत्न वहाँ के व्यापारी कर रहे हैं। कोयले की अपेक्षा लोहे का व्यापार और भी अधिक है और लोहे के कारखानों की संख्या दिन-व-दिन बढ़ती जाती है। अन्य धातु, जैसे ताँबा, जस्ता, सीसा और पोटेशियम पहले की अपेक्षा विशेष उत्पन्न होता है परन्तु यह वस्तुएँ बाहर से भी आती हैं।

ग्रेट ब्रिटेन की तरह जर्मनी का भी जहाज बनाने की तरफ खिंचाव है। जर्मनी की ऐसी इच्छा है कि जहाज बनाने की आवश्यक चीजें विदेश से न लाकर स्वदेश में ही उत्पन्न करना चाहिये, इस उद्योग में उन्हें हर वर्ष सफलता होती जाती है।

पचास तीस वर्ष पूर्व सबका यह विचार था कि सबसे उत्तम जहाज इंग्लैण्ड में ही बनते हैं। इंग्लैण्ड में कभी खराब जहाज नहीं बनते और टाइन (Tyne) तथा क्लाईड (Clyde) में जो जहाज बनाने वाले लोग हैं, उनका हाथ जगत में कोई हाथ पकड़ने वाला न होगा, इसलिये बड़े-बड़े जहाज बनाने का काम जब जर्मन कारखानों ने अपने हाथ में लिया, तब उन्हें यह बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई कि आवश्यक गुण कैसे प्राप्त किये जायँगे, इस काम को किस प्रकार से सिद्ध किया जाय, परन्तु यह चिन्ता धनवान लोगों की सहानुभूति से और कारीगरों की कुशलता से सत्वर दूर हुई। आज ऐसी स्थिति प्राप्त हुई है कि अपनी आवश्यकता की सर्व स्टीमरें और जहाजें जर्मन स्वयं तैयार करते हैं, इतना ही नहीं परन्तु और देशों को भी बना कर देते हैं। 'जब तक जहाज बनाने का धन्धा जर्मनी नहीं चलावेगा, तब तक उसे आर्मर रखने की हिम्मत नहीं करनी चाहिए' यह शब्द एडमिरल स्टार ने ३५ वर्ष पूर्व निकाले थे और यह शब्द बड़े दूरदर्शिता के थे। वहाँ के कारखाने प्रति वर्ष १५ लड़ाई जहाज तैयार कर सकते हैं। जर्मनी का सामुद्रिक बल बढ़ने लगा है, और जर्मनी की सब रियासतों का लक्ष नाविक सामर्थ्य बढ़ाने पर है। ऐसा मालूम होता है कि वह इंग्लैंड का समुद्र पर से स्वामित्व खींच लेने का निश्चय कर चुके हैं। (क्रमशः)

(५वें पृष्ठ का शेषांश)

को चैन नहीं लेते। रूजवेल्ट राक्षस की भाँति आर्थिक संकट से लड़ रहा है। उसने रूस से समझौता कर लिया और अमेरिका का माल रूस में भेजने का रास्ता खोज निकाला। अमेरिका का सोना बेचकर नया सोना खरीदने लगा। ऐसा भी एक हुक्म जारी किया कि देश में किसी के पास सोना न रहे और सारा सोना सरकार अपने हाथ में कर ले। बेकारों को सरकार की तरफ से भिक्षा या सहायता बन्द करके नये-नये धन्धे बढ़ाकर काम दिलाने का यत्न भी वह कर रहा है। उसमें एक बड़ी बात यह है, कि वह भिक्षा या सहायता के बिलकुल प्रतिकूल है। हाँ, लँगड़े लूले आदि असहायों के लिए वह अवश्य खास प्रबन्ध कर रहा है। देश की सम्पत्ति के अनुकूल उद्योगधन्धों को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा है। इसके लिए उसने २०० करोड़ रुपया इकट्ठा किया है। इस रकम से 'रिलीफ वर्क्स' खोल रहा है। सचमुच यह महान् उद्योग है। कौन कह सकता है कि इसका क्या फल होगा। पर, मनुष्य को फल का ध्यान किये बिना प्रयत्न करना चाहिए। हम यहाँ यह कहना नहीं चाहते कि अमेरिका के यत्न से यह आर्थिक संकट दूर होगा। यह तभी सम्भव है, जब फैक्टरियाँ मिटेंगी। जब तक द्वेष भाव न मिटेगा, तब तक पूँजीवाद रहेगा। और यह आसान नहीं है कि यूरप और अमेरिका फैक्टरियों को यों ही छोड़ दें। तो भी पश्चिमीय लोग इस आर्थिक संकट से बचने के हेतु जो प्रयत्न कर रहे हैं, वह प्रशंसनीय है। सब में अमेरिका का उद्योग वास्तव में महान् है। अमेरिका की ऊँची इमारतों की तरह अमेरिका के विचार भी आसमान-मस्तक तक पहुँच रहे हैं। उसके विचार के मार्ग में जो बाधक कारण आते हैं, उन को जोरों से हटाने का जो प्रयत्न हो रहा है, वही प्रशंसनीय है।

स्पृश्यास्पृश्य तथा देव-दर्शन-मीमांसा

लेखक—स्वामी रामचरणशरण

(गतांक से आगे)

परन्तु इन किसी से भी देव-मन्दिर अपवित्र नहीं होता और उसका महात्म्य उत्तरोत्तर बढ़ा दीखता है। बड़े बड़े अधिकार-गर्वित यवन-क्रिश्चियन आदि बड़ी मान-भक्ति से मन्दिर में बुलावा भेजकर भी बुलाए जाते हैं, पर स्वयं समागत दीन हरिजनों के झाँकने-मात्र से मन्दिर अशुद्ध हो जाता है। यहाँ शीघ्रता में लेखनी लिखते-लिखते गलती कर रही है 'झाँकने मात्र' से मन्दिर 'अशुद्ध' हो तब न, जब उन्हें कोई मन्दिर की ओर झाँकने दे? हरिजन बेचारे तो, गिड़गिड़ाने पर भी अमित इच्छा रखने पर भी, मन्दिर में झाँकने भी नहीं पा सकते! विशुद्धान्तःकरण हरि-जन के दर्शन कर लेने मात्र से दर्शकों का देवत्व सात समुद्रों पार प्रयाण कर जाता है! इसे कहते हैं—धार्मिक धूर्तता!

भगवद्दर्शन के सम्बन्ध में असल बात तो यह है कि भगवद्दर्शन के योग्य न तो कोई बाह्य डम्बर से होता है और न कोई उच्च नामधारी वर्ण की उच्चता से, जिसके हृदय में भगवान के प्रति अनन्य-भक्ति है, अटल श्रद्धा है, वह चाहे किसी भी वर्ण या श्रेणी का क्यों न हो अवश्य भगवद्दर्शन के योग्य है। उसे ईश्वर दर्शन का अवश्य अधिकार है। भुवन भावन भगवान ने श्रीमुख से कहा है—

> नाऽहं वेदैर्न तपसा न दानेन, न चेज्यया।
> शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
> भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन।
> ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
> —गीता।

परम दयालु भगवान की दूरदर्शिता तथा उदारता यहीं तक ही सीमित नहीं है, वे सर्वोत्कृष्ट समदर्शी परमोदार पुरुषोत्तम प्रभु तो मुक्त-कंठ—डंके की चोट—से उद्घोषित करते हैं कि—

> विद्या विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे, गवि, हस्तिनी।
> शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिनः॥
> —गीता।

इसी समदर्शीत्व को स्पष्ट करने के हेतु भगवान ने मकर, कच्छ, शूकर-प्रभृति से लेकर, मनुष्य पर्य्यन्त शरीर धारण किया है। भारतीय भक्तों का 'भक्तमाल' नामक पुस्तक के कथनानुसार भगवान ब्राह्मण के यहाँ सुन्दर सिंहासन पर न रह कर, भक्त सजना' कसाई का उस तुला पर जिससे वह मांस बेचा करता था, प्रसन्न होकर 'बाट' के रूप में झूल चुके हैं। इन्हीं विप्रों की अविवेकता पर कुछ ध्यान न देकर, पवित्र हो या भगवती-भागीरथी की धवल धारा में से भक्त प्रवर 'रैदास' महात्मा के हाथ पर आ विराजे। सच तो यह है कि निम्न से निम्न श्रेणी के लोग भी भगवन्नाम प्रभाव से संसार-सागर से तर जाते हैं। पतित पावन श्री सीताराम की पतित पावनता का यह चमत्कार है। यही कारण है कि हम हिन्दुओं के पूर्वज—धर्माचार्य स्वा० श्री रामानन्दाचार्य जी, स्वा० श्री शंकराचार्य जी, श्री रामानुजाचार्य जी, श्री वल्लभाचार्य जी, तथा श्री चैतन्य (गौराङ्ग) महाप्रभु प्रभृति महात्माओं ने देश-कालानुसार दलित-हिन्दुओं का उद्धार किया है, जिसके साक्ष्य स्वरूप 'भविष्य पुराण', 'रामानन्द दिग्विजय', 'चैतन्य चरितामृत' और 'प्रपन्नामृत' प्रभृति अनेक ग्रन्थ अद्यावधि विद्यमान हैं। कतिपय मनुष्य अपनी कूप-मण्डूकता के स्वभाववश समदर्शी, सर्वव्यापी भगवान को तथा उनके पतित-पावन यशस्वी नाम के माहात्म्य को नैसर्गिक पतित पावनता के अपराध के कारण कैद करना चाहते हैं। धर्म धूर्तों का कितना साहस? पुरातन धर्म ग्रन्थ तो उच्च स्वर से उद्घोषित कर रहे हैं कि—

'यश्चण्डालोऽपि 'राम' इति वाचं वदेत्तेन सह संवसेत्तेन सह संवसेत्तेन सह सम्भुञ्जीयात।' अर्थात् 'यदि चाण्डाल भी 'राम' ऐसा शब्द बोले, तो उसके साथ बोले, बैठे, निवास करे, तथा भोजन आदि का व्यवहार भी करे।'

> 'चाण्डालमपि मद्भक्तं नाऽवमन्येत बुद्धिमान्।
> अवमानात्पतत्येव रौरवे नरके हि सः॥

अर्थात्—भगवान कहते हैं कि बुद्धिमान मनुष्य का कर्तव्य है कि मेरा भक्त यदि चाण्डाल भी हो, तो उसका अपमान न करे। भक्त का अपमान करने वाला 'रौरव नरक' में जाता है।

> शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा।
> वीक्षते जाति-सामान्यात्, स याति नरकं नरः॥

मेरे (भगवान के) भक्त को चाहे वह शूद्र हो, निषाद हो अथवा श्वपच। जो उसे जाति की दृष्टि से देखता है, वह नरक को जाता है।

भागवत महापुराण में कहा है—

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ पादारविन्द विमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्। अर्थात—धन वर्ण रूप, तप प्रभाव तथा पाण्डित्यादि द्वादश गुण-सम्पन्न परन्तु भगवद्भक्ति रहित ब्राह्मण की अपेक्षा हरि-भक्त—श्वपच कहीं उत्तम है।' इसी को गीता में श्रीमुख से स्वयं भगवान् कहते हैं—

> 'समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
> ये भजन्ति तु मां भक्त्या, मयि ते तेषु चाऽप्यहम्॥

अर्थात् मेरा यह स्वभाव है, कि चाहे कोई किसी भी वर्ण अथवा श्रेणी का हो, किसी भी स्वभाव का हो, किसी भी आकार प्रकार और ज्ञान का हो, सब समान रूप से प्रिय है। मेरे लिये कोई द्वेष-योग्य नहीं है। जो मुझे भक्ति-भाव से स्मरण करते हैं, वे मेरे में हैं और मैं उनमें—उनके हृदेश में—रहता हूँ।

> 'अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
> साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितो हि सः॥
> × × ×
> क्षिप्रं भवति धर्मात्मा, शश्वच्छान्तिं निगच्छति।'

अर्थात्—यदि कोई (पूर्व काल का) दुष्कर्मी, दुश्चरित्री पुरुष भी मुझ (भगवान) को (चरित्रवान रह कर, उत्तम-चरित्र होकर) अनन्य निष्ठा से स्मरण करता है, उसको साधु (सज्जन) ही मानना चाहिए; क्योंकि उसका यह व्यवसाय अत्युत्तम है। (पापी पुरुष का पाप-कर्म त्यागकर भगवद्भक्ति में लीन हो जाना अत्युत्तम कार्य है। उसका वह सुमार्ग-प्राप्ति केवल ईश्वर प्राप्ति के लिये है।) वह शीघ्र ही (अनति काल में) धार्मिक पुरुष—धर्मात्मा—हो जाता है और वह सदा के लिये शान्ति को प्राप्त करता है।

> मां हि पार्थ! व्यपाश्रित्य, येऽपि स्युः पापयोनयः।
> स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

अर्थात्—हे अर्जुन चाहे कोई कैसी भी पाप योनि (निकृष्ट काया धारण किए) हो, स्त्री, वैश्य तथा शूद्र भी क्यों न हो, मेरा आश्रय प्राप्त कर—मेरा स्मरण चिन्तन कर—परागति (निर्वाण पद तक) प्राप्त हो जाता है।

उपसंहार

मेरे सारे विवेचन का निष्कर्ष यह है, कि जिस त्रिलोक-पावनी आर्य-अवनि पर—भगवान श्री राम और श्रीकृष्णादि की अवतार भूमि पर—केवल पदार्पण-मात्र से ही निम्न-से निम्न श्रेणी के लोग देवत्व को प्राप्त हो जाते हैं, जिस आर्य जाति के क्षणिक सहवास से अनार्य भी विशुद्ध आर्यत्व को प्राप्त कर लेते हैं, उस आर्य देश के खास निवासी-लोगों में अस्पृश्यता का आतंक फैलाना, देश-वासियों में छुआ छूत की भारी भित्ति खड़ी कर देना, अनजानों के लिए निरी जड़ता है, भयंकर-भूल है और जान बूझ कर ऐसा करने वालों का यह कार्य पाप पूर्ण तथा पश्चात्ताप करने योग्य है। जिसमें भगवद्भक्ति है, श्रद्धा है वह चाहे किसी भी श्रेणी का मनुष्य क्यों न हो, निस्सन्देह भगवद्दर्शनाधिकारी है।

सिनेमा और स्वदेशी

लेखक—श्रीयुत श्यामनारायण कपूर बी० एस-सी०

भारतीय सिनेमा कम्पनियों का दावा है कि अब भारतीय फिल्म व्यवसाय बहुत उन्नत हो गया है। और भारत में भी विदेशों ही की भाँति उच्चकोटि के फिल्म बनने लगे हैं। कुछ लोग तो अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के फिल्म बनने के स्वप्न देख रहे हैं, परन्तु उपर्युक्त बातें कहाँ तक सत्य हैं, यह सिनेमा देखने वालों से छिपा न होगा। आजकल जो भी नवीन फिल्म जनता के समक्ष उपस्थित किया जाता है, 'सर्व श्रेष्ठ', 'अद्वितीय' और 'अभूतपूर्व' का पुछल्ला उसके साथ अवश्य लगा रहता है। सिनेमा कम्पनियाँ यह बात कहें, वहाँ तक गनीमत है, परन्तु सिनेमा-पत्र भी उनकी हाँ में हाँ मिला कर दूनकी हाँकते हैं। ऐसे पत्र बहुत ही कम हैं, जो इन फिल्मों की निष्पक्ष और सच्ची आलोचना लिखते हों। इन पत्र सञ्चालकों से अगर निष्पक्ष समालोचना करने के लिए कहा भी जाय, तो शायद वे लोग एकदम यही उत्तर देंगे कि साहब, अगर हम सच्ची और निष्पक्ष आलोचना लिखेंगे, तो फिल्म चलेगा नहीं और हमें विज्ञापन न मिलेगा। कहा नहीं जा सकता कि यह बात कहाँ तक सच है, परन्तु यदि वास्तव में ऐसा ही हो रहा है, तो फिल्म-कम्पनी सञ्चालकों एवं सिनेमा पत्र सञ्चालकों की मनोवृत्ति बहुत ही दूषित है।

सिनेमा व्यवसाइयों से तो हमें बहुत कुछ कहना है। आजकल स्वदेशी का जमाना है। प्रायः सभी लोग स्वदेशी की उन्नति की कामना कर रहे हैं। देश में नित्य नवीन उद्योग-धन्धे खोले जा रहे हैं। अब तक जो चीजें विदेशों से आया करती थीं, उन्हें देश में तैयार करने की कोशिशें की जा रही हैं। क्या हम यह जान सकते हैं कि भारतीय सिनेमा-कम्पनियों ने सिनेमा को 'भारतीय' बनाने के लिए कितने प्रयत्न किये? उन्होंने कितना रुपया सिनेमा व्यवसाय को देशी बनाने में लगाया? सिनेमा सम्बन्धी कच्चा माल भारत में तैयार करने के कितने कारखाने खोले? भारत में तैयार होने वाले सिनेमा-सम्बन्धी माल को अधिक उन्नत बनाने के लिए क्या कोशिशें कीं? अपने व्यवसाय के इस अंग को आगे बढ़ाने के लिए और क्या कार्यवाइयाँ कीं?

उन्हें जरूरत भी क्या है? वे ऐसा क्यों करें? मजे में हजारों-लाखों रुपये चले आते हैं। जो भी नया फिल्म तैयार हुआ, जनता उस पर बुरी तरह से टूट पड़ती है। तब देखते रहते हैं? फिर भला सिनेमा व्यवसाइयों के कान पर जूँ क्यों रेंगे? उन्हें इससे मतलब कि भारत का कितना रुपया विदेशों को जाता है और कितना यहाँ रहता है? उन्हें अपने रुपये और खाने पीने तथा मजे उड़ाने से मतलब।

आज भारत में लाखों फीट फिल्में विदेशों से आ रही हैं और उनके लिए लाखों रुपया पानी की तरह विदेशों को बहा चला जा रहा है। यदि इन फिल्मों को तैयार करने के कारखाने भारत ही में खोल दिये जाँय तो अवश्य ही भारत को भी लाखों रुपये का लाभ होने लगे। शुरू शुरू में बहुत सम्भव है कि लाभ न भी हो, पर एक लम्बी-चौड़ी रकम विदेशों को तो जाने से बच जायगी। जानकार लोगों का कहना है कि यह व्यवसाय पाँच-सात लाख रुपयों में अच्छी तरह शुरू किया जा सकता है। इन फिल्मों के साथ-ही-साथ उस कारखाने में फोटो ग्राफी का दूसरा जरूरी सामान भी तैयार किया जा सकता है। आजकल स्वदेशी कारबार का जमाना है भी, अस्तु इस व्यवसाय के चल निकलने की पूरी आशा की जा सकती है।

केवल फिल्म ही नहीं, फिल्म धोने के रसायन भी विदेशों ही से आते हैं। आज हमारे देश में बहुत सी विज्ञानशालाएँ और प्रयोग शालाएँ मौजूद हैं, परन्तु उनमें से शायद ही किसी में इन रोजमर्रा के इस्तेमाल की चीजें बनती हों। शायद देश में इस प्रकार की समुचित शिक्षा प्राप्त करने का साधन भी नहीं है। फिल्म कम्पनियों को इस ओर ध्यान देने की फुर्सत नहीं, कि कुछ नवयुवकों को इन चीजों के बनाने का पूरा हाल जानने के लिए विदेशों को भेजें और देश में आवश्यक पदार्थ तैयार कराने की कोशिश करें।

इसके अलावा फिल्म तैयार करने के प्रायः अन्य सभी साधन और सामान आदि फिल्म खींचने की मेशीनें, शब्द अंकित करने वाली मशीनें, शब्दों को अभिव्यक्त करने वाले यन्त्र, फोटो खींचने के कमरे आदि आदि अनेकों चीजें विदेशों ही से आती हैं? क्या हम लोग बराबर इसी तरह विदेशों का मुँह ताकते

देश में बेकारी बढ़ रही है। शिक्षित समुदाय के बेकारों की संख्या बहुत बढ़ी चढ़ी है। इस बेकारी को दूर करने का एक-मात्र उपाय देश में नवीन उद्योग धन्धे स्थापित करना है। सिनेमा का व्यवसाय खूब आगे बढ़ रहा है। इस व्यवसाय की जितनी अधिक उन्नति हो रही है, भारत में विदेशी माल की खपत भी उतनी ही बढ़ती जा रही है। ऐसी हालत में फिल्म-व्यवसाइयों और साधारण जनता का क्या कर्तव्य होना चाहिए, यह बिल्कुल स्पष्ट है।

लोग आँख मीच कर नित्य नई नई फिल्म-कम्पनियाँ खोल रहे हैं। यदि यही दशा कुछ दिन तक और बनी रही, तो शायद ही कोई ऐसा बड़ा शहर बचेगा, जिसकी अपनी फिल्म कम्पनी न हो। सिनेमा-गृहों की तो बात ही न पूछिये। मामूली से मामूली शहर में दो तीन सिनेमा-गृह अवश्य होंगे। हम सिनेमा के इस प्रचार के विरोधी नहीं हैं, परन्तु इस बात के अवश्य विरोधी हैं कि जब सारे देश में हा-हा कार मचा हो, जनता को दोनों समय भर पेट भोजन को भी न मिलता हो, उस समय उन्हीं गरीबों का खून सुखा कर पैदा किया हुआ पैसा पानी की तरह बहा दिया जाय।

हमारे यहाँ अनुकरण-शीलता का बोल-बाला है। जिस व्यवसाय में जरा-सा भी लाभ होता देखा जाता है, लोग झट उसी तरफ टूट पड़ते हैं। नवीन व्यवसायों की ओर ध्यान तक नहीं देते। यदि सिनेमा व्यवसाय खूब चल रहा है और उसका भविष्य प्रकाशवान् है, तो सिनेमा व्यवसाय के साधनों, सिनेमा सम्बन्धी मशीन, रसायनों तथा फिल्मों आदि के व्यवसाय का भविष्य भी अवश्य ही बहुत उज्ज्वल होना चाहिए। इन कारखानों को देश में स्थापित करने से न केवल देश का रुपया देश ही में रह जायगा, वरन् सहस्रों शिक्षित और अशिक्षित युवकों की आजीविका का टेढ़ा प्रश्न सहूलियत से हल हो जायगा। थोड़ा सा उद्योग करने पर इस व्यवसाय में सफलता मिलना अवश्यम्भावी है। रुपया पैदा करने के साथ ही-साथ देश-सेवा करने और बेकारों की उदर-पूर्ति के साधन जुटाने का स्वर्ण अवसर है।

फिल्म-कम्पनी के मालिकों को देना चाहिए। जहाँ वे यह विज्ञापन करते हैं कि अमुक फिल्म सौ फी सदी बोलता चालता फिल्म है, वहाँ उन्हें यह भी सोचना चाहिए कि वह कितने प्रति शत स्वदेशी है। कुछ लोगों का कहना है कि १० प्रतिशत और कुछ कहते हैं कि नहीं उससे भी कम। धन और जन को छोड़कर सभी कुछ तो विदेशी हैं। सिनेमा के प्रचार से सबसे अधिक लाभ सिनेमा-कम्पनियों ही को होता है। अतएव उनका यह स्पष्ट कर्तव्य है कि वे अपने इस लाभ से कुछ देशोन्नति का भी काम करें। उनके लिये इस प्रकार का जो सब से सुगम काम हो सकता है, वह देश के धन को देश ही में रखकर अपनी जरूरत की चीजों को देश में तैयार करा लेना है।

परन्तु रंग-ढंग देखते हुए ऐसी आशा नहीं है कि वे लोग शीघ्र ही इधर ध्यान देंगे। सिनेमा-पत्रों को सिनेमा की नर्तकियों, अभिनेत्रियों आदि के परिचय देने ही से फुरसत नहीं। उनके विशेषांक इन्हीं बातों से भरे पड़े रहते हैं। उन्हें भी जनता और फिल्म-व्यवसाइयों का ध्यान इधर आकर्षित करने की फुर्सत नहीं। अभिनेत्रियों से फुरसत मिली, तो आपस की तू तू, मैं-मैं में पड़ गये। आवश्यकता इस बात की है कि फिल्म सम्बन्धी सामग्री को देश में तैयार करने की विशिष्ट योजनायें उनके पत्रों में प्रकाशित हों। कम्पनियों का ध्यान बार-बार इस ओर दिलाया जाय। देशी माल तैयार कराने के लिए उन पर हर तरह से जोर डाला जाय। दर्शक भी इसमें काफी सहायता पहुँचा सकते हैं।

इस प्रकार से जाने वाले धन की निर्यात को रोकने अथवा उसका लाभ उठाने का एक और रास्ता हो सकता है। रास्ता पाश्चात्य देशों सरीखा है। वे लोग भारत से रूई, तिलहन, चमड़ा आदि-आदि बहुत सा कच्चा माल खरीद कर उसी को तैयार माल के रूप में भारत को भेजते हैं और अपनी लागत से बीसियों गुना फायदा उठाते हैं। सिनेमा व्यवसाय की स्थिति भी कुछ अंशों में ऐसी ही बनाई जा सकती है। हम अपनी फिल्में तैयार करने के लिए प्रायः सभी कच्चा माल अमरीका, जर्मनी, बेल्जियम और इटली आदि देशों से मँगाते होते हैं। यदि हम अपने फिल्म इतना उत्कृष्ट और उच्च कोटि का बना सकें, जिससे पाश्चात्य देशों में उनकी धूम मच जाय, तो अवश्य

मन्नू की माँ

लेखक—श्रीयुत शुकदेव ठाकुर बी० ए० (आनर्स)

'माँ!'

'क्या बेटा! क्या लेगा?'

'कहाँ गई, माँ?'

'कहीं नहीं, यहीं तो हूँ बेटा।'

'नहीं माँ, मेरे पास आ, मेरा माथा घूमता है।'

'तुझे हो क्या गया मन्नू! मन तो अच्छा है?'

'ज़रा ज़रा पेट में दर्द होता है माँ।'

'अच्छा, ला तो, ज़रा बाबा रामदास वाला जन्तर बाँह में बाँध दूँ। और देखूँ ज़रा वैदजी को भी।'

'मैं क्या यहाँ अकेला रहूँगा माँ?'

'नहीं बेटा! यह जन्तर तेरे हाथ में है, तुझे डर काहे का?'

'मुनरी को यहाँ क्यों नहीं बैठने को कहती?'

'बेटा! तू तो जानता नहीं वह जात की राजपूतिन है, मुझ डोमिन के घर कैसे बैठगी?'

'तो, फिर सड़क पर मेरे साथ खेलती क्यों है? मेरे हाथ से चिर्मी क्यों छीन लेती है? और जब हम सलहेश महाराज की पूजा कर, तुम्हारी दी हुई मिठाइयाँ बाँटते हैं तो वह क्यों खा लेती है?'

'चुप कलमुँहा! कोई सुन ले तो यहाँ से भी झोपड़ी उठानी पड़े। तू इन बातों को क्या जाने। अच्छा, तो बैठ मैं अभी वैदजी के यहाँ से आती हूँ। तू कहीं जाना मत।'

इतना कह कर और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही वह बूढ़ी डोमिन आगे बढ़ी।

• • •

गम्हरिया ग्राम में अनेक जातियों के लोग रहते हैं। ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य बनियाँ, हजरा, धरकार, मुसहर, डोम। और भी न जाने कितने प्रकार की उप जातियाँ हैं। लोहार, सोनार भी हैं। कलवारों की खासी संख्या है। शाकद्वीपीय वैद्य भी हैं। ग्राम एक विस्तृत मैदान पर बसा है। पासही चिलौनी की पतलीसी धारा द्रुतगति से बहती है। यह वैशाख में भी नहीं सूखती। ग्राम के मध्य में भीमशंकरनाथ महादेव का स्थान है। सामने एक कदम्ब का पेड़ है। उसकी जड़ में एक गणेश की मूर्ति है। गणेशजी के साथ जीवछ, गोरैया आदि देव भी हैं। स्थान बाहर से रम्य सा मालूम होता है। चारों ओर फुलवारी लगी है। कुछ साक भाजी भी लगी हैं। केले के पेड़ भी हैं। तुलसी, बेल, चम्पा आदि पुष्पपत्तियों से वायु सुरभित रहती है। पासही में भाँग का वन भी है। मन्दिर के पार्श्व में एक फूस का झोपड़ा है। इसमें पुजारीजी का भण्डारा लगता है। एक ब्राह्मण ही पुजारी हैं। बड़े ही पवित्र और निष्ठावान् हैं। प्रतिदिन दोनों सन्ध्या, स्नान, चन्दन, भस्मादि करते हैं। ज्ञान ध्यान में रत रहते हैं।

शंकर मन्दिर दक्षिण मुख का है। इसके चारों तरफ छज्जे लगे हैं। इसीमें पूरब दक्षिण कोन पर धूनी लगी रहती है। यहीं पर आगत भक्तजन पैर मोड़ते हैं। गाँजा, भाँग, चुरुट, खैनी आदि का यथेष्ट प्रबन्ध रहता है। सभी श्रेणियों के लोग यहाँ आते हैं। स्त्रियाँ, किसान तथा अन्य मध्यम वर्ग के ग्रामीण तो मध्याह्न काल तक ही अधिकतर पूजा समाप्त कर लेते हैं। उसके बाद स्थान शान्त हो जाता है। उसी नीरवता में पुजारीजी निद्रा-देवी की गोद में प्रविष्ट हो, अपने इष्ट देवता का ध्यान कर लेते हैं। फिर भंग, फिर स्नानादि, सन्ध्याकाल में गाँव के रईस अमीर भी भ्रमणार्थ अधिकतर यहीं चले आते हैं। बाबू निरसूसिंह तहसीलदार, बा० झुमकूलाल हलगुरु, बा० मुसाइ झा अलेसर, पं० झूना मिश्र ज्योतिषी, बा० कालूलाल गवैया, बा० नन्दकिशोर पाठक वैद्य, बा० झटनमल मालवारी आदि महानुभावों का प्रधान अड्डा यही देव-स्थान है। ये ही सज्जन इस स्थान के प्राण हैं।

• • •

माघ का महीना था। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। गत शनिवार से झड़ी भी लगी थी, इससे संकट और बढ़ा। गरीबों के लिए बड़ी विपत्ति आ गई। मवेशी भी ठिठुर ठिठुर कर मरने लगे। नदी के पार शव ही शव दीख पड़ते थे। टुटपुँजिया किसानों को तो हलवाहे भी न मिलते थे। श्री पंचमी भी निकट आ गई थी, किन्तु इस ग्राम में एक भी ढोल नहीं बजता था। इसका एक कारण और था। गम्हरिया में हैजा भी हो चला था। सिर्फ बम्हन टोली को छोड़ प्रत्येक टोले में मैया का प्रकोप था। गाँव मानों डगमग डोल रहा था। डोम धरिकार के टोले में कितने ही लोग मर चुके थे। इन लोगों ने दुर्गा देवी को जागृत न किया था। एक काला परेवा भी न चढ़ाया था। ऐसा करते भी तो कहाँ से। खाने को तो मुहताज थे। जब हिरवा मुसहर को देवीजी ने उठा लिया और जब ननुआ धरकार को त्रस्त होने लगा तो इन टोलियों में भी हलचल पड़ी। रैदास के सिक्ख बाबा रामदासजी बुलाये गये। उन्होंने एक काले कबूतर को सिंदूर लगा, गाँव से उड़वा दिया। रविवार की शाम को लाल वस्त्र, काजल, सिंदूर, दारू, मछली द्रव्य आदि अर्घ्य सामग्रियों से सुसज्जित हो अर्द्धरात्रि को श्मशान भूमि में जा, देवीजी की आराधना की। वहाँ से लौट, उन्होंने सभी को एक एक बूटी दे दी। मन्नू को भी एक बूटी मिली थी किन्तु वह नटखट लड़का इसे साथ नहीं रखता। आज इसके लक्षणों से जब कलरी को बोध हो गया कि देवी जी का ही प्रकोप है तो उसने जंतर उसकी बाँह के हवाले किया।

अन्धविश्वास ने आज समाज की आँखें अवश्य अन्धी कर दी हैं किन्तु वह समाज के अन्तःकरण को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। मानव आत्मा को युक्तियुक्त कर्मों के सम्पादन ही से तृप्ति होती है। कलरी ने यद्यपि बाबा रामदास वाले जंतर को बेटे की बाँह में डाल दिया था, तो भी उसका मन शंकित ही था। उसने अपने मन में कहा—ऐसे तो जब माता जी चाहेंगी, तो बच्चे का जान बकस देंगी परन्तु सिर्फ भाग्य ही के भरोसे बैठना ठीक नहीं। झाड़ फूँक के साथ साथ यदि दवा दारू भी दी जाय, तो और अच्छा। कौन जानता है किस विधि से ईश्वर गरीबों की मदद कर देते हैं? पर मुझ डोमिन के यहाँ क्या वैद्यजी आवेंगे? अच्छा देखूँ।

• • •

मन्नू का पिता फिरंगी अपने इलाके के डोमों का सरदार था। था भी बड़ा शौकीन। जब कभी बाम्हनों को देखता, तो एक टाँग पर खड़ा होकर दण्डवत करता। उसके तीन लड़के थे, किन्तु अब सिर्फ मन्नू बच गया था। खुद फिरंगी तीन वर्ष पूर्व ही हैजे का शिकार बन चुका था। कलरी को इसके बाद बड़े कष्ट झेलने पड़े। एक तो डोमिन, दूसरे विधवा, तीसरा शादी की अब उम्र न रही। भला ऐसी हतभागिन को पवित्र हिन्दू समाज में स्थान कहाँ। मन्नू तब एक डेढ़ वर्ष का नन्हा था। बोली भी न फूटती थी। खेल कूद में एक दिन गोकुल नाथ पण्डित की लड़की से छू गया। गाँव वाले बिगड़ गये। आखिर अपने कुटुम्ब के साथ अपने पुरखों का घरद्वार त्याग कर इन्हें भागना पड़ा। तभी से चिलौनी नदी के पार आकर, इस सुनसान पोखर के किनारे पर अपनी झोपड़ी में दिन काटती है। सुपलियाँ बना बेच कर मन्नू का भरण पोषण करती है किन्तु इन विपत्तियों में भी उसने कभी धैर्य को न छोड़ा। उसके गहन अवसादमय हृदय को मन्नू का मधुर मुख सदा आलोकित करता रहता था। मन्नू उसे प्राणों से भी प्यारा था। वह सभी कुछ सह सकती थी किन्तु मन्नू के कष्ट उसे असह्य थे। आज जब मन्नू की तबीयत खराब हो गई, तो सुतवत्सला कलरी का मन एकाएक उद्विग्न हो उठा।

लाठी टेकती हुई वह आगे बढ़ी। ठौर ठौर पर मार्ग पंकमय हो गया था। कलरी शीघ्रही थक गई पर जाना ज़रूरी था। उसके हृदय का टुकड़ा सकट में था। सड़क में कितने घोड़े, मोटर, बग्घी, गाड़ियाँ निकल गईं किन्तु कलरी के मन में एक ही धुन थी। धीरे धीरे उसके मन में अतीत की सारी स्मृतियाँ जाग उठीं। उसका विवाह—वे सोने से दिन—स्वामी, लड़के, कुटुम्ब, मृत्यु, मन्नू। एक अज्ञात अशुभ की आशंका से उसका हृदय काँप उठा। हे भगवन्! तू ने कितनों को उबारा है।' फिर याद पड़ा—वह मन्नू को अकेला ही छोड़ आई है। फिर भी 'निर्धन के धन राम' कहती हुई आगे बढ़ती चली जाती थी। नदी तट पर की भीड़ को चीरती हुई वह नाव तक आ पहुँची। नाव पर एक ही पैर देने पाई थी कि एक कोने से एक मुसाफिर ने डपट कर कहा—हट यहाँ से कहाँ से चुड़ैल नाव पर चढ़ने आई है! सूझता नहीं कि तहसीलदार साहब बैठे हैं। यह तो मानो सिगनल था। बहुत लोगों ने एक साथ ही उसे डपट दिया। अब वह नाव में बैठे कि लौट जाय यही सोच रही थी कि नाव खुली और वह जीर्णकाय नारी चिलौनी की चपल धारा में तत्क्षण ही गिर पड़ी। नाविक दयावान था और उसे बचाना चाहा पर तहसीलदार साहब की डाँट के सामने उसकी एक भी न चली। नदी की प्रबल वारिराशि से युद्ध करती हुई नाव आगे चली। मुसाफिरों ने देखा—वह अधमरी सी एक बहती हुई लकड़ी के सहारे, डब डुब करती हुई बहती जा रही थी। दिन ढल रहा था। निस्तेज रवि भी अन्तरिक्ष के अंचल में जा छिपा। लकड़ी भी नदी की तरंगों पर नाचती हुई

पार्वती के दूसरे घाट पर पहुँच गई। साँध्य गगन के धूमिल प्रकाश में जब एक अनजान मजदूर उस लकड़ी को खींच कर किनारे लाया, तो तटस्थ झुंड उससे एक नरकंकाल को निकलते देख एक बारगी चिल्ला उठा।

• • •

वैद्यजी का निवास स्थान शिव मन्दिर के समीपस्थ ही था। अपना दरवाजा तंग होने के कारण आप इसका काम मन्दिर के विशाल आँगन से ही लेते थे। बहुत लोग तो ऐसा ही समझते थे कि वैद्यजी मन्दिर पर ही निवास करते हैं। अतः इनके अन्वेषक अधिकतः यहीं चले आते थे और यहीं से उन्हें वैद्यजी का समाचार भी प्राप्त हो जाता था। आज उनकी तबीयत कुछ सुस्त थी। बाहर 'कॉल' में न जा सकने के कारण तीन हो बजे स्थान पर आ गये थे। तत्पश्चात् मुसई झा भी आए।

भंग की तैयारियाँ हो रही थीं। दर्शनार्थी भक्त जन शीघ्र दर्शन समाप्त कर, धूप पर मक्खियों की नाईं धूनी के पास जमते जाते थे। खासा झुण्ड एकत्रित हो गया था।

वैद्यजी ने अपनी नेपाली टोपी सिर से हटाकर कहा—हाँ, भाई शास्त्रों में ठीक ही कहा है 'न खी करेद स्वातन्त्र्यः' अर्थात् सभी रोगों की जो-है सो मल ही कारण हैं और वह जो है सो बिना भंग के हट नहीं सकता।

मुसई झा असेसर ने खाँसते हुए कहा—हाँ, वैद्यजी बात तो ठीक ही है। परसाल, ता० ५ लुअम्बर को जो मैं चौकीदारी दाखिल करने गया था, तो मेरे जमादार साहब अजीबखाँ भी वहीं थे। वह भी यही कह रहे थे। उन्हें तो बिना दम लगाये दम ही फूलने लगता है। ज्योतिषी झूना मिश्र ने धूनी की चिन-गारियों को चिमटे से झाड़ते हुए कहा—ऐसे खैनी बैना के लिये आप जो कहिये; मगर भंग तो, भाई ब्राह्मणों तक के लिये विहित है। स्वयं मनुजी ने .

कालूलाल खैनी की पीक फेंकते हुए बीच ही में बोल उठा—बिना किसी अमल के कोई कैसे रह सकता है? गवैयों का तो स्वर ही बर्बाद हो जाय और भक्तों के लिये अमृत समान है।

मौदू झा ने मानों सभी के सन्देहों को दूर करते हुए उपसंहार में कहा—शैवों का तो मत ही भिन्न है; पर तो भी आपद्धर्म का विचार तो क्रिस्तान लोग भी करते हैं और कहा भी है 'आत्मा रक्षा परोधर्मम्।' वैसे बलटियर कुछ टिपर जो बक-झक करें।

इसी प्रकार वार्तालाप हो रहा था। पुजारीजी प्रसन्न बैठे थे। इतने ही में नदी की ओर से एक भीषण आवाज़ आई। महाबली शिव के भक्तों में हलचल-सा मच गया। पूरब की ओर लोगों ने देखा—जल से भींगी, थर-थर काँपती एक बूढ़ी स्त्री की अर्द्धनग्न मुद्रा कराहें टेकती हुई, मंथर गति से मंदिर की ओर आ रही थी।

सायंकाल का समय था। एक तो कृष्ण पक्ष की निविड़ अन्धेरी रात्रि, दूसरे हिम-जल की बूँदें टिप टिप कर रही थीं। पश्चिम ओर से हिन्दूकुश की बर्फीली हवा भाँय-भाँय करती बह रही थी। महीतल पर शीघ्र ही घना अन्धकार छा गया। हाथों हाथ कहीं नहीं सूझता था। जब कलरी भोलशंकर के स्थान के समीप पहुँचा, उसका बदन अत्यन्त ठंढा पड़ गया था। जाड़े से उसके हाड़ हिल रहे थे। शरीर और मन के सम्पूर्ण बल को सकलित कर वह देव द्वार तक आई थी। आशा थी—वहाँ उसे वैद्यजी मिलेंगे और उसका लड़का जी जायगा। उसने ज़ोर से पुकार कर कहा—सरकार! गरीब की रक्षा कीजिए। एक ही बेटा है। भगवान भला करेंगे।

इतना कहते-कहते वह चेतना हीन हो ज़मीन पर गिर पड़ी। लोग दौड़े और उसकी अवस्था देख, स्तम्भित हो गये। कलरी अन्तिम साँसे ले रही थी।

मौदू झा सरोष नेत्र हो बोले—नारायण! नारायण!! इस पापिन ने तो स्थान को भ्रष्ट कर दिया।

छटपटाती हुई डोमिन ने फिर भी करुण स्वर में पुकारा—एक ही बेटा है सरकार! मनुआँ को दवा ... अकेले ए . . .।

कुछ उत्साही नवयुवकों ने जिन्हें बुढ़िया के करुणक्रन्दन ने वहाँ आकृष्ट किया था—वैद्यजी से बुढ़िया की झोपड़ी तक चलने के लिये बहुत विनती की। वैद्य जी ने गाँजा में दम मारकर चिलम को कालूलाल की ओर खसकाते हुए कहा—हैजा को तो शास्त्र में सब रोगों का राजा माना है। इससे मनुष्य का बचना उतना ही कठिन है, जितना पशुओं के मुख से घास का। तोभी बिना दुर्गाजी के मन्दिर से फूल लिए वहाँ जाना तो बड़ा ही विपत्ति जनक है।

मन्नू की माँ ने कराहते हुए फिर पुकारा—भ भ भ . ग.. वा आ . न भला . करें . एगें और सदा के लिये आँखें मूँद लीं।

उन नवयुवकों से न रहा गया। वे बेताब हो उठे। इधर उधर से कुछ दवायें ले, वे शीघ्र ही नदी लाँघकर उस गहन रात्रि में डोमों के टोले में पहुँचे। कलरी का निर्जन गृह ढूँढ़ने में उन्हें देर न लगी। जब वे बिजली बत्ती का प्रकाश कर उसके नीरव आँगन में पहुँचे तो देखा—श्वान उस बालक के शव को मग्न हो खींच रहे थे। बाबा रामदास वाला तावीज बाँह में वैसे ही बँधा था।

(८वें पृष्ठ का शेषांश)

के रूप में जो धन आता है, वह किसी हद तक देश ही में रह जायगा, परन्तु यह तो तभी हो सकेगा, जब 'अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्ध' की फिल्मों का स्वप्न कार्य रूप में परिणत हो। आज-कल फिल्मों की जो दशा है, वह सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। उनमें जितना रुपया-पैसा लगता है, उसका शतांश लाभ भी तो नहीं पहुँचता। इन फिल्मों में विदेशी कच्चा माल व्यवहार करने के अलावा और भी बहुत सी कमियाँ और दोष हैं, जिनका जनता पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है, परन्तु यहाँ हम उन सब बातों पर विचार नहीं करेंगे, वह सम्भवतः विषयातिरेक हो जायगा। उन दोषों के बारे में काफ़ी लिखा जा चुका है और नित्य प्रति लिखा जा रहा है। कुछ दोष कम भी हो चले हैं, परन्तु इस सबसे बड़े दोष की ओर अभी अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। इस दोष को दूर करने के तो शीघ्र-से-शीघ्र प्रयत्न किये जाने चाहिए, जिसमें भारतीय फिल्मों को वास्तव में 'भारतीय' कहने का सुअवसर प्राप्त हो सके।

ज़िन्दगी नाम कुछ दिखाती है क्या-क्या,
बदलता है इन आसमाँ कैसे-कैसे;
न हैं अब वो बूते न गोरे सिकन्दर,
मिटे कामिलों के निशाँ कैसे-कैसे।'

दारा-शिकोह

लेखक—जयप्रकाशनारायण श्रीवास्तव

मनुष्य अपनी इच्छाओं का दास है। उसके हृदय में कामनाओं, वासनाओं एवं अभिलाषाओं का एक तूफ़ान-सा निरन्तर उठा रहता है, और वही मानव जीवन के भिन्न-भिन्न दशाओं में, भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा, भिन्न-भिन्न रूप में प्रतिफलित होता है। आज हम जो कुछ अपने चारो ओर देखते हैं, उन सबों में इन्हीं उपकरणों का सामञ्जस्य है। मनुष्य की वर्तमान सभ्यता, वैज्ञानिक चमत्कार, साहित्य एवं कला की उत्कृष्टता, जातियों का उत्थान एवं पतन इत्यादि सभी तो इन्हीं मानसिक भावनाओं के प्रतिबिम्ब रूप हैं, किन्तु इन सभी की साधनों के दो मार्ग हैं। सत और असत्, न्याययुक्त और अन्याय युक्त, किन्तु मानव अपनी सहज दुर्बलता के कारण असत् और अन्याय युक्त युक्तियों का ही अवलम्बन लेता है, पर जो सद्विचारी हैं, जिनके हृदय में थोड़ा-सी भी मनुष्यता की छाप है, वे ही मनुष्य हैं। उन्हीं का नाम इतिहास में गौरव मय दृष्टि से देखा जाता है। दुनिया उनके सुख से सुखी और दुख से दुखी होती है। अतीत के गर्भ में पड़ जाने पर भी उनके कष्टों पर, उनके दुख-गाथाओं पर हम भी रो उठते हैं। किन्तु अन्यायी सदा के लिये अपना नाम कलंकित कर जाता है। हम भी आज, अभागे युवराज दारा शिकोह की स्मृति में उसके असह्य-दुखों को याद कर उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित किये बिना, उसकी याद में दो बूँद आँसू बहाये बिना नहीं रह सकते। ज़ालिम औरंगज़ेब ने उसे जो जो यातनायें दीं, वह बयान कर उसकी कल्पना कर कलेजा काँप जाता है। मनुष्यता भी सिहर उठती है। राज्य मद! तू कैसा ही कठोर-कुचक्री है। तू जिस पर सवार हुआ, वह न्याय अन्याय सब भूल जाता है। और बड़े से बड़ा पाप करने में भी नहीं चूकता। तू मनुष्यों को हिंस्र पशु से भी अधिक भयानक एवं रक्त शोषक बना देता है। तेरे ही क्रूर कुचक्र में पड़कर इंग्लैंड के राजा जॉन ने अपने निरीह भतीजे कुमार आर्थर को कैद कर, उसे अमानुषिक यातनाओं का शिकार बनाया, जिससे घबड़ा कर, वह फूल-सा सुकुमार कुमार कह उठा था—'By my Christendom so I were out of prison and kept Sheep

I Should be as merry as the day is long'

अर्थात्—मैं धर्म की साक्षी देकर कहता हूँ कि यदि मैं इस कारागार से मुक्त होता और भेड़ों की चरवाही कर साधारण जीवन बिताता तो मेरी प्रसन्नता सीमातीत होती'

अस्तु—हम अपने विषय की ओर बढ़ते हैं—

सम्राट शाहजहाँ जब १६५७ ई० में भयानक तरह से रोग-ग्रसित हुए, तो उनके चारो लड़कों में राजगद्दी के लिये प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हुई और फलस्वरूप, उसे पाने के लिये उन्होंने आपस में लड़ाई छेड़ दी। जो जहाँ था वहीं सारा काम छोड़ उसके दिल्ली पर दखल जमाने के लिये अपनी सेना लेकर आया। सम्राट के, चारों लड़कों-दारा, शुजा, और औरंगज़ेब और मुराद के सिवाय दो लड़कियाँ भी थीं। उनका नाम जहाँनारा और रोशनआरा था। जहाँनआरा ने दारा का साथ दिया और रोशनआरा ने औरंगज़ेब का। सभी शाहज़ादे तरुण वयस के थे और सबों ने, सेनाओं का नायक बनकर या सूबों का शासक रहकर युद्ध और शासन व्यवस्था की थोड़ी बहुत योग्यता प्राप्त करली थी। सबसे बड़े युवराज दारा पर उसके अनेक गुणों के कारण पिता की कृपा-दृष्टि अधिक रहती थी। बड़े होने के कारण दारा ही पिता की राजगद्दी पर बैठता, पर उसका सीधापन ही उसके दुर्भाग्य का कारण हुआ। अति शुभ स्नेह के कारण वह पिता से बहुत कम अलग हुआ और सदा केवल दरबार में उपस्थित रहने के कारण एक प्रकार सेना-नायक का गुण नहीं प्राप्त कर सका। इसके अतिरिक्त दरबारी चाटुकारों की खुशामद से उसे पिता के बाद गद्दी पाने का पूरा विश्वास हो गया था। [illegible] वह सदा ही निश्चिन्त बना रहा। फलतः राज्याधिकार के लिये [illegible] लड़ाई हुई उसमें उसे नीचा देखना पड़ा और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग उसने ज्ञान की प्राप्ति में लगाया था। और यह मानी हुई बात है कि अध्ययनशील मनुष्य उत्तम योद्धा नहीं हो सकता।

शाहजहाँ जब बीमार पड़े उस समय दारा उनके साथ था और सम्राट के नाम पर प्रजा सम्बन्धी सभी कार्य सम्पादन करता था। उस समय शान्त हृदय दारा ने राज्य के लिये उतावला-पन नहीं दिखलाया, किन्तु जब शाहजहाँ ने अपने विश्वस्त सभासदों के बीच उसे राज सिंहासन दिया तब वह अपने स्वत्व को सुरक्षित करने में लगा। शुजा, औरंगज़ेब और मुराद उस समय क्रमशः बंगाल, दक्षिण और गुजरात में थे। पिता की भयंकर बीमारी का ख्याल कर उन्हें सन्देह हुआ कि बादशाह मर गये और दारा राज्याधिकार के लिये इस समाचार को प्रकाशित नहीं करता। बस, तीनों भाइयों ने युद्ध की घोषणा कर दी।

और और लड़ाइयों के अतिरिक्त दारा और औरंगज़ेब के बीच, सामूगढ़ नामक स्थान में लड़ाई हुई। दारा की सेना केवल देखने में बड़ी थी। पर भिन्न भिन्न श्रेणी और स्थान के सिपाहियों के कारण उनमें [illegible] नहीं था। घमासान युद्ध होने लगा। जब उस हाथी को (जिस पर दारा सवार था) चोट लगी, तो दारा अपने हरबा-हथियार और जूतों तक को भी हाथी के हौदे पर छोड़कर एक घोड़े पर आ बैठा। हौदे को सूना देख कर उसके सिपाहियों ने समझा कि दारा मारा गया। बस हतोत्साह हो छितिर बितिर होकर वे भाग चले। हृदय में असीम नैराश्य लिये हुए दारा कुछ विश्वस्त साथियों के साथ आगरा की ओर बढ़ा। उनकी दशा दयनीय थी। भयानक रात्रि में, सुनसान मार्ग से होकर वे गुज़र रहे थे। नव बजे रात्रि में वे लोग आगरा पहुँचे। इतनी दीनावस्था में थे कि शहर वालों ने पहचाना भी नहीं। औरंगज़ेब भी आगरा पहुँचा। इसलिये दारा को लाहौर की तरफ़ भागना पड़ा। औरंगज़ेब ने किले को घेर लिया और किले के जलमार्ग (जिसे यमुना से सम्बन्ध था) को भी बन्द कर दिया। ज्येष्ठ की उस चरचराती धूप में, गर्मी के कारण शाहजहाँ को प्यास लगी, पर पानी कहाँ मिले। जल मार्ग को तो औरंगज़ेब ने बन्द ही कर दिया था। आख़िर किले के कुछ भीतरी कुओं से (जिन में गर्मी के कारण बहुत थोड़ा जल रह गया था) शाहजहाँ को अपनी प्यास बुझानी पड़ी। केवड़े और गुलाब के पानी से जो स्नान करते थे, उन्हें खारी पानी भी बड़े महँगों नसीब हुई। शाहजहाँ ने एक करुणा-पूर्ण पत्र औरंगज़ेब को लिखा जिसका सारांश यह है—'मेरे लड़के, अपनी खुश-किस्मती पर ग़रूर न कर। सभी एक दिन मिट्टी में मिलने वाले हैं, पर सिर्फ़ नेकी ही इन्सान का साथ देती और खुदा तक पहुँचाती है। तारीफ़ उन हिन्दुओं की है, जो अपने मुर्दों को भी पानी दिया करते हैं, और तुम मेरे लड़के होकर भी मुझे पानी तक को तरसाते हो।'

किस्मत की ठोकरें खाता हुआ दारा गुजरात पहुँचा। वहाँ के नये शासक शाहनवाज़ खाँ ने उसे यथाशक्ति सहायता पहुँचाई। दारा ने तब दूसरी बार युद्ध करने की ठानी और दक्षिण के राजाओं से सहायता पाने की आशा में उधर ही जाना चाहा, लेकिन यशवन्तसिंह से सहायता का वचन पाने पर अजमेर चला गया। इधर औरंगज़ेब ने अपने कूटनीति से यशवन्तसिंह को अपने तरफ़ मिला लिया था। अजमेर पहुँचने पर वहाँ की वास्तविक परिस्थिति देखकर दारा हक्का बक्का हो गया, पर बिना अकेले लड़ने के कोई चारा नहीं था। निदान वह सहज ही परास्त हो गया और अपने परिवार के साथ गुजरात की तरफ़ भागा, किन्तु औरंगज़ेब ने पहले से ही वहाँ के राजाओं और जमींदारों को पत्र द्वारा-दारा का मार्ग रोक लेने के लिए आदेश दे दिया था। इससे अहमदाबाद के शासक ने उसे नगर में घुसने तक नहीं दिया। अपने रक्षा के इस अन्तिम आश्रय से भी दारा जब वंचित कर दिया गया, तो वह किंकर्तव्य विमूढ़-सा हो गया। बर्नियर (जो एक फ्रेंच था और भ्रमण करने भारत को आया था), जो उसकी (दारा का) विपत्ति में उसके साथ था, लिखता है कि—'हम सब आपद्-ग्रस्त और सन्दिग्धावस्था में चारों विहीन-हो, एक दूसरे को देखने लगे। कुछ सूझ नहीं पड़ता था कि क्या करना चाहिए और किन विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। दारा ने देखा कि सभी के चेहरे का रंग उड़ा हुआ है और उसे ऐसा आभास होने लगा कि कोई साथ न देगा।'

इधर-उधर ठोकरें खाता हुआ राजपुताना, कच्छ और सिन्ध की खाक छानता हुआ दारा मारा-मारा फिरने लगा, पर औरङ्गजेब के भय से किसी ने सहानुभूति नहीं दिखलाई। अन्त में १६५९ के जून की भयानक गर्मी मे वह बोलन की घाटी की तरफ चला। क्योंकि वहाँ के मालिक जीवन नामक बलूची सर्दार से सहायता पाने की उसे उम्मीद थी। (किसी समय शाहजहाँ ने मालिक जीवन को फाँसी की सजा दी थी, पर दारा ने दया करके बचा लिया था), पर दारा के दुर्भाग्य ने वहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। जीवन में सबसे कठोर सन्ताप, सबसे महान् दु:ख उसे मार्ग मे भोगना पड़ा। उसकी प्यारी पत्नी, पति-परायणा मुगल रमणी-नादिराबानू, जिसने हरम के सारे सुखो को त्याग कर अभागे पति का साथ दिया था, उसके साथ-साथ मारी-मारी फिरती रही। जो जो कष्ट उसे उठाने पड़े, उसका पूरा वर्णन कठोर से-कठोर हृदय को भी द्रवीभूत कर सकता है। इस दु:सह यात्रा के फल-स्वरूप उस पर भयानक रोगो ने आक्रमण कर दिया। वैसी अवस्था मे भी उस त्याग-मयी ने पति का साथ नहीं छोड़ा। मुगल-रमणी तुम धन्य हो। केवल राज-नीति और शासन का पाठ पढने वाले ऐसे अमर उज्वल चरित्रों पर ध्यान नहीं देते, केवल भयानक संग्रामो और शासकों का नीति-चरित्र विश्लेषण ही में अपना सारा ध्यान अर्पित कर देते हैं। रोगो का सामना करता हुआ वह कोमल शरीर अति दुर्बल पड गया। अन्त में प्यारे पति की गोद में सिर रखे, आँसू की दरिया सी बहाती हुई, उस सौभाग्यवती ने अपने नेत्र मूँदे। अमरावती के समान आमोद-प्रमोद और भोग-विलास में रहने वाली रमणी को निविड़-निर्जन मार्ग मे प्राण देने पड़े। कैसा होगा वह दुखद दृश्य? जो कभी भारत का सम्राट होता, विश्व की विभूतियाँ जिसके चरणों पर कभी लोटती होतीं, वही आज विपत्तियो का शिकार बना हुआ, सुनसान स्थान में, अपनी प्यारी पत्नी की मृत्यु से क्षुब्ध हो जार-जार रो रहा था। इतिहासकार बतलाते हैं कि उस असह्य दुख ने दारा के हृदय को मथ डाला और उसे उन्माद-सा होगया। कभी मृत पत्नी की ओर देखता, कभी शून्य आकाश की ओर, पर चारों तरफ नैराश्य के घनघोर बादल दौड़ते नजर आते थे। नादिराबानू के खुले नेत्रों में अब भी दीनता भरी थी। मानो पति दुख से दुखी हों।

इतिहासकार काफीखाँ लिखता है कि मुसीबतो और तकलीफों ने दारा के दिल पर इतनी चोटें कीं कि उसका दिमाग दुरुस्त नहीं रह सका। कृतघ्न बलूची सर्दार मालिक जीवन ने सहायता करने के बदले उसे औरंगजेब के आदमियों के हाथो सौंप दिया। अपने द्वितीय पुत्र और दो पुत्रियों सहित दारा कैद कर दिल्ली लाया गया। उनके पैरों में बेड़ियाँ जकड़ी हुई थीं। बदन पर फटे चिथड़े थे। एक गन्दे हथिनी के पीठ पर बे हौदे के उन्हें दिल्ली के गलियों में घुमाया गया। उन्हीं रास्तों से दारा कभी बहुमूल्य रत्नजटित वस्त्रों से आच्छादित हो, अमीर उमराओं के बीच शान से गुजरता था, पर अब? हायरे दुर्भाग्य! समस्त दिल्ली वासियों की दया और करुणा का भाव उमड़ पड़ा। बर्नियर अपनी इन आँखों देखी हुई घटनाओं का वर्णन इस प्रकार करता है—चारों तरफ इतनी भीड़ थी कि तमाम मनुष्य ही-मनुष्य दिखलाई पड़ते थे। मैंने सभी को दारा की दशा पर रोते, चिल्लाते और विलाप करते देखा। उनका दारुण क्रन्दन कलेजे को फाड़े डालता था। सभी मकानों से हृदय हिला देनेवाला क्रन्दन और विलाप सुनाई पड़ता था। स्त्री, पुरुष और बच्चे, सभी छाती पीट पीट ढाढ़ें मार कर रो रहे थे। मालूम होता था सभों के घर में कोई बड़ा भारी मातम मनाया जा रहा है। पर दारा को कोई न छुड़ा सका। वह तो सशस्त्र सिपाहियों और तीरन्दाजों की कठिन निगरानी में था। इसके बाद दारा को उसके बच्चों के साथ खवासपुर (पुरानी दिल्ली) के भवन में केवल फाँसी की आज्ञा सुनाने के लिये कैद कर दिया गया।

दरबारे-खास में दारा के सम्बन्ध में बहुत वाद-विवाद हुआ। दानिशमन्द खाँ नाम के व्यक्ति ने दारा को जीवन दान देने का प्रस्ताव किया, किन्तु शाइस्ता खाँ और बहादुर खाँ इत्यादि ने दारा के लिये फाँसी की सजा ही उचित समझा। दारा के बहन रौशनआराने भी उसकी (दारा की) फाँसी ही चाही। अन्त में 'इस्लाम के प्रति घृणा' का जुर्म लगा कर औरंगजेब ने दारा को फाँसी की आज्ञा दी। दारा ने क्षमा के लिये प्रार्थना किया, किन्तु निष्ठुर हृदय औरंगजेब ने उसे दुष्ट और धोखाबाज कह कर क्षमा करने से साफ इनकार कर दिया। यह हाल सुनकर दिल्ली-निवासियो को बड़ा क्षोभ हुआ। फाँसी का भार नाजिर-बेग नाम के गुलाम और उसके दो-चार साथियों के हाथों सौंपा गया। सन् १६५९ के ३० वीं अगस्त की वह रात्रि बड़ी करुणा पूर्ण थी। अपने अभागे पिता की गोद में सिपिर शिकोह (दारा का लड़का) चिमटा हुआ था। दारा अन्तिम बार अपने प्यारे पुत्र को चूमने भी नहीं पाया था कि जालिमो ने झटका देकर उसे उससे दूर कर दिया। भयानक मुठ-भेंड़ के पश्चात् दारा मार डाला गया। धड़ से अलग किया हुआ उसका सिर औरंगजेब को दिखाया गया। उसने उसके मृत शरीर को पुनः एक बार दिल्ली की गलियों में घुमाने का हुक्म दिया। इसके बाद दारा का शव हुमायूँ की क़ब्र में दफना दिया गया।

दारा बड़े ही धार्मिक प्रवृति का एक प्रकाण्ड विद्वान था। उसके विचारों में जरा भी सकीर्णता न थी। उसने हिन्दूवेदान्त, उपनिषद्, बाइबिल और मुस्लिम सूफी रचनाओं का विशेष रूप से अध्ययन किया था। विद्वान ब्राह्मणों की सहायता से उसने अथर्व वेद और उपनिषदों का फारसी में अनुवाद भी किया था। कट्टरता और अन्धविश्वास से उसे घृणा था। वह धर्म के आडम्बर से सदा दूर रहा।

औरंगजेब को, दारा के विरुद्ध मुसलमानों को भड़काने का यह एक अच्छा बहाना था, किन्तु दारा को इसलाम के प्रति बहुत भारी श्रद्धा थी। दारा के विरुद्ध 'इसलाम विरोधी' का अपराध औरंगजेब के अनुसार निम्न लिखित कारणों से था—(१) दारा, ब्राह्मणों, योगियों और सन्यासियों को आध्यात्मिक शिक्षक मानता तथा उनसे बातचीत करता था। वह वेदों को ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तकें मानता तथा उनका अध्ययन करता था। (२) अपने अँगूठी और रत्नमय आभूषणों पर उसने हिन्दी में 'प्रभु' शब्द खुदवाया था। रमजान तथा दूसरे तरह के पर्वों को नहीं मानता था।

निम्न लिखित रचनाएँ भी दारा ने की थ—

(१) सिर्रे-उल-असरार—पचास उपनिषदों का अनुवाद।

(२) मजमुआ उल बहरईन—हिन्दु ईश्वरवाद के विशेष शब्दों की व्याख्या और उनके सूफी पार्याय वाची शब्द (३) सफीनत उल औलिया—जिसमें मुसलमान फकीरों के जीवन-चरित्रों का उल्लेख था (४) रिसालाइ हक़ नामा इत्यादि। उसकी और भी कितनी ही रचनाएँ हैं।

विदेश - वार्त्ता

जापान का भविष्य

लेखक—श्रीयुत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से—विशेषकर गत यूरोपीय युद्ध के बाद—जापान जितनी शीघ्रता के साथ उन्नति करता रहा है और निर्भीक भाव से साम्राज्यवाद के पथ पर अग्रसर होता रहा है, उसे देखकर पश्चिम के अनेक देश उससे ईर्ष्या करने लगे हैं। उसकी महती सैन्य शक्ति का ख्याल कर खुल्लम-खुल्ला उसका विरोध करने और बैठे बिठाये उससे लड़ाई मोल लेने की हिम्मत तो उनमें नहीं है पर वे भीतर ही भीतर उसके पतन की इच्छा कर रहे हैं। यदि रूस के साथ उसकी ठन जाय और उसके परिणाम स्वरूप उसकी शक्ति जर्जर हो जाय, तो श्वेतांग जातियों के लिए इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है?

विश्वसाम्राज्य का स्वप्न

जापान के प्रति उनकी इस द्वेष बुद्धि का कारण जापान की महत्त्वाकांक्षा और विश्व साम्राज्य का स्वप्न है। चीन तथा रूस को परास्त कर वह कोरिया, फारमोसा आदि स्थान पहले ही ले चुका था। धीरे धीरे उसने समस्त मञ्चूरिया को अपने प्रभाव में लाने की चेष्टा आरम्भ कर दी, जो सन् १९३१ में पूरी हो गई। इस बीच में गत यूरोपीय महासमर के समय उसने प्रशान्त सागर में स्थित जर्मनी के द्वीपों पर भी कब्जा कर लिया। युद्ध समाप्ति के बाद राष्ट्रसंघ से इन द्वीपों का शासनादेश भी उसे प्राप्त हो गया, यद्यपि मञ्चूरिया के मामले में राष्ट्रसंघ की नीति से असन्तुष्ट होकर, वह उसके सम्बन्धविच्छेद करने की घोषणा कर चुका है, फिर भी उसका इरादा इन समस्त टापुओं पर से अपना अधिकार हटाने का नहीं है। इस सम्बन्ध में उसने अपना मत बिल्कुल स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया है। उसके लिये आर्थिक या व्यापारिक दृष्टि से तो इनका कोई महत्त्व नहीं है, किन्तु अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि से युद्ध छिड़ने पर वे उसके बड़े काम के हैं। इसी से वह इन्हें छोड़ना नहीं चाहता।

चीन और अपने संरक्षण में हेनरी पू-यी को वहाँ मञ्चूरिया और जहोल प्रान्त को छीन लेने का सम्राट बना कर भी उसकी भूख शान्त नहीं हुई है। अब उसकी मंशा मंगोलिया की ओर अग्रसर होने की है। शायद वह साइबेरिया के पूर्वी भाग पर भी अधिकार कर लेना चाहता है। रूस के ब्लाडीवास्टक नामक पोताश्रय को वह सामरिक दृष्टि से अपने लिए बहुत खतरनाक समझता है। जापान से वह स्थान केवल चार सौ मील की दूरी पर ही स्थित है। वहाँ से उड़कर रूसी हवाई जहाज दो तीन घण्टे में ही जापान पहुँच सकते हैं और उसे काफी नुकसान पहुँचा सकते हैं। अतः अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वह रूस के इस बन्दर पर अधिकार कर लेना आवश्यक समझता है।

जापान के कार्यों से उसकी नीति का आभास पाकर और समाचार पत्रों में उसके मनसूबों की चर्चा पढ़कर अमेरिका तथा यूरोप के राष्ट्र चौकन्ने हो गये हैं और वे विशेष ध्यान पूर्वक उसकी गतिविधि का अवलोकन करने लगे हैं। एशिया ही नहीं सारे विश्व में जापान अपना साम्राज्य फैलाना चाहता है, इस सम्बन्ध में उन्हें अब कोई सन्देह नहीं रह गया है। इससे वे मन ही-मन उसके विनाश की कामना कर रहे हैं।

लगभग दो वर्ष पहले जापान के सुप्रसिद्ध पत्र 'ओसाका मैनिची' ने लिखा था कि 'जापान को पूर्वी देशोंपर अधिकार कर, बन्दूक के जरिये सारे संसार को जीत लेना चाहिये।' इसी तरह टोकियो स्थित एक विश्व विद्यालय के अध्यापक ने अपनी लिखी हुई 'जापान का खतरा' नामक पुस्तक में १५ वर्ष के अनुभव के आधार पर निश्चित रूप से यह मत प्रकट किया है कि जापान केवल चीन ही नहीं, भारत आस्ट्रेलिया, रूस आदि पर भी कब्जा कर लेना चाहता है। ऐसेही विचार अन्य कई लोगों ने प्रकट किये हैं। उदाहरणार्थ 'डेली हेराल्ड' (लन्दन) के संवाददाता के कथनानुसार जनरल अराकी (भूतपूर्व युद्धमन्त्री) भारत वर्ष का भी उद्धार करना चाहते हैं। उन्होंने हालमें ही कहा था 'बृटेन के अत्याचार पूर्ण शासन में भारत अत्यधिक कष्ट भोग रहा है। क्या जापान के लिये, जिसका पवित्र ध्येय 'कागे' (शाही तरीके) का प्रसार करना और पड़ोसियों की रक्षा करना है, यह सम्भव है कि वह चुपचाप बैठकर इसी तरह तमाशा देखता रहे?'

विश्वसाम्राज्य के इस स्वप्न के कारण ही जापान आज पश्चिमी राष्ट्रों की आँखों का काँटा बनता जा रहा है और वे धीरे धीरे उसके विरुद्ध गुट बन्दी करते जा रहे हैं। यदि वह समय रहते ही अपनी लालसाओं का नियन्त्रण नहीं करता, तो भविष्य में उसकी क्या गति होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं?

आन्तरिक कठिनाइयाँ

इधर इस प्रसार नीति के कारण जापान की आन्तरिक कठिनाइयाँ भी बढ़ रही हैं। अपनी अभीष्टसिद्धि के लिए उसे बराबर सैनिक व्यय की वृद्धि करनी पड़ रही है, जैसाकि निम्न लिखित अंकों से स्पष्ट है—

वर्ष	सैनिक व्यय
१९२३	—४८ ६ करोड़ येन
१९३२	—६९ ६ ,,
१९३३	—८५ ,,
१९३४	—९२ (अनुमान)

सैनिक व्यय के इस तरह बढ़ जाने के कारण जापान सरकार को नये नये कर बैठाने पड़े हैं और बजट की कमी पूरी करने के लिए अधिकाधिक ऋण लेनेके लिये बाध्य होना पड़ा है। इससे सर्व साधारण का असन्तोष बहुत बढ़ गया है। जहाँ-तहाँ गुप्त संस्थाएँ स्थापित हो गई हैं, जिनका उद्देश्य वर्तमान सरकार को उलट देना है। कठोर दमन नीति का आश्रय लेने पर भी इनका अस्तित्व नहीं मिटाया जा सकता है और न निकट भविष्य में ही उनके विनष्ट किये जाने की सम्भावना है।

लिओन ट्राटस्की के कथनानुसार जापान में क्रान्तिके लक्षण स्पष्ट रूप से दृष्टि-गोचर हो रहे हैं। मजदूरों के साथ किसानों की भी सहानुभूति बढ़ती जारहा है और वे आतंकवाद के समर्थक बनते जा रहे हैं। इसी तरह वहाँ के शिक्षित समुदाय में भी असन्तोष फैलता जा रहा है। सभी स्कूलों और कॉलिजों में गुप्त समितियों की शाखाएँ खुल गई हैं। मध्य वर्गीय नवयुवक समाज इनमें खास दिलचस्पी ले रहा है। युद्ध छिड़ने पर इन्हीं नवयुवकों और शिक्षित वर्ग से नये सैनिक तथा कर्मचारी भरती किये जायँगे और इन्हीं मेंसे क्रान्ति के नेता भी उत्पन्न होंगे। अत साम्राज्यवादी जापान शीघ्रता पूर्वक विनाश की ओर अग्रसर हो रहा है यह स्पष्ट है।

यदि युद्ध हुआ तो?

ऐसी अवस्था में प्रश्न यह है कि यदि रूस के साथ जापान का युद्ध हुआ, जिसकी संभावना अभी तक बनी हुई है, तो जापान की क्या गति होगी? वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए इस प्रश्न का केवल एकही उत्तर दिया जा सकता है और वह यह कि युद्ध का परिणाम जापान के लिए अच्छा न होगा। कारण यह है कि आन्तरिक कठिनाइयोंके साथ साथ इस समय बहुत सी बाहरी बाधाएँ भी उसके सामने उपस्थित हो गई हैं, जिनसे पार पाना उसके लिए टेढ़ी खीर ही है।

अपनी नीति के कारण उसने चीन और रूस को ही असन्तुष्ट नहीं कर रखा है, वरन् अमेरिका और बृटेन भी उससे सशंक हो उठे हैं। इसी तरह संसार के और भी बहुत से देश उसके विरोधी बन गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इस समय वह अकेला सा पड़ गया है। राष्ट्रसंघ से पृथक हो जाने की घोषणा करने के बाद से जर्मनी अवश्य उससे कुछ-कुछ सहानुभूति प्रकट करने लगा है किन्तु वर्तमान स्थिति में वह जापान की सहायता ही क्या कर सकता है?

उधर रूस उसकी तरह अकेला नहीं है। उसने शक्तिशाली अमेरिका से मित्रता कर ली है और खुद भी अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली है। अब वह वैसा कमजोर नहीं है जैसा १९०४ १९०५ में था। उसकी लालसेना पूर्ण सुसंघटित और आधुनिक अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित है। जापान का रुख देखकर, उसने साइबेरिया में अपनी स्थिति काफी मजबूत बना ली है। इसी से अब वह बार-बार जापान को चुनौती देकर कह रहा है, कि यदि उसने मैदान में उतरने की धृष्टता की, तो रूस के साथ छेड़खानी करने का मजा उसे शीघ्रही मिल जायगा।

सैनिक व्यय का भार वहन करने के लिए जापान अपना व्यापार बढ़ाने का जो प्रयत्न करता रहा है, उसमें भी अब बाधाएँ खड़ी की जा रही हैं। जापान की व्यापार वृद्धि से सबसे अधिक धक्का बृटेन को लगा है, अत वह भी इस समय जापान से तना हुआ है। यद्यपि इस मामले में जापान बृटेन से समझौता कर लेना चाहता है पर हाल के आये हुए समाचारों से स्पष्ट है कि इस प्रयत्न में सन्तोषजनक सफलता मिलने की आशा कम ही है।

जापान अपनी स्थिति समझता है, इसीमे इस समय वह कुछ मुलायम सा पड़ गया है। फिर भी वस्तुत उसने अपनी नीति बदली नहीं है। वह अपनी नौ शक्ति तथा हवाई जहाजों की संख्या बढ़ाने की कोशिश जोरों से कर रहा है, जिससे उसकी आर्थिक स्थिति और भी खराब हो जाने की सम्भावना है। अतः वह यदि अपनी नीति नहीं बदलता तो उसका भविष्य आशा जनक नहीं कहा जा सकता।

क्या होली असभ्यों का त्योहार है ?

लेखक—श्रीयुत पी० एन० सुशील

हमारे कुछ समझदार सुधारकों का कहना है कि पूर्व जमाने में जब शिक्षा का प्रचार नहीं हुआ था, तो जंगली लोग होली ऐसा भद्दा त्योहार मनाया करते थे। अब उसकी नक़ल करना उचित नहीं। पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता की आड़ से—हमारे अंगरेज शासकों की होली के साथ कोई सहानुभूति न रहने के कारण, जो सुधारक होली के त्योहार को असभ्यों का त्योहार कहते हैं, वे जरा दूसरों के दोष ढूढ़ने के पहले चिराग के नीचे रहने वाले अंधेर को भी तो देखने का कष्ट करें। हाँ, यह किसी अंश में सत्य है कि बाहरी सफाई और सफेद पोशी के ज्यादा लिहाज के मूठे कारण से सरकारी दफ्तरों में रंग से रँगे हुए वस्त्र पहन और अबीर आदि लगाए हुए जाना भद्दा समझा जाता है, पर क्या इतने ही से होली असभ्यों का त्योहार करार दिया जा सकता है? कभी नहीं।

यूरोपीय सभ्यता के जर्मन देश के लोग वर्ष भर में एक दिन ऐसा त्योहार मनाते हैं, जिस दिन सब लोग भेदभाव को भूल कर एक दूसरे के साथ होली खेलते हैं और पुराने भेद-भाव को भूल परस्पर प्रेम-भाव करने लगते हैं। इगलैंड देश में भी हमारी होली के कुछ ही दिन बाद एप्रिल फूल का पर्व मनाया जाता है। जिसमें प्रत्येक गाँव के बाहर भले-बुरे सब प्रकार के आदमी इकट्ठे होते हैं और परस्पर अश्लील वाक्यों का उच्चारण कर एक दूसरे के साथ विविध प्रकार से दिल्लगी करते हैं, आपस में कोलाहल करते हैं, सब-के-सब मिलते और हँसते हैं। उस दिन पुराने जूतों के पार्सल भेजे जाते हैं तथा उस दिन वहाँ—

खुले खजाना—बने दिवाना—खुल-खुल मदिरा छानो।
फिर मनमाना-मजे उड़ाना, पकड़ मेम मस्ताना॥

का बाजार खूब गर्म रहता है। उनके यहाँ इसका नाम Festival of fools अर्थात् मूर्खों का त्योहार है। इसी की नकल पर बंगाल का नवाब सिराजुद्दौला अपने कर्मचारियों की बेवकूफी जानने के लिए प्रति-वर्ष एक नई, किन्तु झूठी आज्ञा भेजता था और उस आज्ञा का पालक कर्मचारी हास्यास्पद होता था। आज भारत में भी शिक्षित एवं सभ्य-समाज इस एप्रिल-फूल की नकल करने में काफी लगा है।

टोगोलैंड तथा अशान्ती (अफ्रीका) के हब्शी भी एक त्योहार हमारी होली ही की तरह मनाते हैं। उनकी उस दिन की रस्म घोर उच्छृंखलता पूर्ण होती है। समस्त स्त्री-पुरुषों को हद दर्जे की स्वेच्छा-चारिता की स्वतंत्रता मिल जाती है। उस दिन चोरी, बदमाशी, जालसाजी, मार-पीट आदि किसी भी अपराध के लिए दंड नहीं दिया जा सकता। नेटाल और जूलूलैंड में दिसम्बर के अंत और जनवरी के प्रारम्भ में एक त्योहार मनाया जाता है, जिस दिन सभी जूलू लोग होली की भाँति खूब नाचते-गाते और उत्सव मनाते हैं। कानून तथा नैतिक नियमों का पालन सर्वथा वे लोग त्याग देते हैं। एक दूसरे को गाली बकना और स्त्रियों के प्रति अश्लील आचरण करना भी साधारण बात समझी जाती है।

अस्तु जब हम एप्रिल-फूल-जैसी विदेशी असभ्यता को अपनाते हैं और वर्तमान सभ्यता के उद्गम स्थानों में ऐसे भद्दे पर्व मौजूद हैं तो हम होली के समान महत्वपूर्ण त्योहार को कैसे कोस सकते हैं? होली के दिन की उच्छृंखलता, दीवानापन, सामाजिक प्रेम, मेल-मिलाप, हर्षोत्पादक एवं आनंदोत्फुल्ल हास्य सरल छद्मवेश और उत्साह पूर्ण उमंगों ने हो पिछली शताब्दियों में हमारे समाज का जो उपकार किया है, वह भुलाया नहीं जा सकता। आधुनिक मन चले सभ्य सुधारकों को शायद ऊपरी मन से अब इसकी जरूरत भलेही न हो, पर हमें तो यह असभ्यों के त्योहार रूप में ही सदैव प्यारी रहेगी।

भारतीय किसानों का कृषि संबंधी प्राकृतिक भौगोलिक ज्ञान

लेखक—श्रीयुत ठाकुर राजेश्वरीप्रसादसिंह

(गतांक से आगे)

सावन सावाँ अगहन ज ।।
जितना बोवै उतना खो ॥'

श्रावण में सावाँ तथा अगहन में जौ बोना बिल्कुल मूर्खता है, इसमें उपज मारी जाती है; केवल जितना बोया जाता है, उतनाही प्राप्ति होती है।

'माघ के जाड़ा जेठ के घूप
बड़े कलाका सहै रूप ॥'

जिस प्रकार माघ की शीत तथा जेठ की धूप सहन शक्ति से परे है और बहुत दुखदाई होता है वैसाही परिश्रम ऊख में उठाना पड़ता है। और इन्हीं महीनों में ऊख को काड़ना, पानी देना तथा माघ में पेरना तथा काटनी पड़ती है।

'रोहनी बाजै मूरा तपै।
मैने हाली क्या तपै ॥'

यदि रोहिणी नक्षत्र में हवा चले और मूरा नक्षत्र में करारी गरमी पड़े (तपे), तो ऐसी अवस्था में किसान (हाली) व्यर्थ क्यों परिश्रम करता है, उसका परिश्रम बेकार है, पानी नहीं बरसता।

'रोहिन तपै मृग सुन बाजै।
तो आद्रा बिन ठिठ गाजै ॥'

यदि रोहिणी नक्षत्र में कड़ी गरमी पड़े और मृगशिरा नक्षत्र में हवा चले, तो आद्रा नक्षत्र में बिना ठिठकि (अनवरत) खूब बारिश होगी और कृषक गाजे बाजे धन-धान्य सफल होंगे।

'धान लहके गो बाहैं।
इच्छिया साजै घ काहैं ॥'

धान साथ के साथ बोया जाता है अर्थात् जब जिसकी आवश्यकता तथा जिस बात की जरूरत हो फौरन उसे कर देना चाहिए। जो के लिये जितना खेत जोता (बाहैं) जाता है, उतना ही अच्छा होता है। लेकिन ऊख का अभी कोई ठीक-ठीक सिद्धान्तता यान साथ नहीं मिला है कि क्या किया जाय, तब ऊख अच्छा होगी।

'धीन सूखे धान भादो सूखे जो।

सावन में यदि अई, बल ककरी आदि आवलो को सूखा रहे, पानी अधिक न बरसे तो अच्छा है, फसल जोरदार होता है और भादो के सूखे रहने से (खलिहान) दवा के खेत का जातन का सुभीता रहता है, खाद से जाता जाता है, घास नहीं उगने पाती, जरा टूट जाता है। जिससे खेत बढ़ जाता है।

शीरवारे—यह राजपूताने में एक जाति होती है, जिनका पेशा जमीन की परीक्षा है। इनके द्वारा पृथ्वी के नीचे कितने गहराई में पानी है—खारा है या मीठा आदि बातें मालूम होती हैं। कूआँ वगैरह बनाने में ये लोग अधिक मदद देते हैं।

सिरवाह—पूर्वी देश में एक जाति है, जो खेती वगैरह कराने में प्रवीण होता है। यह मजदूरों के मालिक ऊपर की तरह काम करती हैं।

सनई—यह एक प्रकार की फसल है, जो बर्सात में होती है। इसे कृषक खाद के काम में भी लाते हैं। यह खाद की बड़ी उत्तम वस्तु है। जिस खेत को अच्छा बनाना हो, खास कर उस जगह पर जहाँ आम लगाना हो, वहाँ बो दिया जाय और पेड़ तैयार हो जाने पर काट कर उसे वहीं छोड़ दे या आम के लिए जो थाला या गढ़ा बनाया हो, उसी में छोड़ दे और सड़ने दे, तो मिट्टी बड़ा पैदावार निकलती है। और पेड़ बहुत जल्दी तैयार होता है।

पूरब गोधुर पच्छिम प्रात, दक्खिन गौने आधी रात।
उत्तर दुपहर यात्रा करै, पत्रा देख, काहे के मरै ॥'

भड्डरी के मतानुसार पूर्व दिशा को गोधुली के समय, पश्चिम को प्रात काल, दक्षिण को अर्ध रात्री के समय और उत्तर दिशा को मध्याह्न के समय यात्रा करना चाहिये। इन समयों में दिग्सूल तथा साइत की आवश्यकता नहीं पड़ती। नियमानुसार यात्रा किया जाय, तो पत्रा देखने की कोई आवश्यकता नहीं होता, न तो कोई आपत्ति ही पड़ती है।

तीस अँगुल की लकड़ी लीजै, छाया ऊपर छाया कीजै।
नाप ले ऊपर के खंड, जई अंगुल तई दंड ॥

तीस अंगुल की एक लकड़ी लेकर जिस तरफ सूर्य हों, उनके विरुद्ध तोड़ कर खड़ा करे और ऊपरी हिस्से के प्रतिबिम्ब का धरातल हिस्से पर मिलता हुआ डाले। यदि एक मरतबे मोड़ने पर न मिले, तो मिलाने के लिये मोड़ना या किसी हिस्से को घटाना या बढ़ाना जारी रक्खे। अब दोनों हिस्सों के नोक का प्रतिबिम्ब एक दूसरे से मिल जाँय, तब ऊपरी हिस्से का अंगुल-द्वारा नाप ले। जितना अंगुल ऊपर की लकड़ी होगी, उतना दंड दिन होगा। स्मरण रखना चाहिये, लकड़ी का कोण ९० डिग्री होना आवश्यक है। ऊपर की लकड़ी झुकना न चाहिये। समकोण अवश्य रहे।

विचित्र-जगत्

विचित्र विवाह-विधियाँ

बंगाल के ब्राह्मण समाज में विवाह के समय वधू अपने पति को अपनी चोटी से हाठ पर आठ बार प्रहार करती है। मोरक्को में वधू पति के मकान में जाकर चार पाँच चपतें लगा देती है। इसके पश्चात वर पक्ष के लोग वधू के गले में सोने की घण्टी बाँधते हैं। नव दम्पत्ति को भूत-बाधा से बचाने के लिए इंगलैण्ड, स्कॉटलैण्ड और डेनमार्क में वर वधू के विदा हो जाने पर पुराने जूते फेंके जाते हैं। ऐसी पद्धति पहले ग्रीस देश में थी। उन लोगों की मान्यता है कि पुराने जूतों से भूत डरते हैं। मूर लोग इसी कारण अपने पैरों से कभी जूते नहीं उतारते। नव विवाहित वधू अपने जूतों के बन्द नहीं बाँधती, इस उद्देश्य से कि सन्तान उत्पन्न हो। मोरक्को के यहूदियों में विवाह के समय वर वधू पर कच्चा अण्डा फेंका जाता है, इसलिए कि बालक जल्दी पैदा हो और उनका जीवन सुख से बीते।

ग्रहण के समय पशु-वृत्ति

अफ्रीका के बेल्जियम कांगो में आने वाले अगस्त की १० तारीख को सूर्य का खग्रास ग्रहण है, उस समय फिल्म उतारने के लिए बेल्जियम के सायन्टिस्टों का एक दल कांगो के लिए रवाना हुआ है। वह ग्रहण की फिल्म उतारने नहीं जा रहा है, बल्कि ग्रहण के समय पशुओं के युद्ध विराम की फिल्म लेने जा रहा है। वहाँ के जंगली लोगों का कहना है कि जिस समय ग्रहण होता है, उस समय जंगल के जानवर शिकार नहीं करते और सिंह, भेड़, जिराफ आदि सब एक साथ शान्ति से रहते हैं।

बंकिम बाबू की पत्नी का सौन्दर्य

बंगाल के सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय एक बार इलाहाबाद के रेल्वे स्टेशन पर खड़े हुए गाड़ी की राह देख रहे थे। उनकी पत्नी वेटिंग रूम में बैठी थीं। वे ऐसी सौन्दर्यवती थीं कि लोगों का ध्यान बरबस उनकी ओर खिंच जाता था। इसी कारण बंकिम बाबू ने उन्हें वेटिंगरूम में बैठाया था। एक मुसलमान उन्हें देखने के लिये बार-बार वेटिंगरूम में झाँकने लगा। यह बात बंकिम बाबू से छिपी न रही। बहुत देर तक तो वे उस मुसलमान की इस हरकत पर चुपचाप ध्यान देते रहे, परन्तु आखिर उनसे न रहा गया। उसका हाथ पकड़ कर वे उसे वेटिंगरूम में खींच ले गए और बोले—लो, अब जी भर के मेरी पत्नी को देख लो?

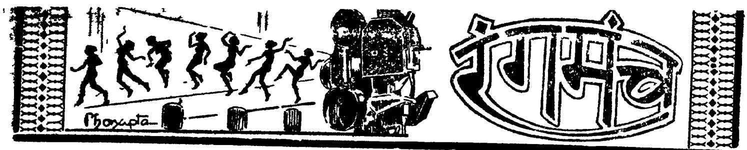
बेचारा मुसलमान पत्थर की मूर्ति बन गया। देखना तो दूर, अपनी गर्दन भी ऊपर न उठा सका।

बंकिम बाबू ने पुनः कहा—अब सिर झुकाये क्यों खड़े हो? यदि तुम मेरी पत्नी को देखकर मुग्ध हो गए हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, परन्तु मैं इनको कितना सुखी रखता हूँ, यह तुम जानते हो? इन्हें किसी प्रकार का अभाव न मालूम हो और जीवन आनन्द से बीते इसके लिए मैं बहुत कोशिश करता हूँ और पानी की तरह पैसे खर्च करता हूँ। मेरी तरह तुम इन्हें सुखी रख सकोगे? यदि ऐसा हो, तो खुशी से तुम इन्हें ले जाओ। मैं इनकार न करूँगा।

परन्तु वह मुसलमान तो मौका पाकर पहले ही खिसक चुका था।

जावा द्वीप के विचित्र नियम

जावा द्वीप में अनेक विचित्र नियम हैं, जो जानने ही योग्य हैं। सुरकर्ता के सुल्तान के राजमहल के पास स्त्री अपने पैर दिखलाने का साहस नहीं कर सकती। यदि कदाचित् कोई स्त्री ऐसा साहस करती है, तो उसे फाँसी की सजा दी जाती है। अभी तक यह कानून भंग न होने के कारण किसी भी स्त्री को फाँसी की सजा नहीं हुई है, परन्तु इस कानून के अपवाद भी हैं, सुल्तान की लड़कियाँ यह प्रकट कर सकती हैं कि उनके खड़े रहने के लिए पैर हैं, उनके सिवा अन्य सब राज्याधिकारियों की स्त्रियों को सुल्तान के समक्ष घुटने टेकने पड़ते हैं। उनके सामने घुटने टेक कर ही चलना भी पड़ता है, जिसके कारण सुल्तान को यह नहीं मालूम हो पाता कि इनके चलने के लिये पैर हैं। उपर्युक्त कानून सभी प्रसंगों के लिए है, परन्तु नृत्य के समय इसका पालन नहीं करना पड़ता। स्वयं सुल्तान का फरमान है कि नृत्य का प्रसंग राज्य-प्रसंग न होने के कारण उस समय इस कानून का पालन करने की आवश्यकता नहीं। जावा द्वीप के थियेटरों में भी अनेक विचित्र नियम होते हैं। उनमें एक यह है कि नाट्य प्रयोग में अभिनेता जिस पात्र के रूप में उपस्थित होता है उसी पात्र के स्थान पर समाज में भी उसे आसीन होना चाहिए। उदाहरण रूप में यदि राजा का अभिनय करना हो, तो राज-वंश के राजकुमार ही उसे कर सकते हैं, परन्तु इस प्रकार के नाट्य प्रयोग में राजा के सम्बन्धियों का आधिक्य होने के कारण अनेक लोगों को राजा का सम्बन्धी बनने का सुअवसर प्राप्त होता है और वे राजा के सम्बन्धी बन कर नाट्य-प्रयोग में भाग लेते हैं। पुरुषों के लिए भी यह विचित्र नियम है कि सुल्तान के देखते वे सीधे नहीं चल सकते, घुटने टेके रहना पड़ता है। जब सुल्तान दृष्टि से ओझल हो जाता है, तभी वे खड़े हो सकते हैं, परन्तु जब थियेटर में नाटक हो रहा हो, और सुल्तान प्रेक्षकों में उपस्थित हो, तब इस नियम का भंग होता है, उस समय यह नियम भंग न हो, इस उद्देश्य से एक मार्ग निकाला गया है। वह यह है कि रंगभूमि पर जिस जगह अभिनेता अभिनय करते हैं, उससे तीन सीढ़ी ऊपर सुल्तान के बैठने का स्थान होता है। इस प्रकार सुल्तान के रंगभूमि के अभिनेताओं और प्रेक्षकों से तीन सीढ़ी ऊपर होने के कारण उस समय, वे लोग खड़े हुए हैं, ऐसा नहीं माना जा सकता।



आले-यमन

लेखक—श्रीयुत सत्यप्रसाद

बहुत दिन हुए, 'आले-यमन' की बड़ी तारीफ पढ़ी थी। पढ़ा था कि श्री वाडिया अपने सुन्दर निर्देशन के लिये पुरस्कृत किये गए, अफगान कौंसल और मौलाना शौकतअली ने भी फिल्म की बड़ी तारीफ की। मैंने बड़ी उत्सुकता से फिल्म देखा, परन्तु शोक!
'बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिलका,
जो चीरा तो एक कतरये खून निकला।'

चित्रपट वाडिया मूवीटोन का है।

कथानक—(श्री जोसेफडेविड) यमन देश के बादशाह ने पहली पत्नि के मर जाने पर एक नई शादी की। पहली पत्नि से उनकी दो सन्तानें हैं, एक लड़का परवाज और लड़की माहरू। नई रानी से भी एक पुत्र होता है—नादिर। नई रानी की इच्छा है, कि नादिर ही राज्य का अधिकारी हो।

बादशाह अपनी नई शादी का उत्सव मना रहा है। एक फकीर की दर्दभरी आवाज बादशाह के कानों में पहुँचती है। वह उसे दरबार मे बुलवाता है। फकीर नई रानी के प्रति बुरे शब्द कहता है। रानी कुपित होती है। बादशाह फकीर को हंटर से पिटवाने की आज्ञा देता है।

नई रानी एक षड्यंत्र रचकर परवीज को समाप्त करने की कोशिश करती है। बादशाह रानी के षड्यत्र को नहीं समझ सकता। पीरमर्द-फकीर—की सहायता से परवीज रिहाई पाता है।

पीरमर्द परवीज को एक तिलस्मी खंजर देता है और उसे पश्चिम की ओर भेजता है। परवीज की पत्नि लालारुख भी पीरमर्द की सहायता से अपने पति के खोज में जाती है।

परवीज जिन्न-देश में जाता है, परीजाद से भेंट होती है। दोनों में प्रेम होता है। परवीज जिन्न को मार कर परीजाद के साथ खुशी जीवन बिताने लगता है। लालारुख जो भेष बदले हुये थी, आती है, और परवीज को समझा बुझाकर यमन ले जाती है।

पीरमर्द बादशाह से रानी की सारी करतूत कह डालता है। बादशाह रानी की आँखें फोड़कर निकाल देता है और आप नादिर को साथ लेकर जगल की ओर चल देता है। वजीर तख्त पर स्वय बैठ जाता है।

परीजाद तिलस्मी तालाब की मछलियों को आदमी बनाकर शहर यमन को अपने प्यारे की सहायता के लिये चल देता है।

वजीर माहरू पर अत्याचार करता है। परवाज और परीजाद ठीक समय पर पहुँच कर माहरू की सहायता करते हैं। वजीर मारा जाता है और लालारुख भी अपने पति के बचाने मे स्वयं अपना जीवन दे डालती है।

अन्त में सब मिलते हैं। परवीज और परीजाद का ब्याह हो जाता है। आकाश वाणी के अनुसार नादिर तख्त पर बिठाया जाता है और दोनों दम्पति इस्लाम के प्रचार के लिये मिस्र का पथ लेते हैं।

यही कथानक है। जिसने श्री द्विजेन्द्र का 'सिंहल-विजय' पढ़ा होगा, वह कह सकता है कि यह 'सिंहल-विजय' का एक भद्दा चित्र है। यह चोरी है और उस चोरी को अच्छा बनाने के लिये उसे तोड़ फोड़ डाला है। इस प्रकार एक सुन्दर कथानक को असुन्दर बना डाला। सिर्फ कथानक ही नहीं संवाद भी कहीं-कहीं 'सिंहल-विजय' से लिये हैं। लालारुख का माहरू के साथ जो सबसे पहला संवाद है, वह भी द्विजेन्द्र की लीला और सुरमा का है। शाह के मुँह के बहुत से शब्द भी सिंहल-विजय' के हैं। कथानक को तोड़-मरोड़ कर अन्त में उसमें साम्प्रदायिकता की पुट भी दे दी गई है। इसे एक घृणित मनोवृत्ति समझता हूँ।

अभिनय—

शाह (जाल खंबाता)—काफी अच्छा अभिनय रहा। भाव प्रदर्शन भी सुन्दर था। स्वाभाविकता जो अभिनय की जान है आपने उसे काफी निभाया। फिजूल के हाथ पैर फेंकना अभिनय नहीं है। चेहरे पर जब तक भाव-रेखायें न खिंच जायँ—आँखें भावों की पुष्टि न करती हों, तब तक अभिनय एक मजाक है। खंबाताजी ने कोशिश की है—पहली सीन, जगल की सीन तथा गुफा वाले दृश्य में आपका अभिनय अच्छा रहा।

परवीज (करीमजान)—आप नायक थे। अभिनय की कोशिश आपने भी की। आपके कहने का ढग अच्छा था। हमारी फिल्मो में कहने का एक खास ढग हो गया है—वही पुरानी नाटक कम्पनियों से मिलता-जुलता। त्रिलोक सिनेटोन के 'औरत का दिल' में हमें यही विशेषता मालूम हुई कि उसमें यह आवाज बनाना नहीं है। उसमें कहने का ढंग सुन्दर है। जीवन में सभी कामों के करते जैसे हम बातें करते हैं, बोलते हैं—वैसी ही बातें फिल्मों में भी होनी चाहिएँ। चित्रपट हमारे जीवन का प्रतिबिम्ब है। यदि उसमें जीवन यथातथ्य नहीं तो वह अपने स्थान से गिर गया, कलाभ्रष्ट हो गया। परवीज ने कहने में सफलता पाई—अभिनय में नहीं।

चिट्ठी-पत्री

सधन्यवाद स्वीकृत

ता० २२ जनवरी के 'जागरण' में प्रकाशित 'प्रकाशकों की सेवा में साग्रह निवेदन' शीर्षक सूचना के अनुसार हमारे पास अब तक निम्नलिखित पुस्तकें दान स्वरूप प्राप्त हो गई हैं, अस्तु प्रेषक महाशयों को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं—

चित्र तत्वम् (संस्कृत)	॥)	वैद्य पुरुषोत्तम-गणेश नानल, पूना
सीकनाथ योग		दीनानाथ व्यास, उज्जैन
मोती के तोरण	१॥)	करसनजी जीवराज, अहमदाबाद
आधुनिक कोकशास्त्र	२॥)	राइट एजेंसी, बम्बई
तुलसी चमत्कार (गुजराती)	=)	सी० एल, देसी माआलाका, बड़ोदा
वार्षिकांक 'प्रकाश'	॥)	प्रकाश कार्यालय रीवाँ
वेम सिस्टेम आफ कटिंग	१)	सर्पोगे शामराव, बम्बई
Perfect sight	३/	डा० आर० एस अग्रवाल, बुलन्दशहर
Care of the hair & Teeth	/३/	मणिभर, कलकत्ता
Various teats of hair & Teeth	/-/	मणिभर, कलकत्ता

आशा है, इसी प्रकार अन्य उदार प्रकाशक एवं लेखकगण उपयोगी पुस्तकें प्रदान कर यश के भागी होंगे।

मन्त्री, प्रजाबन्धु पुस्तकालय, चौबेपुर (कानपुर)

जन्मभूमि का हरिजन अंक

बड़ी सज धज के साथ शीघ्र प्रकाशित होगा, इस विशेषांक में अन्य विशेषताओं के साथ भारतवर्ष से निकलने वाले हिन्दी, दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रों की सूची मय पूरे पते तथा संक्षिप्त विवरण के साथ रहेगी। पत्र सम्पादकों से निवेदन है कि अपने पत्र की एक एक प्रति जन्मभूमि-कार्यालय में भेजने की कृपा करें।

व्यवस्थापक—
जन्मभूमि कार्यालय, अजीतमल, इटावा।

आगरा में महावीर जयन्ती महोत्सव

जैन-कुमार सभा आगरा ने तारीख २८ वा २९ मार्च सन् १९३४ को श्री महावीर जयन्ती महोत्सव बड़ी धूम धाम के साथ मनाना निश्चित किया है। जैन धर्म के ऊपर प्रभावशाली भाषण देने के लिए बाहर से बड़े बड़े विद्वान् आवेंगे। तारीख २८ को जयन्ती जुलूस सेव बाजार से निकलेगा और स्थानीय जैन पाठशालाओं के छात्रों को पारतोषिक और मिठाई वितीर्ण की जायगी।

गुरुकुल महाविद्यालय का २६ वां वार्षिक महोत्सव

चैत्र शुक्ला पूर्णिमा तथा वैशाख वदी १, २, ३ सम्वत् १९९१ तदनुसार ता० ३०, ३१ मार्च व १, २ एप्रिल सन् १९३४, दिन शुक्र, शनि रवि तथा सोमवार को गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के परम पुनीत स्थान में बड़ा धूम-धाम से मनाया जायगा।

इस अवसर पर निम्नलिखित सम्मेलन भी होंगे—

(१) आर्यविद्वत् सम्मेलन। (२) सर्वधर्म सम्मेलन। (३) दलितोद्धार-सम्मेलन। (४) विद्वत्कला परिषद्। (५) कवि सम्मेलन। (६) संगीत-सम्मेलन। (७) महिला-सम्मेलन। (८) स्नातक-समारोह।

इनके अतिरिक्त महाविद्यालय सभा का वृहदधिवेशन तथा दर्शपूर्णमास यज्ञ भी होगा। आपको सादर साग्रह सविनय निमन्त्रण है। अवश्य पधारिये और आर्य सन्यासी महात्माओं तथा आर्य विद्वानों के व्याख्यान तथा धर्मोपदेशों से लाभ उठाइये।

भवदीय दर्शनाभिलाषी—
विद्याभास्कर विश्वनाथ शास्त्री, मुख्याधिष्ठाता।

गुरुकुल खादी तथा स्वदेशी प्रदर्शिनी
३० मार्च से २ अप्रैल तक
गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) की नई भूमि में

गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर शुद्ध खादी तथा स्वदेशी वस्तुओं की एक प्रदर्शिनी होगी। इस अवसर पर सहस्रों दर्शक भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों से पधारते हैं, जिससे स्वदेशी प्रदर्शिनी को प्रोत्साहन मिलता है। अखिल भारतवर्षीय चर्खासंघ, आल इण्डिया स्वदेशी लीग अथवा किसी अन्य स्थानीय स्वदेशी-संघ द्वारा प्रमाणित वस्तुएँ ही प्रदर्शिनी में लेनी स्वीकृत होंगी। हाथ का कता सूत पाव भर से न्यून स्वीकार नहीं किया जायगा प्रदर्शिनी के लिए प्रेषित वस्तुओं का दोनों ओर का भाड़ा आदि प्रेषक को देना होगा। प्रत्येक वस्तु पर प्रेषक का नाम तथा पता सूचक लेबिल होना आवश्यक है। और उस पर बिक्री का मूल्य भी अंकित होना चाहिए।

विशेष विवरण के लिए मन्त्री गुरुकुल खादी तथा स्वदेशी प्रदर्शिनी गुरुकुल कांगड़ी जि० सहारनपुर से ता० १० मार्च सन् १९३४ तक पत्र व्यवहार करें।

मुख्याधिष्ठातादि गुरुकुल कांगड़ी।

अधिष्ठाता आर्यमित्र का अनुचित व्यवहार
पं० हरिशंकर शर्मा का त्यागपत्र
आगरे के पत्रकारों की विरोध-सभा

रविवार ता० ४ मार्च १९३४ को आगरा नागरी प्रचारिणी सभा के भवन में स्थानीय हिन्दी पत्रकारों की एक सभा आर्यमित्र सम्पादक प० हरिशंकरजी शर्मा के त्यागपत्र के कारणों पर विचार करने के लिए श्री अध्यापक रामरत्नजी के सभापतित्व में हुई थी। सब से पूर्व उस घटना का जिक्र किया गया जिसके फल-स्वरूप प० हरिशंकरजी को त्यागपत्र देने के लिए बाध्य होना पड़ा था।

इसके पश्चात् श्री पं० कृष्णदत्तजी पालीवाल एम० ए० ने निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसका समर्थन बा० गुलाबरायजी एम० ए० और गोस्वामी ब्रजनाथजी शर्मा ने किया।

श्री पालीवालजी का प्रस्ताव

'आगरा निवासी हिन्दी पत्रकारों की यह सभा प० हरिशंकर शर्मा संपादक आर्यमित्र के साथ, अधिष्ठाता आर्यभास्कर प्रेस और आर्यमित्र द्वारा किये गए अपमान जनक व्यवहार को घृणा की दृष्टि से देखती है और उसको घोर निन्दा करती है। प० हरिशंकर शर्मा ने त्यागपत्र देकर सम्पादकीय गौरव की जो रक्षा की है, उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करती हुई उन्हें बधाई देती है।

आशा है कि आर्यसमाज के हितैषी इस अन्याय को कदापि नहीं सह सकेंगे और वे अधिष्ठाता महाशय को इस बात के लिए विवश करेंगे कि वे अपनी अनीति तथा दुर्व्यवहार के लिए शर्माजी से खुले आम क्षमा माँगे, और भविष्य में अपने व्यवहार को बदलने का वचन दें, अन्यथा अधिष्ठाता पद से पृथक् हो जायँ।

एक सज्जन ने घटना को सत्य मानते हुए भी इस प्रस्ताव का विरोध किया। शेष सज्जनों ने सर्व सम्मति से प्रस्ताव पास किया।

सूचना

१. विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर जो कि ३० मार्च से २ अप्रैल १९३४ ई० तक मनाया जायगा, यात्रियों के ठहरने का प्रबन्ध टैंट तथा कोठरियों में किया गया है, जिनका किराया निम्न प्रकार होगा—

२ जो सज्जन अभी से किराया भेज देंगे, उनके लिए कोठरियाँ रिजर्व कर दी जायँगी और जिस क्रम से किराया प्राप्त होगा, उसी अनुसार रिजर्व की जायँगी, अतः किराया भेजने में शीघ्रता करनी चाहिए।

१ छोटी कोठरी		२	आदमियों के ठहरने योग्य	किराया	२)
२, बड़ी—	,,	५,६	,,	,,	४)
३ ई० पी० टैन्ट	,,	१०,११	,,	,,	८)

वैद्य गण ध्यान दें

सुविज्ञ वैद्य, डाक्टर एवं कृपालु सज्जनों से सानुरोध प्रार्थना है, कि वे एक रोग के सम्बन्ध में कृपया अपने सुस्पष्ट विचार निम्न लिखित पते पर लिख भेजने का कष्ट करें। मुझे प्रायः एक अत्यन्त कष्टकर दर्द कमर से नीचे अण्ड-कोष तक उठकर बड़ा बेचैन किया करता है। दो साल के अन्दर चार बार हो चुका। जिस समय

उससे आक्रान्त होता हूँ—बड़ा सांघातिक सा अनुभव होता है। कितने लोग इसे 'साँझर' रोग कहते हैं—कितने 'आँत उतरना' कहते हैं। रोग के लक्षणों में एक लक्षण विशेष यह भी है, कि दर्द के साथ ही अण्ड-कोष अपेक्षाकृत बढ़ जाता है और स्पर्श से बहुत पीड़ा होती है। दर्द के दो घण्टे के पश्चात् जाड़ा आकर ज्वर चढ़ आता है, जो एक-दो दिन तक रहता है। एक डाक्टर ने कहा है कि रोग शीत मूलक है; किन्तु अभी तक निश्चित-रूपेण रोग की पहचान नहीं हो सकी है। यह क्यों होता है, इसके निवारणार्थ साधन क्या है, आदि प्रश्नों पर प्रकाश डालते हुए कृपया लिख भेजें और यश तथा पुण्य के भागी बनें। मैं उन सज्जनों के, जो इस विषय पर कुछ लिख भेज कर मुझे बतावेंगे, अनुग्रह का आजीवन आभारी रहूँगा। आशा है, इस ओर वैद्य महोदय ध्यान देंगे।

पता – श्रीसीताराम 'प्रभास'
गोविन्दमित्र रोड, बाँकीपुर, पटना।

२३ वाँ अखिल भारत वर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
दिल्ली स्वागत-समिति की विज्ञप्ति

सर्व साधारण की जानकारी के लिए स्वागत-समिति द्वारा प्रस्तुत तथा स्थाई समिति द्वारा स्वीकृत 'कार्य तालिका' प्रकाशित की जाती है। इसी के अनुसार कार्य करने का भरसक प्रयत्न किया जायगा। केवल विषय निर्वाचिनी समिति ही आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन कर सकेगी—

प्रथम दिवस ता० २४ मार्च शनिवार

१—जुलूस	प्रात	८—१०½
२—प्रदर्शनी का उद्घाटन	,,	१०½
३—भोजन व विश्राम	मध्याह्न	१०½—२
४—विषय-निर्वाचिनी समिति	साय	२—४
५—स्वागताध्यक्ष व सभापति के भाषण सम्मेलन रिपोर्ट		४—६
६—विषय निर्वाचिनी समिति की बैठक	रात्रि	८½—१०½

द्वितीय दिवस ता० २५ मार्च

१—साहित्य परिषद् की बैठक	प्रात	८—११
२—भोजन व विश्राम	मध्याह्न	११—१½
३—विषय निर्वाचिनी समिति की बैठक	साय	१½—३
४—मुख्य सम्मेलन का अधिवेशन (मंगला प्रसाद, सेकसरिया पारितोषिक वितरण, दो भाषण, प्रस्ताव)		३—६½
५—इतिहास परिषद्	रात्रि	८—१०½

तृतीय दिवस ता० २६ मार्च सोमवार

१—दर्शन परिषद्	प्रातः	८—१०½
२—भोजन व विश्राम	,,	१०½—१
३-४—विषय निर्वाचिनी समिति व उपाधिधारियों का सम्मेलन	मध्याह्न	१—२½
५—मुख्य सम्मेलन (उपाधि व पदक वितरण, मुख्य भाषण, अपील)		३—६
६—विज्ञान परिषद्	रात्रि	८—१०½

चतुर्थ दिवस ता० २७ मार्च मंगलवार

१—सम्पादक सम्मेलन	प्रातः	८—१०
२—गल्प सम्मेलन	,,	१०—११½
३—भोजन व विश्राम	मध्याह्न	११—२
४—विषय निर्वाचिनी	,,	२—३
५—प्रतिनिधि सम्मेलन (प्रतिनिधियों का परिचय, पदाधिकारियों व स्थायी समिति के सदस्यों का चुनाव)		३—४½
६—मुख्य सम्मेलन का अधिवेशन (भाषण व प्रस्ताव)	सायं	४½—७
७—कवि सम्मेलन	रात्रि	८½ से

—रामगोपाल प्रकाशन मंत्री

निवेदन

अभी तक रंगभूमि न मिलने के कारण हमारे एजेन्ट तथा पाठक दोनों ही चिन्तित हो रहे होंगे, अतः सूचनार्थ निवेदन है कि जे० बी० प्रेस (जहाँ पत्र छपता है) के अध्यक्ष का अनायास ही देहावसान हो जाने के कारण यह असाधारण विलम्ब हुआ है। जब तक नया डिक्लेरेशन न आयगा हमें खेद है कि हम अपने प्रेमी पाठक तथा पाठिकाओं की सेवा करने में असमर्थ रहेंगे।

रंगभूमि का आगामी अंक विशेषांक होगा, हमारी तो प्रबल इच्छा थी कि हम होली के शुभ अवसर पर यह सुन्दर भेंट पाठकों को समर्पित करते; परन्तु विवशता का दूसरा नाम सन्तोष है, इसलिए हम अपने पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वह अधीर न हों और उत्सुकता पूर्वक इस विशेषांक की प्रतीक्षा करें। हमारा विश्वास है कि प्राय एक सप्ताह के भीतर ही हम यह अङ्क निकाल सकेंगे।

एजेन्टों से निवेदन है कि इस अङ्क का मूल्य ।) होगा। पृष्ठ सं० 'लगभग ६०' इकरंगे तथा बहुरंगे १० चित्र और प्रचुर पाठ्य सामग्री इस अङ्क में रहेगी। एजेन्टों को चाहिए कि वह अभी से अपनी आवश्यकतानुसार कापियाँ सुरक्षित करालें, कारण कि बिना बिका कापियाँ न लौटाई जायँगी।

हमारा विचार आगामी अप्रैल मास से रंगभूमि हिन्दी के साथ साथ अंग्रेजी तथा उर्दू संस्करण प्रकाशित करने का है। अंग्रेजी संस्करण का मूल्य =) तथा उर्दू संस्करण का मूल्य -) होगा। एजेन्ट कृपया सूचित करें कि वह कितनी कितनी कापियाँ बेच सकेंगे। एजेन्टों को वही सुविधाएँ दी जायँगी, जो हम अपने हिन्दी संस्करण में देते हैं। एजेन्ट कृपया अपने विचारों से सूचित करें कि उपरोक्त मूल्य उचित होगा या नहीं। और हमारे लिए इन भाषाओं में क्या क्षेत्र है, पाठक भी शीघ्र अपना चन्दा भेज ग्राहकों में अपना नाम लिखा लें। अंग्रेजी संस्करण का वार्षिक मूल्य ८) तथा उर्दू संस्करण का ४) मात्र।

विलम्ब के लिये क्षमा, दयाभाव बनाये रक्खें।

—भवदीय, व्यवस्थापक।



अखबार वालों को जरा भी अक्ल नहीं होती । देखो न ! सब-के-सब चिल्ला कर कह रहे हैं कि वर्णाश्रम स्वराज्य संघ वाले आगाखाँ और चर्चिल से तो यारी गाँठ रहे हैं और राम कृष्ण के मानने वाले गो रक्षक, गंगा तुलसी शालिग्राम को पूजने वाले सत्यनारायण की कथा और भागवत सुनने वाले, माला और तिलक को धारण करने वालों को अछूत कह कर क्यों धक्का दे रहे हैं ? अपने राम तो छाती ठोंक कर कहते हैं कि अखबार वालों का दिमाग खराब हो गया है ! अच्छा, अब इन नीच जातियों के साथ समानता का व्यवहार हो जायगा, तो वह भी साथ साथ विद्या पढ़ेंगे स्कूलों के मास्टर बनेंगे, कौंसिलों के मेम्बर बनेंगे न्यायाधीश बनेंगे साथ-साथ सभा सोसाइटियों में जायेंगे साथ साथ मन्दिरों में पूजा करेंगे तो कूड़ा कर्कट कौन उठायेगा ? पाखाना कौन साफ करेगा ? जूता कौन बनायेगा ? हल कौन चलायेगा ? क्या यह सब काम अखबार वाले करेंगे ? बाबा ! जरा कुछ भविष्य की भी सोचा करो ! जब आगा खाँ और चर्चिल से यारी गाँठ कर अपना भविष्य सुधार रहे हैं, तो क्यों नमक पर नमक लगाते हो ?

❁ ❁ ❁

मालूम होता है, कि दादा सनातन धर्म पर साढ़े साती शनिश्चर महाराज का प्रकोप पूर्ण रूप से हो गया है । तभी तो चारों ओर से इस पर कुठाराघात हो रहा है । अपने राम की राय में तो रास्ते में लेटने या सत्याग्रह करने अथवा तोंद दिखाने से शनिश्चर महाराज की दया नहीं आयेगी ।

❁ ❁ ❁

इसलिए हम एक ऐसा नुस्खा बतलाते हैं कि खुदा चाहे तो बिना प्रयास के ही विजय प्राप्त हो जायगी । नुस्खा यह है, कि मियाँ गजनवी या मिस्टर चर्चिल से सलाह लेकर किसी अनुभवी विद्वान् से महा मृत्युंजय मन्त्र का जप कराया जाय । बस, इधर जप शुरू होगा, उधर दादा सनातन धर्म की आयु बढ़ कर सौ से बीस वर्ष की जरूर हो जायगी ।

❁ ❁ ❁

कोई कोई कहते हैं कि यदि किसी को किसी का कुछ देख कर मुँह में पानी भर आवे तो समझ लेना चाहिए कि टोना जरूर लग गया है । अपने राम की राय में तो महात्मा गाँधी को जरूर टोना लग गया होगा क्यों कि जब विलायत के लिए गोल मेज में निमन्त्रित किये गये, तो उन्हें जाते देखकर वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के हिमायती मि० एम० के० आचार्य के मुँह में ऐसा पानी भर आया की लार बनकर इस प्रकार टपकने लगी कि लार पोछने के लिये गले में एक रुमाल बाँधना पड़ा, लेकिन कमबख्त लार जब नहीं बन्द हुई तो धर्म कर्म को तिलांजलि देकर सात समुन्दर पार विलायत में आ धमके । दादा सनातनधर्म की लुटिया डुबाकर समुद्र यात्रा करके मि० चर्चिल से यारी गाँठ कर पाचों सवारों में अपना भी नाम लिखा लिया और भारत में आकर कुछ गोबर-ओबर का पञ्चगव्य खा कर शुद्ध हो गये ! बोलो सनातन धर्म की जय !

❁ ❁ ❁

महात्मा गांधी अछूतोद्धार के लिए दौरा करते हुए । महात्माजी जहाँ जहाँ जाते हैं वहाँ रुपयों की थैलियाँ बरसने लगती हैं । सबसे विचित्र बात तो यह है कि महात्माजी रुपया भी लेते हैं और ऊपर से डाटते भी हैं कि और लाओ, इतने से काम नहीं चलेगा ! अनायास ही रुपयों की ऐसी वर्षा देखकर काशी के स्वामी लालनाथ के मुँह में पानी भर आया और फौरन् महात्माजी के पास पहुँच कर अपनी खाली सूखा पेट दिखाते हुए महात्माजी के सामने लेट गये !

❁ ❁ ❁

हमें राजाओं का विश्वास नहीं है । आज बड़ौदा में कानून बना बनाकर दादा सनातन धर्म का कचूमर निकाला जा रहा है । फिर टेहरी नरेश कब चूकने वाले हैं । अपने राम की राय में यह बात सवा सोलह आना ठीक है । दूध की जली बिल्ली मट्ठा फूंक फूंक कर पाती है । यदि कहीं राजा के हाथ में मन्दिर चला गया और अछूतों का प्रवेश करा दिया गया, तो कसम खुदा की ! बाबा विश्वनाथ की तरह बद्रीनाथ कहीं खाड़ी में जा गिरे, तो धर्मा धर्मियों के व्यापार का एक केन्द्र टूट जायगा ! बाबा तुलसीदास के शब्दों में — 'का वर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूक फिर का पछिताने ।'

❁ ❁ ❁

कलकत्ते के सनातनियों ने चट पट देवालय संरक्षक समिति बनाकर एक आवश्यक अपील प्रकाशित करके वितरण की है । कसम खुदा की, अपील पढ़ते ही हम तो फूल कर कुप्पा हो गये । अब हम देवालयों की इस प्रकार रक्षा करेंगे, जैसे बन्दरी अपने बच्चों की रक्षा करती है ! समझ में आया सुधारको ?

❁ ❁ ❁

एक समय था कि जब देवता लोग मनुष्य की रक्षा करते थे । अब मनुष्य देवताओं की रक्षा करते हैं । कभी गाड़ी नाव पर, कभी नाव गाड़ी पर । साथ साथ एक बात और ध्यान में रखना चाहिए कि जब देवता मनुष्य की रक्षा करते थे तो मनुष्य उनको चढ़ावा चढ़ाते थे, उनके नाम पर उपवास करते थे, उनके मन्दिरों में जाते थे । अब देवों को भी चाहिए कि वे मनुष्यों को चढ़ावा चढ़ावें, व्रत रखें, मनुष्यों के घरों में जाकर उपासना करें !

❁ ❁ ❁

वैदिक धर्म प्रचार मण्डल भण्डोरा (बम्बई) के सदस्य भी अजीब खोपड़ी के आदमी हैं । देखो न ! मुद्दतों से प्रचलित मल मूत्र कीचड़ और रंग से होली खेलने की रिवाज का पता बता कर, उसकी जगह पर गुलाब जल, इत्र, केसर

कुछ चन्दन और इलायची हाथ में लेकर एक बड़ी टोली बनाकर धार्मिक और राष्ट्रीय गाने गाते हुए जगह जगह घूम कर सबके ऊपर गुलाब जल छिड़कते इत्र और चन्दन लगाकर हाथ में इलायची देकर गले से गला मिला रहे थे और सबको इसी प्रकार होली खेलने का उपदेश दे रहे थे। अफसोस ! अगर अब देश भर में दुर्गन्धि की जगह पर सुगन्धि चीजों का और अश्लील की जगह धार्मिक और राष्ट्रीय गानों का रिवाज हो जायगा, तो प्रह्लाद की फुफी होलिका अपने पौराणिक उपासकों के ऊपर कौन कौनसी आफतें नहीं लायेगी ? सुधार वादियों ! पौराणिक भाइयों के ऊपर कुछ तो रहम करो !

❀ ❀ ❀

उपर्युक्त मण्डल के प्रधान पण्डित समाजीतजी भी अजब तरह के आदमी हैं। एक तरफ तो होली के दिन भैरव भवानी के उपासक दादा सनातन धर्म के अनुयायी चका चक रग भग छान रहे थे, और दूसरी तरफ वे सभा कर के आँकड़ा बता रहे थे, कि आज सिर्फ होली में केवल भंग के लिये २४ करोड़ हिन्दुओं में से यदि १२ करोड़ की बच्चे को निकाल दें और बाकी १२ करोड़ मनुष्यों में तीन मनुष्यों के पीछे एक पैसा रखा जाय, तो ६ लाख २५ हजार रुपये की देश में हानि हुई और उसमें पड़ने वाला मसाला अलग है। पण्डितजी ! देश भले ही रसातल को चला जाय, इसकी परवा नहीं है लेकिन दादा सनातन धर्म की नाँक तो बचानी ही पड़ेगी !

❀ ❀ ❀

पण्डितजी का दूसरा आँकड़ा है कि यदि भारत की जन संख्या में से आधे मांस न खाने वालों में मान कर अलग कर दिये जायँ और आधों के लिए फी मनुष्य एक पाव मांस का हिसाब लगाया जाय, तो प्रतिदिन १० लाख ९३ हजार ७ सौ ५० मन मांस भारतवासी हजम कर जाते हैं ; यदि हिन्दू लोग मांस खाना छोड़ दें, तो भारत में मांस का बनना बन्द हो जाय। बाप-रे-बाप ! मालूम होता है कि पण्डितजी को कालीमाई और भवानीमाता का कुछ खौफ नहीं है। अपने राम की राय में तो कालीमाई और भवानीमाता को चाहिए कि अपने सेवकों को साथ में लेकर पण्डितजी के ऊपर आक्रमण के लिए भूख हड़ताल शुरू करदें।

❀ ❀ ❀

धन्य तेरे भूकम्प की ऐसी तैसी ! भूकम्प क्या आया, नारों को पण्डे पुजारियों को कोसने का मसाला मिल गया। देखो न ! बम्बई आर्य समाज के मंत्री पं० विजयशंकरजी होली के दिन सभा के बीच में व्याख्यान देकर कह रहे थे कि बिहार के लिए सारा संसार मदद कर रहा है, लेकिन पण्डे पुजारियों के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी, अभी तक अपने कोष में से एक पाई की भी मदद नहीं की। कसम खुदा को ! यदि मंत्री साहब मंदिरों के कानून को थोड़ा भी पढ़े होते, तो उन्हें मालूम हो जाता, कि मंदिरों के कानून में दान लेना, तो लिखा है, लेकिन दान देना कहीं भी नहीं लिखा है। अपने राम तो छाती ठोक कर कहते हैं कि मंत्रीजी ! यदि उन्हीं के पैसे से भरा हुआ कोष फिर उन्हीं की मदद के लिए देदें, तो मुक्ताराम मालिका आलू बकस भाँग मिसरीलाल की मौटकी, कन्हैयालाल का रास, देवदासी का गुजारा, छप्पन प्रकार का भोग और भैरव भवानी की प्रसादी का बजट कहाँ से पूरा होगा ?

—चटोही, चम्पेरी।

REGAD. NO 2217.

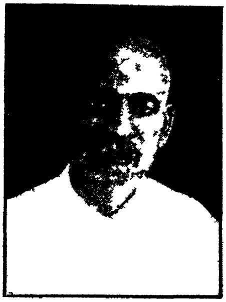
सहकारी सम्पादक—श्री प्रवासीलालवर्मा, मालवीय-द्वारा सरस्वती-प्रेस, काशी से मुद्रित और प्रकाशित।

जागरण

THE JAGARAN | सम्पादक—प्रेमचन्द | Illustrated Weekly

वर्ष २ | काशी, वि० चैत्र शुक्ल ११ सोमवार, सं० १९९१ वि०: ता० २६ मार्च सन् १९३४ ई० | अंक ३१

सरदार वल्लभ भाई पटेल



आजकल आप जेल में योगाभ्यास कर रहे हैं। आपका ख्याल है कि आप अभी दो वर्ष और जेल में रहेंगे।

विभूति

उस दिन देखा सर्वनाश की ज्वाला में जलता जीवन,
कौतुक-सा हँसता, विषाद-सा रोता देखा अपनापन।
जानेवालों में उमंग थी, आनेवालों में थी आन,
अमर-सुरा के पीनेवालों की थी एक निराली शान।

• • •

एक एक से पूछ रहा था 'प्रथम मिलन में उपहार ?'
एक एक को बता रहा था 'यही विजय का है उपहार।'
एक एक को गले लगाकर विदा माँगता हँस हँस कर,
एक एक आने वालों को देख रहा था आँखें भर।

• • •

'ठहरो पथिक!' कहा किसने यह ? ममता ? नहीं संदेशा लो,
जाना यदि कुछ करके जाना, अनजाने से यों न टलो।

'अरुण' बी० ए०

इस अंक के चुने हुए लेख

जागरण

मि० चैत्र शुक्ल ११ सोमवार, सं० १९९० वि०

हिन्दू समाज के वीभत्स दृश्य—(२)

अंध-विश्वास

हिन्दू-समाज में पूजने के लिये केवल लँगोटी बाँध लेने और देह में राख मल लेने की जरूरत है, अगर गाँजा और चरस उड़ाने का अभ्यास भी हो जाय, तो और भी उत्तम। वह स्वाँग भर लेने के बाद फिर आप भी देवता बन जाते हैं। मूर्ख हैं धूर्त हैं, नीच हैं, पर इससे कोई प्रयोजन नहीं। वह बाबा हैं। बाबा ने संसार को त्याग दिया माया पर लात मार दी, और क्या चाहिए? अब वह ज्ञान के भण्डार हैं, पहुँचे हुए फकीर, हम उनके पागलपन की बातों में मन माने बारीकियाँ ढूँढते हैं, उनको सिद्धियों का आगार समझते हैं। फिर क्या है, बाबाजी के पास मुराद माँगनेवालों की भीड़ जमा होने लगती है। सेठ साहूकार, भले चंगे, बड़े-बड़े घरों की देवियाँ उनके दर्शनों को आने लगती हैं। कोई यह नहीं सोचता कि एक मूर्ख, दुराचारी, अक्खड़ आदमी क्यों कर केवल लँगोटी लगाने से सिद्ध हो सकता है। सिद्धि क्या इतनी आसान चीज है। हम में मस्तिष्क से काम लेने की मानों शक्ति ही नहीं रही। दिमाग को तकलीफ नहीं देना चाहते। भेड़ों की तरह एक दूसरे के पीछे दौड़े चले जाते हैं, कुएँ में गिरें या खन्दक में, इसका गम नहीं। जिस समाज में विचार मूढ़ता का ऐसा प्रकोप हो, उसको सँभलते बहुत दिन लगेंगे।

हमारे इस अंध विश्वास से अपना उल्लू निकालने वालों के बड़े बड़े जत्थे बन गये हैं, ऐसी कई जातियाँ पैदा हो गई हैं, जिनका पेशा ही है इस तरह स्वाँग से भोले-भाले भक्तों को ठगना। वे लोग रूप बदलना खूब जानते हैं, बाबाओं की पेटेंट शैली में बात-चीत करने का और नये नये हथकंडे खेलने का इन्हें खूब अभ्यास होता है। एक दिन बन जाता है, कई चले चेले बन जाते हैं, और किसी [illegible] विकास में किस मनुष्यों से किसी तरह का संसर्ग नहीं रखना चाहते। किसी तरह यह अफवाह उड़ा दी जाती है कि बाबाजी फौहारी हैं केवल एक बार तोला भर दूध पी लेते हैं। एक दिन दो दिन यह मण्डली निष्काम भाव से ऊजड़ में मात खाये पड़ी रहती है। बस, भक्तों का आना शुरू हो जाता है। बाबाजी संसार मिथ्या है का उपदेश देने लगते हैं, उधर घी, शक्कर और आटे की झड़ी लग जाती है लकड़ियों के कुंदे गिरने लगते हैं, कुछ भक्त लोग इन त्यागियों के लिये कुटी बनाना शुरू कर देते हैं और मर्द भक्तों से कहीं अधिक संख्या स्त्री भक्तों की होती है। कोई बच्चे की मुराद लेकर आती है, कोई अपने पति को किसी सौतिन के रूप फाँस से छुड़ाने के लिये। जिन कंगलों को दो आने रोज की मजूरी भी न लगती, वे ही हिन्दुओं के इस अंध विश्वास के कारण खूब तर माल उड़ाते हैं, खूब नशा पीते हैं और खूब मौज करते हैं, और चलते वक्त सौ पचास रुपए कोई महाभोज कराने या भण्डारा चलाने के लिये वसूल कर लेते हैं। समाज-सेवा का कोई न कोई आधार यह लोग जरूर खड़ा कर लेते हैं। कोई कोई मंदिर बनवाने का व्रत ठाने बैठा है कोई तालाब खुदवाने का, कोई पाठशाला खोलने का। और कुछ न हुआ, तो तीर्थयात्रा तो है ही। इनकी मूर्तियाँ रामेश्वरम् की यात्रा करने जा रही हैं। हिन्दू-मात्र का कर्तव्य है कि उन्हें रामेश्वरम् पहुँचाए। बिना हर फिटकिरी के रंग चोखा करने का यह व्यवसाय इतना आम होगया है कि आज हर पचीस आदमियों में एक साधु है। और ऐसे भिक्षुकों की तो गिनती ही नहीं, [illegible] बार यही प्रयत्न करते रहते हैं कि समाज अंध विश्वास के गर्त में मूर्छित पड़ा रहे, चेतने न पाये। हमें खूब चकाचक माल खिलाओ, स्वर्ग में तुम्हें इससे भी बढ़िया माल मिलेगा, एक हाथ दो, दस हाथ लो। स्वर्ग का रूप भी कितना मोहक खींच रखा है कि इन लोगों की कल्पना शक्ति के कुरबान जाइए। मर्त्यलोक में जो कुछ दुर्लभ है वह सब वहाँ गली गली मारा मारा फिरता है। ऐसे सुख के लिये किसी भिक्षुक को थोड़ा-सा भोजन करा देना, किसी देवता को जल चढ़ा देना, या किसी नदी में एक डुबकी लगा लेना कौन खुशी से स्वीकार न करेगा। जब इतनी आसानी से मोक्ष मिल सकता है, तो किसी साधना का श्रम की, सद्व्यवहार की जरूरत

और आज बड़ी बड़ी जमींदारियों के मालिक कितने ही महन्त हैं। उनकी लेन देन की कोठियाँ चलती हैं तरह तरह के व्यवसाय होते हैं और बहुधा उन्हीं दानियों की सन्तानें, जिन्होंने यह जायदाद महंतों को दान दी थी आज इन्हीं महंतों से रुपए कर्ज लेती है। इनका भोग विलास और ऐश्वर्य हमारे राजाओं को भी लज्जित कर सकता है। इस जायदाद का उपयोग अब इसके सिवा कुछ नहीं है कि मुस्टंडे खायँ, दंड पेलें और व्यभिचार करें। राष्ट्र के उत्थान या जागृति में ये भी एक बहुत बड़ी बाधा हैं। अंधविश्वासी जनता अब भी इन पर श्रद्धा रखती है। वे इसे एक चुटकी राह से स्वर्ग में दाखिल कर सकते हैं। ऐसी विभूति और किसके पास है? इन महंतों के दुराचार, ऐयाशी और पैशाचिकताओं की खबरें कभी कभी प्रकाश में आ जाती हैं तो मालूम होता है कि इनका कितना पतन हो गया है लेकिन श्रद्धालुओं को उनपर वही श्रद्धा है। हम इतने अकर्मण्य हो गये हैं इतने पुरुषार्थहीन कि हमें अपने पुरुषार्थ से ज्यादा भरोसा आशीर्वाद पर है, एक प्रकार से हमारी विचारशक्ति लुप्त हो गई है। हमारे तीर्थस्थान क्या हैं? ठगों के अड्डे और पाखंडियों के अखाड़े। जिधर देखिए धर्म के ढोंग का बाजार गर्म है। गली गली मंदिर, गली-गली पुजारी और भिक्षुक, पूरे नगर-के-नगर इन्हीं जीवों से आबाद हैं, जिनका इसके सिवा कोई उद्यम नहीं कि धर्म का ढोंग रचकर पेट पूजा करते रहें। और क्यों न करें? जब जनता खुद ठगी जाना चाहती है, तो ठगने वाले भी जरूर पैदा होंगे। जरूरत ही तो आविष्कार की माँ है।

क्यों न देश कंगाल हो। जिस समाज पर एक करोड़ कोतल मुफ्तखोरों के भरण पोषण का भार हो, वह न कंगाल रहे तो दूसरा कौन रहे! गरीबों पर भी धर्म का जितना बड़ा टैक्स है, उतना शायद सरकार का भी न हो। कोई ग्रहण लगा और जनता तीर्थ स्थानों की ओर दौड़ी। जो कुछ तन पेट काटकर बचाया था वह सब अन्धविश्वास की भेंट चढ़ गया। और आज स्वराज्य भी मिल जाय, और यह भी मान लें कि उस वक्त किसानों से लगान कम लिया जायगा और टैक्सों का भार कम हो जायगा, फिर भी अन्ध विश्वास के सम्मोहन में अचेत जनता इससे ज्यादा सुखी न होगी। तब उसका परलोक प्रेम और भी बढ़ेगा और वह और भी आसानी से पाखंडियों का शिकार हो जायगा। और इस आर्थिक दरिद्रता से बढ़कर इस अन्धविश्वास का फल जनता की बौद्धिक दुर्बलता है जो उसकी सामाजिक उपयोगिता में बाधक होता है। उसे नदी में गोता मार लेना या शिव लिंग पर जल चढ़ा देना किसी भाई से सहानुभूति रखने या अपने व्यवहारों में सचाई का पालन करने की अपेक्षा ज्यादा फलदायक मालूम होता है। उसने असली धर्म को छोड़ कर, जिसका मूल तत्व है समाज की उपयोगिता, धर्म के ढोंग को धर्म मान लिया है। जब तक वह धर्म का यह असली रूप न ग्रहण करेगा उसके उद्धार की आशा नहीं। शिक्षित समाज के सामने जितनी समस्याएँ हैं उनमें शायद सबसे कठिन यही समस्या है। यहाँ उसे अन्ध विश्वास की पोषक प्रबल शक्तियों का सामना करना पड़ेगा, जो अनन्तकाल से जनता की विचार शक्ति पर कब्जा जमाये हुए हैं। कितना वीभत्स है यह दृश्य कि एक मोटा सा जटाधारी जीव धूनी जलाए बैठा हुआ है और एक दर्जन मनुष्य उसके पास बैठे चरस के दम लगाकर अपने जीवन को सफल कर रहे हैं। जनता की मनोवृत्ति जबतक ऐसी है, केवल राजनैतिक अधिकारों से उसका कल्याण नहीं हो सकता।

सौभाग्य से अब देश में ऐसे सच्चे सन्यासियों का एक दल निकल आया है, जो समाज सेवा को और राष्ट्रीय जागृति को अपने जीवन का ध्येय बनाये हुए हैं लेकिन अभी तक उसने निकम्मे साधुओं में जागृति उत्पन्न करने के जितने प्रयत्न किये हैं, वे सफल नहीं हुए। न जाने कब वह शुभ अवसर आएगा कि हमारा साधु समाज अपने कर्तव्य को समझ जायगा और यह समझ जायगा कि उसके हाथों में देश को उठाने की कितनी बड़ी शक्ति है।

साम्प्रदायिकता का जहर महिलाओं में

दिल्ली के रिसाला 'अस्मत' में एक मुसलिम महिला लिखती हैं— गत वर्ष की मर्दुमशुमारी बतला रही है कि ७ करोड़ मुसलमानों में मुशकिल से ५½ लाख शिक्षित हैं जिनमें अंग्रेजी जानने वाले करीब दो लाख हैं और फारसी उर्दू आदि जानने वाले २½ लाख। मुसलमानों के स्कूल और कालेज आप उँगलियों पर गिन सकेंगे लेकिन हिन्दुओं की असंख्य युनिवर्सिटियाँ कायम हैं। लगभग सभी सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में हिन्दू प्राफेसर हैं। उनकी शिक्षा अच्छी है इसलिये सभी सरकारी ओहदों पर हिन्दू भरे हुए हैं। जज पुलिस कमिश्नर डिप्टी कलक्टर डाक्टर इञ्जिनियर बैरिस्टर, कोई ऐसा आला पेशा न होगा, जिसमें हिन्दू कसरत से न मौजूद हो'

देवी जी को यह भ्रम कदाचित साम्प्रदायिक पत्रों के पढ़ने से हो गया है। मुसलमान हिन्दुओं से ज्यादा शिक्षित हैं सरकारी ओहदों पर भी मुसलमान कसरत से हैं हिन्दुओं से कहीं ज्यादा। पुलिस और माल में तो एक तरह से उन्हीं का साम्राज्य है। आमदनी के सारे विभागों पर उन्हीं का कब्जा है। हाँ डाकखाना या रुड़की जैसे रूखे सूखे विभागों में हिन्दू ज्यादा हैं इसलिये कि मुसलमानों ने इधर ध्यान ही न दिया क्यों कि यहाँ सूखा वेतन था और काम आँखफोड़ और गरदन तोड़। मगर अब इन विभागों में भी यह कमी पूर्ण होती जा रही है।

राजा सर मोतीचन्द का स्वर्गवास

राजा सर मोतीचन्द के उठजाने से काशी को जो क्षति पहुँची है वह मुश्किल से पूरी होगी। आप बड़े दानी परोपकारी और सहृदय व्यक्ति थे। आप की अवस्था अभी कुल ५८ साल की थी आपका स्वास्थ्य भी बुरा न था मगर पिछले साल आप पर लकवे का जो आक्रमण हुआ था उसने अन्त में आपकी जान ही लेकर छोड़ी। कई साल पहले आप तीन सेशन तक असेम्बली के मेम्बर रहे और हिन्दू विश्वविद्यालय तथा अन्य सार्वजनिक कामों में आप को बड़ी दिलचस्पी थी। देश के औद्योगिक उद्धार के लिये आप बराबर प्रयत्न करते रहे और काशी का काटन मिल आपही की यादगार है।

बैंकरों की फरियाद

और कोई माने या न माने बैंक वालों ने तो गवर्नर का खिताब मान ही लिया। कृषकों के उद्धार का जो बिल कौंसिल में मंजूर हुआ है, वह बैंक वालों को कई कारणों से रुचिकर नहीं है। हम भी बिल को निर्दोष नहीं समझते। उसमें किसानों के साथ जितनी रिआयत होनी चाहिए उससे बहुत कम, और जमींदारों के साथ जितनी रिआयत होनी चाहिये थी उससे बहुत ज्यादा कर दी गई है। यों कहो कि उससे विशेषकर जमींदारों का ही फायदा होगा, लेकिन बैंकरों को कौंसिल के मेम्बरों से फरियाद करना चाहिए था। या सम्भव है उन्हों ने फरियाद की हो और मेम्बरों पर कुछ असर न हुआ हो लेकिन जब मेम्बरों पर कोई असर नहीं हुआ तो गवर्नर पर कोई असर होने की बहुत ही कम सम्भावना है। और अगर असर हो भी जाय तो हम पंचायत के फैसले की अपील ऐसे इजलास में करने के खिलाफ हैं जो निरंकुश है। बैंकवालों ने समझा होगा जब एक की खुशामद करने से काम निकल सकता है तो बहुतों की खुशामद क्यों की जाय लेकिन यह नीति जनतन्त्र के अनुकूल नहीं है। जनता के हित के लिए अगर अमीरों को कुछ कष्ट और हानि भी हो तो वह सहना चाहिए। जनतन्त्र का यह सिद्धान्त है।

डाक्टर भी संरक्षण चाहते हैं

जर्मनी से निकले हुए यहूदी डाक्टर भारत आ रहे हैं। अभी तक तो भारत के मरीज इलाज कराने के लिये जर्मनी जाया करते थे। अब जर्मन डाक्टर खुद यहाँ आ रहे हैं। इससे हमें खुश होना चाहिये था मगर हमारे डाक्टरों को संशय हो रहा है कि कहीं ये डाक्टर आकर यहाँ वालों का रोजगार न छीन ले। हम समझते हैं मरीज किसी डाक्टर के पास इस लिये नहीं जाता कि वह हिन्दुस्तानी है, या हिन्दू है या किसी अन्य जाति का। वह सिर्फ उस डाक्टर के पास जाता है जिसपर उसे विश्वास हो, जो उसे अच्छा कर सके। अगर हमारे डाक्टर चाहते हैं कि उनका मूल्य बना रहे तो उन्हें अपने विषय का पूरा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और अपनी फीस भी ऐसी रखनी चाहिए, जो मामूली आदमी की पहुँच के बाहर न हो। कलकत्ते में अच्छे डाक्टर के एक विजिट की फीस ३२) से कम नहीं है, अगर जर्मन डाक्टरों के आने से यह लूट कम हो जाय तो हम उनका स्वागत करेंगे। संरक्षण की यह बला हमें देखें कहाँ कहाँ ले जाती है।

बर्मा विच्छेद के लिये नये बहाने

बर्मा को भारत से अलग करने के लिये गवर्मेंट की ओर से रोज नये नये बहाने गढ़े जा रहे हैं। भारत बर्मा का सारा धन खींचे लिए जाता है। वहाँ के मजदूर बर्मा के मजूरों का काम छीन लेते हैं यहाँ के व्यापारी वहाँ के व्यापारियों का व्यापार छीन लेते हैं। इस लिये बर्मा को भारत के चंगुल से छुड़ाने के लिये यह आवश्यक है कि उसे भारत से अलग कर दिया जाय। फिर देखिए ब्रिटेन किस तरह उसकी रक्षा करता है। भारत का एक मजूर या व्यापारी तो वहाँ रहने न पाएगा। यह तो निश्चित है कि विच्छेद होते ही भारत की चिड़िया भी वहाँ पर न मार सकेगी लेकिन इससे बर्मावालों का कोई उपकार होगा, इसमें सन्देह है। देखना है बिल्ली कहाँ तक दूध की रखवाली करती है। अगर भारत को यह विश्वास हो जाय कि बर्मा का विच्छेद होते ही उसके सारे व्यवसायिक साधनों पर, सारे ओहदों पर, बर्मा वालों ही का अधिकार होगा, और अंग्रेज व्यवसायी और विशेषज्ञ वहाँ न घुसने पायँगे तो शायद भारत को विच्छेद स्वीकार करने में आपत्ति न होगी मगर यही तरावट तो विच्छेद की जड़ है।

कमांडर इन चीफ साहब का व्यंग

असेम्बली में फौजी बजट पर जो बहस हुई उसमें हर साल की तरह अबकी भी फौजी खर्च कम कर देने का प्रस्ताव था। यह कहा गया कि भारत में जरूरत से ज्यादा फौज है और उसपर जरूरत से ज्यादा खर्च हो रहा है। जंगी लाट साहब ने बड़ी स्पष्टवादिता से काम लिया और मेम्बरों को करारी डाँट बताई—तुम लोग जगहों के लिये और नौकरियों के लिये तो आपस में कट मरते हो, उसपर कहते हो फौजी खर्च कम करो तुम एक राष्ट्र होजाओ, फिर देखो हम कितनी जल्द खर्च घटा देते हैं। इसपर अवश्य ही मेम्बरों की जबान बंद हो गई होगी। किसका साहस था कि बोलता? सरकार की नजर में हम हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, सिख हैं, अछूत हैं, सछूत हैं भारतीय तो कहीं नजर नहीं आता। सरकार ने अपनी आँखों पर जो साम्प्रदायिक परदा डाल लिया है, उसमें उसे विस्तृत भारत कैसे नजर आ सकता है।

कांग्रेस का सरकार से सहयोग

बिहार में महात्मा गांधी ने रिलीफ कमेटी के जलसे में सरकार से सहयोग का जो प्रस्ताव रखा और उसके समर्थन में जो भाषण दिया और सभी नेताओं ने जिस उदारता से उस प्रस्ताव को स्वीकार किया, उसने एकबार फिर सिद्ध कर दिया कि कांग्रेस केवल असहयोग के लिए असहयोग नहीं करना चाहती, और जिन कामों में वह सरकार से सहयोग करने में देश का कल्याण समझती है, उनमें हाथ बढ़ाने के लिए सदैव तैयार रहती है। कांग्रेस ने देश हित को प्रधान रखा है। हरेक नीति को इसी कसौटी पर कसकर वह अपनी राय कायम करती है। इस वक्त पीड़ित बिहार के उद्धार का प्रश्न है। इस वक्त भी अगर हम अपने राजनैतिक या साम्प्रदायिक भेदों को न भूल सकें, तो यह देश के लिए दुर्भाग्य की बात होगी।

भाईजी का आक्षेप

भाई परमानन्दजी अपने उर्दू पत्र 'हिन्दू' के एक सम्पादकीय नोट में लिखते हैं—

'लोग यह पढ़कर हैरान होंगे कि अगरचे मुल्क के सारे अखबारात में सेंट्रल रिलीफ कमेटी का और बाबू राजेन्द्र प्रसाद का नाम और उसका ही चर्चा हो रहा है, ताहम बिहार के मुसीबत जदा हिस्से में अभी तक उन्होंने कोई काम किया है, न उनके काम या नाम का कहीं जिक्र ही है। कांग्रेस और उसके काम की धाक ऐसी जमी बैठी है कि खुद बिहार से भी कोई आदमी उसके रिलीफ के काम पर रोशनी डालने की जुरंत नहीं करता।

रिलीफ कमेटी पर आलोचना का हरेक प्राणी को अधिकार है और आलोचना से आलोचक को कुछ फायदा ही होता है लेकिन ऐसी आलोचना किस काम की, जिसमें केवल पक्षपात हो। हिन्दू सभा ही ने क्या रिलीफ को हाथ में नहीं लिया? भाई परमानन्द ही क्यों बाबू राजेन्द्रप्रसाद की जगह नहीं हुए? इसका कारण यही है कि कांग्रेस और उसके नेताओं ने देश के लिये जो बलिदान किये हैं, उनका देश आदर करता है और उन्हीं नेताओं पर विश्वास करता है। यहाँ तो केवल सेवा और त्याग का प्रश्न है। जो एक समाज के लिये बलिदान करेगा, वही समाज का विश्वास पात्र होगा।

महात्मापन

लेखक—श्रीयुत यज्ञदत्त शुक्ल, बी० ए०

महात्मा शब्द भी कितना पवित्र और मनोमोहक है। यह वह सर्व साधारण की स्थिति से बहुत ऊँचा है। जो मनुष्य इस दर्जे तक पहुँच जाता है, उसे प्राय: लोग 'पहुँचा हुआ' कहते हैं। उसमें अलौकिक आकर्षण होता है। अपने उपदेशों से जनता के समूह को प्रभावान्वित करना उसके बायें हाथ का खेल है। यदि उसमें जनता को लोकोपयोगी कार्यों में प्रवृत्त करने की शक्ति नहीं है, तो वह महात्मा नहीं हो सकता। साधारण पुरुष और महात्मा मे अन्तर क्या है? एक में वही मामूली बातें—आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि—परन्तु दूसरे मे कुछ ऐसी बातें होती हैं, जो उसे मनुष्य की श्रेणी से ऊपर खींच ले जाती हैं। वह दिव्य गुणों से विभूषित रहता है। उसका तेजस् दूसरों को चमत्कृत कर देता है। उसके स्वाभाविक आकर्षण और तेजस् का कारण उसका तपस् है। उसे अपने निजी जीवन में निरन्तर तप करते रहना पड़ता है। शारीरिक आरामों की परवा न करके उसे कष्ट झेलने की आदत डालनी पड़ती है। यदि वह ऐसा न करे, तो पद भ्रष्ट हो जाय और जनसमूह पर उसका प्रभाव क्षीण हो जाय। किसी भी महात्मा या महापुरुष के वैयक्तिक जीवन में ताक-झाँक करने का अधिकार जनता को है। लोगों में यह जानने की स्वाभाविक इच्छा होती है कि उसके निजी जीवन में ऐसी कौन सी बात है, जो उसे असाधारण कोटि का मनुष्य बनाती है। इसीलिए किसी भी सार्वजनिक नेता का व्यक्तिगत जीवन सुन्दर और निर्मल होना चाहिए। वास्तव मे इसी जीवन से उसका सार्वजनिक जीवन भी बनता है। जिस मनुष्य में असाधारण विद्या बुद्धि तथा आत्मिक बल होता है, वह सहज ही में दूसरों का पथ प्रदर्शन कर सकता है। इतिहास के पृष्ठों से मालूम होता है कि शासनकला में वही सिद्धहस्त होता है, जो अन्य अगणित मनुष्यो की अपेक्षा अधिक शिक्षित और प्रतिभावान् होता है। अध्ययन और परिश्रम से मनुष्य अपनी नेतृत्व शक्ति को बढ़ा सकता है। यदि सौभाग्य से उसमें जन्म ही से असाधारण प्रतिभा का उदय हुआ, तो समझना चाहिए कि उस ईश्वर-दत्त विशिष्ट मात्रा का उपयोग सार्वजनिक कल्याण के लिये होना चाहिए। साधारण मनुष्य और महात्मा मे अन्तर केवल नैतिक गुणों की मात्रा का है। वैसे तो नाक, कान, आँखें हाथ और पैर बिल्कुल एक ही से होते है। मनुष्याकृति में भेद ही क्या हो सकता है। नैतिक दृष्टि से जीवन में ऊँचे-से ऊँचा आदर्श रखना अच्छा होता है, क्योंकि पूर्णता को प्राप्त कर लेना सरल कार्य नहीं है। सच पूछिये तो अच्छाई की सीमा नहीं बाँधी जा सकती। किसी पुराने कवि ने ठीक कहा है—'बाढ़िबे को मूल एक ऊँचो मन राखिबो है।'

मनुष्य में नेतृत्व-शक्ति का होना उसकी महानता का परिचायक है। इससे यह मतलब नहीं है कि राजनीतिक-क्षेत्र मे जो अपने को नेता कहते हैं वे सभी महान् हैं। इनमें से कितने ही नेताओं के वैयक्तिक और सार्वजनिक जीवन मे अन्तर होगा, परन्तु महात्मा गांधी सदृश महापुरुषों का जीवन भीतर-बाहर सब एक है। वे किसी बात को जनता से छिपाने का प्रयत्न नहीं करते। उनकी जीवन धर्म की कसौटी पर सदैव कसा जाता है। यदि उसमें किसी प्रकार का दोष या खोटापन आ जाय, तो उनकी नेतृत्व शक्ति का ह्रास हो जाय। ऐसे लोग मानवीय-जीवन के दैनिक सुखो तक का परित्याग कर देते हैं, अपने शरीर को कष्ट साध्य बना देते हैं और आठों पहर परमार्थ सिद्धि में लगे रहते हैं। महात्मा में इंजन की-सी चालक शक्ति होती है। जो अन्य मनुष्यों को रेल के डब्बों की भाँति खींचता चला जाता है। चहन शक्ति इंजन ही में होती है, डब्बे तो उस के पीछे यों ही त्यो चले जाते हैं। अपने बल, बुद्धि, विद्या तथा दिव्य गुणो क द्वारा जो मनुष्य को सुमार्ग मे ले चले, वही महात्मा है। 'विपत्ति में धैर्य, अभ्युदय में क्षमा, सभा मे वाक्पटुता, युद्ध मे विक्रम, यश मे अभिरुचि और श्रुतियों के पढ़ने का व्यसन—ये महात्माओं के प्राकृतिक गुण हैं।'

इन गुणों के अतिरिक्त महात्मा में ऐसी कौन बात होती है, जो उसे लोक प्रिय बना देती है। जिसे देखो वही उसके चरणो में लोटने की इच्छा करता है। इस अपूर्व आकर्षण शक्ति का कारण क्या है? वह चाहे लोगों की अधिक परवा भी न करे, किन्तु वे स्वय उसके निकट दौड़ कर जाते हैं। उसकी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिये लोग सदैव तैयार रहते हैं। क्या कारण हैं, जो उसे लाखों रुपये भेंट किये जाते हैं और दूसरो को एक फूटी भी नहीं मिलती? इन सब बातों का कारण है, उसका विराग। लोग अच्छी तरह जानते हैं, कि महात्मा की आवश्यकताएँ न्यूनतम होती हैं और यह सब धन देने वालों ही के उपकार में खर्च होता है। इसके अतिरिक्त विरक्ति का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी बहुत पड़ता है। जिस चीज के पीछे आप दौड़ते फिरिये, वह प्राय. आप से दूर होती चली जायगी, परन्तु जहाँ आप निश्चिन्त और विरक्त हो गये, वहाँ आप मे स्वयं एक प्रकार की आकर्षण शक्ति उत्पन्न हो जायगी, फलत. आप जिन वस्तुओ के पीछे पागल हो रहे थे, उनसे आप विर जाते हैं और लोग कहने लगते हैं, कि आप सिद्ध हो गये, किन्तु याद रहे, कि जहाँ आप उनमें लिप्त हुये, वहाँ फिर वही पूर्ववत् हाल हो जायगा। यही कारण है जो नये दुरुह को देखने के लिये स्त्रियाँ अत्यन्त लालायित रहती हैं। ब्रह्मचर्य भी तो विरक्ति की एक अवस्था है। उसमें कितना आकर्षण होता है, यह स्त्री-पुरुष सभी जानते हैं, गीता में कहा गया है—

योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा
धनञ्जय

अर्थात् कर्म करो, किन्तु किसी वस्तु मे आसक्त मत हो।

महात्मा में दैवी शक्तियों का विकास होता है। जन साधारण और ईश्वर के बीच मे वह मध्यस्थ के तौर पर रहता है। धार्मिक आचार्यों या अवतारो की बात जाने दीजिये, क्योंकि प्राय: सभी मतों में ऐसे पैगम्बर हो गये हैं, जो ईश्वर प्राप्ति के विषय में जनता को मार्ग दिखलाते थे। महात्मा गांधीही को देखिये। वे जो काम करते हैं, सब ईश्वरीय आज्ञा के अनुसार करते हैं। किसी बात का सोच विचार वे बहुत पहले से नहीं करते। जिस समय जो प्रश्न उनके सामने उपस्थित होता है, उसको वे तुरन्त अपनी आभ्यन्तरिक सूझ के अनुसार करते हैं। उन्हें कुछ ईश्वरीय-प्रेरणा का अनुभव भी होता है। वास्तव में, इन महापुरुषों का नियमन साधारण जन नहीं कर सकते। सर्वसाधारण जनता जो आपत्ति के समय उन्हीं का मुख देखती है। इसका कारण यह है कि दैवी या अन्य विपत्तियो के समय लोगों मे साहस, धैर्य और शान्ति नहीं रहती, परन्तु महात्माओं की धैर्यच्युति नहीं होती। 'दुर्धर-से दुर्धर प्रसंग' आने पर भी वे अटल और अचल रहते हैं। इसलिए वे शान्ति-पूर्वक जनता का नेतृत्व करते हैं। धीर और वीर के लक्षण यही है। 'न्यायात्पथ: प्रविचलन्ति पद न धीरा:'। 'ऐसी चलाचली में अचल होकर रहो'।

यदि 'महात्मा' के लक्षण और गुण पूर्णतया बताये जायँ, और शास्त्रों तथा धर्म पुस्तकों के आधार पर उनकी व्याख्या की जाय, तो एक पुस्तक बन सकती है। तथापि उपर्युक्त आधुनिक सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराने से पाठकों मे एक नवीन विचारसरणि का उदय अवश्य होगा।

———

प्रगतिशील जर्मनी का सिंहावलोकन

लेखक--श्रीयुत कामेश्वर शर्मा, 'कमल' साहित्य-भूषण

(गतांक से आगे)

उक्त उद्योगों के प्रमाण में जर्मनी के बिजली के कारखाने भी बढ़ते जाते हैं। विद्युत ट्राम और लाइट रेलवे बनाना बिजली के यन्त्र बनाना और म्युनिसिपैलिटी के लिए बिजली देना इन कंपनियों का काम है। जर्मनी के बाहर अपना व्यापार बढ़ाने के लिए अपनी देख-रेख के नीचे बहुत-सी छोटी छोटी कम्पनियाँ खोली हैं, इनसे इस व्यापार के बढ़ने में बहुत अनुकूलता हुई है।

इसी प्रकार रासायनिक द्रव्य रेशमी और सूती कपड़ कागज और खाँड़ तैयार करने के भी बहुत से कारखाने हैं और वहाँ का बना हुआ माल संसार में जाता है। स्थल संकोच से इन कारखानों का निर्देशमात्र ही किया गया है।

थोड़ी पूँजी वाली छोटी-छोटी बहुत सी कम्पनियों की अपेक्षा बड़ी पूँजी वाली कम कंपनियाँ होना लाभदायक है ऐसा जर्मनों का अनुभव है। इस कारण उन्होंने छोटी छोटी कंपनियाँ तोड़ कर बड़ी-बड़ी कंपनियाँ स्थापित की हैं। जर्मनी में हस्त कौशल पर निर्वाह करने वालों की भी कमी नहीं। उनके छोटे छोटे कारखानों में हाथ से काम करने वाला एक मुख्य मालिक होता है और उसके हाथ के नीचे काम करने वाले ३—४ लड़के होते हैं। आजकल की परिस्थिति में भी बड़ी बड़ी मिलों और कारखानों से टक्कर लेने का उनका प्रयत्न जारी है। यह भी स्पष्ट है कि उनका होशियारी और काम के प्रमाण में उनका बदला नहीं मिलता परन्तु इससे हताश न होकर वह अपने हस्त कौशल के कार्य को चला रहे हैं। इसलिए वह धन्यवाद के पात्र हैं आजकल २५ लाख पुरुष और स्त्रियाँ इस प्रकार के उद्योग पर अपना उदर निर्वाह करती हैं। विद्युत और भाप से चलने वाले यन्त्रों के सामने उनका यह प्रयत्न वृथा जान पड़ता है। यदि आज नहीं तो कल उन्हें अवश्य हारना होगा यह विधि-लेख कभी नष्ट नहीं होगा।

आधुनिक सांपत्तिक परिवर्तन में यदि हस्त कौशल के उद्योगों का जर्मन सरकार पोषण न करती और उनके अनुकूल कानून न पास करती तो जर्मनी के सब हस्त उद्योग रसातल को पहुँच गये होते। हस्त उद्योग कायम रहे इस उद्देश्य से सरकार ने सहकारी मण्डलियाँ (G   ds) स्थापन किये हैं और दिन-प्रति दिन स्थापित होते जाते हैं परन्तु इससे हस्त उद्योगों का कितना बचाव होगा यह नहीं कहा जा सकता।

किस गाँव में कौनसा उद्योग चलता है इसको लक्ष में रख कर सरकार ने औद्योगिक पाठशालाएँ स्थापित की हैं और उनमें चलते फिरते हुए शिक्षक रख कर लोगों को नवीन प्रकार की शिक्षा देने का प्रयत्न किया है। बेवेरिया में हस्त कौशल की शालाएँ बहुत हैं और वहाँ सरकार ने चलते फिरते हुए शिक्षकों की योजना की है। यह शिक्षक गाँव गाँव फिरते हैं और हस्त कौशल सिखाने वाली पाठशालाओं में कैसा काम करते हैं इस की देख-रेख रखते हैं। पुराने ढंग की पाठशालाओं में नवीन सुधार किस प्रकार से हो सकते हैं, यह उनको समझाते हैं। इतने से ही वह चुप नहीं रहते, हस्त उद्योग करने वालों का माल शहरों में उनके श्रम के प्रमाण में बिके और लोग इन्हें न फँसावें इसकी भी देख-रेख रखते हैं। और किस माल की कहाँ जरूरत है इसकी भी इन लोगों को सूचना देते हैं।

जर्मनी का व्यापार

जर्मनी में व्यापार भी दिन प्रति दिन बढ़ता जाता है। जर्मनी से बाहर जाने वाले माल की अपेक्षा जर्मनी में आने वाले माल का प्रमाण अधिक है। प्रति वर्ष कारखानों में तैयार किया हुआ माल बाहर अधिक जाने से कच्चे माल की माँग बढ़ने लगी। इस कारण माल बाहर जाने की अपेक्षा आयात अधिक होना स्वाभाविक ही है। जर्मनी का व्यापार सारे जगत के साथ चलता है। यदि इस व्यापार का उल्लेख किया जाय तो पृष्ठ के पृष्ठ भर जायँगे।

जर्मनी का विदेशों के साथ साथ जिस प्रमाण में व्यापार बढ़ा है उसी प्रमाण में समुद्र मार्ग से माल ले जाने वाले जहाज भी बढ़े हैं। सारे जगत् के जहाजों में सन् १८७४ ई० में ५.२ सैकड़ा थे वह ९.९ सैकड़ा हो गई है। जर्मनी वालों को जहाज बनाने का उद्योग बहुत प्रिय है और उसे उन्नत स्थिति में लाने के लिये उनका प्रयत्न अस्खलित है। हेम्बर्ग और ब्रेमेन के कारखाने रत्नाकर में ही इतने महान् बने हैं। कोई भी जहाज, चाहे वह किसी कारखाने का हो उसके प्रथम पर्यटन के प्रसंग पर अभिनन्दन का तार सरकार की तरफ से प्राप्त होता है। जहाज बनाने वाली एक कम्पनी तो ऐसी है कि उसके डायरेक्टरों में ऐडमिरेल्टी के बड़े सरकारी नौकर हैं।

सबसे बड़ी और अतिशय वेग से चलने वाली आगबोटें इंग्लैंड में जैसी हैं, वैसी जगत के किसी देश में नहीं। जर्मनी के पास बहुत से जहाज ऐसे हैं कि जिनका टनेज (भार सहने की पात्रता) इंग्लिश टनेज के लगभग है। बड़ी और वेग से चलने वाली आगबोटों को बनाकर समुद्र पार का व्यापार बढ़ाने के काम में जर्मन राष्ट्र बेशुमार धन व्यय कर रहा है। उसी प्रकार से बन्दरगाहों के सुधार करने में और समुद्र किनारे पर तथा बड़ी बड़ी नदियों के किनारे को बढ़ा कर उनमें बड़े जहाज उतर सकें ऐसा बनाने में अधिक ध्यान दिया जाता है। जहाजों के रखने के स्थान उनके अनुकूल रेलवे बोट पर माल चढ़ाने वाले यन्त्र इतने अधिक और खूबी वाले हैं कि उसको देख कर मनुष्य दिग्मूढ़ बन जाता है। देश का व्यापार बढ़ाना हो तो माल लाने और ले जाने के साधनों को बढ़ाना चाहिए—यह तत्त्व जर्मनों के हृदय पट पर खिंच गया है, और इसके अनुसार नई नई नहरों को खोदने का उद्योग राईन ऐल्ब आदि नदियों के तट पर रहने वाली प्रजा बड़े चैन से करती है।

धर्म क्या है

लेखक—श्रीयुत साधुराम शुक्ल

अब मैं लोगों को यह कहते हुए सुनता हूँ कि धर्म को बचाओ, धर्म का लोप हो गया; अरे प्रलय हो जायगा, तो मुझे बेहद हँसी आ जाती है कि धर्म क्या कोई कार्क है, जो बोतल में से प्रलय को निकलने से रोकती है या कोई बड़ा पत्थर है, जो प्रलय की नदी को रोके हुए है। धर्म तो वैसी ही चीज है, जैसा कि यश और मान के इच्छुक किसी कुशल लेखक का कथानक। कुशल लेखक अपनी मस्तिष्क की उपज कहानी—को उसकी कलात्मक सत्ता द्वारा जनता को नये संसार की सैर करा देता है, पर वास्तव में उसका आधार या अस्तित्व कुछ नहीं होता।

यही बात धर्म के विषय में भी है। कुछ लोगों ने—जो अधिकांश में अपना मान-मर्यादा और यश चाहने वाले थे—धर्म नाम का एक बखेड़ा खड़ा कर दिया, जिससे संसार में जब तक उनकी यह कुकृति लोगों के दिमाग में बदबू पैदा करती रहेगी, तब तक उनका नाम संसार में अजर-अमर रहेगा।

वास्तव में धर्म नाम की कोई वस्तु नहीं है। हाँ, नाम अवश्य है जब तक यह नाम संसार में रहेगा,

कभी परस्पर शान्ति स्थापित अवश्य न हो सकेगी। यह भयानक रोड़ा है, जो ऐक्यता में बाधक हो रहा है।

धर्म की परिभाषा प्रवर्तक की कल्पना है और उसका आधार भौगोलिक है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण यह है कि जहाँ पर हिन्दू-धर्म प्रवर्तकों ने स्वर्ग और नरक की कल्पना की है, वहाँ पर उन्होंने स्वर्ग में दूध की नदियाँ, भोग-विलास के लिये अप्सरायें, काम्य वस्तु की तत्क्षण पूर्ति कर देने वाला कल्पवृक्ष इत्यादि का वर्णन किया है। नरक की कल्पना मे साँप, बिच्छू अग्नि आदि भयकर वस्तुओं का वर्णन किया है। कुरान के लेखक ने बहिश्त की कल्पना में पानी की नहरें, झरने, मद्य की नदियाँ, भोग-विलास के लिये गुल्मे (लौंडे) हूरों आदि की कल्पना की है और नरक में इससे विपरीत।

हिन्दुस्तान में पानी का अभाव नहीं है, इसलिये दूध की नदियों की कल्पना स्वाभाविक है, किन्तु कुरान लेखक अरब-निवासी था। अरब में पानी कम मिलने से जन्नत में पानी की नदियों की कल्पना आवश्यक थी। उधर पुरुष प्रसंग की प्रथा होने से बहिश्त में गुल्मों की कल्पना की गई, किन्तु भारत में इस प्रथा के न होने से स्वर्ग में भी हिन्दू धर्म शास्त्रकारों ने लौंडों की आवश्यकता नहीं समझी। किसी ठंढे देश में जहाँ साँप, बिच्छू नहीं पैदा होते, वहाँ नरक की कल्पना में इनका नाम तक नहीं मिलेगा और बजाय अग्नि में जलाकर कष्ट देने के वहाँ के धर्म-शास्त्रकारों ने बरफ में गलाकर कष्ट देने की कल्पना अवश्य की होगी। इसलिये धर्म प्रवर्तक के मस्तिष्क की उपज है और उसका आधार भौगोलिक परिस्थिति है।

धर्म क्या है? यह प्रश्न बहुत साधारण है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारानुसार इसे हल कर सकता है, पर जरा ध्यान-पूर्वक समुदाय-धर्म पर दृष्टिपात करने पर यह प्रश्न अधिक उग्र रूप धारण कर लेता है और इसका हल करना संसार के लिये आवश्यक हो जाता है।

यदि विशेष जातियों और सम्प्रदायों से इसका उत्तर लिया जाय, तो धर्मों की तालिका की संख्या करोड़ों से ऊपर पहुँच जायगी। परस्पर विरुद्ध धर्मों में मुठभेड़ भी हो गई है। एक युग के लोग जिसे धर्म समझते हैं, पूजा करते हैं। दूसरे युग के लोग उसी को अधर्म कह कर समाज से दूर हटाने का प्रयत्न करते हैं। यहाँ तक कि, संसार मे जितने भी धर्म-नाम से प्रचलित मत हैं, सभी परस्पर भिन्न हैं। बौद्ध-धर्म अधिकांश में व्यापक धर्म है और उसके शिष्यों ने उसे वृहत् रूप दे डाला है। जैनियों ने मुँह दाँत साफ करना भी छोड़ दिया है। लोग कहते हैं कि जैनियों में वह सबसे अधिक पहुँचा हुआ व्यक्ति माना जाता है, जिसके दाँतों में मैल जम जाने के कारण पैसा आसानी से चिपक जाय। पता नहीं यह बात कहाँ तक सत्य है।

रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनों ही क्रिश्चियन के नाम से पुकारे जाते हैं; पर दोनों में भेद है, आकाश और पाताल का। दोनों ने सदियों तक एक दूसरे का गला काट-कर खून की नदियाँ बहाईं।

बीसो करोड़ व्यक्ति अपने को हिन्दू धर्मानुयायी कहते है; किन्तु उनमें असंख्य संप्रदायों में अगण्य श्रेणियों की उपासनायें प्रचलित हैं। केवल मतों में भेद है, यही नहीं, आचार व्यवहार, उपासना प्रणाली, उपास्य देवता आदि कितने ही आवश्यकीय अंगों में पार्थक्य हैं।

धर्म के नाम पर जितना अत्याचार, जितना कुसंस्कार, जितनी हत्या, जितना निर्यातन होता चला आ रहा है, उसकी सीमा नहीं। धूर्तों के स्वार्थ ने जो आँटे समाज के गले में डाल दी है, उनका निकलना सहज नहीं।

'ख्रिष्टीय धर्म जगत् में जो लोम हर्षण व्यापार संघटित होते आये हैं, उनका कुछ दिग्दर्शन यहाँ कराते हैं।

लगभग तीन हजार वर्ष हुवे होंगे न्यूनाधिक अस्सी वर्ष का वृद्ध अग्निकुण्ड के सामने एक हाथ में अपना लड़का और दूसरे हाथ में तलवार लिये हुए खड़ा था। मुख-मण्डल पैशाचिक गाम्भीर्य से पूर्ण था। लोगों ने पूछा—क्यों वृद्ध महाशय, यह सब क्या है? वृद्ध ने उत्तर दिया-मैं ईश्वरादेश से अपने इस लड़के को काटकर अग्नि में आहुति दूँगा। क्या तुमने नहीं सुना है कि गत रात्रि में स्वयं ईश्वर ने स्वप्न में मुझे यह आदेश दिया था।

इसी प्रकार १८५० वर्ष पहले एक कौतूहल मय दृश्य देखा गया था। एक स्थान पर बहुत से व्यक्ति मिलकर जय-ध्वनि से आकाश प्रतिध्वनित कर रहे थे। वहीं पर मृत्यु यन्त्रणा से पीड़ित एक सुडौल भव्य युवक क्रुश-काष्ठ-विद्ध पड़ा कराह रहा था। किसी ने जिज्ञासा की—यह क्या है? सब लोग व्यंग्य स्वर से बोल उठे—जिस मृत्यु-यन्त्रणा-पीड़ित मनुष्य को तुम देख रहे हो, यह परम नास्तिक है। यह कहता है कि बाह्य क्रिया-काण्ड कुछ नहीं। ईश्वर मनुष्य का पिता है। सबको परस्पर भ्रातृ-भाव रखना चाहिये। ईश्वर से प्रेम करना चाहिये। हमारा तर्क इसके सामने कुछ नहीं चलता। इसके आदर्शों को लेकर सैकड़ों स्त्री-पुरुष कुपथ गामी हो गये, अतः इसे चोर की भाँति दण्ड दिया गया है। तब तक उस ईश्वर के पुत्र की ओजस्वी भाषा चिरकाल के लिये नीरव हो गई।

एक बार कुछ पोपों ने मिलकर शनिवार की शाम को लकड़ी बटोरते हुए एक मनुष्य को पत्थरों और ढेलों से मार डाला था। उसका अपराध यह था कि जब स्वयं ईश्वर ने ६ दिन सृष्टि कार्य करके शनिवार की शाम को सृष्टि कार्य बन्द कर दिया था, तो फिर इसने ऐसा बर्बरता-पूर्ण कार्य क्यों किया।

अपेक्षाकृत सभ्य-युग में पारसी देश के लिंड नगर में एक युवती खम्भे से बाँधकर जीवित ही जला दी गई और उसके बच्चे को उसके सामने ही पत्थर पर पटक कर मार डाला गया। पोप लोग उससे कहलवाना चाहते थे कि वह कहदे—रोमन के पोप लोग जो कुछ कहते हैं, वही धर्म है, किन्तु उसने नहीं कहा था।

मुसलमानों और हिन्दुओं ने भी धर्म के नाम पर कम अत्याचार नहीं किये। आज भी धर्म के नाम से हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो रहे हैं। इन सबका उदाहरण देना व्यर्थ है।

जब तक संसार से धर्म-नाम का भूत उठा न दिया जायगा, तब तक स्वतन्त्रता का स्वप्न देखना, संसार में शान्ति और विश्व-बन्धुत्व की स्थापना की आशा करना दुराशा मात्र है। यदि संसार परस्पर भ्रातृभाव और शान्ति स्थापना करना चाहता है, तो आज ही धर्म के नाम को मिटा देना चाहिए।

खद्दर पहनो और देश के दुख-दारिद्र्य को दूर भगाओ।

शिकार

लेखक—श्रीयुत सत्यभूषण

'जमींदार साहब ! कुछ सुना है ? आज बाघ दो गायें मार गया है ।' प० देवीप्रसादजी ने जमींदार साहब के घर की ड्योढ़ी में पाँव रखते हुए कहा ।

जमींदार साहब ने हुक्के की नली मुँह से निकाल हाथ में पकड़ ली और उत्सुकता से पूछा—कहाँ !

प० देवीप्रसादजी ने जमींदार साहब के पास पड़ी हुई तिपाई पर बैठते हुए कहा—यहीं रावी नदी के किनारे के जंगल के बाहर की चरागाह में, जहाँ गाँव का ग्वाला गौयें चराने ले जाया करता है ।

'क्या दोनों को उठा के ले गया ?

जी नहीं, एक को । दूसरी वहीं छोड़ गया । वह कुछ देर तक तड़पती रही और इसके बाद उसके प्राण निकल गए ।'

क्या इससे पहले भी बाघ कभी कोई गाय ले गया है ?'

'जी, पहले भी एक बार यही बाघ एक गाय उठाकर ले गया था । उस घटना को तो अभी २५ दिन भी नहीं हुए अगर इसे रोकने की कोशिश न की जायगी, तो ये समाचार रोज सुनने को मिलेंगे । गाँव वाले यह सुनकर बहुत डर हुए हैं ।'

'तो पण्डितजी ! आज हम दोनों क्यों न कोशिश करें ?

'जरूर' पण्डितजी ने प्रसन्नता से कहा ।

'तो बस, शाम को आप सारा प्रबन्ध कर लेंगे न ?

'जी हाँ' कहकर पण्डितजी चलने लगे ।

जमींदार साहब ने कहा—देखिये, गाय को कोई हाथ भी न लगावे । उसे इसी अवस्था में पड़ा रहने दीजिएगा ।

'बहुत अच्छा' कहकर पण्डितजी चले गए ।

जमींदार साहब ने हुक्के की नली मुँह से लगाई और सोचने लगे कि बाघ को कैसे मारा जाय ।

जमींदार निहालचन्दजी गाँव के एक प्रतिष्ठित मनुष्य थे । रुपये पैसे का कोई चिन्ता न थी । उनके हृदय में गरीबों के लिये सहानुभूति थी । वेदों और पुराणों में बड़ा विश्वास रखते थे । रामायण और महाभारत का प्रतिदिन पाठ करते थे । अभी इनको इस गाँव में आए १५ दिन ही हुए थे किन्तु इस अल्प समय में ही इनकी लोक प्रियता बढ़ गई था । ये केवल धर्मात्मा और विद्वान ही न थे, वरन् एक अच्छे शिकारी भी थे । पण्डित देवीप्रसादजी भी इन्हीं के गाँव के एक प्रतिष्ठित मनुष्य थे और ये भी अच्छे शिकारी थे ।

सायंकाल हुआ । जमींदार साहब और प० देवीप्रसाद अपनी अपनी राइफल लेकर उस ओर चल पड़े, जिधर बाघ ने अपनी क्रूर शक्ति का परिचय दिया था । कुछ आदमी इनके साथ वहाँ तक गये । मचान तैयार था । दोनों ऊपर चढ़े और अपनी अपनी जगह बैठ गए । मचान को पत्तों इत्यादि से ढक दिया गया । इसके बाद नीचे खड़े मनुष्य आपस में बातें करते हुए वापस चले गए, जिससे बाघ को किसी प्रकार का सन्देह न हो और वह समझे कि कुछ आदमी आये थे और वे वापस चले गये हैं । बाघ बड़ा शक्की जानवर है । उसे जरा भी सन्देह हो जाय, तो लाख प्रयत्न करने पर भी वह उधर नहीं आता । खैर, प० देवीप्रसादजी और जमींदार साहब अपनी अपनी जगह ठीक कर के जम कर बैठ गये । जमींदार साहब ने बीड़ी मुँह में दबाई, दियासलाई से बीड़ी के सिरे को जलाया और इसके बाद मुँह से धुआँ छोड़ने लगे । पण्डितजी का हृदय मरी हुई गाय को देखकर शोक और दुःख से भर रहा था । इस समय वह सोच रहे थे कि कभी हमें भी मरना है, यह शरीर नश्वर है । यह विचार पहले भी उन्हें कई बार आ चुका था किन्तु आज यह बहुत गहराई तक पहुँच गया था । जब मनुष्य कोई मृत्यु आँखों के सामने देखता है, उस समय उसे अपने शरीर की वास्तविक नश्वरता का ज्ञान होता है । धीरे धीरे दस बजे । संसार को अन्धकार ने अपने काले लबादे में छिपा लिया । पण्डितजी और जमींदार साहब आँखें फाड़ फाड़ कर बाहर की ओर देख रहे थे । इस समय उन्हें संसार का कुछ ध्यान न था । केवल बाघ, मरी हुई गाय और राइफल, यह तीन चीजें उनका संसार था । घड़ियाल ने रात्रि के बारह बजाए, किन्तु बाघ अब भी दिखाई न दिया । हार कर जमींदार साहब ने बीड़ी निकाली और दियासलाई जलाने ही वाले थे कि पण्डितजी ने हाथ के अंगूठे से उनके पैर को दबाया । इसका अर्थ यह था कि इस समय बीड़ी नहीं पीनी चाहिए । जमींदार साहब ने बीड़ी मुँह से निकालकर डिबिया में रख ली और बाहर की ओर देखने लगे । दोनों पक्के शिकारी थे । निराश होने वाले न थे । दो बज गये । उस समय आकाश में चन्द्रमा भी उदय हो आया था, किन्तु बाघ के आने का कोई चिन्ह दृष्टिगोचर न हुए । आखिर, धैर्य की भी कोई सीमा होती है । दोनों ने कुछ देर के लिए आँखें बन्द कर लीं । तीन घंटे लगातार देखने से आँखें भी थक गईं थीं । जमींदार साहब ने फिर बीड़ी मुँह में दबाई । इतने में पण्डितजी ने जमींदार साहब को हाथ के संकेत से बाहर देखने के लिये कहा । बाहर देखा, तो सामने की झाड़ी में सरसराहट-सी हुई । बीड़ी फिर जेब के अन्दर चली गई और हाथ राइफल पर पहुँचा । राइफल सीधी की गई और ध्यान से झाड़ी की ओर देखने लगे । थोड़ी देर पश्चात बाघ की दुम झाड़ी से बाहर निकली और फिर अन्दर चली गई । जिस प्रकार दो शराबी अपने सामने एक बोतल शराब को देखकर झगड़ने लगते हैं, इसी तरह पण्डितजी और जमींदार साहब लड़ रहे थे । एक कहता था पहला फायर मैं करूँगा, दूसरा कहता था, नहीं मैं । यह बात वाणी से नहीं, हाथ के इशारे से हो रही थी । आखिर पण्डितजी ने जमींदार साहब की बात मान ली । थोड़ी देर बाद फिर पूँछ बाहर निकली । जमींदार साहब ने पूँछ ही से बाघ का निशाना लक्ष्य करके राइफल का घोड़ा दबा दिया । धाँय की प्रलय कारिणी ध्वनि से सारा जंगल गूँज उठा और इसके साथ ही कोई चीज झाड़ी से कई फुट ऊपर उछल गई । यही खूनी बाघ था । इतने में दूसरा फायर भी हुआ । बाघ झाड़ी के बाहर आकर पंजों के बल पृथ्वी पर गिरा और फिर जंगल की ओर भागा । कुछ देर बाद पण्डितजी और जमींदार साहब मचान से उतरे और उस जगह को ध्यान से देखने लगे, जहाँ बाघ पर फायर किया गया था । एकाएक जमींदार साहब जोर से चिल्ला उठे—पण्डितजी, देखिये ये खून की बूँदें ।

'कहाँ' पण्डितजी ने उत्सुकता से पूछा ।

जमींदार साहब ने कहा—यहाँ, मालूम होता है कि गोली बाघ की कमर में लगी है ।

मुझे यह निश्चय है कि अब वह बचता नहीं । इस समय कहीं मरने चला गया है । प्रातःकाल उसकी खोज करेंगे । इस समय चार बज गये होंगे । आइए अब घर चलें ।

'नहीं पण्डितजी मैं तो अभी बाघ की खोज करने जाऊँगा ।'

ऐसे समय शिकारी प्रायः पागल से हो जाया करते हैं यह जानते हुए भी कि ऐसे समय शेर अथवा बाघ का पीछा करना खतरनाक है । लालुपता के वश हो पीछा करते हैं । कभी कभी इसका बड़ा भयानक परिणाम निकलता है । ठीक यही अवस्था इस समय जमींदार साहब की थी । पण्डित देवीप्रसादजी ने बहुत बार कहा कि यह मूर्खता न करो इतने उद्विग्न न होना चाहिए । सबेरे अपने आप मिल जायगा किन्तु जमींदार साहब न माने और राइफल सँभाल कर जंगल की ओर चल पड़े । पण्डितजी को कुछ पूजा पाठ करना था अतः वे घर चले आये और गाँव वासियों को यह समाचार सुनाया कि बाघ मारा गया है ।

इधर जमींदार साहब खून के कतरों के साथ साथ चलते आ रहे थे । राइफल बेपरवाही से पकड़े हुए थे । इतने में इन्हें कुछ दूरी से गुर्राने की सी आवाज आई । जो देखता, तो दस गज की दूरी पर बैठा बाघ अन्तिम साँस ले रहा था । जमींदार साहब ने कभी इतनी नजदीक से बाघ न देखा था । बाघ की शक्ति का परिचय ऐसे समय ही लगता है पिंजड़े के अन्दर नहीं । जमींदार साहब बाघ देखते ही घबरा गए । हाथ पैर को मानों काठ मार गया मरते दम तक बाघ अपने शत्रु से बदला लेना नहीं भूलता । उसने जो अपने सामने अपने शत्रु को देखा, तो एकदम उस पर झपटा यद्यपि इस घायलावस्था में उससे उठा भी कष्ट से जाता था । कहते हैं जब विपत्ति आती है, तो कायर पुरुष में भी वीरता आ जाती है । फिर जमींदार साहब तो बहादुर थे । फायर करने के लिए ज्योंहीं बन्दूक उठाई त्योंहीं बाघ का मुँह उनके कन्धे पर पहुँचा और चाहता था कि उनके कन्धे में दाँत गड़ाए कि इतने में जमींदार साहब ने बड़े जोर से उसके सिर को धक्का दिया, जिससे उसका मुँह पीछे हो गया । उसने एक बार अपनी चमकती हुई भयानक आँखों से जमींदार साहब को देखा और फिर मुँह खोला । अबकी बार वह गर्दन पर वार करना चाहता था । जमींदार साहब घबरा गए । उनको और कुछ न सूझा । बन्दूक को उसके गले में ठूँस दिया और 'घोड़ा' दबा दिया । धाँय की ध्वनि हुई किन्तु केवल बाघ ही नहीं जमींदार साहब भी पृथ्वी पर आ गिरे । घबराहट में जमींदार साहब ने बन्दूक का पिछला भाग बाघ के मुँह में ठूँस दिया था और बन्दूक की नली उनकी ओर थी । गोली उनकी छाती में लगी । इधर बाघ में इतनी शक्ति न रही थी कि खड़ा रह सके । अपने शत्रु को भूमि पर गिरता देख कर अथवा बन्दूक की भयंकर आवाज को सुनकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा । जमींदार साहब की छाती से खून बह रहा था । दोनों शत्रु अन्तिम साँस ले रहे थे ।

छः बजे के लगभग बाघ को मरा जान बड़ी प्रसन्नता से गाँव वासी मरे बाघ को देखने दौड़ आये, किन्तु यहाँ मालूम हुआ कि बाघ अकेला ही नहीं जमींदार निहालचन्दजी को भी साथ लेता गया है ।

जीवन्मुक्त महात्मा श्री तैलंग स्वामी का तत्वोपदेश

लेखक—श्रीयुत अजितनाथ भट्टाचार्य, बी० ए० एल-एल० बी०

१२—तत्त्वज्ञान

परमात्मा अथवा ईश्वर सम्बधीय ज्ञान को तत्वज्ञान कहते हैं। यदि यह विश्वास हो कि ईश्वर है, तो उसका अनुसन्धान करना चाहिये और यदि यह विश्वास न हो, तो निरर्थक तर्क करके किसीके साथ विवाद करना और अपना मत बहाल रखनेकी चेष्टा करना विडम्बना मात्र है। जिनको यह विश्वास है और जो ईश्वर के पाने की वास्तविक अनुसन्धान करते हैं, उन्हें 'मैं कौन हूँ' यह जानना आवश्यकीय है, उसके बाद और सात विषयों को जानना चाहिये। प्रणाली के अनुसार विश्वास और भक्ति के साथ कार्य करने स तीन महीनेके भीतर अवश्यही आत्मदर्शन होता है।

आत्मा का दर्शन होने से मनुष्य शान्त हो जाता है और मुक्त के पथ पर अग्रसर होता है। जब तक आत्मा का परमात्मा के साथ योग न कर सकोगे तब तक मुक्ति की कोई आशा नहीं है। योग होने पर सूक्ष्म शरीर धारण करके इच्छानुसार गमनागमन कर सकते हो, ऐश्वरिक बल और शक्ति मिलेगी जिससे कि अन्त में सर्वज्ञ हो सकते हो।

मैं कौन हूँ—पञ्च भूत, पञ्च प्राण, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि। इसके सिवाय, नाड़ी चतुष्टय (चार) जैसे इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना और चित्रा, छः रिपु, और चित्त, वासना, चिन्ता, तृष्णा, माया, और आशा इन सब उपादानों से मनुष्य-देह बना हुआ है।

इसके अतिरिक्त ज्ञान, चैतन्य, आत्मा अथवा जीवात्मा और परमात्मा हैं। इन सब विषयों का तत्व जानने पर 'मैं कौन हूँ' और ईश्वर मनुष्य देह में विराजमान हैं या नहीं इसको भली-भाँति जान सकोगे। यदि हम अपने को पहचान सकें, तो ईश्वर को अवश्यही पहचान सकेंगे। यदि यह विश्वास हो जाय कि ईश्वर है, तो यह अवश्य जानो कि वह बहुत ही सन्निकट हैं। और यदि यह विश्वास न हो, तो वह बहुत दूर हैं और कभी भी मिल नहीं सकते।

पैर से लेकर मस्तक तक विचार कर देखने से यह मालूम होता है कि 'मैं' नाम का कोई नहीं है। एकमात्र ज्ञान स्वरूप ही 'मैं' हैं, केवल विशुद्ध चैतन्य ही 'मैं' रूप में प्रकाशित है।

देह, मन, इन्द्रिय और चैतन्य ये चारों एकत्र दिखाई पड़ते हैं, परन्तु परस्पर उनका एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। सब अङ्ग रहते हुए भी मुर्दा दर्शन स्पर्शन क्यों नहीं कर सकता? देह और मुर्दा एक ही पदार्थ है। हमारा चैतन्य है, इसलिये देख सकते हैं और सुन सकते हैं, इसलिये हम देह' नहीं हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतएव हम देह से भिन्न, नित्य और स्वप्रकाश हैं। जिस स्थान में आत्मा विद्यमान है, वहाँ मन, इन्द्रिय, वासना इनमे से एक भी नहीं रह सकता है। राजा के पास क्षुद्र-नीच मनुष्य नहीं रह सकता। जिस प्रकार तेल जब तिल से अलग हो जाता है, तब खली के साथ तिल का कोई सम्बन्ध नहीं रहता है, उसी प्रकार देह, मन, और इन्द्रियादि के साथ 'मेरा' सम्बन्ध नहीं है यह मन भी हम नहीं है, जीव भी हम नहीं हैं, क्योंकि ये चैतन्य से बोध्यमान रहते हैं। जीव की स्वय कोई शक्ति नहीं है, वह केवल-मात्र साक्षी है, अतएव मैं' ही वही अनन्त आत्मा हूँ। जिस प्रकार मुक्तादाम सूत में हरएक मुक्ता (मोती) उसमें ग्रथित हैं, उसी प्रकार इस परमात्मा में जीव समुदाय ग्रथित हैं। जिस प्रकार सूत और मोती मे कोई सम्बन्ध नहीं है, उसी प्रकार देह और आत्मा में कोई सम्बन्ध नहीं है। देह केवल जड़ पदार्थ है और आत्मा या 'मैं' अमर है। जीवन और मरण केवल भ्रम मात्र है। 'मैं' शब्द से आत्मा के सिवाय और कुछ नहीं जान पड़ता है, ज्ञान के उदय होने ही से यह बात जानी जाती है।

बाह्य जगत् 'मैं' नहीं हूँ, अनित्य देह 'मैं' नहीं हूँ पञ्चप्राण वायु 'मैं' नहीं हूँ, क्योंकि ये सब अचेतन पदार्थ हैं, 'मैं' चेतन हूँ। पञ्चज्ञानेन्द्रिय 'मैं' नहीं हूँ, वाक्य, शब्द, स्पर्श, घ्राण, रूप, रस, यह सब भी 'मैं' नहीं हूँ, तब 'मैं' वह कौन है? 'मैं' मनन शून्य, निर्मल, शान्त, विशुद्ध, चेतन स्वरूप हूँ, 'मैं' ही बाहर-भीतर सब स्थानों में व्याप्त हूँ, 'मैं' ही दीप की नाईं सब पदार्थों को प्रकाश कर रहा हूँ मैं' सर्वगामी आत्मा हूँ। जिस प्रकार अन्धकार म दीप की सहायता से सफेद और काली चीजें पहचानी जाती हैं, उसी प्रकार मुझमें ही अर्थात् मेरी आत्मा ही में सब प्रकार की वस्तुएं समझ पड़ती है। जिस प्रकार दर्पण मे सब प्रकार का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार 'मुझ' में ही सब प्रकार के पदार्थों का अनुभव होता है।

'मैं' ही अनादि, अनन्त, सर्वगामी, चिन्मय वही आत्मा हूँ। मेरा यह स्थावर जगम बहुत शरीर है। इसका कितना परिमाण है, यह नहीं समझ पड़ता। किस समय पैदा हुआ है और कितने समय तक रहेगा, उसका कोई सीमा नहीं है। और यह कहाँ तक व्याप्त है, इसका कोई परिमाण नहीं है।

'मैं' स्वय ही स्वप्रकाश हूँ। 'मैं' फूलों में गन्ध हूँ, बीज में वृक्ष हूँ, जल म ठंडापन हूँ, अग्नि में तेज हूँ सूर्य में किरण हूँ, दीप में प्रकाश हूँ, सौन्दर्य में रूप हूँ, और उस रूप मे अनुभव हो कर अवस्थान कर रहा हूँ। जिस प्रकार दूध मे घी, जल मे रस, तिल में तेल चीनी में मिठास है, उसी प्रकार मै भी सकल पदार्थ म शक्ति के रूप में विद्यमान हूँ। चूँकि मै आत्मा हूँ, इसलिये बिना किसी से प्रार्थना किये हुए इस विशाल जगत् को अनायास ही प्राप्त किया है। तुम अथवा मैं और मेरा इत्यादि यह सब मिथ्या भ्रम मात्र है।

मन दूर दूर तक घूमता रहता है। मन की वृत्ति तरंग की नाईं चंचल है, मन का तेज अग्नि स भी अधिक है, इसको पार करना पर्वत के पार जाने से भी कठिन और दुसाध्य है। मन को वश में करना समुद्र पान, सुमेरु पर्वत का उखाड़ना और अग्नि भक्षण (आग खाने) से भी कठिन है, मन क्षीण अर्थात् वासना रहित होने से जगत् नष्ट हो जाता है।

यह तमाम सुख और दुःख बड़े-बड़े पर्वतों से उत्पन्न अरण्य की नाईं मन से ही उत्पन्न होते हैं, विवेक से मन जब क्षीण हो जाता है, तब सुख और दुःख नष्ट हो जाते हैं।

नट की नाईं मन सब वस्तुओं में क्षणिक आनन्द, क्षणिक विषाद और क्षणिक प्रसन्नता अनुभव करता है। यदि इस समय निर्मल बुद्धि से मन की चिकित्सा न की जाय, तो इसके बाद उसके प्रतिकार करने का समय कहाँ स मिलेगा? मन, चित्त, वासना, कर्म और देह, ये सब सज्ञा कहे जाते हैं मन की सत्ता से ही दृश्य दर्शन होता है, मन के उच्छेद स दृश्य दर्शन का भी उच्छेद हो जाता है। मन ही ससार का कर्ता है, मन ही पुरुष है। यह आकाश विस्तृत और अनन्त है, मन भी उसी तरह विस्तृत है।

मन की शक्ति इतनी प्रबल है कि एकाग्र चित्त से जो काम करोगे, उसमें अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी, यहाँ तक कि स्वय ब्रह्म हो सकते हो।

मन चैतन्य शक्ति से चैतन्य भाव प्राप्त होकर ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है। मन और देह अभिन्न है, आत्मा ही मन और देह है, मन देह की सब चेष्टा सफल होती है। मन जिसको चाहता है, उसी को कर्मेन्द्रिय के द्वारा प्राप्त करता है। मन के द्वारा अपने को पवित्र पथ में नियुक्त लगाना (करना) चाहिए। मलिनता से युक्त चित्त को मन कह सकते हैं। मन और चित्त आत्मा का स्वरूप है, वासना चित्त का अंश मात्र है। मन अपना विनाश आप ही करता है, मन केवल अपने विनाश ही के लिये आरम्भ दर्शन करता है। मन का नाश ह सब दुःख निवारण का मूल है। मन जब विवेक से सस्कृत होता है, तभी उसका नाश होता है।

मन कितना प्रबल और शक्तिमान् है वह सहज ही म प्रत्यक्ष किया जा सकता है। यदि तुम्हारा मन किसी दूसरे वस्तु में आसक्त है, तो खाने वाली वस्तु को खाते हुए भी उसका स्वाद तुम्हें नहीं मालूम हो सकता है। (क्रमशः)

'कायाकल्प' की सूक्तियाँ

लेखक—श्रीयुत ब्रजविहारीलाल गौड़

'अगर पेट पालना ही जीवन का आदर्श हो, तो पढ़ने की जरूरत ही क्या है।'

'विद्या के साथ जीवन का आदर्श कुछ ऊँचा न हुआ, तो पढ़ना व्यर्थ है।'

'बाधाएँ सत्कार्य में विरोध की परवा नहीं करतीं।'

'निर्भीकता स्वतन्त्रता की पहली सीढ़ी है।'

'कृतज्ञता शब्दों मे आकर शिष्टाचार का रूप धारण कर लेती है।'

'कर्तव्य ही ऐसा आदर्श है, जो कभी धोखा नहीं दे सकता।'

'बुढ़ापा मरी हुई अभिलाषाओं की समाधि है।'

'कर्म का दण्ड कर्म से कहीं भयंकर होता है।'

'भौतिक ज्ञान से आत्मा का ज्ञान नहीं प्राप्त होता।'

'जड़ से चेतन का ज्ञान नहीं होता।'

'कठिन कार्य में सफल हो जाना आत्मविश्वास के लिए सञ्जीवनी के समान है।'

'संस्कारों के क्रम को पलटना अनिष्ट का मूल है।'

'विलास सर्व सुख की छायामात्र है।'

'यौवन प्रौढ़ होकर और भी अजेय हो जाता है।

'प्रेम-पत्र की रचना कवित्त की रचना से कहीं कठिन होती है।'

'कवि चौड़ी सड़क पर चलता है, प्रेमी तलवार की धार पर।'

'यथार्थ ही को आदर्श मान लें, तो संसार नरक-तुल्य हो जाय।'

'नशा का नाश ताकत नहीं।'

'स्वाधीनता सद्गुणों को जगाती है, पराधीनता दुर्गुणों को।'

'शुभ मुहूर्त पर हमारी मनोवृत्तियाँ धार्मिक हो जाती हैं।'

'क्रोध निरुत्तर होकर पानी हो जाता है।'

'आँसू अव्यक्त भावों ही का रूप है।'

'जनता उत्तेजित होकर आदर्शवादी हो जाती है।'

'विजय के सम्मुख पहुँच कर कायर भी वीर हो जाते हैं।'

'कोई अन्याय केवल इसलिए मान्य नहीं हो सकता कि लोग उसे परम्परा से सहते आये हैं।'

'आसुरिक शक्ति भी सौन्दर्य के सामने सिर झुका देती है।'

सौंदर्य के सामने प्रभुत्व भीगी बिल्ली बन जाता है।'

'जनता पर उसी आदमी का असर पड़ता है, जिसमें सेवा का गुण हो।'

'विनय क्रोध को निगल जाता है।'

'संगठित शक्ति आग्रहमय होती है।'

'राज्य पशु-बल का प्रत्यक्ष रूप है।'

'प्रेम वह प्याला नहीं, जिससे आदमी छक जाय।'

'अलंकार भावों के अभाव का आवरण है।'

'जेल शासन का विभाग नहीं, पाशविक व्यवसाय है।'

'बलवान् आत्माएँ प्रतिकूल दशाओं ही में उत्पन्न होती हैं।'

'आत्मोन्नति के लिए कठिनाइयों से बढ़कर कोई विद्यालय नहीं।'

'जवानी में सहृदयता कुछ अधिक होती है।'

'भक्ति को आलोचना से प्रेम नहीं।'

'आत्मा की हत्या करके अगर स्वर्ग भी मिले, तो वह नरक है।'

'प्रकृति सदैव हमारी कमी को पूरी करती रहती है।'

'सबसे बड़ी इच्छा सबसे बड़े दुख का मूल क्यों न होगा।'

'राष्ट्रीय सम्मान किसी महान् राष्ट्रीय उद्योग का पुरस्कार होनी चाहिए।'

'चिउँटी को चाहे शक्कर की सुगन्ध न मिले, लेकिन रमणी का एक एक रोआँ पंचेन्द्रियों की भाँति प्रेम के रूप, रस, गंध, शब्द स्पर्श का अनुभव किये बिना नहीं रहता।'

प्रेम हृदय के समस्त सद्भावों का शांत, स्थिर, उद्गारहीन समावेश है।'

'सम्मान और भक्ति दया की अपेक्षा प्रेम से कहीं निकटतर है।'

'दरिद्र प्राणी अपनी साख बनाये रखने की चेष्टा में और भी दरिद्र होता जाता है।'

'पिछले पहर चिंता भी थककर सो जाती है।'

'सेवा स्वयं अपना बदला है।'

'त्याग और भोग में दिशाओं का अन्तर है।'

'कल्पना अपंग होती है, स्वप्न मिथ्या, जीवन का सार केवल प्रत्यक्ष में है।'

'अपमान को निगल जाना चरित्र पतन की अन्तिम सीमा है।'

'जब तक पूर्व-संस्कारों का प्रायश्चित न हो जाय, मन की भावनाएँ नहीं बदल सकतीं।'

निश्शंक दशा में सबसे प्यारी वस्तुओं की भी हमे सुधि नहीं रहती।'

'इच्छा वेगवती होकर विचार-शून्य हो जाती है।'

'मृत्यु में तामसिक प्रवृत्तियों को शांत करने की विलक्षणशक्ति होती हैं।'

'हम क्षणिक दुख में रोते हैं, स्थायी दुःख में हम खूब हँसते हैं।'

'प्रकाश जब हमारी सहन-शक्ति से अधिक हो जाता है, तो अंधकार बन जाता है।'

यश-लालसा से बढ़कर दूसरा नशा नहीं।'

'इच्छाएँ भी राक्षसों की भाँति अपने ही रक्त से उत्पन्न होती हैं।'

'राज्य सुख में बाधक नहीं होता, यदि विलास की ओर न लेजाय।'

'प्रेम सहृदयता ही का रसमय रूप है।'

'प्रेम के अभाव में सहृदयता ही सम्पत्ति के सुख का मूल हो जाती है।'

'मानवीय चरित्र इतना जटिल है, कि बुरे से बुरा आदमी देवता हो जाता है और अच्छे से अच्छा आदमी पशु।'

'अभ्यास बहुधा चेतना का स्थान ले लिया करता है।'

प्राठक और पुस्तकालयाध्यक्ष

लेखक—श्रीयुत यतीन्द्रनारायण

एक कामचलाऊ पाठक अपने लिए एक किताब चुनने आये हैं। उन्होंने बहुत बोझा पढ़ा है। उमर पूरी हो गई है। फुर्सत बहुत रहती है। दूसरे कामों में मन नहीं लगता, इसलिये समय बिताने के लिए पढ़ना ही उन्हें सबसे अच्छा धन्धा जान पड़ा। हजारों-लाखों किताबों में से उन्हें एक किताब चुननी है। ये कभी-ही-कभी पुस्तकालय पर कृपा करते हैं, इसलिये इस आलमारी से उस आलमारी तक घूम रहे हैं। न इन्हें यही मालूम है, कि उन्हें कौन-सी किताब चाहिये, न यही कि वह कहाँ मिलेगी। पुस्तकों की—अच्छे नामों की—इस भूल-भुलैया ने उन्हें पागल बना रखा है। वे एक के बाद दूसरी किताब उलटते जाते हैं। उन्हें एक नाम पसन्द आ गई। किताब आलमारी के बाहर निकाली गई, किन्तु दो तीन पन्ने उलटने के बाद ही उन्हें विश्वास हो गया कि पुस्तक बिल्कुल व्यर्थ है और इसे पढ़ना अपना समय बरबाद करना है। दूसरी निकली, पर उसकी भी वही गति हुई। ऊपर नीचे, कतार की-कतार, आलमारी की आलमारी, इसी तरह देखी जाने लगी।

ये कोई गुणज्ञ नहीं हैं। ये न तो किसी दुर्लभ या नई पुस्तकों की ही खोज में हैं। और न इन्हें किसी नाम हराम की ही खोज है। इनके रत्नों की खोज में इनको प्रसन्नता फूट नहीं निकलती। वह मगन हैं, और किसी ऐसी किताब की तलाश में, जिससे इनका मनोरञ्जन हो सके कि—जिससे वह इस वास्तविक संसार की कठिनाइयों को भुला सकें—अपने से अधिक आश्चर्य जनक लोगों से मिल खेल सकें। अन्त में भाग्य वशात् इन्हें सैकड़ों में एक मिल गया। एक अज्ञात लेखक की एक कहानी—हल-चल से भरी हुई, सहज, सुपठ। ये सन्तुष्ट हो गये।

इसके बाद जासूसी तथा ऐयारी उपन्यासों के पाठकों का बारी आती है। खयाली महलों में रहने वाले—कुर्सी पर बैठे हुए डाकुओं को पकड़ने वाले—प्रेम की कहानियों में मस्त। इनका ध्येय निश्चित है। इन्हें दूसरा जासूसी उपन्यास या दूसरी बहादुरी की कहानी चाहिए। इनके पैर खुदही इन्हें वहाँ ले आते हैं, जहाँ इनके लेखक की किताबें हैं। सनसनी के ये पक्षपाती अपने लेखक के पक्के भक्त हैं और जब तक उनकी सम्पूर्ण कृतियों को समाप्त नहीं कर लेते दूसरे में हाथ नहीं लगाते।

पुस्तकों की चुनाव में ये समय नहीं खोते, इन्हें हमेशा जल्दी रहती है और ये अपनी किताब आँख पर पट्टी बँधे रहने पर भी ढूँढ सकते हैं। किसी की भी प्रशंसा दूसरे से कम नहीं होती बशर्ते कि वह पहले न पढ़ी गई हो।

ये कल फिर दूसरी किताब के लिए आयँगे डाकुओं और उनके अचूक निशानेबाज जासूस की कहानियाँ रात में पढ़ने के लिए अच्छी होती हैं। पुस्तक प्रेमियों में ऐसे ही पाठक सबसे अधिक होते हैं। ये आलमारी-की आलमारी पढ़ डालते हैं। इनसे पुस्तकालयों के कमरे भरे रहते और किताब बाँटने वाले के पास भीड़-सी लगी रहती है। बशर्तें कि पूर्ति जारी रहे, उनकी भूख कम नहीं होती।

सबसे कम रहते हैं, विचार शील पाठक, साहित्य के सच्चे प्रेमी—जो भूत की तरह रात को दिन लाइब्रेरी पर कब्जा किये रहते हैं। वे एक जीवनी पर सारे दिन झुके रहेंगे। एक पुराने नाटक में सारे संसार को भूलकर गर्क हो जायँगे।

इसे जल्दी नहीं है। वह यही चाहता है कि पुस्तकालय और भी देर तक खुला रहे। अगर वहीं रहने के लिए अनुमति मिल जाय, तो फिर क्या कहना है। कभी कभी वह सपना देखने लगता है कि उसका अपना पुस्तकालय है जो उस विचार के लिए सामग्री देता है। ये ही सच्चे प्रेमी—गिनती में बहुत कम—हमारे पुस्तकालयों के प्राण हैं। इन्हीं के लिए लेखक रत्न उत्पन्न होते हैं—इन्हीं के लिए ग्रंथ रत्न लिखे जाते हैं। यह सदा पढ़ते हैं, और सदा नई पुस्तकों की खोज में रहते हैं, किन्तु इन्हें कभी सन्तोष नहीं होता।

सिंगापुर में बृटिश नौकेन्द्र

लेखक—श्रीयुत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

जनवरी के चतुर्थ सप्ताह में प्रशान्त सागर के बृटिश नौसेनाध्यक्षों का जो सम्मेलन सिंगापुर में हुआ था उसके सम्बन्ध में यद्यपि अधिकारियों की ओर से यह घोषणा की गई थी कि उसमें अन्य सम्मेलनों की ही तरह मामूली बातों पर विचार हुआ था कोई नये प्रश्न की चर्चा नहीं उठाई गई थी फिर भी विलायती पत्रों में छपे विवरण से स्पष्ट है कि उसमें प्रशांत सागर की स्थिति और सिंगापुर को प्रथम श्रेणी का नौकेन्द्र बनाने के सम्बन्ध में परस्पर गुप्त परामर्श किया गया था।

जापान की नीति से भय

सिंगापुर को बृटिश नौकेन्द्र बनाने की आवश्यकता की ओर पुनः ध्यान आकर्षित होने का मुख्य कारण प्रशांत सागर में जापान की नीति का भय ही है। जापान ने जिस तरह संसार की प्रेरक शक्ति की उपेक्षा कर मञ्चूरिया पर अधिकार जमा लिया और अपने संरक्षण में वहाँ नये राज्य की स्थापना कर दी उसे देखते हुए पश्चिम के उन साम्राज्यवादी राष्ट्रों के मन में चिन्ता उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही है जिनका राज्य प्रशांत सागर या पूर्वी एशिया के आसपास में फैला हुआ है। इनमें से बृटेन तथा अमेरिका ये दो मुख्य हैं। जापान की गतिविधि देखकर दोनों ही सावधान हो गये हैं और युद्ध की सम्भावना का खयाल कर दोनों ही आवश्यक तैयारी करने में जुट गये हैं।

जापान ने यह स्पष्ट ही कह दिया है कि सन् १९३६ में जो नौ सम्मेलन होने वाला है उसमें वह अपनी नौशक्ति बढ़ाने के सम्बन्ध में नई माँग पेश करना चाहता है। सन् १९१९ के वाशिंगटन सम्मेलन में उसके लिए जो अनुपात तय हुआ था, उसमें परिवर्तन कराकर अब वह अपना बेड़ा बृटेन तथा अमेरिका के टक्कर का ही बनाना चाहता है। इसीसे संयुक्तराज्य अमेरिका ने अभी से अपनी नौशक्ति बढ़ाने का प्रयत्न शुरू कर दिया है। नूतन कार्य क्रम के समाप्त हो जाने पर अमेरिका का बेड़ा संसार भर में सबसे शक्तिशाली बन जायगा।

इसी तरह बृटेन भी इस मामले में बेखबर नहीं है। वह भी अपने साम्राज्य के पूर्वी भू भागों की रक्षा के लिये उचित प्रबन्ध करने की फिक्र कर रहा है। आस्ट्रेलिया की सरकार ने अभी हाल में ही डारविन बन्दर में किले बन्दी करने तथा दो नये क्रूजर बनवाने का आदेश जारी किया है। इसी तरह यह भी खबर है कि हाँगकाँग में रक्षा के साधनों को और भी मजबूत बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसके सिवा सिंगापुर में इस समय जितने क्रूजर गोताखोर तथा विनाशक पोत हैं उनकी संख्या बढ़ाने और सिंगापुर की किलबन्दी का काम अधिक शीघ्रता के साथ चलाने पर जोर दिया जा रहा है। अनुमान किया जाता है कि विगत सिंगापुर सम्मेलन में इन्हीं सब बातों के सम्बन्ध में सलाह मशविरा किया गया था।

जापान सस्ता से सस्ता माल तैयार कर बृटेन के साथ जो भयंकर प्रतियोगिता कर रहा है, उसके कारण भी परस्पर मन मोटाव बढ़ते जाने की सम्भावना है। इस सम्बन्ध में दोनों देशों की ओर से समझौते का जो प्रयत्न अभी हाल में लन्दन में किया गया था वह सफल नहीं हो सका। सम्भव है एक दो बार पुनः प्रयत्न करने पर किसी तरह का समझौता हो भी जाय किन्तु इस समय दोनों की प्रतियोगिता जिस स्थिति को पहुँच चुकी है उसे देखते हुए यह आशा नहीं होती कि इनमें कोई स्थायी एवं संतोष जनक व्यापारिक सन्धि शीघ्र हो सकेगी। अतः जापान की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा ही नहीं उसकी व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता भी बृटेन के लिए भय का कारण बन रहा है और वह समय रहते ही प्रशान्त सागर में अपने हितों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हो रहा है।

सिंगापुर अड्डे की उपयुक्तता

प्रशान्त सागर का पश्चिमी द्वार होने तथा बृटेन और उसके दो उपनिवेशों—आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड के समुद्र मार्ग पर पड़ने के कारण बृटिश साम्राज्य के लिए सिंगापुर द्वीप का सामरिक महत्त्व स्पष्ट ही है। वाशिंगटन सम्मेलन के निर्णय के अनुसार जापान को अपने आसपास के पूर्वी समुद्रों पर पूर्णाधिपत्य प्राप्त हो गया था। जापान संयुक्तराज्य अमेरिका और बृटेन, इन तीनों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि हम दूर के स्थानों में नई किलेबन्दी नहीं करेंगे। इस प्रकार बृटेन ने शान्ति रक्षा के निमित्त यह आश्वासन दिया था कि पूरब में ११० अक्षांश के उस पार वह नये किले न बनवावेगा। यही कारण है कि हांगकांग में और अधिक किले बन्दी न करने के लिए वह बाध्य है।

हांगकांग को बृटिश नौसेना का केन्द्र बनाने में और भी कई बाधाएँ हैं। एक तो वह बिलकुल किनारा-सा पड़ता है दूसरे वहाँ भारत से शीघ्र सहायता नहीं पहुँच सकती। फिर वह चीन और जापान के इतने करीब पड़ता है कि सामरिक दृष्टि से वहाँ किलबन्दी करने से दोनों को असन्तोष होगा क्योंकि इसे वे अपने लिए खतरनाक समझेंगे।

सिंगापुर की स्थिति इससे कहीं अधिक अच्छी है। सामरिक दृष्टि से हांगकांग की अपेक्षा वह अधिक बीच में पड़ता है। जापान की राजधानी टोकियो से तीन हजार मील की दूरी पर होने के कारण उसे बृटिश नौकेन्द्र बनाने की चेष्टा करना जापान के लिए नया खतरा उत्पन्न करना न समझा जायगा। बृटेन की ओर से यदि यह दलील पेश की जाय कि अपने दूरवर्ती साम्राज्य की रक्षा के लिए वहाँ पर नौकेन्द्र बनाना आवश्यक है तो किसी की ओर से उसका विरोध किये जाने की सम्भावना नहीं है।

सिंगापुर को बृटिश जहाजी बेड़े का अड्डा बनाने में यदि किसी को विशेष आपत्ति हो सकती है तो वह हालैण्ड है क्योंकि उसके कई द्वीप जावा बोर्नियो आदि पास में ही स्थित हैं। जान पड़ता है कि इस समय बृटेन ने उसे भी अपनी ओर मिला लिया है। अभी उस दिन लन्दन की एक भोज सभा में हालैण्ड के प्रतिनिधि ने यह मत प्रकट किया था कि सिंगापुर में अंग्रेजों का नौकेन्द्र बनने से हमें कोई आशंका नहीं है। अंग्रेज अपना राज्य सुख भोगें और हम अपना। अनुरोध केवल इतना ही है कि भारत आनेवाली जावा की चीनी पर टैक्स न बढ़ाया जाय। कुछ लोगों का खयाल है कि भारत सरकार ने देशी चीनी पर कर लगाने का जो प्रस्ताव किया है उसका अप्रत्यक्ष उद्देश्य जावा की चीनी के लिये रास्ता खोल देना भी है। जो हो, इस समय सिंगापुर के सम्बन्ध में हालैण्ड की ओर से विरोध किये जाने की कोई सम्भावना नहीं मालूम होती।

योजना पुरानी है

सिंगापुर को नौकेन्द्र बनाने की योजना नई नहीं पुरानी ही है। महायुद्ध की समाप्ति के बाद जापान तथा अमेरिका को प्रथम श्रेणी के नौराष्ट्र बनते देख कर सन् १९२१ में ही बृटिश सरकार ने सिंगापुर को जहाजी बेड़े का मुख्य अड्डा बनाने का विचार किया गया था। मार्च १९२१ में बृटिश पार्लिमेंट में जो बजट पेश किया गया था उसमें इस कार्य के लिए कुछ रकम अलग निर्धारित कर दी गई थी किन्तु १९२४ में जब बृटेन में मजदूर सरकार की स्थापना हुई, तब उसने इस योजना को कार्य में परिणत करने का विचार छोड़ दिया। कारण यह था कि इससे 'उस परिस्थिति के उत्पन्न होने में बाधा पड़ती, जो अस्त्रों की सीमा बाँधने के लिये व्यापक समझौता करने के निमित्त आवश्यक है।'

वर्ष समाप्त होने के पहले ही अनुदार दल की सरकार पुनः पदारूढ़ हो गई जिससे नौकेन्द्र बनाने की यो जना के अनुसार फिर से काम शुरू कर दिया गया। तब से यह काम धीरे धीरे बराबर चलता रहा है। कभी मितव्ययी करण और कभी व्यय संकोच के बहाने बीच-बीच में इसमें ढिलाई अवश्य पड़ती रही है पर वह बिलकुल बन्द कभी नहीं किया गया। नवम्बर १९२९ में द्वितीय मजदूर सरकार ने यह निश्चय किया था कि जबतक पाँच शक्तियों का नौसम्मेलन नहीं हो जाता (अर्थात् सन् १९३६ तक) तब तक इस सम्बन्ध का काम जितना कम किया जा सके, उतना कम कर दिया जाय किन्तु आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड के विशेष आग्रह के कारण सरकार को यह मंजूर करना पड़ा कि पक्का घाट बनाने का जो ठेका सर जान जैक्सन की कम्पनी को दिया जा चुका है वह रद्द न किया जाय।

नौकेन्द्र तैयार करने में कम-से कम एक करोड़ पौंड (लग-भग १३॥ करोड़ रुपये) की रकम लग जायगी। इसका पच्चीसांश आस्ट्रेलिया आदि उपनिवेशों से प्राप्त किया गया है। वर्तमान स्थिति को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस योजना को कार्य में परिणत करने के लिये अब अधिक देर न की जायगी क्योंकि प्रशान्त सागर की समस्या दिन पर दिन अधिक होती जा रही है।

('ब्रिटिश न्यूज़ीमैन' तथा 'नई दुनिया' के आधार पर लिखित)

अमर कवि हाफ़िज़

श्री कामेश्वर शर्मा 'कमल'

'जिस मनुष्य का हृदय प्रेम की ज्योति से प्रोद्भासित है, वही अमर है। संसार के इतिहास में उसका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा, इसमें किंचित सन्देह नहीं'

—हाफ़िज़ ।

कविता—प्रकृत कविता मनुष्य हृदय के सूक्ष्मतम-प्रवृत्ति निचय को जाग्रत एवं सम्मोहित करती है।

फारस का काव्य साहित्य कसीदा, मसनवी, गजल आदि कई श्रेणियों में विभक्त है। कसीदा में साधारण तथा किसी व्यक्ति विशेष का गुण कीर्तन या निन्दा-वर्णन किया जाता है। मसनवी ऐतिहासिक विवरण, पौराणिक उपाख्यान एवं प्रेमी प्रेमिका की मर्मस्पर्शी कहानी के लिये विख्यात है। गजल में कवि अपने हृदय की आशा, निराशा एवं सुख दुख के प्रदर्शन का प्रयास करता है। और सत्य पूछिये तो वह गजल ही फारसी काव्य का प्राण है। इसके द्वारा ही वहाँ के कवियों ने अपनी दक्षता और काव्य महत्ता का परिचय दिया है।

फारसी कवियों में गजल लिखने वालों की संख्या अत्यधिक होते हुए भी सादी, खुसरो, हाफ़िज़, फोगानी और आमा प्रभृति के नाम विशेष उल्लेख्य हैं। इनके गजलों में जैसी नैसर्गिक भावनाएँ कूट कूट कर भरी हैं, वैसी अन्यत्र बहुत कम। इन सभों में भा हाफ़िज़ ही अधिक प्रतिष्ठित और मशहूर हैं। फारसी साहित्य के अन्यतम स्तम्भ मौलाना जामी ने हाफ़िज़ को 'स्वग की वीणा' और 'रहस्योद्घाटक' के नाम से याद किया है। सचमुच हाफ़िज़ ने प्रेम की जैसी सूक्ष्मतम व्याख्या की हे एवं अध्यात्मिक संसार के निगूढ़ तत्वों पर जैसी दिव्य दृष्टि डाली है, वह केवल फारसी साहित्य ही में नहीं, प्रत्युत विश्व साहित्य में भी विरल है। उसकी वर्णना शक्ति इतनी हृदय स्पर्शी और चामत्कारिणी है कि मालूम होता है जैसे कोई स्वर्गको अप्सरा हो कवि की कविता में साक्षात उतर आई हो। और इससे लाचार यह कहना पड़ता है कि अवगुंठनवती फारसी कविता कामिनी के चन्द्रछवि को संसार के सम्मुख रखने में हाफ़िज़ की तरह प्रतिभावान दूसरा कोई कवि नहीं है—नहीं है।

हाफ़िज़ का पूरा नाम था महम्मद समसुद्दीन। हाफ़िज़ उसका तखल्लुस (उपनाम) था। हाफ़िज़ के पिता अपने जन्म-स्थान इस्फ़हान छोड़कर शीराज—नामक नगर में आकर व्यवसाय द्वारा अपना जीवन यापन करते थे। इसी शहर में, हिज्री सन् ७१५ में, हाफ़िज़ का जन्म हुआ था।

शीराज शहर में काबू नामक कोइ एक संत कवि रहते थे। शुरू शुरू हाफ़िज़ को उन्हीं से कविता लिखने की प्रेरणा मिली। बाद में हाफ़िज़ ने उक्त साधु को ही अपना काव्य गुरु भो स्वीकार किया।

महात्मा शेखसादी के पूर्व के फारसी काव प्रेमिका के आनन्दोल्लास या निराश प्रणय की चर्चा में ही अपनी प्रतिभा का इति श्री समझते थे। शादी ने ही सब प्रथम पार्थिव और अपार्थिव प्रेम का समन्वय और आध्यात्मिक तत्व समूह का विश्लेषण पूर्ण कविता लिखकर अपने देशवासियों के हृदय तन्त्री को नूतन सुर से झंकृत करने की चेष्टा की। इसके बाद अति उच्च आध्यात्मिक काव्य रचना में शेख शादी की समकक्षता रखनेवाला यदि फारस में कोई दूसरा कवि पैदा हुआ तो वह हाफ़िज़ ही था। हाफिज की रचना का रसास्वादन कर एक बार समूचा फारस अपने को भूल गया था, और राज महाराज के यहाँ से उन्हे कितने ही अनुरोध पूर्ण निमन्त्रण पत्र प्राप्त हुए थे किन्तु कविता-संसार का राजा कवि अपने देश और स्वतन्त्रता की लिहाज से कभी कहीं अन्यत्र नहीं गया।

दक्षिण भारत के तत्कालीन सुलतान मुहम्मद बहमनी ने हाफ़िज़ के निकट नजराना के रूप में कुछ अशर्फियाँ भेजी थीं, और अपने राज्य में लाने के लिये वह विशेष अनुरोध शील भी हुआ था। सुल्तान के विशेष आग्रह और काव्य रसिकता से लाचार होकर कवि आने को सहमत भी हो गया था किन्तु दुर्भाग्यवश जहाज के प्रस्थान करने क साथ ही एक बड़ी भारी आँधी आगई, जिसके कारण हाफिज जहाज से उतर पड़े। और फिर भारत भ्रमण की इच्छा को तिलांजलि द दी।

बंगाल-सुल्तान गयासउद्दीन ने भी हाफ़िज़को लाने के लिए अपने विशेष विश्वास पात्र कर्मी इयाकउल्लाँ को शीराज नगर रवाना किया था किन्तु, हाफ़िज़ आने के लिए राजी नहीं हुए। सिर्फ एक सुन्दर कविता लिख भेजी।

ख्वाजा हाफ़िज़ ने शादी की थी, जिससे उन्हें दो पुत्र हुए थे। एक तो अल्पकाल में ही काल कवलित होगया था, दूसरा का नाम था शाहनुमान। यह भारत भी आया था और यहीं इसकी मृत्यु भी हुई थी। अभी भी बुरहानपुर के किले में उसकी कब्र विद्यमान है।

हिज्री सन् ७९१ में ७६ वर्ष की आयु में अमर कवि हाफ़िज़ ने इस संसार को त्याग कर महालोक के लिए प्रस्थान किया। मुसल्ला का बाग और सकनाबाद का प्रस्रवन उसे अत्यन्त प्रिय था। उसने लिखा था—

हे साकी एक बूँद भी मदिरा मुझे पिला दे। मुसल्ला की तरह सुन्दर वन और सकनाबाद की तरह पवित्र प्रस्रवन फिर स्वग में भी तुम्हें नहीं मिलेगा।

मुसल्ला का बाग और सकनाबाद का प्रस्रवन मुझ अन्यत्र तो क्या स्वग भी जाने में रोकता है।

मरने के बाद उसके भक्तों ने इसी उपवन में उसकी लाश को दफन भी किया। मुसल्ला बाग में जिस स्थान पर कवि का मजार है वह आज भी 'हाफिजिया' के नाम से विख्यात है। हिजरी सन् ८५५ में बाबरशाह के मन्त्री ने कवि की समाधि पर एक सुन्दर गुम्बज बनवा दिया। उसके बाद बाबर क मन्त्री करीमखाँ ने उसी वन में ब्रह्मचारियों के लिए एक आश्रम भी खोल दिया था और एक एक सुन्दर प्रस्तर खण्ड पर हाफिज की एक कविता खोद कर उसकी समाधि में लगा दी गई है।

लम्बी-लम्बी परछाइयाँ

अनुवादक—श्रीयुत आनन्दराव जोशी

गरमी के दिन थे। कॉलिज की छुट्टी होने के कारण हम दोनों—बड़े भैया और मैं—अपने घर रामपुर आये थे। यों तो वर्ष में केवल दो या तीन ही बार हमें घर आने का अवसर मिलता था, पर विशेषकर गरमी की छुट्टियों में ही हमें कुछ दीर्घ काल घर रहने का सौभाग्य प्राप्त होता था।

सदा की भाँति इस वर्ष की गरमी की छुट्टियों में हम लोग रामपुर आये थे। घर आने पर प्रतिदिन शाम को नदी के किनारे दूर तक टहलने का हमारा नित्यक्रम-सा हो गया था।

सन्ध्या का समय था। हम लोग जब चाय पीकर उठे, तो साढ़े पाँच बज चुके थे। चाय पीने के बाद भैया ने मलमल का कुर्ता पहना, हाथ में पतली-सी छड़ी ली, और 'नीरा! चलती हो घूमने? आज निखिल को साथ नहीं लेंगे, चलो, जल्दी करो'—कह कर वह दर्वाजे में मेरी राह देखते खड़े होगए। मैं भी बाहर जाने के लिए बहुत देर से उत्सुक थी। अम्माजी से पूछ कर फौरन उनके साथ हो ली।

हम दोनों अपने घर के सामने की कुछ ऊँची-सी जगह पार कर नदी के किनारे तेजी से चलने लगे। सन्ध्या के समय नदी के किनारे खूब लम्बी लम्बी दिखने वाली हमारी परछाईंयाँ प्रतिदिन हमारे साथ रहती थीं। उन लम्बी-लम्बी परछाईंयों को देखकर मुझे कितनी हँसी आती थी!

कुछ देर चलने पर हम लोग कब्रस्तान के निकट पहुँच गये। सामने एक इमली के वृक्ष के नीचे आज एक नई कब्र हमें दिखाई दी। उस कब्र पर एक शुभ्र वस्त्र ढका हुआ था और उसपर सुन्दर शुभ्र चमेली के फूल बिखरे हुए थे, किन्तु वह फूल कितने निर्जीव-से दीखते थे!

उन्हें देखकर मेरा कलेजा धकसे रह गया!

उस दिन प्रातःकाल निखिल का प्यार करते समय मैंने अम्माजी से स्नेह-वश कहा था—अम्मा! देखो, निखिल जब हँसता है, तब मानों उसके ओठों पर चमेली फूलती हुई नजर आती है। कब्र पर के उन फूलों को देखकर मुझे उन शब्दों का एकाएक स्मरण हो आया। वास्तव में कब्र पर के उन चमेली के फूलों और निखिल के ओठों पर के उन काल्पनिक फूलों में क्या सम्बन्ध था?

हठात् मैं रुक गई। मेरे नेत्र आँसुओं से भर आये। 'भैया चलो, घर लौट चलें'—कहकर मैं पीछे लौटने लगी थी।

भैया ने मेरी मनोदशा फौरन ताड़ ली। शायद यह जानकर, कि मुझे चलने को राजी करना असफल होगा, वह कुछ हँसकर मेरी दुखनदी की ओर इशारा करते हुए मेरे साथ लौट पड़े।

लौटते समय मैं भैया से कुछ भी न बोली। टहलने के समय हमारे साथ-साथ चलने वाली वे लम्बी-लम्बी परछाईंयाँ सब अँधेरे में विलीन हो गई थीं।

उपर्युक्त घटना के बाद लगभग एक वर्ष बीत गया। हमलोग उस समय नागपुर में थे। गरमी की छुट्टियों को सिर्फ पन्द्रह दिन बाक़ी थे। शीघ्र ही एक पखवारे में हम लोग घर जाकर तोतली बोली में निखिल का खूब लाड़ प्यार करेंगे, इसी विचार में मैं मग्न हो गई थी।

[illegible] हाँफते हुए मेरे कमरे में आये और मुझ से कहने लगे—नीरा! आज किसी तरह भी हम दोनों को रामपुर जाना होगा।

यह शब्द सुनकर मैं अवाक् रह गई, मानों भैया ने आकर मुझसे क्या कहा, यह मुझे जानही न पड़ा। भैया ने मेरे हाथ में एक पत्र रख दिया। उसमें पिताजी ने लिखा था—निखिल बहुत सख्त बीमार है, तुम दोनों जल्दी चले आओ।

उसी दिन दोपहर की गाड़ी से चलकर हम लोग शाम को रामपुर जा पहुँचे, किन्तु—किन्तु क्या कहूँ?—

हमारा घर शोक-सागर में डूबा हुआ था। हम दोनों को देखकर माताजी और पिताजी ने कम्पित स्वर में कहा—अपना निखिल हम सबको छोड़ कर चल बसा।

उस समय मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानों धरती फट गई है और मैं नीचे पाताल में जा रही हूँ। निखिल का शव जमीन पर पड़ा हुआ था। जिस ज्वर के कारण उसके प्राण-पखेरू उड़ गये थे, उसी ज्वर ने उसके ओठों पर बिखरे हुए चमेली के फूल भी अब निष्प्राण कर दिये थे।

निखिल की अर्थी के साथ मैं भी श्मशान तक गई। भैया ने अपनी हथेलियों पर निखिल का शव लिया था। और वह धीरे-धीरे श्मशान की ओर जा रहे थे। सन्ध्याके समय हमारी वे लम्बी-लम्बी परछाइयाँ उसी मन्द गति से हमारा साथ दे रही थीं।

कुछ समय के बाद रात्रि हो गई।

निखिल के शव पर आखिरी पत्थर रखा गया और उसे चिरकाल के लिए उस स्थान में निद्रित रखकर हम लोग दुखित मन से वहाँ से लौट पड़े।

लौटते समय वे लम्बी-लम्बी परछाइयाँ हमें पुनः नहीं दिखाई दीं। वे अन्धेरे में विलीन हो चुकी थीं। और हमारा निखिल भी काल के विशाल उदर में विलीन हो चुका था!

गरमी की छुट्टी होने के कारण हमें और दो मास तक रामपुर में रहना था। मेरे अनुरोध करने पर पिताजी ने निखिल की एक छोटी-सी समाधि बँधवा दी। रामपुर में रहते समय मैं प्रतिदिन भैया के साथ उसकी समाधि की ओर घूमने जाती हूँ। निखिल की बाल-लीलाओं का स्मरण करके मैं प्रतिदिन उसकी समाधि पर आँसुओं की धारा बहाती हूँ। उस समय मेरे मन में यह विचार आता है—क्या, मेरे इन आँसुओं के सिंचन से इस समाधि के अन्दर अखंड निद्रा लेने वाले मेरे निखिल के ओठों पर के वे चमेली के जीर्ण-शीर्ण फूल पुनः कभी विकसित होंगे? [illegible] आह! मैं कितनी नादान हूँ। मेरा यह कितनी भूल है। जीर्ण-शीर्ण फूल कभी पुनः फूलते हैं?—

—निखिल की समाधि की ओर जाते समय हमें अपनी वे लम्बी-लम्बी परछाइयाँ प्रतिदिन सन्ध्या को दिखाई देती हैं।—किन्तु वहाँ से लौटते समय उन्हें अँधेरे में विलीन होते हुए देखकर मेरा दिल एकदम दहल उठता है!

(श्रीयुत यशवन्त बालाजी शास्त्री की मराठी कहानी का अनुवाद।)

'विचित्र-जगत्

खून की वर्षा

आसमान से पानी और ओले तो बरसते ही हैं, पर आपने शायद यह न सुना होगा कि कभी कभी खून का मेह भी बरसता है।

कुछ ही साल हुए फ्रांस के क्लेरमौन्ट नामी स्थान में खून की बारिश हुई, सबने सोचा कि बस अब दुनिया का अन्त आ गया, पर जब वर्षा थोड़ी देर बाद बन्द हो गई और मुल्क में सब तरफ अमन-चैन रहा, तब लोगों को संतोष हुआ।

जून सन् १९२८ में चीन में भी खून का मेह बरसता था, जिसके कारण मंगोलिया के निवासी बहुत घबड़ा गए। जिन दिनों वहाँ यह खून का मेह बरसा था इन दिनों लोगों में दस्तों की बीमारी फैली हुई थी, इसलिये लोगों ने सोचा कि यह कोई दैवी प्रकोप है। यह खून का मेह वहाँ तीन दिन तक बरसता रहा।

यह तो हुई हिन्दुस्तान के बाहर की बात पर हिन्दुस्तान में भी बंगाल में एक बार खून का मेह बरसा था, जिसका हाल अखबार ग्वालियर के १२ शव्वाल सन् १२७० हिजरी (सन् १८५२ ई०) के पर्चे में इस प्रकार निकला था—

'अद्भुत खबर

'अखबार बंगाल प्रभाकर से जाहिर है कि एक मुकाम पर बँगले की तरफों में से मुहम्मद जमीर नामी एक शख्स के घर घंटे भर तक बराबर इस जोर से खून का मेह बरसा कि उसके घर के तमाम परनाले बहने लगे। इस बात के सुनते ही कोतवाल आया और इस हाल के देखने के बाद कोतवाल ने साहब मैजिस्ट्रेट बहादुर को इत्तला की कि वह भी फौरन तशरीफ लाए, यहाँ तक कि छोटे से बड़े तक तमाम शहर के आदमी इकट्ठे हो गये और सबने वह खून का मेह अच्छी तरह से देखा, लेकिन कुछ भेद इसका किसी पर न खुला।'

सन् १८९० में न्यूफौंडलैण्ड में खूनी रंग का मेह बरसा, आयर्लैण्ड में ४०० मील तक काले रंग का पानी १४ मई सन् १९४९ को बरसा।

स्मिथ सोनियन इंस्टिट्यूट की सन् १८७० की वार्षिक रिपोर्ट में लिखा है कि श्रीरंगपट्टम में हाथी के बराबर के ओले पड़े।

निशानेबाज मछली

जापान में एक फुटबाल की तरह गोल मछली होती है, जिसके एक लम्बी सीधी चोंच-सी होती है। जब कोई कीड़ा या मक्खी पानी की सतह के ऊपर निकले हुए घास या लकड़ी आदि पर आकर बैठती है, तो यह मछली पानी की सतह के बाहर अपनी चोंच निकाल कर पानी के छींटे अपने मुँह से गोली की तरह से इतने जोर से फेंकती है कि वह मक्खी या कीड़ा छटपटा कर पानी में गिर पड़ता है और इसके नाश्ते के काम आता है।

सबसे छोटी मोटर

इङ्गलैंड के ब्रेडफार्ड नामक इंजिनीयर ने एक ऐसी मोटर तैयार की है, जो केवल ९७ इंच ऊँची है और उस पर बैठकर बड़ी-से-बड़ी मोटर की तरह, उतनी ही तेजी से यात्रा की जा सकती है।

रेडियो लेखन-यंत्र

अभी तक रेडियो के द्वारा संदेश ही भेजे जाते थे, पर अब एलन ह्यूमा नामक एक आविष्कारक ने एक नवीन यंत्र का आविष्कार किया है, जिसके द्वारा लिखा हुआ मजमून ज्यों का-त्यों भेजा जा सकता है। यह यंत्र मजमून को जोर से बोलकर नहीं सुनाता, केवल लिखकर दिखाता है। इस यंत्र का नाम है—'केथोटोग्राफ'।

खिलौने के रूप में हवाई जहाज

हवाई जहाज के विद्यालय में विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिये एक ऐसा छोटा सा हवाई जहाज तैयार किया गया है, जो बिल्कुल खिलौने की तरह छोटा सा है।

संसार में सबसे बड़ी घड़ी

इङ्गलैण्ड के एक स्टेशन पर एक महान् काय घड़ी स्थापित की गई है। इस घड़ी में काँटे नहीं हैं। रबर के बने हेटरों पर तारीख वगैर बदलने के लिए चक्रों की सहायता से जिस प्रकार रबर के रिबन घुमाए जाते हैं, उसी प्रकार इसमें घण्टे और मिनिट अंकित हुए रिबन घूमते रहते और एक नियत किये हुए चौखटे में समय बताते रहते हैं। अंकों की ऊँचाई तीन फीट होती है, इसलिये बहुत दूर से समय देखा जा सकता है। यह घड़ी बिजली की सहायता से चलती है।

जोड़वाँ साइकिल

एक ऐसी साइकिल का ईजाद हुआ है, जो जोड़वाँ है, जिस पर दो आदमी अलग-अलग बैठ सकते हैं। अगर एक आदमी ही पैर चलावे, तो मजे में चल सकती है और दोनों आदमी चलाएँ, तो बहुत तेज जाता है।



भारती—सम्पादक, श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द और श्री हरिकृष्ण प्रेमी। प्रकाशक, साहित्य भवन लि०, लाहौर। वार्षिक मूल्य ६) एक अंक का ।-) पृष्ठ संख्या १८०।

अभी गत फरवरी मास से ही यह पत्रिका लाहौर से प्रकाशित होने लगी है। पंजाब में हिन्दी का बढ़ता हुआ प्रचार इस उच्च कोटि की पत्रिका के प्रकाशन का आधार है। हर्ष की बात है, कि इस पत्रिका को जहाँ प्रकाशन का बहुत ही सुन्दर सुयोग प्राप्त हुआ है, वहाँ सम्पादन का भी आदर्श अवसर प्राप्त हो गया है। इसके सम्पादक द्वय, हिन्दी संसार में काफी नाम पैदा कर चुके हैं। नवयुवक होने के कारण उनमें काफी उत्साह और ओज भी है—इससे पूर्ण आशा है कि पत्रिका दिनो दिन उन्नति करेगी। पहला और दूसरा अंक देखने से प्रकट होता है कि पहले अंक से दूसरे अंक को और भी अच्छा बनाने का प्रयत्न किया गया है। लेख, कहानी, कविता आदि सभी कुछ ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक हैं। सम्पादकीय विचार भी परिमार्जित और सामयिक हैं। ऐसी उच्च श्रेणी की पत्रिका निकालने के लिए हम सम्पादकों और प्रकाशकों को बधाई देते और उसके उत्तरोत्तर फलने फूलने के लिए मंगल कामना प्रकट करते हैं।

जयाजी प्रताप—(विशेषांक) ग्वालियर से प्रकाशित होने वाले इस पत्र ने अभी कुछ महीनों पहले 'वर्षगाँठ अंक' के नाम से एक विशेषांक निकला था, अब यह दूसरा है, और ग्वालियर की महाराज्य कुमार के विवाहोपलक्ष्य में निकाला गया है। बड़ी सुन्दर सामग्री से परिपूर्ण है। ठाकुर सूर्यकुमारजी वर्मा, प्रो० त्रिवेदीप्रसादजी वाजपेयी एम० ए०, तथा भास्कर रामचन्द्रजी भालेराव आदि के लेख पठनीय हैं। राजकुमारी के द्वारा अंकित कई चित्र भी इसमें छपे हैं।

आशा—सम्पादक, श्री शिरढोनकर बी० ए०, प्रकाशक आशा कार्यालय, लश्कर, ग्वालियर। वार्षिक मूल्य ३)

ग्वालियर की महाराजकुमारी के विवाह के समय ही इस पत्र का जन्म हुआ है। साप्ताहिक है। हिन्दी का अहोभाग्य है कि ग्वालियर स्टेट से इस दूसरे और अच्छे साप्ताहिक पत्र का जन्म हुआ। पहले अंक में अच्छे लक्षण मालूम होते हैं, अगर इसी प्रकार इसका सम्पादन होता गया, तो यह एक अच्छा पत्र हो जायगा। प्रथमांक में भाषा दोष अधिक हैं। इस ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

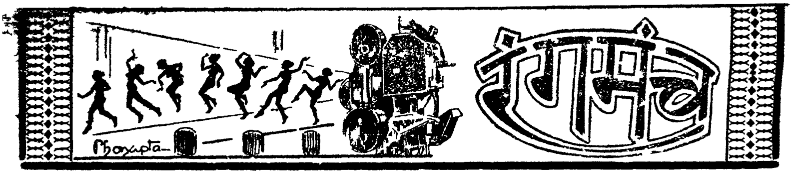
चित्रपट (होलिकांक) सम्पादक और प्रकाशक श्री ऋषभचरण जैन। वार्षिक मूल्य ४) एक अंक का एक आना। इस अंक के आठ आने।

इस समय हिन्दी में सिनेमा सम्बन्धी जितने पत्र हैं, उनमें सबसे अच्छा सुसम्पादित पत्र चित्रपट ही है। होली के अवसर पर इसने 'होलिकांक' प्रकाशित किया है, और प्रसन्नता की बात है कि होली का कीचड़ इसमें नहीं है। लेख, कविता, कहानी, नाटक आदि सभी कुछ शिष्ट, सामग्री इसमें हैं।

बर्म्मन पञ्चांग—कलकत्ते की प्रसिद्ध फर्म डाक्टर (डॉ० एस० के० बर्म्मन) लि० ने संवत् १९९१ का पंचांग भी प्रकाशित करा दिया है। इस वर्ष का यह पंचांग भी कई चित्रों से सुसज्जित और कई ज्ञातव्य बातों से परिपूर्ण है। 'जागरण' के ग्राहक मुफ्त में मँगा सकते हैं।

उद्यम—(खास शक्कर-अंक) सम्पादक और प्रकाशक विश्वनाथ नारायण वाडेगाँवकर, बी० एस सी०, कामर्शियल प्रेस, धंतोली, नागपुर (सी० पी०)। वार्षिक मूल्य ५) इस अंक का मूल्य १)

उद्यम मराठी भाषा का उद्योग-व्यवसाय सम्बन्धी बहुत ही सुन्दर मासिक-पत्र है। इस वर्ष उसने शक्कर के व्यवसाय पर ही यह विशेषांक प्रकाशित किया है। इस अंक के पढ़ने पर शक्कर के व्यवसाय के सम्बन्ध में अच्छा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। गन्ने की खेती से लेकर शक्कर बनाने की क्रिया और व्यवसाय सम्बन्धी पूरी जानकारी इसमें है। भारत-भर की शक्कर की मिलों की सूची भी दे दी गई है। बड़ा उपयोगी अंक है। मराठी जानने वाले जो पाठक इस विषय से रुचि रखते हों, इस अंक को अवश्य पढ़ें। सम्पादक इस प्रयत्न के लिये प्रशंसा के पात्र हैं।



लाले-यमन

लेखक—श्रीयुत सत्यप्रसाद

(गताक से आगे)

नादिर (दस्तूर)—अभी बालक ही है, परन्तु है होनहार। अभिनय में कमी है, परन्तु कोशिश से जल्दी दूर हो जायगी। गाता अच्छा है, पर गला मीठा नहीं। यदि कुछ दिन स्वर-साधना पर अधिक ज़ोर दे, तो मिठास आ सकती है

पीरमर्द (मा० मुहम्मद)—गा तो खूब लेते हैं। अभिनय कुछ अच्छा नहीं।

वज़ीर (सायानी)—अभिनय बिलकुल खराब। आप को अभी मालूम ही नहीं, कि अभिनय क्या है? माहरू से प्रेम की भीख माँगते वक्त आपके अभिनय पर हँसी आती थी।

फौरीज (नजीर —) अभिनय अच्छा था। अपनी भूमिका को काफ़ी अच्छी तौर से निभाया। जिन आदि का अभिनय गनीमत था।

परीज़ाद (मिस पद्मा)—अभिनय में कोई विशेषता नहीं, मामूली, प्रेम-दृश्य कुछ अच्छे रहे—बाकी और कुछ नहीं।

लालारुख (मिस कमला)—अभिनय की कोशिश तो की है—कुछ सफलता भी हाथ लगी। गाना भी गा लेती है। चित्रपट पर हमें आप का मुँह इतना मोहक नहीं मालूम हुआ, जितना हम आवश्यक समझते थे।

मलका और माहरू (मोहिनी और मयूरी)—दोनों ने अभिनय में कुछ सफलता पाई। मलका का पहला और अन्तिम दृश्य सुन्दर रहा। माहरू न सरलता को दिखाने मे अच्छी योग्यता दिखाई।

गायन और नृत्य (श्रीडेविड और यु० आशिक)—गानो की भरमार हमारे चित्रपटो की विशेषता है। गानो मे समय और स्थान का कोई भी ध्यान नहीं दिया जाता। हँसना, रोना, उपदेश सभी बातें गाने में होती हैं। 'पूरण भक्त' ने जो आदर्श हमारे आगे रखा है, उसकी ओर हमारी फिल्म कम्पनियों का ध्यान ही नहीं है?

इस फिल्म में गाने उपयुक्त स्थान पर नहीं थे। उपदेश भी गाने में थे? हमे तो बहुत बुरा मालूम हुआ। अस्वाभाविकता भरी हुई थी। मा० दस्तूर की चीजें अच्छी लगीं, बाकी और मामूली थीं।

परन्तु चोरी गानों म भी की गई।

'सुबह से मैंने यह बैठे बैठे,
बनाई माला है जान मेरी।
पिन्हाऊँ तेरे गले में आजा,
सोहाई माला है जान मेरी।

यह गाना भी द्विजेन्द्र के 'शाहजहाँ' म पियारा न गाया है। मालूम नहीं इसमें कुछ अपना भी है, या सब उड़ाऊ ही है?

नृत्य पहले दृश्य का तो अच्छा था, परन्तु मिस पद्मा का नृत्य अच्छा नहीं मालूम हुआ। पहला नृत्य सुन्दर था, परन्तु उसमें जो मोहकता थी वह थी एक स्त्री के खुले बदन की? क्या यह ठीक था?

संवाद (आशिक-शेफ़ता)—मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि कुछ संवाद तो 'सिंहल विजय' स लिये गये हैं—बाकी में कुछ ध्यान नहीं।

निर्देशन (श्री वाडिया) इतना पढ़ने के बाद पाठक स्वय ही सोच सकते हैं कि निर्देशन कैसा था। निर्देशक ही फिल्म का प्राण है। निर्देशक की आत्मा लेखक की आत्मा के साथ चित्रपट पर कला रूप म प्रतिबिम्बित होती है। निर्देशक एक जादूगर है और अभिनेता गण उसके इशारे पर चलन वाली मूर्तियाँ। यह ठीक है कि अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों का अपना एक व्यक्तित्व होता है, जिसकी झलक हमें कई बार दिखाई देती है, परन्तु वह व्यक्तित्व निर्देशक की कला के साथ इतना घुल जाता है कि हम उसे अलग नहीं देखत।

मुझे तो निर्देशन में कोई भी विशेषता मालूम नहीं हुई।

फोटोग्राफी(वसंत-वाडिया)—अच्छी थी, जैसी हमारी फिल्मों म होती है।

ध्वनि आलेखन (अकाली पोतदार)—कुछ बुरा न था।

सेटिंग्स (पाटनकर)—मुझे तो पसन्द नहीं आये, कुछ भी अच्छे न थे। पीरमर्द की गुफा बहुत ही भद्दी थी। यदि गुफा का निर्माण नहीं हो सकता था, तो उसके स्थान पर झोपड़ी बन सकती थी। वह इतनी बुरी तो न लगती।

प्रकाशन—जो पुस्तिकाएँ फिल्म-सम्बन्धी छपी हुई थीं, उनकी हिन्दी देखकर मैं दंग रह गया। एक पृष्ठ में पचास से कम गलतियाँ न होंगी। गाने तो बिलकुल गलत छपे हुए थे। प्रकाशन-मैनेजर की योग्यता की बलिहारी!

चिट्ठी-पत्री

साहित्य विद्यालय, लखनऊ

हिन्दी-साहित्य-परिषद् की ओर से श्रीकान्यकुब्ज कॉलेज में साहित्य-विद्यालय की स्थापना हुई है। जिसमें रायबहादुर प० शुकदेव बिहारीजी मिश्र, प्रा० दीनदयाल गुप्त, प्रो० सी० एल० मालवीय, प० टीकारामजी शास्त्री व साहित्याचार्य प० हुलासदत्तजी शर्मा एम० ए० व मन्त्री हिन्दी-साहित्य-परिषद् अवैतनिक रूप से शिक्षा देते हैं। इस में सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा की पढ़ाई होती हैं। आशा है, हिन्दी प्रेमी विद्यार्थीगण इस विद्यालय से पूर्ण लाभ उठावेंगे।

मुख्यत लखनऊ निवासियों को चाहिए इस शुभवसर को हाथ से न जाने दें।

भगीरथप्रसाद दीक्षित 'साहित्यरत्न'
मन्त्री-साहित्य परिषद्, लखनऊ।

हिन्दी साहित्य परिषद, लखनऊ का वार्षिकोत्सव

सर्व हिन्दी प्रेमियों की सेवा में सूचित है कि लखनऊ हिन्दी साहित्य परिषद् का वार्षिक अधिवेशन आगामी ७ व ८ अप्रैल सन् १९३४ ई० शनिवार व रविवार को बड़े समारोहपूर्वक श्रीकान्यकुब्ज कॉलेज में मनाया जायगा, जिसमें कवि सम्मेलन, वाद विवाद व्याख्यान एवं निबन्ध-पाठ इत्यादि उत्सव होंगे। इस अवसर पर हिन्दी के धुरन्धर साहित्यिक विद्वान् महानुभाव भाग लेंगे। प्रान्तीय तथा अन्य प्रान्तीय प्रसिद्ध प्रसिद्ध-साहित्य सेवियों से भी पधारने की प्रार्थना की गई है। लखनऊ में यह साहित्यिक समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया जायगा।

यह अवध प्रान्त का प्रधान स्थान एवं संयुक्त प्रान्त की राजधानी होने के कारण यहाँ पर हिन्दी को अभ्युत्थान देने की अत्यन्त आवश्यकता है।

भगीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न'
मन्त्री, हिन्दी साहित्य परिषद् लखनऊ।

श्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण सभा चौबेपुर (कानपुर)

स्थानीय तथा निकटवर्ती सभा कान्यकुब्ज ब्राह्मण समाज में विद्या, ज्ञान का विस्तार तथा उनका आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिक एवं धार्मिक उन्नति करने के लिए उक्त सभा की स्थापना की गई है। सभा का उद्देश्य सदाचार, सुमति, संगठन सहयोग एकता का परस्पर प्रचार करना तथा प्रचलित कुरीतियों का समयानुसार संशोधन कर सुरीतियों का प्रचार एवं सामाजिक बुराइयों को हटाने का प्रयत्न करना तथा आपस में भाई चारे और प्रेम, नम्रता, न्याय व शिष्टता का व्यवहार करना निश्चित हुआ है। सभा के पदाधिकारी इस भाँति चुने गए—(१) सभापति, प० बद्रीप्रसाद पाँडेय (२) उपसभापति, प० मन्नूलाल (उर्फ लाल) त्रिवेदी और प० सोहनलाल पाँडेय (३) मन्त्री, प्रभुनारायण त्रिपाठी 'सुशील' (४) उपमन्त्री, प० रमानारायण पाँडेय (स्थानापन्न प० शम्भुनारायण त्रिपाठी) और प० ब्रजनारायण द्विवेदी तथा (५) कोषाध्यक्ष, पं० गंगागोपाल त्रिपाठी।

—'सुशील', मंत्री

हरदा में महावीर जयन्ती महोत्सव

गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी स्थानीय दिगम्बर जैन नवयुवक मण्डल की ओर से 'वीरजयन्ती' महोत्सव बड़े ही समारोह के साथ मनाया जाना निश्चय किया है। बाहर से अनेक विद्वानों को आमंत्रित करने की व्यवस्था हो रही है।

प्रोग्राम

ता० २८—३—३४ को वीरजयन्ती-महोत्सव।

ता० २९—३—३४ को कवि सम्मेलन, नवयुवक मण्डलाश्रित सार्वजनिक वर्द्धमान-वाचनालय का द्विवार्षिक अधिवेशन तथा दिगम्बर जैन पाठशाला का अष्टम् अधिवेशनादि कार्य होंगे।

ता० ३०—३—३४ को भगवान् महावीर स्वामी का समवशरण तथा जैनियों का माननीय सम्मेद शिखर तीर्थ आदि की हुबहू रचना के रूप में प्रदर्शनी जैनाजैन समाज को दिखलाई जावेगी।

आगत जनता में प्रत्येक को अहिंसा, भगवान महावीर का दिव्य सन्देश, धर्म परिवर्तन तथा जैन समाज दर्पण नाम के ट्रैक्ट फ्री वितरण किये जायँगे।

उत्तम गद्य-पद्य लेख कविताओं पर रजत-पदक एवं प्रशंसा पत्र प्रदान किये जायँगे। कविताएँ तथा लेख वगैर भगवान् महावीर स्वामी के विषय में ही होना चाहिए।

विषय

गद्य लेख—	पद्य लेख—
(१) वीर प्रभु का विश्वप्रेम	(१) अहिंसा
	(२) परिवर्तन

समस्यायें—

(१) होता चित्त क्षुब्ध और बहे दृग धारा है।
(२) वीर धम-राव एक बार फिर से चमकादे।

नोट—लेख कविताएँ ता० २६—३—३४ तक भेजदेना चाहिए।

विद्यारत्न प० कमलकुमार जैन, शास्त्री
सेक्रेटरी वीरजयन्ती उत्सव, हरदा, सी० पी०

गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी के वार्षिकोत्सव का निमन्त्रण

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी का ३२ वाँ वार्षिकोत्सव ३०, ३१ मार्च तथा १ और २ अप्रैल सन् १९३४ तदनुसार १७, १८, १९ २० चैत्र सम्वत् १९९१ शुक्र, शनि, रविवार तथा सोमवार को बड़े समारोह के साथ मनाया जायगा।

मैं बड़े प्रेम और आग्रह के साथ आप को इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित करता हूँ।

गुरुकुल काँगड़ी भारतवर्ष का सबसे प्रधान राष्ट्रिय विश्वविद्यालय है। यहाँ सम्पूर्ण वैदिक और प्राचीन संस्कृत साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, फ़िलासफ़ी रसायन, पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र आदि विविध अर्वाचीन विषयों की उच्चतम शिक्षा राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती है। गुरुकुल में उच्च मानसिक शिक्षा के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य के नियमों और आश्रम प्रणाली द्वारा विद्यार्थियों के चरित्र सुधार के लिये विशेषरूप से उद्योग किया जाता है। गुरुकुल तथा उससे सम्बद्ध शाखाओं में एक हज़ार से ऊपर विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुल से अबतक जितने भी विद्यार्थी शिक्षा समाप्त कर स्नातक हुए हैं, उनका बहुत बड़ा भाग देश, जाति, धर्म और साहित्य की सेवा में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। इस अनुपम शिक्षणालय की सफलता को देख कर बड़े बड़े शिक्षा विज्ञ आश्चर्य चकित रह गये हैं और भारत के सरकारी व राष्ट्रिय शिक्षणालय गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली के आदर्शों और सिद्धान्तों को अपना रहे हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपने परिवार बन्धु बान्धवों तथा मित्रों के साथ पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ावेंगे।

आपका दर्शनाभिलाषी,

चमूपति, मुख्याधिष्ठाता। गुरुकुल काँगड़ी

गुरुकुल काँगड़ी के ३२ वें वार्षिकोत्सव का समय-विभाग

३० मार्च सन् १९३४ तदनुसार १७ चैत्र शुक्रवार

प्रातः—७ से ८ तक हवन तथा भजन। ८ से ११ तक स्वदेशी प्रदर्शिनी का उद्घाटन।

मध्याह्न—१ से १॥ तक भजन। १॥ से ३ तक सरस्वती सम्मेलन इस में 'देववाणी सर्वासां भाषाणां जननी अस्ति न वा' विषय पर वादविवाद होगा, जिसमें गुरुकुल, ऋषिकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा अन्य संस्कृत शिक्षालयों के छात्र भाग लेंगे। जो छात्र प्रथम तथा द्वितीय रहेंगे, उन्हें पारितोषिक भी दिया जायगा।

सभापति—श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालंकार। ३ से ४॥ तक संस्कृत में श्लोकों की, छोटे ब्रह्मचारियों की अन्त्याक्षरी। ४॥ से ५॥ तक व्याख्यान श्री प० लोकनाथजी तर्कवाचस्पति। विषय—'चमधन पर काला सांप।' ५॥ से ६ तक व्याख्यान श्री डा० श्यामस्वरूपजी सत्यव्रत। विषय—'शिक्षा'

रात्रि—७ से ७॥ तक भजन। ७॥ से ८॥ तक व्याख्यान श्री चाँदकरण जी शारदा एम ए, एल एल बी। विषय—'मृत्युञ्जय अर्धशताब्दी के पश्चात् हमारा कर्तव्य'। ८॥ से ९॥ तक व्याख्यान श्री प० धर्मेन्द्रनाथजी तर्क शिरोमणि, एम ए। विषय—'धन का अत्याचार।' ९॥ से १०॥ व्याख्यान श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज विषय—'सोच लो!'

ता० ३१ मार्च सन् १९३४ तदनुसार १८ चैत्र शनिवार

प्रातः—७ से ७॥ तक हवन। ७॥ से ८॥ तक व्याख्यान श्री स्वामी केवलानन्दजी महाराज। ८॥ से १० तक अन्तर्विश्वविद्यालय हिन्दी

वाद्विवाद-सम्मेलन। विषय—'क्या व्यावसायिक क्रान्ति मानवीय समाज के कल्याण में सहायक सिद्ध हुई है या नहीं।'

१० से १०। तक भजन। १०। से ११। तक व्याख्यान श्री प० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति।

मध्यान्ह—१ से १॥ तक भजन। १॥ से ३ तक सर्वधर्म सम्मेलन। 'मेरा धर्म और विज्ञान' विषय पर विविध धर्मों के प्रतिनिधि अपना अपना निबन्ध पढ़ेंगे।

सभापति—श्री प० गंगाप्रसादजी उपाध्याय। ३। से ४। तक व्याख्यान श्री प्रो० सत्यव्रतजी सिद्धान्तालंकार ४। से ६। तक अछूतोद्धार सम्मेलन।

सभापति—प० नेकीरामजी शर्मा

रात्रि—७ से ७॥ भजन। ७॥ से ८॥ तक व्याख्यान श्री प्रो० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति। ८॥ से ९॥ तक व्याख्यान श्री प० देव शर्माजी 'अभय' आचार्य गुरुकुल कांगड़ी। ९॥ से ११ तक गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के खेल।

ता० १ अप्रैल सन् १९३४ तदनुसार १९ चैत्र रविवार

प्रातः—६॥ से ७॥ तक सन्ध्या। ७॥ से १०॥ तक दीक्षान्तसंस्कार। दीक्षान्त अभिभाषण, श्री डाक्टर कालीदासजी नाग, एम० ए० डी० लिट० कलकत्ता के सुप्रसिद्ध विद्वान् देंगे।

मध्यान्ह—१ से १॥ तक भजन। १॥ से २॥ तक व्याख्यान श्री प० बुद्धदेवजी विद्यालंकार। २॥ से ४ तक व्याख्यान तथा अपील श्री आचार्य रामदेवजी। ४ से ६ तक धन संग्रह।

रात्रि—७ से ७॥ तक भजन। ७॥ से ८॥ तक व्याख्यान श्री महात्मा नारायण स्वामीजी महाराज, विषय—'आदर्श शिक्षा"। ८॥ से ९॥ तक व्याख्यान श्रीयुत म० कृष्णजी बी० ए०। ९॥ से १०। तक व्याख्यान श्री प्रो० ताराचन्दजी गाजरा एम० ए०। १०। से ११ तक श्री डा० दयालजी का मैजिक लैन्टर्न द्वारा स्वास्थ्य-सम्बन्धी व्याख्यान।

ता० २ अप्रैल तदनुसार २० चैत्र सोमवार

प्रातः—७ से ८ तक वेदारम्भ संस्कार। ८ से ८॥ तक भजन। ८॥ से १० तक आर्यसम्मेलन।

सभापति—श्री आचार्य रामदेवजी। १० से १०॥ तक भजन। १०॥ से ११॥ तक व्याख्यान श्री प० जगन्नाथजी निरुक्तरत्न।

मध्यान्ह—१॥ से २ तक भजन। २ से ३॥ तक वर्णव्यवस्था-सम्मेलन।

सभापति—श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज। ३॥ से ३॥। तक भजन। ३॥। से ४॥। तक व्याख्यान श्री प० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति कुलपति श्रद्धानन्द दल, विषय—'आर्यसमाज में क्रान्ति की आवश्यकता'। ४॥। से ५॥। तक व्याख्यान श्री प० गंगाप्रसादजी उपाध्याय।

रात्रि—८ से ११ तक संगीत सम्मेलन

द्वितीय पण्डाल

३१ मार्च सन् १९३४ तदनुसार १८ चैत्र शनीवार

मध्यान्ह—२ से ३॥ तक श्रद्धानन्द दल सम्मेलन। सभापति—श्री आचार्य देव शर्माजी 'अभय' विद्यालंकार।

१ अप्रैल १९३४ तदनुसार १९ चैत्र रविवार

रात्रि—९ से ११ तक कविता-सम्मेलन। सभापति—श्रीयुत पं० राम नरेशजी त्रिपाठी, प्रयाग।



हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का २१ वाँ अधिवेशन अब की बार 'उत्थान और पतन के रंगमंच' दिल्ली शहर में हो रहा है और उस रंगमंच पर अपना-अपना नाट्य कौशल दिखलाने के लिए, हिन्दुस्तान के सभी शहरों से हिन्दी साहित्य के कुशल नट दिल्ली पहुँचने की तैयारी कर रहे या कर चुके होंगे। देखें इस बार किस-किसका रंग जमता है!

● ● ●

काशी से इस बार डबल गौड़ तशरीफ ले जा रहे हैं—एक बा० रामदासजी गौड़ और दूसरे कृष्णदेवप्रसादजी। बा० रामदासजी तो अपनी भूत लीला का फिल्म दिखलाएँगे, पर, सुना है, श्री कृष्णदेवप्रसादजी एक ऐसा अनोखा ताण्डव नृत्य दिखलाएँगे कि लोग मुग्ध होकर बलैयाँ लेने लग जावेंगे! अपने राम की ओर से आगामी बधाई!

● ● ●

श्री छैलबिहारी दीक्षित कंटक भी अजीब आदमी हैं, लाहौर से निर्वासित हुए, तो कानपुर आ धमके! वहाँ उन्होंने भी नौकरशाही की मेहरबानी की थी, और कानपुर में रहकर छायावाद की छीछालेदर कर रहे हैं। अपने राम चेताये देते हैं, कि कंटकजी सावधान रहें! वर्ना छायावादी दुनिया ने छेक दिया, तो फिर कहीं ठौर न मिलेगा।

● ● ●

बड़ी व्यवस्थापक सभा में मौलवी शफी दाऊदी के प्रश्न का उत्तर देते हुए सर जार्ज शुस्टर ने बिहार भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के विषय में लोगों का भ्रम दूर कर दिया है। आपने कहा है कि लोगों में यह धारणा उत्पन्न न होने देना चाहिए, कि यदि प्राकृतिक विपत्ति से किसी की सम्पत्ति नष्ट हो जाय, तो सार्वजनिक कोष से उसे हर्जाना मिल जायगा अथवा उसकी पूर्ति कर दी जायगी। अहा! कितनी सहानुभूतिपूर्ण बोली बात कही शुस्टर साहब ने!

● ● ●

श्रीमान् कवि सम्राट् उपाध्यायजी भी अपने दलबल सहित दिल्ली पधार रहे हैं! देखें, आप रंगमंच पर किस रूप में आते हैं। अफ़सोस! अपने राम तशरीफ नहीं ले जा रहे हैं। इसलिये अखबारों के सचित्र समाचारों से ही सन्तोष करना होगा।

● ● ●

सा० स० के साहित्य अंग के सभापति श्री माखनलालजी चतुर्वेदी चुन गये हैं, खूब! हमारा ख़याल है कि अगर ठाकुर सिंह श्री सुपकशक्ति-रायजी भंडारी भी इस समय दिल्ली पहुँच जाँय और अपने कोष की सहायता का प्रस्ताव उपस्थित करें, तो ख़ासी सफलता मिल जायगी!

● ● ●

इतिहास के सभापति श्री प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार चुन गये हैं। आपने विदेश जाकर इतिहास की सामग्री से अपने पेट के ख़जाने को बढ़ाया है, वह सब आप दिल्ली के रंगमंच पर ख़ाली कर देंगे। देखें उस पर कौन कौन लूट झपट करते हैं।

— विचित्रानन्द।

हमारे वर्तमान राजनीतिज्ञों की राय में कूड़ा बालना पाप नहीं। उन्होंने दयाकर के इसे पाक कर लिया है तथा कूड़ा जाति में स्थान भी दे दिया है। अब वह रोती है कराहती है, पर उन्हें क्या, वे तो इसे हमेशा के लिए अपनाने की फिकर में हैं!

● ● ●

इधर हमारे तिलकधारी पण्डितों की बन पड़ी है, क्यों न बने! अब हमारे लोंदूलाल उठ कुत्तों की नाईं उन्हें चाट रहे हैं।

आज कहते हैं भूकम्प होगा, कल कहते हैं महामारी फैलेगी फिर कहते हैं विश्वव्यापी युद्ध होगा। मुक्ति का मार्ग भी आकाश की भाँति निर्मल तथा दूध की भाँति स्वच्छ बतलाते हैं। केवल पचदेव की पूजा और स्वर्णदान, बस बेड़ा पार! दुनिया बच जायगी। फिर क्या है? पाँचों घी में—

● ● ●

हमारे बादशाह को घड़ियाँ रखने का शौक है फ्रान्स के बादशाह पर फैशन का भूत सवार है तथा हिटलर को सुधार का शौक है! तो हमारे देशों

नरेश भी क्या पीछे हैं ? राजा भोज नहीं, तो भोजुआ ही सही ! अभी कुछ दिन हुए अलवर नरेश ने भी बटन लगाने के लिए इंगलैंड से दरजी बुलवाया था। उनके यहाँ बाजलम नहीं, तो राजमहल तो है।

● ● ●

कट्टरपन्थी भी सरपट लगा रहे हैं। क्यों न लगाएँ ? ऐसा सीधा और सुगम रास्ता और कहाँ मिलने वाला है ? योप ने बाबा महासमर का कारण युवतियों का शारीरिक शक्ति-हास बताया। हिटलर ने कुछ प्रतिशत ही स्त्रियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया। फिर हमारे कट्टरपन्थी क्यों पीछे रहें ? झट डंके की चोट आवाज दे दी यत्र स्त्रिया राज्य, तत्र विनाश' की शिक्षा बन्द करो, उन्हें अधिकार मत दो। हिटलर ने यदि शिक्षकों को काम देने का प्रयत्न किया

सनातनी बनो तो—

(घनाक्षरी कवित्त)

नाम चाहते हो जो सनातनी-समाज में तो—
भारत के धर्म-पक्ष मण्डल में आइए।
अपनी ऊँचाई की बजानिए बड़ाई पहले,
'भग्न' ढीले ढाले ढोंग-ढोल को बजाइए।
उठने न दीजिए अछूतों को, सुधारकों की—
राह रोक, रूढ़ियों के रोड़े अटकाइए।
धर्म को धरा में धींगा धींगी से धँसाने वाले,
गाँधीजी पै गालियों की गोलियाँ चलाइए।

जगन्नाथ शर्मा, 'भग्न'

... क्यों बैठे रहें ?

● ● ●

महाराज ... का मन्दिर ... के अधिकार में देने के लिए कुछ लोग बातें कर रहे हैं, पर बम्बई के अखिल भारतीय सर्वोदय स्वराज्य संघ के वार्षिक अधिवेशन में उसको न देने के लिए प्रस्ताव पास किया गया है। महाराज से प्रस्ताव रखते हुए बड़े जोरदार शब्दों में कहा है कि जिस दिन मन्दिर राजा के अधिकार में जायगा, उसी दिन राजा साहब अछूतों को मन्दिर में घुसेड़ देंगे; क्योंकि राजा साहब अछूतों के पक्ष में हैं। प्रस्ताव में बतलाया गया है कि उन्होंने दरबार में गुप्त रूप से अछूतोद्धार के पर्चे छपवाकर बटवाये थे। भारतवर्ष महामण्डल को इस के लिए सर्वोदय स्वराज्य संघ बम्बई के पास धन्यवाद का तार भेजना चाहिए।

सस्ता-साहित्य-मंडल की

सभी पुस्तकें, उचित कमीशन पर हमसे मँगाइये।

सस्ता-साहित्य-मंडल की नई पुस्तकें—

भारत के स्त्री-रत्न (दो भाग)	१॥)	जिन्दा लाश	१॥)
क्या करें „ „	१॥=)	भाई के पत्र	१॥)
जीवन-साहित्य „ „	१=)	स्त्री-समस्या	१॥)
आत्म-कथा „ „	१॥)	विजय	१=)
स्त्री और पुरुष	॥)	राष्ट्रवाणी	॥=)
कर्मयोग	॥=)	इंगलैंड में महात्माजी	।)
स्वाधीनता के सिद्धान्त	॥)	रोटी का सवाल	।)
ब्रह्मचर्य-विज्ञान	॥।=)		
सामाजिक कुरीतियाँ	॥)	मातृवाणी	॥)
अनीति-परीक्षा	॥)	दैवी सम्पद	॥=)

सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी।

दूसरी बार कुत्सित जीवन छप गया

लेखक—महात्मा गान्धी

यह पुस्तक अपने विषय में अद्वितीय है इसका प्रमाण यही है कि यह संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष महात्मा गान्धी द्वारा लिखी गई है। मानव जाति को नैतिक-जीवन देनेवाली यह पुस्तक बड़ी ही सुन्दर है। इसमें उन्होंने यह भली-भाँति साबित किया है कि आत्म-संयम ही जीवन का धर्म है। नर और नारी के बीच का स्वाभाविक संबंध क्या है, जो भाई, बहन, माँ और बेटे तथा बाप बेटी में होता है। पति और पत्नी की काम का वर्णन ... है। ... उद्देश्य दम्पति के हृदयों के विकारों को दूर कर उन्हें ईश्वर के निकट ... जाता है। सचित्र पुस्तक का मूल्य ॥)

पता—'हंस' कार्यालय, सरस्वती-प्रेस, काशी।

---

१००) महीना कमाने की विधि

रंग बनाने की पुस्तक

मँगाइये और रंग बनाकर १००) महीना कमाइये।

रंग की पुस्तक—छिपाई के कारखानों के काम की चीजें। इस पुस्तक में बहुत ही आसान तरीके ऊन, सूत, रेशम इत्यादि रँगने और धोने के दिये गये हैं। जो आदमी रँगने का काम करना या सीखना चाहता है, उसके पास इस पुस्तक का होना निहायत जरूरी है। रंग का मसाला हर्रे, बहेड़े, मज्जक सिर्स इत्यादि के तेजाबों से कैसे बनता है, यह सब इसमें बताया गया है। अंगरेजी पुस्तक का दाम १६) रु०, हिन्दी पुस्तक का दाम १) रु०।

पता—सरस्वती-प्रेस, काशी।

अस्पृश्यता—निवारण पर महात्मा गांधी के लेखों-व्याख्यानों-वक्तव्यों का सुसम्पादित अप-टु-डेट संग्रह

हमारा-कलंक

सस्ता-साहित्य-मण्डल अजमेर का नवीन प्रकाशन

छप गया है—जल्दी मँगाइए

२०० पृष्ठों की पुस्तक का दाम केवल ॥=)

यह अस्पृश्यता निवारण पर महात्माजी के लेखों का संग्रह है। परिशिष्ट में उनके उपवास की सारी 'कहानी' दी गई है। उनके सारे वक्तव्य भी दिये गये हैं यह महात्माजी के विचारों की एक रेफरेन्स बुक है और भी नई पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं सूचीपत्र मँगाइए।

लिखिए—मैनेजर, सरस्वती-प्रेस, काशी

कर्मवीर

राष्ट्र-भाषा का प्राण-प्रेरक और प्राण-पूरक निर्भीक

राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र

सम्पादक—पं० माखनलाल चतुर्वेदी,

'कर्मवीर' क्यों पढ़ना चाहिए—

१, इसलिए कि—राजमहल इससे भय खाते हैं। झोपड़ियाँ अपनाती हैं। यह गरीब बकिंपंथियों की अपनी चीज है।

२. इसलिए कि—राजनीति में इसका निश्चित आदर्श, साहित्य में निश्चित उद्देश और समाज में जागृति करने की निश्चित योजना है।

३. इसलिए कि—यह देश के अन्नदाता किसानों की 'करुण वाणी' नहीं 'आवाज' है, 'बेबसी' नहीं 'बल', 'कराह' नहीं 'हुँकार' है।

४. इसलिए कि—यह रियासतों की नरक में सड़ाई जाने वाली जनता की भुजा है। जो अन्याय के खिलाफ़ महलों को हिलाती और सिंहासनों को कम्पित करती है।

५. इसलिए कि—यह उन कवियों की बाँसुरी है, जिन्हें 'शब्द' नहीं 'जमाना' गाना है। 'अक्षर' नहीं 'हृदय' गाना है।

६ इसलिए कि—स्वराज्य इसका ध्येय है और बलि इसका पथ है।

७ इसलिए कि—इसमें आप षड्यन्त्र की चिनगारियों का बयान पायेंगे। तरुण भावों की जवानी पायेंगे। वजनदार लेखकों की लेखनी के चमत्कार पायेंगे। साहित्यकों का सम्मान पायेंगे, और देश की जागृत बहनों का गुणगान पायेंगे।

८. इसलिए कि—यह एकही पत्र आपकी सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक जिज्ञासाओं को पूरी करेगा।

९. इसलिए कि—रेलवे के कारखानों के और खेतों के मजदूर 'कर्मवीर' में अपने हित की बात चाव से पढ़ते हैं।

१०. इसलिए कि—इसमें मध्य प्रदेश के राष्ट्रीय जीवन की तसवीर है, मध्य भारत के आन्दोलनों का दिग्दर्शन, राजपूताने की बुलन्द आवाज़ में बिहार और युक्त प्रान्त की हलचलों की चर्चा और सारे भारत की राष्ट्रीय आवाज़ का चुना हुआ बयान है

१२ करोड़ आबादी वाले भाग से अधिक हिन्दी संसार में इसके विज्ञापनों की पहुँच है।

वार्षिक मूल्य केवल ३॥)

पता—मैनेजर 'कर्मवीर' कार्यालय, खंडवा सी० पी०

सहकारी सम्पादक—श्री प्रवासीलालवर्मा, मालवीय-द्वारा सरस्वती-प्रेस, काशी में मुद्रित और प्रकाशित।

जागरण

THE JAGARAN — सम्पादक—प्रेमचन्द — Illustrated Weekly

वर्ष २ | काशी, वि० वैशाख कृष्ण ३ सोमवार, सं० १९९१ वि० ; ता० २ अप्रैल सन् १९३४ ई० | अंक ३२

श्री० पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय



२३वें हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के कार्यवाहक सभापति आपही बनाये गये थे।

हे योगी !

मूक-तपस्वी, लीन योग में मुँदे नयन विभ्रान्त,
रुष्ट जगत से तुम क्या, हो क्यों शान्त, निपट निर्भ्रान्त ?
हेर रहे सीपी में सागर जग से सब भरपूर,
हास विलास, मधुर-चितवन के जादू से हो दूर।
सूनेपन से मि भेवस् की लगी हुई है आस,
आश्वासन दे जाता नित पतझड़ का पवन उदास।
जीर्ण कुटीर-योग-निद्रा की ले-ले हलकी थपकी—
भस्म-राशि में सुला रहे हो कब से मौलिक-झपकी ?
वीतराग, माया की परियाँ चुपके सहमीं रोज—
तुम्हे दे जाती हैं हिय में अहं-भाव की खोज।
सैकत-कण में मूर्च्छित तेरे तप का विकल-वसंत,
निर्गुण, नीरस तुम्हे दीखता वैभव-वलित दिगंत।
शुष्क-वृन्त, रज-कण, बुद्बुद तेरे ही हैं तप-रूप,
तिमिर-तमिस्रा-निहित तुम्हे जँचता है जगत-स्वरूप।
यहाँ और क्या ? केवल, यौवन, झूठा-प्यार-दुलार,
इन्हीं युगल-तत्वों से निर्मित मिथ्या यह संसार।
मुक्ति कहाँ इस ओर ? स्वप्न का मञ्जुल विरल वितान—
तना, यहाँ कब से होता है दुख का कर्कश-गान !
तारों से पूछो, वे बतला देंगे, रे अनजान—
किधर ज्योति है ? कहाँ लक्ष्य ? जीवन का वह निर्वाण ?

— श्री सीताराम 'प्रभास' —

जागरण

मि० वैशाख कृष्ण ३ सोमवार, सं० १९९० वि०

हिन्दू-समाज के वीभत्स दृश्य (३)

मन्दिरों पर एक दृष्टि

हिन्दू समाज के परम पवित्र तथा माननीय मन्दिरों की ओर दृष्टिपात करने से हृदय काँप उठता है। वहाँ की दशा दयनीय ही नहीं, चिंताजनक भी है। जहाँ भक्ति की, ज्ञान की, आत्म साधन की तथा तपस्या की निर्मल धारा बहाकर लोगों के जीवन को सुंदर और सुखकर बनाना चाहिए, वहाँ आज दुराचार, पापाचार, भ्रष्टता तथा दुष्कृत्यों का केन्द्र देखकर आत्मा रो उठता है। उन्हें देखकर एक ज़ोरदार प्रश्न उठता है, कि क्या यही मन्दिर हैं? क्या यहीं भगवान् का निवास हैं?

यह बात अब किसी से छिपी नहीं है कि इन मन्दिरों की आड़ में आज बड़े बड़े लज्जाजनक कृत्य हो रहे हैं। पुजारियों का, महन्तों का और धर्म गुरुओं का जीवन भयानक विलासिता से भरा हुआ है। वे मंदिरों की आड़ में अधम्य से-अधम्य कर्म करते नहीं शर्माते। ईश्वर को गाना सुना कर खुश रखने के लिए उन्हें वेश्याएँ चाहिए। इस बहाने वे अपनी राक्षसी कामना का पूर्ण करते और अपने जीवन को विलास वासना और पतन के गहरे गड्ढे में डाल देते हैं। तिस पर भी, हिन्दू समाज के लिए वे पूज्य हैं, माननीय हैं, और देवता तुल्य हैं, क्योंकि वे पुजारी हैं, महन्त हैं और धर्मगुरु हैं! प्रतिदिन अनेक भोली-भाली तथा धर्मभीरु युवतियाँ पुण्य कमाने के लिए मन्दिरों में पहुँचती हैं और वे उन ईश्वर के प्रतिनिधियों के द्वारा या उनके संकेत मात्र से गायब कर दी जाती हैं और उनकी काम वासना का शिकार बन जाती हैं। हिन्दू समाज को यह सब कुछ मालूम हैं। प्रतिदिन उसकी आँखों के सामने ऐसे दृश्य आते रहते हैं लेकिन वह आँखों पर पट्टी बाँधकर, ज़बान पर ताला लगाकर चुप है, क्योंकि आखिर, वे लोग धर्म के ठेकेदार हैं!

जहाँ इन पुजारियों तथा धर्मगुरुओं का जीवन सीधा, सादा, पवित्र और त्याग तथा तपस्या से पूर्ण रहना चाहिए, वहाँ आज वे इन सब बातों के विपरीत 'सद्गुणों' के भण्डार बने हुए हैं। उनके विषय में क्या कहा जाय। दिखलाने के लिए तो वे बड़े संयमी हैं, त्यागी हैं और तप के तथा भक्ति के साक्षात् अवतार हैं लेकिन अच्छी तरह देखने पर ही उनका असली रूप प्रकट होता है। उनमें ढोंग, छल और कपट कूट कूट कर भरा हुआ है। यों कहना चाहिए कि उनका चरित्र अद्भुत है। मांस, मछली, शराब, गाँजा, भङ्ग, अफ़ीम आदि चीज़ों के बिना उनका काम नहीं चल सकता।

अब देश के प्रति उनके व्यवहार पर भी दृष्टिपात कीजिए। वे खद्दर के कपड़ों को स्वप्न में भी देखना पाप समझते हैं। देशी मिलों का बढ़िया कपड़ा उनके कोमल शरीर को चुभता है, गड़ता है और इससे उनका शरीर छिल जाता है। उनके लिए तो खास मैंचेस्टर का बना हुआ, महीन से महीन मलमल चाहिए। देशी और विदेशी का प्रश्न उनके लिए एक बेवकूफ़ी का प्रश्न है। उनको देशी से क्या मतलब, उन्हें देश से क्या सरोकार? वे तो देश के धर्मगुरु हैं महन्त हैं, पुजारी हैं! इसलिए, वे जन समाज के लिए पूज्य हैं। उनकी बातों में, उनके कार्यों में किसी को हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार उनके आनन्द में किसीको विघ्न डालने का, बाधा डालने का क्या हक!

और जब देश में कोई अच्छी बात होती है, कुप्रथाओं के विरुद्ध आवाज़ उठाई जाती है, प्रचार किया जाता है, पुरानी और लज्जा-जनक रूढ़ियों को मिटा डालने का प्रयत्न किया जाता है, या कोई देश हितकारी नियम या बिल पास होता है, तो ये धर्म के ठेकेदार, समय को न देखते हुए अपने नीच स्वार्थ साधन के लिए ऐसे कार्य के विरुद्ध अपनी पूरी ताकत लगा देते हैं। जनता द्वारा दिये हुए रुपयों को जनता के ही विरोधी कार्यों में व्यय करते हैं। रुपयों को पानी की तरह बहाकर वे ऐसे कार्यों के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं और देश हित विरोधी प्रचार करने का प्रयत्न करते हैं। जनता का रुपया जनता के ही विरोध में खर्च करते उन्हें ज़रा भी संकोच नहीं होता। संसार के लिए इनका यह कार्य अनोखा है और कृतघ्नता का एक ज्वलंत उदाहरण है, पर वे अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी देश को सत्पथ पर आने से नहीं रोक सकते क्योंकि उनमे कोई बल नहीं है। शारीरिक, मानसिक, आत्मिक तथा नैतिक बल के भीषण अभाव ही ने उन्हे पतन के गहरे गर्त में गिरा दिया है। उनकी बुद्धि को अज्ञान के काले बादलों ने घेर रखा है। इसी कारण वे अपने अहित की बात हित का और हित की बात अहित की समझ रहे हैं। भला, गिरा हुआ और निःशक्त मनुष्य समय की शक्तिशाली लहर को कैसे रोक सकता है?

मन्दिरों के यह विधातागण नये युग की आवाज़ को नहीं सुन सकते। नये ज़माने की ज़ोरदार लहर के विरुद्ध खड़े होने में ही उन्हें सुख मिलता है, पर यह निश्चित है कि यदि उन्होंने यही क्रम रखा, यदि इनका यही हाल रहा, तो वह दिन भी दूर नहीं है, जब कि नवीन युग की प्रचण्ड शक्ति उनके अस्तित्व को ही मिटा देगी। यदि उन्हें इस बात पर ज़रा भी सन्देह हो, तो वे अन्य देशों की ओर दृष्टिपात करें। वे यह ध्यान से देखें कि नये ज़माने की लहर से दूर रहकर रूस के पुजारियों, महन्तों और धर्मगुरुओं ने क्या फल पाया। यह बात पुरानी नहीं है, कल की है। यह बात उन्हे एक भावी संकट की सूचना दे रही है और उन्हें सावधान कर रही है। तिस पर भी यदि वे नहीं चेते, तो जो उनके भाग्य में लिखा है, सो तो होगा ही, किन्तु फिर उनके लिए कोई अवसर न रहेगा। सबसे अच्छा तो यह हो, कि वे अपने को सुधारें, नवीन युग के अनुकूल बनावें। इसीमें उनका हित है कल्याण है। समय की लहर बहुत बलवान होती है। वह बड़ी से बड़ी शक्ति द्वारा भी नहीं रोकी जा सकती। देश की दशा को भलीभाँति देखते हुए, धर्म के आडम्बरों, उसकी रूढ़ियों और राक्षसी नियमों से मुक्त करके ही वे अपना, अपने धर्म का, अपने समाज तथा अपने देश का सबसे बड़ा हित कर सकेंगे और जनता के हृदयों में ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकेंगे।

---

२३ वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पर एक दृष्टि पात।

उत्थान पतन की राजधानी दिल्ली नगर का बहुज्ञापित सम्मेलन, प्रतिवर्ष के समान सानंद समाप्त हो गया। एक आतुर और पैनी दृष्टिवाला दर्शक सम्मेलन के चार दिवसों की कार्यवाही को देख कर सहसा यह कहना चाहता है, कि 'निराकार परमात्मा जब साकार होते हैं' तब शायद संसार के ईश्वरार्थियों को ऐसी ही निराशा हुआ करती है। सम्मेलन पर सामान्य दृष्टि से इस टिप्पणी में इतना लिख देना ठीक होगा। आगे की पंक्तियाँ उसकी प्रकाशित कार्यवाही की चरितार्थता पर लिखी जाएँगी क्योंकि सम्मेलन के लिए हिन्दी संसार के हृदय में पहले ही से बहुतेरी धारणायें थीं, जो यों तो हास्यास्पद मालूम होती थीं परन्तु आज जब पाटौदी हाउस प्रतिनिधियों की हाहा हाहा से शून्य और धीरे धीरे रिक्त हो रहा है, तब बिखेरी जाती प्रदर्शिनी की पुस्तकों से उनकी वे आशंकाएँ बोलती सी प्रतीत हो रही हैं। जो कुछ भी हो, सम्मेलन हो गया, बहुतेरे प्रस्ताव स्वीकृत कर लिये गये; परिषदें हो गईं—यानी, दिल्ली चमक गये। इतना तो अवश्य है, कि इस वर्ष सम्मेलन की आत्मा की भूख गायक नायिकाओं के रूप की भूख न थी, उसकी क्षुधा में कड़कड़ा कर उठते हुए राष्ट्र को जाग्रत करती हुई आशा थी। सम्मेलन का प्रत्येक प्रतिनिधि, जो इस युग में रहता है, चाहता था कि जल्दी से जल्दी हिन्दी सारे भारत की भाषा बन जाय। सम्मेलन ने चार दिन तक गला सुखा कर, फूल बरसा कर और मंगलगान गा गा कर हमें यह सुनाने की चेष्टा की, कि शीघ्र से शीघ्र हिन्दी उन्नति करले। प्रत्येक भारतवासी के हृदय, मन मस्तिष्क की अभिव्यंजना का प्रभावशाली माध्यम बन जाय। अस्तु, सम्मेलन के प्रति दिवस के विस्तृत वर्णन समाचार पत्रों में प्रकाशित हो रहे हैं परन्तु 'जागरण' के पाठकों को आँखों देखा इतिवृत्त—और वह भी शान्ति से लिखा हुआ—अधिक रुचेगा।

प्रथम दिवस

थके हुए प्रतिनिधियों और गण्य मान्य गणों के साथ सूचनानुसार जुलूस निकला। जैसा कि प्रधान मंत्री श्री पत्तूलालजी का कथन था। जुलूस का उद्देश्य नगर का मुख्य

मुख्य सड़कों पर घूम घूम कर प्रद र्शिनी के उद्घाटन समारोह को समारोहपूर्ण बनाना था, कविवर अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध' ने प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। उद्घाटन के पूर्व उनके भाषण ने जहाँ मनोरंजन किया, वहाँ एक तरह से लोगों के मन में 'अधिक उपदेश' की भावनाएँ भी पैदा करदीं। प्रदर्शिनी न तो ठाकर का बुक स्टाल ही था न हिन्दी पुस्तक एजेन्सी का दुकान ही। वह एक छोटा मोटा संग्रहालय सा था, जिसने अन्ध हिन्दी संसार की आँखें उतना न खोलीं, जितना उसने पुस्तक प्रकाशकों का विज्ञापन और लेखकों के मन का गौरव पूर्ण प्रशंसा का जागरण किया। भोजनान्तर विषय निर्वाचनी की बैठक हुई। इस बैठक में वह जोश दिखता था, जो भावनो पराभव किसी को बनाने में प्रकट होता है। पुस्तकों के निर्माण और उनकी स्वीकृत के बाद मुख्य सम्मेलन का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। केसरिये रंग से रंगी हुई साड़ियाँ पहने हुए बालिकाओं का मंगल गान उन स्वयं सेवकों का न मोह सका हो, जो पास देखने से उतनाही उत्साह दिखा रहे थे, जितना उत्साह एक साजन्ट वारण्ट दिखाने में प्रकट करता है। पंडाल में लगी हुई विगत सभापतियों की तसवीरें, मोट मोटे अक्षरों में लिखे हुए आदर्श वाक्य और प्रतिनिधियों, विशिष्ट व्यक्तियों के कुर्तों कोटों पर लगे हुए लाल आसमानी फूल सब कोई मानों मुखसा हो उठे एक निराशावादी दर्शक को उपस्थित देखकर यह भले ही प्रतीत हो, कि मुख्य अधिवेशन प्रान्तीय अधिवेशनों से भी गया बीता दीखता था, परन्तु सभापति, स्वागताध्यक्ष आदि के सन्देशवाहक भाषण यह बता रहे थे कि सम्मेलन भारत की एक लम्बी और युगातीत इच्छा को प्रकट कर रहा है। श्रीमान् बड़ौदा नरेश का एक लिपि के प्रयोग का निर्देश और श्रीमान् घनश्यामदास बिड़ला का हिन्दी को व्यापक बनाने का आदेश, परीक्षा विभाग की भी वृद्धि के साथ-साथ सम्मेलन की काया वृद्धि के समाचार ध्यान देने योग्य थे। शाम को भी दोपहर की भाँति विषय निर्वाचिनी की बैठक हुई। रातके ग्यारह बजे तक प्रस्तावों का निर्माण होता और उनकी स्वीकृति होती रही।

दूसरा दिन

प्रातःकाल डेढ़ घंटा देरकर साहित्य परिषद् का अधिवेशन हुआ। सभापति श्री माखनलालजी चतुर्वेदी के भाषण ने साहित्य और राष्ट्रीय जीवन के अन्योन्य उत्तरदायित्व को बताते हुए साहित्य की वास्तविक शक्ति को सामने रक्खा। उनके भाषण की कुछ पंक्तियाँ वर्तमान साहित्य के लिए प्रेरणा का काम करती हैं। इसके बाद प्रफुल्लचन्द्रजी, नवीनजी आदि के भाषण हुए। इन भाषणों ने साहित्य को जनता के जीवन के साथ साथ चलता हुआ बताया और हिन्दी साहित्य में व्यापकता, पूर्ण राष्ट्रीयता को लाने के लिए आवश्यकता बताई। मध्याह्न को विषय निर्वाचनी की बैठक हुई और चार बजे से मुख्य सम्मेलन का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। श्रीयुत जयचन्द्र विद्यालंकार को विधि पूर्वक मंगलाप्रसाद पारितोषक देने की घोषणा की गई। रात्रि को इतिहास परिषद् की बैठक हुई, जिसमें महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, श्रीयुत जयचन्द्र विद्यालंकार आदि के भाषण हुए।

तीसरा दिन

प्रातःकाल श्रीयुत गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के सभापतित्व में दर्शन परिषद् की बैठक हुई। आपके लम्बे सारगर्भित भाषण के बाद अन्य विद्वानों ने भी भाषण दिये। दर्शन-परिषद् ने एक स्वर से दर्शन शास्त्र के अध्ययन की सिफारिश करते हुए यह निश्चित किया कि साहित्य सम्मेलन दर्शन शास्त्र पर पुस्तकें लिखवाये और प्रकाशित करे। मध्याह्न को विषय निर्वाचिनी की बैठक हुई, और शाम को चार बजे मुख्य अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। विद्यार्थियों को उपाधि पत्र दिये गये, प्रस्ताव पास किये गये, जिनमें भाषा के व्याकरण की त्रुटियों पर विवेचना करते हुए टंडनजी ने भाषा सुधार पर जोर दिया। रात्रि को विज्ञान परिषद् की बैठक हुई, जिसमें सभापति श्री रामदासजी गौड़ के सुन्दर, मार्मिक भाषण के उपरान्त डा० गोरखप्रसादजी, श्रीयुत दीनानाथ चुलैट आदि विद्वानों के 'वेदकाल निर्णय' आदि विषयों पर भाषण हुए।

चौथा दिन

प्रातःकाल गल्प सम्मेलन और सम्पादक सम्मेलन की बैठक हुई। सम्पादक सम्मेलन में कई एक महत्व पूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए। गल्प सम्मेलन में श्रीमती कमला बाई कीबे ने सभा नेत्री की हैसियत से बहुत ही मनोरंजक अनुभव-पूर्ण भाषण दिया। प्रेमचन्द्रजी, श्रीनाथसिंह, जैनेन्द्रकुमार, माखनलाल चतुर्वेदी आदि के भाषण भी हुए। गल्प सम्मेलन में श्रीमती राजकुमारीदेवी की 'सदेश' नामक गल्प के अतिरिक्त ऐसा मालूम होता था, कि साहित्यिक पहलवानों को खासी अखाड़ा मिल गया हो! मध्याह्न को सर्वदानुसार विषय निर्वाचिनी की बैठक हुई। शाम को मुख्य अधिवेशन में प्रस्तावों की स्वीकृति के साथ-साथ शुकदेवबिहारी मिश्र, चतुरसेन शास्त्री आदि के शास्त्रीय और सजीव भाषण हुए। पाँच लाख के फंड की योजना का महत्व पूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, और इन्दौर का आमंत्रण भी स्वीकार किया गया। रात्रि को श्री महादेवीजी वर्मा, एम० ए० के सभा-नेतृत्व में कवि सम्मेलन हुआ। कवि सम्मेलन में अनेक कवि थे और प्रायः तीन चार हजार के जनता उपस्थित थी। श्रीयुत बच्चन, लाडलीप्रसाद सेठी (इन्दौर) रामकुमारी चौहान आदि की कविताएँ सुन्दर थीं। बाकी जो कवि आये जनता के द्वारा अच्छी तरह 'हूट' किये गये! रात के डेढ़ बजे तक कवि सम्मेलन होता रहा।

इस प्रकार सम्मेलन सानंद समाप्त हुआ। स्वागत कारिणी के प्रबंध कर्ताओं का प्रबन्ध प्रशंसायुक्त था। सम्मेलन की तैयारियाँ भी ठीक थीं। यह बात दूसरी है कि पास ही के रॉयल सिनेमा में अधिक भीड़ रहती थी। हिन्दी प्रेमी-यात्री दल की उपस्थिति से दिल्ली-सम्मेलन के आडियन्स की महत्ता घटती नहीं, वरन् बहुत बढ़ जाती है।

२३ वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के

सभापति श्रीमान् महाराजा बड़ौदा का भाषण

राष्ट्रभाषा और एक लिपि की आवश्यकता

यह बात बिना किसी शंका के कही जा सकती है कि भारतवर्ष को एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है। एक राष्ट्रभाषा का अभाव हमारी राष्ट्रीय कमजोरी का एक मुख्य कारण है, परन्तु इस बात की आवश्यकता का अनुभव करने वाले दो विभिन्न साधन निर्धारित करते हैं। एक दल जिसमें दक्षिण के लोगों का प्रमुख स्थान है, अंगरेजी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहता है। इस दल के अनुयाइयों का कहना है कि पश्चिम से सम्पर्क रखने एवं राजनीति कानून तथा उच्चशिक्षा के लिए भारतीय शिक्षित समुदाय को अंगरेजी का ज्ञान रखना आवश्यक है। इस प्रकार प्रत्येक भारतीय को तीन भाषाओं का जानकार होना अनिवार्य हो जाता है। एक घरेलू भाषा, दूसरी अंगरेजी जिसके द्वारा वह सर्वसाधारण एवं विभिन्न प्रान्तों से व्यवहार कर सकता है और तीसरी यदि हिन्दू है तो संस्कृत और यदि मुसल्मान है तो अरबी अथवा फारसी। अपने वंश परम्परागत साहित्य-भंडार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे उपयुक्त तीसरी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है।

इस प्रकार अंग्रेजी राष्ट्रभाषा होने पर प्रति दिन के व्यवहार के लिए बंगाली अथवा मराठी के ज्ञान के अतिरिक्त पूर्वी और पश्चिमी संस्कृति के ज्ञान के लिए संस्कृत एवं फारसी के अध्ययन के साथ साथ राष्ट्रभाषा अंग्रेजी पर अधिकार होना आवश्यक हो जाता है। मुझे इस रूप में भारत की सांस्कृतिक उन्नति के चिह्न नहीं दिखलाई पड़ते।

दूसरे दल, उत्तर भारत के लोगों का कहना है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से संस्कृत से सम्बन्ध रखने वाली भाषा ही भारतीय लोगों के लिए सुगम हो सकती है। इस प्रकार हमें संस्कृत से मिलती जुलती भाषा हिन्दी तथा मुसल्मानों के लिए भी फारसी से मिलती जुलती हिन्दी, जिसे वे उर्दू रूप में व्यवहृत करते हैं प्राप्त होता है। उर्दू वास्तव में अरबी और फारसी शब्द मिली हुई हिन्दी ही है। इसलिए यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा मान ली जाय, तो भारत का ऊपरी दो तिहाई भाग अपनी राष्ट्रभाषा, साहित्य एवं दैनिक व्यवहार के लिए एक मिलती जुलती भाषा निर्धारित कर लेगा। तीन मिलती जुलती भाषाओं का ज्ञान तीन असम्बद्ध भाषाओं के ज्ञान से सरल है। भूमध्य सागर तट के निवासी तीन भाषाओं का ज्ञान रखते हैं। उनके लिए लैटिन साहित्यिक भाषा, फ्रेंच अन्तरराष्ट्रीय भाषा और इटेलियन या स्पेनिश देशी भाषा होती है। हमारी दशा भी इसी प्रकार की हो जाती है। उपर्युक्त तीनों भाषाओं का समन्वय ठीक होता है, परन्तु स्वीट्जरलैण्ड में वहाँ कोई भाषा और साहित्य न होने के कारण तीन विभिन्न प्रकृति की भाषाओं—फ्रेंच, जर्मन और अंग्रेजी का आश्रय लेना पड़ता है।

• •

यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा मान ली जाय, तो भी हमें यह कहने की आवश्यकता रहेगी कि अँगरेजी जानना आवश्यक है। हम इंगलैण्ड अथवा पश्चिम के अन्य देशों से सम्बन्ध विच्छेद, नहीं कर सकते, परन्तु यह शिक्षित लोगों के लिए ही आवश्यक होगी। दस लाख शिक्षित लोगों के अंग्रेजी पढ़ने और तीस करोड़ अशिक्षित लोगों के अंग्रेजी पढ़ने में महान् अन्तर है। साधारण लोग हिन्दी को सरलता के साथ सीख सकते हैं और विभिन्न प्रान्तों में उसका सुविधा के साथ प्रचार भी हो सकता।

इसमें प्रत्यक्ष लाभ भी बहुत है, परन्तु इसका मनोवैज्ञानिक महत्व और भी अधिक है। लगातार विदेशी भाषा का व्यवहार हानिकारक होता है। इससे भाषा की स्वाभाविक सुन्दरता नष्ट होकर, उसके प्रयोगों में वर्णसंकरता और अस्वाभाविकता आ जाता है। इसके अतिरिक्त जो चीज हमारी राष्ट्रीयता में बाधक होती है, वह हमारी दासता की सृष्टि करती है। इसके लिए इंगलैण्ड का उदाहरण ही पर्याप्त होगा। वह अपनी दासता से छुटकारा पाने पर ही बाइबिल, शेक्सपियर और मिल्टन की अँग्रेजी के दर्शन कर सका। इसी प्रकार जापान चीन की नकल छोड़ने पर ही अपनी सभ्यता, कविता, कला बुशीदो (Bushido) की राजनीति और यामातो दामाशी (Yamato Damashii) की भावनाओं को उत्पन्न कर सका।

आजकल पश्चिम का अध्ययन एवं वहाँ के लोगों के सम्पर्क के लिए शिक्षित जापानी अंग्रेजी भाषा सीखते हैं, परन्तु पारस्परिक व्यवहार एवं साहित्य के लिए वे कभी उसका ध्यान भी नहीं करते। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के सम्बन्ध में हमें इसी प्रकार के कितने ही प्राचीन और वर्तमान उदाहरण प्राप्त होते हैं।

• •

हिन्दी को हमारी राष्ट्रभाषा का स्थान प्राप्त होना चाहिए। हिन्दी की परिभाषा बहुत सोच समझ कर करनी चाहिए। उत्तर भारतीय हिन्दुओं द्वारा देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली एवं मुसल्मानों की उर्दू को हिन्दी समझना चाहिए। इन दोनों में एक ओर संस्कृत की प्रधानता और दूसरी ओर फारसी की प्रधानता विरूपता उत्पन्न कर देता है और लखनऊ के मुसल्मान को बनारस के हिन्दू की भाषा समझना कठिन हो जाता है परन्तु चीन में भी पेकिंग के रहने वाले को कैन्टन के रहने वाले से बातचीत करने में यही असुविधा होती है। इस विषमता को दूर करने के लिए चीन में ग्रामीण भाषा का जिसे (Pai Hua) कहते हैं प्रचार करने की बात सोची जा रही है। यह भाषा साहित्य तथा रोजमर्रा के बोलचाल में प्रयुक्त की जायगी। तुलसीदास और कबीरदास ने सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी महान् साहित्य का आधार हो सकता है। मेकाले की अंग्रेजी की नकल करके बाबुओं वाली अंग्रेजी बोलकर उपहास का पात्र बननेवाले बंगाली भी उसे सरलता से सीख सकते हैं। मेकाले ने अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार करके ठीक भी किया और भूल भी की। भारत में अंग्रेजी शिक्षा के महान् सांस्कृतिक लाभों पर दूरदर्शिता से विचार करके उन्होंने ठीक किया, परन्तु गलती यह की कि भारतीय संस्कृति का परित्याग ही लोगों की मानसिक अवनति का कारण होगा, यह बात वह भूल गये—यही उनकी गलती थी। मेरे विचार में इस समय भारत के लिए साम्राज्य-सम्बन्धी कार्यों के लिए अंग्रेजी, उच्च सांस्कृतिक जीवन के लिये अंग्रेजी और संस्कृत, राष्ट्रीय जीवन के लिए हिन्दी और घरेलू जीवन के लिए मातृभाषा का उपयोग ही एक मार्ग है। स्थानीय भावनाओं से परिवेष्ठित होने के कारण देशी भाषाएँ अपना अस्तित्व बनाये रखने की अवश्य चेष्टा करेंगी और हमारे सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन पर कुछ प्रभाव अवश्य डालेंगी, परन्तु ज्यों ज्यों वर्तमान संसार में भारत अपने स्थान और एकता का अनुभव करता जायगा, त्यों-त्यों उनका प्रभाव गौण होता जायगा। इसके लिए भारत को तुच्छ ईर्ष्या, द्वेष और संकुचित दृष्टिकोण का परित्याग करना होगा।

'Great nation and little minds go ill together.'

'महान् राष्ट्र और संकुचित भावनाओं का साथ शोभा नहीं देता।'

समस्त भारत के लिए एक लिपि के सम्बन्ध में मैं रोमन लिपि का इसी दृष्टि से विरोधी हूँ, जिस दृष्टि से अँगरेजी को राष्ट्र भाषा बनाने का। यह विदेशी चीज है। इस्पेरेन्टो की भाँति इसका विकास प्राकृतिक नहीं, वरन् कृत्रिम है। इसकी अड़चनें वास्तव में कई एक हैं। दर्जनों अक्षर भाषाओं में बड़ी गड़बड़ी पैदा कर देते हैं परन्तु जिस प्रकार हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान सकते हैं उसी प्रकार देवनागरी भी एक लिपि मानी जा सकती है। जो संस्कृत अक्षरों को पहचानता है, वह सरलता से उससे मिलती जुलती लिपियाँ सीख सकता है। यदि दक्षिण के द्रविड़ लोगों को समस्त भारत का सांस्कृतिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए संस्कृत में पारंगत होना आवश्यक है, तो उन्हें हिन्दी और देवनागरी लिपि का अवश्य अध्ययन करना चाहिए। देवनागरी से लिपि नांदी नागरी से मिलती जुलती है। यदि हम भली भाँति इसका अनुसरण करें, तो कुछ ही समय में भारत में एक भाषा और एक लिपि का प्रचार हो सकता है। इससे सब लोगों को एक ही प्रकार के पत्र पढ़ने का अवसर प्राप्त होगा और सार्वजनिक भावों का व्यापक प्रचार होकर नये राष्ट्रीय साहित्य की उत्पत्ति होगी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्न करना उचित है। सुधारक लोग भावों की शक्ति को जानते हैं। भाव कभी कभी तर्क बुद्धि पर अधिकार कर लेते हैं, परन्तु इस सम्बन्ध में भावना और तर्क दोनों समर्थक हैं। उच्चकोटि की देशभक्ति राष्ट्रभाषा की आवश्यकता बतलाती है, और तर्क इस बात का अनुरोध करता है कि हम एक व्यापक लिपि ग्रहण करें। ४० करोड़ जनसंख्या रखनेवाला हमारा पड़ोसी चीन व्यापक लिपि का प्रचार और एक ही लिपि में साहित्य निर्माण कर रहा है अगर चीन इस विकट परिस्थिति में इस योजना को कार्य रूप में परिणत कर सकता है, तो हम क्यों नहीं कर सकते।

'गल्प-सम्मेलन में श्री जैनेन्द्रकुमार का भाषण

सबसे पहले मुझे आप से क्षमा मागनी है। यह जो सभा के रूप में आप बैठे हैं, इसका नाम गल्प-सम्मेलन कहा गया है। मुझे अभी तक उस नाम के प्रति कुछ विस्मय और कुछ जिज्ञासा है लेकिन उसका संयोजक मैं बन गया हूँ, और मैं आपके सामने देर में आरहा हूँ।

जब मुझे गल्प-सम्मेलन के सम्बन्ध में लिखा गया, तब मैंने सोचा कि यह चीज आखिर क्या होगी। यहाँ गल्प पढी जायगी या गल्प कला पर विवेचन होगा, अथवा उसके द्वारा गल्प लेखकों का जमाव बुलाकर उनका संगठन कर डालने की इच्छा है?

गल्प क्या बहुत सी जमायत के बीच में पढ कर सुनाने की चीज है? मुझे ऐसा नहीं मालूम हुआ। मुझे पता लगा कि शायद श्रोता वर्ग में पूरी दिलचस्पी इस भाँति न रहे। फिर लेखकों के संगठन के पक्ष मे भी मैं नहीं हूँ। उसमे लेखकों का लाभ उतना नहीं होता, जितना अवश्य कि दल बन्दी का भाव उत्पन्न होजाता है।

तब यही निर्णय रहा कि साहित्य के उस रूप पर, जोकि दुनिया में शायद आज सबसे अधिक प्रिय है और जिसको गल्प कहते हैं, उसपर विवेचनात्मक और कुछ प्रामाणिक भाषण हो जाय, तो सबसे उपयोगी रहेगा। आज उसका समय भी है।

प्रेमचन्द्रजी जब बोले दुर्भाग्यवश मैं यहाँ न था लेकिन देखता हूँ कि उनके एक आध रिमार्क को उपलक्ष बना कर मुझसे पूर्व वक्ताओं ने चर्चा की है।

साहित्य के भिन्न भिन्न रूपों की तुलना भी श्री माखनलालजी ने की है। मुझ में साहित्य को खण्ड-खण्ड करके देखने की क्षमता नहीं है। न मैं उसे इस तरह अलग करके देखना चाहता हूँ। मैं उसको समग्र रूप में एकही भाव और एकही दृष्टि से देख लिया करता हूँ। प्रकार कितने ही हों, साहित्य का प्राण तो एक ही है, अर्थात्—वही, जो जीवन का प्राण है—अहंकार का लोप, और प्रेम का प्रसार। साहित्य के टुकड़े करना ठीक नहीं है। साहित्य का सन्देश एक है, दायित्व एक है।

'स्वान्त सुखाय' यह वाक्यांश उद्धृत करके वक्ताओं ने चर्चा की है। इस पद का क्या तात्पर्य है? मैं क्या दूसरे के लिए लिखता हूँ? मैं अगर किसी के सुधार के या उपकार के लिए लिखता हूँ, यह मानता हूँ, तब तो इसमें दम्भ की भावना है।

हम कौन हैं कि उपकर्ता बनें, जज बनें। अपने ही सुख के लिए मैं लिखता हूँ, तो उसे प्रकाशित देख कर सुख की भावना मुझमें क्यों होती है? मेरे मनको क्यों तृप्ति मिलती है, जब उसकी कोई बड़ाई करता है? मैं अपने भीतर ही अपनी रचना से सुख पाकर संतुष्ट क्यों नहीं हूँ? क्यों इच्छा शेष रहती है कि मेरे दुःख दर्द में, सुख विलास में जितना हो सके साझा बना देखूँ?

बहरहाल 'स्वान्त सुखाय' ही साहित्य को सृष्ट हो तो अपने से बाहर जाकर सहानुभूति पाने की गुञ्जायश कहाँ से है? हमारा लिखना, सुन्दर, ललित सरल और प्रभावोत्पादक हो, यह भाव क्यों है? इसलिए वास्तविक बात यह है कि रचनाकार की रचना, उसके स्वयके लिए उतनी ही है, जितनी पाठक के लिए।

लेखक और पाठक में जितनी घनिष्ट एकता है, उतनी ही उस रचना में सफलता और सार्थकता है। साहित्य लेखक और पाठक के अन्तर को विलीन कर देने के भाव से उत्पन्न हुई सृष्टि है।

अपने सुख के लिये ही साहित्य है, यह तो साहित्यिक की साधना है, अर्थात्—यह उसके लिए License नहीं है। अपने से बाहर की ओर देखने या दायित्व मानने की आवश्यकता नहीं है। यह साधक की दृष्टि हुई और यह सब्जक्टिव यथार्थता है। और Objec ve सचाई यह है कि मनुष्य अपने लिये कुछ नहीं कर सकता। सब कुछ दूसर के लिये करता है। जो अपने लिये जितना करता मानता है, उसमें उतना ही मिथ्या का अंश है। अब इन दोनों दृष्टियों को समन्वित करने वाला सम्पूर्ण सत्य यह है कि साहित्य परमसत्ता—ईश्वर—की अर्चना है। भक्त तो यही कहेगा। तर्क की ओर बुद्धि की अपेक्षा कहें तो यह कह सकते हैं—कि साहित्य सत्य की प्रतिष्ठा है।

श्री नाथसिंहजी ने बातचीत में एक दिन मुझसे कहा कि उन का बड़ा विरोध मेरी रचनाओं से यह है कि उस में आस्तिकता है। अगर मेरी आस्तिकता मेरी रचनाओं में समाये नहीं समाती, तो मेरी त्रुटि है। मेरी आस्तिकता प्रदर्शन की वस्तु नहीं है। वह हृदयमें की वस्तु है, लेकिन मैं मानता हूँ कि परमात्मा के बिना मैं जी नहीं सकता हूँ। हाँ, वही परमात्मा, जो तर्क के सामने शून्य से भी शून्य है।

यथार्थवाद और आदर्शवाद का परस्पर विरोध यदि स्थापित किया ही जावे तो मैं ऐसे आदर्श के खिलाफ हूँ जिसमे 'वाद' लग गया है। जो 'वाद' के सहारे आदर्श को पकड़ते हैं, वह मिथ्या को पकड़ते हैं। ऐसा बौद्धिक आदर्शवाद व्यक्ति को असफलता में गिराता है। मेरी 'परख' पुस्तक का प्रतिपाद्य वस्तु यही है।

लेकिन जितना दीखता है, जितना हमारी कॉमनसेन्स की पकड़ में आ सकता है, सत्य उतना ही नहीं है। कॉमनसेन्स से जो बाहर रहता है, उसे यथार्थ न कहकर हम आदर्श कह देते हैं।

मैं आपसे सच कहता हूँ कि वैसे आदर्श की नींव, भूमिका और वैसे आदर्श के Back Ground बैक ग्राउण्ड से हम वञ्चित हुए, तो जीना हमारे लिये दूभर हो जायगा।

हम खुशी के लिये रुपया खर्चते हैं। क्या हम उस प्रसन्नता को रुपये की तरह तोल सकते हैं? रुपये की तरह ठनकार कर बजा सकते हैं? जिस प्रसन्नता को पाने के लिये हम रुपये-के रुपये विसर्जन कर देते हैं, वह रुपये जितनी ठोस नहीं है, तो क्या उससे अधिक सत्य है। क्या इसी लिये कष्ट उठाकर रुपया खर्च करके हम इतनी दूर दूर से यहाँ जमा नहीं हुए हैं? मैं कहता हूँ कि यहाँ आप की उपस्थिति के तल में ही कॉमनसेन्स की हार है और आदर्श' की विजय है। जो ऊँचे तल की यथार्थता है, नीचे तल के लिये वही आदर्श है। और यदि हम रचना की ओर उन्मुख होना चाहते हैं, तो आदर्श शब्द से हम कैसे छूट सकते हैं?

विहार का उद्धार कैसे हो ?

लेखक—श्रीयुत अविनाश पाण्डेय, बी० ए०, एल एल० बी०

पिछले लेखों में हम दिखला चुके हैं कि इस भूकम्प के कारण बिहार की कितनी भीषण क्षति हुई है और उत्तरी बिहार किस प्रकार बरबाद हो गया है। उत्तरी बिहार के तीन प्रधान शहर मोती हारी, मुजफ्फरपुर और दरभंगा तथा तीन प्रधान सब डिवीजन—सीतामढ़ी, समस्तीपुर और मधुबनी तथा ढुली, बैरगेनिया और जयनगर वगैरह मुख्य बाजार किस प्रकार ऊजड़ कर खण्डहर हो गये और इन तीनों जिलों के किसानों के खेतों में बालू भर जाने से अथवा भील बन जाने से इनका सर्वस्व किस प्रकार स्वाहा हो गया। इस क्षति की पूर्ति हो ही नहीं सकती। करोड़ों रुपयों का माल और घर-सामान मिट्टी में मिल गये। अब उनकी चर्चा ही व्यर्थ है। इस समय तो सबसे बड़ी समस्या उन लोगों को जीवित रखने की है, जिनपर इस भूकम्प ने प्रचण्ड प्रहार किया है। पिछले लेख में हमने लिखा था कि इन जिलों के किसानों का सर्वस्व स्वाहा हो गया है। न इनके घर में अन्न रह गया है और न खेतों में। जिनके पास जो अन्न जहाँ था, वह वहीं बरबाद हो गया। खलिहानों का अन्न जमीन फटने के कारण जो दरारें हुईं, उनमें समा गया, घर में का अन्न कोठियों के फूटने से गर्द मिट्टी में मिल गया। खेत में का अन्न, बालू अथवा पानी के नीचे पड़कर सड़ गया। इस तरह उन किसानों के पास जीविका का कोई साधन नहीं रह गया है। भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिये जो लोग आये, वे भी इधर-उधर दो चार-दस दिन तक खैरात बाँटकर चले गये। जो दो चार सहायक समितियाँ हैं भी, वे शहरों में ही अपना अड्डा जमाकर बैठी हुई हैं और शहर वालों का पेट भरने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ रही हैं। किसी किसी सहायक-समिति की ओर से शहर वालों के लिये अस्थायी मकानात बनाने का भी आयोजन हो रहा है। पर देहातों और देहातियों की सुध बहुत कम ही लोग ले रहे हैं। परिणाम यह हो रहा है कि अन्न के अभाव में देहात के लोग घास और कन्द खाने लग गये हैं और मर रहे हैं। चम्पारन से जो समाचार आये हैं और आ रहे हैं, उनसे विदित होता है कि वहाँ भीषण अकाल ने डेरा डाल दिया है। बिहार सेण्ट्रल रिलीफ कमेटी की ओर से वहाँ जो सेण्टर सहायतार्थ खोले गये हैं, वहाँ एक-एक सेण्टर में दो पैसे रोज पर भी काम करने के लिये हजारों आदमी आते हैं, पर रिलीफ कमेटी के पास इतना साधन नहीं है कि वह हर एक आदमी की सिर्फ पेट की आवश्यकता को पूरी कर सके। उसका फल यह हो रहा है कि वहाँ हाहाकार मचा हुआ है। मुजफ्फरपुर जिला के कटरा थाना का समाचार है कि वहाँ लोग अन्न के अभाव में करमी नाम की घास खाने लग गये हैं। रिलीफ कमेटी यथासाध्य इन लोगों की सहायता करने का यत्न कर रही है, पर उसे पूरी सफलता नहीं मिल रही है।

इधर तो यह हालत है, उधर सरकार का रुख हम लोगों ने देख ही लिया है। भारत सरकार ने इस भूकम्प को कोई महत्व नहीं दिया है। भारत से सहानुभूति रखने वाले विदेशियों के जो समाचार आये हैं, उनसे यही ध्वनि निकलती है कि यदि भारत सरकार ने भूकम्प की भीषणता को ठीक-ठीक शब्दों में अंकित करने का प्रयत्न किया होता, तो विदेशों से पर्याप्त सहायता आ सकती थी। जिस ब्रिटिश पार्लामेण्ट ने जापान और क्वेटा(?) वालों की सहायता—ऐसे ही अवसर पर—लाखों रुपयों से की थी, उसके दरबार में इस भूकम्प की चर्चा तक नहीं हुई है, हालांकि उपर्युक्त दोनों देशों के भूकम्पों से यह कहीं भीषण हुआ है। इस से ब्रिटिश जनता सर्वथा उदासीन हो रही है। भारत सरकार ने भी स्वयं कुछ नहीं किया है। १९३४-३५ के बजट में अर्थ सचिव ने इस मद के लिये जो रकम दी है, उसकी तुच्छता का स्मरण कर घृणा उत्पन्न हो जाती है और यही ख्याल आने लगता है कि सचमुच गुलाम जाति के लिये किसी भी दशा में निरंकुश शासन से लाभ नहीं पहुँच सकता। महात्माजी को बिहार के भ्रमण के लिये आते देख बड़े लाट को दूर की सूझी। जनता की सहानुभूति खींचने के लिये वे बिहार में टपक पड़े और मुजफ्फरपुर तक ही आये; अधिक १५-१६ मील तक सीतामढ़ी की ओर भी गये थे। अखबारों से पता है कि वे बड़े प्रभावित हुए हैं, लेकिन इससे उन भूखों का पेट कहाँ भरता है? लाट साहब के सैर कर जाने से ही तो उन्हें रोटी नहीं मिल सकती।

बिहार सरकार की अकर्मण्यता और भी स्पष्ट है। शुरू से लेकर आजतक इसने इस भूकम्प को उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा है। यदि सरकार ने इसकी भीषणता पर जरा भी ध्यान दिया होता और उसके अनुकूल तत्परता इसने दिखलाई होती, तो कम-से-कम इतनी ज्यादा मौतें न होतीं। यदि मलबा हटाने का काम ही मुस्तैदी से किया गया होता तो बहुत-से प्राण बच गये होते, जो मलबे के नीचे कई दिनों तक जिन्दा पड़े रहे। प्रारम्भिक रिलीफ में भी सरकार की यही नीति थी। हो हल्ला बहुत मचा, कान्स्टेबुलों की तनखाह बढ़ा दी गई, ऊँचे अफसरों के भले चंगे रहने पर एक-दो फीसदी पीड़ितों की भी समुचित सहायता नहीं की जा सकी। एक-एक थाने में १०० १२५ कम्बल, १०० १५० धोती और दो चार मन अन्न भी बाँटे गये। सरकार का जो सबसे बड़ा काम था, आवश्यक सामग्रियों का मूल्य निर्धारित करना, उसमें भी उसने कोई तत्परता नहीं दिखाई। बिना किसी कारण के बाजारों में नमक, मिट्टी का तेल और चावल दाल के दाम बढ़ा दिये गये। पुपरी बाजार, मुजफ्फरपुर जिला में दो एक डिप्टी मजिस्ट्रेट भी तैनात थे, तो भी वे उस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर रहे थे हालांकि उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया था। सरकार इस भूकम्प की भीषणता को कहाँ तक समझती है और उसकी नीति इस सम्बन्ध में क्या होगी इसका अन्दाजा तो उसके दो प्रधान अफसरों के वक्तव्यों से ही लग जाता है। भूकम्प के बाद ही कौंसिल की बैठक थी। एक सदस्य ने कहा—सरकार को अकाल घोषित कर देना चाहिए। सरकार के अर्थ सचिव ने कहा—अकाल कहाँ है? सदस्य ने उत्तर दिया—अकाल से भी भयंकर हालत है। अर्थ सदस्य ने कहा—पर अकाल का कोई लक्षण नहीं है। यह तो अर्थ सचिव की मनोवृत्ति है। अब शिक्षा मन्त्री श्री अजीज का कथन पढ़िये। 'आप फरमाते हैं—देहातों की हालत उतनी खराब नहीं है, जितनी शहरों की खेत उतने खराब नहीं हुए हैं। किसान आलसी हैं। स्वयं कुछ करना नहीं चाहते, इसीसे खेतों में बालू पड़ी रहती है, नहीं अबतक खेत साफ होगये होते। यदि सरकार घोषित करदे कि इस बालू में सोना-चाँदी है, इसे कोई न उठावे, तो बालू एक दिन में गायब हो जाय। कितनी पतित मनोवृत्ति है। जो लोग अन्न बिना मर रहे हैं, जिनका सर्वस्व स्वाहा होगया है, उनका इस तरह मजाक उठाना इसी सरकार के किसी कर्मचारी को शोभा देता है। अजीज साहब को तो हर महीने चार हजार की थैली मिलती जाती है, उन्हें क्या पता कि भूख की पीड़ा कैसी होती है! और बिना पेट में अन्न गये इनसान किस तरह काम कर सकता है। किसानों को अन्न देने की व्यवस्था चाहे भलेही न हो वे भूखों भलेही न रहें, पर वे बालू अवश्य साफ करें। पता नहीं कि अजीज साहब को कैसे मालूम हुआ कि किसान कुछ करना नहीं चाहते, पर वे करें किस दमपर भूखो रहकर? आदमी कैसे काम कर सकता है। सरकार उनका पेट भरे और देखे कि खेत साफ होजाते हैं या नहीं। पर, यह न तो अजीज साहब से ही हो सकता है और न उनकी सरकार से।

सरकारी कर्ज पर लोग बड़ी-बड़ी आशा लगाकर बैठे हुए थे। जो लोग भीख नहीं चाहते, उनकी आरजू थी कि कर्ज से उनकी मदद की जाय और किस्त से वह अदा कर ली जाय। उस कर्ज का ब्योरा भी छप गया है। सरकार कर्ज क्या देना चाहती है, उन्हें सदा के लिए अपने चंगुल में फँसा लेना चाहती है। साधारणतः लोगों को सवा छ रुपया सैकड़ा सूद देना पड़ेगा। जो लोग सरकारी तकावियों की कैफियत से परिचित हैं, वे भली भाँति जानते हैं कि सौ का साठ ही तो हाथ आता है। ४० तो विविध अफसरों के हाथ में ही रह जाता है और उस साठ के लिए पहले वर्ष के बाद ही ६।) सूद देना पड़ेगा, जमानत दो जाँच पड़ताल में खर्च करो, सबूत में दौड़ो, परेशान हो और अन्त में सूद का पाप सिर पर सवार हो जायगा। यही इस सरकार की उदारता है और प्रजा-वत्सलता है। यही है इस सरकार के प्रभावित होने का फल! साथ ही कर्ज देने वाली रकम इतनी परिमित है कि चौथाई हिस्सा आदमियों का भी काम उससे नहीं चल सकता, पर्याप्त सहायता तो किसी को मिल ही नहीं सकती।

यह सरकार का परिचय है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि

इस महा विपत्ति में भी वह हम लोगों की रक्षा करने से कितनी उदासीन है। अब रही अपने भाई व प जमींदारों की बात। उनसे किसी तरह की मदद की आशा करना ही व्यर्थ है, जो व्यक्ति इस सकट के समय भी मालगुजारी तहसीलन स बाज नहीं आ रहा है भला वह सहायता कहाँ से दे सकता है। जिस खेत की उसे मालगुजारी लेना है—वे एक प्रकार से बरबाद हो गये हैं—उनमें झीलें बन गई हैं और बालू आगया है, बिना पर्याप्त धन लगाये उनकी सफाई नहीं हो सकती और जबतक सफाई न हो, उनमें एक मुट्ठी भी अन्न नहीं उपज सकता, पर इससे क्या ? उसे तो मालगुजारी चाहिए। पर, यदि न्याय और ईमानदारी स काम लिया जाय, तो क्या उन खेतों को साफ कराना उसका कर्तव्य नहीं है ? यदि वह अपना कर्तव्य भर अदा कर दे, तो यह सकट बहुत कुछ हलका हो सकता है और किसानो का बहुत बड़ा कल्याण हो सकता है। पर, अपने इस साधारण कर्तव्य का भी वह पालन नहीं करना चाहता। ऐसी हालत में उससे अन्य तरह की सहायता की आशा करना ही व्यथ है। नहीं तो इस प्रलय के काण्ड क बाद भी बिहार के धनिकों के पास इतना ज्यादा धन है कि यदि वे चाहे, तो इस सकट का निवारण सहज में ही हो सकता है। जो धनीमानी अपने खजाने से निकाल भी रहे हैं वे इस निस्सहायावस्था में जनता का उपयोग कर मनमाना लाभ उठा लेना चाहते हैं। दरभगा में आजकल यही चर्चा चल रही है। महाराज दरभगा नगर के पुनर्निर्माण के लिये २५ लाख रुपया देना चाहते हैं पर उनकी शर्तें नागरिकों के स्वार्थ के प्रतिकूल पड़ रही हैं। इससे उनके काम का चारों ओर से विरोध हो रहा है। कोई भी उनके इस दान का स्वागत नहीं कर रहा है और कोई भी उससे सन्तुष्ट नहीं है।

यही वर्तमान अवस्था है। विपत्ति की भीषणता का अनुमान कर के तो यही कहना पड़ता है कि यदि अभी से उसका सामना करने का यत्न नहीं किया गया, तो यह अतिशय दारुण रूप धारण कर लेगी और उस समय उसका प्रतिकार करना कठिन हो जायगा।

भूकम्प पीड़ित जिलों की रक्षा के लिये कई एक प्रश्न सामने आते हैं। उनपर विशद विचार करने की आवश्यकता है। किसी अन्य लेख में उनपर विचार भी किया जायगा, पर सम्प्रति सक्षेप में इतना लिख देना है कि बिहार के पाँच जिले—सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभगा और मुँगेर तो एक दम बरबाद हो गये हैं। भागलपुर के कुछ हिस्से पर भी असर पहुँचा है। चम्पारन, मुजफ्फरपुर और दरभगा की हालत सबसे खराब है, क्योंकि शहरों के अतिरिक्त देहातों में भी भूकम्प का भीषण प्रहार इन जिलों में हुआ है। कुछ अमीरों को छोड़कर—जिनमें कि व्यवसायी और बड़े जमींदार शामिल हैं—सबकी हालत खराब हो गई है। इन लोगों को अगले आठ महीने तक भोजन का प्रबन्ध करना पड़ेगा, रहने के लिये मकानातों की जरूरत होगी। किसानों के खेतों को साफ कराना पड़ेगा। जो लोग रोजगार-विहीन हो गये हैं, उन्हें रोजगार देने की समस्या है। पशुओं के लिये चारा और जिन गरीब किसानों के बैल मर गये हैं उन्हें बैल देने का सवाल है और सबसे सगीन प्रश्न है, जल का। जो कुएँ एक बार उदाहे गये थे, वे सूख गये हैं, या सूख रहे हैं। पानी का महान् कष्ट है। रग ढग से मालूम होता है कि कुएँ बेकार हो गये हैं, इसलिये बोरिंग पम्प का प्रबन्ध करना होगा। हर एक मद को पूरा करने के लिये लाखों रुपयों की जरूरत पड़ेगी। यदि सिर्फ भोजन का प्रश्न उठा लिया जाय और हिसाब मिलाया जाय, तो मालूम होगा सिर्फ इस मद में एक-एक जिले के लिये ५-७ लाख रुपयों की जरूरत पड़ेगी। इतने ही रुपये अस्थायी झोपड़ियों के लिये चाहिए। देहातों में पानी और चारा का सवाल और भी जटिल है।

अकाल विकराल रूप धारण कर रहा है। अब तो कोई भी जिला बाकी नहीं रह गया है, जहाँ से अन्न के अभाव में लोगों के मरने के दुखद सम्वाद नहीं आते हो। कुछ लोग स्वावलम्बी बनने का सदुपदेश देते हैं। पर, मेरी समझ में यह नहीं आता कि साधन हीन आदमी किस प्रकार स्वावलम्बी बन सकता है। कोरी शिक्षा से तो काम नहीं चल सकता। उपदेश में व्यवहारिता होनी चाहिए। निरा साहित्यिक उद्गार उन गरीबों को तसल्ली नहीं दे सकता, जो हर तरह से धन-हीन हो रहे हैं। भला वे स्वावलम्बी किस प्रकार हो सकते हैं।

इन गरीबों के लिये निरे स्वावलम्बन की शिक्षा से काम नहीं चल सकता। अखबारों में अब तक जो कुछ छपा है, उससे बृटेन की सरकार भारत सरकार, बिहार सरकार तथा बिहार के धनवानो और जमींदारों की मनोवृत्ति का अन्दाजा मिल ही गया है। अब तो देश की जनता के सामने दो ही प्रश्न हैं, या तो बिहार के इन पीड़ित भाइयों को इनके भाग्य पर छोड़ देना कि ये अन्न और जल के अभाव में भूखों मरें और तड़प तड़प कर प्राण दें अथवा अपनी सहज उदारता दिखाकर इन्हे उबार लें। जो द्रव्य दानरूप में अभी तक यहाँ भेजा गया है, वह नितान्त अपर्याप्त है। एक मद के लिये भी वे काफी नहीं है। समय का तकाजा है कि इस संकट के समय बिहार की रक्षा की जाय। मनुष्यता के नाते यह सब से बड़ा कर्तव्य है। एक तरफ एक प्रान्त के लोग अन्न और जल के अभाव में भूखों मरें और दूसरी ओर अपने पैसे से लोग मौज उड़ायें यह तो मनुष्योचित बात नहीं होगा। बिहार के पीड़ित भाई दर्द भरी आखों से आज अन्य प्रान्तों की ओर देख रहे हैं कि दूसरे भी उनके दुःख से दुखी हैं या नहीं, उनकी इस करुण दशा से दूसरों का दिल पिघलता है या नहीं, उनके इस आर्त हृदय की पुकार अन्य प्रान्तवालों के कान में पड़ती है या नहीं। बिहार की विपत्ति अन्य प्रान्त वालों के लिये परीक्षा की कसौटी है, देखे वे कितने खरे उतरते हैं।

जीवन्मुक्त महात्मा श्री तैलंग स्वामी का तत्वोपदेश

लेखक—श्रीयुत अजितनाथ भट्टाचार्य, बी० ए०, एल-एल० बी०

(गताङ्क से आगे)

मन जिस समय दूसरी किसी वस्तु में लगा रहता है, उस समय तुम दर्शन नहीं कर सकते, सुन नहीं सकते, यहाँ तक कि देह तक किसी काम की नहीं रह जाती और स्थिर रहती है। मन और चित्त दोनों परस्पर एक दूसरे की सहायता करते हैं, इसलिए दोनों समान हैं, तिसपर भी मन अच्छा है, क्योंकि मन ही से चित्त की उत्पत्ति है, चित्त से मन की नहीं। सुख को दुःख और दुःख को सुख समझना, यह केवल मन ही का कार्य है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसको मन ने न देखा हो। जिस प्रकार अङ्कुर से वृक्ष, लता, पत्र, पुष्प, उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार मन से यह जगत् स्वप्न, वासना, चिन्ता, विलास इत्यादि कुल चीजें उत्पन्न होती हैं। जिस प्रकार नाट्यशाला में एकही नट नाना प्रकार का वेष धारण करके नाना प्रकार का भाव इत्यादि दिखाता है, उसी प्रकार आप का मन ही जाग्रत और स्वप्नरूप में उदित होकर सर्वदा नाना प्रकार की चिन्ता करता है। मन स्वयं निराकार होते हुए भी साकार होकर अपने अभ्यास वश जीव भावापन्न होकर जाता और मरता रहता है। तिल में जिस प्रकार तेल है, मन में भी उसी प्रकार सुख और दुःख सर्वदा विद्यमान हैं, केवल समयानुसार कभी घटते और कभी बढ़ते रहते हैं। जिसका मन निश्चल, अर्थात् स्थिर हो गया है, वही परब्रह्म के ध्यान में समर्थ हो सकता है। मन के संयम से संसार के विलास की शान्ति होती है। उद्वेग रहित होने से जीव मन पर विजय प्राप्त कर सकता है। मन पर विजय प्राप्त करने वाले के लिए त्रैलोक्य की विजय भी तुच्छ मालूम होती है।

पूर्ण ब्रह्म रूप में अवस्थान को ही मनोजय कहते हैं। चापल्य (चपलता) ही मन का रूप है। जिस प्रकार अग्नि का धर्म उष्णता (गर्मी) है, उसी प्रकार मन का धर्म चञ्चलता है। जिस प्रकार बिना स्पन्दन (हिलन) के वायु की सत्ता नहीं मालूम होती है, उसी प्रकार बिना चपलता के मन का अस्तित्व नहीं मालूम पड़ता है। चञ्चलता-रहित अर्थात् स्थिर मन की अवस्था को मोक्ष कहते हैं। सत् और असत् के मध्यभाग को चिन्मयत्व, और चिन्मयत्व और जड़त्व के मध्यभाग की अवस्था को मन कहते हैं। जड़ता के अभ्यास में मन जड़ हो जाता है, और विवेक के अभ्यास से मन चैतन्य रूप होता है। चिन्तायुक्त चञ्चल मन को विवेक मन के द्वारा बलपूर्वक उद्धार करना चाहिए। राजा के सिवाय राजा को कोई पराजित नहीं कर सकता है, उसी प्रकार मन के सिवाय मन को कोई पराजित नहीं कर सकता है।

आत्मा को मुक्त करने के लिये मन पर विजय प्राप्त करने के सिवाय और कोई दूसरा उपाय नहीं है। मन ही कर्म फल का भोग करता है, मन ही को यह अनन्त सुख और दुःख होता है, शरीर को कुछ नहीं होता है। जड़ देह सुख और दुःख भोग नहीं कर सकता, मन ही करता है, इसलिए मन ही को मनुष्य समझो।

मन का आदि और अन्त जब नश्वर है, तब उसके मध्य भाग को भी असत् कहना चाहिए। जिसको मन का यह असत् रूपता मालूम नहीं है, उसके लिये यह दुःख भोग अनिवार्य है। मन जो करता है वही कृत है, जो नहीं करता है वह कृत नहीं होता है। यह विश्व, मनोवृत्तिस्वरूप है। मन ही सब कर्म है, सब चेष्टा है, सब भाव, सब आकार और गति का बीज रूप है, उस मन को परित्याग करने से सकल कर्मों का परित्याग हो जाता है, सब दुःखों का क्षय हो जाता है, सब कर्म लय को प्राप्त होते हैं।

कीट (कीड़ा) जिस प्रकार अपने रहने के लिये कोष बनाता है, मन ने भी उसी प्रकार अपनी अवस्थिति के लिये यह शरीर बनाया है। जिस प्रकार कोषकार कीट का कोष, कोषकार से अभिन्न है, उसी प्रकार मन और शरीर में कोई भेद नहीं है, मन ही शरीर का उपादान है, मन से सब कुछ सम्भव है। ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो मन में उदय नहीं होती है।

मनही पुरुष है, अतएव उसे अच्छे रास्ते पर चलाना चाहिए। चित्त प्रकृति का स्वरूप है, वह जब मनन धर्म विशिष्ट होता है, तब मन कहलाता है, जब दर्शन-विशिष्ट होता है तब चक्षु कहलाता है, जब श्रवण-शक्ति विशिष्ट होता है, तब श्रोत्र कहलाता है; इसलिये मन को कर्म बीज कहते हैं। वर्तमान शरीर में मन सब वस्तुओं में आसक्त होता है; इसलिए उसको नर अथवा मनुष्य कहते हैं। मन ही जीव है, मन ही आकार रूप में अपनी निर्मलता से परब्रह्म साक्षात्कार कर सकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

मनुष्य मनोमय के सिवाय और कुछ नहीं है। इस संसार में मन ही जन्म ग्रहण करता है, मन ही घटता-बढ़ता रहता है वास्तव में देखने से यह समझ में आता है कि मोक्ष भी मन का होता है।

वास्तव में मन ही संसार में रत है, जरा और मरण सचमुच मन ही का होता है। यह मन ही सब का सर्वनाश करता है। ज्ञान के उदय होने से उस मन का नाश हो जाता है। मन प्राणका रूपान्तर मात्र है। प्राण अपनी स्पन्दन शक्ति के द्वारा समुदाय वस्तुओं का अनुभव करता है, इसलिये उसे मन कहते हैं। मन की अनुभव शक्ति नहीं है। अनुभव शक्ति प्राण वायु की होती है।

प्राण वायु और आत्मा, इन दोनों की शक्ति के समावेश को मन कहते हैं। मन ही कर्ता है। मन जो संकल्प करता है वही करता है। जहाँ पर मन है, वहीं आशा है और उसी स्थान में सुख और दुःख विद्यमान हैं। मन धातु का अर्थ मनन है। वह मन कल्पनाकारी है, इसलिये उसे मन कहते हैं।

चूँकि मन, जड़ सृष्टि और चेतना दृष्टि के बीच में है, इसलिये उसे जीव, बुद्धि चित्त इत्यादि नाना प्रकार के नाम से पुकारते हैं। जब तक मन का लय नहीं होगा, तब तक वासना के क्षय की कोई सम्भावना नहीं है।

चित्त

चित्त का स्वाभाविक धर्म विषयानुराग है। जिस प्रकार तीर पर खड़े हुए वृक्ष को पानी की लहरें गिरा देती हैं, उसी प्रकार वृत्तिशाली चित्त मनुष्य को ग्रास कर रहा है। जलप्रवाह जिस प्रकार पुल से टकराकर रुक जाता है, उसी प्रकार मनुष्य चित्त से आबद्ध हो जाता है। लटकती हुई रस्सी जिस प्रकार ऊपर और नीचे दोनों ओर रहती है, उसी प्रकार मनुष्य भी चित्त और मन के द्वारा कभी ऊपर उठता है और कभी नीचे गिरता है।

गिद्ध जिस प्रकार सहसा लोभनीय माँस से आकृष्ट होता है, उसी प्रकार चित्त भी सहसा विषय में आसक्त हो जाता है। चञ्चल चित्त कभी एक ही विषय में एकाग्र नहीं हो सकता।

बुद्धि में स्थित आत्मा ही चित्त है, जब चित्त की वासना क्षीण रहती है, तब तक उसे जीव कहते हैं। जब भ्रम न रहती है तब देह कहलाता है। और जब उसकी कल्पना शान्त हो जाती है, तब उसका परब्रह्म कहते हैं।

भोगासक्त चित्त कर्तापन का अभिमान रखता है। चित्त से ही यह संसार आया है। यह संसार चित्तमय है, चित्तही में इस संसार की अवस्थिति है। आत्मा ही चित्त है। वह इस चित्त से सब कर्ममयी, वासनामयी और मनोमयी शक्ति का संचय करता है, सब देखता है उपभोग में धारण करता है और उत्पादन करता है। सब जीव और सकल पदार्थ ब्रह्म से ही उत्पन्न होते हैं। परमात्मा से सब भावों को लेकर और उन्हें जान कर पुनः उसी में लीन हो जाता है। चित्त ही जरा मृत्यु और मोह की चिन्ता से व्यथित होता है। चित्त ही जरा मृत्यु रूप शाखाओं से घिरा हुआ संसार का विषवृक्ष है।

जिस प्रकार छोटे से बीज के भीतर बहुत बड़ा वट वृक्ष रहता है, उसी प्रकार इस चित्त के भीतर सकल संसार है। यह चित्त जब अपने निवास स्वरूप एक देह से अलग हो जाता है, तब उसी प्रकार के देह के विच्छेद से अत्यन्त दुःखी हो जाता है।

यह प्रपञ्चमय रूपही चित्त का स्वरूप है, इसका और कोई स्वरूप नहीं है। जब तक यह बोध नहीं होता है कि यह जगत् का प्रपंच सब आत्मा ही है, तब तक यह दृश्य जगत् दुःखदायी होता है, और जब इसका बोध हो जाता है, तब यह मोक्ष सुख का देनेवाला होता है। दृष्टा और दृश्य के बीच वाले को चैतन्य कहते हैं।

(क्रमशः)

श्रीकृष्ण

लेखक—श्रीयुत कैरली,वासुदेव विद्यार्थी 'युवक हृदय' रा० भा० विशारद

फ्रेंच महाकवि विक्टर ह्यूगो का मत है कि 'अपारता के बाहर की सारी संख्याएँ शून्य हैं। उस अनन्त शून्यता का एक भराव, उस अभेद्य अन्धकार का एक प्रकाश ही संगीत है।

सृष्टि के सौन्दर्य के सामने आनन्द मूक हो स्थित संगीत को एक असीम भाषा प्राप्त हुई, अनश्वरता के विद्युत-कपाट के सामने मधुतम करनेवाले संगीत को एक दिव्यसिद्धि प्राप्त हुई—वही साहित्य है।

ध्वनि की ध्वनि; प्रकाश का प्रकाश, मुक्ति की मुक्ति—हाँ अली किकपन के साथ साहित्यिक हृदय का उद्गमा तत्त्वचिन्ता के रूप में प्रत्यक्ष हुआ। विश्वात्मकता का विश्वातीत प्रेम, संगीत में कलियाँ निकालने लगा, साहित्य में फूलने लगा; और तत्त्व के रूप में फलने लगा।

हजारों वर्ष के पहले, यमुनाजी की लोललहरों, प्रेम-स्वर्गों को हृदय में भर देनेवाले उस वृन्दावन के क्रीड़ाक्षेत्र में, हरे भरे वृक्षसमूहों को भी लजानेवाले मनोहर तृणगण्य प्रभात समय एक सिरे से दूसरे सिरे तक रत्न मुकुट धारण किये शोभायमान व्रज प्रदेश में—बहुत काल पर्यंत गायों को चरानेवाले एक गोपाल-बालक की मधुर गान ध्वनि सुनाई पड़ती थी। पीताम्बरधारी उस गोपाल कुमार की मनोहर मुरली से निकले संगीत प्रवाह ने उस वनभूमि के लताकुसुमों में एक नवीन ज्योति उत्पन्न कर दी तथा यमुना-तरंगों से ही नाचते हुए आनेवाले मन्द-मन्द पवन को भी लजा दिया। न नाचनेवाले मोर, न गानेवाली सारिकायें, न हिलनेवाले वृक्ष—हाँ, उस गोपाल बालक की मधुरातिमधुर संगीत निर्झरी में भाषा विहीन एक आनन्द, स्वप्न की भाँति उस वृन्दावन की वह दैवी निस्तब्धता! उसमें अनादरस वेग से घूमनेवाली सृष्टि का वह निम्न चक्रनाद तक क्षीण हो गया। उस गायक बालक को एक बेर देख नित्य निवृत्ति प्राप्त करने की इच्छा से वृन्दावन भूमि की सुनहली किरणों ने आँखें खोलीं। वह उस गोपाल के पादचिह्नों से विभूषित देश को एक बेर चुम्बन करने की आन्तरिक अभिलाषा के उद्वेग आई। सन्ध्या के करतलों से गिरे हुए तारक-पुष्पों की तरफ़ ध्यान तक न दे, आप-ही-आप खड़ी हो गई।

सृष्टि की सूक्ष्मातिसूक्ष्म शिराओं को भी अपनी शब्द-मधुरिमा से अचेत करनेवाला वह दिव्य कौन था? उस स्निग्ध मन्दहासचन्द्रिका में यमुना सैकतों की स्वाभाविक छवि को तृण कर देनेवाला वह मनोज्ञ कुमार कौन था?—श्रीकृष्ण!

श्रीकृष्ण, केवल एक लोकोत्तर गायक बालक ही नहीं, अलौकिक हृदय वाला एक कवि भी था। सृष्टिसुन्दरता में डूबे हुए, उपाधिरहित, उस महाकवि ने सृष्टि साम्राज्य का साक्षात्कार किया। कवि वही है, जिसने प्रेम और सौन्दर्य का अनुभव किया हो, केवल देखने या सुनने वाला ही कवि नहीं है। आँसू और मुसकान से भी उच्च किसी एक वस्तु को खोज कर, निकाल कर, उसके साथ तादात्म्य की सिद्धि करने वाला कवि है। श्रीकृष्ण एक महाकवि थे। उस महात्मा की लेखनी ने रक्त से अंकित हो कविता लिखना आरम्भ किया था। प्रेम सृष्टि का जीव रक्त है; संगीत है उसका सिरा चक्र और सत्य है उसकी आत्मा।

योग के चैतन्य से भरा भोग, तपश्चर्या से भरा विलास का प्रिय था श्रीकृष्ण। अतीव प्रेम का एक सासव; कविता भरा एक शास्त्र; मिठास भरा एक कटुआपथ; माधुर्य भरा एक काठिन्य ही श्रीकृष्ण था। विभिन्न वृत्तियाँ इनमें मिल गई थीं। नीले नये मेघों का स्मरण दिलानेवाले उस कमनीय कलेवर के मुख कमल ने संसार की समस्त स्त्री जाति के हृदयों को अपनी तरफ़ एक क्षण में ही खींच लिया। उस विलास प्रिय का प्रणय-गान सुनकर बेसुध होने के कारण उन युवतियों ने क्या नहीं कर डाला। आडम्बरों से रहित उन वीराङ्गनाओं के प्रणयमसृण आलिङ्गनों ही में उस गोपाल ने कितने दिन बिताये; लेकिन वे अगण्य भोग तरंगें श्रीकृष्ण के शरीर को पार कर काल समुद्र में स्वच्छंदी चक्कर लगाती रह इनमें से किसी ने उस गम्भीरसत्त्व के हृदय को हिलाया तक नहीं। निद्रा का जागरण, क्षीण का विकास, विक्षेप का संयम ही श्रीकृष्ण है।

पानी में बहुत काल तक डूबे रहने पर भी न भीगा हुआ एक कमल पत्र; पारे में पड़े रहने पर भी निष्कलंक एक रत्न-खण्ड में ही हम श्रीकृष्ण का वास्तविक माहात्म्य देख सकते हैं। लक्ष्मी का पति और रतिनाथ का नाथ है वह। दोनों को निष्कलंक और निष्काम करना वह भली-भाँति जानता था। श्रीकृष्ण में जो प्रकाश दिखाई पड़ता है, वह लोकनिन्दाओं की अँधेरियों में का ज्ञान दीप है। उस में जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, वह विपरीत परिस्थितियों के संकलन से बने हुए एक तत्त्व चिन्तन समान है। रासलीला के कई अर्थ लगाने के लिये भक्त लोगों का तैयार हो जाना साधारण है; लेकिन बिना टीका टिप्पणी के ही खुलकर अर्थ स्पष्ट है। शृङ्गार में डूबने पर भी न डूबे हुए के समान वैराग्य, परतन्त्रता में जकड़े पर भी न जकड़े हुए की स्वतन्त्रता, पूरे व्यभिचार में पड़ने पर भी पवित्र चरित्र का एक मूर्तिमान स्वरूप था श्रीकृष्ण। कामुक होने पर भी सन्यासी; गुलाम होने पर भी मालिक—ओह! कितनी असाधारण सृष्टि! मन देखा एक दृश्य! अनसुनी एक कहानी—हाँ, उस महापुरुष के पास जाने पर ऐसा एक अनुभव हमें होता है। लौकिक और अद्भुत है जनक की जीवनी; किन्तु अलौकिक और अद्भुत है श्रीकृष्ण की।

पहले किसी को यह विचार नहीं था कि बिना अन्य किसी प्रकार की चिन्ताओं के उस सुकोमल मुरली से प्रेमगानों को निकालने वाले वे नवपल्लव सदृश अधर पुट—लज्जा की मूर्तियाँ उन अबाध कुमारियों के कुटिल वाक्यों से हँसी उड़ाने ही के लिये हिलनेवाले वे अधर-पुट—अति गहन एक वेदान्त सूत्र को को संसार में उपस्थित करेंगे। भोग में भी त्याग, कर्म में भी अकर्म, हिंसा में भी अहिंसा; हाँ, विपरीतताओं के अदस उन ध्रुवों के बीच में एक अनुतापह ऐक्य (एकता) को दृष्टिगोचर करानेवाली वह गीता कहाँ से निकली?—लेखक की मित, लोललोलुप एक गोपालयुवक से! एक महर्षि से काम-वासना निकालने की अभिरुचि की मनःशक्ति श्रीकृष्ण में पूर्ण रूप से पायी थी। Heraclitus का मत है कि युद्ध सबकों का पिता है। संसार के युद्ध क्षेत्र में अतीव शक्तिशाली सत्य और असत्य की, सहिष्णुता और साहस की, दो सेनाओं ने युद्ध आरम्भ किया; उस सागर के विस्तार को देखकर मनुष्यात्मा चकित हो गई। तब श्रीकृष्ण की धर्म ध्वनि आकाश को मुखरित करती हुई आर्यभूमि के विशाल प्रांगण में गूँज उठी। अर्जुन का सुप्तता विवेक दीप फिर से आलमबान हो गया।

अद्भुत्व अहिंसा नहीं, सजीव एक हिंसा है श्रीकृष्ण का सन्देश। पापरहित एक पुण्य नहीं, पुण्य से भरा एक पाप है उसका आदर्श, क्योंकि पाप पुण्यों की विवेचना करनेवाली उस योगीश्वर की सूक्ष्मदर्शिनी दृष्टि अलौकिक ही है।

हाथ से नहीं बुद्धि के बल कमाता, एक महासाम्राज्य है श्रीकृष्ण का। विचार, विकार, श्रद्धा इन तीनों अन्तःकरण की प्रवृत्तियों ने उस में पूर्णता को प्राप्त किया था। ज्ञानादि चारों योगों में उसका जो पाण्डित्य था, वह इसका गवाह है। कर्म का, शक्ति का, प्रेम का, त्याग का, दैवी सन्देश का उस महापुरुष ने इस संसार में प्रचार किया। सार्वकालिक तथा सर्व नवीन है वह। श्रीकृष्ण का संदेश न तो डरपोकों के लिये है, न शक्तिहीनों के लिये; किंतु वीरों और बलिष्ठों के लिये है। मरे हुओं के नहीं, चैतन्यों के लिए; परतन्त्रों के नहीं स्वतन्त्रों के लिए; बूढ़ों के नहीं युवकों के लिए; श्रीकृष्ण अग्नि की लपटों के समान चमकते और तारों के समान शान्त उपदेश से अनुग्रहीत करने के लिये उत्पन्न हुए थे। पराजय में भी विजय, मृत्यु में भी जीवन, युद्ध में भी शान्ति, अनेक वृत्तियों का एक अद्भुत समन्वय उस महात्मा में देखने में आता है।

पाँच हजार वर्षों के पहले भारत के अन्तरिक्ष में निकल आनेवाले उस दिव्य दिवाकर की सुनहली किरणें आज भी के कालान्धकार को भेदन करती हुई लोगों के हृदय कमलों को विकसित करती हैं।

अमेरिका का पत्रकार-जगत

वे व्यवसायी हैं, या श्रमजीवी ?

लेखक—श्रीयुत गोपीवल्लभ उपाध्याय

अमेरिका में साढ़े सात लाख रुपये वार्षिक वेतन पानेवाले कुशल पत्रकार 'मि॰ आर्थर ब्रिस्बेन' के जीवन की कुछ घटनाएँ 'आगरा' के पाठकों को हम बतला चुके हैं। उस पर से यह कल्पना हो सकती है कि अमेरिका में सोने की नदियाँ बहती होंगी, अतएव वहाँ पहुँच कर अल्प काल में ही धनी बनने का प्रयत्न किया जाय, किन्तु जिस प्रकार उस लेख में 'पत्रकार के व्यवसाय की उज्ज्वल दिशा दिखलाई गई है, उसी प्रकार आज हम पाठकों को वहाँ के 'पत्रकार-जगत्' की पीड़ितावस्था का चित्र भी दिखलाना चाहते हैं, जिससे पता चल सके कि व्यवसाय में स्वामि-सेवक की दृष्टि से सर्वत्र एक ही-सी दशा है।

प्रेसिडेंट रूजवेल्ट ने औद्योगिक उन्नति के लिए एक जबर्दस्त योजना कार्य रूप में परिणत की है। उसका नाम है—'National-Industries Regeneration Administration' (Nira) अर्थात्—'राष्ट्रीय उद्योगों का पुनरुद्धारक तंत्र'। इस तंत्र के अन्तरगत अमेरिका के सैकड़ों छोटे-बड़े व्यवसायों में मालिक और मजदूरों के बीच शर्तनामे तैयार हुए हैं। जो Code (कानून) के नाम से सम्बोधन किये जाते हैं। इन कानूनों का आदर्श श्रमजीवियों के लिए काम के घंटों का निर्णय करवा कर वेतन की कम से-कम मात्रा कहाँ तक होनी चाहिए, इसका फैसला करवा देना है। 'नीरा'-योजना के संचालक जनरल जान्सन पत्रकार (जर्नलिस्ट) समाज की सहायता से अमेरिका के लगभग सभी उद्योग-धंधों के स्वामी और श्रमजीवियों के बीच शर्तनामे तैयार कराने में सफल हुए हैं। यही कारण है कि जर्नलिज्म के व्यवसाय में लगे हुए व्यक्तियों ने 'नीरा'-तंत्र के अधीन स्वामी और सेवक के बीच शर्तें तय कराने वाला कानून (Code) तैयार करने के लिए जब जनरल जान्सन से निवेदन किया, तो उन्होंने प्रेस के मालिकों और प्रेस का कार्य करने वाले श्रमजीवियों के प्रतिनिधियों की एक सभा बुलवाई और 'उसके द्वारा नियम बनाने के लिए जाँच शुरू की गई। जनरल जोन्सन ने स्वतः इसमें भाग लिया और अन्त में पत्र एव प्रेस के स्वामियों से इस प्रकार की शर्तें निश्चित हुईं—

(१) पत्र-पत्रिका के व्यवसाय में काम करने वालों को प्रति सप्ताह कम-स-कम ३५ डॉलर वेतन दिया जाय।

(२) कुछ समय काम करने वालों का साप्ताहिक वेतन कम से-कम १५ डॉलर होना चाहिए।

गत चार वर्षों से अमेरिकन पत्रकार अपने व्यवसाय में भी मंदी का असर अनुभव करते आ रहे थे, अतएव इन शर्तों के निश्चित हो जाने से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई; किन्तु, पत्र के स्वामियों ने इन निश्चित-नियमों से बचने के लिए एक मार्ग खोज निकाला, अर्थात्—पत्र को प्रकाशित करने वाले पब्लिशर्स जो कि अमेरिका में प्रबल सत्ताधारी माने जाते हैं, उनपर प्रयुक्त होने वाले नियमों के निश्चित करने की योजना होने पर पत्रकारों को यह भय था कि उस सामुहिक शक्ति के सम्मुख जनरल जान्सन तो क्या, किन्तु खुद प्रेसीडेंट रूजवेल्ट भी न टिक सकेंगे। सो, इस काल्पनिक भय के सत्य सिद्ध होने का एक विचित्र अवसर आ उपस्थित हुआ; अर्थात्—उन्होंने यह बतलाया कि 'पत्रकार एव पत्र के मालिकों (Publishers) के बीच निश्चित की जानेवाली शर्तों का मसौदा तैयार कर खुद प्रकाशक पेश करें।

अन्त में पत्र के स्वामियों ने यह शर्त पेश की कि 'देश के पत्रकार एव पत्र में काम करनेवाले लेखक तो व्यवसायी (Professionals) हैं, अतएव 'श्रम-जीवियों' के लिए बनाये हुए 'नियम' उनके लिए काम नहीं दे सकते।

इस सूचना के तार-समाचार बिजली की तरह देश के चारों कोनों में फैल गये। आर्थिक-संकोच के दूषित वातावरण में काम करनेवाले पत्र के संवाददाताओं तथा लेखकों की आशा पर तुषार-पात हो गया, क्योंकि कम-से-कम वेतनवाली शर्त का अमल न होने पर वे मौजूदा जमाने के बढ़े हुए खर्च को पूरा करने में असमर्थ हो जाते। फलत: पत्रकार-जगत् में इस समाचार से निराशा की लहर फैल गई। कठोर मगजपची करके मालिकों को लाखों डॉलर प्राप्त करानेवाले हजारों रिपोर्टरों और लेखकों के अन्तःकरण करुण निश्वासों के साथ दहल उठे।

किन्तु वे कोई भारतीय पत्रों के गरीब संवाददाता या लाचार लेखक थोड़े ही थे! उन्होंने अपनी निश्चित काय-शक्ति का उपयोग किया और सभाएँ करके और व्यक्तिगत रूप से प्रकाशकों (पत्र के स्वामियों) को इस युक्ति (उक्त शर्त के लाभ से वंचित रखनेवाली) का जोरदार विरोध करनेवाले ८००० तार जनरल के नाम खटखटा दिये!

क्योंकि पत्र के अन्य श्रमिकों को निश्चित वेतन की सुविधा मिलने की दशा में सिर खपाकर मौजूदा जमाने की दौड़ धूप में दिन-रात कठिन श्रम का पसीना बहानेवाले तथा घर बार की पर्वाह न करके वक्त पर जान लड़ा देनेवाले पत्रकारों को, कम-स-कम वेतन के नियम से, वंचित रखना सरासर अन्याय ही था! अंततः उनका उद्योग व्यर्थ नहीं गया।

जनरल जान्सन न पत्रकारो के पक्ष में फैसला देते हुए बतलाया कि 'सप्ताह भर में ४० घंटे या इस से अधिक समय तक काम करने वाले पत्रकारों या समाचार-पत्रों में काम करने वाले लेखकों को प्रति सप्ताह कम-से-कम ३५ डॉलर वेतन तो दिया ही जाना चाहिए' इस फैसले से पत्र-स्वामियों में फूट पड़ गई और कई पत्र वालों ने पत्रकारों का कम से-कम वेतन देने के विषय की उक्त शर्त स्वीकार करली, किन्तु दूसरे अनेक पत्र-स्वामियों ने यह मिथ्या पुकार मचाई कि 'जनरल जान्सन समाचार पत्रों की मुक्तता पर आघात करने के लिए खड़े हुए हैं।

शिकागो का 'ट्रिब्यून' और मि॰ हर्स्ट के समाचार पत्र, जनरल जान्सन के विरुद्ध हल्ला मचाने वालों में प्रमुखता से भाग लेने लगे। उन्हों ने 'नीरा'-योजना और जनरल जान्सन के निर्णय पर खुल्लम खुल्ला आक्षेप करना आरम्भ कर दिया।

फलत: जनरल जान्सन को इन शब्दों में उन्हें मुँहतोड़ उत्तर देना पड़ा कि 'भूत के नाम पर सिर घुमाने वाले (पत्रों के स्वामी) इस समय प्रेसीडेन्ट के आदमियों को फिर से काम पर लगाने के कार्य-क्रम के विरुद्ध अनेक संदिग्ध भूत खड़े कर रहे हैं। उनकी गुनगुनाहट अभी तो 'पत्रों की स्वतंत्रता' रूपी मरी हुई बिल्ली का भूत खड़ा कर 'नीरा'-योजना को अपना विरोधी बतला रही है, किन्तु यह भय का भूत अधिक समय तक टिक नहीं सकता और अन्त में सत्य की ही विजय होगी; इसलिए जो शक्तिशाली व्यक्ति विरोध में खड़े हुए हैं, वे सच्चे कारणों को प्रकट करें और पत्रों की स्वतंत्रता का बहाना छोड़ दें; क्योंकि वे इस कानून से लाभ तो उठाना चाहते हे, अर्थात् 'नीरा'-योजना का नियम पत्रों का स्वतंत्रता का विरोधी नहीं है, वरन् पत्रों के स्वामी अपने नौकरों, पत्रकारों को सप्ताह में ३५ डॉलर देने से स्पष्ट शब्दों में इनकार कर, बहाने बनाते हैं। देखना चाहिए कि अमेरिकन पत्रकार का यह आंदोलन क्या रंग लाता है।

(मुंबई समाचार के एक लेखके आधार पर)

अनुकरण

लेखक—श्रीयुत वीरेन्द्र मालवीय

आदर्श पुरुषों का अनुकरण जीवन को उच्चता की ओर ले जाता है, तथा व्यक्तित्व के पुष्प को विकसित कर उसके दिव्य सौरभ से समाज का उद्यान स्वर्गोपम बना देता है, किन्तु आदर्शहीन अनुकरण न केवल जीवन को विद्रूप बनाता है, वरन् उसे नष्ट भी कर देता है।

मनुष्य में अनुकरण की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। उसे विकास के लिये प्रकृति से मिला हुआ यह एक महान् वरदान है। अनुकरण जीवन को प्रगति प्रदान करता है। अनेक दुर्बलताओं से युद्ध करना सिखलाता और उसे सच्चा कर्मवीर बनने में समर्थ करता है।

अनुकरण जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि भोजन। अनुकरण को मानसिक आहार भी कहा जा सकता है। भोजन जिस प्रकार शरीर में जीवन शक्ति की स्थापना करता है, उसी प्रकार अनुकरण भी व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

अनुकरण मनुष्य में मनुष्यत्व की स्थापना करता है। धीरे-धीरे उसे देवत्व की ओर ले जाता है। कभी कभी इसके विपरीत भी होता देखा गया है। मनुष्य अनुकरण के द्वारा पतित भी हो जाता है, किन्तु परिस्थिति इसका विशेष कारण होती है। समाज का—परिवार का—वातावरण जैसा होगा, अनुकरण के द्वारा जीवन पर वैसा ही प्रभाव पड़ेगा।

एक बालक के बाल्यकाल में जब अनुकरण का आरम्भ होता है, तब वह अबोध होता है—उस समय वह यह अनुभव नहीं कर सकता कि उसे कैसा अनुकरण करना चाहिए, इसलिये उस समय यह दायित्व उस पर नहीं, माता पिता पर होता है। यदि माता पिता उसे दूषित वातावरण के अनुकरण से दूर न रखेंगे, तो उसका जीवन दूषणों से पूर्ण हो जायगा, इस लिए माता पिता को तब तक इसका खयाल रखना चाहिए, कि जब तक उसकी बुद्धि अपरिपक्व रहे, उन्हें प्रयत्न के द्वारा श्रेष्ठ वातावरण तैयार करना चाहिए जिससे वास्तविक अनुकरण का लाभ उठाते हुए उस की बुद्धि अपने दायित्व को समझने के योग्य बन जाय।

अनुकरणीय आदर्श श्रेष्ठ व्यक्तियों में ही होता है। अत: उनकी सहायता अवश्य लनी चाहिए।

वह अनुकरणीय आदर्श, जो श्रेष्ठ पुरुषों में होता है, क्या है? वे कौनसी विशेषताएँ हैं, जिनसे जीवन उन्नत होता है? उन के किन किन गुणों को हमें ग्रहण करना चाहिए? यह प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। शान्ति के साथ प्रत्येक युवक को इनका हल करना चाहिए।

अनुकरणीय आदर्शों में सबसे पहला संयम है। संयम का अर्थ है—इन्द्रियनिग्रह। मानवीय विकास में इसका स्थान बहुत ऊँचा है। मनुष्य जितना अधिक संयमी होगा, संयमी पुरुषों का अनुकरण करेगा, उसका व्यक्तित्व उसके अनुरूप होता चला जायगा।

दूसरा अनुकरणीय आदर्श नियमितता है। नियम हमारे जीवन को व्यवस्थित बनाएगा। नियमित जीवन ही विकास को प्राप्त होता है, नियमित जीवन के मानी हैं, समय का अधिक से अधिक उचित उपयोग करते हुए जीना। नियमित जीवन व्यतीत करने के लिए हमें समय का इस प्रकार विभाजन करना चाहिए कि हमारा प्रत्येक क्षण आदर्श का पालन करते हुए व्यतीत हो, व्यर्थ न जाए, अर्थात्—पठन पाठन, विचार, सत्संगति, परोपकार और पवित्रता के सम्पादन में समय को व्यतीत करना चाहिए।

तीसरा अनुकरणीय आदर्श सत्यनिष्ठा है। यह एक गुण जीवन को महान बनाने वाला है।

चौथा अनुकरणीय आदर्श कार्य-तत्परता है।

जब तक उपर्युक्त आदर्शों का दृढता पूर्वक पालन नहीं किया जाता, तब तक उनसे कोई लाभ नहीं। आदर्श अनुकरण का जब हम व्यवहार करेंगे, तभी जीवन में परिवर्तन होगा। गुणों का पोषण करके व्यवहार में लाने पर ही उनसे लाभ उठाया जा सकता है।

अनुकरण करने के पहले आदर्शों को मनन पूर्वक समझ लेना चाहिए, अन्यथा आदर्शों के विषय में भ्रम हो जायगा। बिना विचारे अनुकरण करना मूर्खता है।

अन्धानुकरण के कारण ही हमारी सामाजिक अवस्था पतन की पराकाष्ठा तक पहुँच गई है। फैशन और सभ्यता के नाम पर हमारा जीवन असभ्य और विलासी होगया है। विचार-हीनता के कारण हमने इतना अधिक हेय अनुकरण कर लिया है कि हम कहीं के भी नहीं रह गये हैं। योरोपीय जातियों के अवगुणों को ही बटोरा है, उनकी देश-भक्ति हमें छू भी नहीं गई है। वे अपने देश की वस्तुओं का उपयोग करते हैं, किसी गैर मुल्क को लाभ पहुँचाना क़तई पसन्द नहीं करते। हमने यह कहाँ सीखा है, हम तो इसके विपरीत ही कर रहे हैं। वे अपने राष्ट्रीय वातावरण के अनुकूल रहते हैं। उसके लिए भारी से भारी त्याग करने को तत्पर रहते हैं और हमारी अवस्था उसके बिल्कुल विपरीत है। यह अन्धानुकरण का ही प्रभाव है, और हमारी सदियों की गुलामी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी ने हमारे जीवन को खोखला बनाया है। हम निर्जीव, व्यक्तित्वहीन हो गये हैं और हमारा पशुजीवन कुरीतियों और ढकोसलों के गर्त में सड़ रहा है। आश्चर्य तो यह है कि हम इस अधम अवस्था से ऊबते तक नहीं हैं।

आज बीसवीं सदी है, विज्ञान का युग है। बाप-दादों के नाम पर मूर्खता का समर्थन करनेवाला समय नहीं है। बुद्धिवाद का जमाना है। पुरातन कालीन रूढी अड़ता अब स्वीकार नहीं की जा सकती। केवल प्राचीनता का ढोल पीटना आज असम्भव है।

कुरीतियों का जमाना लद चुका है। अन्धानुकरण अब नहीं किया जा सकता। जो अनुकरण हितकर सिद्ध होगा, बुद्धि जिसके विषय में अनुकूल निर्णय देगी, विज्ञान जिसका समर्थन करेगा, वही ग्रहण किया जायगा और उसमें ही हमारा कल्याण निहित है।

रतना भंगी

लेखक—श्रीयुत हरिभाई त्रिवेदी

छात्रालय का सुपरिंटेंडेंट-पद स्वीकार किये मुझे छः मास हुए हैं। छात्रालय के कम्पाउण्ड में ही सुपरिंटेंडेंट के लिए एक छोटा-सा निवास स्थान बनाया गया है। मैं कुटुम्ब-सहित उसीमें रहने लगा हूँ।

मेरा मुख्य काम पढ़ाने का है, किन्तु अस्पृश्यता-निवारण के लिए मेरी आत्मा उत्कण्ठित रहती है; इसलिए जब-जब प्रसंग प्राप्त होता है, तब-तब उस दिशा में कार्य करने के विधान पर विचार किया करता हूँ। एक दिन मैं विद्यार्थियों से अस्पृश्यता के बारे में बात-चीत कर रहा था। मुझे मालूम हुआ, कि कुछ छात्र ये बिलकुल नहीं मानते, किन्तु छात्रालय के संचालकों को यह बात पसन्द नहीं है, इसलिए ये भी अन्त्यजों का स्पर्श करने में हिचकते हैं। एक बार छात्रालय के मंत्री मण्डल और ट्रस्टी बोर्ड के सब सदस्यों से इस बारे में बात-चीत हुई, उससे ज्ञात हुआ, कि उनमें के कई साहब तो समाज के भय से अन्त्यजों का स्पर्श नहीं करते, कई महाशय ऐसे भी मालूम हुए कि जो अन्त्यजों के स्पर्श को धर्म की दृष्टि से पाप मानते हैं। एक तरफ़ बड़ों के आदर के लिए विद्यार्थियों का अयोग्य सद्भाव दूसरी ओर बड़ों के हृदय में समाज का डर और तीसरी ओर पाप-पुण्य के सम्बन्ध में लोगों की अज्ञान-जन्य विकृत कल्पना! इन तमाम मुश्किलातों में से मुझे अपना मार्ग निकालना बहुत ही कठिन मालूम हुआ, किन्तु मैं अपने विचार को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए दृढ़ संकल्प किये हुए था। हिम्मत हारकर कैसे बैठे रहता। छात्रालय का पुराना भंगी बड़ा गन्दा था। उसकी गन्दी आदतों का प्रतिबिम्ब छात्रालय के कामों में भी दिखलाई पड़ता और इस तरह छात्रालय की गन्दगी हमेशा बढ़ती ही रहती। बचपन से ही वह ऐसे ख़राब, गन्दे वातावरण में रहा था और वृद्ध भी हो चला था, इससे मेरे—गन्दगी दूर करने के—सब प्रयत्न बेकार हो जाते थे। एक बार खूब विचार कर भंगी को बदलने का मैंने निश्चय किया और पुराने भंगी के स्थान पर अठारह बरस के एक युवक भंगी लड़के को नौकर रख लिया। इस लड़के का नाम रतना था। कभी कभी मैं मनोरंजन के तौर पर उसे रतनाजी कहकर पुकारा करता था। जिस गाँव में वह रहता था, उस गाँव में अन्त्यज-शिक्षा-प्रबन्धक-मण्डल की ओर से एक अन्त्यज पाठशाला भी थी और रतना उस पाठशाला में दूसरी श्रेणी तक पढ़ा था। रतना को नौकर रखते समय ही मैंने उसे भली-भाँति समझा दिया था कि पाख़ाने और पेशाबख़ाने किस प्रकार स्वच्छ रखने चाहिए मेरी बातें उसको भली लगीं। जब-जब मैं उसके साथ ऐसी बातें करता, तब तब वह अपनी पाठशाला के शिक्षक को बड़ा याद किया करता। उसके शिक्षक अन्त्यजों के सुधार के लिए कितना कष्ट सहन कर रहे हैं और कैसी-कैसी मुश्किलोंका उन्हें मुकाबिला करना पड़ रहा है, इसका दिलचस्प वर्णन वह करता। उसे नौकर हुए अभी दो सप्ताह भी नहीं हुए, तो भी मेरे यहाँ के सब विद्यार्थी उससे हिल मिल गये। उसकी स्वच्छता पर वे बहुत चकित थे और रतना भी विद्यार्थियों के स्नेह-व्यवहार से प्रसन्न था।

मैं ऑफ़िस के काम से छुट्टी पाकर घर आ रहा था। रतना उस समय मेरे निवासगृह और छात्रालय के बीच का चौक बुहार चुका था। कूड़े का ढेर टोकरी में भरते वक्त उसे एक छपा हुआ काग़ज़ का टुकड़ा मिला, झाड़ू को बगल में दबा कर वह उस छपे हुए टुकड़े को पढ़ने में लीन हो गया। मैं उसके पास गया, और पीठ पर एक हलका-सा घूँसा लगा कर बोला—'यहाँ क्या कर रहा है?

उसने कहा—साहब, ज़रा यह काग़ज़ पढ़ने लगा था। माफ़, कीजियेगा—इतना कह कर उसने काग़ज़ के टुकड़े को जेब के हवाले किया और फिर चल दिया। मैंने रोक कर उससे कहा—इसमें कोई हरज नहीं, लाओ वह काग़ज़ का टुकड़ा मुझे दो हम दोनों मिल कर पढ़ें।

रतना मुझसे मेरे स्वभाव से बराबर वाक़िफ़ हो गया था। पहले मेरी ओर मुसकुराया और फिर जेब से काग़ज़ का टुकड़ा निकाला। मैं उसके पास चला गया, और उससे वह टुकड़ा पढ़वाने लगा।

पाँच मिनट व्यतीत हुए होंगे कि मेरी पत्नी ने मुझे पुकारा। 'शाबाश, शाबाश, रतनाजी' इतना कह कर मैं घर की ओर चल दिया।

'उस कोने में खड़े रह कर प्रभाशंकर के साथ क्या पढ़ रहे थे?'—मेरी स्त्री ने मुझसे पूछा।

मैं ज़रा हँस कर बोला—वह प्रभाशंकर नहीं था?

'तब कौन था?'

'वह तो रतना था।'

'ऐं! क्या कहते हैं आप!'—मेरी स्त्री आश्चर्य में डूब गई, फिर बोली—'ओह! यह तो पहचाना भी नहीं जाता!'

'कैसे पहचाना जाय, साफ़-सुथरा जो रहता है!'

'किन्तु मुझे तो वह प्रभाशंकर ही मालूम पड़ा। प्रभाशंकर जितना ही लम्बा, उसके जितना ही हट्टा-कट्टा और कपड़े भी उसके जैसे ही हैं।'

'तुम्हारा कहना ठीक है। प्रभाशंकर रतना को खूब चाहता है, कल ही उसने रतना को अपने पहनने के नये कपड़े दिये हैं।'

'सब भंगी यदि ऐसे ही हों, तो छूने में किसी को ज़रा भी उज्र नहीं हो सकता, और घर में रखने की भी इच्छा हो सकती है।'

'बिलकुल सत्य'—मैंने यह कहा और अपने कमरे में चला गया।

मेरी स्त्री पुराने विचार की थीं। उनके विचारों को बदलने का मैं धीरे-धीरे प्रयत्न कर रहा था।

'भंगी को छूने से पाप लगता है, यह ग़लत है'—इतना तो अब वह कहती थीं, किन्तु भंगी के छू कर स्नान तो अवश्य ही करना चाहिए। ऐसा वह अब भी मानती थीं, और अपने इस विचार को आग्रह-पूर्वक हमेशा मेरे सम्मुख प्रकट करती थीं।

आज उनके मुख से एका-एक सत्य निकल पड़ा। 'रतना-जैसे सब भंगी हों तो?' मुझे भी अपने अन्त्यज सम्बन्धी विकट साधना के लिए उत्तम साधन हाथ लगा। वास्तव में सब भंगी रतना के ऐसे साफ़-सुथरे हों, तो अस्पृश्यता निवारण के मार्ग से एक कठिनाई दूर हो जाय।

जर्मन - पोलिश - संधि का मर्म

हिटलर शतरंज का पक्का खिलाड़ी है

लेखक—प्रो० व्रजनारायण अग्रवाल बी० ए० ऑनर्स

युद्ध के बाद पोलेण्ड को मित्र राष्ट्रों ने डैंजिग का बन्दरगाह और ऊपरी सिलेसिया देकर पराजित जर्मनी के मर्मस्थल पर आघात किया था। फासिस्टवादी जर्मन, साम्यवादी जर्मन और फिर राज भक्त जर्मन शपथ के लेकर इस अपमान का बदला लेने की बात कहता था। नाजियों से इस बदले की और भी अधिक आशा की जाती थी और सचमुच जब हिटलर ने शासन की बागडोर हाथ में ली, तो मित्र राष्ट्रों को विश्वास-सा हो गया कि बस अब जर्मनी पोलेण्ड से डैंजिग छीनने की चेष्टा करेगा और वार्सेलीज की 'संधि' की रक्षा करने के लिए मित्र राष्ट्रों को बाध्य होकर पोलेण्ड का साथ देना पड़ेगा। फ्रांस में काफी स्पीचें हुईं और जर्मनी को धमकी दी गई। जर्मनी को अपने डैंजिग वाले दावे में इटली से प्रचुर सहायता मिलने की आशा थी, पर मुसोलिनी चार शक्तियों के पैक्ट पर हस्ताक्षर करके ही सन्तुष्ट हो गया।

महत्वाकांक्षी हिटलर एक ऐसा जर्मन देश तैयार करना चाहता है, जिसमें समूचा आस्ट्रिया, समूचा हंगरी, हालैंड का उत्तरी प्रदेश और अल्सास-लोरेन शामिल हों, पर उसके मार्ग में बड़ी कठिनाइयाँ थीं। अभी अल्सास लोरेन को वापस लेने का दावा करना मूर्खता थी। प्रिंस बिस्मार्क ने फ्रांस पर धावा करके नैपोलियन तृतीय से यह प्रदेश छीन लिया था। युद्ध के बाद फ्रांस को यह प्रदेश फिर वापस मिल गया, पर साथ ही जर्मनी का सआर प्रदेश भी फ्रांस को दे दिया गया और फिलहाल उसको सआर का मामला तय करना चाहता है। इसके लिए फ्रांस और पोलेण्ड की मैत्री तोड़नी आवश्यक थी।

पोलेण्ड ने फ्रांस से मैत्री तोड़ कर जर्मनी से क्यों की? जर्मनी में सैनिक तैयारियाँ तेजी से की जा रही हैं। यदि यही रफ्तार रही तो, शीघ्र ही जर्मनी पहले जैसा जर्मनी हो जायगा। ऐसी अवस्था में डैंजिग का प्रश्न उठने पर, क्या फ्रांस केवल उदारता के वशीभूत होकर जर्मनी से भिड़ जाता? उधर हाल ही में फ्रांस में कट्टर राष्ट्रवादियों का जोर बढ़ रहा है और वे पोलेण्ड के लिए अपने धन जन को खतरे में डालना उचित नहीं समझते। पोलेण्ड के कर्ता धर्ता पिल सुडस्की ने इन सारे पहलुओं पर भी विचार किया और साथ ही हिटलर के इस प्रस्ताव पर भी गौर किया कि यदि रूस के साथ जापान का युद्ध छिड़ जायगा, तो जर्मनी और पोलेण्ड शान्ति पूर्वक रूसी यूक्रैन प्रान्त पर कब्जा कर लेंगे और आधा आधा बाँट लेंगे। साथ ही १९२० से जर्मनी और पोलेण्ड का जो व्यापार बन्द सा है, वह भी खुल जायगा। इधर जब इटली ने इगलैंड और फ्रांस को ४ शक्तियों के पैक्ट पर दस्तखत करने को राजी किया, तो पोलेण्ड की आँख खुली। फ्रांस जर्मनी को शान्त रखने की धुन में अपने पुराने मित्र पोलेण्ड को भूल गया! और दस्तखत करते समय कोई ऐसा भारी संकट भी उपस्थित न था। फिर यदि पोलेण्ड पर सचमुच ही कोई खतरा आया, तो फ्रांस से क्या आशा की जा सकती है? बस, पिल्सुडस्की हिटलर के प्रस्ताव पर राजी हो गया।

और हिटलर पोलेण्ड की मैत्री क्यों हासिल करना चाहता था? इसमें कोई शक नहीं कि इस समय पोलेण्ड का हवाई जहाजी बेड़ा फ्रांस को छोड़कर शायद सबसे अधिक दृढ़ है, अत पोलेण्ड और फ्रांस का गुट तोड़ना ही ठीक था। अब हिटलर निश्चिन्त रूप से आस्ट्रिया के मामले की ओर ध्यान दे सकेगा। वह मुसोलिनी को भी नाराज नहीं करना चाहता और साथ ही आस्ट्रिया को मुख्य जर्मनी में मिलाने का उसने निश्चय कर लिया है। चाहे कुछ हो, वह जर्मन भाषा भाषी लोगों का एक प्रबल राष्ट्र बनायगा। हाल ही में मुसोलिनी ने शायद हिटलर की पोलेण्ड वाली संधि का उत्तर देने के लिए ही, आस्ट्रिया और हंगरी से एक 'आर्थिक समझौता' किया है। समझौता आर्थिक है पर उसमें राजनीति का भी पुट मिला हुआ है, यह केवल समय ही बता सकेगा। साधारणतया इस प्रकार के सारे समझौते एक विशद, राजनीतिक के अंग मात्र होते हैं। पर इस संधि का कुछ विशेष महत्व नहीं है, क्योंकि आस्ट्रिया का चांसलर डोलफस हाल के हत्याकाण्ड के कारण बड़ा अप्रिय बन गया है और उसका पराजय अवश्यम्भावी है। उधर नाजी लोग आस्ट्रिया में डोलफस के विरुद्ध प्रचार करने में धूमधड़ाके के साथ लगे हुए हैं।

इस समय हिटलर के सामने आस्ट्रिया और सआर के प्रश्न हैं। सआर जर्मनी का एक ऐसा प्रदेश है, जहाँ कोयले की खाने हैं। यह प्रदेश युद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों ने एक निश्चित अवधि के लिए फ्रांस को क्षति पूर्ति के रूप में दिलवा दिया था। अब उस अवधि का अन्त आ रहा है। और १९३५ में सआर वासियों से अवगत किया जायगा कि क्या वे जर्मनी में मिलना चाहते हैं। साथही फ्रांस ने सआर प्रदेश में जर्मनी के विरुद्ध प्रचार जारी कर रक्खा है। हिटलर इस प्रचार के महत्व को समझता है, इसीलिये उसने कम से कम एक शत्रु को मित्र बना लेना अच्छा समझा है। वह मुसोलिनी की चालों को समझता है। वह अच्छी तरह जानता है कि यदि जर्मनी और आस्ट्रिया के मिलाने में कोई अकेली शक्ति बाधक है, तो वह इटली है, पर वह चुपचाप डोलफस के पराजय की बाट देख रहा है।

इस प्रकार हिटलर लगभग वही चालें चल रहा है, जो प्रिंस बिस्मार्क ने १८६६ में चली थीं। प्रिंस बिस्मार्क ने नैपोलियन तृतीय से संधि की और उसकी तटस्थता का वादा कराकर आस्ट्रिया पर धावा कर दिया।

जब आस्ट्रिया हार गया और फ्रांस ने आस्ट्रिया का कुछ हिस्सा माँगा तो बिस्मार्क ने वे गुप्त संधियाँ प्रकट कर दीं, जिनके अनुसार नैपोलियन तृतीय की आँखें लक्सेम्बर्ग और बेल्जियम पर लगी हुई थीं। बस, फ्रांस बदनाम हो गया। बिस्मार्क ने फ्रांस पर धावा कर दिया। आस्ट्रिया चुपचाप देखता रहा और फ्रांस के हाथ से अल्सास-लोरेन निकल गये।

हिटलर भी फ्रांस का राजनीतिक बहिष्कार कराना चाहता है। वह फ्रांस को जर्मनी का जन्म का शत्रु समझता है और इस शत्रु के विनाश के उपाय उसने अपनी एक पुस्तक में बताये हैं। वह इङ्गलैण्ड को अपने पक्ष में, या कम-से कम तटस्थ रखना चाहता है। उसने पोलेण्ड को तोड़ लिया है। और इटली फ्रांस का चिरशत्रु है ही। इस प्रकार वह पहले आस्ट्रिया को मिला लेगा, फिर सआर का प्रश्न हल करेगा और उसके बाद डैंजिग का प्रश्न उठायगा। यदि इस १० वर्ष के बीच में जापान और रूस में युद्ध छिड़ गया तो, फिर क्या कहना है! ये दोनों नये मित्र यूक्रैन में जाकर के पीड़ित मनुष्यों का उद्धार करेंगे और उस प्रदेश का आधा भाग लेकर पोलेण्ड खुशी-खुशी डैंजिग पर से अपना दावा उठा लेगा। कैसी सुन्दर योजना है!

पोलेण्ड समझता है, चलो १० वर्ष का अवकाश मिला, यही बहुत है। कौन जाने उस समय तक नाजी सरकार रहे न रहे। कम-से-कम इस समय तो उन ५ लाख जर्मनों के पोलेण्ड विरुद्ध प्रचार से छुटकारा मिल जायगा, जिन्हें वार्सेलीज की बदौलत पोलेण्ड में शामिल कर दिया गया है। ये पाँच लाख निवासी पिल सुडस्की के लिए वह खौलता हुआ दूध सिद्ध हो रहे हैं, जिसे किसी मूर्ख ने जल्दी में मुँह में भर लिया था।

पर हिटलर को मालूम है कि नाजी सरकार जायगी नहीं, रहेगी और अपना लक्ष्य सिद्ध करेगी।

आशा और तृष्णा*

लेखक—श्रीयुत अम्बिकादत्त शर्मा 'अम्ब'

माया मरी न मन मरे, मर मर गये शरीर।
आशा तृष्णा ना मरी, कह गये दास कबीर॥

• • •

मुझको दिल का सबब हो गई थी मायूसी,
मैं क्या किया कि फिर मुझे उमीदवार किया।

गुल और बुलबुल की बातें, दीपक और पतङ्ग का प्रेम प्रकरण, आशा और तृष्णा की करुण-कहानियाँ हैं—उम्मेद और आरजू की पुरदर्द दास्तानें हैं। रात को सहृदयों की सभा मे, दीपक का दिव्य प्रकाश देखकर बड़ी-बड़ी उमङ्ग और तरङ्ग से, आशा करके पतङ्ग उसकी ओर दौड़ा, उसे अपने प्राणाधिक-प्रिय मित्र प्रदीप से मिलने की—गले लगाने की उत्कट उत्कण्ठा थी, अभी एक बार दिल खोलकर देखने भी न पाया था कि बेचारे बदनसीब पतङ्ग का अङ्ग-प्रत्यङ्ग लौ की लपट से झुलस गया—सारे पर झुलस गये, मित्र के चारु चरणों पर गिरकर अँगड़ाई ली, सिकुड़ा और अपनी नन्हीं-सी जान उस (दीपक) पर कुर्बान कर दी। प्रेम की वेदी पर प्राणों का बलिदान दे दिया, बज्मे इशरत में शोर मचा—पतङ्ग जल * गया।

धनी के द्वार पर—दौलतमन्द के दरवाजे पर—एक भूखा भिखारी, नङ्गे पाँव, सिर की खाल खुजाता हुआ, बड़ी आशा करके आया, दरे दौलत पर दिल थाम कर आवाज लगाई—'ईश्वर के नाम पर कुछ ...' बेचारा पूरी बात कहने भी न पाया था, कि श्वान समान वृत्ति-वाले नीच नौकरने कड़क कर कहा—'आगे बढ़ो। भिखारी की सारी आशाओं पर पानी फिर गया, उसका हृदय रो पड़ा, खाली हाथ चल दिया—(तेरे दर पै आये, सदा दे चले)'

• • •

निशा की नीरवता में एक नवयुवक, निश्चिन्त-चित्त से निद्रा देवी की गोद में पड़ा खर्राटे ले रहा था, आधी रात बीत चुकी थी, अकस्मात् घबरा कर उठा, आश्चर्यान्वित होकर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, ऊपर आकाश की ओर देखा, एक आह खींची, दिल पर हाथ रख कर कहा—

'मायूस हो चला था, तसल्ली से हाले दिल।
फिर तूने याद आके, बदस्तूर कर दिया॥'

अन्धकारमयी अर्धरात्रि, निस्तब्धता का एकान्त साम्राज्य, सारा संसार गफलत की गहरी नींद में पड़ा था, एक आदमी दबे पाँव दरवाजे पर पहुँचा, उसे खुला पाया, अन्दर उपस्थित हुआ, दियासलाई जलाई, चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, सन्दूकची मेज पर रखी हुई पाई, बगल में दबाई और चलने की ठहराई! मकान के मालिक की आँख खुल गई, उठकर पकड़ लिया, प्रातः ही पुलिस के हवाले किया, अदालत ने उसे जेल में भिजवा दिया, . . जीवन की घड़ियाँ जेल में गुजरने लगीं—चोर की पदवी प्राप्त हो गई, आशा और तृष्णा का यह फल मिला—उम्मेद और आरजू का यह नतीजा निकला।

आशा न हो, तो कुछ भी न हो, मनुष्य जीवन का प्रत्येक पल निराश होकर—ना उमेदी में सन्तोष के साथ सानन्द सम्पन्न होजाय—

'ना उमेदी! तेरे दिलके, तूने दी राहत मुझे।
कम हुआ जब एक अरमाँ, एक दुश्मन कम हुआ॥'

अकबर साहब ने बिल्कुल बजा कहा है। आलमे-अलफाज में यह बहुत बड़ी गलत फहमी है—शब्द संसार की यह बड़ी भारी भूल है। असह्य अपराध है, भला आशिके-सादिक परवाने को—सच्चे प्रेमी पतङ्ग को, ये दुनिया वाले, उसके प्राणाधिक-प्रिय प्रदीप से, शमअ से जलने वाला कहते हैं—कितनी कृतघ्नता है—है कुछ ठिकाना?

---

* तृष्णा—किसी देखी सुनी वस्तु की उपलब्धि की इच्छा का, नाम 'काम' है, यही इच्छा जब उस वस्तु के भोगन या प्राप्ति के समय के लम्बा हो जाने से अत्यन्त वेगवती हो जाती है, तब उस इच्छा का नाम 'तृष्णा' हो जाता है।

* पतंग (परवाने) के जलने की बात सुनकर अकबर साहब की एक सुन्दर सूक्ति पुरजोर अलफाज में अपना एक अत्यन्त उचित उज्र पेश करती है। गौर कीजिए—

'गलत फहमी बहुत है आलमे अलफाज में अकबर।
बड़ी मायूसियों के साथ अक्सर काम चलता है॥
य रोशन है कि परवाना है उसका आशिके सादिक।
मगर कहती है खल्कत शमअ से परवाना जलता है॥'

हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता

और उसपर महाराष्ट्रीय साधु सन्तों के विचार

सतश्रेष्ठ श्री तुकाराम महाराज स्पृश्यास्पृश्य के विषय में, देखिए, क्या कहते हैं। श्रीमद्भगवद् गीता में दिग्दर्शित चातुर्वर्ण्य की योजना गुण-कर्मों के विभागों पर ही निर्भर है, ऐसा देखने में आता है। यही तत्व श्री तुकाराम महाराज ने भी माना है। यदि इस दृष्टि से उनके अभगों का अध्ययन किया जाय, तो उपर्युक्त विधान की सत्यता स्पष्ट दिखाई देगी।

वैष्णवों का धर्म, अर्थात् विष्णु धर्म क्या है? संसार को विष्णुमय देखना। किसी भी जीव के प्रति 'मत्सर' भावना का अभाव रखने वाला ही सच्चा वैष्णव कहलाता है।

विष्णुमय जग वैष्णवाचा धर्म। भेदाभेद भ्रम अमंगल।
कोणाही जीवाचा न घडावा मत्सर। वर्म सर्वेश्वर पूजनाचें।

अर्थात्—'संसार' को 'विष्णुमय' देखना, यही वैष्णवधर्म है। भेदाभेद की भावना तो अमंगल है, अशुच है और भ्रम है। किसी भी जीव के प्रति मत्सर भाव का न रखना ही उस सर्वेश्वर की सेवा का सार है।

अमुक व्यक्ति ब्राह्मण, अमुक मराठा और अमुक अन्त्यज—इस प्रकार की दृष्टि वैष्णव की तो कदापि नहीं रह सकती। उस को तो घटघट में—चारों ओर—ईश्वर-ही-ईश्वर दिखाई देता है।

जन विजन झाले आम्हा। विठ्ठल नामा प्रमाणें।
पाहे तिकडे बाप माय। विठ्ठल आहे रखुमाई।

अर्थात्—'व्यक्तिमात्र' मुझे तो विठ्ठल और नामदेव स्वरूप हैं। जिधर देखता हूँ, उधर ये पिता और माता केवल विठ्ठल रखुमाई के रूप में ही दिखाई देते हैं।

आगे का अभंग भी ऊपर के तत्व का ही अनुगामी है—

जाति कूळ येथें असे अप्रमाण।
गुणाचे कारण असे अङ्गी।

यहाँ (इस दृष्टि में) जाति और कुल का कोई प्रमाण स्वीकार नहीं किया जाता।

इस देह में तो गुण ही (कारण) हैं। (गुणों का ही विचार किया जा सकता है।

तुकोबा छुआछूत को शरीर अथवा जाति जन्य नहीं मानते। उनका तो यह कहना है, कि—

सोवळें तरी हींच दोन्हीं। जरी कोणी साधील।
परद्रव्य परनारी यांचा धरी विटाल।

यदि साधना ही करनी है, तो इन दो वस्तुओं के स्पर्शास्पर्श की साधना करना। वे दो वस्तु कौन सी हैं? परधन और परदारा—इन्हें ही अस्पृश्यता मान।

प्रभु के सेवक के लिये उसकी जाति अथवा कुल कोई अर्थ नहीं रखता।

'हरि का सेवक'—किसी भी कुल या जाति को धन्य समझेगा।

हो का अन्त्यज कुळ। शुचि अथवा चांडाल।
म्हणवी हरीचा दास। तुका म्हणे धन्य त्यास॥

चाण्डाल के कुल में जन्म हो या पवित्र कुल में—जिसने अपने को भगवान् के चरणों में अर्पित कर दिया, वही धन्य है।

ऊपर के 'अभंगों' मे अशुचि कौन, यह बतलाया गया है। अब तुकोबाने 'शुचि' अर्थात् शुद्ध किसे माना है, यह भी देख।

विटाळ तो परद्रव्य परनारि, येथुनी जो दुरी सोवळा तो।

परद्रव्य और परदारा, बस इन्हीं की छूत मानो, जो इनसे दूर रहता है, उसे ही शुद्ध समझो।

इतने पर ही तुकोबा के स्पर्शास्पर्श का अन्त नहीं हो जाता। उन्होंने तो सब जातियों की नामवार सूची दी है और यह डंके की चोट से कहा है, कि प्रत्येक मनुष्य को नामस्मरण का समानाधिकार है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। चांडालाही अधिकार।
बाळे, नारी, नर। आदी करोनि वेश्याहि।

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, चाण्डाल—बालक। नर नारी—वेश्या आदि सभी को यह अधिकार है।

सच्चे ब्राह्मण को भी यदि क्रोध आ जाय, तो समझना चाहिए, कि उसे चाण्डाल ने छुआ है और यह 'छूत' देहान्त प्रायश्चित्त के द्वारा भी दूर नहीं की जा सकती, ऐसी तुकोबा की सम्मति है।

—हरिजन-सेवक

(क्रमशः)

चिट्ठी-पत्री

दौलत की दुनिया का अभिनय

श्री शिवरामदास गुप्त के लिखे अनेक नाटक मैंने पढ़े हैं और स्टेज पर उनका अभिनय भी देखा है। सम्भव है, साहित्य के कड़े पारखी के लिए इन नाटकों में साहित्यिकता का अभाव हो, पर हिन्दी रङ्ग-मञ्च पर अभिनय करने योग्य तथा पढ़ने में मन को गुदगुदाने की क्षमता रखने वाले नाटकों का बड़ा अभाव है और राष्ट्रीय दुर्बलता का द्योतक है। अवश्य हिन्दी में 'बर्नार्ड शॉ' के उत्पन्न होने में समय लगेगा, पर 'प्रसाद'जी ऐसी प्रतिभाएँ हमारे मस्तक को ऊँचा उठाने के लिए काफी हैं। हम लोग अपने सामने एक बड़ा भारी आडम्बर खड़ा कर किसी वस्तु की मीमांसा करते हैं, पर, मैं न तो उद्देश्य का भूखा हूँ और न कोई आदर्शवादी ही हूँ। मुझे जीवन के किसी कोने में, हृदय के किसी अंश में, प्रकृति के किसी गन्दे-से-गन्दे स्थल में भी, एक मीठी मुस्कराहट, एक कोमलता और एक मधुरिमा दिखला दीजिए और मेरे ऐसे प्रेम-सुख आनन्द के लिये वही रीझ जाने लायक बात होगी। और दिन भर का दफ्तर का थका-माँदा, केवल शिष्टाचार बर्त्तने के विचार से जब मैं जाय-सवाल धार्मिक नाटक-मण्डली का। मदन थियेटसहाल (काशी) में 'दौलत की दुनिया' अभिनय देखने गया, तब मुझे उसमें कुछ ऐसा सचार, ऐसा भाव, ऐसी मनोहरता प्रतीत हुई, जिसके लिए मैं नाटक लेखक को बधाई दूँ, या अभिनेताओं को, समझ में नहीं आता।

'बिना पैसे वाली' इस मण्डली का यह सीधा-सादा वार्षिकोत्सव था। मण्डली के इस बीते वर्ष के सभापति दीवान श्री गोकुलचन्द कपूर ने बड़े मार्मिक शब्दों में बिहार की दुर्दशा का स्मरण दिलाकर, केवल दुःख को भुलाने के लिए नाटक खेलने का प्रयोजन बतलाया था। उत्सव के सभापति, इनकमटैक्स-कमिश्नर श्री कन्हैयासिंह का भाषण उपदेशपूर्ण था।

एक धनी और विलासी कामुक की कामुकता, दरिद्र तथा निस्सहाय की कर्णमन्दी, विधवा, पर तपस्विनी सुन्दरी का अद्भुत चरित्रबल, विलासियों के लम्पट मित्रों की नीचता, गरीब की आह, हरिजन की दुर्दशा तथा सेवा-संस्थाओं का स्वार्थी हाथों में आने से घोर पतन, इनका बड़ा सजीव चित्रण था। पात्रों में लक्ष्मीकान्त के अभिनेता मा० बशीरुद्दीन, बा० रूपचन्द (गोपीनाथ) अब्दुलशकूर (गजाधर) अपूर्व (फूलकुमारी), बा० गिरधारीलाल (मन्त्री, सेवा-संस्था), तथा मा० कल्लूराम (विधवा सावित्री) का अभिनय प्रशंसनीय था। फिर भी पात्रों में अधिक संस्कार, अधिक संयम, अधिक स्वाभाविकता की आवश्यकता थी तथा नाटक में दो-चार सीन जरूरत से ज्यादा कड़वे और अति रंजित हो गये थे। अस्तु, बिना पैसे की यह संस्था इस अभिनय के लिए इतने अच्छे सीन-सीनरी कहाँ से एकत्र कर सकी, यही आश्चर्य है और अवश्य इसका श्रेय इस संस्था के अभिभावक श्री रामशरणलाल मुख्तार, श्री शिवनन्दनसिंह, श्री शिवरामदास, श्री गिरधारीलाल आदि को है।

इस मण्डली की सबसे बड़ी विशेषता यह है हिन्दू-मुसलिम दोनों बन्धु मिलकर इसका सञ्चालन करते हैं, इसमें कार्य करते हैं। दो चार निस्पृह व्यक्ति इसके स्तम्भ हैं। ईश्वर उन्हें पूर्ण सफलता प्रदान करे।

संस्था के मन्त्री श्री गिरधारीलाल की सूचना है कि वे भूकम्प पीड़ित बन्धुओं की सहायतार्थ अभिनय करना चाहते हैं। आशा है, काशी-वासी उन्हें इस सुकार्य में पूर्ण सहायता देंगे।

—परिपूर्णानन्द वर्मा।

अपना नाम अमर करने के लिये

विद्यानुरागी उदार सज्जनों से अपील

'सर्वेषामेव दानानाम् विद्यादानम् विशिष्यते'

शिक्षा से कोसों दूर, गावों में रहने वाले बिना पढ़े लिखे लोगों में ज्ञान का प्रचार करने के लिए 'प्रजाबन्धु-पुस्तकालय' एक उत्साही सज्जन की सहायता से स्थापित हो गया है। पुस्तकालय में इस समय प्राय एक हजार पुस्तके हैं और १५ २० पत्र पत्रिकाएँ आती हैं, जिनका सारा भार उन्हीं सज्जन की उदारता पर निर्भर है। संस्था गरीबों के लिए है, फलतः पैसो की कमी स्वाभाविक है। दूसरे पुस्तकालय का अभी कोई निजी भवन भी नहीं है। अस्तु आर्थिक दशा ठीक न रहने से और उचित स्थान के न होने से जनता पूर्ण रीति से पुस्तकालय से लाभ उठाने से वञ्चित रह जाती है।

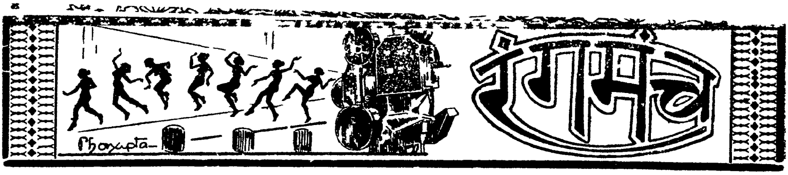
पर इस आवश्यकता की पूर्ति उक्त सज्जन एवं 'अधपेट रह कर काटते जो मास के दिन तीस हैं' के बल के बाहर की बात है। अन्य समर्थ लोग इस पर अभी ध्यान ही नहीं दे रहे हैं। संस्था को स्थायी रूप से चलाने के लिए निजी मकान, एक प्रबन्धकर्ता तथा कुछ आवश्यक सामान (आल्मारी, चौकी आदि) की आवश्यकता सबसे पहले और बहुत शीघ्र है।

अतएव प्रत्येक विद्यानुरागी धनी-मानी उदार सज्जन से अपील है कि वे अपनी शक्ति के अनुसार, जिससे जितना हो सके, एक कौड़ी से लेकर एक हजार तक पुस्तकालय भवन कार्य के लिए इस संस्था को जी खोलकर दान दें और दरिद्र तथा बिना पढ़े लिखे देहातियों में शिक्षा-प्रचार के उद्योग में सहायक बनें। हमारी आवश्यकता बहुत थोड़ी है और उदार विद्या प्रेमियों की संख्या अधिक है, इसलिए हमें आशा है, इस देहाती संस्था के लिए सेठ साहूकार और सम्मानित सज्जन तुरत दान भेजकर पुण्य के भागी होंगे। जो कोई दानवीर एक मुश्त एक सौ रुपये का दान देंगे, उनके नाम व रक़म का पत्थर भवन में लगवा दिया जायगा और जो पाँच सौ रु० एक बार में देंगे, उनके नाम पर पुस्तकालय की ओर से उसी भवन में निर्धन रोगी ग्रामीणों के लिए बिना मूल्य औषधि वितरण की जायगी।

कानपुर नगर के धनी मानी और तहसील एवं जिला के सम्मानित सज्जनों से विशेष अनुरोध है कि वे अपने प्रान्त की इस ग्रामीण संस्था पर अपनी उदारता का हाथ अवश्य रखें। साथही पचास रु० देकर पुस्तकालय के आजीवन संरक्षक बनने की कृपा करें। संरक्षकों का नाम पुस्तकालय के लेटर पेपर, रसीद-बही, वार्षिक रिपोर्ट, ग्रन्थमाला आदि प्रत्येक प्रकाशनीय चीजों पर छपा रहेगा। और पुस्तकालय की ओर से प्रकाशित होने वाली प्रत्येक पुस्तक की एक प्रति उन्हें भेंट-स्वरूप दी जाया करेगी।

निवेदक—

प्रभुनारायण त्रिपाठी, मंत्री



औरत का प्यार

लेखक—श्रीयुत दयालदास सत्संगी, 'कमलाकर'

'औरत का प्यार' ईस्ट इण्डिया फ़िल्म कम्पनी के बढ़िया चित्रपटों में से एक है। बड़े दिनों में यह आगरे की 'रतन टाकीज़' में कुछ दिन सफलता-पूर्वक चला। प्रथम तो मैंने इसके नाम ही से अन्दाज़ लगाया कि यह कहाँ तक शिक्षाप्रद हो सकता है, परन्तु बाद में कुछ मित्रों के अनुरोध से मुझे यह चल चित्र देखने जाना पड़ा। मैं इसकी उत्तमता से तो निराश सा ही था, केवल इस कम्पनी की प्रसिद्ध अभिनेत्री मिस मुख़्त्यार बेगम तथा अन्य ख्याति पाये हुए अभिनेताओं के अभिनय देखने की गरज़ से वहाँ बैठा था, परन्तु ज्यों ही मैंने इस चित्रपट के दो एक भाग देखे, त्योंही मुझे अपनी धारणा गलत प्रतीत होने लगी; अतएव फिर मैंने उसे एक सच्चे 'समालोचक की दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया।

अभिनय आम बाज़ार के दृश्य से प्रारम्भ होता है, जो कि स्वाभाविक और सराहनीय है। इस समय मि० सरदार ने 'सिपाही' का अभिनय जिस सफलता पूर्वक किया, उसके लिए मैं उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। फलवाले की दूकान में से अपनी छड़ी से फल सरका कर उठाने में उन्होंने पूर्ण स्वाभाविकता दिखलाई। इसके थोड़ी देर बाद ही मिस मुख़्त्यार बेगम 'फ़रीदा' के वेष में हमारे सम्मुख आ जाती हैं। इनके अभिनय में सफलता और असफलता का सम्मिश्रण रहा। सफलता करुणा तथा शृङ्गार में रही, परन्तु क्रोध और आश्चर्य भाव दर्शाने में तो पूरी असफलता रही। शुरू में इनकी जो सिपाहियों के साथ बातचीत होती है, उसका ढंग बिलकुल बनावटी है। उनका यह कृत्रिम वार्तालाप तथा पहनाव दर्शक को कुछ समय के लिए यह समझना मुहाल कर देता है कि वह मर्द है अथवा स्त्री। परन्तु यह दोष मिस मुख़्त्यार का नहीं है, वरन् कम्पनी के डाइरेक्टर महोदय और किसी हद तक लेखक भी इसके भागी हैं। इसके बाद जिस समय 'फ़रीदा' सूबेदार (मि० बचन) के सामने लाई जाती है, तो वहाँ भी उसका अभिनय असफल रहता है। सूबेदार के चंगुल से छूट कर भागने में तो वही पुराना हिन्दुस्तानी ढर्रा काम में लाया गया है, जिसकी सम्भवता पर तनिक भी विश्वास नहीं किया जा सकता। यहाँ पर इस विषय को अधूरा ही छोड़-कर मैं भारतीय सवाक् चित्रपट-कला के सम्बन्ध में दो शब्द कहना चाहता हूँ।

मेरे विचार से तो अभी तक कोई भी भारतीय-कम्पनी—एक भी—सफल चल चित्र तैयार नहीं कर सकी और न कर सकेगी, यदि यही संचालन शैली रही। इसका कारण स्वयं कम्पनी ही है। इन कम्पनियों के कुछ दोष हम यहाँ प्रकट करने का प्रयत्न करेंगे। इनके बनाये हुए चल चित्रों में Over acting आद्योपान्त भरी रहती है। कुछ चल-चित्रों को ध्यान पूर्वक देखने पर यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि कम्पनीवाले Over acting को उच्चकोटि का अभिनय मानते हैं; परन्तु इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं देते कि जिसे वे अपनी ख़ूबी समझते हैं, वह उनकी असफलता का एक कारण है। ख़ैर, दर्शक किसी प्रकार उसकी ओर से अपना ध्यान हटाता है; परन्तु फिर बात-बात पर गाये जानेवाले गानें उसकी नाक में दम कर देते हैं। जहाँ ज़रूरत नहीं, वहाँ भी गानें अलापे जाते हैं और फिर गानों में भी अधिकांश वही बाज़ारू ग़ज़लें, जिनमें न तो कविता ही रहती है और न संगीत ही। अब ज़रा गाने के स्थान देखिये—किसी नायक के मरने की तैयारी हो रही है, जल्लाद तलवारें ताने खड़े हैं, परन्तु उस नायक को ताल-स्वर के साथ गाना सूझ रहा है। भला बताइये! क्या उस समय जब कि जल्लाद की तलवार गर्दन पर पड़ने को ही है, किसी को गलेबाज़ी करने की सूझेगी। मदन थियेटर्स ने तो इसकी पराकाष्ठा कर दी है। उसके बनाए हुए 'शकुन्तला' नामक सवाक् चल-चित्र में जब शकुन्तला राजा दुष्यन्त के दरबार में आती है, तो उसकी राजा के साथ बात-चीत गाने में ही होती है। (क्रमशः)

सैंडो कैसे प्रसिद्ध हुआ ?

यूजेन सैंडो का नाम आज सारे संसार में मशहूर है। वह अपनी शक्ति के प्रदर्शन से आज अमर हो गया है। पर, आपको मालूम है, कि उसने आरम्भ में अपने को किस प्रकार प्रसिद्ध किया ? बड़ा मजेदार किस्सा है, सुनिये। सैंडो का पहला नाम फ्रेडरिक मुलर था, पर वह उसे अच्छा न लगा, तो उसने अपना नाम बदल लिया। उसने अपने को ब्रुसेल्स नगर में प्रसिद्ध कर लिया था, पर और कहीं लोग उसे नहीं जानते थे। एक बार स्टेज पर काम करते समय उसे यह अनुभव हुआ और वह अपनी प्रसिद्धि के उपाय को खोजने लगा। बहुत दिनों विचार करते-करते उसे एक बात सूझ गई। वह इस समय एम्सटेरडेम नगर में था। इस नगर में स्थान स्थान पर शक्ति मापक यंत्र लगे हुए थे। इस यंत्र में एक आना डाल देने पर, कोई भी यंत्र का प्रयोग कर सकता था। सभी यंत्र आम रास्तों पर, बाहर रखे थे। यंत्र के साथ एक फुटबाल की तरह गेंद जंजीर से जोड़ कर लटकाया रहता था। उसमें जोर से घूंसा लगाने पर सामने लगा हुआ काँटा यह बतला देता था कि उसमें कितनी शक्ति है। सैंडो एक किराये की बग्घी में बैठा और गाड़ीवान से कह दिया कि शहर में जहाँ-जहाँ यह शक्ति मापने की मशीनें या यंत्र लगे हैं, वहाँ वहाँ वह ले जाय। इस प्रकार सैंडो ने प्रत्येक यंत्र के पास पहुँच कर एक एक आना उसमें छोड़ा और अपनी प्रचंड शक्ति को एकत्र कर एक एक ऐसा घूंसा लगाया कि सभी यंत्र चकनाचूर हो गये। इस प्रकार उस दिन सैंडो ने शहर भर के यंत्रों को तोड़ डाला। दूसरे ही दिन शहर भर में हल्ला मच गया और अखबारों में खबर छप गई कि शहर भर के शक्ति मापक यंत्र किसी ने तोड़ डाले। शहर भर में जगह जगह यही चर्चा थी, कुतूहल था कि आखिर यह किसने किया होगा ! लोगों का खयाल था कि किसी एक संगठित दल ने यह काम किया है, क्योंकि दो-चार आदमी तो उन सुदृढ़ यंत्रों को तोड़ नहीं सकते थे।

कुछ दिनों के बाद जब पुनः दूसरे यंत्र यथा स्थान लगा दिये गये, तो एक दिन सैंडो ने फिर सब यंत्रों को तोड़ डाला। फिर बाजार में तहलका मच गया। सभी दूकानदार सावधान हो गये और उन्होंने खुफिया पुलिस के द्वारा इसकी निगहबानी का प्रबन्ध किया।

तीसरी बार यंत्रों को तोड़ते समय सैंडो पकड़ा गया और उसे गिरफ्तार करके थाने पर ले आया गया। उससे उसके अन्य साथियों के लिए पूछा गया पर सैंडो ने सही-सही बतला दिया कि उसका कोई और साथी वाथी नहीं है। इस पर किसी को विश्वास नहीं हुआ, तब सैंडो ने बतलाया कि वह कोर्ट के सामने भी अपना प्रयोग करके दिखलायगा। उससे कहा गया कि तुमने यह काम करके अपराध किया है, तो उसने तुरन्त उत्तर दिया—जरा भी नहीं, मैंने जरा भी अपराध नहीं किया है। बाजार में सरेआम, शक्ति-मापक यंत्र लगे हैं, और सभी अपनी अपनी शक्ति की आजमाइश कर सकते हैं मैंने भी प्रत्येक यंत्र में एक एक आना छोड़ कर अपनी शक्ति का प्रयोग किया है, यह अलग बात है कि मेरी शक्ति अधिक है और उसके प्रताप से यंत्र बेकार हो गये।

इस सच्चे उत्तर के कारण सैंडो तुरन्त छोड़ दिया गया और जब यह सच्चा किस्सा अखबारों में छपा और लोगों को मालूम हुआ, तो सभी की जबानों पर सैंडो का शक्तिशाली नाम नाचने लगा और उसी दिन से उसके खेलों में अपार भीड़ होने लगी।

चुम्बन की शर्त

न्यूयार्क में एक युवक और युवती में चुम्बनों की शर्त हुई और उन्होंने १८२ मिनट तक परस्पर चुम्बन करके दिखलाए और पुरस्कार प्राप्त किया।

सब से छोटा मनुष्य

संसार में सबसे छोटा मनुष्य तुर्किस्तान में है और उसकी ऊँचाई केवल १४ इंच है, और उम्र है ३६ साल की।



वनौषधि—सम्पादक श्री केदारनाथ शर्मा, प्रकाशक, वनौषधि-कार्यालय, काशी। वार्षिक मूल्य २)

उपर्युक्त नाम की पत्रिका अभी गत मास से ही काशी से प्रकाशित होने लगी है। पहले इस प्रकार के और भी कई पत्र प्रकाशित होकर बन्द हो चुके हैं। पता नहीं हिन्दी पढ़ी-लिखी जनता में ऐसे पत्रों का प्रचार क्यों नहीं हो पाता। हमारे विचार से प्रत्येक घरों में ऐसे पत्रों का आदर होना चाहिये। प्रथमांक में कई लेख अच्छे हैं, पर 'तुलसी' और गोबर सम्बन्धी लेख बड़े उपयोगी हैं। प्रथमांक को देखकर आशा होती है, कि श्री केदारनाथजी-जैसे कुशल व्यक्ति के द्वारा यह पत्रिका दिनोदिन उन्नति करेगी और सुन्दर रूप में सम्पादित और प्रकाशित होती रहेगी।

निष्काम—सम्पादक श्री मदनमोहन बी० ए०, प्रकाशक, निष्काम प्रेस, मेरठ। वार्षिक मूल्य ३) एक अंक का एक आना। यह साप्ताहिक पत्र लगभग ५-६ मास से प्रकाशित हो रहा है। पाठ्य सामग्री अच्छी देता है। सद्विचार शील पत्र है। उन्नति की गुंजाइश है, यदि जरा ध्यान और भी दिया जाय, तो सुन्दर हो सकता है।

योगी—सम्पादक, श्री नारायण, प्रकाशक, श्री योगी-प्रेस, पटना। वार्षिक मूल्य ३) अभी दो मास हुए, यह साप्ताहिक पटना से प्रकाशित होने लगा है। इस समय बिहार में यही अकेला हिन्दी साप्ताहिक है। दुरंगे कवर के साथ अच्छे कागज पर अच्छे ढंग से छपता है। साप्ताहिक राजनीतिक और सामाजिक समाचारों के संकलन के अलावा निबन्ध कवितादि भी इसमें रहते हैं। अच्छा पत्र है। आशा है, बिहार वासी इस की कद्र करेंगे।

पैसा—सम्पादक, श्री मोहनशर्मा, विशारद। प्रकाशक, भैयालालनाथ चौहान, बनखेड़ी, C. I. P. वार्षिक मूल्य ३) प्रति संख्या ।=)

यह उद्योग धन्धा और कला कौशल सम्बन्धी मासिक पत्र है। पाँच-छः मास से प्रकाशित होने लगा है और इसी अवसर मे ३-४ और पूर्व अंको को युग्म अंक के रूप में प्रकाशित करना पड़ा है, इससे प्रकट होता है कि अभी पत्र को हिन्दी-संसार से प्रोत्साहन और साहाय्य नहीं मिला। ऐसे पत्र की हिन्दी मे बड़ा आवश्यकता है।

प्रस्तुत युग्म अंक में श्री रामनिवासजी शर्मा भू० पू० सम्पादक 'सौरभ' लिखित 'आर्थिक दासता और उसका उद्धार' विचार-पूर्ण लेख है। प्रो० ज्वालाप्रसादजी सिहेन का 'बेकारी की समस्या' भी अच्छा लेख है। 'थामस, लिप्टन' का जीवन परिचय भी इसमें है। भारतवर्ष में वस्त्र रंगने का व्यवसाय शीर्षक लेख भी अच्छा है।

इनके अलावा और भी स्तंभ हैं, जैसे—'धन-विज्ञान प्रयोग माला, अनुभूत चुटकुलें व्यापार वार्त्ता, पत्रों का आदान प्रदान आदि।

यदि इसी प्रकार उपयोगी और अधिकारी लेखकों के लेख इसमें छपते रहें, तो इस पत्र के द्वारा जनता का बड़ा लाभ हो सकता है।



दिल्ली के साहित्य-सम्मेलन में श्रीमान् बड़ौदा नरेश ने हिन्दी के हिमायतियों को खूब फुसलाया। सभापति भी बन गये, खुद आप भी नहीं, और एक हजार रुपये देकर निबुआ-नोन भी चटा दिया। साहित्य-सेवा में हड्डी गलाने वालों का दाप कैसे व्यर्थ जा सकता है ?

❁ ❁ ❁

'कर्मवीर' सम्पादक पं० माखनलाल चतुर्वेदी के सभापतित्व में जो साहित्य परिषद की बैठक हुई है, उसमें कविवर 'नवीन' जी ने कहा है कि भविष्य में विद्यार्थी स्मारक से भी हिन्दी को उज्ज्वल आशा है लेकिन विद्यार्थी स्मारक के लिए हिन्दी वाले जैसी दिलचस्पी दिखा रहे हैं, उससे तो हिन्दी का भविष्य वैसा ही उज्ज्वल नजर आ रहा है जैसा श्वेतपत्र की योजना से भारत का भविष्य !

❁ ❁ ❁

दिल्ली में जब साहित्य-सम्मेलन होगा, हरिऔधजी ही सभापति की कुर्सी तोड़ेंगे। श्रीमान् बड़ौदा-नरेश सभापति हुए तो क्या भया ! हरिऔधजी ने अपना जागीरी हक क़ायम ही रक्खा। सम्मेलनों के सभापतित्व पर इस तरह किसी साहित्य-सेवी का सिक्का नहीं जमा मानों पेटेण्ट करा लिया है।

❁ ❁ ❁

श्रीमान् ओरछा नरेश भी सम्मेलन में पधारे थे। सभापति निर्वाचन की चर्चा में तो उनके नाम की बड़ी धूम रही, मगर बड़ौदा नरेश की अनुपस्थिति में भी उनको चान्स नहीं दिया गया। शायद हरिऔधजी आड़े आ गए इसलिये ओरछा-नरेश को फुलीफल न मिलने पाया।

❁ ❁ ❁

जो लोग अब तीन महीने बाद भूकम्प पीड़ित बिहार का दौरा कर रहे हैं, उनको भूकम्प की भयंकरता का वैसा ही अनुभव होगा जैसा वायसराय की अतिथि शाला में बैठकर आँकड़े जोड़ने वाले बृटिश प्रतिनिधियों को भारत की दरिद्रता का अनुभव होता है।

❁ ❁ ❁

भूकम्प द्वारा प्रकृति ने राजा रंक को समान कर दिया है। राजा और रईस भी गरीबों के झोपड़े का मजा ले रहे हैं। सचमुच झोपड़ों ने प्राचीन भारत के ऋषियुग का स्मरण करा दिया है। भारतीय सभ्यता हजारों वर्ष पीछे सरक गई है।

❁ ❁ ❁

भूकम्प ने लोगों की अवस्था में परिवर्तन भलेही कर दिया हो, पर हृदय में परिवर्तन किसी के नहीं हुआ है। बेईमानी, शैतानी का दौर-दौरा पहले ही की तरह चल रहा है। कचहरियों और अदालतों में वैसा ही भीड़ नजर आती है। लोग आज भी जर और जमीन के पीछे पागल हो रहे हैं। ईश्वर के पास ऐसा कोई भूकम्प नहीं है, जिससे माया मोह का महल टूट सके।

❁ ❁ ❁

अब भी लोग कहते नजर आते हैं कि यह मेरा धन है, मेरी जमीन है, मेरा मकान है लेकिन १५ जनवरी को, भूकम्प के दिन, यह साफ देखने में आया कि असल में जिसका धन है, वह तावड़तोड़ छीन रहा है। सब नकली और फरजी मालिक उस दिन टुकुर टुकुर ताकते रहे और असली मालिक अपनी खिलौने की दूकान समेट ले गया !

❁ ❁ ❁

लोग कहते हैं कि देशी नरेशों ने भूकम्प पीड़ितों की कुछ भी खबर न लेकर बड़ी भारी हृदय-हीनता प्रकट की है लेकिन उनकी सहृदयता को सिर्फ हमीं समझते हैं। वे भूकम्प पीड़ितों के दुःख से इतने मर्माहत हुए हैं कि सर्वथा स्तब्ध और किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये हैं। महफिल में जो बहुत वाह-वाह करता है वह तो भोंदू है, मौन रहकर पत्थर की मूरत बन जाने वाला ही असली भावुक और गुण-ग्राही है।

❁ ❁ ❁

भूकम्प ने देश में बड़े बड़े धाकड़ ज्योतिषी और भविष्यवक्ता पैदा कर दिये हैं। अब सब अपने अपने पञ्चांग और जन्त्री की दुहाई दे रहे हैं। कुछ लेखिक मैन अपनी पुरानी भविष्यवाणी को नये सिरे से पत्रों में छपवा रहे हैं, लेकिन जिन बेचारों का सर्वस्व लुट गया है, उनके मन में ज्योतिष भी ज्योति नहीं

जनता, यह बड़ अचरज की बात है। भूकम्प के दिन तो अपने मकान के साथ ज्योतिषीजी भी भरभरा रहे थे !

✻ ✻ ✻

भारत सरकार के भूकम्प विशेषज्ञों ने अभी तक अपनी रिपोर्ट नहीं प्रकाशित की है। वे भूकम्प पीड़ित बिहार का दौरा कर चुके, मगर उनकी बुद्धि अभी हिमालय प्रदेश में ही दौरा कर रही है। भूकम्प में रेल, डाक और तार ही नहीं, बल्कि ज्योतिष और विज्ञान भी फेल कर गये। भूकम्प ने तिरहुत की तो सूरत बिगाड़ ही दी, वैज्ञानिकों और भूगर्भवेत्ताओं का भी रंग उखाड़ दिया। सब-के-सब अन्धेरे में टटोल रहे हैं !

✻ ✻ ✻

भूकम्प की भीषण ध्वंसलीला देखकर वैज्ञानिकों की बुद्धि हिमालय की खोह में चरने चली गई है। उन्हें खेतों की बालू में सोना खूब सूझ रहा है, लेकिन उन्हें उपजाऊ बनाने की तरकीब एक भी नहीं सूझती। दुनिया का यही तरीका है कि अपने मतलब की बात सबको सूझती है।

✻ ✻ ✻

भूकम्प के बाद कुछ दिनों तक लोग ईश्वर का पीछा खूब पकड़ रहे, मगर ईश्वर ने धीरे धीरे ऐसा अपना पिण्ड छुड़ाया कि फिर वही पिछली रफ्तार शुरू हो गई। खोटी नीयतवालों की कारगुजारी चलने लगी। जो लोग आज बहती नदी में पाँव पखार रहे हैं, उनके लिये भूकम्प का लकड़दादा आ रहा है। बस, माया बाघ, लेगया मूँड़ !

✻ ✻ ✻

हमारे ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अभी तीन भयंकर भूकम्प और आने वाले हैं। एक तो उनके लिए जो सारदा कानून के जीते हुए भी बाल-विवाह को धर्म बता रहे हैं, दूसरा उनके लिए जो चन्दे की रकम में गोल-माल मचा रहे हैं, और तीसरा उनके लिए जो मलबे के अन्दर से माल गायब कर रहे हैं। एक चौथा भूकम्प भी हमारी पोथी में लिखा है, जो इन तीनों के कुछ ही दिनों बाद उन शरीफ हरीफों के लिए आवेगा, जो आटा घी-चीनी और दूध मिठाई में मिलावट करके जनता का तन धन धर्म चूसते हैं।

✻ ✻ ✻

अभी साहित्यिक भूकम्प पर तो किसी भविष्यवक्ता का ध्यान ही नहीं गया है। वही तो असली 'जल्लला' आनेवाला है। उसमें सबसे पहले समालोचकों का सफाया लिखा है। उनके बाद रेलवे मेल सर्विस और डाकखाने वालों का नम्बर है, जो बीच ही में अखबार और चित्र कलेण्डर उड़ा लेते हैं। तब मुफ्त नमूना मँगाने वाले और वी० पी० लौटाने वाले ग्राहकों का नम्बर आता है। अन्त में उन स्वयम्भू सम्पादकों का नम्बर है, जो ग्राहकों को फँसाकर साकाना चन्दा और समालोचनार्थ पुस्तकें पचा जाते हैं।

✻ ✻ ✻

सारदा कानून की मिट्टी वैसे ही खराब हो रही जैसे बेकार ग्रेजुएटों की। कई साल से कट्टर सनातनधर्मी लोग उसकी नाक काट रहे हैं और कानून की रक्षा का दम भरने वाली सरकार चुपचाप तमाशा देख रही है। कांग्रेसवाले अगर कोई मामूली कानून भी तोड़ देते हैं, तो सरकार आकाश पाताल एक कर डालती है मगर सारदा कानून को हर जगह लोग खुल आम तोड़ रहे हैं। सरकार सोचती है कि बाल विवाह से भारतियों की नस्लें कमजोर होती रहें तो बेहतर।

—विजयानन्द

मुद्रक और सम्पादक—श्री प्रवासीलालवर्मा, मालवीय-द्वारा सरस्वती-प्रेस, काशी में मुद्रित और प्रकाशित।

जागरण

THE JAGARAN — सम्पादक—प्रेमचन्द — Illustrated Weekly

वर्ष २ | काशी, मि॰ वैशाख कृष्ण १० सोमवार, स॰ १९९१ वि॰ : ता॰ ९ अप्रैल सन् १९३४ ई॰ | अंक २२

महामना श्री पं॰ मदनमोहनजी मालवीय



आपने दिल्ली में हिन्दू मुस्लिम समझौते पर डॉ॰ अन्सारी मौ॰ शौकतअली, श्री भाई परमानन्दजी के साथ गत सप्ताह बड़ा विचार पूर्ण परामर्श किया।

जागरण

ति० वैशाख कृष्ण १० सोमवार, सं० १९९० वि०

वे राष्ट्र-भाषा का राष्ट्र

कोई समय था, जब धर्म की एकता ही मनुष्यों के एकीकरण का मुख्य साधन थी और एक धर्म के मानने वाले बहुधा सामाजिक और सांस्कृतिक बातों में भी एक हो जाते थे। समाज और संस्कृति, जीवन और दृष्टिकोण सभी का उद्‌गम धर्म था। लेकिन, नई जाग्रति ने धर्म को उस ऊँचे स्थान से हटा दिया और उसकी जगह पर जिन व्यवस्थाओं को बिठाया, उनमें भाषा अगर मुख्य नहीं है, तो किसी से गौण भी नहीं है। आज हरेक कौम की अपनी एक भाषा है। हम यह नहीं कहते कि एक ही भाषा के बोलने वाले अलग-अलग राष्ट्र नहीं हैं। अमेरिका की कौमी जबान अंग्रेजी है, पर अमेरिका और इंगलैंड एक जबान रखने पर भी दो कौमें हैं। दक्खिन अमेरिका में कई कौमें स्पेनी और पुर्तगाली भाषा बोलती हैं, फिर भी वे अलग अलग राष्ट्र हैं। राष्ट्रों के निर्माण में भौगोलिक परिस्थितियाँ ही मुख्य हो गई हैं, मगर भाषा भी तो उन्हीं भौगोलिक परिस्थितियों से बनती है। एक खास इलाके के रहने वाले एक खास जबान बना लेते हैं या यों कहो कि कुछ प्राकृतिक शक्तियाँ आप ही आप उनकी एक खास जबान बना देती है। इस लिहाज से कभी-कभी दस दस पाँच पाँच कोस में बोली बदल जाती है, लेकिन थोड़ा बहुत अन्तर होते हुए भी इन बोलियों में कुछ समानता रहती है, और वही समानता एक ऐसी भाषा के रूप में संगठित हो जाती है, जिसमें साहित्य की रचना होने लगती है और वही समय पाकर उस प्रान्त या देश की कौमी जबान बन जाती है। आज बिहार, संयुक्त प्रदेश, पंजाब, अलमोड़ा, सी० पी०, राजपूताना आदि प्रान्तों की बोलियों में काफी अन्तर होते हुए भी हिन्दी अपनी सार्वभौमिकता के कारण इन प्रांतों में माध्यम बनी हुई है। हम अपने खास इलाके के बाहर वालों से बातचीत या पत्र व्यवहार करने में हिन्दी का ही व्यवहार करते हैं। अगर उर्दू को भी हिन्दी में मिला लिया जाय—क्योंकि जहाँ तक बोली का सम्बन्ध है इन दोनों भाषाओं में कोई अन्तर नहीं—तो हिन्दी बोलने वालों की संख्या १५ करोड़ से कम नहीं है, और समझने वालों की संख्या तो इससे कहीं ज्यादा है। आश्चर्य है कि अभी तक वह क्यों कौमी जबान नहीं बन गई। कुछ दिन पहले तक तो अन्य प्रांतीय भाषाएँ अपने उन्नत साहित्य के बल पर यह स्थान लेने का दावा करती थीं लेकिन अनुभव ने अब यह बात सिद्ध कर दी है कि हिन्दी ही में यह क्षमता है कि वह क़ौमी जबान बन सके। बात यह है कि अभी तक हमने इस विषय की ओर ध्यान ही नहीं दिया। दक्खिन भारत में हिन्दी प्रचार का काम जोरों से हो रहा है। अगर और प्रांतों में भी प्रचार किया जा सकता, तो अब तक मंजिल हमारी आँखों के सामने होती, लेकिन अब तक हमारी कोशिश परीक्षाओं तक ही बंद रही। इस क्षेत्र में जो संस्थाएँ काम कर रही हैं, उन्होंने साहित्य निर्माण का काम हाथ में ले लिया, जिसमें उन्हें बिलकुल सफलता नहीं हुई, क्योंकि साहित्य-संस्थाएँ नहीं बनाया करतीं, या पुराने कवियों के ग्रन्थों के खोजने में समय और शक्ति का दुरुपयोग किया क्योंकि जिस तरह का साहित्य वे क़ब्रों से निकाल सके, वह आजकल की जरूरतों को पूरा नहीं करता। हिन्दी-उर्दू का व्यर्थ का झगड़ा अलबत्ता खड़ा कर दिया गया। जरूरत थी कि जिस तरह दक्खिन में हिन्दी प्रचार का काम हो रहा है, उसी तरह अन्य प्रांतों में भी होता। और सबसे बड़ी जरूरत इस बात की थी कि हमारा राष्ट्रभाषा परिषद् होता, जिसकी हरेक प्रांत में शाखें होतीं। इस परिषद् में हम प्रत्येक प्रांत के साहित्यिक महारथियों को निमंत्रित कर सकते, और उनकी सलाह और सहयोग से राष्ट्र-भाषा का प्रचार ही न बढ़ाते, बल्कि राष्ट्र-साहित्य का निर्माण भी कर सकते। राष्ट्र के लिये राष्ट्र भाषा जितनी जरूरी है, उतना ही जरूरी राष्ट्र-साहित्य भी है। और साहित्य संस्कृति का एक प्रधान अंग है। पहले इस तरह के परिषद् की जरूरत न समझी जा रही हो, लेकिन आज लोगों को यह खयाल पैदा होने लगा है। हमारी समझ में यह आने लगा है कि जब तक हम अन्य भाषाओं के लेखकों को हिन्दी में आने का निमंत्रण न देंगे और हमारे यहाँ ऐसे सम्मेलन न होंगे जिनमें सभी भाषाओं के लेखक और विद्वान् एकत्र हों और अपने अनुभव और प्रतिभा से एक दूसरे को प्रभावित करें, हम राष्ट्र साहित्य का निर्माण न कर सकेंगे। अभी तक हमारे यहाँ जो कुछ है वह प्रान्तीय है, उसपर राष्ट्र की छाप नहीं है। इस ऐब को दूर करने के लिये हमें शीघ्र ही ऐसा आयोजन करना होगा कि भारत की साहित्यिक प्रतिभा को एकत्रित कर सकें। हमें विश्वास है, भारत के साहित्यकार खुशी से हमसे सहयोग करेंगे, क्योंकि राष्ट्रभाषा में लिखकर वे अपने विचार क्षेत्र को कहीं ज्यादा फैला सकेंगे। जब हमारी राष्ट्र भाषा होगी, हमारा राष्ट्र-साहित्य होगा, तभी अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं की मजलिस में हमें स्थान मिल सकेगा। मद्रास के द्वैमासिक पत्र 'त्रिवेणी' में एक बंगाली विद्वान् ने इसी विषय पर अपने विचारों को प्रकट करते हुए कहा है—

'प्रान्तीय भाषाएँ अपनी अपनी विशेष रचना शैली पर चलती हैं। इस में कोई हानि भी नहीं। लेकिन, हम कभी सच्ची राष्ट्र संस्कृति न उत्पन्न कर सकेंगे, जो प्रान्तीय संस्कृति से भिन्न हो, जबतक हमें देश के चुने हुए साहित्यिक रचयिताओं की सलाह, दायित्व और प्रकाश न मिले। वही लोग कला के ऊँचे आदर्श हमारे सामने रख सकते हैं।'

महाराजा साहब बड़ौदा ने अपने भाषण में आदि से अन्त तक इसी बात पर जोर दिया कि हिन्दी को क्यों और कैसे राष्ट्र भाषा बनना चाहिए। महाराजा साहब ने हिन्दी को अपने राज्य की सरकारी भाषा का स्थान दिया है, इसलिए उनका कथन और भी महत्व रखता है। लेकिन, हम आप के इस खयाल से सहमत नहीं हैं कि हिन्दी केवल सामान्य भाषा के रूप में ही राष्ट्र भाषा हो सकती है। विद्वान् लेखक अपनी प्रान्तीय भाषा को छोड़कर हिन्दी में लिखना न पसन्द करेंगे। लेकिन जिसमें लिखने की प्रतिभा है, उसके लिए भाषा कोई रुकावट नहीं हो सकती। हिन्दी-जैसी सरल भाषा को अपना लेना विद्वानों के लिए केवल दिनों की बात है। जब उन्हें हिन्दी द्वारा विस्तीर्ण क्षेत्र मिलेगा, तो वे प्रांतीय भाषाओं में लिखने पर भी अपनी अच्छी से अच्छी रचनाएँ हिन्दी में भी करेंगे। जिस तरह यूरोप में प्रवेश पाने के लिए किसी रचना का अंग्रेजी या फ्रेंच में आना आवश्यक है, उसी तरह भारत की जनता के सामने आने के लिए तब हिन्दी में लिखना आवश्यक हो जायगा, लेकिन अगर थोड़ी देर के लिए यह मान भी लें कि साहित्यकारों को अपनी भाषा का मोह हिन्दी में न लिखने देगा, तो भी उन विद्वानों के सत्संग और परामर्श से लाभ तो उठाया ही जा सकता है। ऐसे सम्मेलनों से प्रत्यक्ष लाभ जितना होता है, उससे कहीं ज्यादा अप्रत्यक्ष लाभ होता है, जिससे विचारों में प्रगति आ जाती है, दृष्टिकोण बदल जाता है, और ऐसे संबंध पैदा हो जाते हैं, जिनके सामने प्रांतीय दुर्भावनाएँ आप ही आप मिट जाती हैं।

शायद संसार में भारत ही एक ऐसा देश है, जिसकी अपनी कौमी जबान नहीं है। आज एक बलवान केन्द्रीय शासन के सिवा हमें एकता में बाँधनेवाली क्या चीज है? धर्म में शक्ति नहीं वह चीज राष्ट्र भाषा ही हो सकती है।

सच्ची बात कहने का दंड

आगरा के सब जज प० रघुनाथप्रसाद त्रिवेदी ने एक मुकदमे के फैसले में यह लिखा है कि ऐंग्लोइंडियन शासक जाति का अंग है, इसलिए वह हिन्दुस्तानी से ज्यादा इज्जतदार है। इस पर समाचार-पत्रों में त्रिवेदी साहब पर खूब बौछारें पड़ रही हैं। हम नहीं समझते त्रिवेदीजी ने एक सच्ची बात कह दी तो क्या अपराध कर दिया। कोई ज्यादा दुनियादार जज कभी ऐसी बात न लिखता, यह ठीक है, लेकिन करता वह भी वही जो त्रिवेदी साहब ने किया। और यह बात कौन नहीं जानता। कदम-कदम पर यह सत्य हमें ठोकर लगाता रहता है। हमें त्रिवेदी साहब को धन्यवाद देना चाहिए कि उन्होंने अपने दिल की बात खोलकर कह दी। सहयोगी 'आज' ने बहुत ठीक अनुमान किया है कि आप कोई सनातनी महोदय हैं, जो शासकों को देवता समझते हैं और उनके कुत्तों के सामने दुम हिलाते हैं, क्योंकि ऐसी मार्के की बात किसी सनातनी खोपड़ी ही से निकल सकती है, और ऐसे लोग हमारे यहाँ सब जज बना दिए जाते हैं। लेकिन, सम्पादक लोग जितना चाहें नाक-भौं चढ़ा लें, त्रिवेदीजी की रायबहादुरी रखी है, अगर अब तक नहीं मिल चुकी है, और शायद प्रेस की जल्द ही मिले। अगर कोई हिन्दुस्तानी किसी ऐंग्लो इंडियन के हाथों कत्ल कर दिया

भया होता, तो त्रिवेदीजी इसी दलील से अवश्य ही मुलजिम को बरी कर देते, क्योंकि शासक जाति को यह अधिकार है कि जिस हिन्दुस्तानी को चाहे जान से मार डाले। शासित की जान का मूल्य ही क्या? धन्य है भारत, जहाँ ऐसे-ऐसे सपूत पैदा होते हैं।

देहली में कांग्रेस के नेताओं का सम्मेलन

कांग्रेस के कुछ नेताओं ने कलेजा मजबूत कर दिल्ली में एक सम्मेलन कर काउंसिलों में जाने के प्रश्न पर विचार कर डाला, मगर कुछ इस तरह डरते डरते मानों कोई अपराध करने जा रहे हों। सबसे बड़ा अपराध तो पराधीन होना है, और उससे कुछ घटकर कमजोर और असंगठित होना। जब ये दोनों महान अपराध हम कर रहे हैं, तो फिर काउंसिल में जाने के छोटे से अपराध के लिए इतना सोच विचार क्यों? इस पराधीनता की दशा में हम असहयोग कर भी सकते हैं? उतना साहस भी हम में है? टैक्स हमसे जबरदस्ती लिये जाते हैं, हम देना चाहें या न देना चाहें। फिर क्यों मन को यह नहीं समझा दिया जाता कि हमें काउंसिल में जाने के लिए भी मजबूर किया जा रहा है। हम अपनी खुशी से नहीं, जबरदस्ती लाये जा रहे हैं। जब हम सरकारी अदालतों में जाकर वकालत करते हैं, जब हम सरकार के खोले हुए विद्यालयों मे पढ़ना बुरा नहीं समझ सकते, जब हम रेल, तार, डाक, सड़कों, जहाजों से काम लिये बगैर नही रह सकते, जब दिन के चौबीस घंटों में हम बराबर सरकार से सहयोग करते रहते हैं और सरकार का खजाना भरते रहते हैं, यहाँ तक कि घर में कोई वारदात हो जाने पर हम सरकारी पुलिस के पास दौड़ते हैं, तो काउंसिल में जाना किस नीति से बुरा है, यह हमारी समझ में नहीं आता। काउंसिलों के बाहर रहकर भी बहुत कुछ काम किया जा सकता है, पर वहाँ भी हमें सरकार से सहयोग करना पड़ेगा। बिहार में हम किसी दशा में भी सरकारी सहयोग से अपने को नहीं बचा सके। हम तो समझते हैं सारा भारत बिहार हो रहा है और ऐसी दशा में अगर हम काउंसिलों में आकर कोई फायदे का काम कर सकते हैं, तो हमें करना चाहिए। कहा जाता है काउंसिलों में आकर हमने इतने दिनों में क्या कर लिया? लेकिन काउंसिलों में न जाकर ही हमने क्या कर लिया? हाँ, अगर कुछ किया, तो यह किया कि बीसों ही ऐसे कानून पास करा दिये, जो शायद कांग्रेस वालों के काउंसिलों में रहते हुए इतनी आसानी से पास न हो सकते। गुड़ खाने और गुलगुलों से परहेज करने वाली नीति कुछ बहुत अच्छी नीति नहीं है।

सर्वशक्तिमान पुलीस

यह तो हम अपने अनुभव से जानते हैं कि जब कोई अखबार निकलता है, तो पुलीस द्वारा उसके संचालकों की जाँच होती है, जब तक पुलीस की सर्टिफिकेट न हो, कि यह आदमी खतरनाक नहीं है, और हमारे काले रजिस्टर में इस का नाम नहीं है, तब तक गाड़ी रुकी रहती है; लेकिन अब मालूम हुआ कि मुंसिफों को भी पुलीस के सार्टिफिकेट के बगैर नौकरी नहीं मिल सकती। किसी को अगर मुंसिफी लेनी है, तो उसे पुलीस के अधिकारियों की खुशामद करनी चाहिए। ऐसा आदमी अदालत की कुरसी पर बैठ कर प्रबन्ध विभाग के विरुद्ध फैसला देने के पहले खूब सोचेगा, वह जानता है कि जिन कर्मचारियों की मदद पाकर उसे यह आश्रय मिला है, उनका रोब और दबाव मानते रहने में ही उसकी खैरियत है। न्याय का एक खास सिद्धान्त यह है कि जब तक किसी के विरुद्ध प्रमाण न हो, उसे निर्दोष समझो। हमारी सरकार का सिद्धान्त कुछ और है। वह यह कि जब तक किसी की जाँच न कर ली जाय, वह विश्वास के योग्य नहीं।

वैवाहिक लेन-देन और कानून

'चाँद' के एप्रिल के अंक में श्री केशवानन्द शर्मा ने दहेज, कन्या-विक्रय आदि कुप्रथाओं को कानून द्वारा बन्द कराने का प्रस्ताव किया है। ऐसी प्रथाओं को कानून द्वारा तो क्या, यमराज द्वारा भी बन्द कराया जा सके, तो हमें आपत्ति नहीं, लेकिन हमें भय है कि यहाँ कानून हमारी कुछ सहायता नहीं कर सकता। जो बात अभी खुल्लम खुल्ला होती है, तब गुप्त रूप से होगी और किसी को खबर तक न होगी। जो आदमी विवाह का इच्छुक है, वह अपना सब कुछ बेचकर लड़की खरीदेगा। उसे आप किसी तरह नही रोक सकते। इसी तरह लड़की का बाप भी वर को खरीदने के लिए अपना घर तक बेंच देता है। कानून तो जब बीच में आ सकता है कि कोई फरियाद करे। यहाँ फरियाद कौन करे? हाँ, विवाह के बाद कसर निकाली जा सकती है और लेने वालों को बड़ा घर दिखाया जा सकता है। लेकिन, तब तो वही लेने वाले अपने हो जाते हैं। कौन अपनी पत्नी के प्यारे पिता या अपने दामाद पर मुकदमा चलायेगा? नहीं साहब, यह बेल मुँढे चढ़ने की नहीं। हाँ सरकारी कानून अगर इतना कर दे कि वर वधू के जोड़े बनादे और जबरदस्ती या रजामंदी से उनका विवाह करा दे, तब शायद कुछ उपकार हो सके। मगर तब वह रकम वर या कन्या के पिता की जेब में न आकर पुलीस की जेब में जायगा। शायद उससे ज्यादा। समस्या टेढ़ी है। जब तक लेन देन समाज में घृणा की दृष्टि से न देखा जायगा और जन मत उसे अधम्य न समझने लगेगा, तब तक यही दशा रहेगी। हमें अपनी सारी शक्ति यह जन मत तैयार करने में लगानी होगी। मुश्किल यह है कि वही आदमी, जो आज कन्या के विवाह में रिफार्मर बनता है और दहेज को लानत करता है, कल पुत्र के विवाह में लंबी रकम डकार जाता है। कैसे काम चले।

धर्म और भगवान के विरुद्ध जेहाद

लेखक—श्रीयुत वंशीधर मिश्र, एम० ए०

फ्रान्स के एक विख्यात विद्वान ने कहा था—'यदि ईश्वर अस्तित्व मे न भी हो, तो भी हमें एक ईश्वर का आविष्कार करना जरूरी है, क्योंकि जनता को धर्म की आवश्यकता है।' प्रश्न यह होता है कि जनता को धर्म की आवश्यकता क्यों है? क्या बगैर धर्म के जनता का काम नहीं चल सकता है? धर्म से जनता को क्या लाभ पहुँचता है? हम ऐसे ही कुछ प्रश्नों का संक्षिप्त विवेचन इस लेख में करना चाहते हैं।

ईश्वर और धर्म की कल्पना प्राचीन है। पृथ्वी पर आज अनेक धर्म—मत विद्यमान हैं। हमें देखना होगा कि इन धर्म मतों से जनता को क्या लाभ पहुँचा है। कुछ धर्म-मत हजारों वर्षों से प्रचलित हैं, कुछ सैकड़ों वर्षों से। समय समय पर अनेक धर्म सुधारक उत्पन्न हुए हैं और उन्होंने अपनी अपनी समझ के अनुसार अपने समय और देश में प्रचलित धर्म मतों में सुधार किए, पर पुराने धर्म मतानुयायियों ने उनको धर्म-नाशक ही माना। इसी कारण से धर्म-मतों में अनेकानेक सम्प्रदाय भी हुए। प्रत्येक धर्म मत अपने को ही सच्चा धर्म बतलाता है और प्रत्येक अपने को ही ईश्वरीय धर्म मत होने का दावा करता है। किसी धर्म मत ने अपने दावे को स्वीकार कराने के लिए रक्त पात करने में हतस्ततः न की।

प्रत्येक धर्म मत एक ही ईश्वर, खुदा या गॉड को मानता है, यद्यपि किसी धर्म मत में ईश्वर के नायबों, मुसाहिबों की संख्या अल्प नहीं है। ईश्वर एक ऐसा कल्पित पदार्थ है जिसे कभी किसी मनुष्य ने किसी देश में, अपनी ज्ञानेन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं किया है केवल अटकल से उसका वर्णन किया है। किसी किसी धर्ममत मे ईश्वर का वर्णन करते करते ठीक वर्णन न कर पाने पर 'नेति नेति' कहकर अपनी असमर्थता प्रकट की है। कारण, जिस वस्तु का सर्वथा अभाव है, उसका वर्णन ठीक रूप से हो ही नहीं सकता है। संसार में जितने पदार्थ हैं, उन सब का प्रादुर्भाव प्रकृति से होता है और वे किसी न किसी दशा में इन्द्रिय ग्राह्य होते हैं, वे चाहे कितने भी सूक्ष्म क्यों न हों। प्रकृति से अलग कभी कोई शक्ति या पदार्थ नहीं देखा जाता है, पर ईश्वर के मानने वाले उसे प्रकृति से अलग और इन्द्रियों से अग्राह्य मानते हैं, जो नितान्त निर्मूल और अशुद्ध बात है। भारत के विख्यात विद्वान शंकराचार्यजी को यह विचार हुआ प्रतीत होता है कि ईश्वर की प्रचलित कल्पना तर्क और बुद्धि के प्रतिकूल है और ईश्वर ऐसी कोई वस्तु नहीं है। इसी लिए शंकर स्वामी ने संसार को काल्पनिक ईश्वर के मानने से बहुत दूर हटाकर 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्वमसि' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का पाठ पढ़ाया। शंकर स्वामी बहुत दिनों से प्रचलित ईश्वर कल्पना के एकान्त विरोध का साहस न पा सके पर उनका वेदान्त ईश्वर की मिथ्या कल्पना के सम्बन्ध में एक खासा नास्तिकवाद है।

ईश्वर और धर्म का अन्योन्याश्रय का सम्बन्ध है। जहाँ ईश्वर वहाँ धर्म और जहाँ धर्म वहाँ ईश्वर होगा। इसलिये ईश्वर और धर्म दोनों के विरुद्ध खड्गहस्त होना होगा। ईश्वर की कल्पना और धर्म से पृथ्वी पर अनाचार, अत्याचार, व्यभिचार, उत्पीड़न, अन्याय, पाखण्ड आदि ही बढ़ा है। धर्मों के इतिहास अध्ययन करने से यह बात भली-भाँति सिद्ध हो जाती है। गत शताब्दी तक ईश्वर और धर्म के नाम पर जितनी नृशंस नरहत्या पृथ्वी पर हुई है, उतनी और किसी कारण से नहीं। भारत में आये दिन हिन्दू मुसलमानों में सिर फुटौवल इसी एक मिथ्या कल्पना के कारण होती रहती है। अनेक विद्वानों और वैज्ञानिकों को धर्म और ईश्वर के झूठे विश्वास के कारण अत्याचारों का शिकार होकर प्राणों से हाथ धोना पड़ा है। मनुष्य मनुष्य में घृणा, असहिष्णुता, वैमनस्य लड़ाई झगड़ा का कारण सर्वत्र धर्म और ईश्वर रहे हैं।

सभी समय और सभी देश मे मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर आदि उपासना स्थल व्यभिचार के केन्द्र रहे हैं। भारत में तीर्थ और बड़े बड़े मन्दिरों की व्यभिचार कहानियाँ प्राय: लोग सुनतेही रहते हैं। महन्त, पुजारी, मौलवी क्या नहीं पाप करते हैं, यह किसी विज्ञ मनुष्य से छिपा नहीं है। वेश्यागमन, पर स्त्री लोलुपता और मद्यपान से शायद ही कोई इन धर्म के ठेकेदारों में से अछूता रहता हो।

ईश्वर और धर्म के मानने से मनुष्य का मानसिक ह्रास निस्सन्देह हुआ है। यों पुराण, कुरान, बाइबिल मे वर्णित एकदम झूठी कथाओं पर शायद ही कोई विश्वास करता, पर धर्म और ईश्वर की मिथ्या कल्पना के प्रभाव से बहुत से समझदार मनुष्य भी उन पर विश्वास रखते पाये जाते हैं। कोई भी धर्म पुस्तक ऐसी न मिलेगी, जो प्रकृति विरुद्ध असम्भव अलौकिक बातों से भरी हुई न हो। सच बात तो यह है कि ईश्वर को मानना बुद्धि को सलाम कर देना है। आज संसार में ज्यों ज्यों बुद्धि का विकास होता जा रहा है, त्यों त्यों ईश्वर की थोथी कल्पना मिटती जा रही है।

ईश्वर और धर्म के मानने से मनुष्य की प्राकृत स्वतन्त्रता नष्ट हुई है। ईश्वर को स्वामी और मनुष्य को दास मानने से ही पृथ्वी पर स्वामी और दास की सृष्टि हुई। धर्म और ईश्वर की कल्पना ने मनुष्य को कमजोर, निकम्मा, परमुखापेक्षी और दास बना डाला है। ये दोनों सदैव सत्ता और अधिकार के पक्ष में रहे हैं। जनता का शोषण करने, सत्तावान और धनाढ्यों को अपना उल्लू सीधा करने देने में ये दोनों प्रमुख सहायक रहे हैं। यदि उत्पीड़ित, दरिद्र जनता अपने कष्टों, दु खों को धर्म और ईश्वर की झूठी कल्पना के फेर में पड़कर उन के लिए अपने भाग्य को दोषी न ठहरा कर अपने सताने वाले, अधिकार प्राप्त लोगों को दोषी ठहराती, तो उनके ये कष्ट दु ख कब के मिट गए होते। सत्तावान अधिकार प्राप्त लोगों को जनता को ही गुलाम बना लेने की अपेक्षा उन के दिल और दिमाग को भी गुलाम बना लेना अधिक लाभप्रद होता है। धर्म और ईश्वर के मिथ्या विश्वास ने सर्व-साधारण के हृदयों और मस्तिष्कों को गुलाम बना कर राजा रईसों का काम बनाया है। यही कारण है कि अधिकार प्राप्त पुरोहितों और शासकोंके पृष्ठपोषक ने शूद्र के विशाल जन समूह को बारम्बार सेवा करना ही धर्म बतलाया है।

मनुष्य के अमूल्य समय, धन और शक्ति का अपार व्यर्थ नाश धर्म और ईश्वर के कारण हुआ है। रोजे नमाज, सन्ध्या, पूजा पाठ में जो समय, धन और शक्ति नष्ट की गई है और की जाती है, यदि वह मनुष्यजाति के हित में व्यय की जाती, तो मनुष्य जाति के प्राय कष्ट, संकट और दु ख दूर हो गये होते, अपना और समाज का अभूत पूर्व कल्याण हुआ होता। बाल्यकाल से ही राम राम रटने, कुरान घोखने, रोजा, नमाज और प्रार्थना के फेर में पड़ने से मनुष्य अपना आत्मविश्वास खो बैठता है और पर मुखा पेक्षी हो जाता है। करोड़ों अरबों की सम्पत्ति प्रतिवर्ष भारतवर्ष में पण्डों, पुरोहितों, मठाधीशों, महन्तों द्वारा उड़ा दी जाती है, जो समाज और राष्ट्र की किसी प्रकार की भी सेवा नहीं करते हैं, जिनसे समाज और राष्ट्र का कोई भी कल्याणकारी काम नहीं होता है। धर्म और ईश्वर के नाम पर ये मुफ्तखोर गुलछर्रे उड़ाते हैं और महान् जन शक्ति को व्यर्थ में अपव्यय करते हैं। ये लाखों करोड़ों मुफ्तखोरे उत्पादक कार्य में यदि लग जायँ, तो समाज के अनेक अभावों की पूर्ति सहज में होने लगे।

प्रत्येक धर्म में भोले भाले लोगों को बहकाने, डराने के लिये स्वर्ग और नरक की कल्पना की गई है। स्वर्गों और नरकों की यह कल्पना इस बात की साक्षी है कि धर्म केवल कल्पना मात्र है। इस स्वर्ग और नरक की कल्पनाओं का भौगोलिक आधार है और मनुष्य ने पृथ्वी पर के ही राजदरबारों, सुखों, दुखों की कल्पना स्वर्ग और नरक में ठूँस दी। यही कारण है कि राजाओं की भाँति ईश्वर के दूत, देव, देवी, नबी, पैगम्बर, अवतारों और मुसाहिबों की कमी नहीं है।

एशिया की बरबादी का कारण धर्म और ईश्वर ही है। जिस जाति में जितनी धर्मान्धता है, वह उतनी ही अँधेरे गर्त में पड़ी हुई है। जब तक यूरोप में ईश्वर और धर्म का जोर रहा, तब तक वह भी आगे न बढ़ सका। आज धर्म और ईश्वर का बहिष्कार करके यूरोप सारी पृथ्वी पर अपना प्रभुत्व जमाये हुए है। सोचने की बात है कि यदि कोई ईश्वर होता, तो वह सारी मनुष्य जाति के लिये एक ही धर्म बनाता, एक ही धर्म पुस्तक उनके पथप्रदर्शन के लिये पृथ्वी पर भेजता? वह अपने नाम पर अपनी संतानों की नृशंस हत्याएँ न करवाता।

मानवीय ज्ञान के लिये ईश्वर की कल्पना की कोई आवश्यकता नहीं है। बिना ईश्वर के माने सारी समस्याओं की मीमांसा हो जाती है। सच बात तो यह है कि धर्म और ईश्वर की कल्पना से अत्याचारियों को सहायता मिली है, गरीब और दु खी और अधिक गरीब और दु खी हुए हैं, पृथ्वी पर वैमनस्य, असहिष्णुता, पाखण्ड, व्यभिचार, उत्पीड़न में वृद्धि हुई है। यही कारण है कि विद्वान् बेकुनिन को कहना पड़ा कि 'यदि सचमुच ईश्वर का अस्तित्व हो भी, तो भी हमें उसका विनाश करना परम प्रयोजनीय है।' धर्म और ईश्वर की मूर्खतापूर्ण कल्पना का अन्त किये बिना संसार का कल्याण न होगा, पृथ्वी पर से परपीड़न दूर न होगा, आर्तों का आर्तनाद बन्द न होगा, गरीबों का हाहाकार न रुकेगा?

‘छत्रसाल’

लेखक—श्रीयुत ठाकुर राजेश्वरीप्रसादसिंह

यह एक उत्तम उपन्यास है। इसकी भाषा तो सुन्दर है ही इसमें भावुकता भी अधिक है। उसके प्राकृतिक दृश्य बड़े ही मनोहर और बड़ी योग्यता से लिखे गये हैं। उपन्यास मराठी भाषा का है, उसी से हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। अनुवाद की भाषा शुद्ध और मुहाविरेदार है और उसमें मौलिकता का आनन्द आता है।

छत्रसाल में पात्र विशेष महत्त्व रखनेवाले हैं, प्राणनाथ प्रभू तथा—छत्रसाल हैं। प्राणनाथ प्रभू ऐसे महापुरुष हैं, जो किसी जाति देश या समाज के जीवन होते हैं। उन्होंने जिस प्रकार देशोद्धार किया और जाति को जाग्रत बनाया वह प्रशंसनीय है। जब किसी जाति अथवा देश पर विपत्ति आती है, और तब जो आत्माएँ उत्पन्न होकर उसका त्राण, तथा मान रक्षा करती हैं, प्राणनाथ प्रभू की गणना उन्हीं में की जा सकती है। ऐसे महात्माओं का जैसा आत्मत्याग होता है, जैसी निर्भीकता उनमें पाई जाती है, जैसे वे सत्यवादी और महानुभाव होते हैं, वैसे ही प्राणनाथ प्रभू भी थे।

किंतु, उनसे अधिक कर्म-परायण छत्रसाल थे ; इसलिए वे उपन्यास के नायक माने गये हैं और ग्रंथ का नामकरण उन्हीं के नाम से किया गया है। प्राणनाथ प्रभू ने क्षेत्र तैयार कर के उसमें बीजारोपण किया, छत्रसाल ने रक्षा की और उसके सींचने एवं उसको सुरक्षित रखने में शक्ति लगाई। छत्रसाल ने अपने पौरुष और साहस से उस बुन्देलखंड को—हिन्दू राज्य को—मुसलमानो के गले में उँगली डालकर निकाला, जिसे उन्होंने एक प्रकार से निगल लिया था। उन्होने देश का उद्धार ही नहीं किया, बल्कि उसका शासन भी इस योग्यता से किया कि वह फिर यवनों के हाथ मे आने से पूर्णतया सुरक्षित रहा। उन्होंने औरंगजेब के दरबार में जाकर समय-समय पर जो तेजस्विता तथा आत्माभिमान का परिचय दिया, वह उनके गौरव को उच्च कोटि में परिगणित कराता है। उनमें संगठन शक्ति तो थी ही, उनका बाहुबल भी अधिक और अद्भुत था। उनके क्षात्र-तेज ने औरंगजेब-ऐसे सम्राट् को भी कंपित कर दिया था। चंपतरायजी जिस कामना को पूर्ण नहीं कर पाये, उसको उन्होंने पूर्ण किया, बल्कि अत्यन्त सुदृढ़ भी बनाया। उनका चरित्र आदर्श और उनकी कर्तव्य-परायणता अनुकरणीय है।

वास्तव में बात यह है कि अपने-अपने कार्य-क्षेत्र में दोनो ने अर्थात्—प्राणनाथ प्रभू तथा छत्रसाल—विशेष सफलता प्राप्त की है और दोनों ही अपने-अपने विषय के आदर्श हैं। उपन्यासकार ने दोनो ही का चरित्र-चित्रण बड़ी सफलता से किया है।

छत्रसाल के बाद यदि किसी पर दृष्टि जाती है, तो वह सागर के युवराज दलपतिराय हैं। इन को भी सच्चे देशानुराग की लगन लग गई थी और उच्च कोटि के जाति-प्रेम का भाव इनके हृदय में भरा हुआ था। वे अपने पूज्य पिता के रोष-भाजन बन एक प्रकार से युवराज-पद से भी हाथ धो बैठे थे, परन्तु अपने विचार से जरा भी विचलित न हुए, यह उनके वीर हृदय का उज्ज्वल प्रमाण है। इनको छत्रसाल की दक्षिण भुजा कह सकते हैं।

जब हमारी दृष्टि शुभकरणराय की ओर फिरती है, तो हृदय में बड़ी ज्वाला उठती है। वह सच्चे क्षत्रिय और वीर हृदय पुरुष थे, किन्तु हठ, दुराग्रह तथा असत्यवादिता के रोग ने उनके सारे गुणों को ढक लिया था। उन में वीरता थी, दृढ़ता थी, परन्तु उतनी मात्रा में न थी, जितनी मात्रा में एक वीर पुरुष मे होती है। उन मे गम्भीरता और मनन शीलता की कमी थी, इसी कारण वह चम्पतराय-ऐसे सच्चे और आत्मत्यागी मित्र के विरोधी बने और देश एवं जाति का विरोध करने में अपना जीवन व्यतीत किया। ये सब अवगुण उनके चरित्र को कलंकित करते हैं। बिना सोचे-समझे किसी काम का अनुशीलन न करना चाहिए, पर उन्होंने न किया, जिसका फल उन्हे भोगना पड़ा।

कंचुकीराय क्षत्रिय-कुल-कलंक थे। उन्होंने अपने को ही नहीं गिराया, अपने देश को भी गिराया। वह भीरु-हृदय और कायर थे। इसी लिए सदा अपने देश और जाति का द्रोह करते रहे। दुर्भाग्य से प्रत्येक समय में ऐसे लोग संसार में उत्पन्न होते आये हैं। उनका चरित्र और जीवन अंधकारमय है और उनमें वह प्रकाश नहीं दिखलाता, जो उनके मुख को उज्ज्वल कर सके। वह देश-द्रोही, बन्धु-द्रोही तथा नीच स्वभाव के मनुष्य थे।

स्त्री-पात्र मे विजया का स्थान सर्वोच्च है। उसमे सच्चा देश-प्रेम और जाति अनुराग था। उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति में कभी त्रुटी नहीं की। वह अपने कुल को कलंकित होते देख कर मर्म, पीड़ा से पीड़ित होती थी। एक प्रकार से वह अपने पिता का विरोध करती दृष्टि-गत होती है ; परन्तु उसकी महत्ता यह है कि अपने कामो को इस निपुणता से करती थी कि उसे पितृ विरोधी कोई नहीं कह सकता। उसके हृदय की उच्चता भी वहाँ पराकाष्ठा तक पहुँचती है, जहाँ वह अपने पति की अर्ध अधिकारिणी विमला को बना देती और प्रफुल्लित हृदय से उसका स्वागत करती है। स्त्री-जाति के लिए यह बहुत बड़ा त्याग है। बहुत बड़ा काम है।

इसके उपरान्त बदरुन्निसा आती है। जी करता है कि हम उसके लिए चार आसूँ बहाएँ, परन्तु हमारे चार आसूँ बहाने से उसकी व्यथा शांत नहीं हो सकती। उसने आजीवन कौमार्यव्रत पालन किया, किन्तु अपने प्रियतम दलपतिराय को न भूली। यह उसका बहुत बड़ा आत्म-त्याग है। हम उसको स्वर्ग की देवी कह सकते हैं। यह कहना कि उसकी कथा गढ़ी गई है, उसमें वास्तविकता नहीं है, स्त्री-समाज को लाञ्छित करना है। स्त्री-समाज के इस विशाल-हृदयता के अनेक प्रमाण हैं, जो हमको चरित्र पर विश्वास करने को कहते हैं।

यदि अधम नारी-चरित्र ही देखना हो, तो हीरा देवी पर दृष्टि डालिए। यह भारत में—खास कर स्त्री-समाज में—कलंक है। यह स्त्री इस बात की प्रमाण है कि उसके लिए किसी कार्य का करना असम्भव नहीं। यह कूटनीति की पुड़िया थी और विष का प्याला, जिसे पान कर उसके पतिदेव चिरनिद्रा-अभिभूत हो गये। उसमे मानवता थी, यह भी नहीं कह सकते, किन्तु यह अवश्य कह सकते हैं कि वह मूर्तिमती प्रवञ्चना थी। उसका नाम लेते ही शरीर काँप उठता है, किन्तु, संसार विचित्र है, इसमें सभी प्रकार के पापी पाये जाते हैं—स्वार्थ और परिस्थिति क्या नहीं कराती। दुःख की बात है, हीरादेवी बेतरह इन स्वार्थादि के हाथो पड़ी और जो नहीं करना चाहिए था, उसको भी किया। अपने कुल तथा सारे देश को परतंत्रता मे जकड़ देनेवाली यही डाइन-स्वरूपा हीरा देवी है।

छत्रसाल-ग्रन्थ का सदेश क्या है ? यह प्रश्न उपस्थित होने पर कहना पड़ता है कि वह देश-प्रेम और बन्धु-प्रेम का एकमात्र शिक्षक है और उसके हाथों में आर्य-संस्कृति की वह विशाल ध्वजा है, जिसको वह बड़े दृढ़ता से पकड़े हुए है। उसका चरित्र-चित्रण उच्च कोटि का है और उसको बड़ी सफलता के साथ चित्रित किया है। जहाँ मानव-चरित्र और मनोभावों के साथ लेखक ने प्राकृतिक दृश्यों को सम्मिलित किया है, वहाँ की भाषा और भाव-प्रकाशन-प्रणाली उल्लेखनीय है। ऐसे स्थानों पर इस ग्रन्थ की हृदय-ग्राहिता अधिक हो गई है और वहाँ कवि-कर्म भी यथेष्ट मात्रा में पाया जाता है। भाषा इस ग्रन्थ की ओजस्विनी है, और मधुर भी। इस उपन्यास की कथावस्तु आकर्षक है। जिसका निर्वाह अत्यन्त योग्यता से किया गया है। कोई-कोई अंश इस ग्रन्थ का इतना सुन्दर है कि पढ़कर तल्लीनता हो जाती है। इसका जो पात्र हमारे सामने आता है, उसको हम उसके कर्तव्य और भावों का पुतला पाते हैं। ग्रन्थ में शिथिलता नाम-मात्र को भी नहीं है। मेरा विचार है कि यह उपन्यास हिन्दी-भाषा में उच्च कोटि का है।

खद्दर पहनो और देश के दुख-दारिद्र्य को दूर भगाओ।

पुस्तक-पाठक और पुस्तकालयाध्यक्ष—लाइब्रेरियन ।

लेखक—श्रीयुत वीरेन्द्र वर्मा, मालवीय

सुयोग्य पुस्तकालयाध्यक्ष—लाइब्रेरियन—पुस्तकालय में प्राण-सञ्चार कर देता है, यह ठीक है, किन्तु पुस्तकालय का उत्थान पाठकों पर ही अवलम्बित है। पाठकों के सहयोग के बिना कोई पुस्तकालय जीवित नहीं रह सकता। अत: पुस्तकालय सञ्चालन के लिए पाठकों का सहयोग सम्पादन आवश्यक है। इसके लिए लाइब्रेरियन को क्या करना चाहिए—इस लेख में इसी विषय पर प्रकाश डाला जायगा।

पुस्तकालयों का उद्देश्य अपनी उन्नति चाहने वाले पाठकों को सहयोग प्रदान करना है। पाठक भी पुस्तकालयों से इसी की आशा करता है। ज्ञान वर्द्धनार्थ ही वह पुस्तकालय की ओर आकर्षित होता है, किन्तु उसके इस आकर्षण का निर्वाह कर लेना कुशल लाइब्रेरियन का ही काम है। सुयोग्य लाइब्रेरियन ही उसे पुस्तकालय से लाभ पहुँचा सकता है और वह अपनी आकांक्षा तृप्त कर सकता है।

अत: पाठकों के प्रति लाइब्रेरियन को सर्वदा विनयशील रहना चाहिए। प्रसन्न वदन रहकर मीठी वाणी से उन्हें सन्तुष्ट रखना चाहिए। और अपने व्यवहार से उनमें यह भावना जागृत कर देनी चाहिए कि वह उनके प्रति ममता रखता है और उन्हें सहयोग देना ही उसका उद्देश्य है। पुस्तकालय में न आने के विचार से निकले हुए व्यक्ति भी पुस्तकालय की ओर आकर्षित हो जाएँ और पुस्तकालय में तथा लाइब्रेरियन से बात-चीत करने में रसानुभूति करने लगें और प्रसन्न होकर लौटें तभी लाइब्रेरियन सफल लाइब्रेरियन माना जा सकता है।

अपने पुस्तकालय में पाठकों की संख्या बढ़ती चली जाय, पाठक अपना पुस्तकालय में आना सार्थक समझने लगें और एक भी नागा करने पर पश्चात्ताप का भाव दिखलाएँ, तभी लाइब्रेरियन धन्यवाद का पात्र समझा जा सकता है। भाग्य से कोई लाइब्रेरियन ऐसा होता है। विरला ही लाइब्रेरियन अपने इस कर्तव्य से परिचित होता है।

अधिकांश में लाइब्रेरियन अपने व्यवहार से पाठकों के हृदयों को जीतने में असमर्थ होते हैं, वे उनसे वैसा व्यवहार नहीं करते जैसा कि आवश्यक है। कोई-कोई लाइब्रेरियन स्वभाव के अत्यन्त गन्दे होते हैं। उनमें पुस्तकालय के आकर्षण को नष्ट करने की क्रूरता होती है। अपने गर्व और अहङ्कारपूर्ण हृदय से पाठकों को धोखेबाज समझ कर क्षुब्ध कर देते हैं और कुछ अपने ही परिचितों को सन्तुष्ट करना जानते हैं। नवीन पाठकों का स्वागत करना नहीं जानते तथा उन्हें पाठकों की संख्या बढ़ाने का कुछ भी ध्यान नहीं रहता। वे अपनी लाइब्रेरी के पाठक सीमित रखना पसन्द करते हैं। ऐसे स्वभाव के लाइब्रेरियन पुस्तकालय को उपयोगी और लोकप्रिय नहीं बना सकते, न उसकी उन्नति ही हो सकती है, बल्कि सर्व-साधारण का अविश्वास मोल ले लेते हैं।

पाठकों की आवश्यकता-पूर्ति न करना, उन्हें सन्तुष्ट न करना, लाइब्रेरियनों के लिए साधारण-सी बात हो गई है। उन्हें पाठकों को तृप्त करने की जरा भी परवाह नहीं होती, जैसे—उनसे उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। बहुत से लाइब्रेरियन भले भी होते हैं, वे पाठकों के साथ भला बर्ताव करते हैं, उनकी जिज्ञासा-तृप्ति का पूरा पूरा ख्याल रखते हैं और अनुकूल सहयोग प्रदान करते हैं, किन्तु तभी जब कि पाठक उनका प्रशंसक हो, आलोचना करने वाला न हो। यह लाइब्रेरियन की इस प्रकार नीति ठीक नहीं, अनिष्टकर है, पुस्तकालयों के अभ्युदय के उपयुक्त नहीं है। बीसवीं शताब्दी में समर्थनीय नहीं समझी जा सकती। हाँ एक डेढ़ शताब्दी पूर्व जब पुस्तकालय-शास्त्र का यह प्रथम सिद्धान्त कि 'पुस्तकें उपयोग के लिए हैं' अस्तित्व में नहीं आया था, तब भले ही यह सह्य समझा जाता रहा हो, किन्तु वर्तमान काल में तो सर्वथा असह्य है।

आज के पुस्तकालय पाठकों के बिना जीवित नहीं रह सकते। उपेक्षा-वृत्ति और असभ्यता का तो अब अदृष्ट हो जाना चाहिए। लाइब्रेरियनों के द्वारा होने वाली उपेक्षा वृत्ति या असभ्यता को सहन करने वाली पाठकों की मनोवृत्ति अब लद चुकी है। अब तो उच्छृंखल पाठक की उच्छृंखलता भी नम्रता के साथ सहन करने का जमाना है। ऐसी सहन-शक्ति वाले लाइब्रेरियन ही आज लाइब्रेरियों के प्रति अपना कर्त्तव्य निभा सकते हैं। अब तो पुस्तकालयों को अर्वाचीन व्यापार-पद्धति का अनुकरण करना होगा। जिस प्रकार दूकानदार आने वाले प्रत्येक ग्राहक के साथ सभ्यतापूर्ण सुस्वागतम् का व्यवहार करता है, प्रिय शब्दों में उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करता है तथा नम्रता के साथ सौदा पटाता है और सौदा न लेने पर भी अपमानित नहीं करता, वस्तुओं को यथा-स्थान जमा देने का कष्ट प्रसन्नता से सहन करता है। उसी प्रकार लाइब्रेरियन को भी पाठकों के साथ नम्र और स्वच्छ व्यवहार करना चाहिए।

सच्ची बात तो यह है कि अभी हमारे प्राचीन देश में पुस्तकालय-प्रवृत्ति का आरम्भ ही हो पाया है। यूरोप और अमेरिका के लाइब्रेरियन पाठकों को उचित सेवा से प्रसन्न करना जानते हैं, वे लाइब्रेरियों में आने वाले पाठकों को अपने नम्र और प्रिय व्यवहार से इस प्रकार जीत लेते हैं कि पाठक मोहित हो जाता है और पुस्तकालय के साथ अपना सम्बन्ध स्थायी करने की चेष्टा करता है।

भारतीय लाइब्रेरियनों को भी अमेरिकन लाइब्रेरियनों की इस विशेषता को अपना लेना चाहिए। जब तक वे अपने सुन्दर व्यवहार से पाठकों का हृदय सन्तुष्ट करना नहीं जानते, तब तक उनके पुस्तकालयों का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता।

कोई-कोई पाठक शहर से दूर रहने वाला ग्राम-वासी होता है और वह अपने लिए पुस्तकालय की सहायता आवश्यक समझता है, इसके लिए लाइब्रेरियन को वह पत्र लिखता है। लाइब्रेरियन को भी ऐसे समय ऐसे पाठकों की सेवा से चूकना न चाहिए, पत्रोत्तर तथा उपयुक्त सेवा से उसे सन्तुष्ट करना चाहिए।

लाइब्रेरियन को सर्वदा पाठकों का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए, उन्हें कभी असन्तुष्ट न करना चाहिए। कभी-कभी ऐसा अवसर भी आजाता है कि लाइब्रेरियन, महत्त्वपूर्ण कामों में व्यस्त होने के कारण, अपने पाठकों को सन्तुष्ट करने का समय नहीं रखता और पाठकों के प्रश्न उसे बुरी तरह खटकते हैं, कभी-कभी वह परेशान होकर झल्ला भी उठता है, ऐसे अवसर पर उसे गम्भीरता का प्रयोग करने की आवश्यकता है। मीठे शब्द पाठकों को धैर्य धारण के लिए बाध्य कर सकते हैं। कर्कश शब्दों का प्रयोग ठीक नहीं है। चिड़चिड़ा स्वभाव पुस्तकालयों की उन्नति के लिए बाधक है। इससे पाठक में उसके प्रति विराग आ जाता है। अत: लाइब्रेरियन को अपना स्वभाव विनोदी और हँसमुख रखना चाहिए तथा कभी किसी के प्रति असम्मान प्रदर्शित न करना चाहिए, उसे यह मन्त्र हृदयगम कर लेना चाहिए कि 'आनन्दी और हँसमुख दूकानदार ही ग्राहक की प्रसन्नता का सम्पादन कर सकता है, ऐसे व्यक्ति को ही ग्राहक पसन्द करता है।'

पाठक के प्रति लाइब्रेरियन को ऐसा व्यवहार कदापि न करना चाहिए, जिससे वह पुस्तकालय में आना अपमान-जनक समझने लगे तथा उसे घृणा हो जाय। पाठकों को यह समझने का अवसर न देना चाहिए कि लाइब्रेरियन घमण्डी है, कुर्सी से उतरना जानता ही नहीं तथा किसी की आवश्यकता का ख़याल नहीं रखता।

लाइब्रेरियन को सतत उद्योगशील रहना चाहिए, पुस्तकालय का पूरा ध्यान रखना चाहिए। कौन सी पुस्तक बाहर गई है, कौन लेगया है, कौन मासिक-पत्र किसके पास है, कौन क्या चाहता है, इत्यादि जो लाइब्रेरियन सदा इन बातों का ध्यान रखता है, प्रत्येक पाठक उससे सन्तुष्ट रहेगा सब उसकी प्रशंसा करेंगे और पुस्तकालय में उनकी स्थायी अनुरक्ति हो जायगी।

वास्तव में लाइब्रेरियन का सुन्दर व्यवहार, उसका विनोदी स्वभाव, हँसमुख चेहरा, कार्य, तत्परता और आनन्द से ओत प्रोत मीठी बातें पाठक का हृदय जीतने के लिए पर्याप्त हैं, पुस्तकालय की उन्नति के साधन हैं। कौन पुस्तकालय ऐसे गुणों से भूषित लाइब्रेरियन को पाकर उन्नत न होगा। ('पुस्तकालय' के एक लेख के आधार पर)

हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता

और उसपर महाराष्ट्रीय साधु-सन्तों के विचार

(गताक से आगे)

महारासि शिवें ।
कोपे ब्राह्मण तो नव्हे ।
तया प्रायश्चित्त कांहीं ।
देहत्याग करतां नाहीं ।
ज्याचा सग चित्ती ।
तुका म्हणे ता ते याती ।

महार या भगि को छू जाने से जिसे क्रोध आ आता है, वह ब्राह्मण ही नहीं कहा जा सकता । उसके लिये तो देहत्याग के बिना अन्य प्रायश्चित्त ही नहीं । जिस वस्तु का मनुष्य अपने हृदय में ध्यान किया करता है, बस वह उसी को पाता है ।

अपने अन्तर्यामी का विस्मरण जिस कारण से होता है, उसी को तुकोबा 'पाप' कहते हैं ।

देव अन्तर तें पाप ।

परमेश्वर से अन्तर कराने वाला ही तो पाप है ।

जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी यदि वह वितडावादी ह तो उसे ब्राह्मण नहीं किन्तु 'अन्त्यज' मानना चाहिए—

अतीवादी नव्हे शुद्ध या बीजाचा । आलसा जातोचा अन्त्यज ता ।

अतिवादी अर्थात् अनावश्यक निरर्थक वाद विवाद करनेवाला हरगिज ब्राह्मण का जाया हुआ नहीं कहा जा सकता । उसे तो निश्चय ही अन्त्यज समझो । तुकोबा का कथन है, कि प्रभु के दरबार में ात पाँत का हिसाब नहीं है । गुण अवगुण को ही परमात्मा एकमात्र प्रमाण समझते हैं ।

कन्या गो करा कन्येचा विकरा । चांडाल ता खरा तया नावें ।
गुण अवगुण हे दोन्हा प्रमाण । यातिशो कारण नाहीं देवा ।

'कन्या' 'धनु' है । जो कन्या विक्रय करता है—उसी का नाम चाण्डाल है । उसी को सच्चा चाण्डाल मानना चाहिए । ईश्वर तो गुण और अवगुण इन दोनों बातों का ही प्रमाणभूत मानता है । उसे जात पाँत से वास्ता नहीं । जाति पर तो कुछ भी निर्भर नहीं है । यदि ब्राह्मण हो और मुख से कभी हरिनाम न जपता हो, तो उसे क्या आप ब्राह्मण कहेंगे ?

ब्राह्मण तो नव्हे ऐसो ज्याची बुद्धि । पहा श्रुतिमधीं विचारूनि ।
जयासि नावडे हरिकार्तन । आणीक नर्तन वैष्णवाचें ।

जिसको भगवत्-कातंन में प्रम न हो और वैष्णवों का भक्तिमय नृत्य जिसको न सुहाता हो, उसे ब्राह्मण न कहना चाहिए । श्रुति आदि को भली-भाँति देखें, तो वह भी यही निर्णय देती हैं । इसके विपरीत—यदि अन्त्यज हो और 'राम नाम' से उसकी 'ताली' लग गई हो—तो ?

ब्राह्मण ता याती अन्त्यज असता । मानवा तत्त्वा निश्चयेंसा ।
रामकृष्ण नाम उच्चारा सरल । आठवी सावलें रूप मना ।
शांति, दया क्षमा, अलकार अगी । अभग प्रसगीं धैर्यवन्त ।
तुकाम्हणे गेल्या षडूर्मी अग । सांडूनिया मग ब्राह्मण तो ।

अर्थात्— राम कृष्ण नाम' का सरलतापूर्वक जप करता हो, साँवले घन श्याम के सुन्दर रूप का जो ध्यान धरता हो, शांति, दया, क्षमा आदि जिसके अलकार हों और कठिन प्रसगों में जो अचल और धैर्यवान् रहता हो काम क्रोधादि षड्रिपुओं को जिसके हृदय में स्थान न हो—वास्तव में यदि वह जन्म से अन्त्यज भी हो, तो उसे ब्राह्मण' ही मानना चाहिए । ब्राह्मण होते हुए भी जो भगवद्भक्ति परायण नहीं, उसका तो मुँह देखना भी पाप है । उसकी अपेक्षा तो चमार कई गुण अधिक अच्छा है ।

अभक्त ब्राह्मण जला त्याचें तोंड । काय त्याची रांड प्रसवला ।
वैष्णव चामार धन्य त्याची माता । शुद्ध उभयता कूलयाता ।

अर्थात् अभक्त ब्राह्मण हर हरे ! हटाओ उसे सामने से । उसका तो मुँह देखना भी पाप है । उसकी माता ने क्यों ऐसे पुत्र को जन्म दिया ? चमार हो और अगर वह वैष्णव हो तो अहा हा ! धन्य है उसकी जननी को, उसका कुल और उसकी जाति दोनों ही शुद्ध हैं । और जाति गोत्र से करना ही क्या है ? नामस्मरण से ही मनुष्य धन्य धन्य हो जाता है ।

तुका म्हणे नाहीं जाना सवे काम । ज्याचे मुखीं नाम तोचि धन्य ।

तुकोबा का यह कथन है कि यहाँ (परमात्मा के पास) जात-पाँत से तो कोई मतलब ही नहीं । जिसके मुख में श्रीराम नाम हो, बस, वही कृतार्थ है ।

भेदाभेद दृष्टि रखने से तो सब प्रकार का विनाश ही होता है । वास्तव में, यह सब सृष्टि भगवान् का स्वरूप ही तो है ।

जीव अवघे देव ,
खोटा नागवी सदेह ।

सब जीव, सब प्राणिमात्र देव है । हमारे भीतर जो सन्देह उत्पन्न हो जाता है, बस वही सब बरबादी कर रहा है , किन्तु यह दिव्यदृष्टि तुकोबा को भी एकाएक प्राप्त नहीं हुई थी । उनको भी प्रभु की शरण लेनी पड़ी थी ।

जीव अवघे देव , ऐसा भाव दे कांहीं ।

अर्थात्—हे प्रभो ! जीवमात्र सब तेरे ही रूप हैं, ऐसी सर्वगत भावना मेरे भी अन्तर में निर्माण कर ।

किन्तु निकट भविष्य में ही उन्होंने यह अनुभव किया कि—

विश्वीं विश्वंभर । बोले वेदान्तीचा सार ।
जगीं जगदीश । शास्त्रें वदती सावकाश ।
व्यापिलें हें नारायणें । ऐसे बोलतीं पुराणें ।
जनीं जनार्दन । सन्त बोलतो वचन ।
उत्तम चांडाल नर नारी बाल । अवघेची सकल चतुर्भुज ।
अवघा विट्ठल दुजे नाहो । भरला अतर्बाही सदोदित ।

अर्थात्—वेदों का सार निकाला जाय, तो यही मालूम होगा कि इस अखिल विश्व में वह विश्वभर ही समाया हुआ है—यही वेदों का सार है ।

शास्त्रों से भी इसी बात का पता चलता है, कि इस जगत् में जगदीश हो समा रहा है ।

पुराण क्या कहते हैं—यह सब ससार श्रीनारायण से ही व्याप्त है ।

सन्तों का भी यही कथन है कि जनता में ही जनार्दन है । नर, नारी, बालक, उत्तम अथवा चाण्डाल—सब-के सब उस चतुर्भुज परमात्मा के ही रूप हैं ।

यह सब ससार 'विट्ठलमय' है । अन्य यहाँ कुछ भी नहीं है । सर्वत्र, बाहर भीतर हर जगह वही विट्ठलदेव समा रहा है ।

जहाँ हृदय में परमात्मा को स्थान दे दिया, वहाँ छुआ-छूत कैसी ?

जेथें देवाचा तलमल । तेथें कशाचा विटाल ।

जहाँ इश्वर के विषय में अन्तर अधीर हो रहा हो—प्रभु के ही चिंतन में जिस जगह तालाबली मच रही हो, वहाँ अस्पृश्यता कहाँ से और कैसे आ सकती है ?

सत तुकोबा अब इस बात के प्रमाण पेश करते हैं, कि अनेक जाति के लोगों का पतित पावन भगवान् ने उद्धार किया है—

पवित्र तें कुल पावन तो देश । जेथें हरिचे दास जन्म घेति ।
वर्ण आश्रमानें कोण झाले पावन । ऐसे द्या सांगून मजपाशीं ।
अन्त्यजादि यानी तरल्या हरिनामें । त्याचीं पुराणें भाट झालीं ।
वैश्य तुलाधार, गोरा तो कुंभार । धागा हा चांभार रोहिदास ।
कबीर लताफ मुसलमान । सेना न्हावी आणि विष्णुदास ।
कान्होपात्रा खाइ पिंजारी तो दादू । भजनी अभेदू हरिचे पायीं ।
चोखामेळा बंका जातीचा महार । त्यासी सर्वेश्वर ऐक्य करी ।

पवित्र है वह कुल और वह देश, जहाँ हरि के जन जन्म लेते हैं । मुझे कोई यह तो बतादे कि वर्णाभिमान से कोई पावन हुआ है ? अन्त्यजादि सब जातियों के मनुष्य प्रभु के नामस्मरण मात्र से ही (ससार सागर) पार कर जाते हैं, और पुराणादि ग्रन्थों ने भी बदीजनों के समान इस बात का समर्थन किया है । देखिये, तुलाधार वैश्य था और गोरा कुम्हार था । रैदास चमार था न ? और लताफ तथा कबीर मुसलमान । इसी तरह सेना' और 'विष्णुदास' नाई थे और कान्होपात्रा जाति का 'कोई'—त था वह दादू पिंजारा था न ? हरि नामस्मरण करने वाले इन भक्तों का प्रभु के चरणों के पास किसी तरह का कोई भेद भाव नहीं था । चोखामेळा और बंका अन्त्यज महार थे परन्तु उस सर्वेश्वर ने तो उनसे भी तादात्म्य कर लिया था । तुकोबा ने और भी कहा है कि—

सर्वमय ऐसें वेदांचें वचन । श्रुति गर्जती पुराणें ।

(क्रमशः)

जीवन्मुक्त महात्मा श्री तैलंग स्वामी का तत्वोपदेश

लेखक—श्रीयुत अजितनाथ भट्टाचार्य, बी० ए०, एल-एल० बी०

(गताङ्क से आगे)

जब चित्त कल्पना को आश्रय करके प्रकाशमान होता है, तब वह अपना स्वरूप चित्त को भूल जाता है और जड़ता आकर उस पर आक्रमण करती है। जिस प्रकार चित्रित राजमूर्ति कभी लड़ाई नहीं कर सकती, मरा हुआ शरीर किसी स्थान में जा नहीं सकता, शिलाखण्ड गा नहीं सकता, कृत्रिम (बने हुए) सूर्य से अन्धकार का नाश नहीं होता है, उसी प्रकार भ्रम से उत्पन्न चित्त कोई कार्य नहीं कर सकता है। वास्तव में जो करता हुआ मालूम होता है वह केवल देह में स्थित प्राणादि वायु समुदाय की क्रिया-मात्र है। जिस प्रकार अन्धकार में प्रकाश के आने से उस अन्धकार का नाश हो जाता है, उसी प्रकार परमात्मा के साक्षात् दर्शन के समय चित्त का कोई अस्तित्व नहीं रहता है, इसलिए वहाँ पृथक रूप से चित्त का प्रकाश नहीं होता है। मैं आत्मा हूँ, यह जीव ही मैं हूँ, इस ज्ञान का नाम चित्त है, यह चित्त ही अनादि अनन्त दुःख का विस्तार करता है। यदि चित्त को रोकना चाहते हो, तो पहले चित्त के वृत्ति समुदाय को नष्ट करो, तब सहज ही में चित्त का क्षय होगा।

जिस प्रकार घट के भीतर घटाकाश है, उसी प्रकार इस चित्त के भीतर संसार है। घट के विनाश से जिस प्रकार घटाकाश नहीं रहता है, उसी प्रकार चित्त के नाश से संसार नहीं रहता है। चित्त का नाश किसी विशेष उद्योग से नहीं होता है, अज्ञान के दूर होने ही से उसका नाश हो जाता है। जब तक अज्ञान से समाच्छन्न (ढका) रहता है, तब तक चित्त घनीभूत रहता है। जब से उस अज्ञान का अनुभव होने लगता है, तभी से चित्त भी क्षीण होने लगता है। उपदेश से चित्त का कुछ नहीं होता है। चित्त मिथ्या है, यदि रहे तब भी विचार से उसका नाश हो जाता है। चित्त जो करता है, वही तुम अनुभव करते हो, जो नहीं करता है, उसे नहीं अनुभव करते हो। चित्त के योग से हम लोग अपने स्थान से भ्रष्ट होकर पक्षी की तरह भ्रान्त होकर जाल में गिर पड़ते हैं। वह जाल चिन्ता-जाल है।

वासना

निश्चयात्मिका अन्तर-स्थित मनोवृत्ति ही को वासना कहते हैं। मनुष्य कोई काम करे या न करे, मन की जैसी इच्छा होगी वैसा ही उसे स्वर्ग अथवा नरक भोगना पड़ेगा। जिन्हें तत्त्व-ज्ञान हो गया है, उनकी वासना शिथिल हो गई हैं। वासना ही में यह जगत् जाल अवस्थित है। जिसके हृदय में वासना नहीं है, वह त्रिभुवन को तृण के समान समझता है। वासना के नाश के बिना चित्त कभी भी स्थिर नहीं हो सकता है। और वासना के नाश के बिना तत्त्वज्ञान कभी नहीं हो सकता है, और तत्त्वज्ञान के लाभ के बिना वासना का नाश नहीं हो सकता है। इसलिये तत्त्वज्ञान, चित्तनाश और वासना का नाश यह तीनों एक दूसरे के प्रकाश से अवस्थान कर रहे हैं। वासना का क्षय, चित्तनाश और तत्त्वज्ञान, ये तीनों एक ही समय में इष्ट फल देते हैं, यदि इन तीनों का एक साथ ही नाश करने की चेष्टा की जाय।

बुद्धि

बुद्धि जगत्-व्यापी नहीं है, अवश्य ही किसी सीमा-बद्ध स्थान में व्याप्त है, इसलिए वह कोई वस्तु है और वह सब की भिन्न-भिन्न है। बुद्धि कम और अधिक सब को है। जिसकी बुद्धि कम है, उसे निर्बोध कहते हैं, इसलिए बुद्धि का स्थान व्यापकता शक्ति है, इसलिये निःसन्देह बुद्धि साकार है। बुद्धि ही भले बुरे का विचार करती है, अच्छा और बुरा पसन्द करती है और नाना प्रकार की नवीन वस्तुओं का आविष्कार करती है। यदि मनुष्य विद्याहीन हो, पर उसमें बुद्धि हो तो वह सब काम कर सकता है, और यदि बुद्धि न हो, तो उसको विद्या नहीं आती है, और यदि किसी तरह कुछ आवे भी तो वह विशेष लाभदायक नहीं होती है। बुद्धि जीव शरीर का दर्पण-स्वरूप है।

तृष्णा

तृष्णा, मनुष्य-मात्र को इतना दाह करती है कि अमृत से भी उसकी जलन नहीं जा सकती है। तृष्णा ही मनुष्य को भयभीत, दुखित, और अन्धा बना देता है। तृष्णा अप्राप्य वस्तु में आसक्त होती है, अभाव न होने पर भी विषयों की आकांक्षा करती है और एक स्थान में स्थायी नहीं रहती। तृष्णा ही संसार में दुख देती है। तृष्णा ही आत्मतत्त्व को आवरण (ढाँक) करके मनुष्य में अज्ञान पैदा करती है। तृष्णा ही में मन भ्रमित है। तृष्णा ने ही मोह-रूप हाथी को जञ्जीर से बाँध रक्खा है, यह तृष्णा ही जरा, मरण और दुःख का आलय है।

चिन्ता

चिन्ता के त्याग ही से मनुष्य सब दुःखों से बच जाता है। चिन्ता अनन्त समय तक सब विषयों में आसक्त रहती है। चिन्ता का छेदन करना बड़ा ही कठिन है, तब भी ज्ञानी पुरुष विवेक रूप अस्त्र से उसका छेदन करते हैं। जब तक तत्त्वज्ञान का उदय नहीं होता है, तब तक चिन्ता नहीं जा सकती है और जब तक चिन्ता की शान्ति नहीं होती, तब तक तत्त्वज्ञान पैदा नहीं हो सकता है।

चिन्ता का सहोदर (भाई) अर्थ है—किस प्रकार धनवान होंगे, किस उपाय से धन उपार्जन करेंगे, इसी चिन्ता में देह क्षीण होती जाती है। चिन्ता चिरकाल ही से अस्थिर है, एक के बाद दूसरी चिन्ता कहाँ से चली आती है, उसका कोई ठीक ठिकाना नहीं है, इसलिये चिन्ता का कोई अन्त नहीं है, चिन्ता शून्य कोई भी मनुष्य नहीं है।

ऐसा कोई दिन नहीं है, जिस दिन किसी ने कोई चिन्ता नहीं की है। जो चिन्ता नहीं करता है, वही अत्यन्त सुखी है। चिन्ता से शरीर जीर्ण हो जाता है। चिन्ता के शेष होने ही से मुक्ति का पथ सुगम हो जाता है।

माया

माया जगत् की उत्पत्ति करती है, विवेक इस माया में आच्छन्न रहता है। यह माया क्या है नहीं जानी जाती ? यह संसार अति अद्भुत है, यदि विचार न किया जाय तो माया में लिप्त होना पड़ता है। इस माया के स्वरूप को अब तक मनुष्य नहीं जानता है, तब तक वह इसके माहात्म्य का अनुभव नहीं कर सकता है। संसार के बन्धन के लिये यह माया अति आश्चर्यजनक है, क्योंकि असत्य होते हुए भी यह माया सत्य की नाईं प्रतीत होती है। यह माया उस परम-पद तक पहुँचने की रुकावट पैदा करती है।

इस माया की उत्पत्ति कहाँ से हुई इसके विचार की आवश्यकता नहीं है, मैं किस प्रकार इस माया का नाश करूँगा इस विषय पर विचार करना चाहिये। जब यह माया क्षीण होकर तुम्हारे बिलकुल वश में आ जायगी, तब तुम समझोगे कि इस माया का जन्म कहाँ से हुआ, इसकी आकृति कैसी है और यह किस तरह से नष्ट हुई। यह जो माया अपने स्वरूप को विस्तार करके सत्य की तरह दिखाई पड़ती है, यह दोष से रहित नहीं है, इसलिये इसका विनाश करके इसके तत्त्व को समझना होगा। माया के द्वारा यह जीव-समूह इस संसार रूप इन्द्रजाल का विस्तार कर रहे हैं। जब तक आत्म-दर्शन करने में समर्थ नहीं होते हैं, तब तक जीवगण संसार में भ्रमण करते हैं। जब आत्म दर्शन में समर्थ हो जाते हैं, तब सत्य-संविद् प्राप्त होकर ठीक समय पर परम पद को प्राप्त करते हैं।

ऐसे मायामय संसार में जिनको अमर सुख की चिन्ता रहती है, काल उनको भी छेदन कर देता है। इस संसार में उत्पन्न ऐसा कोई वस्तु नहीं है, जो काल के कवल में न गिरे। काल की गति, स्थिति, उदय और अस्त कुछ भी नहीं है। कोई भी अपनी बुद्धि की चतुरता से काल की महिमा नहीं समझ सकता है, और सब जीव लोक में केवल-मात्र काल ही बलवान् है।

(क्रमशः)

स्त्री शिक्षा का उद्देश्य : प्राचीन प्रथा में क्रान्ति करने की आवश्यकता

[गत मास में कन्या गुरुकुल देहरादून के तीसरे दीक्षान्त संस्कार के अवसर पर श्रीमती लीलावती मुन्शी ने जो भाषण दिया था, उसका महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ दिया जाता है।]

सृष्टि के आरम्भ से मानव जाति का आधार दो प्रकार की सभ्यताओं पर रहा है—एक मातृ शासित और दूसरी पितृ-शासित। मातृ-शासित सभ्यता कुछ अनार्य जातियों में विद्यमान है। हमारी सभ्यता आरम्भ से ही पितृ शासित रही है। पहली सभ्यता में माता वह केन्द्र होता है, जिसके चारों ओर गृहस्थ तथा समाज का जीवन ग्रथित रहता है। यद्यपि यह समाज का स्वाभाविक आधार समझा जाता है, तथापि आर्यों ने इस दोष को पहले ही देख लिया था, जो इस प्रथा में छिपा हुआ है और इस लिए उन्होंने समाज को पितृ शासित सभ्यता के आधार पर बनाया। इसके अनुसार गृह तथा समाज का केन्द्र पिता था। इस प्रकार वह पितृ शासित सत्ता परिवार, वंश तथा जाति का आधार बन गई, परन्तु पीछे से पौराणिक युग के विचारकों ने यह समझा कि इसका अर्थ यह है कि स्त्रियों को पुरुषों की दासता में रखा जाए। किन्तु, ऊपर यह बताया जा चुका है, कि पैतृक शासन के होते हुए भी वैदिक काल में स्त्रियाँ स्वतन्त्र होती थीं। जिन ऋषि मुनियों ने अपनी योग्यता और दिव्यदृष्टि के द्वारा हिन्दू समाज की आधार शिला रक्खी, उन्होंने स्त्रियों को तकी का बैल या गुलाम नहीं समझा। यह दोष हिन्दू समाज में महाभारत के युग में आया, जब आर्य संस्कृति से शुद्धता और महत्ता जाती रही थी। महाभारत के बहु विवाहित पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी जायदाद समझा। लोपामुद्रा से चल कर द्रौपदी तक कितनी गिरावट आ गई। महाभारत में हमको मिलता है, द्रौपदी जैसी राजकन्या, राजपत्नी और राजमाता को जुए के दाँव पर रख दिया गया और रामायण में सीता को इसलिये पूज्य माना गया कि उसने अपने व्यक्तित्व को सर्वथा मिटा दिया। ज्यों ज्यों समय गुजरता गया, स्त्रियों की निम्नता का भाव हिन्दू मस्तिष्क में अधिक दृढ़ होता गया।

जो थोड़ा बहुत स्वतन्त्रता बची हुई थी, वह मुसलमानों के समय में ले ली गई। स्त्री का विकास सर्वथा बन्द हो गया। यह अवस्था न केवल भारतवर्ष में किन्तु यूरप में भी १९वीं शताब्दी के मध्य तक रही। बहुत कम स्त्रियाँ ऐसी हुईं, जो विशेष गुण तथा व्यक्तित्व के लिए प्रसिद्ध थीं। उस समय की सामाजिक अवस्था का नियम यही था कि चाहे स्त्री में अन्य कोई गुण हो वा न हो, उसको आज्ञाकारिणी तो अवश्य ही होना चाहिए। यदि उसमें यह सर्ववांछित गुण न हो, तो अन्य प्रकार की योग्यताएँ न केवल व्यर्थ बल्कि हानिकारक समझी जाती थीं। स्त्री का कर्तव्य है कि पुरुष की इच्छा के सामने सिर झुकाती रहे। यह ऐसा मुख्य नियम था, जो न केवल भारतवर्ष में किन्तु संसार भर में व्याप्त था। केवल उन्हीं स्त्रियों को इतिहास या साहित्य में स्थान मिल सका है, जो स्नेह तथा विनय के साथ पुरुष के अधीन रहीं। शायद विरली स्त्रियाँ ही ऐसी थीं, जो इस षड्यन्त्र को तोड़कर अपनी शक्ति और व्यक्तित्व से इतिहास में नाम पा सकीं।

इस दासता का परिणाम भयानक हुआ। समाज का आधा भाग गृह कार्यों के सिवा अन्य सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के सर्वथा अयोग्य हो गया। घर में बन्द रहने के कारण उनका दृष्टि कोण भी संकुचित हो गया। वे अनुदार होगईं और जिन परिस्थितियों में उनका पालन पोषण हुआ उनके अतिरिक्त वे अन्य बातों को सोच ही न सकीं। इसका प्रभाव पुरुष पर भी पड़ा और वह भी अनुदार हो गया। स्त्री को केवल इतना ही सिखाया जाता था कि वह पुरुष के लिए नम्र, आज्ञानुवर्तिनी तथा मनोरञ्जन का साधन बन सके, जैसे एक छोटी सी कठपुतली। विद्या का विशाल क्षेत्र उसके लिए बन्द था, कि कहीं वह अधिक ज्ञान प्राप्त न करले। उसके लिये विशेष पुस्तकें बनाई गईं, कहीं वह पुरुष-सम्बन्धी विस्तृत संसार से परिचित न हो जाय।

इस नये युग में कम से-कम सिद्धान्त रूप से यह मान लिया गया है कि जिस प्रकार मनुष्य का स्वतन्त्र रूप से विकास होना चाहिए उसी प्रकार स्त्री का भी। इस सिद्धान्त की स्वीकृति ने अनेक ऐसे परिवर्तन कर दिये, जिनसे पुरुष और स्त्री के पारस्परिक सम्बन्ध तथा आदर्श बदल गये। अब स्त्री को यह आवश्यकता नहीं कि वह जीवन की पिछली श्रेणी में पड़ी रहे या केवल मानवी सन्तति के जारी रखने का ही साधन रहे या पितरों को स्वर्गलोक पहुँचाने की सामग्री का ही सम्पादन करती रहे। अब वह पुरुष की सहधर्मिणी और उसके आदर्शों तथा काम में बराबर की साझेदार हो गई है। अब घर बाहर, सामाजिक या राजनैतिक सभी विभागों में उसके स्वतन्त्र सहयोग की आवश्यकता समझी जाने लगी है।

अब चूंकि स्त्री स्वाधीन और स्वतन्त्र है वह पुरुष की जायदाद नहीं। यह परिवर्तन केवल सैद्धान्तिक ही नहीं हुआ किन्तु व्यवहार में भी उसके व्यक्तित्व का आदर होने लगा है, उसका सिर ऊँचा हो गया है। वह अब मूक प्राणी नहीं रही। वह अब स्वतन्त्र विचारों की स्वामिनी मान ली गई है। अब उसके पास हृदय है, जो अनुभव कर सकता है और बुद्धि है, जो निर्णय कर सकती है। उसकी अपनी निजी आवश्यकताएँ हैं और अपना निजी व्यक्तित्व भी है। अपने विवाह में उसको निर्णय करने का अधिकार है। परिवार में माता का वही मान है, जो पिता का। वह बच्चों की शिक्षा का देख भाल कर सकती है, वह परिवार के शासन में हिस्सेदार है।

परन्तु, नये कर्तव्यों के लिए नई शिक्षा भी चाहिए। अब तक वंश परम्परा सामाजिक प्रथाएँ तथा शिक्षा उनको यही बताती रही कि स्त्री हर बात में पुरुष के आधीन है। भारत वर्ष में स्त्रियों को आज कल जो शिक्षा दी जाती है, वह उन को किसी धन्धे के योग्य नहीं बनाती। उससे वे उच्च व्यक्ति नहीं बन सकतीं उनको आर्थिक आवश्यकताओं के लिए पिता पति, भाई या पुत्र के अधीन रहना पड़ता है। आर्थिक निराधारता के कारण रोजी कमाने के लिए उनको विवाह करना व सदा दासत्व में रहना पड़ता है। और चूँकि वह स्वयं रोटी नहीं कमा सकतीं, अतः उनको कष्ट का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इस पराधीनता को शिक्षा मिटा सकती है। इसके साथ ही यह समझ लेना चाहिए कि अधिकांश स्त्रियों को अपने घरों की देख रेख करके सभ्यता की गाड़ी को आगे बढ़ाना होगा। सब युगों में स्त्रियाँ संस्कृत के आदर्शों की पोषक रही हैं और नई शिक्षा को चाहिये कि उनको इस योग्य बनावे।

भारत में जो शिक्षा आज-कल दी जारही है, वह संस्कृत के बाह्यरूप पर तो बल देती है परन्तु आन्तरिक गुणों पर विचार नहीं करती। हमारी कन्याओं की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए और उनके स्वभाव ऐसे बनाये जाना चाहिये, जिससे वे अपने जीवन द्वारा राष्ट्रीय संस्कृति का प्रकाशन कर सकें।

संस्कृति के केवल बाह्यरूप से सुसज्जित स्त्री मिश्र देश की ममी के समान है, जो बाहर से तो स्वर्णमयी है, परन्तु भीतर मृत अस्थियों के सिवा कुछ नहीं। वह चकित तो कर सकती है परन्तु प्रेरणा नहीं दे सकती और न आदर की पात्रा ही बन सकती है। हमारे शिक्षणालयों में वास्तविक संस्कृति का संचार करने के लिए राष्ट्रीय इतिहास और मन की राष्ट्रीय भावनाओं से सहायता लेनी चाहिए। इस अपेक्षा से गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली को सब अन्य प्रणालियों से विशिष्टता प्राप्त है। आर्य समाज के गुरुकुलों में एक जीवन का आदर्श पाया जाता है। इस वातावरण में वह राष्ट्रीयता अवश्यम्भावी है, जो हमारे इतिहास में परम्परा से चली आ रही है।

महाविद्यालय की छात्राओं से मुझे एक सन्देश कहना है। नया जीवन आप की प्रतीक्षा कर रहा है। इस जीवन में आप न तो गुड़ियाँ बन कर रहेंगी और न कूड़ा करकट हो कर। केवल चमकीले वस्त्र पहनने और वास्तविक योग्यता के न होने से आपका आदर न होगा। स्त्रियाँ बड़ा तेजी से और वास्तविक रूप में बढ़ रही हैं। अब उनको न केवल अपने घरों और पतियों की ही चिन्ता है, किन्तु जीवन के विस्तृत आदर्शों और विशाल योग्यताओं की भी। सामाजिक और नैतिक क्षेत्र उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। साहित्य और विज्ञान में वे आगे बढ़ रही हैं। अभी हमारा भाग भले ही कम हो, भले ही हम अपने में कालिदास या शेक्सपियर न उत्पन्न कर सकी हों, तो भी हमारी प्रान्तिक भाषाओं में भी उच्च कोटि की लेखिकाएँ हो चुकी हैं। आपका कर्तव्य होना चाहिए कि अपनी साहित्यिक सेवाओं-द्वारा आप अपनी जाति के आदर्शों और विचारों को ऊँचा करें। पिछले चार वर्षों में हम स्त्रियों ने प्रबन्ध तथा आत्मत्याग की योग्यता का अच्छा परिचय दिया है। हमने पुरुषों के साथ सत्याग्रह के कष्टों को सहन किया है। हमने चरखे के सन्देश को बहुत से घरों तक पहुँचाया है। हम स्वाधीनता के प्रेम में केवल

(शेषांश अगले पृष्ठ के नीचे)

कठोर आह्वान

लेखक—श्रीयुत मुकुन्दलाल श्रीवास्तव, 'रुनझुन'

२७ जनवरी के 'लीडर' में प्रकाशित, देश के अभिमान श्री पं० जवाहरलाल नेहरू की आँखों-देखी मुजफ्फरपुर की कराहती आहें और सिसकते-आँसू, भूकम्प के दारुण-प्रकोप की क्षुद्र वक्रदृष्टि है। अभी तक न अनुमान किया जा सकता है और न आगे ही हो सकता है कि माताओं के कितने किलकते खिलौने, भ्राताओं को कितनी मधुस्मित राखियाँ एवं वधूटियों के कितने दमकते सुहाग, देश की अथोर सम्पदा तथा कला के अमूल्य स्मारकों के साथ-ही-साथ, पलक झपकते ही स्वाहा हो गये। यह है प्रलयंकारी-ताण्डव की एक छोटी-से छोटी गति!

इसके पूर्व, सन् ३१ में श्री सियारामशरणजी ने 'गंगा' की बारहवीं 'तरंग' में आकंठ हो, आह्वान किया था—

'गरज, गरज ऐ प्रलयंकर!
× × ×
दिनको कुहू निशा करदे!
× × ×
धू-धू-धू धुधकार भयानक,
प्रलय मचादे प्रलयंकर!'

परन्तु भंग-धतूरे के मादक विनोद में कदाचित् आपका घोर नाद वहाँ तक नहीं पहुँचा। बहुत दिनों तक भी प्रतीक्षा करने पर, जब गर्जन की भनक कान में न पड़ी, तब सन् ३३ में श्री रामधारीसिंह, बी० ए० 'दिनकर' ने और आगे बढ़ के 'गंगा' की '२१वीं तरंग' के गर्भ में कठिन तपस्या करके फिर 'ताण्डव' का आह्वान किया—

'नाचो, हे नाचो नटवर!
× × ×
अट्टहास कर उठें धराधर,
उपटे अनल फटे ज्वालामुख।
× × ×
प्रलय बुलाए प्रलयंकर!
× × ×
फटे अतल पाताल धँसे जग,
उछल-उछल कर कूद भूधर!
नाचो, हे नाचो नटवर!'

हाँ, एक बात तो रह ही गई। इसी बीच श्री 'नवीन'जी ने भी यह आयोजन किया कि एक पन्थ दो काज। गान का गान सुना जाय और नाश तथा सत्यनाश का निमन्त्रण भी हो जाय—कितनी अच्छी बात है! देखिये—

'कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ!
× × ×
नाश और सत्यानाशों का
धुँआधार जग में छाए।'

तथा, प्रोफेसर रामकुमार वर्मा भी, चूँकि एकबार के देखे हुए थे, कहने लगे—'हाँ, हाँ, अवश्य नेत्र-रञ्जन होना चाहिए—

'ताण्डव हो फिर एक बार,
प्रलयंकर! कम्पित झंकृत कर
सृष्टि सृष्टि के तार-तार!
कण-कणमें प्रतिक्षण रण रणहो,
प्राण-प्राण से हो पुकार!
ताण्डव हो फिर एक बार!'

और सुनिये, मित्रवर चंचरीकजी ने जो सुना कि अहा! इतना आनंद है, उथल-पुथल में, झट आप भी बोल उठे—

'प्रलयंकर की गर्जन पर
हो उन्मत्त अलापूँ।'

आखिर पुकार सुनली गई। गत अमावस्या के सुनहले दिन में तांडव हुआ और खूब हुआ। सृष्टि के बहुत से बन्धन टूट गये—धरा का कलेजा विदीर्ण होगया और पड़ गई प्राण-प्राण से पुकार। अब जिसका जी चाहे गर्जन पर गलबाजी करे, चाहे गान सुने या नृत्य देखे, किन्तु हृदय का कोना-कोना टटोल, पहले बतलाने की कृपा करे कि शांति कहाँ सिकुड़ी-सिमटी छिपी बैठी है।

काव्य की आत्मा अनुभूति है। कवियों की अनुभूति कटु भी होती है और मधुर भी, किन्तु चित्रण करने में कटुता की गोदी माधुर्य से भी भरी जा सकती है और मधुरिमा में कटुता का भी आभास झलक सकता है।

हाँ, कवि उस परिस्थिति में भी पहुँच सकता है, जब सुषमा की ललक में उसे मृग-तृष्णा की झलक मिलती है एवं मधु प्याली में काल-कूट। उस समय जर्जर हृदय की चिनगारियाँ भड़क उठती हैं और कवि चाहता है अपने-ही-साथ सारी सृष्टि को भस्मीभूत कर देना, किन्तु यही आशय—यही अभिप्राय—मधुर-शब्दों में भी प्रकट हो सकता है। प्रलय का ऐसा कठोर-आह्वान कुमारजी एवं नवीनजी सरीखे श्रेष्ठ-कवियों को श्रेय नहीं।

मेरा तात्पर्य यह कदापि नहीं, कि इस भूकंप की आकस्मिक-दुर्घटना का सारा दोष उपर्युक्त-सुकवियों की लेखनी के दृष्टि-कोण पर है। भावी (होनहार) को जहाँ कोई रोकने वाला नहीं, वहीं उसे कोई लाने वाला भी नहीं है, परन्तु फिर भी—

'आवाज-ए खल्क, नक्कारा-ए-खुदा'

बार-बार अनिष्ट-कामनाओं के लिए अवसर फैलाना—खुले-शब्दों में प्रलय का आह्वान करना—कुछ अच्छी बात नहीं है।

(शेषांश १० वें पृष्ठ का)

जा चुकी हैं। हमने अपनी सेवाओं द्वारा पुरुषों और स्त्रियों के तक को ऊँचा उठाया है। इस महान् विस्तृत जीवन में जो आपके सामने आने वाला है, उसमें चाहे जिस विभाग को आप लेवें उसको तत्परता के साथ निबाहिए। इस बात का परवाह न कीजिये कि आदर्श छोटा है या बड़ा। सदा साहस के साथ अपना आदर्श बनाइये और उस पर धैर्य के साथ चलिये। आप का कर्तव्य है कि न केवल घर को ही जीवन दें, किन्तु देश भर को। आप की माताओं ने पुरुषों की पत्नी बन कर उनको उत्साहित किया, आप समवर्गीय साथी बन कर उनको उत्साहित कीजिए।

यदि स्त्रियों ने राष्ट्रीय उन्नति के लिये प्रयत्न न किया, तो भारत उस गौरव को प्राप्त न कर सकेगा, जिसका वह स्वप्न देख रहा है। यदि आप स्वतन्त्र हो गईं, तो मदालसा की भाँति अपने बच्चों को स्वतन्त्रता का आदर्श दिखा सकेंगी। यदि आप स्वस्थ होंगी, तो भावी सन्तान का स्वास्थ्य सुरक्षित है। यदि आप साहसी होंगी, तो हिन्दू जाति असंगठित और कायर न रहेगी। यदि आप विदुषी होंगी, तो समस्त जाति के सदाचार का तल ऊँचा हो जायगा।

अन्त में कन्या गुरुकुल के संचालकों तथा अध्यापिकाओं को बधाई है कि आप इतने उत्साह से कार्य कर रही हैं। कोई संस्था तब तक नहीं चल सकती, जब तक उसमें परम श्रद्धालु स्त्री पुरुष न हों। इस संस्था ने जो सफलता प्राप्त की है, वह इसके संचालकों के निरन्तर पुरुषार्थ का जीता जागता प्रमाण है। मुझे आशा है कि यह स्वामी दयानन्द सरस्वती का उपयुक्त स्मारक होगा।

खद्दर पहनो और देश के दुख-दारिद्र्य को दूर भगाओ।

वृक्ष-देव

लेखक—श्रीयुत जगतनारायण दूबे

शीत, आतप तथा वर्षा की उपेक्षा कर निरन्तर समाधिस्थ रहने वाले, ओ कर्मयोगी तपस्वी ! तुम्हें हमारा नमस्कार हो। तुम अखिल विश्व की विभूति, त्याग-तपस्या का साक्षात् मूर्ति हो ! तुम प्रखर-मार्तण्ड कर-निकर द्वारा उत्तप्त होते हुए भी ग्रीष्म-प्रताड़ित तथा आतप व्यथित व्यक्ति के जीवनाधार हो ! तुम असंख्य विहगमवृन्द के कोलाहल-पूर्ण रव तथा मल-मूत्र को वहन करते हुए भी उनके आश्रय-दाता हो ! साक्षात् मातृ प्रतिमा हो ! क्षुधा-पीड़ित नर-समाज को अमृतमय फलदान द्वारा तृप्ति देने वाले ओ तरुण तपस्वी ! तुम्हें हमारा कोटिशः प्रणाम हो।

स्वार्थ तथा अहंकार का पुतला मनुष्य-समाज तुम्हें जड़ बतलाता है। देव ! उन दार्शनिकों की आँखें फूटी थीं, उनके मन-मुकुर पर विषय-वासनाओं की काई लगी थी, उनके विवेक पर काम क्रोध तथा लोभ ने घना पर्दा डाल रखा था, जिन्होंने तुम्हें जड़ कहा था। तुम तो साक्षात् शंकर के स्वरूप हो। जगत के हित के लिए भगवान् शंकर ने तो एक ही बार हलाहल विष का पान किया था और तुम ! तुम तो नित्य प्रति विष पान* कर जगतीतल के असंख्य प्राणि वृन्द को अमृतदान† देते हो ! अगर तुम न रहो, तो अल्पकाल में ही समस्त वायुमंडल हलाहल से परिपूर्ण होकर प्राणी-मात्र का नाश कर डाले।

राजर्षि दधीचि की साक्षात् मूर्ति ! तुम्हारी स्तुति किन शब्दों में करें। तुम मर कर भी, अपनी हड्डियों को भस्म कराकर भी, उसी कुटिल मानव समाज के असंख्य कार्यों का प्रतिपादन करते हो, जिसने तुम्हें जड़-संज्ञा से कलंकित कर रखा है। अहिंसा की प्रति-मूर्ति ! अपना सर्वस्व निछावर कर संसार के समस्त भोगों तथा ऐश्वर्यों पर लात मार कर तुम्हीं ने तो कर्मयोग का सच्चा आदर्श सामने रखा है। चूल्हे में पड़ें वे गेरुआधारी सन्यासी, जिन्होंने अपने को हिमालय की अज्ञात गुफाओं में बन्द कर रखा है। अपने काले मुख को लेकर संसार के सामने निकलने के भी वे अधिकारी नहीं हैं। योगिन् ! क्या ही अच्छा होता कि वे झूठ-मूठ के तामसी तथा राजसी यज्ञ तप को छोड़ कर तुम्हारी ही तरह सात्विक तपस्या की कुंड में अपने समस्त मानव-विकारों को भस्म कर देते।

माता वसुन्धरा के सच्चे सपूत ! वाष्प तथा विद्युत के इस वैज्ञानिक युग ने सम्भवतः तुम्हारी महत्ता नहीं समझी है। तुम्हारे इस महत्व को तो आर्य ऋषियों ने ही भली-भाँति पहचाना था। इसी से उन्होंने तुम्हें वृक्ष-देव की संज्ञा दी थी, तथा तुम्हारी पूजा का विधान बतलाया था।

कालचक्र ने तुम्हें अधःपतन में गिरा दिया था; परन्तु इस प्रकाश के युग में वह दिन दूर नहीं है, जब तुम त्याग और तपस्या के गुरु माने जाओगे तथा अखिल-विश्व तुम्हारे मूक-उपदेशों द्वारा अमृत लाभ करेगा। क्या ही अच्छा होता कि मानव समाज आपकी ही तरह त्यागी हो जाता। परमेश्वर करे, वह दिन समीप हो और रक्त रंजित वसुन्धरा पर नन्दन-कानन उतर आवे जिसके सौरभ से व्यथित मानव समाज का कल्याण हो !

* विषैला अंश हाइड्रोजन।
† प्राण-प्रद वायु

बिहार के तीन दर्शनीय स्थल

गया, ससराम व रोहतासगढ़

लेखक—श्रीयुत अशरफीलाल वर्मा

बिहार के इने-गिने दर्शनीय स्थानों में गया, ससराम और रोहतासगढ़ का स्थान बहुत ही ऊँचा है। तीनों स्थान पौराणिक काल में जितने प्रसिद्ध थे, हिन्दू और मुसलमान ऐतिहासिक काल में उससे भी कहीं अधिकतर प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। देश और विदेश के प्राचीनता-प्रेमी पर्यटक आज भी इन स्थानों का अवलोकन कर अपने श्रम तथा साधन को सफल मानते हैं। तीनों स्थान एक दूसरे से अनाधिक दूरी पर अवस्थित हैं और रेल-पथ ने तीनों का दर्शन और भी सुलभ कर दिया है।

इस बार विगत बड़े दिन की छुट्टी में मेरा विचार, कई कारण से, बाहर जाने का नहीं था, किन्तु अवकाश के अन्तिम भाग में एक आत्मीय के यहाँ गया जाना अनिवार्य हो गया। २८ दिसम्बर वृहस्पतिवार को १० बजे दिन की ट्रेन से पूर्णियाँ से प्रस्थान किया। रेल के डब्बे में बैठा-बैठा यह भी निश्चित कर लिया कि लगे हाथ इस बार ससराम और रोहतासगढ़ भी देखता आऊँ। गंगा पार कर सन्ध्या समय भागलपुर पहुँचा। यहाँ बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे खत्म हो जाती है और गया के यात्री को ई० आई० रेलवे से यात्रा करनी होती है। गाड़ी मिलने में देर था, अतएव भागलपुर शहर का भी एक चक्कर लगा ही डाला। करीब ११ बजे रात में गाड़ी मिली, जिसने लगभग १ बजे क्यूल जङ्क्शन पर उतार दिया। शेष रात्रि वहीं काटनी पड़ी। प्रातःकाल गया जाने वाली ट्रेन पर सवार होकर लगभग ११ बजे दिन में गया पहुँच गया।

गया

गया हिन्दू और बौद्ध दोनों का पवित्रतम पूजनीय स्थान है। समग्र भारत के हिन्दू अपने अपने पितरों का श्राद्ध तथा पिण्ड-दान करने के लिए प्रति वर्ष यहाँ आते हैं। मेले के दिन में यहाँ लाखों मनुष्यों का जमाव होता है। यहाँ का प्रधान तीर्थ विष्णु-पद का मन्दिर है, जो पुण्य सलिला फल्गू के तट पर एक अनति उच्च पहाड़ी के ऊपर बनाया गया है। पहाड़ी की एक एक इंच भूमि अनेक मन्दिरों तथा गृहों से ऐसा भर गई है कि पहाड़ी होने का भान ही नहीं होता। विष्णुपद का मन्दिर काले पत्थर का बना है और उस पर का भास्कर्य देखने ही योग्य है। मन्दिर के गर्भ भाग में पहाड़ी के उच्चतम शिखर पर, भगवान् विष्णु का पद-चिन्ह बना हुआ है, जिसकी पूजा निरन्तर होती रहती है। विष्णु-पद से निकल कर जो बाजार मिलता है, वह प्राचीनतम हिन्दू समय के बाजार का द्योतक है। विष्णुपद का मन्दिर अठारहवीं शताब्दी में महारानी अहिल्याबाई ने बनवाया था।

विष्णुपद से उत्तर और निकट ही भगवान् सूर्यदेव का मन्दिर और कुण्ड है। मन्दिर में सप्त वाजि चलित रथ पर सूर्य भगवान् की मूर्ति अत्यन्त ही मनोहर है। फल्गू के किनारे एक दूसरा मन्दिर भी सूर्य भगवान् का है।

विष्णु-पद से कुछ दूर पर गजाधरनाथ महादेव का मन्दिर है। मन्दिर उतना सुन्दर नहीं है, किन्तु गजाधरनाथ की बहुत बड़ी महिमा है। गया का अक्षयवट भी एक दर्शनीय वस्तु है यहाँ पर लोग अन्तिम पिण्ड देते हैं। विष्णुपद के ठीक सामने फल्गू नदी के उस पार वह स्थान है, जहाँ महाराज दशरथ ने पृथ्वी से अपना हाथ निकाल कर महारानी सीता से पिण्डदान स्वीकार किया था। इसी के निकट एक उच्च पहाड़ी है, जिस पर हनुमानशिला का दर्शन होता है, गया के आस-पास जितनी पहाड़ियाँ हैं, सब की चोटी पर एक-न-एक पाठ स्थल है। रामशिला नामक पहाड़ी पर से गया एक चित्रपट-ऐसा अत्यन्त सुन्दर भासता होता है।

गया का चौक बाजार बहुत ही सुन्दर है और बड़ा गुलजार रहता है; सभी वस्तु का यहाँ क्रय विक्रय होता है। आलीशान मकानों की कतार देखने ही योग्य है बिहार का कोई भी शहर गया की समता नहीं कर सकता है, सचमुच गया एक दर्शनीय स्थान है।

गया शहर से करीब ६-७ मील पर बौद्धों का प्रधान प्राचीन तीर्थ बुद्ध गया है। गया से बहुत ही सुन्दर सुहावनी सड़क बुद्ध गया की ओर गई है, उस ओर प्रस्थान करते ही मन में विविध भाव व आनन्द-हिलोरें उठने लगती हैं और आँखें आतुरता पूर्ण हो जाती हैं। बुद्ध गया के निकट शान्ति कुंज सदृश पीपल वृक्ष की विशाल एवं सघन छाया में सवारी गाड़ी खड़ी हुई। सामने ही बुद्ध गया का जगत् प्रसिद्ध मन्दिर अभ्र को भेदन करता हुआ विराजमान था। नयनाभिराम पुष्पवाटिका को पार कर सम्मुख द्वार पर पहुँचे। प्रस्तर-निर्मित द्वार पर सोने का पानी चढ़ा है, मालूम हुआ इसे आसाम के राजा ने चढ़ाया था। मन्दिर में उच्च वेदी के ऊपर भगवान् बुद्धदेव की विशालकाय मूर्त्ति विराजमान थी। दर्शन के समय एक प्रकार की अवर्णनीय शान्ति हृदय में अनुभूत होती है। यहाँ आने ही से ज्ञात होता है जैसे जीवन की एक साध पूरी हो गई। चारों ओर इस प्रकार सुखद शान्ति है कि सहसा यह विश्वास हो जाता है कि यह भूमि अवश्य ही तपोभूमि थी। मन्दिर के पीछे एक विशाल वट-वृक्ष खड़ा है और कहा जाता है कि यह उसी वट-वृक्ष का प्रतिनिधि है, जिसके नीचे भगवान् बुद्धदेव को निर्वाण प्राप्त हुआ था। भक्ति पूर्वक मैंने उसे प्रणाम किया। कुछ देर चारों ओर की पवित्र भूमि पर विचरण करता रहा। सड़क के उस पार बौद्ध गया के महन्त का स्थान देखा और फिर उस पवित्र भूमि को अन्तिम प्रणाम कर गाड़ी पर आरूढ़ हो, गया शहर से प्रस्थान किया।

ससराम

तारीख ३० दिसम्बर के प्रातः काल वाली ट्रेन से ससराम देखने के लिए गया से रवाना हुआ, स्नानादि से गया में ही निपट लिया था। ई० आई० आर० की गाड़ी हवा से बातें करती चली जा रही थी, दोनों ओर का प्रातःकालीन दृश्य बड़ा ही सुहावना प्रतीत हो रहा था। रास्ते में भारत-प्रसिद्ध सोन नदी का पुल देखा, जिसकी लम्बाई एक मील से भी ऊपर है, दोनों ओर विशाल काय सोन नदी का सिकटा-पूर्ण मरुभूमि जैसा पट कोसों तक दृष्टिगोचर हो रहा था। वर्षा काल में इसकी शोभा दर्शनीय रहती होगी। सोन के उस पार देहरी स्टेशन है, जहाँ से रोहतासगढ़ जाने वाली रेल प्रारम्भ होती है, किन्तु मैं उसे फिरती बार देखने का निश्चय कर आगे बढ़ता गया और लगभग ८ बजे ससराम स्टेशन पर उतर पड़ा।

ससराम की सबसे प्रधान दर्शनीय वस्तु भारत सम्राट् शेरशाह का समाधि मन्दिर स्टेशन से निकट ही है, किन्तु अनजान होने के कारण मुझे अधिक भाड़ा देकर टाँगा लेना पड़ा। स्टेशन के पास वाली धर्मशाला में सामान रख कर मकबरा देखने को निकला। कोई १० मिनट में टाँगे वाले ने मुझे जगत् प्रसिद्ध समाधि सौध के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया, क्या ही भव्य दृश्य है! देखते ही बन आता है। एक मील के घेरे वाली सुन्दर एवं सुरक्षित पुष्करणी के मध्य में यह विशालकाय सौध एक अनुपम एवं अद्भुत छटा बखेरता है और पर्यटक के हृदय को सहसा आश्चर्य एवं उल्लास से भर देता है। विशाल तोरण के उस सुन्दर एवं सुखद पथ को पारकर समाधि सौध के प्राङ्गण में प्रवेश किया रक्षक ने मन्दिर का द्वार खोल दिया, सामने ही महा महिम शेरदिल सम्राट शेरशाह की समाधि पुष्प-मण्डित विराजमान थी। मैं आदर-पूर्वक कुछ देर तक उसको देखता रहा। समाधि-मन्दिर में अन्य बहुत-सी समाधियाँ बनी हुई हैं, जिनके नाम का कुछ पता नहीं। सीढ़ी से चढ़कर दूसरे महल और फिर तीसरे महल पर गया। अवर्णनीय शोभा को बहुत देर तक आनन्द विभोर होकर देखता रहा। सामने ठीक वैसा ही एक दूसरा समाधि मन्दिर दृष्टिगोचर हो रहा था। पूछने से ज्ञात हुआ कि वह शेरशाह के पिता का है। नीचे आकर टाँगा द्वारा वहाँ भी पहुँचा और नीचे ऊपर तमाम देखकर बाजार होता हुआ दोपहर के समय धर्मशाला में लौट आया।

भोजन से निवृत्त हो कुछ विश्राम लेकर तीसरे पहर किला देखने गया। यह बाजार के निकट ही भग्नावशेष राजप्रासाद है। महल की ऊपरी छत से ससराम की शोभा बहुत ही सुन्दर दृष्टि पड़ती है और दूर पर ताल, तथा वन की शोभा और भी अपार है। संध्या समय बाजार को भलीभाँति देखा।

रोहतासगढ़

सन्ध्या-समय जब भोजन कर के लेटा तो तमाम शरीर दर्द करने लगा।

गया और ससराम देखते देखते सारा शरीर बहुत ही थक गया था और पाँव में वेदना हो रही थी। एक नापित से मालिश कराने लगा, उस समय देहरी जाने वाली गाड़ी आ पहुँची। जल्दी जल्दी समान लेकर स्टेशन की ओर दौड़ा। गाड़ी छूटने को थी, टिकट नहीं ले सका, किन्तु गार्ड महोदय ने कृपा करके मुझे गाड़ी में बैठने की अनुमति दे दी।

लगभग ९ बजे रात्रि देहरी स्टेशन पर उतरा। मैं निकट ही ठहरना चाहता था, क्योंकि ३ बजे रात में रोहतास जाने वाली छोटी लाइन की गाड़ी खुलती थी। कोई स्थान न मिल सका, अन्त में छोटी लाइन स्टेशन पर गया। स्टेशन एक छोटा सा खपरैल का घर है, जो बिल्कुल अन्धकार पड़ा था, एक आदमी भी स्टेशन पर नहीं था खैर उसी अन्धकार में बिस्तर बिछा कर लेट गया। रात में मशा बहुत था।

तीन बजे से कुछ पहले स्टेशन के कर्मचारी लोग आते गये, मैं भी टिकट लेकर डब्बे में जा बैठा। दो तीन स्टेशन जाकर सब मुसाफिर उतर गये और मैं अकेला उस अजान पर सुनसान डब्बे के भीतर विविध विचारों में डूबा पड़ा रहा। बाईं ओर दूर तक सोन की सिकता श्रेणी, सुधाकर की निर्मल चन्द्रिका में चमक रही थी और दाहिनी ओर श्रेणी बद्ध भूधर रात्रि में विशालकाय राक्षस ऐसा सोया हुआ जान पड़ता था। गाड़ी निर्धारित गति से जा रही थी। रोहतास से दो तीन स्टेशन पूर्व एक मनुष्य ने आकर कहा—उतरिए मोटर से जाना होगा। मैंने पूछा—क्यों, गाड़ी नहीं जायगी? उन्होंने कहा—आगे रेल मोटर है उसी में जाना होगा। अस्तु, उस पर सवार होकर प्रातःकाल छः के पूर्व ही रोहतासगढ़ स्टेशन पहुँच गया।

सामान सब स्टेशन पर रखा। स्टेशन के जमादार ने कृपया फागू पाण्डे नामक एक भले गाइड को गढ़ दिखलाने के लिए ठीक कर दिया। शौच आदि से निवृत्त हो, कुछ खाने का सामान और धोती, तौलिया लेकर गढ़ के लिए प्रस्थान किया। एक कोस का मैदान पार कर वन के बीच घाटी के निकट पहुँचे। पहाड़ की चढ़ाई प्रारम्भ हुई और कुछ ही देर में शरीर पसीने पसीने हो गया और प्रश्वास की गति अत्यन्त तीव्र हो गई। कुछ विश्राम किया फिर ऊपर ऊपर चढ़ता गया। पाँव में वेदना होने लगी, बैठ गया। फिर चलने लगा, अब टूटी फूटी अवस्था में सीढ़ी मिलने लगी और अत्यन्त श्रान्त क्लान्त होकर किसी तरह लगातार कठिन चढ़ाई में ऊपर चढ़ता गया। गिरते पड़ते किसी प्रकार खड़ी चढ़ाई पार करके किले के बहिरङ्ग प्राचीर के नीचे पहुँचा, जो बिना मरम्मत और प्राचीन होने के कारण पहाड़ के रङ्ग में मिलकर काला हो रहा था। तत्क्षण हम लोग गढ़ के प्रधान द्वार को पार कर भीतर गये और घूम कर पहाड़ के शिखर स्थित समतल भूमि पर पदार्पण किया।

दुर्ग के प्रथम प्राचीर से रोहतासगढ़ की प्रधान दर्शनीय वस्तु, राजा मानसिंह निर्मित 'फूल महल' कोई ३ मील दूर होगा। पहाड़ के शिखर पर यह समतल भूमि कई माईल की परिधि में फैली हुई है। रोहतश्वर महादेव का मन्दिर किनारे पर ही है, कुछ हट कर अस्सी सीढ़ी है। इस समतल भूमि पर दूर दूर पर इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली इमारतें भग्नावशेष अवस्था में पड़ी हैं। कहा जाता है, यह किला सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र का था और उनके पुत्र युवराज रोहिताश्व के नाम पर इस दुर्ग का नामकरण हुआ है। यह दुर्ग सर्वदा हिन्दू राजाओं से आबाद था और किसी समय इस दुर्ग के भीतर बावन (५२) बाजार और तिरपन (५३) चौक थे, इस समय वह सब कुछ नष्ट हो गया है और चारों ओर जङ्गली पेड़ खड़े हैं, जिनमें वन जन्तु निर्भय विचरण करते हैं। लगभग १५४९ ई० में शेरशाह ने इस हिन्दू राजा से छीन लिया था। बङ्गाल की ओर आने पर राजा मानसिंह ने इसे अपना आवास-स्थान बनाया था। अगले जमाने में लोग इस किले को सुदृढ़ और अजेय समझते थे और दिल्ली और पूर्व बङ्गाल के बीच में होने से इसका महत्त्व भी अधिक था।

अस्तु हम लोग आगे बढ़े। अब रास्ते में कोई विशेष कष्ट नहीं था, किन्तु थका रहने के कारण चलना दूभर हो रहा था। अब आते-जाते मनुष्यों से भी साक्षात् होने लगा। लगभग ढाई मील पार कर हम लोग दुर्ग के दूसरे भाग के निकट पहुँचे। निकट में एक अहीर का घर था, किन्तु दूध या दही कुछ न मिल सका। अस्तु, फाटक को पार कर हम लोग आगे बढ़ते गये और कुछ देर में उस झरने के निकट पहुँचे, जिसके निकट ही उस पार 'फूल महल' या 'दल बादल महल' या प्रधान दुर्ग दृश्यमान हो रहा था। दिन खूब चढ़ गया था और गर्मी मालूम हो रही थी, अतएव हम लोगों ने यहीं पर शीतल जल में स्नान करके श्रम निवारण किया। कुछ जलपान करके किला देखने चले। बाहरी द्वार को पार कर भीतरी द्वार पर आये, जहाँ से राजप्रासाद आरम्भ होता है। द्वार के दोनों ओर दीवाल में दो हाथी की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। रक्षक ने भीतर ले जाकर महल दिखाना आरम्भ किया। एक से-एक सुन्दर महल बने हुए हैं, जो अब तक पूर्ण सुरक्षित हैं। आराइश का सब सामान मौजूद है। राज निवास, बेगम महल, सभा भवन, नाच गृह, नजरबाग, खजाना घर, बादशाही दफ्तर आदि सभी दर्शनीय हैं। ऊपर चढ़ कर देखने से चारों ओर का बहुत ही सुहावना दृश्य दिखाई देता है। गढ़ से लगा हुआ डाक-बँगला बना है, जहाँ यात्री आकर ठहरते हैं। इस समय ससराम के कोई बाबू आये हुए थे, उनसे भी गढ़ पर ही साक्षात् हुआ। गढ़ देखकर हमलोग फिर झरने के किनारे आ पहुँचे। कुछ भोजन और विश्राम किया। शरीर बिलकुल थक गया था और पाँव आगे बढ़ने में लाचार हो रहे थे। गाड़ी दो बजे खुलती थी, उसे पकड़ना जरूरी था, अतएव आगे बढ़े। झरने के किनारे एक तिवारीजी से भेंट हुई जो हमारे गाईड फागू पाण्डे के परिचित थे। आप एक टट्टू पर गये थे और यजमान से उन्हें एक बछिया दान में मिली थी, बछिया और टट्टू दोनों साथ जाने को राजी नहीं थे, अतएव तिवारीजी को पैदल जाना पड़ता था और आगे-आगे टट्टू और पीछे-पीछे बछिया को खींचकर ले जाना होता था। उन्होंने मुझे थका हुआ देखकर अपना टट्टू दे दिया, जिससे उन्हें भी सुविधा हुई और मुझे भी आराम मिला। समतल भूमि को पार करने के बाद मैंने उन्हें टट्टू सधन्यवाद लौटा दिया और पैदल चलकर शिखर के किनारे गढ़ के प्रवेश द्वार के निकट पहुँचा। गढ़ को अन्तिम प्रणाम करने के पूर्व घाटी के किनारे प्रहरी भवन में खड़े होकर पहाड़ से नीचे की ओर निहारने लगा। मतवाला कर देने वाला दृश्य, विस्मयकारी चित्रपट ऐसा पहाड़ के नीचे का समां, दृष्टि के सम्मुख उपस्थित था। दूर पर, दूर तक अनन्त बालुकामयी सोन नदी दृश्यमान हो रही थी, उसमें क्षुद्र सलिला क्यूल और औसान धागे की नाईं टेढ़े-मेढ़े रूप में बहती हुई, जो मिल रही थी उसकी छवि वर्णन नहीं की जा सकती है। सामने ही रेलवे स्टेशन और अकबरपुर के घर समूह खिलौने-से जान पड़ते थे। जान पड़ता था जैसे मीलों तक हरे मखमल का बिछावन बिछा दिया गया है और उसमें नाना रूप की चित्रकारी की गई है। मन भर कर इस आनन्दकारी दृश्य को देखता रहा, किन्तु तृप्ति न हुई। देर होती जान गढ़ को अन्तिम प्रणाम किया और आखरी द्वार को पार कर पुनः घाटी में उतरने लगा। चढ़ाई से उतराई सहज है, किन्तु खतरे से खाली नहीं। धीरे धीरे एक एक सीढ़ी पर नीचे उतरता गया। आधा रास्ता उतर जाने के पश्चात् देखा कि एक साहब गढ़ देखने के लिये ऊपर आ रहा है, चढ़ाई की गर्मी से आकुल होकर उसने कोट उतार कर खानसामा को दे दिया और मुश्किल से चढ़ रहा था। मैंने कहा—ऊपर की चढ़ाई और भी कठिन है। वह बोला—और भी कठिन? और मुस्कुराता हुआ आगे बढ़ गया। कुछ और नीचे आने पर कुछ चरवाहों से मुलाकात हुई जिन्होंने कहा कि एक बछड़े को व्याघ्र ले गया और वह नीचे इमली के वृक्ष के निकट पड़ा है। मैं भयभीत हो गया, किन्तु फागू पाण्डे ने कहा कि कुछ भय नहीं चलिए। नीचे और नीचे इमली के निकट पहुँचा सभीत होकर देखा कि बछड़ा मरा पड़ा है और उसके गले से रक्त की धारा चल रही है। सभय होकर अविराम नीचे उतरता गया। नीचे, नीचे और नीचे और कुछ देर में घाटी को पार कर मैदान में आ गया। थकान से सारा बदन टूट रहा था। स्टेशन पर आकर लेट गया। गाड़ी आने में देर थी। कुछ विश्राम किया। दो बजे गाड़ी मिली। कोई आठ बजे गया पहुँचा, फिर वहाँ से पटना और भागलपुर होता हुआ पहली जनवरी के सन्ध्या-समय पूर्णिया लौट आया।

पुरुषत्व का ढोंग

लेखक—श्रीयुत श्रीरंग, विशारद

बोतिह लिफाफी है'—पंडित विश्वनाथ शर्मा ने गौरेँ सिकोड़, एक पान पराग रामकिशोर बाबू की ओर बढ़ाते हुए बोले।

'ठीक तो है, स्त्री स्वातन्त्र्य के न रहने के कारण हमारी आधी शक्ति नष्ट हो चुकी है, हमारी औरतें पतित होती जा रहीं हैं, और उनके मर्द हृदय हीन पशु बनते जा रहे हैं। मर्दों की बुद्धि दिनों दिन संकीर्ण होती जा रही है, इसीलिए यह आन्दोलन शुरू किया गया है'—रामकिशोर बाबू ने जवाब दिया।

'क्या आप समझते हैं, आज कल की हवा में पड़ कर लड़कियाँ, लड़कियाँ ही रह जाती हैं? उनमें सतीत्व-पालन करने की शक्ति बची ही रहती है? उनमें कभी पातिव्रत आ सकता है? अभी वे ऐसी आँखें उठाकर चलती हैं, कि हमारी आँखें झिप जाती हैं। बोलती हैं, तो मानों हिन्दू-सभा के मंच पर से भाषण दे रही हों। न किसी की लाज और न शर्म। लड़कों की तरह पाठशाला जाती हैं और आती हैं। क्या आप लोगों ने देश का सत्या नाश ?'—कहते कहते पण्डितजी ने एक कुर्सी का सहारा लिया।

'पढ़ने से, यदि कोई दुराचारी बन जाता है, तो आप भी दुराचारी हैं, आप की आवाज भी तो कम बुलन्द नहीं है। और, न ताक-झाँक से ही आप बाज आते हैं। सतीत्व और परदे से क्या सम्बन्ध? परदे के भीतर साध्वी ही रहती हैं, ऐसा तो निश्चय नहीं, बल्कि टट्टी ही की ओट में शिकार होता है, भले आप न करें, मैं न करूँ, पातिव्रत औरतों ने उठाया और सफलता तक पहुँचा दिया। अब तो यह व्रत मर्दों द्वारा बाकी है। किसी औरत की आँखों के सामने आँखें झिपना तो नैतिकता की कमी बतलाता है। लड़के लड़कियों में विभिन्नता क्या है? दोनों एक पिता माता की सन्तान हैं। सृष्टि दोनों से चलती है, एक दूसरे के आश्रित हैं। फर्क इतना ही है, कि मर्दों के स्वार्थ पर वे अपने को निछावर कर चुकी हैं, पर अब हम समझ गये, परिस्थिति कहती है—इन्हें मुक्त कर दो। खैर, लीजिए पान तो खाइए।'—रामकिशोर बाबू अपनी कुर्सी पर से पान की तश्तरी पण्डितजी के आगे सरकाते हुए हँसे।

'मर्द और स्त्री एक नहीं हो सकती'—पण्डितजी ने एक बीड़ा मुँह में लेते हुए कहा—'नैतिक दृष्टि से बुद्धि में मनुष्य स्त्रियों से चतुर होते हैं, अतः इनके ऊपर उनका अधिकार रखना न्याय है। क्या कचहरी में इनके द्वारा दूषित मनुष्य अपनी असमर्थता पर लड़ेगा नहीं? मर्द का न्याय औरत करें! ये बड़ी चंचला होती हैं ऊँच नीच का इन्हें जरा भी ज्ञान नहीं रहता, सब से असल बात तो यह है कि ईश्वर ने इन्हें मर्दों के उपभोग के लिए ही बनाया है।'

'ऐसा तो किसी ने नहीं लिखा है, यदि इसे सत्य भी माना जाय, तो वे अपने को लिये चाहें, देने के लिए स्वतन्त्र हैं क्योंकि उनके हृदय में उनकी आत्मा है, वे चेतन हैं, तब तो और भी आगे बढ़ना पड़ेगा।'—रामकिशोर बाबू ने सामने के टेबुल को ओर से पीटते हुए जवाब दिया।

'नहीं भैया, हम औरतें इतनी अ कृतज्ञ नहीं हैं, अज्ञान नहीं हैं। हमें जो जो उपदेश दिये गये, आज्ञा दी गई, राह दिखाई गई, उसके अनुसार चल कर हमने कर्तव्य पूरा किया। यदि कोई कुमार्ग पर भी गई, तो उसमें मर्दों का ही कसूर था।'—रामकिशोर बाबू की बहन श्रीमती राधिका देवी कमरे में प्रवेश कर दोनों वकालों के बीच आ खड़ी हुई। पण्डितजी की ओर मुँह फेर कर उन्होंने पूछा—'क्यों पण्डित जी, ईश्वर की बनाई चीजें भी देखने का हमें अधिकार नहीं?'

'अच्छा बात है'—पण्डितजी ने ताना और छड़ी सम्हाली—'मुझे आप से ऐसी आशा न थी, मैंने शीला और उसकी अध्यापिका सुखदेई को चेता दिया है। यदि उनमें से कोई भी जलूस और सभा में शामिल हुई, तो उसको मेरा घर छोड़ देना पड़ेगा, पर आप जो लोगों को बहकाते फिरते हैं, ठीक नहीं करते, अच्छा—नमस्ते।'

पण्डितजी चलते बने।

राधिका ने मुस्करा कर कहा—भैया, 'पशुता की राह पर' नाम की पुस्तक में मैंने पढ़ा था—जगत ही नहीं, जीवधारी भी बहुत दिनों तक सभ्य रहने के बाद फिर जंगल (प्रकृति) की ओर दौड़ते हैं, पर यह विश्वास नहीं होता था।

• •

शीला पण्डित विश्वनाथ शर्मा की एक दश वर्षीया पुत्री है और सुखदेई, पचीस वर्ष की विधवा रूपवती युवती अध्यापिका है। दोनों एक ही साथ रहती हैं। पण्डितजी सामाजिक विचारों में अनुदार एक के समझे जाते हैं। भागलपुर के लोगों में उनके और सुखदेई के विषय में बहुत सी अफवाह फैली हुई हैं।

• •

'कहाँ है सुखदेई'—गुस्से से लाल-पीले हुए पण्डितजी शीला के कमरे में प्रवेश करते हुए बोले। शीला काँपती हुई अपनी शिक्षिका के कमरे की ओर चली गई। उसका कलेजा धड़क रहा था, आँखें बरस रही थीं और मुँह बन्द था।

'किस लिए बुलाया'—सुखदेई ने गम्भीर भाव से आकर पूछा। शीला साँस रोके पीछे खड़ी थी।

'इसलिए कि मैंने तुम्हें अपनी लड़की को पतुरिया बनाने के लिए नहीं रखा है! जैसी खुद हो वैसी सभी को बनाना चाहती हो! बस मेरे घर से तुरत निकल जाओ।'—पण्डितजी ने नीची निगाह पर ऊँची आवाज से कहा।

'चले जाने में मुझे क्या उज्र हो सकता है, परन्तु आप-जैसे लोगों को भी मुझे दुश्चरित्र कहने का साहस कैसे हुआ? क्या कल के जुलूस में शामिल होने के कारण? यही तो आप की नैतिकता का दिवाला है।—सुखदेई धीरे, पर रोष से बोली।

'बस, मैं अधिक बोलना नहीं चाहता। आप कृपा कर मेरी आँखों के सामने से हट जायँ। यह त्रियाचरित्र खत्म करें, नहीं तो '—विश्वनाथ दाँत किटकिटा कर रह गये।

'नहीं तो मारेंगे, क्यों?'

'हाँ हाँ, कहता हूँ मारूँगा, तुम जैसी को सजा देना मर्दों का काम है।'—पण्डितजी का अन्तःकरण, दुर्विचार और स्वार्थ संकीर्णता की आग में जल चुका था।

'और शीला, तूने मेरी बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया! ऐसी निर्लज्ज हो गई है, क्यों? चल तुझे '—बिलपती बालिका की दाईं बाँह पकड़कर कमरे में ठेल दिया और जंजीर लगा दी।

बेचारी सुखदेई चली गई पर उस की आँखों में घृणा और दया के भाव थे।

सबेरे शहर में हल्ला उठा कि पण्डितजी ने सुखदेई को किसी कारण निकाल दिया है। वह रामकिशोर बाबू के घर में हैं। लोग अपने अपने मन का अर्थ लगा रहे थे।

• • •

माघी पूर्णिमा के दिन दल-के-दल स्वयंसेवक बैज लगाये मेले में घूम रहे थे। बहुतों को पहरा बँट गया था और बहुतों को बाँटने के लिए नायक स्वयंसेवकों ने मर्द तथा औरतों के घाट अलग-अलग कर दिये थे। लाखों की भीड़ आती, जाती और नहा रही थी। इतने में एक हल्ला मचा।

एक खद्दरधारी स्वयंसेवक हाँफता हुआ शिविर पहुँचा और रामकिशोर बाबू से बोला—एक आदमी पकड़ा गया है। दोपलिया टोपी, खूब साफ धोती और कुर्ता, पर भलमानस नहीं मालूम होता, एक लड़की को घूर रहा था, पर ज्यों ही उसका पकड़ना चाहा कि एक स्वयंसेवक ने देख लिया और वह चिल्ला पड़ी। चलिए, आपको लोगों ने बुलाया है शायद उसको पुलिस में देना पड़े।'—वह जोर जोर से साँस फेंक रहा था।

रामकिशोर बाबू ने अपनी डायरी सम्हाली और 'नायक' का बैज लगा तेजी से चल पड़े। भीड़ इनकी ही ओर आ रही थी। उनमें से एक पुरुष ने लपक कर कहा—देखिए बाबू, यह बाबू बना है, औरतों पर हाथ लगाता फिरता है—रामकिशोर बाबू को देख कर गुण्डे की आँखें नीची हो गईं। नायक चिल्ला पड़े—अरे आप!

सब लोग शिविर पहुँचे। भीड़ हटा दी गई। सौभाग्यवश श्रीमती सुखदेई और रामकिशोर बाबू की बहन राधिका भी वहीं आ गईं। गुण्डे को देख कर राधिकादेवी बोलीं—कहिए प० विश्वनाथजी, जुलूस में घूमने वाले लोग व्यभिचारी होते हैं न?

पण्डितजी क्या बोलते, उनको लकवा मार गया था। रामकिशोर बाबू ने सुखदेई से कहा—मैं तो प्रतिहिंसा की आग में जल रहा हूँ। मैं इनकी यहीं मरम्मत करता, पर तुम्हारे हाथों ही से इनका न्याय कराना उचित समझा।

'भैया, क्या बातें करते हो'—सुखदेई घृणा से बोली—'इनके सिवा और भी बहुत से मर्द हैं, जो पढ़ी लिखी औरतों को कुलटा समझते हैं। पण्डितजी ने मेरे साथ जो बर्ताव किया है, वह स्मरण करने का नहीं। वह नारी हृदय ही है, जिसने उस पर राख डाल दी।'

रामकिशोर बाबू चुप थे।

'इन्हें बड़े घर भेजने की जरूरत नहीं'—वह फिर बोली—'वहाँ इनकी वासना नष्ट न होगी। धन रहने के कारण वहाँ पश्चात्ताप करने का मौका नहीं मिलता। इन्हें छोड़ दो और पश्चात्ताप के द्वारा अपने को सुधारने का अवसर दो।'

राधिका ने तरस खाकर कहा—हाँ बहन, ठीक ही कहती हो। ये पुरुषत्व के ढोंगी पुरुष दया के पात्र हैं।

चिट्ठी-पत्री

सस्ता-साहित्य-मंडल का स्थान-परिवर्तन

सब साधारण को यह सहर्ष सूचित किया जाता है कि सुप्रसिद्ध सस्ता-साहित्य-मण्डल का प्रधान कार्यालय अजमेर से हट कर भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली मे आ गया है। मण्डल की पुस्तकें मँगाने वाले सज्जनों से निवेदन है कि वे अब आगे से मण्डल सम्बन्धी सारा पत्र व्यवहार आगे लिखे पते पर करने की कृपा करें—व्यवस्थापक, सस्ता-साहित्य-मण्डल, पोस्ट बक्स नं० ७८, दिल्ली।

—मंत्री,
सस्ता-साहित्य-मंडल, दिल्ली

'प्रभात' का हरिजन अंक

अप्रैल के अन्तिम सप्ताह मे साप्ताहिक 'प्रभात' का हरिजन-अङ्क निकलेगा। २॥) पत्र का वार्षिक मूल्य भेज देने वालों को यह अङ्क मुफ्त मिलेगा। आशा है, हिन्दी के लेखक और कवि-गण शीघ्र-से-शीघ्र इस अङ्क के लिये लेख और कवितायें भेजेंगे।

—सम्पादक 'प्रभात', बलिया

आगरा में महावीर जयन्ती

जैन-कुमार-सभा आगरा ने तारीख २८ व २९ मार्च को महावीर जयन्ती महोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया। ता० २८ को प्रात: पण्डित माणिक्यदेवजी शास्त्री के सभापतित्व में स्थानीय जैन-पाठशालाओं के ३१ छात्रों को पारितोषिक व ५८० छात्रों को मिठाई वितीर्ण की गई और महावीर-जयन्ती की छुट्टी के लिये सर्व सम्मति से प्रस्ताव पास हुआ कि भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकार से अनुरोध किया जाय कि जयन्ती की छुट्टी गजेटेड छुट्टी हो। पश्चात् बड़े समारोह के साथ जयन्ती का जलूस सारे बाजार होता हुआ रोशन मोहल्ला पहुँचा। तीसरे पहर मोतीकटरे के बड़े जैन मन्दिर में बड़े समारोह के साथ पूजन व अभिषेक हुआ और सन्ध्या को बाबू गुलाबरायजी, एम० ए० सभापति ने अपना भाषण पढ़ कर सुनाया। जैन-अनाथालय के छात्रों के भजन और कई विद्वानों के महत्त्व पूर्ण भाषण हुए जिनमें अम्बाला से पधारे हुए श्रीमान् पण्डित राजेन्द्रकुमारजी शास्त्री और काशी से पधारे हुए श्रीमान् पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, सम्पादक 'जैन-दर्शन' के अधिक महत्त्व पूर्ण थे।

तारीख २९ मार्च को प्रात: स्त्री-सभा हुई, जिसमें पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री और श्रीमती अंगूरीदेवीजी के व्याख्यानों का स्त्री-समुदाय पर अच्छा प्रभाव पड़ा। सन्ध्या को पं० पद्मचन्द जी सर्राफ के मंगलाचरण के पश्चात् प० माणिक्यदेवजी शास्त्री ने सभापति का आसन ग्रहण किया और अपने भाषण में वीर जयन्ती और भगवान् महावीर के जीवन पर प्रकाश डाला। पश्चात् पं० लक्ष्मीधरजी बाजपेयी ने अपने भाषण में अहिंसा तथा त्याग के महत्त्व को बतलाया। बाबू पूर्णचन्द्रजी वकील और श्री बद्रीप्रसादजी के भाषण भी हुए और पण्डित हरिशंकरजी शर्मा और कवि आनन्दजी आदि की कविताएँ पढ़ी गईं।

—कपूरचन्द्र जैन

'गंगा' के पाठकों की सेवा में

१५ जनवरी के भूकम्प में 'गङ्गा' की जो असीम क्षति हुई है, उसे प्रत्यक्षदर्शी ही जान सकते हैं। प्रेस का सारा मकान गिर गया, मशीनरी और टाइप चौपट हो गये। प्राय: सब कर्मचारी अपने विध्वस्त गृहो को सम्हालने चले गये। यदि बनैली राज्याधीश कुमार साहब 'गङ्गा' के संरक्षक न होते, तो कम-से-कम ६ महीने में 'गङ्गा' फिर निकल सकती, परन्तु कुमार साहब ने श्रम और द्रव्य की परवाह न कर 'गङ्गा' तथा प्रेस की पुन: सुव्यवस्था कर दी, यद्यपि इसमें दो महीने का समय लग गया। इसी बीच आप के यहाँ ५० हजार के जवाहरात चोरी चले गये। तो भी साहित्य प्रेम के सामने आप किसी भी विघ्न-बाधा से विचलित न हुए। 'गङ्गा' का 'विज्ञानाङ्क' 'वेदाङ्क' और 'पुरातत्त्वाङ्क' से भी बृहत्त आकार में बड़ी सजधज के साथ निकल रहा है। इसमें लगभग ५ हजार रुपये खर्च किये गये हैं। त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन आदि-जैसे विद्वानो की सम्मति से परिशिष्टाङ्क के रूप में 'गङ्गा' के फरवरी और मार्च के अङ्क भी सम्मिलित कर दिये गये हैं। जल्द ही 'विज्ञानाङ्क' निकल जायगा। मूल्य ३॥) रखा गया है, ४०० पृष्ठ हैं, सैकड़ो रंगीन और सादे चित्र हैं। इस दैवी विपत्ति को ध्यान में रखकर, विश्वास है, 'गङ्गा' के पाठक हमें इस विलम्ब के लिये अवश्य क्षमा प्रदान करेंगे।

—प्रबन्धक, 'गङ्गा'
सुलतानगंज, ई० आई० आर०

विचित्र-जगत्

कुत्तों का संगठन

पोलेण्ड के पियोट्रो कोव नामक गाँव में एक बार ‹ . अद्भुत बात हुई। एक दिन लोगों ने उठ कर देखा, तो गाँव में एक भी कुत्ता नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति अपने कुत्ते की खोज कर रहा था और एक दूसरे से जब यही समाचार सुनता, तो आश्चर्य-चकित हो जाता था। आशय यह कि सारे गाँव के सभी कुत्ते एक हो साथ कहीं चले गये थे और गाँव भर में बड़ी खलबली-सी मची थी। पर, दो पहर के १२ बजने पर तो लोगों के आश्चर्य का पार न रहा, › ब गाँव के निकटस्थ महकमा जंगलात के अधिकारियों ने गाँव वालों को यह टेलीफोन किया कि आप लोगो के तमाम कुत्ते यहाँ सरकारी रक्षित जंगल में आ गये हैं और आप लोग अगर उन्हें तुरन्त ही न ले जायँगे, तो उन्हे गोली मार दी जायगी। उस गाँव के निवासी, वहाँ जाकर अपने ८७ कुत्तों को बमुश्किल लौटा कर ला सके थे।

जाँच करने से पता चला कि उस गाँव के तमाम कुत्तों ने एकत्र होकर न जाने क्या प्रस्ताव किया और सुसंगठित होकर सब उस सरकारी जगल में पहुँचे और शिकार करना निश्चय किया। उस दिन उन्होंने तीन बड़े हरिन और ८ खरगोश मारे थे।

पक्षियों का सत्याग्रह

कुछ वर्षों पूर्व, वर्मा में पक्षियों ने सत्याग्रह किया था।

पशुओं की बुद्धिमत्ता

'न्यूयार्क टाइम्स' के जनवरी के अक में 'ग्रे' नामक लेखक ने एक लेख लिखकर साबित किया है कि पशुओं में काफी बुद्धिमत्ता होती है। लेखक महाशय ने ३२ वर्षों-प्राणी सग्रहालय में व्यवस्थापक का काम कर चुके श्री रेडस्त्रेभर से जानकारी प्राप्त की और बतलाया है कि सैकड़ों प्रयोगो द्वारा उन्होने यह अनुभव किया है कि पशु भी प्रेम, सहानुभूति, राग, द्वेष, मत्सर आदि भाव व्यक्त करना जानते हैं। उनका यह भी कहना है कि मेरी जानकारी में १० पशु ऐसे हैं, जो सब पशुओं से अधिक बुद्धिमान् हैं, और वे हैं—(१) शिंपैंजी, (२) ओरग-ओरेंग, (३) हाथी, (४) गोरिल्ला, (५) कुत्ता, (६) गोह, (७) घोड़ा, (८) सीलायन, (९) लोमड़ी और (१०) बिल्ली।

ऊपर दिये हुए नम्बरो का क्रम पशुओ की क्रमश: उन्नत बुद्धि के अनुसार ही दिये गये हैं।

कुत्ते को आज हजारो वर्षों से मनुष्य का सहवास प्राप्त होने के

[illegible] ईसेन नाम की एक मादा शिम्पेंज़ी हम अफ्रीका से लाये थे। वह मनुष्य की तरह अपने हाथों कपड़े पहनती थी, मेज पर बैठ कर काँटे-चमचे से भोजन करती थी। उसी जाति का एक और भी बन्दर हमारे पास था, वह तो सिलाई का काम भी अच्छा कर लेता था। एक बार उसके पिंजरे के बाहर मैंने एक फल छोड़ दिया। प्रथम उसने बाहर हाथ डाल कर उसे उठाना चाहा; पर हाथ न पहुँचा। फिर उसने एक लकड़ी खोज कर उससे उसे अपनी ओर खींच लेना चाहा, पर जब लकड़ी भी छोटी पड़ गई, तब उसने उसमें एक टुकड़ा और बाँधा और उसके द्वारा उसने फल अपनी ओर खींच लिया।

एक बार बक्स-पर-बक्स रख कर भी उसने एक फल को प्राप्त किया था। बुद्धिमानी में शिम्पेंज़ी की ही जोड़ में मैं ओरंग को नम्बर दे सकता हूँ। उसके बाद हाथी का नम्बर है। हाथी बूढ़ा हो जाने पर भी बड़ा बुद्धिमान और चुस्त चालाक रहता है। अगर आज बूढ़ा हाथी भी पकड़ा जाय, तो एक ही महीने में आप उसकी अक्लमंदी के १६ करिश्मे देख लीजिए। हमारे प्राणी-संग्रहालय में एक हाथी है, वह आते-जाते अपने निवास स्थान का द्वार अपने आप बन्द कर लेता है। गर्मी के दिनों में दरवाजे को वह खुला रखता है। प्रत्येक रविवार को प्राणी-संग्रहालय में बहुत से लोग देखने के लिये आते हैं और हाथी को फल खाने को देते [illegible] वह थोड़ा-थोड़ा [illegible]

एक बार [illegible] ओर पर केवल तमाशा देखने के लिए रख दि[illegible] में देखा गया, उसने अपनी लम्बी सूँड़ ऊपर [illegible] बार तक न पहुँची, तो उसने सूँड़ को ऊँची करके ऐसे [illegible] मारी, कि वह फल उड़ कर दीवार से टकरा कर [illegible] निकट आ गिरा।

[illegible] निकट ही एक वृक्ष पर एक पक्षी का घोंसला था। जब वह पक्षी [illegible] पना घोंसला बनाता रहता, तब वह हाथी बड़े प्रेम से उसकी ओर [illegible] करता और अपनी सूँड़ ऊँची करके उसकी ओर धीमी-धीमी हवा फेंका करता था।

उस हाथी की स्मरण शक्ति भी बड़ी आश्चर्यजनक है। हमारे यहाँ एक लड़का काम करता था, एक बार उसने उस हाथी के साथ कुछ छेड़-छाड़ की, वह हाथी उससे ऐसा नाराज हुआ कि जब वह उस लड़के को देखता, बुरी तरह बिगड़ खड़ा होता और उसे मार डालने को तैयार हो जाता। बाद में हमने उस लड़के को नौकरी से अलग कर दिया। तीन वर्षों के बाद किसी काम से वह लड़का फिर एक बार वहाँ आया और उसे देखते ही हाथी ऐसा बिगड़ा कि अभी उसे मार डालेगा।

वार्षिक मूल्य ३॥) सचित्र साप्ताहिक एक अंक का एक आना

जागरण

THE JAGARAN सम्पादक—प्रेमचन्द Illustrated Weekly

वर्ष २ | काशी, मि० माघ कृष्ण १ सोमवार, सं० १९९० वि० : ता० १ जनवरी सन् १९३४ ई० | अंक २०

श्रीयुत सम्पूर्णानन्दजी



आप गत २९ दिसम्बर १९३३ को बम्बई में होने वाले संयुक्त प्रान्तीय हिन्दी-भाषी सम्मेलन के सभापति चुने गये हैं। आपका बहुत ही सुन्दर और ओजस्वी भाषण जागरण के इसी अंक में अन्यत्र छपा जा रहा है। आशा है, पाठक उसे ध्यान से पढ़ेंगे।

परिचय

जग के जर्जर जीवन में मैं भूल-चूक अपनी हूँ,
आँसू की नीरव माला पहने सुकुमार बनी हूँ।
पर दुख से कातर-कातर शशि किरणों में घुल-घुलकर,
जो बरस-बरस पड़ती है, वह उज्ज्वल-कान्त कनी हूँ।
अपने पुलकित पत्रों पर जो छवि मधु लिपटा कर,
उन मधुपों-सी दुख रज में मैं रे अब-नलिनि सनी हूँ।
जिसने सीखा जग-तल में पद मर्दित हो, मुस्काना,
फूलों में हँस, इठलाना वह शस्य श्याम अवनी हूँ।
जो सुख-समीर में मिल मिल सूने वन में खो जाते,
अलि, उन उज्ज्वल फूलों की मैं मधु-मकरन्द घनी हूँ।
ना, ओस-कनों में झर, जो ऊषा-नभ पर मिट जाती,
सुख की धुँधली रेखा सी मैं मृत्यु-शेष 'रजनी' हूँ।

— श्री प्रकाशवती 'रजनी' —

जागरण

वि० माघ कृष्ण १ सोमवार, सं० १९९० वि०

बेकार बैठने से काउंसिलों में जाना अच्छा है

ये हैं वह शब्द जो महात्मा गाँधी ने राष्ट्र की वर्तमान स्थिति पर विचार करके दिल्ली में अन्सुल से कहे थे। महात्माजी का आदर्शवाद व्यवहारिक आदर्शवाद है। वह यह समझते हैं कि सभी वाद मनुष्य के सेवक हैं, स्वामी नहीं। किसी वाद को मूर्ति बनाकर पूजना और परिस्थिति की ओर से आँखें बन्द कर लेना प्रगतिशील समाज का धर्म नहीं। लेकिन, मुशकिल यह है कि सम्प्रदायों की भाँति ही हरेक नीति या कार्यक्रम परम्पराओं के बन्धन में कुछ ऐसा जकड़ जाता है कि उससे निकलना उसके लिये असाध्य हो जाता है। उन परम्पराओं का पालन करके, जिन्होंने त्याग किया है, कष्ट झेले हैं, अथवा सर्वस्व खो बैठे हैं, वे सम्प्रदायों के महन्तों ही की भाँति अपने नेतृत्व से मोह करने लगते हैं। यहाँ महन्तों का-सा भोग विलास नहीं पर कुछ यश और मान तो है ही और शायद महन्तों के पद से कहीं बढ़कर। महन्तों को वह पद अपने गुरु की कृपा से मिलता है, यह यश और सम्मान अपने जीवन को बलिदान करके प्राप्त होता है, उससे मोह होना स्वाभाविक है। उसके साथ ही उस नीति के सिवा किसी दूसरी नीति की सफलता में हमें विश्वास भी नहीं होता। जो व्यक्ति धोती और कुरता पहनने का आदी हो, उसे कोट पतलून पहनते बड़ा संकोच होता है। एक रस पर रहना मानसिक स्थिरता का लक्षण समझा जाता है। उस नीति या कार्यक्रम का परित्याग करना उसकी विफलता को स्वीकार करना समझा जाता है, और हम अपनी गलती को मानने में विरले ही उदारता का परिचय देते हैं। कांग्रेस में इस समय कुछ यही हालत हो रही है। परम्परा प्रेमियों की उसमें इतनी प्रधानता है कि महात्माजी के ये महत्वपूर्ण शब्द भी हवा में उड़ते दिखाई देते हैं।

हरेक संस्था को सिद्धान्त वादियों की आवश्यकता होती है, जिसमें उसमें जीवन और दृढ़ता आ जाए। परम्पराओं का भी संस्थाओं के जीवन में एक स्थान है। उन परम्पराओं को छोड़ दीजिए और आपका व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। यह भी आवश्यक है कि हमारे कार्यकर्ताओं में सहयोग हो, हम सन्देह होने पर भी अपने नायक की आज्ञा मानते रहें। जब हमें नेताओं में सन्देह होने लगता है, तभी संस्था निस्तेज हो जाती है। यह सब मानते हुए भी हम समझते हैं इस समय कांग्रेस को अपना कार्यक्रम बदलना पड़ेगा और चारों ओर बाधाओं को देखते हुए काउंसिल प्रवेश के सिवा कोई दूसरा मार्ग नहीं रह गया है। हम यह मानने को तैयार हैं कि अब तक काउंसिलों से विशेष उपकार नहीं हुआ लेकिन उपकार चाहे न हुआ हो, उनसे जितना अपकार हो सकता था वह कुछ न कुछ अवश्य कम हुआ। अगर हम काउंसिलों से कुछ तत्व न निकाल सके, तो इसमें बहुत कुछ हमारा ही दोष है। अभी दस साल पहले तक कांग्रेस शिक्षित समुदाय की संस्था थी, जिसमें पूँजीपतियों की प्रधानता थी, जिसका उद्देश्य अधिकार और पद था। कांग्रेस के दृष्टिकोण में जो कुछ परिवर्तन हुआ है, उसे अभी बहुत थोड़े दिन हुए। यह ठीक है कि यदि सरकार की ओर से बाधाएँ न खड़ी की जातीं, तो इस थोड़े ही समय में राष्ट्र साम्यवाद की ओर आ गया होता। लेकिन यह इस बात की दलील नहीं कि नवीन आदर्श पर हम काउंसिलों का बहुमत प्राप्त करने की चेष्टा न करें। उस बहुमत से कांग्रेस को अपने आदर्श के अनुसार बहुत बड़ी सहायता मिलेगी। अभी कांग्रेस एक गैरकानूनी दल है और हरेक कांसटेबुल भी समझता है कि कांग्रेस कार्यकर्ताओं को किसी जुर्म में फँसाकर वह सुर्खरू हो जायगा। जब कांग्रेस काउंसिल और असेम्बली में प्रधान दल होगी, तब उसके कार्यकर्ताओं के साथ यह धाँधली न की जायगी। प्रयाग में मि० फीरोज गाँधी और श्री शिवमूरत लाल के साथ अधिकारियों ने जो कुछ किया है वह कांग्रेस के व्यवस्थापक सभाओं में होते हुए अगर असम्भव न था, तो कठिन अवश्य था और यह तो अभी आरम्भ हुआ है।

यह कहा जा सकता है, कांग्रेस का बहुमत पाना कोई निश्चित बात नहीं है। ठीक है, लेकिन कांग्रेस पार्टी अल्पमत में भी रही, तो वह मान्य अल्पमत होगा, और कोई सहज ही उसकी उपेक्षा न कर सकेगा।

लेकिन महात्माजी के ये शब्द केवल उन लोगों के लिये हैं, जो व्यक्तिगत रूप से निर्वाचन के लिये खड़े होना चाहते हैं। व्यक्तिगत रूप से तो अब भी जिसकी इच्छा हो खड़ा हो सकता है लेकिन फिर उस कांग्रेसी उम्मेदवार में और अन्य उम्मेदवारों में कोई अन्तर नहीं रहता बल्कि बहुधा उसे ऐसे लोगों से मुकाबला करना पड़ता है, जिनकी पीठ पर छोटी छोटी संस्थाएँ या दल होते हैं। वह भी अपने को कांग्रेस से निकाला हुआ समझने लगता है। उसके पास उतना धन भी कहाँ है, जिसके बल पर वह एलेक्शन की लड़ाई लड़ सके। जरूरत इस बात की है कि कांग्रेस संगठित और प्रत्यक्ष रूप से मैदान में आवे और अपनी पूरी शक्ति लगा दे। अगर उसने साहस से काम न लिया, तो वह ऐसे लोगों के लिये रास्ता साफ कर देगा, जो व्यवस्थापक सभाओं में पहुँचकर उसका अहित करना ही अपना धर्म समझेंगे और जन पक्ष कुछ समय के लिये निर्बल हो जायगा।

एम० सी० सी० की धूम—

आज सारे देश में एम० सी० सी० की धूम है। खिलाड़ियों का नागरिक स्वागत किया जा रहा है, ऐड्रेस दिए जा रहे हैं, और कहा जा रहा है कि भारत के स्वराज्य का प्रश्न क्रिकेट के मैदान में हल होगा। जिस उत्साह से हमारे राजे और महाराजे और मिलों के स्वामी और बड़े बड़े लोग इस प्रापगेंडा में चिमटे हुए हैं, उससे इस विषय में जरा भी सन्देह नहीं रह गया कि बस अबकी मैच में जीते और स्वराज्य मिला। हॉकी में हिन्दुस्तानियों ने सारी दुनिया को जीता, स्वराज्य की एक मंजिल पूरी हुई। पोलो में जीत कर हम दूसरी मंजिल पर जा पहुँचे। तैराकी में अव्वल आकर तीसरी मंजिल मार ली। फुटबाल में पहले से हमारा सिक्का बैठा हुआ है। आज समाचार आया है कि टेनिस में आस्ट्रेलिया वालों को हमने नाकों चने चबवा दिया। चौथी मंजिल भी पूरी हो गई। बस क्रिकेट में जीतने की देर है। जीते और पूर्ण स्वराज्य मिला। और जीत तो होगी बम्बई ही में, लेकिन उस इलेविन में शरीक होने के लिए केवल खिलाड़ी होना काफी नहीं। आप अच्छे खिलाड़ी हैं तो क्या, बैठे रहिए। यहाँ जिस पर अधिकारियों की कृपा है, वह इलेविन में लिया जाता है। सुना है वाइसराय साहब को क्रिकेट से बड़ा प्रेम है। जवानी में अच्छे क्रिकेटर थे। अब खेल तो नहीं सकते, मगर आँखों से देख तो सकते हैं। और जिस मैच में हुजूर वाइसराय को दिलचस्पी हो उस में हमारे राजों महाराजों, नवाबों और धनवानों को नशा हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। हुजूर वाइसराय अगर प्रिंस दलीप सिंह से खुश होते, तो शायद वह भी आदर के साथ बुलाए जाते लेकिन नहीं, उन्हें क्रिकेट से क्या मतलब। यहाँ तो पक्का खिलाड़ी वह है, जिसे अधिकारी लोग नामजद करें। भारत की ओर से बादशाह को वाइसराय बधाई देते हैं, भारत का प्रतिनिधित्व अधिकारियों ही के हाथ में है। फिर क्रिकेट के क्षेत्र में क्यों न निर्वाचन अधिकार उनके हाथ में रहे। इस धूम धाम और टीम टाम का यही रहस्य है। रेल ने कन्सेशन दे दिए, एक्सप्रेस गाड़ियाँ दौड़ रही हैं, तमाशाई लोग थैलियाँ लिए कलकत्ता भाग जा रहे हैं।

और इधर गुल मचाया जा रहा है कि मन्दी है और सुस्ती है। मन्दी और सुस्ती है मजदूरों की मजदूरी घटाने के लिए, नौकरों का वेतन काटने के लिए, ऐसे मुआमिलों में हमेशा तंगी रहती है।

पेरिस में भीषण दुर्घटना

खबर है कि फ्रांस की राजधानी पेरिस में एक बहुत बड़ी रेलवे दुर्घटना हो गई। एक डाक गाड़ी ६० मील की चाल से आ रही थी कि एक स्टेशन पर वह एक खड़ी मुसाफिर गाड़ी से टकरा गई। दोनों गाड़ियाँ भरी हुई थीं। बड़े दिन का उत्सव मनाने के लिए लोग अपने या मित्रों के घर जा रहे थे। बड़ा जबरदस्त टक्कर था। १८० से ऊपर तो वहीं मर गये और ३०० से ऊपर जख्मी हुए। ऐसा मालूम होता है, फ्रांस में रेलों का प्रबन्ध कुछ गड़बड़ है। तभी तो एक टक्कर में इतनी जानों की क्षति हुई। क्या हो अच्छा हो कि भारत का रेलवे बोर्ड अपने हाथ में वहाँ का प्रबन्ध ले ले और उन्हें सिखा दे कि यों ट्राफिक को कंट्रोल किया जा सकता है। यहाँ गाड़ियाँ लड़ती हैं सही; लेकिन कुछ इस खूबी से लड़ती हैं कि दो चार आदमियों को मामूली खरोंचे लगकर रह जाते हैं, मरे भी तो दो चार मर गये। यह नहीं कि एक टक्कर में ५०० से ज्यादा चल बसें। इस मामले में अवश्य भारत यूरोप को अभी कुछ दिन सिखा सकता है।

डॉक्टर टैगोर बम्बई में

पब्लिक से चन्दा वसूल करना भी एक कला है और इसके कलाविद् भारत में दो हैं। एक महामना मालवीय

वीयजी, दूसरे महात्मा गान्धी। कौन अौवल है, कौन दोयम, इसका फैसला करना मुश्किल है। दोनों महानुभावों को एक ही ब्रेकेट में रखना चाहिए। मालवीयजी ने तेजी के दिनों में लाखों वसूल किए। महात्माजी इस मन्दी और बेकारी के दिनों में केवल दो प्रान्तों में ढाई तीन लाख वसूल कर चुके। सुना है मालवीयजी भी निकलने ही वाले हैं। तो बात यह है कि ये महानुभाव इस कला में सिद्धहस्त होगए। ५० ५०, साल से अभ्यास जो कर रहे हैं। डॉक्टर रवीन्द्रनाथ विश्व कवि हैं, और बहुत बड़े कलाकार हैं, लेकिन भिक्षण-कला में उन्हे इन दोनों पूज्य भिक्षुकों से कुछ सीखने की जरूरत है। अभी हाल में इस क्षेत्र में आये हैं। मालवीयजी अतीत गौरव गान और अपने वाणी चमत्कार से लेते हैं, महात्माजी चन्दा भी लेते हैं और डॉंटते भी हैं, उनकी कला में यही विशेषता है। डॉक्टर टैगोर ने टिकट लगाकर शांति निकेतन के बालकों-बालिकाओं से अभिनय कराया, खुद भी पार्ट किया लेकिन सुनते हैं अच्छी रकम हाथ न लगी। बात यह है कि जिस संस्था के लिये चन्दा माँगा जाय, उस संस्था से जनता में रुचि और उत्साह हुए बिना चन्दा कैसे मिले। शान्ति निकेतन ने अभी जनता के लिए मे कुछ नहीं किया। जब तक वह सेवा और त्याग का रेकार्ड जनता के सामने न रखे, उसे दस-पाँच बड़-बड़े लोग चाहे केवल बड़ी रकम दान देदें, जनता से मिलना मुश्किल है। मगर हमें तो डॉक्टर टैगोर जैसे महान ऋषि का पार्ट कुछ गौरव पूर्ण न जान पड़ा। यदि शान्ति निकेतन से ऐसे छात्र निकलें, जो जीवन संग्राम में कुछ कर दिखाएँ तो देश आज उस को भी उसी तरह प्यार करेगा जैसे गुरुकुलों का।

लेडी अब्दुल क़ादिर का राष्ट्र-भाषा-प्रेम

खुदा भला करे लेडी अब्दुलकादिर का जिन्होंने कलकत्ता में महिला-सम्मेलन का विरोध करते हुए इस बात पर जोर दिया कि भारत में राष्ट्र भाषा का प्रचार होना चाहिये। हम आपके इस कथन से पूरी तरह सहमत हैं कि हरेक प्रांत में राष्ट्र भाषा, अर्थात हिन्दुस्तानी भी पाठ्य क्रम में आवश्यक बना दी जाय। आपने अपना भाषण उर्दू में लिखा था, पर वहाँ उर्दू समझने वाली बहुत कम महिलाएँ थीं, इसीलिये आपको उसका अनुवाद कराना पड़ा। भारत के अधिकांश भागों में हिन्दुस्तानी बोली और समझी जाती है, उर्दू में लिखी जाय या हिंदी में। मद्रास में उसका प्रचार हो रहा है। मैसूर में भी शुरू हो गया है। बंगाल अभी तक पुट्ठे पर हाथ नहीं फेरने देता, हालाँकि बंगाल के कई विद्वान् हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक हैं। 'माया' नाम की पत्रिका के सम्पादक बंगाली सज्जन हैं। कई बंगाली देवियाँ भी हिन्दी की कुशल लेखिकाएँ हैं, उनमें श्रीमती उषा मित्र का नाम उल्लेखनीय है। उनके गल्प चोटी की पत्रिकाओं की शोभा बढ़ाते हैं। जब तक एक राष्ट्र-भाषा नहीं बन जाती, तब तक एक राष्ट्र कैसे बने।

भाई परमानन्द की संदेह दृष्टि

भाई परमानन्द को मुसल्मानों में कट्टरता और देश द्रोह के सिवा कुछ नजर ही नहीं आता। जो खुल्लम खुल्ला पृथकता प्रेमी हैं, उनका तो आप को भय नहीं, आप को राष्ट्र प्रेमी मुसल्मानों और अमैयतुलउलमा से विशेष भय है क्योंकि ये लोग दोस्त बनकर दगा दे रहे हैं। आपके ख्याल में सभी मुसल्मानों में मिली भगत है, दोनों एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं, केवल हिन्दुओं की आँख में धूल झोंकने के लिये अलग अलग दल बन गये हैं। इसका जवाब इसके सिवा और क्या है कि जैसे आप दूसरों को देखते हैं, वैसे ही दूसरे भी आपको देखते हैं और ऐसे मुसल्मान कम नहीं हैं, जो कांग्रेस को भी हिन्दू सभा का एक शिगूफा समझते हैं।

हंस के 'काशी-अंक' पर सम्मतियाँ

श्रीमान् पं० नरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ

'हंस का 'काशी-अंक' तो सचमुच एकान्त में बैठकर प्रति दिन थोड़े-थोड़े अच्छे ध्यान पूर्वक पढ़ने की वस्तु है। इस अंक को पढ़कर काशी का प्राचीन व नवीन दृश्य चित्रपट की भाँति आँखों के सामने से निकलने लगता है। सम्पादक महाशय श्री प्रेमचन्दजी का पुरुषार्थ सतमुख से प्रशंसनीय है, क्योंकि पाठकवृन्द को घर बैठे इतनी मनोरञ्जक सामग्री मिल गई।'

श्रीमान् पं राधेश्यामजी कथावाचक 'कवि-रत्न'

'हंस का 'काशी अंक' देखा। वास्तव में गजब की चीज़ निकाली। घर बैठे काशी की यात्रा हो जाती है। छपाई की कला के विशेषज्ञ और लेखों के संचयकर्ता दोनों ही हिन्दी संसार के बधाई-पात्र हैं। कुछ समय पहले ख्याल हुआ कि पत्रों में विशेषांक निकालने की बीमारी है, पर 'हंस' के विशेषांक देखकर समझ में आता है कि बीमारी नहीं—यह तो बीमारी की औषधि है।'

श्रीमान् पं० उदयशंकरजी भट्ट, शास्त्री, काव्यतीर्थ

'काशी-अंक मिला। बहुत अच्छा निकला है। विश्व प्रेम के अवतार 'हंस' के अंक में काशी है, या काशी के अंक में हंस है—यह सन्देह बना ही रहा। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आदि दैविक रूप त्रिशूल पर स्थित काशी का गुण अपमय वर्णन पढ़कर वस्तुतः काशी का साक्षात्कार हो गया। ऐसे सुन्दर अंक के लिए मेरा हार्दिक साधुवाद।'

कानपुर का सुप्रसिद्ध दैनिक 'वर्तमान'

'काशी से निकलने वाले मासिक सहयोगी 'हंस' ने 'काशी अंक' निकाल कर एक बड़े सुन्दर ऐतिहासिक 'गजेटियर' की पूर्ति कर दी है। यह अंक इतना सुन्दर और सम्पूर्ण है कि प्रत्येक पुस्तकालय में जिल्द बँधा कर रखा जायगा। प्राचीन समय की काशी, मध्यकालीन काशी, तुलसीदासजी के समय की काशी, काशी की गलियाँ, काशी के प्राचीन दर्शनीय स्थान तथा काशी की सार्वजनिक उपयोगी संस्थाओं, गुणियों तथा व्यक्तियों का वर्णन इसमें है। हिन्दी पाठकों से हमारी प्रार्थना है कि इस अंक को मँगाकर हिफाजत से रखें—बहुत ही उपयोगी चीज है। इस प्रकाशन के लिये हम सम्पादकद्वय बाबू श्री० प्रेमचन्दजी तथा श्रीप्रवासीलालजी वर्मा को हार्दिक बधाई देते हैं।'

जीवन्मुक्त महात्मा श्री तैलंग स्वामी का तत्वोपदेश

लेखक—श्रीयुत अजितनाथ भट्टाचार्य, बी० ए०, एल-एल० बी०

(गतांक से आगे)

किसी मनुष्य ने अपना सारा जीवन धर्म कार्य में व्यतीत किया, पर सुखी न हुआ, और उसे नाना प्रकार का कष्ट उठाना पड़ा, और दूसरा मनुष्य अत्यन्त घृणित कार्य करके अपना जीवन सुखसे व्यतीत किया—इसका स्पष्ट प्रमाण पूर्वजन्म है। यद्यपि किसी मनुष्य को जिसने अपना जीवन धर्म के कार्य में व्यतीत किया है, इस जीवन में केवल कष्ट ही मिला, पर किसी समय उसको सुख अवश्य मिलेगा और इस जीवन का कष्ट पूर्व जन्म के बुरे कर्मों का फल है, जिसको उसने इस जीवन में भोगा। दूसरे मनुष्य ने पूर्व जन्म का अच्छा फल भोग किया और सुख से जीवन बिताया, पर इसके बाद ही उसको कष्ट भोग करना पड़ेगा। बहुत से लोग यह कहते हैं कि पाप कार्य करने की इच्छा और पुण्य कार्य करने की प्रवृत्ति दोनों ही ईश्वर की इच्छानुसार है, यह अज्ञान अर्थात् नासमझों की बात है। रिपु और इन्द्रियगण सब अच्छा और बुरा कर्म कराते हैं।

राग ही से अनिष्ट होता है, कामना ही से प्राप्ति की इच्छा होती है और लोभ ही से दूसरे की वस्तु चुराने की इच्छा होती है, अहङ्कार ही से दूसरे की बुराई की चिन्ता होती है—इसी तरह जिसका जो धर्म है वह अपना कार्य करता है। इसी कारण मनुष्य को हित और अहित का ज्ञान ईश्वर ने दिया है और सब जीवों से श्रेष्ठ बनाया है। मृत्यु ही अन्त नहीं हो सकती, क्योंकि तब ईश्वर को नित्य बहुत से आत्माओं का सृजन करना पड़ेगा। यदि ऐसा हो, तो ईश्वर का कार्य बड़े कष्ट का हो जाय।

देह से अलग होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता है, जिस प्रकार घर जलने पर भी घर के भीतर के आकाश का नाश नहीं होता है। आत्मा न तो मारने वाला है और न मरने वाला है। द्वेष ही सन्ताप का मूल है, द्वेष ही संसार का बन्धन है द्वेष ही मुक्ति को रोकने वाला है, इस लिए यत्न के साथ द्वेष का परित्याग करो। सुख दुःख देह को नहीं है आत्मा को भी नहीं है।

आत्मा वायु की तरह निर्मल और निर्लेप है, तिस पर भी ईश्वर की माया में मोहित होकर मैं सुखी हूँ और मैं दुखी हूँ, ऐसा समझता है। विश्व को मोहने वाली उस अविद्या का नाम ही माया है। जन्म लेते ही जीव का उस अविद्या अर्थात् माया के साथ सम्बन्ध हो जाता है, इसी कारण यह संसार बन्धन हो जाता है। यद्यपि आत्मा बुद्धि और इन्द्रियों के निकट रहने के कारण निर्मल होती है, पर तिसपर भी उन पदार्थों के गुणों से सम्पन्न मालूम पड़ती है। जिसका जैसा कर्म है, उसका वैसाही भोगना पड़ता है। पुनः सृष्टि के समय जीव और मन इत्यादि के साथ सम्बन्ध लेकर देह धारण करना पड़ता है। जब तक जीव मुक्त नहीं होता है, तब तक उसको इसी प्रकार भ्रमण करना पड़ता है। देह दुःख का कारण है और संसार का कारण है। कर्मफल ही से इस देह की उत्पत्ति है। कर्म दो प्रकार के हैं, पाप और पुण्य।

उस पाप पुण्य के अनुसार ही देही अर्थात् आत्मा सुख और दुःख भोगता है। यह सुख और दुख दिन और रात की तरह है और बिना उसके भोग किये हुए उसका अन्त नहीं होता है और बिना भोग के अन्त की मुक्ति नहीं होती है।

आत्मा ही शरीर का कर्त्ता है—जिसके जीव देह से निकल जाने पर जीव का जीवन नहीं रहता है और इन्द्रियाँ काम नहीं कर सकतीं, वही वस्तु जीव की आत्मा है। आत्मा-हीन देह में सुख या दुःख किसी का भी अनुभव नहीं होता। रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श, ज्ञान कुछ भी नहीं रहता है, इसलिये यह बात निश्चय है कि आत्मा ही देह का कर्त्ता है। सुख और दुःख ज्ञान का द्वार है, आत्मा को यदि तिरस्कार अथवा पुरस्कार करना हो, तो उस आत्मा के रहने की जगह देह की आवश्यकता है। हर्ष और विषाद, यदि शरीर की सहायता उसे न मिले, तो आत्मा को अनुभव नहीं हो सकता।

आत्मा अकेले चली जाती है, शरीर उसके साथ नहीं जाता, इसलिये आत्मा को अनेक भोग करना पड़ता है। प्रत्येक जीव के देह में ईश्वर आत्मा के रूप में विराजमान है, जीवात्मा परमात्मा का अंश है। जिस तरह पाप अनेक प्रकार के हैं, उसका भोग भी अनेक प्रकार का है, उसी तरह पुण्य भी अनेक प्रकार के हैं और हर्ष भी अनेक प्रकार के हैं। अनुताप ही पाप का प्रधान दण्ड है और हर्ष ही पुण्य का प्रधान पुरस्कार है। मनुष्य का हृदय पाप और पुण्य के निराकरण का तुला दण्ड है। पुण्य में हर्ष और पाप में अनुताप, ये दोनों आप-से आप मनुष्य के हृदय में उदित होकर उसके कर्म का ठीक ठीक पुरस्कार देते हैं। इस दण्ड को समझकर जो बुद्धिमान हैं, वे स्वयं ही पाप से हटने की चेष्टा करते हैं। पाप-पुण्य का विचार और उसका फल भोग इसी पृथ्वी ही पर होता है। पञ्चभूत केवल परमाणुओं की समष्टि-मात्र है और परमाणु अविनश्वर है, इसलिये भूत समष्टि को भी विनाश नहीं है। मरा हुआ देह फिर उस पञ्चभूत में मिल जाता है।

जो मनुष्य आज हमारे सामने विराजमान है उसका शरीर पूर्वजन्म के किसी जीव के परमाणु से बना हुआ है। इसलिये इस भूतपूर्व जीव के पुनर्जन्म का फल वही मनुष्य है, जो तुम्हारे सामने उपस्थित है।

जो आत्मा जिस परिमाण से पाप से मुक्त है, और जो आत्मा जिस परिमाण से विषय वासना से रहित है, वह आत्मा उसी परिमाण से उन्नत है। धार्मिक मनुष्य का आत्मा पापी मनुष्य की आत्मा से बहुत उन्नत है। उस उन्नत आत्मा का स्वभाव उसके देह त्याग करने पर भी नष्ट नहीं होता है परन्तु उत्तरोत्तर और उन्नति ही की ओर जाता है। आत्मा पुरुष और देह प्रकृति है। यह आत्मा जब तक प्रकृति से संयुक्त नहीं हो जाती है, तब तक वह निष्फल और निर्गुण अवस्था में रहती है। प्रकृति के साथ मिलने से उसको इच्छा प्रवृत्ति पैदा हो जाती है और उससे भिन्न होने पर फिर वह निर्गुण भाव प्राप्त हो जाती है अर्थात् उसका स्वभाव पूर्ववत् हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि जब तक आत्मा की प्रवृत्ति और वासनादि वर्तमान रहती है, तब तक वह इस पाप देह को अपना आश्रय स्थान बनाये रहती है, और उसी समय तक वह सगुण, विषयों में लिप्त और वासनादि से संयुक्त रहती है, और जब वह इस देह को त्याग देती है, तो फिर अपने पूर्व भाव को प्राप्त कर लेती है। पहले निर्गुण रहने पर भी आत्मा जब तक गुणों से सम्पन्न रहती है और जब तक मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता है, तब तक उसको पाप का फल भोगना पड़ता है।

पशु देह से मनुष्य देह प्राप्त करने के लिये अत्यन्त कष्ट और चेष्टा करनी पड़ती है। पशु से मनुष्य होना जितना कठिन है, मनुष्य होकर मनुष्यत्व लाभ करना उससे भी अधिक कठिन है। मनुष्य से देवता होना जितना कठिन है मनुष्यत्व लाभ करना उससे भी अधिक कठिन है। शुभ कार्य के अनुष्ठान से मनुष्य देवत्व प्राप्त कर सकता है, परन्तु अनायास से प्रकृत मनुष्य नहीं हो सकता। सब भोग आशा इत्यादि का जब तक पूर्णरूप से त्याग न हो, तब तक मुक्ति का द्वार नहीं खुल सकता है। कामना सहित शुभ कार्य का साधना करने से मुक्ति का पथ और भी दुर्गम हो जाता है। जीव देवलोक में, ऐश्वर्य भोग में, मस्त हो जाता है और तब उसके बाद मर्त्यलोक में आने के लायक हो जाता है। इस लिये महान पुरुष लोग कभी देवलोक की कामना नहीं करते, क्योंकि वह कर्मफल के लिये चिरस्थाई नहीं है। वास्तव में मनुष्यत्व लाभ करने के लिये इन्द्रियों के वेग को रोकना चाहिये। रिपु वर्गों को वश में करना, अन्तःकरण को शुद्ध करना, सर्वभूत में समदर्शी होना, अभिमान का त्याग करना इत्यादि मनुष्यत्व लाभ के प्रधान उपादान हैं। इसके सिवाय शम, दम, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा और उपरति, ये गुण भी मनुष्य में रहने चाहियें। शम अर्थात् ईश्वर के विषय में अवण मनन के सिवाय विषयों से अन्तरेन्द्रियों का निग्रह।

(क्रमशः)

भावी युद्ध के सूत्रपात

लेखक—श्रीयुत शिवनारायण टंडन

गत यूरोपीय महायुद्ध के बाद यह आशा की गई थी कि जर्मनी की पराजय के बाद संसार में शांति की स्थापना हो जायगी। कम-से-कम मित्र राष्ट्रों ने दुनिया को यही समझाया था और इसी पुकार के आधार पर, उस विकट स्थिति में, उन्हें अमेरिका की सहायता प्राप्त हुई थी। तब सभ्यता खतरे में थी, मनुष्य जाति धोखे में थी और उसकी सारी जिम्मेदारी जर्मनी के कधों पर थी। युद्ध के बाद, जेनेवा में लीग आफ नेशन्स की स्थापना हुई, निःशस्त्रीकरण कांफ्रेन्सें हुईं और कहते हैं कि संसार व्यापी शान्ति बनाये रखने के सदुद्देश्य से हुईं। जो भी हो उन सभाओं की कार्यवाहियों ने यह साफ साबित कर दिया कि राष्ट्रों में परस्पर स्वार्थपरता और अविश्वास की मात्रा बहुत है। कोई देश अपने को सुरक्षित नहीं समझता और अपने पड़ोसी पर विश्वास नहीं करता। इस बीच में कितनी ही सन्धियाँ और गुप्त सन्धियाँ, जो विदशों के बीच में होती रहीं, वे इस बात का सुबूत हैं कि भावी युद्ध के सूत्रपात हो चुके हैं। तमाम राष्ट्र दो गुट्टों में विभाजित हो रहे हैं। जिस सोवियट रूस की सरकार को ब्रूटेन ने आजतक नहीं माना, उसी से इटली ने हाल ही में पाँच वर्ष के लिये Non aggression pact किया है जिसका आशय यह है कि 'यदि हममें से किसी को युद्ध के मैदान में उतरना पड़े, तो दूसरा शत्रुपक्ष की सहायता न करे, या तटस्थ रहे। उदाहरण के तौर पर, यदि इटली को अपने मित्र जर्मनी की सहायतार्थ फ्रेंको इंगलिश शक्तियों का विरोध करना पड़ा, तो या तो रूस इटली का साथी रहे या निष्पक्ष भाव से दूर रहे, पर शत्रुपक्ष की किसी भी परिस्थिति में कोई सहायता न करे।' यह पैक्ट भावी युद्ध की दृष्टि से बड़ा महत्व पूर्ण है।

मिस्टर लॉयड जार्ज, जो गत जर्मन-युद्ध के जमाने में इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री थे, और जो अब भी प्रथम श्रेणी के राजनीतिज्ञ समझे जाते हैं, फरमाते हैं कि संसार की और खासकर यूरोप की वर्तमान परिस्थिति देख कर मुझे भली-भाँति नींद नहीं आती और उन दिनों की याद आती रहती है जब जर्मनी के साथ लड़ाई छिड़ी हुई थी और काली घनी रातों में जब न तूफान चलते थे और न अन्धड़ आते थे, तब हम सब लन्दन-वाले आस्मान में आँखें गड़ा-गड़ा कर, समय देखा करते थे कि आज किस कोने से आक्रमण होने वाला है। हमारे कान, जर्मन हवाई जहाजों की घर-घराहट और तूफाने-बदतमीजी सुनने के लिये सदा चौकन्ने रहते थे।

वही दशा आज भी है, यूरोप भर में आतंक छाया हुआ है। १९ साल पहले जब युद्ध की घोषणा की गई थी, दुनिया स्तम्भित रह गई थी। प्रत्येक देश के बहु-संख्यक निवासी शांति की आशा ही नहीं रखते थे, प्रत्युत सुलह की कामना करते थे और विग्रह के प्रबल विरोधी थे, पर पालीटीशियन्स के प्रोपैगन्डा द्वारा वे बहकाये गये, उनके अन्दर मार-काट के भाव भड़काये गये और उनकी सहानुभूति तथा वे स्वयं युद्ध के मैदान पर पहुँचा दिये गये।

यूरोप की सार्वजनिक भावना आज भी शान्ति की उपासना करती है, पर सर्वत्र एक तरह की बेकरारी है, जंग का खटका है—जो चाहे वर्षों बाहर प्रकट न हो, पर ज्वालामुखी की लौ की तरह अन्दर-ही-अन्दर सुलगना शुरु कर दिया है।

अर्वाचीन काल में युद्ध के मुख्य कारण, देशों पर विजय प्राप्त करना नहीं, अपनी सीमा को बढ़ाना नहीं, प्रत्युत आर्थिक और व्यापारिक हैं। प्रत्येक मुल्क में लाखों व्यक्ति बेकार हैं, हिन्दोस्तान-जैसे देश में तो करोड़ों ही हैं। हम यहाँ पर हिन्दोस्तान जैसे गुलाम मुल्क की बात नहीं कहते जहाँ के विदेशी शासक अपने देश का बना हुआ माल खपाने के लिए, देश के वाणिज्य-व्यवसाय और कला-कौशल को हर तरह से चौपट कर सकने में समर्थ हैं, बल्कि हम उन उन्नतिशील देशों की बात करते हैं, जो हर तरह स्वतंत्र हैं और अपनी बुराई भलाई की बात मद्दे नजर रखते हुए, जैसा चाहे वैसा कार्य-क्रम बना सकते हैं। वे देश, हिन्दोस्तान, चीन और अफ्रीका जैसे बड़ी-बड़ी आबादी के देशों में ज्यादा-से ज्यादा अपना माल खपाकर, अपने देश की बेकारी मिटाना चाहते हैं, लम्बा-चौड़ा मुनाफा उठाना चाहते हैं और इस तरह इन देशों को अपने ऊपर निर्भर रखना चाहते हैं। एक वक्त था, जब तमाम बड़े-बड़े मारकेटों पर इंग्लैण्ड का एकाधिपत्य था, पर हमारे देखते-देखते पीले बौने जापानियों ने, इंगलैण्ड की व्यापारिक शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया। जापानियों की व्यापारिक योग्यता, संगठन और शक्ति देखकर इंगलैण्ड घबराया। जापानी रेशम और सूत की बनी हुई कमीजें लन्दन और मैन्चेस्टर के बाजारों में सरेआम बिकने लगीं, जो इंगलैण्ड के लिए 'कलेजे पर छुरी' चलने के समान था। अतएव ओटावा-सम्मेलन की आयोजना हुई और वहाँ औपनिवेशिक देशों के कच्चे मालों के खरीद-फरोख्त के लिए संरक्षण की नीति तै की गई। जापानी माल पर लम्बी-लम्बी चुंगियाँ लगा दी गईं। हिन्दोस्तान में आनेवाले जिस इंगलिश माल पर पचीस फी सदी की ड्यूटी है, उसी तरह के जापानी माल पर पैंतीस, चालीस, और पचास फी सदी तक का कर लगा है। कोई व्यापारी पूछ सकता है कि यह भेद-भाव क्यों है। इसीलिए जापानी प्रतिनिधि मण्डल हिन्दोस्तान में आया हुआ है। सारे जापान में जितना माल बनता है, उसका $\frac{1}{4}$ भारतवर्ष में आता है। यदि इन दोनों देशों में व्यापारिक समझौता न हो पाया अर्थात् हिन्दोस्तान की सूखी हड्डियों में जितना रस है उसे चीचोड़ने का हिस्सा न लग पाया, तो लोग कहते हैं कि निकट भविष्य में पूर्व के जल-थल और आकाश में रणक्षेत्र का आयोजन होगा। इसी संभावना को मद्दे नजर रखते हुए सिंगापुर का जहाजी अड्डा बना और हिन्दोस्तान में, हिन्द की रक्षा के नाम पर, हवाई बेड़ा रखा जायगा।

जापान ने मंचूको (चीन) पर जो-जो जुल्म ढाये हैं, उनका तो बयान न करना ही मुनासिब होगा। जब राष्ट्र संघ (लीग आफ नेशन्स) जैसी शक्तिशालिनी संस्था ने, जापान की नादिरशाही का विरोध करके भी कान में तेल डाल लिया, तब जापान का और कौन बना-बिगाड़ सकता है। जापान शक्तिशाली है, उसने अपनी शक्ति से मंचूको के मुँह पर ताला भर रखा है, हाथ-पैरों को बाँध रखा है। वहाँ से ठीक-ठीक खबरें नहीं आने पातीं। जापानी मिलिटिरी अधिकारी जिन-जिन समाचारों को संसार वालों को बतलाना चाहते हैं, उनको ही वे बाहर जाने देते हैं। पर, कभी-कभी सत्य की झलक मिल जाती है जिससे रोयें खड़े हो जाते हैं। एक विदेशी समाचार-पत्र के सम्वाददाता ने बहुत गुप्त रीति से एक पत्र में लिखा है, कि गत २९ जुलाई को, शनिवार के प्रातःकाल ८४ कैदी जेल के फाटक से बाहर निकाले गये, हारबिन के किनारे पर खाइयाँ बनाई गई थीं, उन्हीं के किनारे पाँच-पाँच की कतार में खड़े किये गये और गोली से उड़ा दिये गये। उसी दिन ढाई बजे कई प्रिज़न-वान (जेल की लारियाँ) कैदियों को ले जाती हुई दीख पड़ीं। जिनमें लग-भग ४२ कैदी थे, जो १८ से ४० साल की उम्र के थे। सबके पीछे एक मोटरकार थी, जिसपर जापानी अफसर बैठे हुए थे। वे रूसी-जापानी युद्ध के स्मारक के पास ले जाकर मार दिये गये। ऐसी घटनायें यहाँ बहुधा होती ही रहती हैं, पर सम्वाददाताओं को सख्त हिदायत है, कि कोई अपने समाचारों में इन लोम हर्षण दास्तानों का जिक्र न करें। जापानियों ने कोरिया पर जो-जो अत्याचार किये थे, उन्हें लोग भूले नहीं होंगे। जापान का अहंकार यहाँ तक बढ़ा-चढ़ा है, कि उसने राष्ट्रसंघ की सदस्यता से भी इस्तीफा दे दिया है। अमरीका और जापान में पुरानी खट-पट है ही, अतएव फिलीपाइन द्वीपों पर अमरीका की ओर से पूरा इंतजाम हो रहा है। जापान भी कुछ गाफिल नहीं है। उसका दावा है कि चीन और जापान के निकट की खाड़ियों और समुद्रों में उसका कोई बाल तक बाँका नहीं कर सकता। जापान की वर्तमान समुद्रिक और हवाई शक्ति ऐसी है कि वह एक बार सारे संसार से ताल ठोक सकता है। हमारे एक जापानी मित्र ने जो हाल ही में जापान से लौटे हैं, बतलाया, कि वहाँ युद्ध की तैयारियाँ बड़े जोर-शोर से हो रही हैं। आस्मान में टापू टापू में, हवाई जहाज चील की तरह हजारों की तादाद में मड़राया करते हैं। वे १५ दिन क्यूशा में ठहरे थे, कहते थे कि उनकी घड़-घड़ाहट के मारे रात में सोना हराम था। रोज ही रिहर्सल होता था। रक्षा और आक्रमण का ऐसा खेल होता, जिसमें कई जानें भी जातीं; पर जापानी जान जाने की परवाह नहीं करते, वे जानते हैं कि पश्चिम की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ उनकी व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता से सख्त नाराज और बदला लेने की ताक में हैं, अतएव जापानी भी पूरी तरह चौकन्ने हैं।

निस्सन्देह जर्मनी ने अपनी खोई हुई शक्ति को बहुत कुछ बटोरा है और धन्यवाद है हिण्डनबर्ग, गोयरिंग और हिटलर को, जिन्होंने जर्मनी की एकता कायम कर बड़े राष्ट्रों की पहली पंक्ति में फिर से आसीन कर दिया है। जर्मनी का क्लेम है कि हम प्रथम श्रेणी की शक्ति हैं और हमें तुम्हारे सब के बराबर ही सशस्त्र होने का अधिकार है×××हिटलर ने जर्मनी की आत्मा को जागृत कर दिया है।

अतएव यूरोप भयभीत है और सशंक भी है। वह जर्मनी को पंगु बना कर रखना चाहता है, क्योंकि उसका ख्याल है और सही ख्याल है कि जर्मनी के अन्दर प्रतिकार की भावना तेजी से काम कर रही है। जर्मनी का बच्चा-बच्चा क्रोध से उस पराजय, उस अपमान और उस विध्वंस का बदला लिया चाहता है।

इटली—पैसिफिस्ट इटली—हिटलर के जिगरी दोस्त मुसोलिनी की शक्तिशाली इटली का रुख इस बार जर्मनी के पक्ष में झुका हुआ मालूम पड़ता है। मुसोलिनी और हिटलर मे गुरु शिष्य का-सा सम्बन्ध है। अभी स्वीज़रलैण्ड और जर्मनी के बीच कुछ मतभेद हो गया था, उसे मुसोलिनी ने स्वयं बीच में पड़ कर सुलझाया था। मुसोलिनी ने न्याय के नाम पर, राष्ट्र संघ से अपील की थी, कि वह जर्मनी को पहली श्रेणी की शक्ति के सेना सम्बन्धी अधिकार देदे और इटली की इसन पूर्ण सम्मति है। जर्मनी और सोवियट रूस तो मैत्री की गाँठ में बँधे हुए थे ही, पर फैसिज्म और सोशलिज्म दूर-दूर थे। हिटलर के, जर्मनी का कर्णधार होते ही वे दोनों राष्ट्र भी जर्मन चान्सलर की मध्यस्थता से स्नेह के सूत्रों मे बँध गये। यही कारण है, कि हमारे न्यायी मित्र-राष्ट्र अभी तक भूखे सिंहों की तरह जर्मनी पर नहीं टूट पड़े, पर प्रोपैगैण्डा शुरू हो चुका है और इस बार भी, प्राइम मिनिस्टर न होते हुए भी, लॉयड जार्ज ही उसके मुख्य प्रवर्तक हैं। निस्सन्देह लॉयड जार्ज तेजस्वी लेखक और जादूगर वक्ता हैं वे चाहें, तो अपनी लगन और अध्यवसाय से पासे को पलट सकते हैं।

और यही नहीं बाल्कन प्रदेश के राष्ट्र भी चोटी से एड़ी तक अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हैं। बाल्कन सीमा का कोई भी देश मौजूदा सीमाओं को नहीं मानता। हमले, षड्यन्त्र, हत्या और कूटनीति का सब ने सहारा ले रखा है। सीमा-प्रदेशों पर मोटर और रेल गाड़ियाँ रोकी जाती हैं और बम व दूसरे विस्फोटक पदार्थों के लिए मुसाफिरों की तलाशी ली जाती है। यद्यपि खुल्लमखुल्ला लड़ाई का बिगुल नहीं बजा है, पर यह सब क्या है—यदि उसके प्रारम्भ की भूमिका या दीबाचा नहीं है।

• • •

ससार मे बेकारी, भुखमरी, कर्ज़ा, तकलीफ और अशान्ति बढ रहा है। हाँ, अमरीका अब भी सर्व शक्तिमान और सम्पन्न है। सारी बड़ी-बड़ी शक्तियाँ अमरीकन कर्जों के भार से दबी हुई हैं। बड़े बड़े कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ कहते हैं कि यदि अमरीका इस शर्त पर मकरूज़ दशा का सारा पावना छोड़ दे कि वे सब एक साथ, एक दिन, एक घड़ी मे निःशस्त्रीकरण कर डालें, तो स्थिति सँभल सकती है, युद्ध की सम्भावना मिट सकती है; पर हमारे खयाल में यह सब मुगालता है, कर्जे से त्राण पाने का एक तरीका-मात्र है। जब कहीं will ही न हो, तो way कहाँ से निकल सकता है।

• • •

आगामी युद्ध कबतक प्रारम्भ होगा, इसे तो हम पहले ही कह चुके कि कोई नहीं बतला सकता, पर परस्पर का शत्रुभाव, भेदभाव, स्वार्थ-परता और अविश्वास देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उसका श्रीगणेश जल्दी होगा। युद्ध तभी हुआ करते हैं, जब कच्चा माल मिट्टी के मोल बिका करते हैं, देश के दरिद्र-नारायणों के पास वस्तु विनिमय (जरूरियातों को खरीदने के लिए) के लिए पैसे नहीं रह जाते हैं अतएव जिसमें लेहनदार तंग न करें। युद्ध के कारण चीजों के दाम बढ़ें और दूसरे की चीजों को लूटने खसोटने के राक्षसी मौके मिलें, चालाक राजनीतिज्ञ, कोई-न-कोई बहाना निकाल कर, गुट्ट बनाकर, युद्ध की घोषणा कर देते हैं। वे भूल जाते हैं, बेवाओं के उन क्रन्दनों को, जो युद्ध के बाद उन्हें सुनने पड़ेंगे, वे भूल जाते हैं छोटे-छोटे बच्चों की उन चीत्कारों को, जो पापा और मामा कहते, आंखों मे आँसू भरे, रहम की पुकार करते-करते अनाथों की तरह उनके सामने आयेंगे। और वे भूल जाते हैं, भविष्य के उस काल को, जब पुनर्निर्माण के लिए उन्हें आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाने पड़ेंगे। अब के युद्ध की विभीषिकाएँ, गत महायुद्ध से कहीं भीषण, कहीं नाशकारी, कहीं प्रलयकर और कहीं तबाह कर देने वाली होंगी। तब अगर ७५ मील तक गोला फेंकनेवाली तोपें थीं, तो अब की तोपों की नानियाँ, ढाई ढाई सौ मील तक की खबर लेंगी। ऐसी-ऐसी जहरीली गैसें, वैज्ञानिकों की लेबोरेटरियों से निकलेंगी कि लाखों की सेना बात-की-बात में बेहोश हो जायगी। और वह ऐसी बेहोशी होगी, जो तोड़े न टूटेगी। बड़े बड़े राष्ट्रों ने हवाई जहाजों की इतनी बड़ी-बड़ी सेनायें सजा रखी है कि उनके मारे लन्दन, पेरिस, बर्लिन, जेनवा, कैरो, लेनिनग्राड, बम्बई, कलकत्ता, शंघाई और कोबे जैसे नगर विध्वंस होकर धूल मे मिल जायँगे। वह लड़ाई नहीं होगी; संसार भर में प्रलय होगा। किसी सीमा और किसी क्षेत्र तक युद्ध का वातावरण महदूद न रहेगा। जल, थल और आकाश से गिरनेवाली गैसों और गोलों से घुट घुटकर, घर मे बैठी हुई अबलाओं और पालने में झूलते हुए बच्चों का अमानुषिक वध होगा।

अगर इसे कोई रोक सकता है, तो गांधी और गांधीवाद रोक सकता है। संसार की सत्ता राजनीतिज्ञों के हाथ में है और गांधी भी बड़ा भारी पालिटीशियन है, पर गुलाम हिन्दोस्तान के काले कलेवर में जन्म लेना उसका सबसे बड़ा क़सूर है। काश, वह किसी इंगलैंड या फ्रान्स का नौनिहाल होता। सच्ची और खरी बात कह सकने की गोरों को मानोपोली है, गोरों की क्षमता है, काश, गांधी गोरा होता। पर, यह तो स्वप्नावस्था की सुषुप्ति का आनन्द है, नक्कारखाने में भला तूती की आवाज कौन सुनेगा।

दो सैनिक

लेखक—श्रीयुत सत्यभूषण

अमावस्या की काली रात्रि थी। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। सारा संसार निद्रा देवी की आराधना कर रहा था और अन्धकार के भय से निस्तब्ध था। एकाएक इस निस्तब्धता को तोड़ती हुई एक बिगुल की आवाज ने बिस्तर पर सुख की नींद में सोते हुए सैनिक के कानों में प्रवेश किया। यह युद्ध का संदेश था। सैनिक अपने गर्म बिस्तर को छोड़ कर खड़ा हो गया। उसका चेहरा खिल गया, जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाने पर कमल खिल जाता है। ठंडी हवा का एक झोंका आया और सैनिक के शरीर से टकराया। सैनिक और भी अधिक प्रफुल्लित हो उठा।

माता, बहन और पत्नी ने यह समाचार सुना। वे दौड़ती हुई सैनिक के पास पहुंचीं। माता ने कहा—युद्ध जीत कर आओ। जिस तरह आज पीठ दिखा रहे हो उस तरह जल्द मुंह भी दिखाना, परन्तु याद रखना वह पराजय का मुंह न हो, विजय का मुंह हो।

बहन बोली—भैया बड़े वीर हैं, कभी हार कर वापस न आयेंगे। पराजय से वह मरजाना अच्छा समझते हैं।

पत्नी बोली—हार कर वापस न आना, नहीं तो मेरी लाज जाती रहेगी और सहेलियाँ मुझे ताने मारेंगी।

सैनिक ने यह सब कुछ सुना। उसका मुंह तमतमा उठा। हंस की तरह गर्दन ऊँचा करके उसने कहा—क्या मैं इतना कायर हूँ? क्या आप मुझे इतना कायर समझती हैं कि हार कर भी अपने मुंह पर पराजय की कालिमा लगा कर भी आप को अपना मुंह दिखलाऊँगा? क्षत्रिय के बेटे के लिये पराजय का अर्थ केवल मृत्यु ही है।

माता, बहन और पत्नी—तीनों के मुख पर प्रसन्नता के साथ-साथ आत्म-गौरव की आभा दौड़ गई। तीनों ने सैनिक को अपने हाथों अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित किया। माता ने आशीर्वाद दिया, बहन प्रेम से जयमाल पहनाई और पत्नी ने आरती उतारा।

वीर जल्दी से जल्दी युद्ध भूमि में पहुंचने के लिये व्याकुल हो उठा, जिस प्रकार धन का कंजूस धन के लिये व्याकुल हो उठता है। उस समय उसके मन में युद्ध की ललक थी, हृदय मे उमंग थी। उसके कवच की कड़ियाँ कड़कड़ा उठीं और भुजायें फड़कने लगीं। उसकी कमर में चमकती हुई तलवार शोभा दे रही थी, तथा रुधिर की प्यासी हो रही थी। सूर्य की पहली सुनहरी किरण ने सैनिक को युद्ध भूमि में देखा।

• • •

कई शताब्दियों के बाद—

अमावस्या की वैसी ही काली रात्रि थी। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। संसार पर एक मात्र अन्धकार का राज्य था, केवल आकाश में स्थित तारे उस अन्धकार को अपने से दूर करके झिलमिल कर रहे थे। सारा संसार निद्रादेवी की गोद में जा चुका था। एकाएक एक बिगुल की आवाज सैनिक के कानों में पहुंची। वह युद्ध का सन्देश था। सैनिक उठा, उसका मुँह इस तरह मुर्झा गया था जिस प्रकार पानी न मिलने से पौधा मुर्झा जाता है। उसने बाहर के घोर अन्धकार को देखा, जिस प्रकार चूहा बिल्ली की ओर देखता है। उसका हृदय धड़कने लगा। इतने में हवा का एक ठंडा झोंका उसके शरीर से टकराया। वह सिहर उठा। उसने एक बार फिर बाहर के घोर अन्धकार को देखा इसके बाद अपने गर्म और सुखदाई बिस्तर पर यह कहता हुआ लेट गया कि सवेरे चला जाऊँगा।

सवेरा हुआ। सैनिक, भय से काँपता हुआ अस्त्र शस्त्रों के पास पहुँचा, काँपते हाथों से अस्त्र-शस्त्रों को पहना। इस समय उसका मुँह भय से हिम की तरह सफेद था। इतने में माता बहन और पत्नी ने वहाँ प्रवेश किया। माता कहने लगी—बेटा! मेरे लाल! मेरी वृद्धावस्था के सहारे तुम यहीं रहो। मैं तुम्हें ही देखकर जीती हूँ। तेरे बिना मेरा गुजारा न हो सकेगा।

बहन बोली—भैया! क्या तुम माता की बात को टाल दोगे। मेरा अनुरोध स्वीकार न करोगे? तुम यहीं रहो—मेरा और कोई भाई नहीं।

पत्नी बोली—प्राणनाथ! जीवन धन! मैं किसको प्राणनाथ और जीवनधन कहकर पुकारूँगी। आप न जायँगे तो कौन सी आफत आ जायगी।

तीनों के मुख से कायरता टपक रही थी।

तीनों ने सैनिक के शरीर से अस्त्र शस्त्रों को उतार कर घर के एक कोने में फेंक दिया। उसकी तलवार में जंग लगा हुआ था तथा वह इस बात का परिचय दे रही थी कि उसे रुधिर की आवश्यकता नहीं।

सैनिक का हृदय कमल खिल गया। 'बहुत अच्छा' कहकर वहीं कुर्सी पर बैठ गया।

इस समय उसके मुख पर कायरता का राज्य था। सूर्य भी पूर्वाकाश में उदय हो चुका था।

हृदय की लहर

लेखक—श्रीयुत विश्वमोहनकुमारसिंह, एम. ए., बी-एल.

(गताङ्क से आगे)

मालती—मैं समय नहीं मानती, वह परिवर्तनशील है।—कुछ ठहर कर—लेकिन तुम्हारी पसन्द!

अनोखे ने अन्यमनस्क हो दुहराया 'पसन्द' फिर गम्भीर चिन्ता में मग्न हो गया। मालती उसे अस्त व्यस्त होते देख पुनः मुस्करा कर और उस के एक हाथ को जंघे पर दबाती हुई बोली—यदि तुम्हें मेरे कारण तनिक भी क्लेश हुआ या चिन्ता हुई तो मेरा जीवन वृथा है मेरा प्रेम अप्रेम है। कोई चिन्ता न करो। जानते हो मैं क्या चाहती हूँ?

तुम अपनी स्त्री को प्यार करो रेणु को प्यार करो, पर मुझ पर केवल प्रेम की छाया रखो। मैं तुम पर बोझ न होऊँगी। लोगों की सशंक दृष्टि में तुम्हें निन्दित न होने दूँगी। तुम जहाँ रहोगे, वहीं मैं रहूँगी। कुछ काम कर सकूँगी, तो करूँगी। नहीं तो भिखारिणी हो कर जिन्दगी बसर करूँगी। केवल तुम्हें सन्ध्या-प्रात देख लिया करूँगी। और तुम, अनोखे, सुनते हो, मेरी तरफ देख कर सिर्फ मुस्करा देना, पगली समझ कर भी मुस्करा देना, मैं तृप्त हो जाऊँगी। कहो, यह तुम्हें मंजूर है? अनोखे अभी तक सोच रहा था—मैं क्या कहूँ? इस त्याग की मूर्ति को क्या कहूँ? मनुष्य सब कुछ न्योछावर कर सकता है, पर प्रेम की जलाञ्जलि अत्यन्त ही दुर्लभ है। यह भावनिर्मित युवती केवल मेरे लिये अपना सब सुख न्योछावर कर रही है। ठीक है, काले कुत्सित मेघ ही से बिजली की पैदाइश है, खारे जलराशि या कायल की खानों ही से रत्नों की पैदाइश है, यह सब कोई चीज नहीं सभी अपना-अपना संस्कार है। विदुर भी तो ऐसे ही काम से पैदा थे, कबीर, नानक ने किसी उच्च कुल में जन्म नहीं लिया, नेपोलियन, जान आफ आर्क ने भी तो किसी अज्ञात ही परिवार में जन्म लिया था। आह, कवि Grey ने भी ठीक ही कहा है—'Many a flower is born to blush unseen.' इस मालती का प्रेमसौरभ भी इसी तरह हवा में विलीन हो जानेवाला है। मालती उसे गम्भीर चिन्ता में व्यस्त देख कर उसका कंधा हिला कर बोली—अनोखे, तुम्हें चिन्ता किस बात की है? क्या तुम समझते हो मुझे कुछ दुख है? तनिक भी नहीं। तुम्हें देख कर ही, और तुम्हारी सहानुभूति पाकर ही मुझे मुक्ति मिल गई। यह शरीर तो तुम्हारे योग्य है नहीं पर हृदय तो आप-सा पवित्र है। अब अपने शरीर को कष्ट दे,

दो। अनोखे ने कहा—अब पास तुम्हारे [illegible]

मालती ओर देकर बोली—नहीं, नहीं मैं और कुछ सुनना नहीं चाहता। प्रकृति के आफिस में अब रजिस्ट्री करा दो। अनोखे का असमंजस दूर हो गया, बोला—गवाह कहाँ है?

'क्यों, देखो चन्द्र ऊपर मन्द खिला रहे हैं।'

'नहीं, नहीं, उन में कालिमा है।'

'तो इस तालाब का जल है।'

'नहीं, यह क्षुद्र है, थोड़े ही आमदनी से बौरा जाता है।'

'वायु ही सही।'

'यह तो चपल है। हजारों पुष्पों का आलिंगन किये फिरता है।'

'खैर, मेरा केश ही सही।'

'नहीं यह तो कुछ ही दिनों के बाद अपना रंग बदल देगा।'

'तुम किसी को नहीं मानते'—मालती बोली—'सभी में दोष निकालते हो, मालूम होता है तुम्हें रजिस्ट्री करने की इच्छा नहीं।'

'है।'

'तो तुम्हीं गवाह ढूँढ लाओ।'

'मेरे गवाह 'तुम', मालती नहीं, क्योंकि मालती का विनाश हो सकता है, तुम्हारा नहीं।'

मालती ने कहा—मुझे मंजूर है। अच्छा पहिचान लाओ।

'मेरा अन्तःचक्षु।'

मालती ने कहा—बहुत ठीक।

नीचे कुमुदनी और ऊपर चन्दा हँसने लगे। बादल अब भी कुछ कुछ नील नभ पर धवल अक्षरों में लिख रहे थे।

युगल पत्र-पुष्प।

मेरी पूज्यवती मनोरमाजी,

सादर सप्रेम प्रणाम।

आप का पत्र कल हस्तगत हुआ। सब समाचार ज्ञात किया। जब डाकपियन ने मुझे लिफाफा दिया, मैं कुछ भी न समझ सका कि पत्र किसने मेरे पास लिखा है। पते के हस्ताक्षर को पहचानने की कोशिश की, पर कुछ भी पता न चला। मुहर को देखने लगा; पर वह भी बिल्कुल अस्पष्ट था। कम्पित अँगुलियों से लिफाफा फाड़ डाला और पत्र में प्रेषक का नाम खोजने लगा। पत्र कुछ लम्बा था, दो तीन पृष्ठों के उलटने के बाद मैंने आप का नाम पढ़ा। आह, हृदय बाँसों उछल गया, यह तो मनोरमा का पत्र है। आज तक मुझे आप का लिखा हुआ देखने का अवसर न हुआ था, इसलिये इतनी दिक्कत हुई, नहीं तो पत्र देखते ही मैं पहचान जाता कि यह आप ही हैं।

आप के प्रश्नों का मैं क्यों कर जवाब दूँ, कुछ समझ में नहीं आता, आपको मालूम न होगा, बचपन से मेरे हृदय की प्यास अब तक न बुझी। मुझे प्रेम की नदी मिल गई, पर कुछ पटरियों से ढके रहने के कारण मैं उसे देख भी न सका था। वह नदी स्वयं मेरे पास आई। मैं ने पान किया, स्वाद भी बड़ा मधुर था। पर, लोग मेरी शिकायत करने लगे, यह गंगा नहीं, यमुना नहीं, सरयू नहीं, यह तो जंगल-झाड़ियों से निकला हुआ, सेवार से ढका हुआ, एक क्षुद्र सोता है। अन्य रूढ़ियों से पोषित मेरा हृदय भी कह उठता है, यह गंगा नहीं, यमुना नहीं, इस जल के पान का मुझे गर्व भी नहीं हो सकता। पर कौन जानते हैं कि इसका जल कितना मधुर है? कितना स्वच्छ है? मैं ने तो पान किया है और शायद आगे भी करता रहूँगा। प्यास से दुखित हो मैं कहाँ कहाँ फिरा था। कभी कभी तो कठिन गर्मी में हिरन की नाईं मृगतृष्णा में छटपटाता रहा था। अन्त में एक जल प्रपात दृष्टि आया, समझा यहीं मेरे हृदय और आँख की प्यास बुझ जायगी आह, इसके लिए मैं सब कुछ कर लेता, पर बीच ही में विवाह का पहाड़ टूट पड़ा। मैं इससे वंचित हो गया। अब कोई दूसरा ही इस उच्च निर्मल जल प्रपात को पान कर तृप्त होगा। मुझे तो अब कोई आस नहीं, यदि कुछ है, तो उसी झाड़ी के सोते की, लेकिन क्या? कुछ नहीं।

न जाने मैं ने क्या क्या बक डाला। आप से भी खुल कर नहीं सुना न कर सका। शायद कर भी न सकूँगा। आजकल के नियमानुसार उस बेचारी को मेरे सिवा कोई नहीं। मैं आज पछताता हूँ कि मैंने विवाह ही क्यों किया। यह मैं जानता हूँ वह मुझसे स्नेह करती है, पर मैं उससे स्नेह कर ही नहीं सकता। मैं ने बहुत कोशिश की है, पर लाचार हो जाता हूँ। मुझे इस का बहुत खेद है। मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ, मेरा दया के स्थान में उन के लिये एक स्थान जरूर रहेगा, और आप कि आज्ञानुसार मैं उसे पत्र भी लिखूँगा।

यह सब तो रही, हृदय की बात। इसी हृदय ने मेरा सर्वनाश कर डाला। इन की ही चिन्ताओं ने मेरी अन्यान्य चिन्ताओं को भगा डाला। मेरी परीक्षा सिर पर है। मैं इस में क्या कर सकूँगा, समझ में नहीं आता। परसों तक मैं दूसरे ही कार्य में व्यस्त था। जब परीक्षा का ख्याल आता है, तब मैं घबड़ा उठता हूँ। यह मेरी अन्तिम परीक्षा है। यदि इस में सुचारु रूप से सफल न हुआ, तो मेरे आगामी जीवन पर बहुत बड़ा धक्का लगेगा। घर की दशा शोचनीय हो रही है। मैं क्या कहूँ, खर्च की भी दिक्कत है। मैं आप से कितना दुख सुनाऊँ, आप को कष्ट होगा, अतएव मौन धारण ही अच्छा समझता हूँ।

मैंने आप का बहुत समय ले लिया और आप के हृदय को भी दुख दिया होगा, लेकिन क्या करूँ, दुखित हृदय के सम्पर्क से दुख की उत्पत्ति होती ही है। किन्तु, तिसपर भी मुझे खुशी है कि मैं आप को पत्र लिख रहा हूँ। यह भी समझता हूँ कि मेरे प्रति आप की कोई उच्च धारणा न होगी, लेकिन मैं अन्यथा करने से असमर्थ हूँ। यदि आप मेरी कठिनाइयों को जरा भी समझ लेंगी, तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूँगा।

न जाने मैं क्या-क्या बक गया। बुरा न मानियेगा। फिर पत्र लिखने की कृपा कीजियेगा। अब मैं इतना लम्बा पत्र न लिखूँगा। यदि मुझे आप का ख्याल न होता, तो मैं लिखता चला जाता। अपनी पुरानी बातों

को कह सुनाता और अपने बोझ को हलका करता, पर अब न कहूँगा। पत्र अवश्य लिखियेगा, क्योंकि उसे पाकर मैं थोड़ी देर के लिये सुखी हो जाता हूँ।

बच्चे को मेरी ओर से प्यार।

आप का शुभेच्छु
अनोखे।

मेरी प्रिय

हासिनी—

तुम्हारे दो-तीन पत्र मुझे उचित समय पर मिले, पर कई कारणों से पत्रों का उत्तर न दे सका, क्षमा करना। संसार से ही मेरी तबीयत ऊब गई है, क्या करूँ! मुझे दुख है कि तुम्हें मैं सुखी न कर सका, पर तुम जिस तरह चाहो अपने को सुखी बना सकती हो। मनुष्य परावलम्बी हो नहीं सकता, वह हमेशा स्वावलम्बी है, और रहना भी चाहिये। मेरी परीक्षा सिर पर है, देखें क्या होता है। और क्या लिखूँ। शेष कुशल ही समझो।

तुम्हारा
अनोखे

चक्र में

प्राय एक सप्ताह के बाद। सन्ध्या धीरे धीरे बड़ी अनिच्छा से, फिर-फिर कर डाह की नजरों से देखती हुई, बाहर चली जा रही थी। निशा के आने की सूचना कई दीपक इधर उधर दे रहे थे। दूर पूरब की ओर ऊँचे आसमान में एक छोटा-सा बादल टूटे हुये प्रेम की एक अति मर्मान्त अतीत स्मृति की भाँति, सूर्य की क्षीण लालिमा से रंजित हो रहा था। सर्वत्र ही वियोग, दुख और ईर्ष्या की कथा लिखी जा रही थी। इसी समय साँस रोक कर वायु भी मिस्टर रामकृष्ण की कोठी में यों सुन रहा था।

'कुछ नहीं सुना?'

'नहीं तो!'

'कुछ भी नहीं?'

'किस के बारे में?'

'अनोखे के बारे में।'

'अनोखे के बारे में।'

'हाँ'

'क्या हुआ?'

'उस के घर की तलाशी हुई।'

'तलाशी! क्यो? क्या हुआ था? कब! तुम से किसने कहा?'

'किसने कहा! मैं जानता हूँ। उसका एक खूनी औरत के साथ सम्पर्क है।'

स्नेहलता अखिलेश को चकित नयनों से देखने लगी, मानो वह कोई अविश्वसनीय आश्चर्यजनक बात सुन रही हो। वह भीतर ही भीतर कुछ क्रोधान्वित हुई कि उसका एक खूनी औरत से सम्पर्क है। वह फिर भी सन्देह करती हुई बोली—यह क्या कहते हो, अखिलेश?

'मैं अच्छी तरह जानता हूँ, माँ'—अखिलेश ने कहा—'जो कोई सुनता है, वही एक बार विश्वास नहीं करता। उसके घर की तलाशी हुई, उस स्त्री के दो-एक पत्र उस के पास मिले और पुलीस उसे अपने साथ ले गई।'

अखिलेश भी रोनी सूरत बनाये था, पर स्नेहलता इस छद्मभाव को देख न सकी; उसके सिर में चक्कर आने लगा, वह बैठ गई और बोली—कैसे, क्या हुआ, पूरी-पूरी बात सुनाओ।

'जब मैं वहाँ पहुँचा'—अखिलेश कहने लगा—'सब काम समाप्त हो चुका था। पुलीस को दो तीन पत्र मिले। अनोखे ने शायद सभी बातों को स्वीकार कर लिया। स्त्री खून करने के बाद शायद वहाँ आई थी। अनोखे ही ने आश्रय दिया था, फिर न जाने कहाँ चली गई। पुलीस समझती है, कि उस खून में अनोखे का भी हाथ है।'

'झूठ, यह नहीं हो सकता'—स्नेहलता आवेशपूर्ण शब्दों में बोल उठी—'पुलीस गलत समझती है, अनोखे ऐसा नहीं कर सकता।'

अखिलेश ने कहा—सब को शक यही होता है, क्योंकि जो मारा गया है, वह इसी स्त्री का प्रेमी था और सुनते हैं, अमीर का लड़का था।

स्नेहलता—मुझे विश्वास नहीं होता, वह ऐसा नहीं कर सकता।

'कौन जाने, मनुष्य को पहचानना बड़ा मुश्किल है।'—अखिलेश ने धीरे से कहा।

'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता'—स्नेहलता जोर देकर बोली—'अनोखे को मैं जानती हूँ, उसे अपने हाथों से खिलाया है। उसका हृदय इतना कोमल है, वह इतना सरल है।'

स्नेहलता के नेत्र सजल हो उठे और सँभालते सँभालते भी एक बूंद आँसू गिर ही गया। वह क्या सोचता होगा? क्या करता होगा? बेचारा अकेला घेर लिया गया। हमें कोई खबर भी नहीं। सोचते सोचते वह प्राय विह्वल सी हो गई। उसी समय एक लौंडी ने आकर कहा कि अनोखे बाबू का नौकर रामसेवक आप से मिलना चाहता है। स्नेहलता ने उसे शीघ्र ही भीतर लाने की आज्ञा दे दी। नौकर जब भीतर आया, उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं। फिर स्नेहलता को देखते ही सिसक कर रोने लगा। स्नेहलता का दिल भी उमड़ आया। वह अपने को रोक कर बोली—बैठो, रामसेवक, रोओ मत, रोने से क्या होगा। रामसेवक आँसू पोंछकर बैठ गया और कुछ देर तक योंही देखता रहा। स्नेहलता भी उसे देखती बैठी रही। अन्त में रामसेवक बोला—हमारे मालिक तो पुलीस के साथ चले गये।

स्नेहलता—अभी सुना है। क्या हुआ, सब पूरा-पूरा कहो तो।

रामसेवक—हमें तो कुछ भी मालूम नहीं। आज आठ बजे पुलीस के दरोगा आये। घर की तलाशी हुई। कुछ कागज-वागज भर मिला है। सब लोग कहते थे कि बाबूजी का कोई खूनी औरत से साथ है। बाबूजी भी बोले कि वह औरत आई थी।

स्नेहलता—वह औरत आई थी और अनोखे के साथ थी?

रामसेवक—हाँ, एक औरत आई था। बाबूजी दो तीन दिन तक व्यस्त थे, फिर वह कहीं चली गई।

स्नेहलता—असल बात क्या है, तुम्हें कुछ मालूम नहीं?

रामसेवक—नहीं, मायजी, हम तो कुछ मालूम नहीं। उनको तो हम कभी इधर उधर न रहते भी नहीं देखा था, इतना सीधा, सच्चा . ।

स्नेहलता—जब पुलीस आई, तो हम लोगों को खबर क्यों नहीं दिया?

रामसेवक—हम तो यहाँ दौड़े आते थे, लेकिन बाबूजी ने ही मना कर दिया।

स्नेहलता—अनोखे बेचारा तो बड़ा घबड़ाया होगा?

रामसेवक—हाँ, घबड़ाये तो बहुत थे।

स्नेहलता का हृदय विदीर्ण हो उठा। वह सोचने लगी कि उसने हम लोगों को खबर क्या नहीं भेजा। वह उत्सुक हो बोली—जाते बेला भी कुछ नहीं कहा?

रामसेवक—नहीं कुछ नहीं बोले। पहले आप के नाम से एक चिट्ठी लिखे थे और हम को देने के लिये दिये थे, पर फिर लेकर न जाने क्या फाड़ दिये। चलते वक्त आप को याद किये थे, फिर, हमसे बोले कि कुछ मत कहना। लेकिन, दिल नहीं माना माँजी, मैं आप के पास आया हूँ, देखिये जिसमें बेचारे बच जायँ। वह तो लड़कपन कर चुके।

स्नेहलता कुछ न बोल सकी, वह किसी गम्भीर चिन्ता में विलीन हो गई। उसकी मुखमुद्रा से दुख टपक रहा था। उसी समय बैरिस्टर साहब ने धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश कर उसका सिर हिलाया। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। मानो दो कमलों से दो ओस-बिन्दु टपक पड़े। रामकृष्ण बाबू ने पूछा, बात क्या है, पर वह सिर नीचे किये बैठी रही। उनके आने के साथ साथ रामसेवक और अखिलेश दोनों बाहर चले गये थे। रामकृष्ण बाबू घबड़ाये और उसकी ठुड्डी को छू कर बोले—कहो, स्नेह, उदास क्यों हो? क्या तबीयत अच्छी नहीं?

स्नेहलता कुछ ठहर कर और अपने को सँभाल कर बोली—आप ने अनोखे के बारे में कुछ सुना है?

रामकृष्ण—हाँ, सुना तो है। कैसी लज्जा की बात है! कैसा होनहार प्रतीत होता था।

स्नेहलता—जो होना था सो हुआ, उसके लिये अब कुछ उपाय कीजियेगा?

रामकृष्ण—उपाय क्या है, सिर्फ मुकदमा लड़ना।

स्नेहलता—तो आप को उसके लिये कुछ करना होगा।

रामकृष्ण—हमें करना होगा, कैसे? उसके लोग मुझे बुलायेंगे तब तो। फिर पापों का प्रायश्चित तो करना ही होगा।

स्नेहलता—कौन जानता है, वह पापी है?

(क्रमशः)

भारतीय किसानों का कृषि संबंधी प्राकृतिक भौगोलिक ज्ञान

लेखक—श्रीयुत ठाकुर राजेश्वरीप्रसादसिंह

(गतांक से आगे)

ना अति बरखा, ना अति धूप।
ना अति बक्ता, ना अति चूप॥

जिस प्रकार मनुष्य को न खूब बड़बड़ाना, न बोलने के अवसर पर चुप्पी ही साध लेना उचित है, उसी प्रकार खेती के लिए न अत्यन्त बारिश न कुछ दिन लगातार धूप होनी चाहिये—धान (चावल) के लिए रिम-झिम बारिश होना चाहिए। इससे फसल खूब होती है।

लरिका ठाकुर बूढ़ देवान।
ममिला बिगरे साँझ बिहान॥

यह बात खेती के लिए बड़े मार्के की है—यदि खेती कराने वाला (सिवाह) बूढ़ा हो और मालिक एक नया (नौसिखुआ) हो, तो आपस में पटरी नहीं बैठती—सदैव झगड़ा हुआ करता है, जिसका असर खेती पर बुरा पहुँचता है और समय से सब कार्य नहीं हो पाते—अलग अलग राय होने लगती है।

सूखा पड़ने का लक्षण—

सावन सुकला सत्तमी, चन्दा उगै तुरंत।
या जल मिलै समुद्र में, कि नागर कूप भरत॥

श्रावण शुक्ला सप्तमी को यदि चन्द्रमा समय से पहले उदय हो जाय, तो समझना चाहिये कि कड़ाके का सूखा पड़ेगा, वर्षा न होगी, या तो जल समुद्र में ही मिलेगा या गाँव की स्त्री के घड़े में, जो कुएँ से भरती होगी।

सावन मास बहै पुरवाई।
बैल बेच के ले धेनु गाई॥

यदि श्रावण मास में पूर्वी हवा चले, तो समझना चाहिये कि जलपात नहीं होगा—फल—पानी के न बरसने से चावल की फसल सूख जायगी और तब सूखा (कहत) पड़ जायगा। इससे दूध देने वाली गाय को रखना चाहिये, जिससे जीवन व्यतीत होगा।

नौरित्या एक बुन्द न परही।
रजा रंक सब घर घर मरही॥

वर्षा काल में यदि नैरित्य कोण बहे, तो समझना चाहिये कि वर्षा का होना असम्भव है। जिससे सूखा पड़ेगा और सब लोग भोजन बिना मरने लगेंगे।

भुइँआ खेड़े हर है चार।
घर है गिहिथिन गऊ दुधार॥

जिस घर में ऊपरी बात हो, वही किसान भरा-पूरा रह सकता है। पृथ्वी (जमीन) काफी तायदाद में हो। हल भी काफी हों, स्त्री कर्तव्य-परायणा हो और गाय दूध देने वाली हो।

ईसाने जब डुम-डुम बाजे।
रजा रंक सब घर-घर गाजे॥

ईसान कोण जब खूब बहने लगता है, तब वर्षा खूब होती है और धान के लिये पानी ही जीवन है, इससे धान खूब जोरों में होता है। इसका फल यह होगा कि सब लोग आनन्द-पूर्वक अपना जीवन निर्वाह करेंगे।

गया राज जहँ राजा लोभी, गया खेत जहँ जामी गोभी।
गया पेड़ जहँ बकुला बैठा, गया गेह जहँ मुड़िया पैठा॥

जिस राज्य का राजा लोभी हो, जैसे—चार्ल्स प्रथम, जिस पेड़ पर लगातार बकुला नामक पक्षी बैठती हो, उसका सर्वनाश अवश्य होगा, उसी तरह जिस खेत में गोभी नामक घास विशेष उग जाय और जिस किसान के घर मे साधू का वास हो, वह नष्ट हुआ ही समझना चाहिये।

धान (चावल) के लिए देहातों में यह प्रसिद्ध एवं प्रचलित किस्सा है कि एक बाल में जितने लरछे होंगे, उतनाही 'मन' धान का दर फी बीघा जायगा। जैसे यदि एक बाल में ११ लरछे धान के हों, तो अन्दाजा लगाया जा सकता है कि दस या ग्यारह मन फी बीघा दर जायगी।

जिस रबी के खेत मे नमी काफी हो, उसमें हेगा देना अनुचित है। हेगा देने से ओदी और बढ़ जायगी; क्योंकि धूप ऊपर ही रह जायगी जिससे फसल भीतर-ही-भीतर सड़ जायगी या जो कुछ उगेगी, उसमें काफी देर लगेगी। उसपर बहुत सम्भव है कि बीज बहुत नष्ट भी होजायगा।

कार्तिकम यदि बुद्धवार को बादल घिरे, तो समझना चाहिए कि सात दिन के अन्दर अवश्य बारिश होगी—यो तो उसी दिन होनी चाहिए, अगर किसी कारण न हुई, तो कभी-न-कभी अवश्य होगी।

धान रोपन का तरीका—पानी की कमी हो, खेत ऊँचा हो, तो ऊँचे खेत मे वह धान बोना चाहिए, जो बरसात ही में पैदा हो और काटा जा सकता हो, जैसे करगौं, करगीं और खेर बक्का इत्यादि। बाकी धान खलार में रोपना चाहिये, जिसमें पानी बाँधा जा सकता हो और किसी नीची जगह से पानी लिया भी जा सकता हो।

केराय (लतरी) को बोने के लिए यह नियम है कि आश्विन (कुआर) मासके चित्रा नक्षत्र में बोना चाहिए। जिससे केराय सड़ती नहीं, सब-की-सब उग जाती है, व्यर्थ नहीं जाती। लेकिन कहीं कहीं पर धान उस समय तक तैयार नहीं रहते या लतरी छींटने लायक नहीं रहते। आखिरी पानी देना बाकी रहता है, वहाँ स्वाती नक्षत्र में बोई जा सकती है, पर उसमे उगने मे बहुत खराब हो जाती हैं।

आलू की खेती के लिए खेत खूब ४० बाल के करीब जोतना चाहिए, उसी बीच में कभी पानी से भर देना चाहिये, ताकि पहले की बेकायदे गरमी का नाश हो जाय, तब आलू खूब बैठता है—स्मरण रहे खेत ज्यादा गीला न रहे, वर्ना दीमक लगने का डर है—आलू अक्सर १५-२० दिन में उगता है।

कौबी (गोभी) की खेती के लिये रोपते समय दो-दो पसर पुरानी खाद देना आवश्यक है, और दो दिन घड़े के पानी से सींचता रहे। उसके बाद कुएँ के पानी से मोट द्वारा भर दे और फिर जब पानी देने का मौका आये, तो हर एक थाले के चारो तरफ दो अँगुल या तीन अँगुल गड्ढा खोद दे और उसमें आधी पुरानी खाद और आधा नोना मिला उस गड्ढे को पाट दे, तब पानी से सींच दे। इससे कौबी खूब बढ़ती है, फूल खूब बड़े होते हैं।

कोड़ार (जहाँ तरकारी-फल वगैरह लगे हों) ऐसे स्थान को सर्वदा कूप के पानी से सींचना चाहिये, तभी पेड़ वगैरह सुख मानते हैं, जो लोग और तरीकों द्वारा तालाब तथा नहर का पानी देते हैं, महान् भूल करते हैं, उससे पेड़ को जर (भस्म) जाने का डर है या यों कहिये कि जर जाता है। यह अनुभव की बातें हैं, पाठक कदापि ऐसा न करें।

संसार के रक्तपात में धर्म का स्थान

लेखक—श्रीयुत नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ

(धर्म कहने को बहुत अच्छी चीज है। प्रायः प्रत्येक मनुष्य को शुरू से ही अपने धर्म पर अटल रहने की शिक्षा दी जाती है, परन्तु इस धर्म के कारण समाज में कितने अधिक लोमहर्षण अत्याचार हुए हैं, सैकड़ों और हजारों की संख्या में निरपराध आदमियों को तलवार के घाट उतार दिया, जाते जी जला दिया गया, यह संसार के इतिहास का सबसे काला पृष्ठ है। योग्य लेखक ने इस लेख में उन्हीं का संक्षिप्त परिचय दिया है।)

यदि धार्मिक संघर्ष पर दृष्टि डाली जाय, तो मानना पड़ेगा, कि धार्मिक विषय में आर्य-संस्कृति के उपासक जितने उदार रहे हैं, उतना उदार और कोई भी 'धर्म' नाम से पुकारे जाने वाला 'धर्म' नहीं रहा। हमारे ऋषि, मुनि और महर्षि आर्य-सभ्यता के प्रचार में जगत् भर फिर आते थे, किन्तु 'धर्म के पीछे तलवार' ऐसी कोई बात नहीं हुई। ईसाइयों ने मुसलमानों को नहीं छोड़ा, ईसाइयों में भी प्रोटेस्टेंटों को रोमन कैथोलिकों ने नहीं छोड़ा, प्रोटेस्टेंटों में भी 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' रहा ही। हिन्दुओं ने इस प्रकार के अत्याचार कभी नहीं किये। इसका मुख्य कारण इनकी उदार आर्य संस्कृति ही है, दीखने को तो हिन्दू धर्म में नाना उपास्यदेव व नाना मेद प्रभेद होते रहे हैं, किन्तु इनके ब्रह्मा, विष्णु, महेश भिन्न भिन्न रूप में होते हुए भी एक ही हैं। हिन्दुओं का एकत्व में नानात्व व नानात्व में एकत्व देखने की कला अब तक संसार में किसी को साध्य नहीं हुई है। पुराणों व उपपुराणों का समन्वय भी अन्त में जाकर एकत्व में ही हुआ है और यह उच्च भावना वेदमूलक है। जो कि संसार के समस्त धर्मों का स्रोत रहता है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।
(ऋग्वेद)

इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, मातरिश्वा सब एक ही हैं। एक ही वह है, किन्तु विप्र लोग—पहुँचे हुए जन—उसको भिन्न भिन्न नाम से पुकारते हैं।

यह उच्च भावना हिन्दुओं के रक्त-प्रवाह में ऐसी प्रवाहित हो रही है, कि उसीके कारण हिन्दू क्रूर नहीं हुए, उदार भाव से देखते रहे, सबको ईश्वर-पुत्र समझते रहे।

दूसरी ओर

कौन नहीं जानता, कि संसार में जितने उपद्रव, रक्तपात और अनर्थ धर्म के नाम पर हुए हैं, उतने और किसी कारण से नहीं हुए हैं? इतने अत्याचार राज्य प्राप्ति, स्वार्थ और आत्मप्रतिष्ठा के लिए नहीं हुये, जितने धार्मिक विचारों की विषमता के कारण। स्पेन ने रोमन कैथोलिक धर्म का नेता बन कर हालैण्ड में जो रक्तपात किये, उनका स्मरण-मात्र करने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इन्क्वीजीशन (Inquisition) के नाम से जो प्रसिद्ध लोमहर्षण अत्याचार यूरोप के इतिहास में चिरकाल के लिये अमर हो गये हैं, भारतीय सर्व-साधारण तो उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। स्वयं प्रोटेस्टेंटों के ही नरम गरम दल वालों ने जो एक-दूसरे पर अत्याचार किये हैं, वे क्या कभी भुलाये जा सकते हैं? फ्रांस में तो एक बार कई हजार स्त्री-पुरुष और बच्चों को केवल इसी अपराध में मौत के घाट उतार दिया गया था, कि वे राज्य-धर्म (State religion) से भिन्न धर्म के मानने वाले थे। राज्य में खुली आज्ञा दे दी गई थी कि ह्यूजिनॉट (अर्थात् प्रोटेस्टेन्ट) मार दिये जायँ। इसी आज्ञा के फलस्वरूप बार्थलोम्यू-दिवस नाम का हत्याकाण्ड घटित हुआ था। दूर क्यों जायँ, स्वयं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सबसे बड़े पक्षपाती देश इंगलैण्ड में ही हेनरी अष्टम, एडवर्ड षष्ठ, मैरी ट्यूडर और इलिजाबेथ तक के समय में जैसे-जैसे अत्याचार हुए हैं वैसे अब कहीं देखने में भी नहीं आते। विधर्मियों को चिता पर जलाने का कानून (De Heretico comburendo) जारी था ही। इसके अतिरिक्त चक्र में माले ठूँसना, सिर और हाथों में कीलें गाड़ना, हाथ पैर काटकर धूप में लिटाना, सम्पत्ति जब्त कर लेना, विधर्मी वादियों को उनके पदों से पृथक् करना, सन्तानों के उत्तराधिकार छीन लेना आदि सब कार्य होते रहे हैं। इन सबके अतिरिक्त समाज की संगठित शक्ति की ओर से जो अत्याचार इंगलैण्ड में होते थे, उनकी शिकायतों को वे जज सुनते थे, जो कैथोलिकों के कट्टर शत्रु थे, क्योंकि कैथोलिक न जज थे और न पुलीसमैन ही। राज्य में उन्हें कहीं नौकरी नहीं मिल सकती थी, और न अधिकार प्राप्त था, न राज्य में कोई सुनवाई होती थी। ये सब अत्याचार सन् १८२९ ई० तक पूर्णमात्रा में होते रहे। डिजरैली, जो सन् १८८० ई० में मरा, यद्यपि ईसाई हो गया था, परन्तु उसके पुरखाओं में कोई यहूदी हो चुका था, इसलिये वह अन्त समय तक सन्देह की दृष्टि से देखा गया। आयर्लैण्ड कैथोलिक धर्मावलम्बी था, इसलिये वहाँ के निवासियों की सब सम्पत्ति अंग्रेज़ों ने जब्त कर ली थी। अंग्रेज़ ज़मींदार बने और आयर्लैण्ड वाले उनके कुली मजदूर बने। वे घोड़ों पर चढ़ न सकते थे। इसके विपरीत स्काटलैण्ड वालों को, जो अंग्रेज़ों के सहधर्मी थे, सन् १७०७ ई० में ही सब सम अधिकार देकर एक कर लिया था।

यह सब कहानी धर्म के पुजारियों की है। जिन विद्वानों ने वैज्ञानिक अनुसन्धानों में पड़कर अपनी जानें खोई, उनकी तो कथा ही अलग है। यूरोप में ईसाई पुरोहितों तथा आचार्यों की ओर से वैज्ञानिकों पर सदा अत्याचार होते रहे हैं। प्रसिद्ध विद्वान् गैलीलियो इस कारण मारा गया कि उसने बाइबिल की शिक्षा के विरुद्ध इस सत् सिद्धान्त का प्रचार किया कि भूमि सूर्य के चतुर्दिक घूमती है। देवी हियोफिया, ईसाई पादरी सिरिल की आज्ञा से, नग्न की गई और बीच बाज़ार में इस अपराध में जान से मारी गई कि वह रेखागणित की विद्या लोगों को पढ़ाती थी। पादरी कहते थे कि रेखागणित की विद्या असत्य है, क्योंकि बाइबिल में इसके विषय में कुछ नहीं लिखा है। जब अमेरिका ढूंढने के निमित्त जहाज़ ले जाने के लिये कोलम्बस स्पेन के राजा से सहायता माँग रहा था, तो पादरियों ने कहा कि बाइबिल में और किसी नये देश का नाम ही नहीं है और इसीलिये उसे कुछ सहायता नहीं मिली। इसी प्रकार ब्रूनो नामक इटैलियन देश-भक्त को भी इन्क्वीजीशन से मारे जाने की कहानी प्रसिद्ध है। इटली के मठ में से वह जान बचाकर भाग गया, पर उसका यह दुर्भाग्य था कि उसके वैज्ञानिक विचारों के कारण प्रत्येक देश के धर्म-सम्बन्धी दृष्टिकोण से उसका कुछ न कुछ भेद निकल आता था। वह स्वयं किसी भी धर्म का न अनुयायी था और न प्रचारक, फिर भी जब जिस देश वालों को उसके विचारों का पता चलता था, उसकी जान खतरे में पड़ जाती थी और उसे अपना दण्ड-कमण्डल लेकर भागना पड़ता था। उसे कहीं भी शान्ति न मिली। प्राटेस्टेन्ट और प्यूरिटन तक उसके शत्रु हो गये। इंगलैण्ड से भी उसे भागना पड़ा। सारे यूरोप की खाक छनवाकर उसका दुर्दैव उसे फिर इटली में ले आया। पहले उसके हाथ पैर काटे गये, फिर उसका सिर कुल्हाड़े से काट दिया गया। सुकरात के बलिदान को कौन नहीं जानता। जिस पर युवकों को बहकाने और भ्रष्ट करने का अभियोग चला था और दण्डस्वरूप विष पान करना पड़ा था।

ईसाई और मुसलमानों का धार्मिक विरोध भी कुछ कम रक्तरंजित नहीं है। मूरों द्वारा स्पेन में किये गये अत्याचारों से उत्पन्न असन्तोष ने ही स्पेन को स्वतन्त्र किया और अभी पिछली शताब्दी में, जब कि इंग्लैंड अपनी पूर्व की समस्या की नीति के कारण टर्की का साथ देने को बाध्य था, टर्की के सुलतानों के बालकन प्रायद्वीप-वासी ईसाइयों पर किये गये अत्याचारों का ही फल था कि सारे यूरोप में शोर मच गया, लार्डबायरन भी तशरीफ लाये और बालकनवासी अन्त में स्वतन्त्र हो सके।

यूरोप का मध्यकालीन-इतिहास क्रूसेडों की कथाओं से भरा पड़ा है, जब कि देश-देश से सेनायें धर्म पर बलिदान होने जाती थीं। जेरूसलम में जिस समय जिस पक्ष की विजय होती थी, उसी समय दूसरे पक्ष के स्त्री-पुरुषों को मौत के घाट उतारा जाता था। आज भी वहाँ धार्मिक कट्टरता का किसी-न-किसी रूप में नंगा-नाच जारी है। अर्द्धचन्द्र और क्रूस की यह लड़ाई अभी समाप्त नहीं कही जा सकती। यदि अधिक

बलिदान देने वाली जाति को ही जेरूसलम मिल जाय, तो आज भी लाखों ईसाई यहूदी और मुसलमानों को सिर कटाने से बड़ी प्रसन्नता अनुभव होगी। पिछले वर्षों में रोने की दीवार (The wailing wall) पर खूब मार-काट हुई है और अभी रहेगी।

मुसलमान भी धार्मिक कट्टरता में किसी से पीछे न रह सके। यों कहने को तो सभी धर्म वाले कह दिया करते हैं कि हमारे धर्म में बड़ी सहिष्णुता है, पर वृक्ष उसके फल से जाना जाता है। हमारा उद्देश्य धर्म का विवेचन ही है। किसी धर्म-विशेष के लिए कुछ कहना नहीं। मन्सूर जो वहदत का जाम (अद्वैतामृत) पीकर मस्त रहता था और अनलहक (अहं ब्रह्मास्मि) के नारे लगाता था, निरपराध ही सूली पर चढ़ाया गया। जो धुन के पक्के होते हैं, वे सेंट स्टीफन की तरह किसी के रोके से नहीं रुकते। फिर भी धर्मान्ध लोग शिक्षा ग्रहण नहीं करते। अकबर ने क्या ही अच्छा शेर लिखा है, 'किया अच्छा जिन्होंने दार पर मन्सूर को खींचा। कि खुद मन्सूर को जीना था मुश्किल राजदाँ होकर।' यहाँ हमारा अभिप्राय यह सिद्ध करने का नहीं है कि मुसलमान धर्म दूसरों के प्रति निष्ठुर है। पारसियों को भी तो इसी तरह भारतवर्ष में इसलिए भागकर आना पड़ा था कि इस्लाम की बागडोर जिनके हाथ में थी, उन्होंने ऐसा कहा था कि इस्लाम पर ईमान लाओ या मरने को तैयार हो जाओ। सच तो यह है कि इन धर्मान्धों ने इस्लाम का यही अर्थ समझा कि गैरइस्लामी दुनिया को नेस्त-नाबूद कर दिया जाय। आरम्भिक काल में ही राजनैतिक कारणों से मुसलमान शासक भारतवर्ष में इस नीति को प्रचलित न कर सके, पीछे से तो हिंदुओं का सहयोग प्राप्त करने का सच्चा प्रयत्न भी किया गया। बहुत से बादशाह बड़े न्यायप्रिय थे, परन्तु उनके धर्मान्ध सलाहकार उन्हें बहकाते रहते थे। एकबार अलाउद्दीन खिलजी ने एक मौलवी से पूछा कि हिन्दुओं का राज्य के प्रति क्या कर्तव्य है, तो उसने कहा कि जब उगाहने वाला उनके ऊपर धूल डाले तो उन्हें चाँदी पेश करनी चाहिये और उनके मुँह में थूके तो फौरन अदब से सिर झुका कर सोने की अशर्फियाँ पेश करनी चाहियें। जहाँ ऐसे संकुचित विचारों वाले धर्म-पुरोहितों का प्रभाव था, वहाँ उदार धार्मिक महापुरुषों की भी कमी न थी, पर जैसा कि सर्वत्र देखा जाता है धार्मिक मनोवृत्ति के श्रद्धालु जन-समुदाय पर जितना अधिक प्रभाव कट्टर साम्प्रदायिक पगडण्डी पर चलने वालों का पड़ता है, उतना किसी उदाराशय विद्वान् का नहीं पड़ा करता।

जहाँ तक हम देखते हैं। जैसी दुर्दशा धर्म की उसके अज्ञानी भक्तों के हाथों में होती है, वैसी ही दुर्दशा सांसारिक स्वार्थ वालों के हाथों में पड़कर होती है। जहाँ धर्मान्ध भक्त सिद्धान्तों को उल्टा समझ कर या लकीर के फकीर बनकर अन्याय करते हैं, वहाँ स्वार्थी लोग जान-बूझ कर करते हैं। यूरोप में जो धाँधली धर्म के नाम पर जारी रही, उसका एक-मात्र कारण सांसारिक स्वार्थ ही था। पोप को जनता ने धर्म-गुरु बनाया था, परन्तु वासनाओं का कीड़ा और अधिकार-लिप्सा का शिकार बनकर वह सम्राटों का भी सम्राट् बन गया। फ्रांस की राज्य क्रान्ति के समय बड़े-बड़े चर्च के अधिकारी बड़े-बड़े जमींदार थे। उनके टैक्स न देने से राज कर का भार त्रस्त प्रजा पर पड़ता था। हम देखते रहे हैं कि कालान्तर में स्वार्थी लोग धर्म की मशीन को खिलौना बनाकर उसका स्वरूप ही बदल देते हैं। चाहे धर्मान्ध लोग कितना ही अत्याचार करें, उनसे धर्म की इतनी हानि नहीं होती, जितनी स्वार्थियों से। यूरोप के लोगों के जीवन का उद्देश्य ही भोगवाद है। 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' आदि ही जिनका मूल-मंत्र है, उन्होंने धर्म को भी बदनाम कर डाला है। सांसारिक मनोवृत्ति प्रधान समाज में धार्मिक विचारों की सच्ची उन्नति असम्भव है। जहाँ गिरजों में की जाने वाली प्रार्थनाएँ भी उस पार्लियामेंट में स्वीकृत होती हों, जो सांसारिक वासनाओं और स्वार्थों का क्रीड़ा-क्षेत्र है, जिसमें नैतिकता के समर्थक का प्रवेश भी मूर्खता समझा जाता है, जिन देशों के धार्मिक स्थानों में रक्त-पात करने वाले सैनिकों के चित्र सम्मानपूर्वक रखे जाते हों और विजय-कामना की जाती हो, वहाँ किसी धर्म का सच्चा स्वरूप कैसे समझ में आ सकता है? यदि संसार में कोई देश ऐसा है जहाँ सर्व प्रकार के धार्मिक विचारों को फैलाने के लिये सदा खुली छुट्टी रही है, तो वह भारतवर्ष है। यद्यपि यह कहना भूल होगी कि भारतवर्ष में धार्मिक अत्याचार नहीं हुए, पर भारतवासियों की सदा से यह अभिलाषा चली आई है। प्राचीन इतिहासों में हमें धार्मिक शास्त्रार्थों के उदाहरण सर्वत्र मिलते हैं। कुछ राजाओं ने प्रचार में बाधाएँ डालीं सही, पर किस धर्म को मानने ही से किसी को न तो घोर अत्याचार सहना पड़ा और न किसी धर्माचार्य ने प्रचार का विशेष विरोध किया। राज्य और स्वार्थियों के हस्तक्षेप के अभाव से ही भारतवर्ष में दार्शनिक विचारों का ऐसा उत्तम प्रकार से विकास संभव हो सका। जिसके कारण इस पतित अवस्था में भी भारतवर्ष गर्व से अपना सिर संसार के सम्मुख ऊँचा उठा सका है।

लुई जकालयट तो अपनी प्रशंसा में इससे भी आगे बढ़ गये हैं। उनके इन शब्दों के साथ ये पंक्तियाँ भी समाप्त होती हैं—

भारत की पुरातन पवित्र भूमि धन्य है, धन्य है। सभ्यता व मनुष्यता की गोद धन्य है, धन्य है। सैकड़ों पर चक्र व आक्रमण जिस संसार की धात्री व पोषयित्री को न मिटा सके धन्य है, धन्य है। सात्विक श्रद्धा, प्रेम भक्ति, काव्यरस व 'विज्ञानं ब्रह्म' की पितृभूमि धन्य है, धन्य है। यह हमारा सौभाग्य होगा कि हम भविष्य में उसके पुनरुज्जीवन का पाश्चात्य जगत में स्वागत करें। (अर्जुन से)

विदेश - वार्त्ता

क्या फ्रांस में लोकतन्त्र का पतन होगा ?

अनुवादक—श्रीयुत 'म'

[कुछ दिन पहले विलायत के 'मैनचेस्टर गार्जियन' नामक समाचार पत्र में एक लेख प्रकाशित हुआ था। इसका शीर्षक था 'डिमॉक्रेसी इन फ्रांस' अर्थात् 'फ्रांस में लोकतन्त्र।' इसमें लेखक ने यह दिखलाया है कि यद्यपि फ्रांस के नागरिकों में कुछ असन्तोष अवश्य फैल रहा है और वहाँ पर थोड़े ही समय के भीतर कई मन्त्रि मण्डल टूट चुके, फिर भी लोकतन्त्र के पतन की कोई सम्भावना नहीं है। लेख पठनीय है अत उसका साराश नीचे दिया जाता है।]

जिस तरह साहित्य में समय समय पर लोगों की रुचि बदला करती है और जिस तरह पहनावे के सम्बन्ध में कभी एक फैशन का जोर रहता है, तो कभी दूसरे का, उसी तरह राजनीति में भी प्राय फैशन बदला करते हैं। रोम और सीजर के प्रभाव के कारण लगभग अठारह सौ वर्षों तक 'साम्राज्य' स्थापित करने की ओर झुकाव रहा। फिर इगलैण्ड में 'दायित्वपूर्ण शासन' की जो प्रबलता हुई, तो उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप तथा अमेरिका के राष्ट्र भेड़ियाधसान की तरह उसी का अनुकरण करने लगे। लोगों की यह धारणा हो गई कि यदि देश में दो प्रतिनिधि सभायें स्थापित कर दी जायँ—एक सर्वसाधारण की, दूसरी अमीरों की—तो शासन सम्बन्धी सारी शिकायतें अपने आप दूर हो जायँगी।

इधर (यूरोपीय युद्ध की समाप्ति के बाद) इटली में फासिज्म को सफलता मिली और रूस में भी पार्लिमेंटरी शासन उठा दिया गया। अब मानों लोकतन्त्र की मृत्यु की घोषणा करना ही फैशन बन गया। जर्मनी में अधिनायक तन्त्र स्थापित हो गया। उस दिन आष्ट्रिया के प्रधान मन्त्री ने भी घोषणा कर दी कि अब मैं पार्लिमेंट का चुनाव न कराऊँगा। तात्पर्य यह है कि अब फिर फैशन बदल रहा है। क्या इससे फ्रांस में भी लोकतन्त्र के पतन की सम्भावना है ?

जमीन तैयार नहीं

यदि यह कहा जाय कि आस पास के देशों में इस समय जो विचार धारा बह रही है, उसका कोई प्रभाव फ्रांस पर नहीं पड़ा है, तो किसी को इसका विश्वास न होगा। फासिज्म या अधिनायक तन्त्र को अवसर देने के लिए फ्रांसीसियों से इतनी बार अपील की गई है कि उसका थोड़ा-बहुत असर उन पर अवश्य पड़ा होगा। फिर भी वर्तमान स्थिति को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि फ्रांस में फासिज्म की जड़ जमने के लिये अभी जमीन तैयार नहीं हुई है।

फ्रांस में लोक तन्त्र का पतन तभी हो सकता है, जब वहाँ भी मुसोलिनी की तरह कोई प्रबल नेता उत्पन्न हो जाय, जिसका अपना एक दल हो और जिसके अनुयायी सैनिक ढग से सघटित हों। मुसोलिनी तथा हिटलर के हजारों अनुयायी ऐसे थे, जिन्हे बाकायदा सैनिक शिक्षा दी गई थी। सड़कों पर उनका प्रदर्शन कराया जाता था। उनकी शक्ति से सब लोग परिचित थे। कमजोर सरकारें उनके बढ़ते हुए वेग को रोकने में असमर्थ थीं। फ्रांस में ऐसा कोई सैनिक दल न इस समय विद्यमान है और न निकट भविष्य में ही उसके उत्पन्न होने की सभावना है। यदि हो भी, तो सर्वसाधारण की वर्तमान विचार धारा को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सरकार को उसका दमन करने में देर न लगेगी।

फिर इस तरह की स्वयसेवक सेनाओं का अस्तित्व उस गहरे असन्तोष की भित्ति पर आश्रित है, जो जनता के एक बड़े भाग में फैल जाता है। रूस में किसानों और मजदूरों के असन्तोष से ही बोल्शेविज्म का उदय हुआ था। फासिज्म का जन्म मध्यवर्ग की निम्न श्रेणियों से होता है। जब मध्यवर्ग वालों की तकलीफें बढ़ जाती हैं या जब मजदूरों की क्रान्ति का भय उत्पन्न हो जाता है, तब फासिस्ट आन्दोलन का आविर्भाव होता है। जर्मनी में ये दोनों अवस्थाएँ विद्यमान थीं। इटली में वर्गवादियों की ज्यादती से फासिज्म की जड़ जमी किन्तु सौभाग्यवश फ्रांस में इन दोनों में से एक भी अवस्था अभी उत्पन्न नहीं हुई।

असन्तोष अवश्य बढ़ रहा है

इतना होते हुए भी फ्रांस में लोक तन्त्र के लिये कुछ खतरे अवश्य पैदा हो गये हैं। राज्य के अत्यधिक व्यय तथा असह्य कर भार का विरोध करने के लिये चारों ओर कर दाताओं की सस्थायें स्थापित हो गई हैं। सरकार को इनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। राज्य के कर्मचारी इस आन्दोलन के विरोधी हैं, क्योंकि उनका स्वार्थ कर दाताओं के स्वार्थ से भिन्न है। इसी तरह गरीब लोग भी इसके साथ नहीं हैं, क्योंकि वर्तमान कर भार से वे प्राय मुक्त हैं। अत इसके राष्ट्रीय रूप धारण करने की विशेष सम्भावना नहीं है। फिर भी मुल्की कर्मचारियों की सस्थाओं को अधिक सावधानी से काम लेना चाहिये और कोई क्रान्तिजनक रीति न ग्रहण करनी चाहिये, अन्यथा फासिज्म का प्रभाव बढ़ जाना बड़ी बात नहीं।

दूसरा खतरा नवजवानों का असन्तोष है। डॉक्टरी, बैरिस्टरी, इजीनियरी आदि की परीक्षा पास कर निकले हुए नवयुवकों की दशा प्राय दुख पूर्ण और कभी कभी बिलकुल निराशा जनक होती है। इन पेशों को जीविका का साधन बनाने वालों की सख्या पहले ही बहुत ज्यादा हो चुकी है। इधर राज्य ने कुछ समय के लिए नये डॉक्टरों तथा इजीनियरों की नियुक्ति भी बन्द कर दी है। ऐसी हालत में डिग्रीधारी उन नवयुवकों की क्या स्थिति होगी, जिसके पास मा बाप की पूर्व सचित पूँजी भी नहीं है, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं। सभव है, सरकार को जबरन् अवसर ग्रहण करने के लिए निर्धारित उम्र घटा देनी पड़े। बूढ़े मनुष्यों को चाहे उनमें काम करने की यथेष्ट शक्ति मौजूद हो क्यों न हो, दो चार वर्ष और विश्राम करने देना किसी नवयुवक को लगातार कई वर्षों तक निराशा के वातावरण में पड़ने देने से अधिक अच्छा है।

इसी तरह असन्तोष बढ़ाने वाली दो एक बातें और भी हैं। जिनका वर्णन करना अनावश्यक है। मान लीजिए एक मन्त्रि मण्डल के टूटने के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे की स्थापना होने पर भी इन समस्याओं का निपटारा सन्तोष जनक रीति से न हो सके और फासिस्ट आन्दोलन के विकास के लिए मसाला जुटने लगा, तो क्या जनता के एक बड़े भाग का समर्थन उसे प्राप्त हो जायगा ? मेरा तो खयाल है कि नहीं। पेरिस में भले ही प्रतिनिधि शासन के विरोधियों का जोर हो पर देहातों और प्रान्तीय नगरों में ऐसा नहीं है। वहाँ लोक तन्त्र प्रणाली की जड़ अभी तक मजबूत बनी हुई है जैसी इटली या जर्मनी में न थी। इग्लैण्ड की तरह फ्रांस के नागरिकों को स्वतन्त्रता की आदत-सी पड़ गई है, जो बड़ी कठिनाई से ही दूर होगी।

सुधार की आवश्यकता

पार्लिमेंट्री तरीके से किसी देश का शासन होने का यह आशय नहीं कि वह किसी खास उद्देश्य से कुछ समय के लिये व्यक्ति विशेष का नेतृत्व स्वीकार करने से इनकार कर दे। कठिनाई के समय कभी-कभी बड़ी शीघ्रता से काम करना पड़ता है। उस समय नेता को केवल अपनी ही जिम्मेदारी पर आगे बढ़ना आवश्यक हो जाता है। नेता स्वेच्छाचारी अधिनायक या 'डिक्टेटर' नहीं है। उसे जो शक्ति प्राप्त है, उसका कारण उसकी योग्यता एव चरित्र की विशेषता है। देश को उसके नियन्त्रण का अधिकार तो है ही। यदि वह असमर्थ प्रमाणित हो, तो देश उसे पदच्युत कर सकता है और गलती करने पर दण्ड भी दे सकता है किन्तु सकट के समय राष्ट्र स्वय उसे नेतृत्व करने का अधिकार दे देता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रपति रूजवेल्ट के कार्यारम्भ के समय यही हुआ। हाँ, इग्लैण्ड में इसका प्रश्न नहीं उठता। कारण यह है कि वहाँ किसी समय जो दल शासनारूढ रहता है, उसके नेता को पार्लिमेंट पर अत्यधिक शक्ति प्राप्त होती है—इतनी शक्ति जितनी फ्रांसीसी प्रधान मन्त्री को चेम्बर या सिनेट पर नहीं प्राप्त होती। फ्रांस में प्रधान मन्त्री को विशेष प्रश्नों का निपटारा स्वय अपने आदेश से करने का अधिकार देना आवश्यक हो सकता है। श्री पोऑकारे के शासन काल में ऐसा ही किया गया था। यदि भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री दलादियर को बजट सम्बन्धी कठिनाइयाँ हल करने का अधिकार दे दिया गया होता, तो इससे कोई नुकसान न होकर लाभ ही होता।

इसी तरह और भी सुधार की आवश्यकता है। सन् १८७५ के शासन विधान में कई महत्त्वपूर्ण सशोधन करने की ओर श्री टारड्यू का एक माला ने विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया है। उनका एक प्रस्ताव यह है कि निर्धारित अवधि के भीतर ही, यदि आवश्यकता हो तो, फ्रांसीसी पार्लियामेण्ट को भग करने का अधिकार राष्ट्रपति को दे दिया जाय। (वर्तमान व्यवस्था यह है कि मन्त्रिमण्डल के पद-त्याग के बाद भी 'चेम्बर' बराबर कायम रहती है—अनुवादक) फ्रांसीसी लोकतन्त्र विधान में वाछनीय परिवर्तन करने का आशय तानाशाही की स्थापना के लिये रास्ता साफ करना नहीं, प्रत्युत उसकी सम्भावना को दूर भगा देना है। यही वहाँ के अधिकतर मजदूरों, किसानों, तथा मध्यवर्ग वालों की इच्छा मालूम होती है।

संयुक्त हिन्दी-भाषी परिषद्, बम्बई के सभापति

श्री सम्पूर्णानन्दजी का अभिभाषण

वन्दे मातरम्

स्वागताध्यक्ष महोदय, प्रतिनिधि गण, देवियो और सज्जनो,

आप लोगों ने मुझे अपने सम्मेलन का सभापति मनोनीत करके जो आदर प्रदान किया है, उसके लिये मैं आपका आभारी हूँ। किसी छोटी सी भी बात के लिये धन्यवाद के दो शब्द कह देना शिष्टाचार का एक अंग मात्र है और बुरा भी नहीं है। भलमानसों को इससे आपस में व्यवहार करने में सुविधा होती है, पर आपने मुझे वस्तुतः असाधारण गौरव प्रदान किया है और इसलिये मैं आपका विशेष रूप से ऋणी हूँ। इसी बम्बई में आपको ऐसे विद्वान् हिन्दी भाषी देश सेवक मिलते, जिनकी सुख्याति सारे देश में है, फिर भी आपने मुझे सुदूर काशी से बुलाया यह आपकी कृपा है। इसके द्वारा, मैं समझता हूँ, आपने उन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विचारों के प्रति, जो मुझको प्रिय हैं अपना स्वारस्य प्रकट किया। इसी से मुझे यह आशा होती है कि सम्मेलन सचालन में आपका और मेरा पूर्ण मनऐक्य रहेगा और मुझे आपका सहयोग प्राप्त होगा।

हिन्दी का महत्त्व

आप लोगों से मिलकर मुझे बहुत ही हर्ष हुआ है। यों तो हम लोग बराबर कहते हैं और मानते रहते हैं कि हिन्दी इस देश का राष्ट्रभाषा है और हमारे विरोधी भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि हिन्दी कम से कम १२ करोड़ ९३ लाख मनुष्यों की मातृभाषा है पर जब तक घर पर रहिये इन बातों का पूरा पूरा अर्थ समझ में नहीं आता। जब हम बाहर निकलते हैं, अपने प्रान्त की सीमा को पार करते हैं और बिहारियों, पंजाबियों, राजपुताना निवासियों, मध्यप्रान्त वासियों को हिन्दी बोलते देखते हैं, इससे भी बढ़ कर, जब हम शिक्षित और अशिक्षित बहुत से बंगालियों, मद्रासियों, गुर्जरों और महाराष्ट्रियों को हिन्दी बोलते और समझते देखते हैं, इससे भी बढ़ कर, जब हम यह सोचते हैं कि यह सब ऐसी दशा में हो रहा है जब कि हिन्दी राजभाषा नहीं है, प्रत्युत उसे पद पद पर अंग्रेजी से टक्कर लेनी पड़ती है, बहुत से सरकारी वायु मण्डल में पले भारतीय भी उसे अपनाने को प्रस्तुत नहीं हैं वरन् जो कुछ उन्नति उसने की है वह अपने गुणों के जोर पर, तब हमको हिन्दी का सच्चा गौरव समझ में आने लगता है और हिन्दी भाषी होने का हमें सच्चा अभिमान भी होने लगता है। मैं समझता हूँ कि आप लोगों में जो कुछ स्नेह बन्धन है, वह है ही पर हिन्दी के प्रेम और उसकी सेवा का भाव भी अवश्य एक प्रबल सूत्र होगा। आज हम एक विदेशी भाषा को राष्ट्र भाषा के स्थान पर देख रहे हैं पर इससे हमको विचलित न होना चाहिये। देश की आत्मा ने हिन्दी को अपनाया, समय आने पर हिन्दी अपने सिंहासन पर बैठेगी। इसका प्रमाण यह है कि देश का प्रतिनिधि, देशवासियों का प्यारा, अमर कांग्रेस ने हिन्दी को अपना लिया है।

दूसरों की सहानुभूति

पर जब हम हिन्दी की बात करते हैं, तो दूसरे प्रान्तवालों पर अपना बड़प्पन जताने को नहीं। हिन्दी हमारी मातृभाषा है, पर उनकी सहायता से ही राष्ट्रभाषा बनी है और राजभाषा बनेगी। हिन्दी का जन्म चाहे प्राकृति के किसी भेद में हुआ हो पर आज मागधी, अर्धमागधी सौराष्ट्री, शौरसेनी, महाराष्ट्रीय सभी एक सूत्र में मणिवत् पिरोई हुई हैं और इस समय में इनके निर्माताओं और प्रवर्धकों में, वाङ्मय, दर्शन, इतिहास, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में हिन्दी मातृभाषियों की पंक्ति में गुजराती, महाराष्ट्र, बंगाली आदि सभी प्रान्तों के सुलेखक देख पड़ते हैं। सर्वपूज्य संस्कृत इसकी भी जीवन दायिनी है। हमारे द्राविड़ भाइयों तक ने इस काम में सुयोग किया है। अतः यद्यपि यह सम्मेलन हिन्दी भाषा भाषियों का है, पर मुझे आशा है और आप लोगों को भी यह आशा अवश्य होगी कि हमारे साथ अन्य भारतीय भाषा भाषियों का पूर्ण सहयोग और सहानुभूति है।

पर मैं इस आश्चर्य में हूँ, कि आपसे किस विषय पर बातें करूँ? साहित्य की चर्चा बड़ी रोचक होती है, कवियों की कृतियों को पढ़ते सुनते घंटों बिताये जा सकते हैं, पर प्रत्येक वस्तु का एक समय होता है। एक मिल से निकला हुआ मजदूर जिसके बाल-बच्चे रोटियों बिना तड़प रहे हैं, जिसका रहने का क्वार्टर नरक का नमूना है, जो इच्छा रखने पर भी अपने घर नहीं लौट सकता, हिन्दी का प्रेमी भले हो, पर साहित्य की लम्बी कथा उसे फीकी लगेगी—उसके सामने रोटी, कपड़े रहने आदि के प्रश्न अधिक जटिल हैं। वह दिन रात इनमें डूबा रहता है (उसके सामने इन सब बातों का जिक्र करना चाहिये। तभी वह और सब बातों को सुन सकता है)।

लोगों की दरिद्रता

आप लोगों में से अधिकांश बहुत गरीब हैं, जो मजूर नहीं हैं वे भी फटे हालों रहते हैं। कोई बड़ा रोजगार, सिवाय शायद दूध के आपके हाथ में नहीं है। जो लोग महाजनी करते हैं वह रोजगारी नहीं कहे जा सकते। महाजन रुपये को बढ़ाता नहीं, केवल गरज मन्दों की जेब से निकालकर उसे अपने जेबों में डाल लेता है। और फिर जहाँ सब गरीब हैं वहाँ रहने वाले महाजन टुटपूँजिये ही होंगे। रहे मजूर, उनकी दशा का मैं क्या वर्णन करूँ? जो काम पर हैं, उनकी हालत खराब है, जो काम पर नहीं हैं, उनकी दशा और खराब है। इस तरह रहना नसीब होता है, जैसे अमीरों के कुत्ते भी न रहेंगे। जहाँ, एक कमरे में कई कुटुम्ब रहेंगे, और कमरा भी कैसा छोटा, निकम्मा—वहाँ क्या तन्दुरुस्ती रहेगी, क्या लाज शरम रहेगी? बड़े बड़े विद्वान् इस बात पर बड़ा आश्चर्य करते हैं, कि हिन्दुस्तानियों कि आयु पहले से घटती जाती है और यहाँ बच्चे बहुत मरते हैं। पूछिये और होगा ही क्या? जो लोग देहातों की स्वच्छ आबहवा छोड़ कर इन महँगी अन्धकोठरियों की दुर्गन्ध में सड़ते हैं, उनकी आयु घटेगी नहीं तो क्या बढ़ेगी? जो दुधमुँहे बच्चे इस विषमय, इस जहर से भरे, वायु मण्डल में रहेंगे वह कै दिन जियेंगे? और फिर इस हालत से बचने का हथियार क्या है? खूब काफी और अच्छा अन्न वस्त्र हो तो खैर इन बस्तियों में भी रह कर जिया जा सकता है, अब यह हो नहीं है, तब तो लड़ाई पहले से ही हार चुकी है। और फिर वे बेचारे क्या करें, जिनको यह भी मयस्सर नहीं है? आप में ऐसे भी तो लोग हैं, जिनको क्वार्टर नसीब ही नहीं, जो सड़क की पटरियों पर लोट कर रात बिता देते हैं? मृत्यु और दुःखदायी रोग तो अमीर गरीब सबके यहाँ पहुँचते हैं, पर जिस अवस्था में आप रहते हैं आप उन्हें निमन्त्रण देकर बुलाते हैं। जवान देखते देखते उठ जाते हैं, छोटे बच्चे, अधखिले हँसते फूल, ठण्डी हवा के झोंके से कुम्हला जाते हैं, गर्भवती स्त्रियाँ अपने कोमल बोझ के नीचे दबकर मर जाती हैं।

प्रारब्ध और ईश्वर

आखिर इन बातों का उपाय क्या है? हम भारत वासियों की कुछ दिनों से एक बुरी लत पड़ गयी है कि हर बुरे अवसर पर भाग्य और ईश्वर का नाम ले लिया करते हैं। गरीब समझता है कि गरीबी में सड़ना उसका और उसके बच्चों का भाग्य है और यह भाग्य अमिट है। यह विचार झूठा है और यदि आप संस्कृत के अच्छे-अच्छे ग्रन्थ पढ़ेंगे, तो आपको मालूम हो जायगा कि ऐसा सोचना अधर्म है। मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है। अपने प्रारब्ध को आपने बनाया है, उससे आप ही लड़ सकते हैं और आप ही उसे बदल सकते हैं। अपने पर भरोसा कीजिये। ईश्वर पर भरोसा कीजिये, ईश्वर को गाली मत दीजिये, बदनाम मत कीजिये। आप स्वयं ईश्वर के अंश हैं, पर अपनी शक्ति को भूले हुए हैं। ईश्वर को आप से क्या शत्रुता है कि चुन कर आपको दुःख देता है। क्या आप ईमानदारी से कह सकते हैं कि आप अपनी उन तमाम ताकतों से, उस सारी बुद्धि से, काम लेते हैं, जो ईश्वर ने आपको दे रखी है? फिर आप उसको दोष कैसे देते हैं? क्या आपने नहीं सुना है कि वह जगदीश्वर दीनानाथ है, निर्बलों का सहारा है? आप उसको पुकारिये, वह आपकी सहायता करेगा, पर ईमानदारी से पुकारिये, कपट से नहीं। अपनी दशा सुधारने के लिये आपके पास जितनी ताकत, जितना बल हो, वह सब लगा दीजिये, फिर देखिये कि विश्व शक्ति आपकी बाँह पकड़ कर उद्धार करती है या नहीं। अपने को निःसहाय दुर्बल समझ कर हाथ पर-हाथ धरे बैठे रहना भी बड़ा भारी पाप है। आप में से अधिकांश उत्तर भारत से आये हैं। वहाँ श्रीराम,

कृष्णचन्द्र, अर्जुन, गोरखनाथ, बुद्धदेव, पार्श्वनाथ, अशोक, समुद्रगुप्त, अकबर, सूर, तुलसी, कबीर, नानक, रैदास, मीराबाई, महाराणाप्रताप, छत्रसाल, चेतसिंह, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई-ऐसे लोग पैदा हो चुके हैं, वहाँ के लोगों को तो बड़ा ही वीर, उत्साही, संयमी और अपने पैरों पर खड़ा होने वाला होना चाहिये। कठिनाइयों से डरिये मत, उनका कारण सोचिये और उनको जीतने का उपाय ढूढ निकालिये। यह सम्मेलन आपको अवश्य मार्ग दिखलावेगा।

पहली बात जो मैं चाहता हूं, कि आप सोचें वह यह है—और याद रखिये ऐसी ही बातों को सोच विचार कर विदेशों में दीन दुखियों ने अपनी दशा सुधारी है—कि आप भी मनुष्य हैं और आपको भी सुखी और स्वतन्त्र रहने का अधिकार है। सब लोग करोड़पति बन जायँ, यह मेरा तात्पर्य्य नहीं है, करोड़पति हो जाने से ही सुख मिल भी नहीं जाता, पर हाँ, सब स्वच्छ सुथरे सुघर काम लायक घरों में रह, सब साफ, काफी स्वादिष्ट, अच्छा खाना खायें, सब स्वच्छ और काफी वस्त्र पहनें, दुर्भाग्यवश रुग्ण हो जाने पर सबके लिये औषध और उपचार का प्रबन्ध हो, सबके बच्चों को शिक्षित होकर अपना भविष्यत् बनाने का अवसर मिले, वृद्ध होने पर दर दर की ठोकरें न खानी पड़ें, यह मनुष्य मात्र का अधिकार है। आप अपने इस अधिकार को समझें। कहा कहीं कोई मिल मालिक दया करके अस्पताल या अच्छे क्वार्टर बनवा देता है, तो उस पर मारे खुशी के फूल उठना ता मूर्खता है। यह तो उनकी भिक्षा है और धनिक लोग प्राय भिक्षा इसलिये देते हैं, कि निर्धन मुसीबत सहत सहत मुँह जोर होकर और न माँगने लगें। आप को अपना हक चाहिये, भिक्षा नहीं।

सम्पत्ति पर श्रमिकों का स्वत्व

आपके चारों ओर जो सम्पत्ति देख पड़ रही है, जो महल खड़े हैं, जो मोटर दौड़ रही हैं, वह आपके बल पर है। आपने यह सम्पत्ति पैदा की है। अपने खून से आपने इसे उपार्जित किया है। देहातों में आप रहते थे, महल में नहीं पर खुली आबहवा में। छत्रपती नहीं थे पर मोटा खाना मिल जाता था, लालच मे आपने देहात छोड दिया, अब गाँव में आप के लिये जगह नहीं है। यहाँ गन्दी आबहवा में क्वार्टरों में आकर बसे। छत्रपती तो यहाँ भी नहीं हुये पर हाँ, खुशहाली के जमाने में चार पैसे मिलते रहते थे। जब मिल को जरूरत न रही, तो रस चुसा हुई नारंगी की तरह आपको फेंक दिया। गाँव जाने तक को पैसा नहीं, बहुतों का गाँव में ठिकाना नहीं। बेकारी मे यही सहिये। चार रुपये का माल, चार रुपये आपकी मजदूरी, उसी मजदूरी से बना माल बीस को बिका, वह मुनाफा मालिकों का है। मँहगी हो या सस्ती उनको रहने को अच्छे घर, खाने को अच्छा भोजन, पहनने को सुन्दर वस्त्र, चढने को सवारी, बच्चों को शिक्षा रोग में औषधि मिल ही जाती है। इसी से याद दिलाता हूँ, कि इस सम्पत्ति को आपने अपना और अपने बच्चों का खून बहाकर तैयार किया है, इसमें सबसे बड़ा हक आपका है। पहले आप भाग लें, तब दूसरे भोग सकते हैं पर आप अकर्मण्य पड़े हुए हैं।

इसका प्रतिकार तभी हो सकता है, जब आप सगठित हों। किसी के घर डाका नहीं डालना है, सगठित होकर अपना अधिकार लेना है। एक चना भाड नहीं फोड सकता। सबकी बुद्धि, सबकी मदद चाहिये। इसके लिये कमेटी, सभा, बनाइये जिसमें आपके चुने व्यक्ति हों, जो आपके नाम पर बोल सकें। मैंने विशेष जोर मिल के मजदूरों पर दिया है, पर छोटे व्यापारी—आप मे अधिकांश व्यापारी छोटे ही हैं—चाहे वह दूध बेचते हों, चाहे और कुछ बेचते हों इससे कुछ भिन्न नहीं हैं। जो लोग दूसरों के यहाँ नौकरी करके किराया वसूल करते हैं या लहना तसाल्त हैं, वह भी अपने को दूसरे भाइयों से अलग न समझें। सब एक ही नाप के हैं। आप अपने घरों से दूर दूसरे प्रान्त मे हैं। यहाँ के लोग आपके शत्रु नहीं हैं पर आपकी सब कठिनाइयों और अड़चनों को पूरा पूरा नहीं समझते। इससे भी दिक्कत होता है। एक उदाहरण लीजिये। कार्पोरेशन मे आपका कोई प्रतिनिधि तो है नहीं, इससे आपको कई कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं। मराठी आदि बोलनेवालों के लिये कई स्कूल हैं, पर हिन्दी का एक भी नहीं है।

(क्रमश.)

मियाँ मुनीरखाँ

लेखक—श्रीयुत इन्द्र उ० बसावड़ा, बी० ए०

'मियाँ मुनीरखाँ! करेले ले आये?'—मैंने छत पर से पूछा।

'लाहौल विला कूवत—अजी भैया साब, आप भी क्या, ऐसी नापाक चीज का नाम सुबह-सुबह लिया करते हैं। तौबाह तौबाह!'—कहते मुनीरखाँ ने अपना मुँह इतना कडुवा बना लिया, मानों किसी ने उनके मुँह में क्वीनाइन मिक्सचर डाल दिया हो।

'पर वह तुम्हारे साफे में जो करेला रखा हुआ है!'

'क्या गरीबपरवर! इस करेले की टाँग तोड़ डालूँ, इसकी गरदन मरोड़ डालूँ।'—कहते-कहते मुनीरखाँ ने साफे को अपने सिर से उतार कर जमीन पर फेंक दिया। और फिर करेले को हजारों गालियाँ सुनाते हुए साफे को पास के कुएँ पर धोने लगे।

'अजी मुनीरखाँ'

'अजी आग लगाइये इस मुनीर खाँ को और इस बदजात नापाक चीज को। आपको भी क्या मजाक सूझता है भैया साब!'

'अजी, उस पानी में करेला पड़ा है।'

'इस्तेरी करेले की नानी मरे'—कहते हुए मियाँ मुनीरखाँ ने उस साफे को जमीन पर पटक मारा और—'बस, बस-बस! खुदा कि खातिर बस'—बोलते हुए आप अपना रंगी हुई काली दाढ़ी पर हाथ फेरते, कुरान शरीफ को रटते, शफाखाने के चौगान के बाहर चल दिये।

मियाँ मुनीरखाँ हमारी म्यूनिसिपल कमेटी के जमादार थे! ठिगने दुबले पतले थे, ५५ वर्ष के होते हुए भी बुजुर्गी का नामोनिशान आप में दिखाई न देता था। लंबी दाढ़ी, हबशी जैसे गोरे, बिल्ली जैसी तीखी आँख, लंबा-सा साफा बाँधे, कमर से कुछ झुके हुए—वे बड़े ही बातूनी थे और 'जी हुजूर, जी हुजूर' करने में वे बड़े कुशल थे। हम सब उन्हें 'आप' कहा करते थे, इतना तो आपका मान था। महाराजा साहब गुमानसिंहजी के जमाने में वे शिकार पार्टी के अध्यक्ष थे, और उस जमाने में आप महाराज के दाहिने हाथ थे किन्तु महाराज की मृत्यु के बाद, आपके कदिन आए और आज आप भंगियों के जमादार हैं।

न जाने क्यों मुनीरखाँ करेले के नाम से चिढ़ते थे। हमें भी कभी कभी आपको चिढ़ाने में खूब मजा आता।

ग्यारह बजे डाक लेने जाने के समय, फिर आपके दर्शन हुए। पिताजी इस समय नीचे ही बैठे हुए कोतवाल साहब से बात कर रहे थे।

इसी समय मियाँ मुनीरखाँ पुराने जमाने का एक फटा हुआ पुराना खाकी कुरता और नेकर पहने, पैरों में एक डुर्जन छिद्र वाले खाकी मोजे, और फटे बूट चढ़ाये, सिर पर मैला कुचैला, हैट पहने शफाखाने में दाखिल हुए। आकर दूर से ही पिताजी को झुककर सलाम किया—'आदाब अर्ज गरीबपरवर!'

'आइए आइए मुनीरखाँजी! आज तो बड़ा स्वाँग रच लिया?'

'जी हुजूर! कुछ नहीं, जरा आज भंगियों को महाराजा साहब का तबेला झाड़ने ले जाना है।'

'अच्छा! अच्छा! तो क्या वहाँ पर महाराजा साहब से मुलाकात होगी?'—पिताजी ने हँसते हँसते पूछा।

'नहीं हुजूर, हम जैसे गरीबों पर महाराजा साहब की काहे को निगाह पड़ने लगी? वे जमाने गये हुजूर जब इस मुनीरा का भी बोलबाला था। पर हाँ किस्मत अच्छी था, हुजूर आ गये, तो भंगियों को 'फालन' कराकर 'सलूट' तो दिलवा ही दूँगा।'

'मुनीरखाँजी! यह सूट आप कहाँ से लाए?'—पिताजी के ऊपर चले आने के बाद मैंने हँसते हँसते पूछा।

'इसकी भी बड़ी लम्बी तवारीख है भैयाजी'—मुनीरखाँ अपनी तीक्ष्ण आँखों को इधर उधर दौड़ाते हुए बोले।

'अजी सुनाओ भी।'

'हुजूर! महाराजा साहब गुमानसिंहजी शेर के शिकार को जाने वाले थे। हुजूर ने इस खादिम को हाँका डालने का हुक्म फरमाया। मैं अपने नौजवानों को लेकर चल दिया। बियाबान जंगल में हाँका डाल, हुजूर के पास इत्तला भेजा। फिर क्या था, रात के बारह बजे शेर बबर आया।'

'क्यों रे मुनीरा!'—हुजूर ने आवाज दी। 'हाँ अन्नदाता।'—अपनी टोंटा कारतूसी बंदूक को सँभालता मैं बोल उठा। (मुनीरा इस समय शिकार खेलने की ऐक्टिंग करने लगा।)

'फिर हुजूर ने गोली चलाई पर (इस समय आवाज बिल्कुल धीमी करके) साली गोली निशाना चूक गई, इसकी नानी की जात का हुक्का फाड़े। फिर दरबार साहब बोले—'मुनीरा'—बस फिर क्या था 'धाँय' से एक गोली लगाई—और साले शेर को चित्त कर दिया। फिर मैंने चिल्लाना शुरू किया—'वाह हुजूर वाह! क्या निशाना मारा, वाह वा! वाह!' सारे गाँव में मशहूर हो गया कि महाराजा साहब ने शेर मारा। उसी दिन का यह इनाम है। अब तक बीबाजान ने सँभाल कर सन्दूक में रख छोड़ा था।'

'भैयाजी डाक ले आओ, देर होती है'—ऊपर से आवाज आई—मैं डाक लेने चल दिया।

• • •

पाँच बजे होंगे। मैं शफाखाने के कम्पाउंड में क्रिकेट खेल रहा था—इतने में महाराजा साहब का आदमी आया—भैयाजी, महाराजा साहब याद फरमाते हैं क्रिकेट खेलने।'

'अच्छा चलो आते हैं, मुनीरखाँ, आप हमारे साथ चलिए। ठहरिए, मैं कपड़े पहन आता हूँ।'—मैंने मुनीर खाँ की ओर हँसते हँसते कहा।

'भैयाजी! मैं तो नहीं आना चाहता!'

'क्यों?'

'अजी क्या चलूँ? हेट बेट पहन कर गया, तो भी दरबार साहब ने मुलाकात न की, बल्कि कहला भेजा कि ऐसा 'सूट' पहन कर कोई 'कोठी' के पास न आया करे। यह लीजिये!'—मुनीरखाँ अपना सिर खुजलाते हुए बोले।

'अजी चलिए तो, मजा आयेगा।'

'अच्छा तो जैसा हुजूर का हुक्म।'

हम चल दिये। आगे आगे मुनीर खाँ पीछे पीछे मैं। अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते इधर उधर की बातें कर मुझे खुश करने का प्रयत्न करते वे अपनी भूतपूर्व बहादुरियों की दास्तान सुनाने लगे।

आप गान विद्या के बड़े शौकीन थे। मुन्नीबेगम और शरीजान का नाम सुनते ही आपकी नस नस में खून जोर से दौड़ने लगता था। महाराजा गुमानसिंहजी के जमाने में जितनी रंडियाँ आई थीं, जो जो गायन गाये थे, जैसी जैसी मीठी बातें हुई थीं, यह सब मुनीरखाँ सुनाने लगे।

'हुजूर! आज एक तबलची आया है, बड़ा ऐंठता है। अपने घर आज शाम को आएगा। देखिये क्या उल्लू को लकड़ा फेरता हूँ।'—मुनीर खाँ हँसते हँसते बोले।

विशाल मैदान था, आस पास छोटी-छोटी पहाड़ियाँ थीं। शाम तक हम खेलते रहे। महाराजा साहब के साथ कपड़े पहनने, मैदान के एक सिरे पर खड़े चबूतरे के पास आगये। मुनीरखाँ जो एक लम्बे कद के कमर से झुके हुए व्यक्ति से बातें कर रहे थे, उठ खड़े हुए और जमीन तक झुक, दाहिने हाथ को सिर तक ले जाकर सलाम करने लगे—'हुजूर, गरीबपरवर, गरीबनिवाज, अन्नदाता, धनीखम्मा!'

'क्यों मुनीरखाँजी?'—रास्ते में मैंने पूछा।

• • •

'अजी क्या कहूँ भैयासाब'

'क्यों क्यों।'

'देखिए न, मुनीरा झुक झुक कर सलाम करे और उसका सलाम भी न लिया जाय!'

'कुछ नहीं, जाने दो! मारो गोली।'

'भैयाजी! यह तबलची इन्दौर से हमारे डाक्टर साहब की तारीफ सुनकर आया है। बड़ा अच्छा गाना गाता है और तबला तो बस मानो अव्वल!'

'हुजूर मैं एक गरीब आदमी ठहरा। थोड़ा बहुत जानता हूँ, सो जरूर सुनाऊँगा। मिहरबानी होगी, डाक्टर साहब से कहकर कुछ इनाम दिला दें।'—तबलची सलाम करके बोला।

'जरूर जरूर'—बीच में ही मुनीरखाँ बोल उठे।

शफाखाने पहुँचते ही मुनीरखाँ पिताजी से कुछ बातों में उलझ गये, हम कपड़े बदलने ऊपर चले गये। बेचारे तबलची महाशय खड़े-खड़े हवा खाते रहे। फिर पिताजी ने पूछा—क्यों भई क्या है?

'हुजूर! बन्दा इन्दौर का तबलची है, हुजूर को कुछ सुनाना चाहता है।'

'भई कल आना, आज जरा काम है'—पिताजी ने उत्तर दिया।

'हुजूर आधा घंटा ही काफी होगा। अभी सुन लीजिए।'

इस समय तक मुनीरखाँ इधर उधर टहल रहे थे, एक दम वहाँ आकर बोले—हुजूर सुन लीजिए। अच्छा बजाते हैं। हमारे इसी बगीचे में कुएँ के ऊपर उड़ जाने दीजिये।

'अच्छा।'

शफाखाने के ऊपरी कंपाउंड पर हमने एक छोटा सा बगीचा लगा रक्खा था। बीच में एक गोल हौज सा बनाया था और इस हौज के किनारे गमले रखने का विचार था, पर अभी न रखे थे, हाँ! में दो चार पत्थर पड़े थे।

मुनीरखाँ, ऊपर से तबला ले आओ।'—पिताजी ने कहा।

'यह लाया हुजूर।'—मुनीरखाँ ऊपर चले आये।

'अजी यह खराब जोड़ी क्यों ले आते हैं, अच्छी ले जाइये न?'—मैंने कहा।

'अजी आइये! जरा मजा तो देखिये। बड़ा नवन्धा बजाने आया है।'—मुनीरखाँ आँखें चमकाते हुए बोले।

नीचे चले आये, हौज के एक तरफ, ऊपर पिताजी बैठे, दूसरी ओर तबलची और मियाँ मुनीरखाँ एक तरफ ताक ऐंठे बैठ गये।

'हाँ ! होने दीजिये ।'—मुनीरखाँ बोले ।

'तबले मिले हुए हैं ?'—प्रश्न हुआ ।

'बिलाशक ! यह क्या कहा ? हुजूर डाक्टर साहब रात दिन के तबले बजाने वाले और फिर भी तबला न मिला हो ? वाह खूब कही !'

बेचारे तबलची महाशय शरमा गये, तबला मिलाये बिना ही गाने लगे ।

'आ आ आ ! ओ ओ ओ-र कहीं मिलन !'

'वाह वा, वाह वा ! क्या कहना उस्ताद ! हाँ उड़ने दो ।'

'अए-लया—ए री मा आ आ ।'

'एक दो तीन चार पाँच छ '—मुनीरखाँ बीचही में ताल गिनने लग गये ।

'ओ ओ र . '

'ये ! वाह वा, वाह वा ।'

'हुजूर ! बायाँ (तबला) कुछ भद्दा बोलता है ।'—तबलची घबराते हुए बोले ।

'अच्छा तो मिलाओ'—पिताजी ने कहा ।

'डॉगडर साब—एक चपरासी शफाखाने का पुकारने लगा ।

'कौन है भाई ।'

'हुजूर, आपको दरबार साहब ने भोजन के बाद याद फरमाया है ।

'अच्छा । रोटी खा के आजायँगे । कह देना'

'भोत अच्छा हुजूर '

'ठप-ठप ठप तबलची तबला मिलाने लगा । हाथ में से हथौडी छटक कर हौज में गिर पडी ।

'ले लीजिये, ले लीजिये ।'—मुनीरखाँ धीरे से बोले ।

तबलची हथौडी लेने को नीचे झुके—इधर मुनीरखाँ ने तबले को चुपके से लुढका दिया 'गुड गुड' करता धम्म से तबला हौज में गिरा और पत्थर से टकराकर फट गया ।

'ला हौल बिला कूवत ! आदमी हो कि पायजामा ? तुमने हमारे १०) रू० का जोडी तोड दी ।'—मुनीरखाँ डाढी पर हाथ फेरते बोले ।

'अजी अजी ! हुजूर यह क्या गजब होगया । कैसे लुढक पडा ।'

'कैसे लुढक पडा ? ऐसे लुढक पडा कि तुमने साफे का तुर्रा बाँधकर तबले को भी घर ले जाना चाहा—और उसे पटक मारा ।'

'हुजूर ! माफी बख्शें । बडा लाचार हूँ'—बडा ही दयाजनक चेहरा बनाकर तबलची बोला ।

'कुछ नहीं, कुछ नहीं'—पिताजी ने जवाब दिया ।

'बाबूजी ! तैयारी होगई है, पधारिए भोजन के लिए ।'—ऊपर से आवाज आई ।

'अच्छा हुजूर, तो इजाजत हो । मुआफी चाहता हूँ'—खिसियाते हुए तबलची झुक झुक कर सलाम करके वहाँ से रफूचक्कर हो गया ।

पिताजी ऊपर चले गये ।

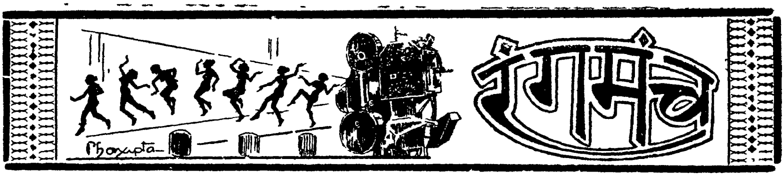
'क्यों भैयाजी !'—हँसते हँसते मुनीरखाँ बोले ।

'अजी वाह मुनीरखाँ ! मैं ऊपर जाते जाते हँस दिया ।

उस रात को छत पर सोते समय माताजी से यह किस्सा कहते-कहते भी मैं खूब पेट पकड कर हँसा ।

(१८वें पृष्ठ का शेषांश)

की सुविधा की दृष्टि से जो खटकने वाली कमियाँ ज्ञात हुईं, उन पर प्रकाश पडना चाहिये । जिससे भविष्य में निर्माण होने वाले साहित्यिक नाटकों को अधिक अभिनयात्मक बनाने का प्रयत्न हो और उनमें वे कमियाँ न दोहराई जायँ । पहली खटकने वाली कमी यह है कि नाटककार ने रङ्गमंच की सुविधा की दृष्टि से दृश्यों को नहीं रखा । इसी कारण एक ही पर्दे पर दो भिन्न भिन्न घटना-चक्रों के दृश्यों को दिखाने का कई दृश्यों को मिला देने का और कई दृश्यों को छोड देने को बाध्य होना पडा । उदाहरण के लिये प्रथम अङ्क के पहले और दूसरे दृश्य में गुरुकुल का मठ यथातथ्य नहीं लगाया जा सका, क्योंकि दूसरे दृश्य में नन्द के भव्य कानन का दृश्य लगाना था । इस प्रकार नाटक के आरम्भ के दृश्य में दर्शकों पर जो गम्भीर प्रभाव पडता वह न पड सका । इसी दृष्टि से द्वितीय अङ्क का पहला और दूसरा दृश्य मिला देना पडा, क्योंकि प्राक शिविर के बाद तुरन्त ही शैल-पथ का दृश्य लगाना अत्यन्त कठिन था । प्रथम अङ्क का दसवाँ सीन छोड देना पडा । १६ सीन वाले चौथे अङ्क को बिलकुल छोड देने पर भी अभिनय रात्रि के २॥ बजे समाप्त हुआ । नाटक इतना बडा है कि बिना कुछ भाग छोडे उसका अभिनय सारी रात्रि में समाप्त होना कठिन है । दूसरी कमी नाटक की भाषा अभिनयात्मक न होने की है । पात्रों के बडे क्लिष्ट वाक्यों वाले रहस्यमय व्याख्यान थे, उनमें अभिनय दिखाना तो दूर रहा, पात्रों को उनका कहना और दर्शकों को समझना अत्यन्त कठिन ही नहीं प्राय असम्भव था । स्पष्ट करने के लिये यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा प्रथम अङ्क के प्रथम दृश्य में मिहिरगुल रहस्योद्घाटन करते हुए कहता है—'यवन आक्रमणकारियों के पुष्कल स्वर्ण से पुलकित होकर आर्यावर्त का सुप्त रजनी की शान्ति-निद्रा में उत्तरापथ की अर्गला खोल देने का रहस्य है ।' नाटक के अभिनय में जो गायन रखे गये थे, उनमें केवल तीन नाटक के थे, बाकी 'प्रसाद'जी के अन्य नाटकों के और दो-एक इस विशेष अवसर के लिये 'प्रसाद' जी के बनाये थे । उनमें भी कई बार अन्तरे के स्थान पर दो अन्तरों और दो एक स्थान पर एक अन्तरे को रखा था तब भी गायक अभिनेताओं को कितनी खींचा तानी करनी पडती थी और दर्शकों को सङ्गीत का कितना कम स्वाद मिलता था यह अभिनेताओं और दर्शकों को भली भाँति अनुभव हो रहा था । अभिनय की दृष्टि से नाटक में इतनी काट छाँट करके नाटक का नवीन रूप देने पर भी नाटक के अभिनय में कई कमियाँ रह गईं । साहित्यिक नाटकों के निर्माण कर्ताओं से प्रार्थना है कि इस प्रकार की प्रयोग शालाओं में जाँच के बाद जो कमियाँ ज्ञात हों उन्हें भविष्य के नाटकों में दूर करके पूर्ण अभिनयात्मक नाटकों का निर्माण करेंगे ।



चन्द्रगुप्त

लेखक—श्रीयुत रघुराजशरण शर्मा

नाटक साहित्य का सर्व प्रधान अङ्ग है क्योंकि इसका उद्देश्य किसी बात को सम्मिलित जन समूह के सामने प्रत्यक्ष कर दिखाना है। प्रत्यक्ष दर्शन का गुण होने के कारण नाटकों द्वारा देशोत्थान और समाज सुधार में बड़ी सहायता मिली है। नाटकों का अभिनय केवल इसीलिये ही आवश्यक नहीं कि वह कवि की स्वाभाविक कुशलता, पूर्ण अनुभव, उत्कृष्ट प्रकृति प्रेम और उच्च प्रतिभा की प्रतिच्छाया होकर कला की सेवा करता है, वरन् नाटक समाज के जीवन-प्रवाह को पलटने की शक्ति रखते हैं। सामाजिक जीवन में नाटक की उपयोगिता निर्विवाद होते हुए भी अभी तक हमारे हिन्दी-साहित्य में उच्च कोटि के नाटकों के प्रणयन और उनके अभिनय के प्रबन्ध की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। इधर कुछ वर्षों से कई उच्चकोटि के साहित्यक नाटकों का निर्माण तो हुआ है, परन्तु समय समय पर उनके अभिनय के लिये बहुत कम सन्तोष-जनक उद्योग हुए हैं। यही कारण है कि पारसी थियेटरों के भाव भाषा, नाट्य गुण विहीन, कुरुचि-पूर्ण नाटकों ने एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया है। इनमें आँखों को चौंधिया देने वाली साज-सामग्रियों की तो भरमार रहती है, परन्तु नाटक का समय, पात्रों की अवस्था, जाति प्रकृति और दशा के अनुकूल यथातथ्य वेष-भूषा और वार्तालाप रचना की ओर कम ध्यान दिया जाता है। अधिकांश पारसी कम्पनियों का उद्देश्य पैसा पैदा करना होता है, समाज और साहित्य की उन्नति और कला की सेवा से इनको क्या मतलब। इसी से इनके द्वारा समाज में विषैली मनोवृत्ति का ही संचार हुआ है। नाटक देखने का नाम ही बुरा समझा जाने लगा है। नाटक, जहाँ शिक्षा के साधन होने चाहिये, वहाँ दुष्टता सिखाने के केन्द्र हो गये हैं। समाज में आई हुई इस विषैली मनोवृत्ति में समाज के मङ्गल की दृष्टि से शीघ्र परिवर्तन करने की आवश्यकता है। कई साहित्यिक नाटक मण्डलियों ने इस सम्बन्ध में उद्योग तो किया है, परन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये इतने ही उद्योग पर्याप्त नहीं माने जा सकते। इसके लिये शिक्षा-केन्द्रों में नाटक-मण्डलियाँ होनी चाहियें, जो देशभक्ति-पूर्ण शुद्ध साहित्यिक नाटकों को खेला करें।

दूसरे देशों में जनता में सुन्दर भावों और विचारों का प्रचार करने के लिये साहित्य-प्रेमियों के क्लब अथवा मण्डल होते हैं जो समय-समय पर सुन्दर भाव-पूर्ण उच्चकोटि के साहित्यिक नाटकों का अभिनय करते हैं। रत्नाकर रसिक मण्डल भी इसी उद्देश्य को लेकर सामने आया। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि उसके इस प्रथम परन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उद्योग में काशी की सभी नाटकमण्डलियों ने पूरा पूरा सहयोग दिया। इस प्रकार सम्मिलित उद्योग से 'प्रसाद' जी लिखित 'चन्द्रगुप्त मौर्य' का गत ता० १४ व १५ दिसम्बर को अभिनय किया गया, जिस में काशी के प्रायः सभी प्रसिद्ध अभिनेताओं ने अभिनय किया। मण्डल के उत्साही कार्य-कर्ताओं ने अभिनय को 'साहित्यिक नाटक का आदर्श अभिनय' बनाने में कोई बात उठा नहीं रखी। पात्रों की अवस्था, जाति, प्रकृति और दशा के अनुकूल यथातथ्य वेष-भूषा, दृश्य-व्यवस्था और भाव-प्रदर्शन होने के कारण एक दो छोटी-छोटी त्रुटियों को छोड़ कर ईसा से पहले का वायुमण्डल उपस्थित करने में सफल हुए हैं। यूनानियों की वेष-भूषा बिलकुल वैसी ही थी, जैसी हम इतिहास में दिये चित्रों में तत्कालीन यूनानी सैनिक की देखते हैं। स्त्री अभिनेत्रियों की वेश-भूषा और भाव-प्रदर्शन में, केवल एक अभिनेत्री को छोड़कर भारतीय ललना सुलभ सादगी, लज्जा, आत्म सम्मान के भाव विद्यमान थे। पारसी रङ्गमंच को ही शोभा देने वाली व्यर्थ कीतड़क-भड़क, वारवधुओं के-से कुरुचिपूर्ण हाव भाव और चंचलता का अभाव था। मालूम हुआ है कि वेश भूषा और शृंगार के लिये कलकत्ते से दो कुशल व्यक्ति बुलाये गये थे। सब मिला कर साहित्यक भाषा का उच्चारण स्पष्ट, अभिनयात्मक और शुद्ध था। कहीं-कहीं पात्र गड़बड़ा अवश्य जाते थे। दृश्यों की व्यवस्था तत्कालीन समय, नाटक की घटना-विशेष के प्रायः अनुकूल ही थी; परन्तु कई बार एक दृश्य में एक ही परदे पर दो भिन्न-भिन्न घटनाओं को दिखाना पड़ा इसके लिये नाटककार अथवा नाटक के अभिनय करने वालों में से कौन उत्तर-दायी है, इसका विवेचन आगे करेंगे। पात्रों का अभिनय, कुशल अभिनेताओं के होने के कारण बहुत सफल हुआ। श्री केशवरामजी टण्डन का छोटा कद और स्थूल शरीर होने के कारण, उत्तरीय पहने गले में यज्ञोपवीत, देह से भस्म से अलंकृत साक्षात् चाणक्य ही-से मालूम पड़ते थे। उनके भाव-प्रदर्शन और वाणी में चाणक्य जैसे राजनीतिज्ञ के उपयुक्त गम्भीरता, भयंकर विप्लवों में निश्चलता और दूरदर्शिता टपकती थी। टण्डनजी-जैसे सफल अभिनेता ही चाणक्य के अभिनय की सफलता के अन्तर्रहस्य को समझ सकते थे और उन्होंने समझा भी है, यद्यपि एक दो स्थलों पर जनता की वाहवाही प्राप्त करने को गम्भीरता छोड़कर स्वर ऊँचा करने के लोभ को संवरण न कर सके। उन्हें सुवासिनी की स्मृति पर आन्तरिक द्वन्द्व, कर्तव्य और प्रेम के युद्ध का भाव दिखाने में अपूर्व सफलता मिली। सबसे अधिक सफल और आदर्श उनका ही अभिनय हुआ है।

चन्द्रगुप्त के अभिनेता रसिक नवयुवक होने के कारण कार्नेलिया, मालविका के प्रति प्रेमाकर्षण के भाव को तो सफलता पूर्वक दिखा सके हैं, परन्तु वीरता के भाव दिखाने में सफलता नहीं मिली। वे कहीं-कहीं उच्चारण में भी गड़बड़ा जाते थे। 'कला-कुशल-राक्षस' का अभिनय करने में श्रीसीताराम चतुर्वेदी का नन्द की राज-सभा में कला पूर्ण नृत्य के नाम पर केवल हाथ पैर मटकाना और 'निकल मत बाहर दुर्बल आह' को कई प्रकार से मुँह बना कर गाना शोभा नहीं दिया। सुना है कि किसी सज्जन ने इसी गाने पर उन्हें पदक दिया है।

सात पुत्रों के दुःख से उद्विग्न, प्रतिशोध से पूर्ण शकटार के अभिनय में सर्वदानन्दजी ने भाव-प्रदर्शन तो अच्छा किया, परन्तु स्वर में कड़क न होनी चाहिये थी, क्योंकि शकटार वृद्ध था और वर्षों से थोड़े से सत्तू और नमक के ऊपर रहा था। सिकन्दर के अभिनय की सफलता की कुञ्जी को श्रीगणेशदत्त आचार्यजी ने भली-भाँति समझा। विश्व विजेता महत्वाकांक्षी सिकन्दर का मस्तक रणस्थल में शिविर आदि सब स्थानों पर ऊँचा रहता है, वह केवल भारतीय संस्कृति और सभ्यता के आगे झुकता है। पर्वतेश्वर के अभिनेता में निरालापन था, उनका स्वर आरम्भ से अन्त तक एक-सा रहा। अभिनेत्रियों में अलका, अतिनाट्य का अवगुण छोड़कर सुवासिनी और मालविका का अभिनय बहुत सफल रहा। मालविका का अभिनय करने वाले अभिनेता बहुत होनहार मालूम पड़ते हैं। भविष्य में सफल अभिनेता होने की उनसे बहुत कुछ आशा की जा सकती है।

अलका प्रेम और कर्तव्य की प्रतिमा के रूप में दर्शकों के सामने आती है। अलका का अभिनय करने वाले अलका के जीवन के दोनों क्षेत्रों—सिंहरण के प्रेम में अनुरक्तता और तक्षशिला का कलङ्क धोने के लिये गृह त्याग कर यवनों से युद्ध करने वाली अलका के अभिनय को सफलता पूर्वक किया है। सुवासिनी के अभिनय में अभिनेता श्रीजनार्दन मिश्र ने बहुत अधिक चञ्चलता और हाव-भाव प्रदर्शित किया है, जो महामन्त्री शकटार की 'निष्पाप हृदया कन्या' के अनुपयुक्त थे। यह तो ठीक है कि सुवासिनी 'वसन्तोत्सव की रानी' और चाणक्य, राक्षस और नन्द के प्रेमाकर्षण की अधिष्ठात्री अभिनय करने वाली कन्या के रूप में सामने आती है उसमें चञ्चलता होनी ही चाहिए, परन्तु अधिक चपलता से नाट्याधिक्य का अवगुण आ जाता है जो पारसी स्टेज को ही शोभा देता है। सब मिलाकर कह सकते हैं कि 'प्रसादजी' के रंगमंच की दृष्टि से संशोधित किये 'नवीन चन्द्रगुप्त नाटक' को पर्याप्त सफलता मिली और गौड़जी के शब्दों में 'काशी की चुलबुली जनता को ढाई बजे रात तक मोहनी शक्ति से शान्त रखा।'

यह तो रही अभिनय की विवेचना अब एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण प्रश्न पर विचार करना शेष रहा। यह तो निर्विवाद है कि रङ्गमंच ही नाटकों की अभिनय-शीलता की जाँच करने की शालायें हैं। हिन्दी का उच्चकोटि का पूर्ण-साहित्यक चन्द्रगुप्त नाटक हिन्दी के प्रसिद्ध नाट्यकला-मर्मज्ञों और सुप्रसिद्ध अभिनेताओं की प्रयोग शाला में आया था, इसमें अभिनय-शीलता और दृश्यों की व्यवस्था

शीघ्रगामी ट्रेनें

हिन्दुस्थान की 'डेक्कन क्वीन' नामक ट्रेन (बम्बई से पूना और पूना से बम्बई तक आनेवाली) अत्यन्त शीघ्र चलनेवाली ट्रेन माना जाती है ; परन्तु उसकी गति एक घण्टे में पचास मील की है। जर्मनी और अमेरिका में छोटी छोटी ट्रेनें आज ६० से ८० मील तक के वेग से दौड़ती हैं। एक अमेरिकन रेल्वेट्रेन एक घण्टे में ७० मील जाती है। रेल्वे मोटर का आज जर्मनी में सर्वत्र प्रचार है। इसमें ४४ आदमी बैठ सकते हैं। और वह एक मिनट में एक मील चलती है। मोटर ड्राइवर ट्राम के सिरे पर बैठता है।

लन्दन का पापागार

लन्दन से प्रकाशित होनेवाला 'जॉनबुल' नामक पत्र लिखता है कि लन्दन में अनेक गुप्त स्टूडियो कायम हैं। जहाँ धोखे से सुन्दर युवतियों के नग्न चित्रों की फिल्म उतार ली जाती हैं और इससे स्टूडियो के मालिक लोग अच्छी आमदनी कर लेते हैं। लन्दन में ऐसे अनेक गुप्त स्थान हैं, जहाँ केवल इस प्रकार की अश्लील फिल्में ही दिखलाई जाती हैं और वे दिन में एक दो बार दिखलाई जाती हों, सो बात नहीं, परन्तु कम-से-कम छः बार दिखलाई जाती हैं। ऐसी फिल्में किस प्रकार तैयार की जाती हैं, इसका वर्णन करते हुए 'जॉनबुल' लिखता है कि पहले स्टूडियो वाले समाचार-पत्रों में विज्ञप्ति छपवाते हैं कि—'ऐसी सुन्दर युवतियों की आवश्यकता है, जो स्टूडियो में आकर इस बात की परीक्षा दें कि वे फिल्म में काम करने के उपयुक्त हैं या नहीं। जो सुन्दरी इस परीक्षा में पास होगी, केवल उसी से फीस ली जायगी।' इस प्रकार मुफ्त परीक्षा कराने के लिए सुन्दरी युवतियों की टोलियाँ वहाँ आ पहुँचती हैं। उन में से अनेक युवतियाँ चुन ली जाती हैं। पहले तो साधारणतया उनके अनेक फोटो उतारे जाते हैं, पश्चात् डायरेक्टर उन्हें शाबाशी देकर और अनेक प्रकार से ललचा फुसला कर अपने काबू में कर लेता है। इसके बाद उससे कहता है कि एक फिल्म में जलक्रीड़ा का दृश्य उतारना बाकी है। अगर इस काम के लिये तुम तैयार हो जाओ, तो बहुत अच्छा। फिल्म संसार में प्रवेश करने की इच्छा रखने वाली युवती इसके लिये तैयार हो जाती है और तैरन की पोशाक पहन कर अपनी फिल्म उतरवाती है, परन्तु इसके लिये कपड़े बदलने के अभिप्राय से उसे ड्रेसिंग रूम में भेजा जाता है। युवती समझती है कि वह उस कमरे में अकेली है ऐसा समझने के कारण वह अपने सब कपड़े उतार कर वेष बदली है और वहाँ पर्याप्त समय तक बिल्कुल नग्नावस्था में रहती है। पश्चात् पोशाक पहनकर बाहर निकलती है ; परन्तु ड्रेसिंग रूम के दोनों ओर गुप्तरूप से दो कैमरे नियत रखे जाते हैं। और अलक्षित रूप से ही उनके द्वारा युवतियों की नग्नावस्था की फिल्म उतार ली जाती है। उस बेचारी को इस बात की खबर ही नहीं हो पाती। इसी प्रकार धोखे से शयन गृह के भी नग्नावस्था के दृश्य उतार लिये जाते हैं। युवतियों की प्रशंसा कर दी जाती है कि तुम बहुत ही सुन्दर काम कर सकती हो। इससे वे अपने उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करती हुई घर लौट जाती हैं। इसी प्रकार पुरुषों की भी विभिन्न प्रकार की फिल्में तैयार की जाती हैं, इसके बाद पहले उतारी हुई स्त्रियों की फिल्म और पीछे उतारी हुई पुरुषों की फिल्म में से काट-छाँट करके खूबी के साथ एक दूसरे से मिलाकर ऐसी फिल्म तैयार की जाती है कि जान पड़ता है स्त्री-पुरुष ने एक साथ काम किया है।



'कल्याण' के शिवाङ्क में एक लेख छपा है—'हिन्दी साहित्य में शिव' उसमें स्वर्गीय महाकवि शङ्करजी की एक सवैया उद्धृत की गई है, जिसमें व्यङ्ग्य की झलक है। उसी पर काशी के 'पण्डितपत्र' में एक मथुरा निवासी सज्जन ने लिखा है—'कुछ महाशय वृन्दों (?) का स्वभाव सदैव का ऐसा है कि अपने से भिन्न धार्मिक विश्वास रखने वालों को पेट भर कर खरी खोटी सुनाये बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता (?)। पर उपदेश कुशल बहुतेरे ।' इसके बाद अन्त में उन्होंने भी स्वामी दयानन्द सरस्वती की निन्दा का एक छोटा पद्य गढ़कर चस्पाँ कर दिया है। महाकवि शङ्करजी की कविता में कुछ चमत्कार भी है; मगर महाशयजी के पद्य में घोर घृणा और क्रोध की ज्वाला भरी है! 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' को आपने अक्षरशः सार्थक कर दिया है। महाकवि का दुर्भाग्य है, कि ठीक जवाब के बदले गाली नसीब हुई। भगवान् न करे कोई मुँहफट मुँह लगे।

❀ ❀ ❀

कलकत्ते के विद्यासागर कॉलेज में भाषण करते हुए एक सन्यासी ने कहा है, कि गिरनार पहाड़ पर रहने वाले 'सच्चा बाबा' परमहंस के कथनानुसार आज से दस साल बाद १९४३ में कल्कि अवतार होगा। अगर सचमुच कहीं ऐसा हुआ तो कम से-कम हमें बड़ा दुःख होगा; क्योंकि कल्कि पुराण के अनुसार म्लेच्छों और आततायियों का नाश करने के लिये ही कल्कि अवतार होने वाला है। यदि कल्कि भगवान अत्याचारियों का नाश ही कर डालेंगे, तो फिर देश में जीवन और जागृति कहाँ रह जायगी। तब 'झणमर' का मसाला कहाँ मिलेगा?

❀ ❀ ❀

उन्हीं सन्यासी बाबा ने 'सच्चा बाबा' के कथनानुसार कहा है कि एक साल से सत्ययुग आरम्भ हो गया है। शायद इसीलिये सनातनी लोग बरसाती मेंढकों की तरह सजीव हो उठे हैं।

❀ ❀ ❀

सन्यासी महाराज ने ७५० वर्ष के एक महात्मा का पता बताया है, जो हिमालय के मानसरोवर तट पर रहते हैं और भारत के विद्यार्थियों को प्राणायाम और व्यायाम द्वारा स्वस्थ और दीर्घायु होने का सन्देश देते हैं। तब तो स्कूलों और कॉलिजों की छटा बिगड़ी। महात्मा का उपदेश कहीं काम कर गया तो वे कृशाङ्गी मूर्तियाँ कहाँ दीख पड़ेंगी, जिन्हें देखकर भारत के भविष्य पर पेटेण्ट भरोसा होता है?

❀ ❀ ❀

कलकत्ते के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने घोषणा की है कि ११ जनवरी से २१ जनवरी या १२ अप्रैल १९३४ तक का समय बहुत ही खतरनाक है; क्योंकि

१६ जनवरी १९३४ को छः ग्रह एक ही राशि पर एकत्र हो रहे हैं, जिसका परिणाम विश्वव्यापी महायुद्ध और दुर्भिक्ष होगा। यदि ऐसा हुआ तो बन्दा खूब मौज करेगा। दो चार साल 'क्षण भर' का मसाला इफरात मिलेगा। आगे देखा जायगा।

❀ ❀ ❀

ज्योतिषीजी ने एक अंगरेजी पंचांग से कई प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि अमेरिका इङ्गलैण्ड और फ्रांस के बीच आर्थिक संग्राम छिड़ेगा तथा चीन की राजधानी पेकिङ्ग पर चढ़ाई करके जापान घोर समरानी फैलावेगा। बस अब अखबार वाले खूब चाँदी काटेंगे। अखबार बेचने वाले हरकारों के मुँह से दिन रात बमगोले बरसा करेंगे। हम तो भारत से चुने हुए जवान रंगरूट भेजने पर सबसे ज्यादा ज़ोर देंगे।

❀ ❀ ❀

ज्योतिषीजी का कहना है कि ऐसे ही छः ग्रहों का संयोग होने पर सतयुग में देवासुर-संग्राम, त्रेता में राम-रावण-संग्राम और द्वापर में महाभारत तथा कृष्ण कंस युद्ध हुआ था। तब तो 'सच्चा बाबा' के कथनानुसार एक साल से सतयुग का आरम्भ हो ही चुका है, फिर देवासुर संग्राम में क्या सन्देह है? लेकिन कौन देवता और कौन असुर है, इसका निर्णय 'क्षण भर' में नहीं हो सकता। अपनी बुद्धि से भी कुछ काम लीजिए।

ज्योतिषीजी तो यहाँ तक सिद्ध करते चले गये हैं कि आगामी माघ और चैत्र के बीच में खासकर जापान, पोलैण्ड, चीन, इङ्गलैण्ड, रूस, फ्रांस, और जर्मनी के मध्य महायुद्ध छिड़ने की बड़ी भारी सम्भावना अथवा आशंका है। अगर ऐसी बात है, तो उन छः ग्रहों की शान्ति के लिए वर्णाश्रम स्वराज्य संघ की ओर से शान्ति यज्ञ का अनुष्ठान होना चाहिए, क्योंकि संघ वाले ही खुदा मियाँ के असली वारिस हैं, इसलिए उनकी सिफारिश पर अल्लाह ताला ज्यादा ग़ौर करेंगे।

❀ ❀ ❀

खबर है कि आसाम प्रान्त से सुरमा घाटी और बंगाल-प्रान्त से ढाका तथा चटगाँव डिवीजन निकालकर पूर्व बंगाल नामक एक नया प्रान्त बनाया जाने वाला है, जिसकी राजधानी 'चटगाँव' होगा। साथ ही यह भी खबर है कि आगामी १८ जनवरी को जब बड़े लाट साहब शीलाङ्ग जायँगे, तब इस बात की घोषणा की जायगी। इस खबर से भी उपर्युक्त ज्योतिषीजी की बात पुष्ट होती है। उधर १६ जनवरी को छः भयंकर ग्रह एकत्र होंगे, इधर १८ जनवरी को बङ्ग-भङ्ग की घोषणा होगी। फिर क्या पूछना है! और चटगाँव भी दो तीन साल से लगातार चिल्ला रहा है कि बङ्ग भङ्ग करके हमीं को राजधानी बनाओ। सब तरह से साइत अच्छी बनी है।

—विजयानन्द।

